

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१६०

४५५३२

॥ श्रीः ॥

योगरत्नाकरः

‘विद्योतिनी’ हिन्दी टीका सहितः

टीकाकारः

वैद्य श्रीलक्ष्मीपतिशास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः

सम्पादकः

भिषग्रत्न श्रीब्रह्मशङ्कर शास्त्री



चौरवम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक

पो० बा० नं. ११३९

के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन (गोलघर समीप मैदानिन)

वाराणसी - २२१००१ (भारत)



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi
{creator of
hinduism
server}

© Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi

Phone : 333445

Seventh Edition : 2002

ISBN-81-86937-40-4

Branches :-

CHAUKHAMBHA SANSKRIT BHAWAN

Post Box No. 1160, CHOWK

VARANASI - 221001

Phone : 320414

CHAUKHAMBHA PUBLICATIONS

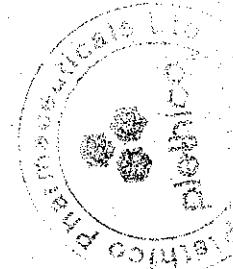
4262/3, Ansari Road, Darya Ganj

New Delhi-110002

Phone : 3268639, 3259050

E-mail : chaukhambha@mantramail.com

प्राकथन



कायचिकित्सा विषयक उपलब्ध संप्रहग्न्थों में योगरत्नाकर सर्वोत्कृष्ट रचना है। चिकित्सक के लिये ज्ञातव्य सभी आवश्यक विषयों का संग्रह इसमें किया गया है। पादचतुष्टय (भिषक् , मैषज्य, परिचारक और रोगी) का विधियुक्त वर्णन करने के उपरान्त रोगीपरीक्षा के व्यावहारिक सूत्र स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किए गए हैं। नाड़ी, मूत्र, मल, शब्द, स्पर्श, रूप-नेत्र, मुख, जिहा एवं देश परीक्षा तथा त्रिदोष विज्ञान का वर्णन संश्लिष्ट शैली में किया गया है। रोग विनिश्चय का व्यावहारिक रूप जिस प्रकार इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है, वैसा किसी दूसरे ग्रन्थ में नहीं है। दिनचर्या-रात्रिचर्या-ऋतुचर्या, धान्य-फल-शाक-मांस-सिद्धान्त-जल-दूध-दधि-तक-घृतादिवर्ग एवं दैनिक उपयोग के अन्य आहार घटकों तथा त्रिफला-त्रिकुटा-चतुर्जीत आदि प्रमुख औषधगणों का वर्णन भी संगृहीत है। वैद्यक परिभाषा-पञ्चविधि कषाय कल्पना, अवलेह, स्नेहपात्र, आसवारिष्ट, धातुपथातुओं का शोधन-मारण-सत्त्व पातन आदि रसायन विषय भी उपयोगिता की क्रसौटी पर कसे होने के कारण लेखक की सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि से ओझल नहीं हो सके—उनका भी सिद्ध किया-कर्म निर्दिष्ट है। वर्मन-विरेचनादि पञ्चकर्म सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य विषय एवं माध्योक्त कर्म से सभी रोगों का निदान एवं विस्तृत चिकित्सा का वर्णन तो योगरत्नाकरकार की अपनी विशेषता है। इसमें वर्णित चिकित्सा कर्म बहुत ही व्यावहारिक एवं दृष्ट फल है, दूसरे ग्रन्थों के समान सभी प्रकार के दृष्ट-श्रुत योगों का ‘पीन कलेवर’ संग्रह मात्र नहीं है। संक्षेप में केवल योगरत्नाकर का विविच्छिन्न अध्ययन करके मनस्वी व्यक्ति यशस्वी चिकित्सक बन सकता है।

इतने उपयोगी ग्रन्थ का प्रणेता कितना निःस्वृह एवं उत्सर्गशील था कि ग्रन्थ में कहीं भूल कर भी आत्मविषयक कुछ उल्लेख नहीं आने दिया है। प्रारम्भ में जाकि एवं पुत्र युक्त हर-हरि-ब्रह्म-त्रिदेवों तथा गुरु की वंदना और अन्त में ‘यावच्छन्द्र दिवाकर’ सद्दैवों द्वारा योगरत्नाकर के अध्ययन की कामना, वस यही उस महान तपस्वी का आत्मनिवेदन है। ग्रन्थ में भावप्रकाश के उद्दरण होने से आचार्य भावमिश्र से परवर्ती होने का तथा दाक्षिणात्य जनपद से ही सभी हस्त लिखित प्रतियों की उपलब्धि एवं वहीं विशेष प्रचार होने से विद्वान् अनुसन्धान

कर्त्ताओं को केवल काल एवं स्थान का कुछ अनुमान हो सका है। भला किस महापुरुष ने इतने विशाल ग्रन्थ में अपना नामोल्लेख तक नहीं किया—जानकर ही नहीं किया—उसका परिचयानुसन्धान धृष्टता नहीं तो और क्या है? उस परम महेश्वर महात्मा का सज्जा परिचय उसके ग्रन्थ का अधिक से अधिक अनुशीलन और प्रसार है। यद्यपि इस ग्रन्थ की भाषा बहुत ही सरल एवं सुबोध है, किन्तु वर्तमान समय में देववाणी के अध्येता कम होते जा रहे हैं, अल्प श्रम एवं सुविधा की लोज से ऐसे ग्रन्थ रत्नों का अध्ययन कम होता जा रहा है। इसी हाँसी से ग्रन्थ का अधिक से अधिक प्रसार करने के लिए चौखंडा संस्कृत पुस्तकालय के स्वत्वाधिकारी परम भागवत ब्राह्म जयकृष्णदास-हरिदास गुप्त ने 'विद्योतिनी' हिन्दी भाषा टीका का प्रकाशन किया है। भाषा टीका में यथाशक्ति ग्रन्थ की मौलिकता सुरक्षित रखते हुए विना किसी लाग-लेपेट या विमर्श के केवल भाषान्तर मात्र सरल हिन्दी में किया गया है, जिससे पाठकों को विना 'प्रक्षेप' के ग्रन्थ कर्ता के मूल विषय का रसास्वादन हो सके। यदि भाषा टीका के आकर्षण से पाठकों के मानस में मूल ग्रन्थ के अध्ययन एवं मनन की अभिरुचि जाग्रत हो जाय तो प्रकाशक का श्रम सार्थक हो जायगा—क्योंकि रत्नराज को विकरण शक्ति उसकी छाया में नहीं हो सकती—और तब 'तावत्सङ्घिष्यः पठन्तु परितः श्रीयोगरत्नाकरम्' यह निस्पृह तपस्वी की एकाक्रान्त स्पृहा भी स्पृहणीय न रहेगी। 'साधु समाज भनिति सनमान्' की आशा में:—

वाराणसी
वि० सं २०११

विनायवनत—
ब्रह्मशङ्कर मिश्र

पूर्वार्धगत-विषयसूची

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
मङ्गलाचरण	१	कलिगमान की परिभाषा	२३
वैद्य प्रशंसादि	”	धान्य के गुण	२५
वैद्य का कर्तव्य	२	शकादि के गुण	”
रोगसमकालिक चिकित्सा	”	कन्द-मूल के गुण	२८
कर्मदोषज व्याधियों के भेद	३	फलों के गुण	२८
चिकित्सा का निषेध	”	तमाख़ के गुण	३४
रोग-परीक्षा की शैली	”	मांस के गुण	३५
पादच्वतुष्ट का लक्षण	”	मत्स्यादि के गुण	३८
दूतपरीक्षा	”	सिद्धिअशादि	४१
रोगी के यहाँ जाने का निषिद्ध समय	४	यूष के गुण	४२
वैद्य के शुभ शकुन का लक्षण	”	दाल के गुण	४४
रोगियों की आठ स्थानों की निरीक्षण विधि	५	पापद के गुण	४५
नाडी-परीक्षा	”	खिचड़ी के गुण	”
मूत्र-	१०	पायस के गुण	४६
मल-	१२	पुड़ी आदि के गुण	”
शब्द-	१३	बड़ी के गुण	४७
स्पर्श-	”	पानक के गुण	४८
रूप-	”	मुखबा का लक्षण और गुण	४९
इष्प-	१४	रसालादि के गुण	५०
आस्थ-	१५	आयु का विचार	५१
जिह्वा-	”	निष्ठाकृत्य (दिनचर्या) विधि	५५
कालशान	”	रानिचर्या विधि	५२
ग्रासायुष का लक्षण	”	आतुचर्या विधि	५९
साध्य रोगी के लक्षण	१६	जल के गुण	६३
देश का लक्षण	”	दूध "	१०१
वातादि त्रिदोष प्रकोपक मासादि	”	दही "	१०२
त्रिदोष के कर्म	१८	तक "	१०४
त्रिदोष के शामक कर्म	”	धूत "	१०५
त्रिदोषप्रकोप का समय	१९	तैल "	१०७
आमध्याधि का लक्षण और प्रतिकार	”	मधु "	१०८
वातादि प्रकृतिक मनुष्यों के लक्षण	२०	इच्छ (गशा) का गुण	१०९
आरोग्य के लक्षण	”	गुड़, चीनी आदि का गुण	१११
मानपरिभाषा	२१	मूत्राश्वक के लक्षण-गुण	”
माताधमान की परीभाषा	”	निफला, त्रिकुटि और पञ्चकोल के लक्षण-गुण	११३
		घूषण और चतुरुषण के लक्षण-गुण	”

विषय	पृष्ठांक
दशमूलादि के लक्षण-गुण	११४
सन्तरण " "	११५
महासुगंध "	"
केशर का नाम और गुण	"
बहरस के लक्षण गुण	११६
चारब्रयादि "	"
लचणब्रयादि "	११७
चन्दन "	"
गुहूचीसरथ "	११८
स्वरस-कस्पना	"
पुटपाक "	११९
कशक "	"
काय- "	१२०
हिम-काण्ट "	१२१
चूर्ण "	१२२
बटक "	"
अबलेह "	१२३
आसवारिष्ट "	१२५
स्वर्णादि सस धातुओं के शोधन-मारणादि	१२७
उपधातुओं का परिणामन	१३०
अश्रक के शोधन-मारणादि	"
स्वर्णमाचिक "	१४५
रौप्यमाचिक "	१४६
हरताळ "	"
मनःशिला "	१४७
सौतोजन "	१४८
तुख और खतर "	"
पात्र के भेद, गुणादि	"
गाढ़क के "	"
हिंगुल के "	"
बज्र के "	"
बैक्रान्त के "	"
रद्दों के शोधन-मरणादि	"
शिलाजतु "	१६२
सिन्दूर "	१६३
समुद्रफेन "	"
रौपिक "	"
प्रयंगदर्भीज का शोधन	१६४
विषय	पृष्ठांक
मरिचबीज का शोधन	१६४
पिपली "	"
हिंगु "	"
शंख के शोधन, गुणादि	"
भूनागसरथ और मयूरपक्षसरथ के गुण	"
कर्पूर का शोधन	१६५
टङ्कण "	"
विषों के भेद, गुणादि	"
गैरिक पाषाण के भेदादि	१६६
उपविष के भेदादि	१६७
सुक, लाङुली गुजाजा, हयारि, विष- तिन्दुक और जयपाल के शोधन,	"
गुणादि	१६८
धन्त्र और अहिफेन के गुणादि	१६९
सर्पविष में गारुडादि मंत्र	"
अश्रक-तालक-सख्वपातनादि	१७०
चारकल्पना	"
अभाववर्ग	१७१
बमन-प्रकरण	१७५
विरेचन "	१७६
रेचन "	१७७
मेघनादरेचन इस	१७८
नस्य-कर्णपूरण	१७९
रक्तसुति आदि	१८०
तन्द्रा, जृमा, क्लम	१८१
क्षवयु, आलस्य, उखलेश, राणि,	"
गौरवादि के लक्षण	१८२
हृष्णास के लक्षण	"
ज्वरादि रोगों की गणना	१८३
ज्वराधिकार	१८४
वात-पित्तादि ज्वरलक्षण	१८५
सज्जिपातज्वरलक्षणभेदादि	"
आगान्तुकज्वरलक्षणादि	१९०
विषमज्वरलक्षणादि	१९१
ज्वरचिकित्सा	१९५
सज्जिपातज्वरचिकित्सा	२०८
आगान्तुकज्वरचिकित्सा	२२२
विषमज्वरचिकित्सा	२२३
सुदर्शनादि चूर्ण प्रकरण	२३१

विषय	पृष्ठांक
कुरष्टकादि लेह प्रकरण	२३४
पञ्चतिकादि घृत प्रकरण	२३५
घट्टकादि तैल प्रकरण	२३६
सेवन्यादि पाक प्रकरण	२३७
नव ज्वरेभाङ्गादि इस प्रकरण	"
सप्तस्थातुगतज्वरलक्षणादि	२४८
मन्थरज्वरलक्षणादि	२४९
हुंजलजनितज्वरचिकित्सा	२५०
पटोलादि काथ	"
ज्वर में पथ्यापथ्य	२५१
अतिसारनिदान	२५४
अतिसार के पूर्वरूप की चिकित्सा	२५१
आमातिसार चिकित्सा	२५८
पक्षातिसार "	२६१
वातातिसार "	२६२
पित्तातिसार "	२६३
रक्तातिसार "	२६४
श्लेष्म-तिसार "	२६५
सज्जिपातातिसारादि चिकित्सा	"
ज्वरातिसार चिकित्सा	२७१
दाकिमाद्यवलेहादि	२७२
शंखोदरादि इसादि	२७६
अतिसार में पथ्यापथ्य	२७७
ग्रहणीनिदान	२७८
ग्रहणी चिकित्सा	२८२
चित्रकादिगुटिकादि	२८४
कर्णायणकावलेहचूर्णादि	२८५
विश्वादि घृत, आसव	२८८
सुवर्णरस पर्यव्यादि	२८९
ग्रहणी रोग में पथ्यापथ्य	२९३
अर्द्धनिदान	२९४
अर्द्धरोगचिकित्सा	२९५
तिलादिमोदकादि	"
कांकायनगुटिका	३००
सूरणादि मोदक	"
अबलेह	३०२
आसव	३०३
चूर्णादि	३०४
विषय	पृष्ठांक
च्वायादि विविध धूत	३०६
लेप-धूपादि	३०८
नित्योदित रसादि	"
अर्श में पथ्यापथ्य	३०९
अश्रिमान्द्यनिदान	"
अश्रिमान्ध्यचिकित्सा	३१०
भस्मकरोगनिदानादि	"
अजीर्णानिदान	३१३
अजीर्णीचिकित्सा	३१६
पथ्यादिचूर्णादि	३१७
सकृतिवनी गुटिकादि	३१९
अबलेह	३२१
यवागृ, काथादि	३२२
अजीर्णकुलकण्ठनगण	३२३
अजीर्णहर रसादि	३२४
विसूचिकादि चिकित्सा	३३०
पथ्यापथ्य	३३१
क्रिमिरोग निदान	३३१
क्रिमिचिकित्सा	३३४
क्रिमप्र रसादि	३३६
क्रिमिरोग में अपथ्य	"
पाण्डुरोगनिदान	३३६
पाण्डुरोग चिकित्सा	३४०
पाण्डुर चूर्ण	"
बटी आदि	३४१
पाण्डुरोग में पथ्यापथ्य	३४७
रक्तपित्तनिदान	३४७
रक्तपित्तचिकित्सा	३५०
रक्तपित्त में पथ्य	३५१
रक्तपित्त घृत, चूर्ण, गुटिकादि	३५६
राजयक्षमानिदान	३६२
राजयक्षमाचिकित्सा	३६६
पथ्यापथ्य	३६७
राजयक्षमानाशक चूर्ण	३६८
राजयक्षमानाशक लौह, गुटिकादि	३७०
उरच्चतनिदान	३७६
उरच्चतचिकित्सा	३७७
कासनिदान	४००

विषय	
साध्यासाध्यता	
कासचिकित्सा	४०२
द्वन्द्वजकासचिकित्सा	४०३
हृतजचिकित्सा	४०६
सामान्यकासचिकित्सा	४०७
पथ्यापथ्य	४०९
हिकानिदान	४२१
हिकाचिकित्सा	४२२
हिकानाशक सामान्य प्रतीकार	४२४
श्वासनिदान	४२६
महाश्वासलच्छण	४२७
उर्ध्वश्वास	४२८
विक्षिप्तश्वास	४२९
तमकश्वास	"
जुद्धश्वास	४३०
श्वासचिकित्सा	४३१
पथ्यापथ्य	४३५
स्वरभेदनिदान	४३६
स्वरभेदचिकित्सा	४३७
पथ्यापथ्य	४३८
अरोचकनिदान	४३९
अरोचकचिकित्सा	४४०
पथ्यापथ्य	४४१
छर्दिनिदान	४४२
छर्दिचिकित्सा	४४३
पथ्यापथ्य	४४४
तृष्णनिदान	४४५
तृष्णचिकित्सा	४४६
वातजाद तृष्णाचिकित्सा	४४७
तृष्ण की सामान्य चिकित्सा	४४८
पथ्यापथ्य	४४९
मूर्ढारोगनिदान	४५०
मूर्ढीभ्रमतन्द्रानिदानभेद	४५१
मूर्ढी चिकित्सा	४५२
मूर्ढी रोग में पथ्यापथ्य	४५३
पानात्ययनिदान	४५४
पानात्ययादि-चिकित्सा	४५५

पृष्ठाङ्क	विषय
४०२	पथ्यापथ्य
४०३	दाहनिदान
४०६	दाह-चिकित्सा
४०७	पथ्यापथ्य
४०९	उन्मादनिदान
४२१	पथ्यापथ्य
४२२	भूतोन्मादनिदान
४२४	भूतोन्माद-चिकित्सा
४२६	अपस्मारनिदान
४२८	अपस्मार-चिकित्सा
४२९	पथ्यापथ्य
"	वातव्याधिनिदान
४३०	आज्ञेयकदिरोग
४३१	वातव्याधि में नहीं कहे गये वात-
४३५	रोगों का संग्रह
४३६	वातव्याधि-चिकित्सा
४३७	अस्ती प्रकार के वातरोगों की
४३८	संक्षिप्त चिकित्सा
४३९	हतुग्रहादि वातरोग-चिकित्सा
४४०	सभी वातरोगों की समान्य
४४१	चिकित्सा
४४२	वातनाशक तेलादि
४४३	पथ्यापथ्य
४४४	वातरक्तनिदान
४४५	वातरक्त-चिकित्सा
४४६	वातरक्त तेलादि
४४७	पथ्यापथ्य
४४८	उरुस्तम्भनिदान
४४९	उरुस्तम्भचिकित्सा
४५०	स्वेदलेपनसेचनादि
४५१	पथ्यापथ्य
४५२	आमवातनिदान
४५३	साध्यासाध्यता
४५४	आमवातचिकित्सा
४५५	धूतकल्कावलेपनादि
४५६	पथ्यापथ्य
४५७	पथ्यापथ्य
४५८	आमवातनिदान
४५९	साध्यासाध्यता
४६०	आमवातचिकित्सा
४६१	धूतकल्कावलेपनादि
४६२	पथ्यापथ्य
४६३	पथ्यापथ्य
४६४	आमवातनिदान
४६५	साध्यासाध्यता
४६६	आमवातचिकित्सा
४६७	धूतकल्कावलेपनादि
४६८	पथ्यापथ्य
४६९	आमवातनिदान
४७०	साध्यासाध्यता
४७१	आमवातचिकित्सा
४७२	धूतकल्कावलेपनादि
४७३	पथ्यापथ्य

उत्तरार्धगत-विषयसूची

पृष्ठाङ्क	विषय
५	मृतक्त्वाध्यनिदान
"	मुत्राकृच्छ्रचिकित्सा
"	पित्तजादिमृतकृच्छ्रचिकित्सा
"	शुक्रविवर्धन
"	शुक्राद्धिघातज
"	अश्मरीजन्म
"	वायातनिदान
"	मूत्राशातचिकित्सा
"	पथ्यापथ्य
"	अश्मरीनिदान
"	अश्मरीचिकित्सा
"	पथ्यापथ्य
"	प्रमेहनिदान
"	प्रमेह चिकित्सा
"	कफजादिप्रमेह चिकित्सा
"	सामान्यमेह
"	पथ्यापथ्य
"	बहुमूत्रनिदान
"	बहुमूत्रचिकित्सा
"	मेदोरोगनिदान
"	मेदोरोगचिकित्सा
"	पथ्यापथ्य
"	गुल्मनिदान
"	गुल्म चिकित्सा
"	मातुलुकादियोग
"	पथ्यापथ्य
"	पित्तगुल्म चिकित्सा
"	कफगुल्म
"	त्रिदोषजादिगुल्मचिकित्सा
"	गुल्मसामान्य
"	हृद्रोगनिदान
"	हृद्रोगचिकित्सा
"	सामान्यहृद्रोगचिकित्सा
"	उरोग्रहनिदान
"	उरोग्रहचिकित्सा
"	सर्वोदर
"	कफोदर
"	सज्जिपातोदर
"	प्लीहोदर
"	यज्ञदूदर
"	चरुगुहोदर
"	सर्वोदर
"	पथ्यापथ्य

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
शकुन्यादि ग्रहसुष्टु वालचिकित्सा	४४९	शानविष चिकित्सा	४७५
बलि, मन्त्र पाठादि	४५२	सामान्यविष चिकित्सा	४७६
पथ्यापथ्य	४५७	बाजीकरणाधिकार	४७८
विषधिकार	"	रतिद्वृद्धिकरमोदकादि	४८५
विषचिकित्सा	"	ध्वजवृद्धिकरणयोग	४९३
जंगमविषचिकित्सा	४६८	वीर्यस्तंभवटी	४९५
मन्त्र	४७०	रसवैकुत्तियोग	४६६
दूषी पित्त चिकित्सा	"	रसायनाधिकार	४६८
आस्तुविष "	४७२	गन्धकरसायन	५०१
बृशिकविष "	४७३	रोगनुसार अमुपान	५०२
मन्त्र	४७४	अमुपान के गुण	५०४
लूटा, भंडक आदि विष चिकित्सा	"	अन्यथकार का आशिष	"

पूर्वार्धगतप्रमुखविषयाणामकारायनुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठांकः	विषयाः	पृष्ठांकः
अग्निपान्थनिदानम्	३०९	केशरमामगुणाः	११५
अग्निमान्यचिकित्सा	३१०	किमिनिदानम्	१२१
अजीर्णनिदानम्	३१३	किमिचिकित्सा	१२४
अजीर्णचिकित्सा	३११	गुहगुणाः	१११
अज्ञवैष्णवनिदाना	१	गुहचीसत्त्वगुणाः	११८
अनिमारनिदानम्	२५४	ग्रहणीचिकित्सितम्	२८१
अनिदारचिकित्सा	२५७	ग्रहणीनिदानम्	२७८
अपस्मारनिदानम्	४९७	घृतगुणाः	१०५
अपस्मारचिकित्सा	४९८	चतुरुणम्	११३
अभाववर्गः	१७१	चन्दनम्	११७
अस्थक्रद्विषिः	६०	छर्दिचिकित्सा	४४७
अरोचकचिकित्सा	४४१	जिह्वापरीक्षा	४५
अरोचकनिदानम्	४४०	जवरनिदानम्	१८३
अर्शचिकित्सा	२९९	जवरचिकित्सा	१९५
अर्जोगोगनिदानम्	२९४	तक्षगुणाः	१०२
अष्टुगुणमण्डः	५८	तमासुगुणाः	५०
आनूपमामगुणाः	५६४	तमासुपश्चगुणाः	५०
आमवातनिदानम्	५६६	तृष्णानिदानम्	४५७
आमवातचिकित्सा	५६८	तृष्णाचिकित्सा	४६०
आमव्याखिलक्षणम्	१९	तेलगुणाः	१०७
आर्यविंचारः	५१	तेलानि	२३६
आरोग्यलक्षणम्	२०	त्रिकुड़	११३
आस्थपरीक्षा	१५	विजातचतुर्जाति	११२
इच्छगुणाः	१०१	विफला	११२
उन्मादनिदानम्	४८५	दधिगुणाः	१०१
उन्मादचिकित्सा	४८८	दम्तधावनप्रकारः	५६
उरःकृतनिदानम्	३१६	दशमूलकम्	११४
उरःकृतचिकित्सा	३१७	दाहगिदानम्	४७९
उच्चाजलगुणाः	१३	दाहचिकित्सा	४८०
उच्चाहुरधगुणाः	९८	दिनचर्या	५५
ऊरस्तम्भनिदानम्	५६०	दुर्घटगुणाः	१६
ऊरस्तम्भचिकित्सा	५६१	दृष्टपरीक्षा	३
ऋतुचर्या	८९	दृष्टपरीक्षा	१४
ओषधाद्यजीर्णोऽस्थ ग्राहाग्राहात्वं	२०१	देशाः	१६
कन्धगुणाः	२८	दोषत्रयकर्माणि	१६
कालज्ञानम्	१५	दोषव्यवहारम्	१८
कार्यनिदानम्	४००	धात्वादीनां लड्जशोधनमारणगुणाः	१२७
कामलारोगचिकित्सा	३४३	धान्यादिगुणाः	३५
कासचिकित्सा	४०३		

विषया:	
नवनीतगुणाः	१०४
नस्यादिविधिः	५८
नाडीपरीक्षा	५
नित्यप्रवृत्तिग्रकारः	५५
पञ्चकोलम्	११३
पञ्चसुग्रन्थिः	११६
परिणामशूलनिदानम्	११९
पर्पंगुणाः	६१
पाकः	२४९
पाण्डुरोगनिदानम्	३३६
पाण्डुरोगचिकित्सा	३४०
पादचतुष्टम्	३
पानकानि	६४
पानात्यथपरमदपानाजीर्णपानविभ्रम-	
निदानम्	
पानात्यथादीनां चिकित्सा	
पृथुकाद्यः	४७१
पायसगुणाः	६२
पोलिका	६२
फलानां गुणकथनम्	२५
भरित्यम् (भरता)	१००
भिषक् प्रशंसा	१
भूतोन्मादनिदानम्	४९२
भूतोन्मादचिकित्सा	४९५
भोजनक्रमः	६७
मरस्यादिलजन्तवः	५४
मधुगुणाः	१०८
मलपरीक्षा	१२
मांसगुणाः	५१
मानपरिभाषा	२१
मुद्रतपञ्चलक्षणः	६१
मूत्रपरीक्षा	१०
मूत्राहृकगुणाः	१११
सूख्यानिदानम्	४६६
मूच्छर्चिकित्सा	४६८
यद्यकदर्मः	११५
यूषगुणाः	५९
रक्तपित्तनिदानम्	३४८
रक्तपित्तचिकित्सा	३५०
रक्तानां शोधनमारगे	१६१

विषया:	
रसाला	५०
रागखाण्डवाः	४९
राजयचमनिदानम्	२६२
राजयचमचिकित्सा	२६६
रात्रिचर्या	८२
रूपपरीक्षा	१३
रोगिणामहस्थाननिरीक्षणम्	५
बटकगुणाः	८३
वयोविचारः	१९
वातरकनिदानम्	५४९
वातरकचिकित्सा	५५२
वातव्याधिनिदानम्	५०२
वातव्याधिचिकित्सा	५१५
वातादिवोषग्रन्थिः	१७
वातादिप्रक्रोपः	१७
वेस्वारः	५१
व्यायामः	५९
श्वसादिगुणा	५६
शकुनाः	४
शब्दपरीक्षा	१३
शब्दपरिभाषा	१८३
शक्तरागुणाः	१११
शक्तादिगुणा	२५
शीतलजलगुणाः	९३
शृतशीतगुणाः	९५
शेषरक्षशोधनमारणानि	१६३
शासनिदानम्	४२७
शासचिकित्सा	४२१
घृतसाः	११६
सप्तघातुगतजवराणां लक्षणम्	४४८
सिद्धाचारियाकगुणाः	५७
सूपगुणाः	६०
स्वप्नपरीक्षा	१२
स्नानप्रकारः	६१
स्वरनेदनिदानम्	४२६
स्वरभेदचिकित्सा	४३७
स्वर्णमालिनीवसन्तः	२४५
स्वरपायुषो लक्षणानि	५१
हिकानिदानम्	४२२
हिकाचिकित्सा	४२४

उत्तरार्धगतप्रमुखविषयाणामकाराद्यनुक्रमणिका

विषया:	
अग्निदध्वनिनिदानम्	१८५
अग्निदध्वचिकित्सा	१८६
अपचाचिकित्सा	१५२
अम्लपित्तनिदानम्	२३७
अम्लपित्तचिकित्सा	२३९
अबुद्दचिकित्सा	१५५
अशमरीनिदानम्	६८
अशमरीचिकित्सा	७०
आखुविषचिकित्सा	४७२
आनाहनिदान-चिकित्सा	२४-२५
आमशूलचिकित्सा	७
उदरनिदानम्	१०२
उदरचिकित्सा	१०७
उदावर्तनिदानम्	१८
उदावर्त्तचिकित्सा	२०
उपदंशनिदानम्	२००
उपदंशचिकित्सा	२०१
उरोग्रहनिदानम्	४९
उरोग्रहचिकित्सा	५०
कर्णरोगनिदान-चिकित्सा	४१२-४१३
काचोपक्रमः	३७४
कुषनिदानम्	२११
कुषचिकित्सा	२१२
कृष्णगतरोगचिकित्सा	३७६
क्लेष्यचिकित्सा	४८०
क्लेष्यलक्षणम्	४७९
क्षीरदोषचिकित्सा	४४२
कृद्रोगनिदान-चिकित्सा	२६८
गण्डमालापचीचिकित्सा	१४९
गर्भनिवारण-प्रतनविधिः	४०८-४०९
गर्भपातस्योपद्रवाणां चिकित्सा	४११
गलरोगः	२१३
गलगण्डगण्डमालापचीच्युरुद्व-	
निदानम्	१४२
गलगण्डचिकित्सा	१४३
विषया:	
गुविण्या रोगाणां चिकित्सा	४२०
गुलमनिदानम्	२६
गुरमचिकित्सा	२९
ग्रन्थिचिकित्सा	१५३
ग्रहग्रस्तबालरोगाणां चिकित्सा	४४७
जिह्वारोगचिकित्सा	३०४
तालुरोगः	२९२
तालुरोगचिकित्सा	३०५
तिमिरे सामान्यचिकित्सा	३४४
त्रिदोषगुणे वरणविकाशः	३३
दन्तरोगनिदानम्	२४७
दन्तचिकित्सा	३०१
नाडीव्याणनिदानम्	१९२
नाडीव्याचिकित्सा	१९४
नासारोगनिदानम्	३२०
नासारोगाणां चिकित्सा	३२४
नेत्ररोगनिदानम्	३४१
नेत्ररोगाणां चिकित्सा	३६१
पचमरोगी	३५५
परिणामशूलनिदानम्	११
परिणामशूलचिकित्सा	१२
पामाकण्डवादीनां चिकित्सा	२३०
पूतनाग्रहस्तुतचिकित्सा	४५२
प्रतिशयायप्रतीकारः	३२७
प्रदरचिकित्सा	३१७
प्रमेहचिकित्सा	८२
प्रसूतिकारोगाधिकारः	४२६
प्रसूतिकारोगनिदानम्	४२७
बहूमत्रमेहनिदान-चिकित्सा	१६-१७
बालरोगाधिकारः	४३५
बालरोगाणां चिकित्सा	४३८
भगवन्दरनिदानम्	१९५
भगवन्दरचिकित्सा	१९९
भग्नग्रणनिदानम्	१८८
भग्नचिकित्सा	१९०

विषया:	
मसूरिकानिदानम्	
मसूरिकाचिकित्सा	
सुखरोगनिदानानि	२८७
सुखरोगचिकित्सा	
मुष्कान्त्रवृद्धिवर्धमरोगनिदानम्	२९७
मृढगर्भस्य चिकित्सा	१२५
मृत्रकूच्छनिदानम्	२४
मृत्रकूच्छचिकित्सा	५०
मृत्राधातनिदानम्	५२
मृत्राधातचिकित्सा	६१
मेदोरोगनिदानचिकित्सा	६४
मेहनिदानम्	१३-१४
योनिरोगाधिकारः	७५
योनिव्याप्तोगाणां चिकित्सा	४०४
रक्तजलमे शताङ्गादिकलः	४०६
इसवैकृतियोगाः	४१६
इसायनाधिकारः इसायनविविक्षा	४१८
रोगानुस्थारोगांवयस्य नामानि	५०२
धन्धाया गर्भप्रदभेषजम्	४०६
वर्मपदमज्जारोगाणां चिकित्सा	३५२
वाजीकरणवस्तुनि	३८१
वाजीकरणानि	४७९
वाजीकरणस्य लच्छणम्	४८०
वातशुलगर्भचिकित्सा	४७९
विद्विनिदानम्	४२२
विद्विचिकित्सा	४
विशिष्टग्रहजुषानां चिकित्सा	१६१
विसर्पनिदानम्	१६५
विसर्पचिकित्सा	४४८
विषाधिकारः	२४५
विषाधां चिकित्सा	२४७
विषे मन्त्राधिः	४४७
वृद्धिचिकित्सा	१३७
वृश्चिकित्सा	४७४
व्रणशोथनिदानम्	१६८
व्रणशोथचिकित्सा	१७२

पृष्ठाङ्कः	विषया:	पृष्ठाङ्कः
४५९	शकुनिग्रहजुषाचिकित्सा	४५०
४६२	शिरोरोगनिदानम्	५३१
२८७	शिरोरोगाणां चिकित्सा	५३२
२९७	शीतापित्तोदर्दकोठनिदानम्	२३४
१२५	शीतपित्तोदर्दकोठचिकित्सा	२३५
२४	शीतलाधिकारः	२३६
५०	शुक्लभागज्ञारोगाणां चिकित्सा	३५०
५२	शुक्लदोषनिदानम्	३८०
६१	शूलनिदानम्	२०७
६४	शूलचिकित्सा	१
१३-१४	शूलदोषचिकित्सा	४
७५	शोथनिदानम्	२१०
४०४	शोथचिकित्सा	१२१
४०६	शोधनरोगप्रयोगः	१२५
३४	श्लीपदनिदानम्	१७५
४१६	श्लीपदचिकित्सा	१५६
४१८	श्लेष्मगुल्मे तिलादिस्वेदः	१५८
५०२	सद्योब्राननिदानम्	३२
४०६	सद्योब्रागचिकित्सा	१७८
३५२	सन्धिरोगाः	१८२
३८१	सन्धिजानां चिकित्सा	३५६
४७९	समस्तनेत्रज्ञारोगाः	३८३
४८०	समस्तनेत्रोगचिकित्सा	३५८
४७९	समस्तमुखरोगाः	३८४
४२२	सूतिकारोगाधिकारः	२९६
४	सूतिकारोगनिदानचिकित्सा	४२६-४२८
१६१	सोमरोगाधिकारः	४०१
१६५	सोमरोगस्य चिकित्सा	४०२
४४८	स्कन्दापस्मारग्रहचिकित्सा	४४९
२४५	स्तनरोगस्य निदानम्, चिकित्सा च	४२१
२४७	स्त्रायुक्तनिदानम्	४५६
२५२	चीरोगाधिकारः	३९३
४४७	स्त्रीगर्भरोगनिदानम्	४१२
४४७	स्त्रीगर्भरोगचिकित्सा	४१६
१३७	हृद्दोषरोगनिदानम्	४४४
४७४	हृद्दोषोगचिकित्सा	४५

॥ श्रीः ॥

योगरत्नाकरः

‘विद्योतिनी’ हिन्दी भाषाटीकोपेतः

अथ मङ्गलाचरणम्

शिवं हरिं विधातारं तथपतीश्वरसुताम्बुद्धम् । नत्वा समरतप्रयृहशान्तये मङ्गलाचरणम् ॥१॥
रत्नाकरैकतनयेशमुपस्य योगरत्नाकरस्य विवृतिं भिषजां प्रियस्य ।

लक्ष्मीपतिः पशुपतिप्रियतापरीतो विद्योतिनीं ननु यथामति सन्तनोति ॥

शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इनकी पक्षियां तथा इनके पुत्र और गुरु को नमरकार करके सम्पूर्ण रोगों की शान्ति के लिये तथा जन-समूह के मङ्गल के लिये वह चिकित्सा का ग्रन्थ लिख रहा हूँ ॥ १ ॥

अथ वैद्य-प्रशंसादिः

अज्ञादो अलदुश्चैव आत्मरस्य चिकित्सकः । अथरते स्वर्गमायान्ति विना यज्ञेन भारत ! ॥२॥
भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन ! अब देनेवाला, जल देनेवाला और रोग से पीड़ित की चिकित्सा करनेवाला, ये तीनों बिना वज्रादि किये ही स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

रोगपङ्कार्णवे मङ्गलः समुद्धरते नरम् । करत्नेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥३॥

रोगस्त्रूपी पङ्कसमूह में फंसे हुए मनुष्य का जो मनुष्य उद्धार करता है अर्थात् रोगसुक्त करता है, उस मनुष्य ने कौन सा धर्म नहीं किया और कौन-सी पूजा नहीं प्राप्त की ॥ ३ ॥

वैद्यः पुरोहितो मन्त्री दैवज्ञश्च चतुर्थकः । द्रष्टव्यः प्रातरेवैते नित्यं श्रेयोचिवृद्धये ॥ ४ ॥

वैद्य, पुरोहित, राजमन्त्री तथा चौथा ज्योतिषी इन लोगों को प्रातःकाल नित्य देखने से श्री आदि की वृद्धि होती है ॥ ४ ॥

गतश्रीर्गणकान् द्वैष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् । गतश्रीश गतायुश्च ब्राह्मणान् द्वैष्टि भारत ! ॥

हे अर्जुन ! जिसकी श्री नष्ट हो गयी है वह ज्योतिषियों से देष करता है, तथा जिसकी आयु श्रीण हो गयी है वह चिकित्सकों से देष करता है और जिसकी श्री और आयु दोनों नष्ट हो गई है वह ब्राह्मणों से देष करता है ॥ ५ ॥

ज्योतिषं द्यवहारं च प्रायश्चित्तं चिकित्सम् । विना शास्त्रे यो ब्रूयात्तमाद्यन्तवातकम् ॥६॥

ज्योतिष, द्यवहार, प्रायश्चित्त और चिकित्सा इनको जो विना शास्त्र पढ़े बोलते था करते हैं उनको ब्राह्मणातक कहा जाता है ॥ ६ ॥

क्षचिद्वर्मः क्षचिन्मैद्र्यी वृद्धचिद्र्दर्थः क्षचिद्वर्मः क्षचित्यासः क्षचिद्वर्मेति चिकित्सा नावित निष्फलः ॥

चिकित्सा करने से क्या लाभ होता है उसे कहते हैं—वैद्य को चिकित्सा करने से कहीं पर धर्म, कहीं पर मित्रता, कहीं पर द्रव्यलाभ, कहीं पर यश और कहीं पर चिकित्सा करने के अभ्यास का ही लाभ होता है । इसलिये चिकित्सा कभी भी निष्फल नहीं होती है ॥ ७ ॥

जन्मान्तरकृतं पा । व्याख्यिरुपेण वाधते । तच्छान्तिरौषधैर्दैनैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥ ८ ॥

पूर्वजन्म में किया हुआ पाप रोग का रूप धारण कर पीड़ित करता है, उसकी शान्ति औषध, दान, जप, होम और देवता के आराधन-पूजन से होती है ॥ ८ ॥

व्याधेस्त्रवैष्णवान्वेदनायाश्च निप्रहः । एतद्वैष्णव्य वैष्णवं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ९ ॥

वैद्य का कथा कर्तव्य कर्म है उसे कहते हैं—रोग के यथार्थरूप का ज्ञान अर्थात् रोग को पूर्ण रूप से समझना तथा रोगी के कष्ट को दूर करना, यही वैद्य का यथार्थ कर्तव्य है । वैद्य आयु का खामी नहीं है—अर्थात् आयु के हटाने में समर्थ नहीं है ॥ ९ ॥

अग्निमूलं बलं पुंसां रेतोमूलं च जीवितम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चक्षिष्युक्तं च रचयेत् ॥ १० ॥

शरीर की प्रधान वस्तु क्या है उसे कहते हैं—कि शारीरिक बल का मूल अभि (पाचकाभि) है और जीवन का मूल वीर्य है, इसलिये जितना भी प्रयत्न हो सके सब प्रयत्न करके अभि (पाचकाभि) और शुक्र की रक्षा करनी चाहिये ॥ १० ॥

आतमाग्रिमिकरस्यस्तु नोपेष्योऽपतया गदः । यद्विशक्षविष्यैस्तुलयः स्वरपोऽपि विकरोत्यसौ ॥

रोग के उत्पन्न होते ही उसकी चिकित्सा करनी चाहिये, रोग को थोड़ा (छोटा वा तुच्छ) समझ कर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । क्योंकि—वह रोग अभि, (शुद्ध), शरू तथा विष के तुल्य होता है अस्तु थोड़ा होने पर भी विशेष विकार उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

निष्ठृतोऽपि पुनर्वर्याभिः स्वरपेनाऽस्याति हेतुना । दोषेसर्वाङ्गीकृते देहे शेषः सूचम इवानलः ॥

निष्ठृत होने पर भी रोग पुनः थोड़े ही कारणों से बढ़ जाता है, क्योंकि दोषों से देह में बढ़ने का मार्ग बना हुआ रहने से जिस प्रकार बच्ची हुई थोड़ी सी अभि बढ़ जाती है उसी प्रकार रोग भी ॥

प्रावस्त्रकण्ठगतप्राणस्तावस्कार्या प्रतिक्रिया । कदाचिहैवयोगेन हृष्टरिष्टोऽपि जीवति ॥ १२ ॥

जब तक कण्ठ में प्राण रहे तब तक औषधादि उपचार करना चाहिये, क्योंकि कभी २ इश्वर की कृपा से जिसका अरिष्ट देखा जाता है वह भी जीवित हो जाता है ॥ १२ ॥

यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाध्याधिचिकित्सितः । न शम्भं याति यो ध्याविः स ज्ञेयः कर्मजो तु धः ॥

कर्मज व्याधि—शास्त्रानुसार जिसका निर्णय हुआ है और उसी निर्णीत व्याधि की चिकित्सा भी की गयी है किर भी जो व्याधि नहीं शान्ति होती है उसको बुद्धिमान ‘कर्मज व्याधि’ जानें ॥

पुण्यैश्च भेषजैः शान्तास्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः । विज्ञेया दोषजास्वन्ये केवला वाऽथ सङ्कराः ॥

औषधं मङ्गलं मन्त्रो ह्यान्याश्च विविधाः कियाः । यस्यायुस्तस्य सिद्ध्यन्ति न सिद्ध्यन्ति गतायुषिः ॥

कर्मदोषज व्याधि—दान-पुण्यादि से तथा औषधियों से जो रोग शान्त हो उसे कर्मदोषज व्याधि जानना चाहिये और अस्त्र को केवल दोषज जानना चाहिये अथवा मिश्रित योगों-औषध, मंगल-मन्त्रादि तथा अन्यान्य विविध क्रियाओं से जो शान्त हो उसे मिश्रित जानना चाहिये । वह जिसकी आयु शेष रहती है उसके लिये साध्य तथा गतायुष के लिये असाध्य है ॥ १५-१६ ॥

विकारनामाकृशलो न जिहीयाकदाचन । न हि सर्वविकाराणां नामलोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥

यदि किसी वैद्य की सम्पूर्ण रोगों का नाम नहीं ज्ञात हो तो उसे लजित नहीं होना चाहिए । क्योंकि सम्पूर्ण रोगों की स्थिति नाम पर ही नियत नहीं है ॥ १७ ॥

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्स्माद्बृद्धच्छणः । अनुकूल्यपि दोषाणां लिङ्गैर्याभिसुपाचरेत् ॥

विना दोषों के कोई रोग नहीं होता है, इस लिये चिकित्सक को चाहिये कि जो रोग नहीं वर्णित है उनकी चिकित्सा दोषों के लक्षणों से ही करे ॥ १८ ॥

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्म भिषक्षकुर्यात्ज्ञानपूर्वं विचक्षणः ॥ १९ ॥

बुद्धिमान वैद्य को पहले रोग की परीक्षा करनी चाहिये कि वह कौन सा रोग है, तत्पश्चात् औषध का विचार करना चाहिये कि कौन औषध इसके उपयुक्त है, इसके बाद तब ज्ञान-पूर्वक औषध-दानादि कर्म प्रारम्भ करना चाहिये ॥ १९ ॥

मूर्खश्चैरस्तथा भ्लेच्छो व्रह्माणो भस्त्यधातकी । द्वेषां च ग्रामकृत्य वज्रको मांसविक्रीयी ॥ २० ॥

एतांसु व्याधिना ग्रस्ताश्च कुर्यात्क्षमनक्रियाम् । तेषां जीवासिसंसारात् वैद्यो भवति पापभाक् ॥

किन २ लोगों की चिकित्सा का निषेध है उसे कहते हैं—मूर्ख, चोर, म्लेच्छ, व्रह्मातकी, मछली भारने वाला, द्वेष करने वाला, गाँव की कुट्टरी (चुगलखोरी) करने वाला, ठग और मांस बेचने वाला, इन लोगों के व्याधि-से ग्रस्त होने पर, अर्थात् रोगी होने पर शमन अर्थात् रोगनाशक किया नहीं करनी चाहिये । इन लोगों को जीवदान अर्थात् रोग से मुक्त करने वाला वैद्य पाप का भागी होता है ॥ २०-२१ ॥

बृशनस्तपानप्रश्नः परीक्षेत च रोगिणम् । रोगं निष्कानप्राप्तलघुणोपशायासिभिः ॥ २२ ॥

रोग-परीक्षा का नियम—देखकर अर्थात्-मुख, नेत्र, मूत्र, पुरोषादि देखकर, स्पर्शकर अर्थात् शारीरिक कष्टादि^१ वर्ण तथा नाड्यादि देखकर, प्रश्न से अर्थात् उसके विचारादि एवं अन्यान्य कष्टादि पूछकर रोग की परीक्षा करनी चाहिये और निदान, पूर्वरूप, रूप, उपस्थय और सम्प्राप्ति से रोग की परीक्षा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

अथ पादचतुष्टयम् ।

भिषग्द्रव्याध्युपस्थात् रोगी पादचतुष्टयम् । विकिरितस्य निर्दिष्टं प्रयोकं तच्चतुरुणम् ॥ ३३ ॥

अब पादचतुष्टय कहते हैं—चिकित्सक द्रव्य अर्थात् औषध, परिचारक और रोगी ये ही चिकित्सा के पादचतुष्टय कहलाते हैं । तथा प्रत्येक के चार-चार गुण हैं ॥ ३ ॥

दृष्टस्तीर्थात्तासाधार्थो दृष्टकर्म शुचिभिर्षक् । दृष्टकर्म बृहगुणं संभप्तं योग्यमौषधम् ॥ ३ ॥

चिकित्सक के चार गुण—चुहुर, गुरु के निकट शाल का अर्थ अच्छी तरह संमझा हुआ, कर्म अर्थात् औषध-निर्माण, रोग-परीक्षादि कर्म किया और देखा हुआ और पवित्र ऐसा चार गुण वाला चिकित्सक, द्रव्य (औषध) के चार गुण—बहुत योगों से बनाए, बहुत गुणों वाली, सुनिर्माण से घुर्स और रोग-निवारण के योग्य इन चार गुणों वाली औषध ॥ ३ ॥

अनुरक्तः शुचिर्दंको बुद्धिमान् परिचारकः । आद्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः सत्त्ववानपि ॥ ३ ॥

परिचारक के चार गुण—प्रेम करने वाला, पवित्र, चुहुर अर्थात् कियाकुशल और बुद्धिमान ऐसा चार गुण वाला परिचारक । रोगी के चार गुण—धनी, वैद्य के वश में रहने वाला, समझाने वाला और शक्तिशाली अर्थात् दृढ़ ऐसा चार गुण वाला रोगी ॥ ३ ॥

अथ दूतपरीक्षा ।

दूतस्य प्रश्नाद्वयोगसंख्या त्रिष्ट्राणम् भाज्या प्रवदन्ति शेषे ।

समे च मृत्युर्विषमे च नैव विलोक्य वैद्यः खलु प्रश्नकाले ॥ १ ॥

दूत परीक्षा—अब दूत को आने पर उसके प्रश्न से रोगी के शुभाशुभ लक्षण जानने की विधि कह रहे हैं—दूत के प्रश्न के अक्षरों की संख्या को जोड़कर और तीन से गुण करके आठ से भाग देना चाहिये और जो सम शेष हो तब रोगी की मृत्यु और विषम हो तो नहीं मृत्यु होगी ऐसा वैद्यों को विचारने लिये मुनि लोग कहते हैं ॥ १ ॥

(१) कष्टादि से उष्ण, शीत तथा आद्रै शरीर का ज्ञान स्पर्श से करना चाहिये ।

योगरत्नाकरः ।

दूतो इक्किष्याय कृष्णवसनो दण्डी जटी सुपिण्डत-
स्तेलाभ्युक्तवपुर्भयंकरवचा दीनोऽप्रपुर्णे शृणः ।

भरमाङ्गारक्षालपाशमुशाली सूर्योऽस्त्वगे व्याकुलो
यः शून्यं रघ्वसंस्थितो गदवतो दूतस्तु कालानकः ॥

निधिद दूत का लक्षण कहते हैं—दूत-लाल, कधाय (भगवा) और काला वस्त्र पहने हो, ढंडा लिये हो, जटा बाला हो, मुण्डन करवी हो, शंरीर में तेल लगाये हो, भयक्खर वचन बोलने बाला हो, बहुत दीन हो, आँख में आँसू भरे हो, भस्म लगाये हो, अंगरे लिये हो, खपड़ेई लिये हो, हाथ में फैसली लिये हो, मूल लिये हो, सूर्य के अस्त होने के समय आया हो, व्याकुल हो और वैद्य के पास आकर चुपचाप होकर खड़ा रह जावे ऐसा (दूत) रोगी के लिये कालानि के समान अर्थात् अशुभसूचक है ॥ २ ॥

स्वज्ञातिः श्वेतवस्त्रो द्रविणयुतकरः च्छियो ब्राह्मणो वा,

ताम्बूलास्यः सुशीलः शुभवच्चनवदः स्यात्प्रशस्तोऽश्च दूतः ॥ ३ ॥

अच्छे दूत के लक्षण—दूत अपनी जाति का हो, शैत वस्त्र पहने हो, हाथ में द्रव्य लिये हो, क्षत्रिय हो अथवा ब्राह्मण हो, सुख में पान धारण किये अर्थात् पान खाये हो, सुशील हो, और शुभसूचक वचन कहने बाला हो ऐसा (दूत) प्रशरत अर्थात् लक्षण बाला कहा जाता है ॥ ३ ॥

सन्ध्याकाले तथा रात्रौ द्वानभोजनसंक्षेपे । विपरीतेषु कालेषु न गच्छेत्तत्र दुष्किमान् ॥४॥

वैद्य के रोगी के यहाँ जाने का निधिद समय—सायंकाल और रात्रि में, खान और भोजन के समय तथा अन्यान्य विपरीत समय में उद्धिमान वैद्य रोगी के यहाँ न जावे ॥ ४ ॥

न भुप्त्याद्रोगिसदने न भुक्तीयास्त्वद्याच्चन । विनाह्नानं न गच्छेत्त न ब्रायान्मरणं भिषक् ॥५॥

वैद्य के लिये रोगी के यहाँ का निधिद कार्य—वैद्य रोगी के घर नहीं सोवे, कभी रोगी के घर नहीं खावे, बिना बुलाये नहीं जावे और रोगी की मृत्यु (उसके घर वालों से) नहीं कहे ॥ ५ ॥

अथ शकुनः ।

छुत्रं गोद्विजकन्यकामिषसुरापणाङ्गनारेचनं, माङ्गल्यं नृपवाजिवारणदधिस्तोत्राद्विपाठः शुभः ।
सङ्कीर्तं करुणाभयानकमहारौद्रेविहीनं इमर-क्लीडाभावमनोहरं किमपि चेद्वालातिस्थेषिगिनः ॥

रोगी के यहाँ जाते समय वैद्य के शुभ शकुन का लक्षण—छाता, गौ, ब्राह्मण, कन्या, मांस, मदिरा, वेश्या, गोरोचन, करणा, भयानकता तथा उत्कटता रहित संगीत, कामरीडा-भाव से सुन्दर कोई भी व्यक्ति तथा बाला और अच्छे योगियों को यात्रा के समय देखकर वैद्य का रोगी के यहाँ जाना शुभ है ॥ १ ॥

मार्गच्छेदोऽहिमाजारिगोधासरटवानरैः । रोगद्वावाऽभिनिर्गच्छेन्मङ्गलं तदमङ्गलम् ॥ २ ॥

सर्प, विल्ली, गोहटी, गिरगिट और बानर इन सर्वों का रास्ता काटना शुभ है—रोगी के द्वार पर मंगल अमंगल है ॥ २ ॥

पुंनामा वामतः श्रेष्ठो गजखेचरवजितः । खीनामा दक्षिणे श्रेष्ठः शिवाश्यामाविवर्जितः ॥ ३ ॥

रोगी के घर जाते समय हथी और गदहा को छोड़कर जितने जीव हैं सबका पुरुष व्रेणी का बाये होना शुभ है और शिवा (शृगाली), श्यामा पक्षी को छोड़कर शेष पक्षी खी जाति का दाहिने होना शुभ है ॥ ३ ॥

दुर्गा काकस्तथा श्वान उल्कुस्तरजम्बुकाः । निर्गमे वामतः श्रेष्ठः प्रवेश दक्षिणाः शुभाः ॥४॥

वैद्य के लिये दुर्गा (श्यामा पक्षी), काक, कुत्ता, उल्क, गदहा और सियार का निकलते समय बाये होना शुभ है और प्रवेश करते समय दाहिने होना शुभ है ॥ ४ ॥

नाडीपरीक्षा ।

अथ रोगिणामष्टस्थाननिरीक्षणम् ।

शोगाकान्तशरीरस्य स्थानान्त्यष्टौ निरीक्षयेत् । नाडीं मूत्रं मलं जिह्वां शब्दं स्पर्शं द्वाग्रहीती ॥

रोगियों के आठ स्थानों का निरीक्षण करने का वचन—रोग से पीड़ित मनुष्य के नाडी, मूत्र, पुरीष, जिह्वा, शब्द, स्पर्श अर्थात् व्यव्याप्ति इति और आकृति इन आठ स्थानों की परीक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥

दोषकोपेष्वनेऽस्य पूर्वं नाडीं परीक्षयत् । अन्ते चाऽऽद्वै स्थितिस्तस्य विज्ञेया भिषजा द्विटम् ॥

दोष के कुपित होने में अल्प में वा अधिक में पहले नाडी की परीक्षा कर रोग के आदि और अन्त में नाडी की स्थिति का पूर्ण ज्ञान वैद्य करे ॥ २ ॥

यथा वीणागता तन्त्री सर्वत्रिगामन्प्रभाषते । तथा हस्तगता नाडीं सर्वत्रोगान्प्रकाशयेत् ॥३॥

जिस प्रकार वीणा में लगी हुई तारे सब रागों को कहती हैं उसी प्रकार हाथ में लगी हुई नाडियां सब रोगों को प्रकट कर देती हैं ॥ ३ ॥

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता भलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥४॥

सब रोगों के होने में प्रधान कारण कुपित हुए वातादिक मलं ही हैं, और उनके (मलों के) कुपित होने के कारण अनेक प्रकार के अहितसेवन अर्थात् नियमोलंघन हैं ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याद्युपलब्धयते । आदौ सर्वेषु रोगेषु नाडीजिह्वाद्विक्षमूलतः ॥५॥

परीक्षां कारयद्वैष्टः पश्चाद्वेष्टः चिकित्सयेत् ।

समय पर रोग भी रोग के निदानार्थकारी अर्थात् रोग के हेतु हो जाते हैं। सर्वप्रथम सब रोगों में वैद्य, नाडी, जिह्वा, आँख और **मूत्राद्विदि** को परीक्षा करे, इसके पश्चात् रोगको चिकित्सा करे ॥

नाड्या मूत्रस्य जिह्वाया लक्षणं यो न विन्दति । मारयत्याशु वै जन्तुं स वैद्यो न यशो भजेत् ॥

जो वैद्य नाडी, मूत्र और जिह्वा आदि का लक्षण नहीं जानता है वह मनुष्य को (रोगी को) शीघ्र मार डालता है और वह वैद्य यश को नहीं प्राप्त कर पाता ॥ ६ ॥

लक्ष्यित्वा देशकालौ ज्ञात्वा रोगवलाब्धलम् ॥ ७ ॥

चिकित्सामारभेद्वैष्टो यशः कीर्तिमवाण्युतात् ॥ ८ ॥

जो वैद्य देश और काल का लक्ष्य रखकर रोग के बलावल का ज्ञान करके चिकित्सा करना प्रारम्भ करता है वह यश और कीर्ति को प्राप्त होता है ॥ ७-८ ॥

अथ नाडीपरीक्षा ।

नाडीमङ्गुष्ठमूलाधः स्पृशेहितिगो करे । ज्ञानार्थं रोगिणो वैद्यो निजदिव्यपाणिना ॥ ९ ॥

नाडी-परीक्षा—वैद्य रोगी के रोग-ज्ञान के लिये अपने दाहिने हाथ से रोगी के दाहिने हाथ के अंगूठे के नीचे जड़ में स्पर्श करे अर्थात् नाडीं देखे ॥ १ ॥

स्थिरचित्तः प्रशान्तात्मा ममसा च विशारदः । स्पृशेद्वङ्गुलिभिन्नाडीं जानीयाद्विषिणे करे ॥१०॥

वैद्य रोगी के दाहिने हाथ की नाडी को स्थिरचित्त, ज्ञान-आत्मा और मन से अंगुलियों द्वारा संपर्श करे ॥ २ ॥

प्रायः स्फुटा भवति वामकरे वधूर्नां पुर्सीं च दक्षिणकरे तदियं परीक्षा ।

ईषद्विनामितकरं वितताङ्गुलीकं बाहुं प्रमार्थं रहितं परिपीडनेन ॥ ३ ॥

ईषद्विनामितकरं वितताङ्गुलीकं बाहुं प्रमार्थं रहितं परिपीडनेन ॥ ३ ॥

ध्वङ्गुष्ठमूलपरिपिण्डमागमध्ये नाडीं प्रभातसमये प्रहरं परीक्ष्य ॥ ४ ॥

खीं के बाये और पुरुष के दाहिने हाथ की नाडी पकड़ने का विधान-प्रायः करके खीं को

बांयें हाथ की नाड़ी स्पूट अर्थात् प्रकट रहती है और पुरुषों के दाहिने हाथ की नाड़ी स्पूट रहती है इस लिये खियों के बाँयें और पुरुषों के दाहिने हाथ की नाड़ी देखनी चाहिये । नाड़ी देखने की विधि—रोगी का थोड़ा नवा हुआ हाथ और फैलाई हुई अंगुलियाँ हों और बौंह फैला हुआ तथा बिना कष्ट का हो अर्थात् फैलाये हुए नाड़ी दिखाने वाले हाथ में कोई कष्ट न हो । और पहुंचा थोड़ा सा हाथ के बायें भाग में झुका हो और हाथ की अंगुलियों की सन्धियाँ भी प्रसारित रहें ऐसे किये हुए रोगी के हाथ के अंगठे की जड़ के नीचे बीच में प्रातःकाल में एक पहर तक वैद्य नाड़ी परीक्षा करें ॥ ३-४ ॥

बारप्रयं परीक्षेत धृत्वा धृत्वा विमोचयेत् । विमृश्य बहुधा बुद्ध्या रोगव्यक्ति विनिर्दिशेत् ॥
वैद्य नाड़ी की परीक्षा लीन बार करे, नाड़ी पकड़-पकड़कर छोड़ता जावे और अपने मन में बुद्धि से पूर्ण विचार कर रीग को निश्चित करे ॥ ५ ॥

अकुलिग्रितये स्पृहा क्षमादीपत्रयोऽन्नाम् । मन्दां मध्यगति तीर्णां ग्रिभिर्देवैसु लक्ष्येत् ॥६॥
वैद्य अपनी तीन अंगुलियों से नाड़ी पकड़ कर क्रम से बात-पिचादि तीनों दोषों से होने वाले दोष तथा नाड़ी की मन्द, मध्य और तीर्ण गति तथा तीनों दोषों वाली गति का लक्ष्य (कल्पना) करे ॥ ६ ॥

बातं पितं कफं द्वन्द्वं त्रितयं साक्षिपातिकम् । साध्यासाध्यविवेकं च सर्वं नाडी प्रकाशयेत् ॥७॥
बात, पित, कफ, द्वन्द्वज अर्थात् दो मिले हुए दोषों से और तीनों दोषों से मिले साक्षिपातिक तथा रोग की साध्यासाध्य अवस्था ये सभी नाडी प्रकाशित करती है अर्थात् नाडी देखने से इन सर्वों का ज्ञान ही जाता है ॥ ७ ॥

ज्ञायुर्नाडी ततो हंसी धमनी धरणी धरा । तन्तुकी जीवनशाना शब्दाः पर्यायवाचकाः ॥८॥
नाडी के पर्यायवाची शब्द—स्नायु, नाडी, हंसी, धमनी, धरणी, धरा, तन्तुकी और जीवन-
शाना ये सब नाडी के पर्यायवाची शब्द हैं ॥ ८ ॥

स्थानात्मक रूप वाली कला का सदृश होता है।
स्थायित्वस्य भुक्तस्य तथा स्थावगाहिनः। चृत्त्वार्तस्य सुप्रस्य नादी सम्बन्धं न बुध्यते ॥१॥
 किन्तु २ लोगों की नाड़ी नहीं देखनी चाहिये—तुरत् स्नान किये हुए की, भोजन किये हुए की और तैल मर्दन किये हुए की, भूखे हुए की, प्यासे हुए की, सोये हुए की व सोकर तुरत उठे हुए की नाड़ी अच्छी तरह से नहीं मालूम पड़ती है। अतः इसे नहीं देखना चाहिये ॥ १ ॥

अङ्गुष्ठमूलभागे या धमनी जीवसाक्षिणी । तज्ज्ञेष्टथा सुखं द्रुःखं ज्ञेयं कायस्य परिदृतैः ॥१०॥
वैद्य अंगूष्ठे के मूलभाग में स्थित जो नाड़ी इस शरीर की जीवसाक्षिणी है उसकी चेष्टा से अर्थात् उसकी गति से शरीर के सुख-द्रुःख का ज्ञान करे अर्थात् रोगादि जाने ॥ १० ॥

द्वीपां भित्तिवामहस्ते पादे दामे च यत्ततः । शास्त्रेण सम्प्रदायेन तथा स्वानुभवेन है ॥११॥
वैद्य लिखों के बायें हाथ में तथा बायें पैर में चलपूर्वक शास्त्र की विधि से, साम्प्रदायिक विधि

परीक्षा इत्यचास्यास्त्वभ्यासादेव जायते । वातनाडी भवेद् ग्रहा पित्तनाडी च शंकरः ॥३॥
श्लेषमनाडी भवेद्बृशुस्त्रिदेवा नादिस्तिथाः ।

इसकी अर्थात् नाड़ी की परीक्षा रत्न की तरह अभ्यास करने से होती है (जिस तरह रत्न की परीक्षा (पहचान) विना अभ्यास से नहीं होती वैसे ही नाड़ी की भी परीक्षा विना अभ्यास के नहीं होती है) तथा शास्त्रकारों ने नाड़ी में देवताओं की स्थिति कही है कि वात की नाड़ी में ब्रह्म होते हैं और पिण्ड की नाड़ी में शङ्कर वास करते हैं और कफ की नाड़ी में विष्णु वास करते हैं इस प्रकार नाड़ी में द्विदेव की स्थिति है ॥१२-१२॥

अथेव वातवहा नाडी मध्ये व्युत्पत्ति पित्तला । अन्ते श्लेषमधिकारेण नाडी ज्येया बुध सदाः ॥१३॥
अब नाडी की गति कहते हैं—अद्यभाग में वात वहन करने वाली, मध्य भाग में पित्त वहन करने वाली और अन्त भाग में श्लेषमा वहन करने वाली नाडी होती है ऐसा वैद्य को सदा जानना चाहिये ॥१३॥

सर्पजलीकादिगति घटनित विलुधा: प्रभञ्जने नाढीम् ।

पित्रेन काकलायकमण्डुकादेस्तथा चपलाम् ॥

बुद्धिमान् वैद्य वात की नाड़ी की गति सर्प, जोक आदि की गति की तरह टेढ़ी-मैढ़ी कहते हैं। पित्त से काक, लाव और मण्डूकादि की गति की तरह चश्चल तथा उछलती हुई नाड़ी की गति कहते हैं ॥ १४ ॥

राजहंसमयुक्ताणां पारावतकपोतयोः । कुवकुटस्य गति धते धमनी कफसङ्किनी ॥ १५ ॥

- कफ की नाड़ी की गति हंस, मध्यूर, पारावत, कपोत और कुकुट की गति की तरह मन्द-मन्द गति वाली कहते हैं ॥ १५ ॥

मुहुः सर्पगति नार्ही मुहुर्भेदगति तथा । वातपित्तसमुद्भूतां सां वदन्ति विचच्छाणः ॥ १६ ॥
 जो नाडी क्षण-क्षण में कभी सर्प की गति से चले, कभी मेढ़क की गति में चले उसे बुद्धिमान् वात से तथा पित्त से मिला हुई कहते हैं ॥ १६ ॥

सर्पहसगति तद्वद्वातश्लेष्मवर्ती वदेत् । हरिहंसगति धन्ते पितृश्लेष्मान्विता धरा ॥ १७ ॥
 जो नाड़ी सर्प की गति चल कर पुनः हंस की गति में चले उसे दैय वात-श्लेष्मयुत नाड़ी कहते हैं । तथा जो नाड़ी हरि (बानर) और हंस की गति से छले अर्थात् कभी चंचल और कभी चले नहीं पितृश्लेष्मान्विता कहते हैं अर्थात् दो-दो दौरों माली दण्डज कहते हैं ॥ १७ ॥

काष्ठुकुट्टी यथा काँड़ कुहूसे चातिवेगतः । स्थिरवा स्थिरत्वा तथा नाही संनिपाते भवद्धृष्टम्॥

जो नाड़ी काष्ठुकुड़ (पक्षी विशेष वा कठफोरनी) की काठ काटने वाली गति से चले अथवा जिस प्रकार कठफोरनी अत्यन्त वेग से काठ काटती है और बीच २ में रुक जाती है मुनः उसी वेग से काटती है इस तरह की नाड़ी की गति हो तथा जो नाड़ी रुक-रुक कर चलती है उसे निश्चित ही सामाप्तिक नाड़ी समझनी चाहिये ॥ १८ ॥

बृद्धहारीतात्—स्पन्दते चैकमानेन श्रिशद्वारं यदा धरा।
स्वथानेन तदा नूनं रोदी जीवति नाभ्यथा।

स्थित्वा स्थित्वा बहति या सा ज्ञेया प्राणवातना ॥ १९ ॥
 अब असाध्य नाडियों की गति कहते हैं—जब नाड़ी एक चाल से तीस बार चले और अपने स्थान पर ही कम हो जावे तो रोगी नहीं जीता है। और जो नाड़ी रुक रुक कर चलती है वह प्राणवातनी जाननी चाहिये ॥ १९ ॥

मन्दं मन्दं शिथिलशिथिलं व्याकुलं व्याकुलं वा
स्थित्वा स्थिरत्वा वहति धर्मनी याति सूचमा च सूचमा ।
निर्यं स्फन्दे स्फरति पुनरप्यङ्गलीः संस्पर्शेष्टा

भावेरेवं बहुविधतरेः संनिपातादसाध्या ॥ २० ॥
 जो नाड़ी मद-मन्द, दुर्बल-दुर्बल, चब्बल-चब्बल, रक-रक कर, सूक्ष्म-सूक्ष्म चले और निर्तय
 कर्त्ते में चले पुनः अंगुली में चले इस प्रकार की बहुविधि गति वाली नाड़ी सन्निपात से होती है
 और असाध्य है ॥ २३ ॥

तस्य सृथुं विजानीयाद्यस्येदं नादिलक्षणम् ॥ २१ ॥

जिसकी इस प्रकार की गति वाली नाड़ी हो उसकी मृत्यु जाननी चाहिये ॥ २१ ॥

पूर्वं पित्तगति प्रभज्ञनगति श्लेष्मानमाविभ्रती
मर्त्यन्तं अंमणं सुहर्विदधर्तीं चक्रादिरुद्धामित्व ।
भीष्मत्वं दधर्तीं कलाशु परितां सूक्ष्मत्वमातन्वर्तीं
नो साक्षां अमनीं वृद्धन्ति मुनयो नाढीविज्ञानिनः ॥ २२ ॥

जिस नाड़ी की गति पहले पित्त की गति वाली हो बाद में वायु की गति वाली हो पुनः कफ की गति वाली हो और जो पुनः अत्यन्त चक्र की तरह धूमे और जो भीषण जान पड़े, अपने गति से गिर जावे और सूक्ष्मता को प्राप्त हो जावे उसे नाड़ी की गति जानने वाले विदान् असाध्य नाड़ी कहते हैं ॥ २२ ॥

अनुभीरा बा अवेक्षाणी सा अवेन्मांसवाहिनी । उवरवेगेन अमनी सोषणा वेगवती भवेत् ॥ २३ ॥

अन्यान्य लक्षण—जो नाड़ी गम्भीर गति से चले तो समझना चाहिये कि नाड़ी में मांस आ गया है। ऊर के वेग से नाड़ी उण और वेग वाली होती है ॥ २३ ॥

कामोदीधार्देशवहा खीणा विन्ताभयप्लुता । मन्द्याद्येः खीणधातोश्च नाढी मन्दतरा भवेत् ॥

काम और क्रोध से नाड़ी वेगवती होती है और चिन्ता तथा भय से शुक्त मनुष्य की नाड़ी क्षीण होती है। मन्दगामि तथा धातुशीण वाले की नाड़ी मन्दगामिनी होती है ॥ २४ ॥

असूक्ष्मपूर्णं भवेत्सोषणा गुर्वां सामा गरीयसी । लङ्घी वहति दीक्षाद्येस्तथा वेगवती मता ॥ २५ ॥

रक्त से पूर्ण जो नाड़ी हो जाती है वह उण तथा गम्भीर होती है, जो आमयुक्त रहती है वह नाड़ी गम्भीर होती है। और जो प्रदाता अविवाले हैं उनकी नाड़ी हल्की तथा वेगवाली होती है ॥ २५ ॥

च्वला चुषितस्थापि तुपस्थ वहति रिथरा । मृत्युर्दमस्कस्येव भवेदेकदिनेन च ॥ २६ ॥

भूखे मनुष्य की नाड़ा चब्रल होती है तथा भोजन से तृप्त हुए की नाड़ी स्थिर चलती है। अन्यान्य असाध्य लक्षण—जो नाड़ी आदि में ज्ञात हो सध्य में नहीं ज्ञात हो पुनः अन्त में ज्ञात हो ऐसी डमरू जैसी गति वाली नाड़ी जिसकी हो वह एक दिन में मर जाता है ॥ २६ ॥

कषपते श्वन्धतेऽस्थन्तं पुनः स्पृशति आङ्गुलीः । तामसाध्यां विजानीयाशार्दीं दूरेण वर्जयेत् ॥

जो नाड़ी अत्यन्त कौपे, अत्यन्त उछले, पुनः अङ्गुलियों में स्पर्श करे उसे असाध्य जानना चाहिये और दूर से ही ऐसी नाड़ी त्याग देनी चाहिये ॥ २७ ॥

स्थिरा नाढी भवेद्यस्थ विद्युद्युतिरिवेचयते । दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये मृत्युरेव च ॥ २८ ॥

जिसकी नाड़ी स्थिर हो पुनः विजली जैसी चले उस मनुष्य का जीवन एक दिन जानना चाहिये और दूसरे दिन उसकी मृत्यु जाननी चाहिये ॥ २८ ॥

शीघ्रा नाढी मलोपेता शीतला वाऽथ दृश्यते । द्वितीये दिवसे मृत्युर्नाडी ज्ञेया विचक्षणैः ॥ २९ ॥

जिसकी नाड़ी मल से उक्त हुई शीघ्र चलने वाली अथवा शीतल दिखाई पड़े उसकी मृत्यु दूसरे दिन होगी ऐसा नाड़ीविशेषज्ञों का कहना है ॥ २९ ॥

मुखे नाढी वहेत्तीवा कदाचिच्छक्तितला वहेत् । आयाति पिण्डिलः स्वेदः सप्तरात्रं न जीवति ॥

जिसकी नाड़ी मुख पर तीव्रगति वाली, कभी शीतल हो और स्वेद (पसीना) पिण्डिल (लिंगधातुयुक्त) आवे तो वह मनुष्य सात दिन तक नहीं जीता है ॥ ३० ॥

देहे धौर्यं मुखे श्वासो नाढी विदाहवत् । मासाधं जीवितं तस्य नाढीविज्ञानमभावितम् ॥

जिस मनुष्य के शरीर में ठण्डापन हो, मुख में श्वास हो अर्थात् मुख से श्वास लेवे, नाड़ी दाहयुक्त तीव्र गति वाली हो वह पन्द्रह दिन तक जीता है ऐसा नाड़ीज्ञान वाले कहते हैं ॥ ३१ ॥

मुखे नाढी यदा नास्ति मध्ये शैर्यं बहिः क्षमः । यदा मन्दा भवेष्टादी त्रिरात्रं नैव जीवति ॥

जिस मनुष्य की नाड़ी मुख अर्थात् अग्रभाग में नहीं चलती हो, मध्य में शीतल हो, बहिःभाग अर्थात् अन्त में थकी हुई जैसी हो और मन्दगामिनी हो तो वह मनुष्य तीन दिन नहीं जीता है ॥ ३२ ॥

अतिसूक्ष्माऽतिवेगा च शीतला च भवेद्यद्वि । तदा वैश्वी विजानीयाद्वैगिणं च गतायुषम् ॥ ३३ ॥

जिसकी नाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म हो, अत्यन्त वेगवाली हो और शीतल हो तो वैद्य को उस रोगी की आयु समाप्त हुई जाननी चाहिये ॥ ३३ ॥

विद्युद्धामिता नाढी दृश्यते च न दृश्यते । अकालविद्युत्पातेन स गच्छेद्यमशासनम् ॥ ३४ ॥

जिसकी नाड़ी विजली की तरह टेढ़ी-मेढ़ी और उसी की तरह कभी ज्ञात हो कभी नहीं तो वह मनुष्य असमय में गिरी हुई विजली की तरह अन्दानक यमपुर जाता अर्थात् मर जाता है ॥ ३४ ॥

सिंयुषणा च या नाढी सर्पणा वेगक्षत्तरा । कफपूरितकण्ठस्थ जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥ ३५ ॥

जिसकी नाड़ी तिरछी चले, उष्ण रहे सर्प की तरह चले, वेगवाली हो और कफ से जिसका गला भर गया हो उसका जीवन दुर्लभ है अर्थात् उसकी मृत्यु निश्चित है ॥ ३५ ॥

वैलाङ्गलिवेगा च नासिकाक्षारसंयुता । शीतला दृश्यते या च याममध्ये च मृत्युदाम् ॥ ३६ ॥

जिसकी नाड़ी वस्त्र के अच्छल के हिलने जैसी गति वाली हो और नाक के श्वास के आधार पर चलती हो, शीतल हो तो उसकी एक पहर के अन्दर ही मृत्यु जाननी चाहिये ॥ ३६ ॥

दृश्यते चरणे नाढी करे नैवाभिदृश्यते । मुखं विकसितं चस्य तं दूरं परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

जिसकी नाड़ी पैर में ज्ञात हो और हाथ में नहीं ज्ञात हो और मुख जिसका खुला रहे उस रोगी को वैद्य दूर से ही त्याग देवे ॥ ३७ ॥

वातपित्तकफाक्षापि त्रयो यस्यां समाहिताः । कृष्णसाध्यामसाध्यां वा प्राहृवैश्विकशारदाः ॥

जिसकी नाड़ी में वात, पित्त और कफ तीनों दोषों का समावेश दिखाई देवे उसको वैद्यक शाखा के ज्ञाता कष्टसाध्य वा असाध्य कहते हैं ॥ ३८ ॥

वक्षा च चपला शीतस्पर्शा वातज्वरे भवेत् । द्रुता च सरला शीघ्री शीतपित्तज्वरे भवेत् ॥ ३९ ॥

वातादिक ऊरों में नाड़ी की गति का वर्णन—वात ऊर में नाड़ी की गति टेढ़ी, चब्रल और स्पर्श में शीतल होती है। शीतपित्त ऊर में—शीघ्रमारी, सरला और लम्बी चाल वाली होती है ॥

मन्दा च सुस्थिरा शीता विच्छिला श्लेष्मतो भवेत् । वक्षा च द्वैष्पचपला कठिना वातपित्तज्ञा ॥

कफ ऊर में—नाड़ी की गति मन्द, स्थिर, शीतल और कठिन होती है। वातपित्त ऊर में—नाड़ी की गति टेढ़ी, थोड़ी चब्रल और कठिन होती है ॥ ४० ॥

दृष्टव्य दृश्यते स्पृष्टा मन्दा स्थाच्छ्लेष्मवातज्ञा । सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाढीपित्तस्थमुद्दवा ॥

वातादिक ऊर में—नाड़ी की गति करती हुई और मन्द होती है। पित्तकफ ऊर में—नाड़ी की गति सूक्ष्म (दुर्बल), शीतल, स्थिर होती है ॥ ४१ ॥

हङ्सगा चैव या नाढी तथैव गजगामिनी । मुखं प्रश्नस्तं च भवेत्स्याऽरोग्यं भवेत्सदा ॥ ४२ ॥

जिसकी नाड़ी हङ्स की गति वा गज की गति जैसी गम्भीर गति की हो और मुख प्रसन्न हो वह रोगी निश्चित आरोग्य होगा ॥ ४२ ॥

यो रोगिणः करं स्पृष्टा स्वकरं लालयेद्यदि । रोगास्तस्य विनश्यन्ति पङ्कः प्रसालनाद्यथा ॥ ४३ ॥

रोगी की नाड़ी देखने वाले के प्रति शिक्षा—जो दैव रोगी के हाथ का स्पर्श करने पर अपने हाथ की धो डालता है उस रोगी का रोग इस प्रकार छूटता है जिस प्रकार धोने से लगा छुआ पङ्क छूटता है ॥ ४३ ॥

अथ मूत्रपरीक्षा

अथातः संग्रवधयामि मूत्रस्य च परीक्षणम् । येन विज्ञातमात्रेण रोगचिह्नं प्रकाशयते ॥ ३ ॥
मूत्र-परीक्षा—अब मूत्र की परीक्षा कहते हैं—जिसके ज्ञात होते हीं रोगों का चिह्न प्रकट हो जाता है ॥ १ ॥

निशान्तस्थामे घटिकाच्चतुष्टये उत्पाद्य वैद्यः किल रोगिणं च ।

मूत्रं द्वयं काचमये च पात्रे सूर्योदये तत्पत्तं परीक्षेत् ॥ २ ॥

मूत्रपरीक्षा की विधि—वैद्य रात्रि के अन्तिम प्रहर में चार घण्टा रात्रि शेष रहते रोगी को उठाकर मूत्र करावे और उसी मूत्र की परीक्षा करे। और मूत्र को काच के पात्र में रखते तथा निरन्तर सूर्योदय होने पर परीक्षा करे ॥ २ ॥

तस्याऽश्वाधारं परिहृत्य मध्यधारोद्धर्वं तत्परिधारयित्वा ।

सम्बन्धपरीक्षाय गदस्य हेतुं कुर्याद्विकित्सां सततं हिताय ॥ ३ ॥

उस मूत्र की पहली धार को न रखते मध्य धार को रख ले और उसी मूत्र की सम्बन्धपरीक्षा करे और उससे रोग का कारण जाने। तब रोगी का निरन्तर हित चाहने वाला वैद्य चिकित्सा प्रारम्भ करे ॥ ३ ॥

वाते च पाण्डुरं मूत्रं सफेनं कफरोगिणः । रक्तवर्णं भवेत्पित्ते द्वन्द्वजे मिश्रितं भवेत् ।

संनिपाते च कृष्णं स्वादेतन्मूत्रस्य लक्षणम् ॥ ४ ॥

वातादि भेद से मूत्र का लक्षण—वात से अर्थात् वात के प्रकोप से रोगी का मूत्र पाण्डु वर्ण का होता है, कफ के प्रकोप से फेनयुक्त, पित्त के प्रकोप में रक्तवर्ण का और द्वन्द्वज अर्थात् दो-दो दोषों के मिले रहने पर मिश्रित दो-दो वर्ण का होता है और सन्त्रिपात में मूत्र कृष्ण वर्ण का होता है, यहीं मूत्र का लक्षण है ॥ ४ ॥

अन्यच—परीक्षा विधिवक्तार्थं रोगिमूत्रस्य तत्त्वतः । तुणेन द्वापयेत्तेलविन्दुं तत्रातिलाबदाद् ।

विकासितं तैलभयाद्यु मूत्रे साध्यः स रोगी न विकासितं चेत् ।

स्थारकष्टसाध्यस्तत्त्वं त्वसाध्यो नागार्जुनेनैव कृता परीक्षा ॥ ६ ॥

और भी परीक्षा कहते हैं—वैद्य रोगी के मूत्र की विधिपूर्वक परीक्षा करे। मूत्र में तेल तृप्ति से उठाकर बिन्दु करके अर्थात् तेल की बूंद मूत्र जो परीक्षार्थी रखता रहे उसमें छोड़े। वह अत्यन्त लाघव होने से यदि मूत्र पर शीघ्र फैल जाय तो रोगी साध्य और यदि नहीं फैले तो कष्टसाध्य और यदि मूत्रतल में बैठ जाय तो असाध्य जानाना चाहिये ऐसा नागार्जुनादिक ने परीक्षा की है ॥ ५-६ ॥

चर्पटः—नीलं च रुद्धं कुपिते च वायौ पीतारुणं तैलसमं च पित्ते ।

स्त्रिग्रं कफे पश्वलवारितुलयं स्त्रिग्रोषणरक्तं द्वधिरप्रकोपे ॥ ७ ॥

दूसरे आचार्य के मत से मूत्रलक्षण—वायु कुपित हुए मनुष्य का मूत्र नीला और रुक्ष होता है, पित्त कुपित हुए का पीत और अस्थ तथा तेल के समान होता है, कफ कुपित में पिच्छिल और पल्वल (पोखरी) के जल के वर्ण का होता है और रुधिर के कोप में पिच्छिल, उष्ण और लाल होता है ॥ ७ ॥

मातुलुक्षणसामासं सौवीराभं जलोपमम् । प्रपाकरहितानां च मूत्रं चन्दनसन्धिभम् ॥ ८ ॥

जिसके उदर में पाक सम्बन्धरूप से नहीं हुआ है उसका मूत्र-मातुलुक्षण (जसीरी नीरू) के रस के तरह, सौवीर (सुराविशेष) की तरह; जल की तरह और चन्दन के जल की तरह होता है ॥ ८ ॥ अजीर्णप्रभवे रोगे मूत्रं तप्तुलतोयवत् । नवज्वरे धूम्रवर्णं बहुमूत्रं प्रजायते ॥ ९ ॥

जसको अजीर्ण की रोग है उसका मूत्र चावल के धोवन जैसा होता है और नवीन ज्वर वाले का मूत्र धूम्रवर्ण का होता है और अधिक मूत्र होता है ॥ ९ ॥

पित्तानिले धूम्रजलाभमुखं श्वेतं मृश्वच्छलेष्मणि खुद्दुवाभम् ।

तच्छ्वदेष्मपित्ते कलुषं सरकंजीन्जवरेऽसृक्षसृष्टं च पीतम् ।

स्यासृसंनिपातादपि मिश्रवर्णं तूर्णं विज्ञेन विचारणीयम् ॥ १० ॥

पित्त और वायु के कोप से मूत्र धूये के जल के समान तथा उष्ण होता है, वायु और कफ के कोप से श्वेत तथा बुद्धुद् जैसा होता है। कफ और पित्त के कोप से कलुष (गदला) तथा लाल होता है। जीर्ण ज्वर में मूत्र रक्त के सदृश और पीला होता है और सन्त्रिपात में मूत्र का वर्ण उपर्युक्त सब वर्णों से मिला हुआ होता है। वैद्य इसका विचार कर लेवे ॥ १० ॥

पूर्वांश्च वर्धते विन्दुर्धदा शीशं सुस्त्री भवेत् । दक्षिणांश्च उत्तरे ज्येष्ठस्थाऽरोग्यं क्रमाद्वयेत् ॥

रोगी का परीक्षार्थ रखे हुए मूत्र में दिया हुआ तैलबिन्दु पूर्व की ओर बढ़े तो समझना चाहिये कि रोग शीश नष्ट होगा और रोगी शीश आरोग्य होगा। यदि दक्षिण की ओर बढ़े तो ज्वर का रोग समझना चाहिये और रोग क्रमशः अर्थात् धीरे-धीरे नष्ट होकर आरोग्य होगा ऐसा समझना चाहिये ॥ ११ ॥

उत्तरस्थी यदा विन्दोः प्रसरः संप्रजायते । अरोगिता तदा नूनं पुष्पस्य न संशयः ॥ १२ ॥

उत्तर की ओर यदि (तैलबिन्दु) प्रसर जावे तो निश्चय रोगी आरोग्यता को प्राप्त होता है। इनमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ १२ ॥

वायव्यां प्रसरेऽद्विन्दुः सुखारोग्यं तदाऽस्यितेत् । ऐशान्यां वर्धते विन्दुर्धुवं मासेन नशयति ॥

यदि पश्चिम दिश में यह तैलबिन्दु प्रसरे तो वह रोगी सुख और आरोग्यता को प्राप्त होता है। ईशानकोण में यदि तैलबिन्दु बढ़े तो एक मास के अन्दर रोगी की मृत्यु होगी ऐसा जानना चाहिये ॥ १३ ॥

आप्तव्यां तु तथा ज्येष्ठं नैऋत्यां प्रसरेद्यक्षिति । द्विद्वित्तं भवेत्पश्चाद् धूवं मरणमेव च ॥ १४ ॥

तैलबिन्दु यदि अस्त्रिकोण में जावे तथा यदि नैऋत्यकोण में जावे और फैलने पर उस तैलबिन्दु में छिद्र दिखाई पड़े तो उस मनुष्य की मृत्यु निश्चित समझनी चाहिये ॥ १४ ॥

वायव्यां प्रसरेऽद्विन्दुः सुखायापि विनशयति । विकासितं हलं कूमं सैरिभाकारसंयुतम् ॥ १५ ॥

करण्डमण्डकं वायि शिरोहीननरं तथा । गात्रस्पर्णं च श्वासं च खद्दगं सुशलपट्टिशम् ॥ १६ ॥

शरं च लगुणं चैव तथैव ग्रिह्यते विन्दुर्धुवं नरो हृष्टा न कुर्वते क्रियां ध्वित् ॥ १७ ॥

वायव्यकोण की तरफ प्रसरे हुए तैलबिन्दु वाले पुरुष को यदि अमृती भी पिलाया जावे तो भी वह नहीं जी सकता है, और जिस मनुष्य के मूत्र में तैल बिन्दु का रूप हल, कूम (कछुआ), सैरिभ (भैसा) का आकार, करण्डमण्डल (मधुमक्खी) के छत्ते के समान, शिरोहीन मनुष्य, गात्रस्पर्ण (शरीर के अंगों के ढकड़े के समान), श्वास, खद्दग, सुसाल, पट्टिश, वाण, दंडा और तीन रास्ते व चौराहे का चिह्न दिखाई देवें तो उस रोगी की चिकित्सा कभी नहीं करनी चाहिये।

हंसकारण्डतादागं कमलं गजचामरम् । छत्रं च तोरणं हर्म्यं सुपूर्णं दृश्यते यदि ॥ १८ ॥

आरोग्यता ध्रुवं ज्येष्ठा तदा कुर्यात्प्रतिक्षयाम् । तैलबिन्दुर्धुवं मूत्रे चालनीसदृशो भवेत् ॥ १९ ॥

कुलदोषो ध्रुवं ज्येष्ठा प्रेतदोषसमुद्धरतः । नराकारं ग्रजायेत किंवा स्यामस्तकदूषम् ।

भूतदोषं विजानीयाद् भूतविश्वा तदाऽस्यरेत् ॥ २० ॥

जिस मनुष्य के मूत्र में दिया तैलबिन्दु का रूप हंस, कारण्ड (कारण्डवपक्षी), तालव, कमल, हस्ती, चैवर, छाता, तोरण और अद्वालिकायें आदि पूर्ण दिखाई देवें उसकी आरोग्यता निश्चित

जाननी चाहिये और उसकी अवश्य चिकित्सा करनी चाहिये । मूत्र में तेल की बूंद छोड़ने पर मूत्र में चलनी जैसा छिद्र दिखाई देवे तो कुलदोष या प्रेतदोष का हुआ रोग समझना चाहिये और यदि मूत्र के तैलविन्दु में मनुष्य का आकार दिखाई दे अथवा दो मस्तक दिखाई दे तो भूत-दोष समझना चाहिये और भूतविद्या का उपचार करना चाहिये ॥ १८-२० ॥

मञ्जिष्ठाभं धूम्रवर्णं च नीलं सिंधधं मूत्रं वारितुल्यं च शीतम् ।

ज्ञारवा चित्तं द्वुद्विभान्मानुषाणां कुर्यात्त्वत्तर्भेषजं रोगिणां च ॥ २१ ॥

मंजीठ के वर्ण का, धूम्रवर्ण का, चिकित्सा, पानी की तरह वा शीतल इस तरह का चित्त में मूत्र के वर्ण का विचार कर वैद्य रोगियों की भीतरी शारीरिक चिकित्सा करे ॥ २१ ॥

सर्पाकारं भवेद्वाताच्छुत्राकारं तु पित्ततः । मुक्ताकारं बलासारस्यादेतन्मूत्रस्य लक्षणम् ॥ २२ ॥

मूत्र करने पर तैलविन्दु देने से यदि सर्पाकार हो जाय तो वात का दोष समझना चाहिये, छत्र जैसा हो जावे तो पित्त का दोष और यदि मुक्ता के आकार का हो जावे तो कफ का दोष समझना चाहिये । यही सब मूत्र के लक्षण हैं ॥ २२ ॥

अथ मत्परीक्षा ।

रुद्रतन्त्रात्—

वातान्मले तु इहता शुष्कता चापि जायते । यीतता जायते पित्ताच्छुक्ता रक्षेष्मतो भवेत् ।

रुद्रतन्त्रोक्त मलपरीक्षा—वात के कोप से मल गाढ़ा वा सूखा हुआ होता है, पित्त के कोप रं पीलापन युक्त और कफ के कोप से श्वेतवर्ण का होता है ॥ १ ॥

संनिपाते च सर्वाणि लक्षणानि भवन्ति हि । त्रुटिं फेनिळं रुक्षं धूमलं वातकोपसः ।

संनिपात के कोप से कुल उपर्युक्त लक्षण मिले हुए होते हैं । और भी—वात के कोप से मल दूदा हुआ (कुछ पतला), फेनयुक्त-रुक्षा और धूमिल वर्ण का होता है ।

वातश्लेष्मविकारे च जायते कपिशं मलम् ॥ २ ॥

वात-कफ के विकार से मल कपिश (ईवत् कृष्ण) वर्ण का होता है ॥ २ ॥

वद्धं सुत्रुटिं पीतश्यामं पित्तानिलाद्वेत् । पीतश्वेतं श्लेष्मपित्ताद्वायसान्द्रं च पिच्छिलम् ॥

पित्त—वायु के कोप से बैंया हुआ, दूदा हुआ, पीला और इयामवर्ण का मल होता है । पित्त—कफ के प्रकोप से पीला—श्वेत, कुछ घना अर्थात् गाढ़ा और पिच्छिल मल होता है ॥ ३ ॥

श्यामं त्रुटिपीताभं बद्धुभेतं त्रिद्वोषतः । दुर्गन्धः शीतलश्वेत विष्टोत्सर्गो यदा भवेत् ॥ ४ ॥

तदा जीर्णमलं वैद्यवेष्यज्ञे: परिभ्रष्टयते । कपिलं गुटियुक्तं च यदि वर्चोदवलोक्यते ॥ ५ ॥

प्रसीणमलाद्वेषण दूषितः परिक्षयते ।

त्रिदोष के कोप से काला, दूदा हुआ, पीला, बैंधा हुआ और श्वेतवर्ण का मल होता है । यदि दुर्गन्धयुक्त, शीतल मल निकले तो दोषों के ज्ञाता वैद्य उसे जीर्णमल कहते हैं अर्थात् अधिक दिनों तक पेट में रुक्षा हुआ मल समझना चाहिये । कुछ कालापन लिये और गुटका युक्त यदि मल दिखाई पड़े तो क्षीणता के दोष का मल विद्वानों ने कहा है ॥ ४-५ ॥

सिंतं महारुतिगन्धं मलं ज्येयं जलोद्दरे ॥ ६ ॥

जलोदर के रोग में मल श्वेत तथा अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त होता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६ ॥

श्यामं ज्येये त्वामवति पीतं सकटिवेदनम् । अतिकृष्णं चातिशुभ्रमतिपीतं तथाऽरुणम् ॥

मरणाय मलं किंतु भृशोषणं मृत्यवे ध्रुवम् ॥ ७ ॥

क्षय के रोग से मल काला होता है । और आमदोष से मल पीला निकलता और कटि में वैदना होती है । अत्यन्त काला, अत्यन्त श्वेत, अत्यन्त पीला तथा अत्यन्त लाल जिसका मल निकले तो

वह मरने के लिये जानना चाहिये । किन्तु यदि उसमें भी अत्यन्त उष्ण मल निकले तो उसको मृत्यु निश्चित ही समझनी चाहिये ॥ ७ ॥

अत्यन्त—

वातस्य च मलं कृष्णं ततः पित्तस्य पीतविट् । रक्तवर्णं मलं किञ्चिन्मलं श्वेतं कफोद्वम् ॥ ८ ॥

और भी अन्य मल से मल का लक्षण कह रहे हैं—वात के कोप से मल कृष्णवर्ण का, पित्त से मल पीतवर्ण का होता है । कफ से किञ्चित् लाल और श्वेत वर्ण का होता है ॥ ८ ॥

आमं वा श्लेष्मं ग्राहुमित्रिं द्वन्द्वजं वदेत् । अपकं स्थावद्जीर्णं तु पकं स्वच्छमलं भवेत् ॥ ९ ॥

आम के दोष से मल कफज मल के जैसा होता है । द्वन्द्वज अर्थात् दो दोषों के कोप से मल में दो दोषों का मिला लक्षण होता है । अजीर्ण से मल अपक होता है और जीर्ण में मल स्वच्छ होता है ॥ ९ ॥

अत्यन्ती पित्तहतं शुष्कं मन्दाम्बो तु द्रवीकृतम् । दुर्गन्धं चन्द्रिकायुक्तमसाध्यं मललक्षणम् ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण अस्त्रि वाले मनुष्य का मल पिण्ड बैंधा और सूखा होता है । और मन्दाम्ब का मल पतला होता है । और जिसके मल में अत्यन्त दुर्गन्ध तथा चमक हो वह असाध्य मल का लक्षण समझना चाहिये ॥ १० ॥

अथ शब्दपरीक्षा ।

गुहस्वरो भवेष्मले रुक्षटवक्ता च पित्तः । उभाभ्यां रहितो वातः स्वरतश्वेत लक्षयेत् ।

शब्दपरीक्षा—कफ के कोप वाले मनुष्य का स्वर गुरु होता है और पित्त के कोप वाले का स्वर रुक्ष होता है और दोनों से रहित अर्थात् न गुरु न स्फुट होता है वात के कोप वाले का स्वर समझना चाहिये ॥ १ ॥

अथ स्पर्शपरीक्षा ।

पित्तरोगी भवेत्पृष्ठो वातरोगी च शीतलः । श्लेष्मः स भवेद्वाद्रैः स्पर्शतश्वेत लह्येत् ॥ १ ॥

स्पर्शपरीक्षा—स्पर्श करने पर जो रोगी उष्ण मालम पड़े उसे पित्त का रोग, शीतल मालम पड़े तो वात का रोग और आर्द्र मालम पड़े तो कफ का रोग जानना चाहिये ॥ १ ॥

अथ रूपपरीक्षा ।

विभुत्वादाशुकारित्वाद्वित्वाद्वन्यकोपनात् । स्वातन्त्र्याद्वहुतोरगवाहोषाणी प्रश्नोडनिलः ॥ १ ॥

रूपपरीक्षा—यहाँ पर वायु की प्रभानता कहते हैं—प्रभुत्व वाला (व्यापक) होने से, शीपकारी होने से, वलवान् होने से, अन्य धातुओं को कुपित करने वाला होने से, स्वतन्त्र दोष होने से और बहुत रोगों को उत्पन्न करने वाला होने से सब दोषों में प्रबल वायु होती है अर्थात् सब दोषों में 'वात' प्रधान है ॥ १ ॥

प्रायस्त एव पद्मानाध्युषिता मनुष्या दोषाम्बकाः रुक्षटित्वसूरकेशाग्रामाः ।

शीतश्विष्मलधृतिरस्त्रिद्विचेष्टासौहर्दृष्टिगतयोऽपि बहुप्रकापाः ॥ २ ॥

वातप्रकृति मनुष्य के लक्षण—प्रायः करके वातप्रकृति वाले मनुष्य दोषों वाले (अवगुणों वाले) होते हैं, उनके केश (रोग) और गात्र-धूसर वर्ण के तथा फटे हुए होते हैं (हाथ-पैर में बेवाय रोगादि अधिक होते हैं), शीत से उनको देख होता है तथा उनकी (वातप्रकृति वाले की) धैर्य, रस्ति (स्मरणशक्ति), बुद्धि, चेष्टा, मित्रता, इष्टि और गति चब्रल होती है और के बहुत बोलने वाले होते हैं ॥ २ ॥

पित्त बहुर्विहितं च यदस्मापित्तोद्विक्षस्तीचणतृष्णाद्वुभुः ।

गौरोणाङ्गस्तान्रहस्ताद्विवक्षः शूरो मानी पिङ्केशोऽप्सरोमा ॥ ३ ॥

पित्त प्रकृति वाले मनुष्य के लक्षण—पित्त स्वर्ण हीं अथि कहा गया है अथवा अथि से उत्पन्न कहा गया है इसलिये ऐसे अवसर में पित्त प्रकृति वाले मनुष्य को रुष्णा और बुख्षा (भूख-प्यास) अधिक लगती है, शरीर का वर्ण गौर होता है, शरीर उष्ण रहता है, उनका हाथ-पैर और सुख ताम्रवर्ण का होता है । वे शूर और मानी होते हैं, उनके केश पीले वर्ण के और अल्प-होते हैं ।

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मकस्तेन सौम्यो गूढजिह्वरिलघुसन्ध्यस्थिमांसः ॥ ४ ॥

शुक्तदृशोक्षलेशभर्मेतस्तो बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसंधः ॥ ४ ॥

कफ प्रकृति वाले मनुष्य के लक्षण—कफ सौम्य (गम्भीर) होता है, उसके संचिं, अस्थि और मांस गूढ़, त्विग्न और परस्पर मिले हुए होते हैं अर्थात् कफ प्रकृति वाला मनुष्य स्थूल और बल-वान् होता है । श्वास, रुषा, शोक और क्लेशादि के धर्मों से वह कष मानने वाला नहीं होता अर्थात् गम्भीर होता है, बुद्धिमान्, सात्त्विक (सत्त्व गुण युक्त) तथा सत्य प्रतिज्ञा करने वाला होता है ॥ ५ ॥

अथ दृक्परीक्षा ।

रुषा धूमा तथा रौद्रा चक्षा चाम्त्वर्दृक्षन्ध्यपि । दृष्टिर्था तदा वातरोगं रोगविदो खगुः ॥ १ ॥

दृक्परीक्षा—वातादि कोप से कुपित नेत्र के लक्षण—जिसका नेत्र रुषा, धूम्रवर्ण का, विकराल, चब्रल और जलता हुआ दिखाई दे तो रोग के जानने वाले वातरोग से कुपित नेत्र कहते हैं अर्थात् ऐसे लक्षण वात कोप में होते हैं ॥ १ ॥

वैष्णवेष्वि चृत्वसन्तसं पीतं पित्तेन लोचनम् । जलाद्रूप्योतिष्ठा हीनं ज्ञिग्नं मन्दं कफेन तद् ॥ २ ॥

जिसके नेत्र दीप की ज्योति देखने में समर्थ न हों, जलते हों और पीले हों तो पित्त के कोप को समझना चाहिये । जिसके नेत्र जल से पूर्ण रहें, ज्योतिहीन हो और स्निग्धतायुक्त हो तो कफ का कोप समझना चाहिये ॥ २ ॥

द्वन्द्वदोषे भवेनिमश्च तुर्णं तुर्णं विलोचनम् । श्यामवर्णं च निर्भुमं तन्द्रामोहसमन्वितम् ॥ ३ ॥

रौद्रं च रक्तवर्णं च भवेष्वाच्चिदोषतः । पुकं चतुर्थदा भीमं द्वितीयं मीलितं भवेत् ॥ ४ ॥

त्रिभिर्विनेत्रतदा रोगी स याति यममन्दिरम् ।

द्वन्द्व दोष से उपर्युक्त हो-दो दोषों के मिले हुए लक्षण वाले नेत्र होते हैं और शीत्र-शीत्र नेत्र खुलते हैं । जिसके नेत्र श्यामवर्ण के, फटे हुए, तन्द्रा और मोह से युक्त हों, विकराल हों और लालवर्ण के हों तो त्रिदोषज नेत्र जानना चाहिये । जिस रोगी का एक नेत्र बड़ा हो और दूसरा छोटा तथा मिलता हुआ (सटाहुआ) हो तो तीन दिन में वह रोगी यम के बहाने जाता है अर्थात् तीन दिन में मर जाता है ॥ ३-४ ॥

ज्योतिर्विहीनं सहसा रोगिणो यस्य लोचनम् ॥

ईष्वर्कृष्णं स नियतं प्रयाति यमशासनम् । सरकं कृष्णवर्णं च रौद्रं च प्रेष्वते यदा ॥ ५ ॥

हृति लिङ्गेविजानीयान्मृत्युरेव न संशयः । एकद्विष्टरच्चत्यन्यो अग्नन्स्फुरिततारकः ।

पक्रान्त्रेन नियतं परलोकपथं वज्रेत् ॥ ६ ॥

जिस रोगी का नेत्र सहसा ज्योतिहीन हो जावे और कुछ काला हो जावे तो वह रोगी नियत ही मर जाता है । जिस रोगी का नेत्र कुछ लाल, काला और विकराल लक्षणों वाला हो जावे उस रोगी की सूख्य में कोई संशय नहीं है ऐसा समझना चाहिये । जिसकी एक दृष्टि शक्तिहीन हो जावे, नेत्र के तारे धूमे और नेत्र फड़के तो वह रोगी एक रात्रि में परलोक को जाता है ॥ ५-६ ॥

यामलात्—शुष्कास्यः श्यामकोष्ठोऽप्यसितरक्षतिः शीतनासाप्रदेशः ।

शोणाच्छैकनेत्रो त्रुक्तिकरपदः शोन्नप्राप्तिययुक्तः ।

शीतश्वासोऽथ चोष्णाप्तसनसमुदयः शीतग्राप्रक्रमः—

सोद्योग्य विष्वप्तः प्रभवति मनुजः सर्वथा मृत्युकाले ॥ ८ ॥

दूसरे मत से दृक्परीक्षा—जिस रोगी का मुख सूख जावे, काले कोष (कत्ते) हो जावे, नासिका शीत हो जावे, एक नेत्र छोटा हो जावे, हाथ-पैर चलावे, कर्ण बविर हो जावे, शास शीत हों और उनुः उष्ण श्वास हो जावे, गात्र शीत हो जावे, कम्पन हो और उद्गेग हो और निष्प्रपञ्च हो जावे तो उस अवस्था को मृत्यु की अवस्था जाननी चाहिये अर्थात् असाध्य जानना चाहिये ॥ ८ ॥

अथाऽऽस्यपरीक्षा ।

वाते च मधुरास्यत्वं पित्ते च कटुकं तथा । मधुराम्लं कफे चैव सर्वेषां त्रिदोषजे । अस्थीं वृत्तपूर्ण स्पातक्षायं चाप्तिमान्यके ॥ १ ॥

मुख-परीक्षा—वात के कोप से मुख का स्वाद मधुर, पित्त के कोप से कटु, कफ के कोप से मधुराम्ल तथा त्रिदोष से सब उपर्युक्त मिलित लक्षणों वाला स्वाद होता है । अस्थीं में मुख का स्वाद घृत पूर्ण सा होता है और अग्निमान्य में कषाय के स्वाद का मुख का स्वाद होता है ॥ १ ॥

अथ जिह्वापरीक्षा ।

जिह्वा शीता चारस्यर्था स्फुटिसा माहसेऽधिके । इका श्यामा भवेत्पित्ते कफे शुभ्राऽतिपिच्छला ॥

जिह्वा-परीक्षा—वात के कोप से जिह्वा शीतल, स्पर्श में स्ख्य और फटी हुई होती है । पित्त के कोप से लाल और काली तथा कफ के कोप से श्वेत और अत्यन्त पिच्छल (चिकना) जिह्वा होती है ॥ १ ॥

कृष्णा सकण्टका शुष्का संनिपाताधिके तु सा । मिथिते मिथिता ज्येया सर्वलक्षणवर्जिता ॥ २ ॥

सप्तिष्पात के कोप से जिह्वा कृष्णा, कण्टकशुक्ता अर्थात् जीभ पर कांटा लगा हुआ जैसा और शुष्क होती है । और दो-दो दोषों के मिले हुये लक्षण द्वन्द्व में होता है ॥ २ ॥

अथ कालज्ञानम् ।

अप्रैङ्गिकितलक्षणेन पद्मसा पूर्णेभुना भानुना पूर्वदिविष्मोक्तरदिशं षट्प्रिद्विमासैककम् ।

किद्रं परथतिषेत्तदा दृशादिनं धूमाकृतिं पद्ममेऽवालां परथतिसद्य एवमरणं कालोचितज्ञानिनाम् ॥

काल-ज्ञान कहते हैं—जो मनुष्य मेघ से आच्छन्न दिशा, वर्षते हुए मेघ, पूर्ण चन्द्र और सूर्य को पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सब दिशाओं में देखे परन्तु वास्तव में ये सब हीं नहीं—न दीखते हीं तो ऐसा मनुष्य छ, तीन, दो और एक मास के अन्दर कम से अर्थात् अब्रदर्शी छ मास में, वर्षदर्शी तीन मास में और चन्द्रदर्शी दो तथा सूर्यदर्शी एक मास में मर जाता है । चारों तरफ छिद्र देखने वाला रोगी दस दिन में और चारों तरफ धूमों जैसा देखने वाला पांच दिन में तथा ज्वाला देखने वाला सचः मृत्यु को प्राप्त होता है ऐसा उचित काल के जाननेवालों का कहना है ॥ १ ॥

अहन्धर्तीं धुंधं चैव विष्णोक्षीणि पद्मानि च । आयुर्हीना न परथन्ति षट्तुर्थं मातुमण्डलम् ॥ २ ॥

अरन्धती, ध्रुव, विष्णोक्षीपद और चौथा मातुमण्डल ये चारों वस्तु आयुर्हीन अर्थात् जिसकी मृत्यु निकट है ऐसा मनुष्य नहीं देखता है (उसे नहीं दिखाई देता है) ॥ २ ॥

अहन्धर्ती भवेत्जिह्वा ध्रुवो नासाप्रमेव च । विष्णुस्तु अद्युयोर्मध्यो अद्युयं मातुमण्डलम् ॥ ३ ॥

आयुर्वेद शास्त्र से प्रवादिकों के परीक्षास्थान—अरन्धती जिह्वा में होती है, ध्रुव नासाध्य भाग में, विष्णु दोनों ध्रुवों के मध्य में और दोनों ध्रुवों में मातुमण्डल ऐसा कहा जाता है । अर्थात् जिह्वाग्र,

पदार्थ के सेवन से, अजीण में भोजन से, विषम आसन से और विषम भोजन से तथा वषाङ्गतु के अन्त में पित्त कुपित होता है ॥ २ ॥

स्वधाहिवा मधुरशीतलमत्यमासगुर्वंक्षिपिछलतिलेञ्चुपयोविकारैः ।

स्वित्तापिशिलखणोदकपानभव्यैः श्लेष्मा प्रकोपमुपयाति तथा वसन्ते ॥ ३ ॥

दिन में सोने से, अधिक मधुर, शीतल, भृत्य, मांस, गुरु, अम्लपिच्छल, तिल, इक्षु और पयोविकार के सेवन से, अधिक स्त्रिय, तुसि और लवणोदक के पान और भक्षण से तथा वसन्त श्वतु में कफ कुपित होता है ॥ ३ ॥

अथ दोषत्रयकर्मणि ।

पारुष्यसंकोचनतोदशुलश्यावत्प्रभृत्यथेष्टभावान् ।

सुस्पृशशीतत्वश्वरत्वशोषान्कर्मणि वायोः प्रबद्धित तज्ज्ञाः ॥ १ ॥

तीनों दोषों के कर्म—हृक्षता, सङ्कोचन, तोद, (सूर्य चुमोने जैसी पीड़ा), शूल, कालापीला भिंति रङ्ग करना, भङ्ग अर्थात् तोड़ने के समान पीड़ा करना, शून्यता करना, शीतलता, रुखड़ापन और शोष आदि करना बायु के कर्म विद्वानों ने कहा है ॥ १ ॥

परिश्रमस्वेदविहारशागवैगन्ध्यसंक्षेपविधाककार्थाः ।

ग्रालापमूर्छाभ्रमपित्तदःहः पित्तस्य कर्मणि खद्यान्ति तज्ज्ञाः ॥ २ ॥

थकावट, स्वेद, दाह, वर्ण, गम्ध, संक्षेप (सङ्घना), विपाक, पीड़ा, प्रलाप, मूर्छा, भ्रम, पित्त और दाह आदि करना पित्त के कर्म विद्वानों ने कहा है ॥ २ ॥

श्वेतत्वशीतत्वगुरुव्यवकणहृष्टेहोपदेहित्वित्वलेपान् ।

उत्सेधसंक्षेपविचरक्रियात्म कफस्थ कर्मणि वृद्धित तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥

श्रेतत्व, शीतत्व, गुरुत्व, कण्ठ, ल्लेहोद्दम, आर्द्धता, लेप जैसा शरीर पर मालूम होना, उत्सेध (शोथ), संक्षेप और देर तक की क्रिया का ज्ञान होना आदि कफ के कर्म विद्वानों ने कहा है ॥ ३ ॥

अथ दोषत्रयशमनम् ।

खिभोणस्थिरवृद्ध्यवृद्ध्यबलवणस्वाद्युक्ततेलातप-

स्वानाभ्यञ्जनवित्तमासमदिरासंवाहनोद्वर्तनम् ।

खेदस्त्वेदनिरुहनस्यशयनस्थानोपनाहादिकम्

पानाहारविहारभेषजमिदं वातं प्रशान्ति न येत् ॥

तीनों दोषों के शामक कर्म—ज्ञिध, उष्ण, स्थिर, वृद्ध्य, वृद्ध्य, लवण, स्वादु, अम्ल, तैल, आतप ज्ञान, अन्यज्ञ, वस्तिक्रिया, मांस, मदिरा, इनका पीना और लगाना, ल्लेहनकर्म, स्वेदनकर्म, निरुह (उत्तरवरित) कर्म, नस्यकर्म, शयन, स्नान, उपनाहादि कर्म ऐसे पान-भोजन और विहार तथा भेषज आदि के सेवन से वात दोष शमन होता है ॥ १ ॥

तिक्तस्थादुक्षायशीतपवनश्छायानिशाशीजन-

उयोरस्तास्तुगृह्वारियन्त्रजलश्चीयात्रसंस्पर्शनम् ।

सर्पिःशीरविरेकसेकरुचिरस्त्रावोपदेहादिकं

पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तं प्रशान्ति न येत् ॥ २ ॥

तिक्तपदार्थ, स्वादु, कघाय, शीतल पवन, छाया, पंखे की बायु, रात्रि, चन्द्रमा की चाँदनी, भूमि पर शयन, यन्त्र का जल और खी के शरीर का स्पर्श, घृत, दुध, विरेचन कर्म, सेक, रुचिरस्त्राव (रक्तमोक्षण कर्म) उपदेह कर्म इस प्रकार के पान, आहार, विहार और औषध से पित्त दोष शमन होता है ॥ २ ॥

स्वस्त्रारक्षायतिक्तक्षुलक्ष्यायामनिष्टीवनं स्वीसेवाध्यनियुद्यजागरजलक्रीडापदाधातनम् ।

भूमरस्त्रापिशिरोविरेकवमनं च्येदोपनाहादिकम् पानाहारविहारभेषजमिदं रुद्धेष्माणमुम्रं जयेत् ॥

रुक्ष, क्षार, कघाय, तिक्त, कठु, इन पदार्थों के सेवन, व्यायाम, निष्टीवन कर्म, खीं-सेवा (मैथुन), मार्ग चलना, युद्ध करना, जागरण, जलकीड़ा, पदाधात (शरीर दबवाना), धूम, ताप, शिरोविरेक, वमन और ल्लेहोपनाहादि इस प्रकार के पान, आहार, विहार और औषध से कफ का दोष शमन होता है ॥ ३ ॥

अन्यच्च—कफ दुर्जनवत्तीच्छैर्वाति रुद्धेन मित्रवत् । पित्तं जामातरमित्र मधुरैः शीतलैजैयेत्॥४॥

अन्य ग्रन्थकार के मत से शमन—क्रिया—कफ को दुर्जन की तरह तीक्ष्ण क्रियाओं द्वारा, और वात को मित्र की तरह लिंग क्रियाओं द्वारा तथा पित्त को जामाता की तरह मधुर और शीतल आदि क्रियाओं द्वारा शान्त कर जीतना चाहिये ॥ ४ ॥

कफप्रकोपे वमनं सनस्यं विरेचनं विषभवे विकारे ।

वातामये वस्तिंविशोधनं च संसर्गजे च प्रविमिश्रमेतत् ॥ ५ ॥

कफ के प्रकोप में वमन और नस्य कर्म करना चाहिये, पित्त के प्रकोप में विरेचन कर्म और वात के प्रकोप में वस्ति, विशोधन कर्म तथा संसर्गज दोष में उपरुक्त क्रियाओं की भिंति क्रिया करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अथाहनिंशं दोषत्रयप्रवर्तनम् ।

रुद्धेष्मा प्रायस्तु पूर्वाले प्रदोषे च प्रवर्तते । पित्तं प्रायस्तु मध्याह्ने उपामध्ये प्रवर्तते ॥

अपराह्नेऽनिलः प्रायोऽपरात्रे प्रवर्तते ॥ ६ ॥

दिन रात में तीनों दोषों का प्रवर्तन—प्रायः करके कफदोष—दिन के पूर्व प्रहर में और प्रदोष के समय में कुपित होता है, पित्तदोष प्रायः दिन के मध्य में और रात्रि के मध्य में कुपित होता है और वस्तुदोष प्रायः करके अपराह्न (तीसरे प्रहर) और अपरात्रि में कुपित होता है ॥ ६ ॥

अथाऽऽमठ्याविलक्षणम् ।

आलस्यतन्द्राहृदयविशुद्धिं दोषप्रवृत्ताकुलमूर्च्छावैः ।

गुरुदरस्वारुचिसुस्तामिरामनिंवं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

आम व्याधि के लक्षण—अर्थात् शरीर में दोष आम रहने पर के लक्षण—आलस्य, तन्द्रा हृदय की अशुद्धि, दोष की प्रवृत्ति, व्याकुलता, मूत्राधिक्य, उदर की गुरुता, अरुचि और शून्यता आदि दोष के आम रहने से शरीर में होते हैं ॥ ७ ॥

अथ तप्रतीकारः ।

आमं जयेन्नहनकोणपेया-लघ्वशूद्धौदनतिक्षूषैः ।

निरुहणैः स्वेदनपाचनैश्च संशोधनैरुद्धर्वमधस्तथा च ॥ ८ ॥

आम दोष के प्रतीकार—आम-दोष को—लहून, उष्णपेया, लघु अन्न, रुक्ष ओदन, तिक्त वृष्ण, निरुहण कर्म, स्वेदन कर्म, पाचन कर्म और ऊर्ध्व तथा अधः संशोधन अर्थात् (रेचन ऊर्ध्वाधः) आदि क्रिया से जीतना अर्थात् शमन करना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ वयोविचारः ।

वालयमाषोङ्गशाद्वृष्णान्मध्यमासस्तेस्ततः । वृद्धूत्वमूर्ध्वं विज्ञेयं वयोमानमिति विज्ञा ॥ ९ ॥

आयु विचार—अर्थात् आयु का मान (परिमाण)—सोलह वर्ष तक वाल्यकाल, सोलह से सत्तर वर्ष तक मध्यकाल और इससे ऊपर वृद्धकाल (वृद्धावस्था) इस प्रकार तीन तरह की आयु का मान जानना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ प्रकृतिः ।

अष्टतिरददसौहृदः कृतज्ञः कृशप्रधो धमनीततः प्रलापी ।

द्वृतगतिरटनोडनवस्थितारमा वियति च गच्छति संभ्रमेण सुसः ॥ १ ॥

अव्यवस्थितमतिश्वलदृष्टिमन्दरत्वधनसञ्जयमित्रः ।

किञ्चिदेव विलपरयनिबद्धं मारुतप्रकृतिरेष मनुष्यः ॥ २ ॥

वातादि प्रकृति के मनुष्यों के लक्षण—जिस मनुष्यों को धैर्य न हो, मित्रता स्थिर न हो, कृतज्ञ हो, दुर्बल हो, कटुवादी, फैली हुई सिराओं वाला, प्रलापी हो, शीघ्रगामी हो, बहुत भ्रमण करने वाला हो, चित्त स्थिर न हो, स्वप्नावस्था में आकाश में उड़ता हुआ उसको मालूम पड़े । कार्य अव्यवस्थित हो, तुङ्ग चक्रल हो, दृष्टि चक्रल हो, रक्त, धन और मित्रादि कम हों और कोई-कोई विलाप अधिक करने वाला हो तो उस मनुष्य की वातज्ञ प्रकृति जाननी चाहिये ॥ १-२ ॥

मेघावी निपुणमिति प्रगत्वभवका तेजस्वी लमितिषु दुनिवारवीर्यः ।

सुषुप्तः सन्कनकपलाशकर्णिकारान् संपश्येदपि च हुताशविदुदुष्कः ॥ ३ ॥

न अयात्प्रमेदनतेष्वस्तुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानपरः ।

भवतीह सदा व्यथितास्थगतिः स भवेदिह पित्तमयप्रकृतिः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य मेघावी हो, चतुर हो, उचित कहने वाला, तेजस्वी, समाज में—दुःख निवारण का पराक्रम वाला हो, स्वप्नावस्था में सुवर्ण, पलाश, कनेर, अझि, विजली और उल्का आदि देखे, भय के समय भी भय न करे, वर्मणियों के प्रति मृदु न हो, शरणागत को शान्ति देने वाला और क्षेत्रों से भय करने वाला हो वह अर्थात् ऐसा मनुष्य वित्तज प्रकृति वाला समझना चाहिये ॥ २-४ ॥

शुक्राचः स्थरकुटिलालिनीलकेशो लघमीवाज्जलदमृदसिहघोषः ।

सुषुप्तः सन्सकमलहंसचक्रवाकान् संपश्येदपि च जलाशयान्मनोज्ञान् ॥ ५ ॥

रक्तान्तनेत्रः सुविभक्त्वात्रः स्थिरच्छ्विः स्वत्वगुणोपपश्चः ।

क्षेत्रशक्त्वा मानयिता गुरुणां ज्येष्ठो बलासप्रकृतिर्मनुष्यः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य रवेत नेत्र वाला हो, दृढ़, टेढ़े और अमर के समान केश वाला हो, लक्ष्मीवान हो, वाणी, मैंस, मृदू और सिंह जैसी गम्भीर हो, स्वप्नावस्था में कमल, हृस, चक्रवाक और सुन्दर जलाशयों को देखे, नेत्र के अन्तभाग लाल हो, अच्छे गठन का शरीर हो, छवि लिंग अर्थात् सौम्य हो, सत्त्वगुणयुक्त हो, कलेश को सहन करने वाला हो और श्रेष्ठों का मान करने वाला हो, वह अर्थात् ऐसा मनुष्य कफज प्रकृति वाला समझना चाहिये ॥ ५-६ ॥

द्वयोर्बां तिसूणां वापि प्रकृतीनां तु लक्षणैः । ज्ञात्वा संसर्गजा वैश्यः प्रकृतीरभिदश्येत् ॥ ७ ॥

जिस मनुष्य में दो-दो दोषों अथवा तीन-तीन दोषों वाले लक्षण मिलें उन्हें अर्थात् दो दोष वाले को द्वन्द्व और तीनों दोषों वाले को विदोषज प्रकृति का वैद्य को जानना चाहिये ॥ ७ ॥

विषजातो यथा कीटोन विषेण विपश्यते । तद्वप्तप्रकृतयो गत्यं शक्तुनुवन्ति न वाधितुम् ॥ ८ ॥

जिस प्रकार विष से उत्पन्न कीड़े विष से पीड़ित नहीं होते उसी प्रकार इन दोषादिकों से इन दोषों वाले पुरुष भी पीड़ित नहीं होते ॥ ८ ॥

अथ आरोग्यलक्षणम् ।

मङ्गलाचारसंपत्तः परिवारस्तथाऽत्तुरः । शहधानोडनुकूलश्च ग्रन्थतद्रथ्यसंग्रहः ॥ १ ॥

सत्यलक्षणसंयुक्तो भक्तिवैद्यद्विजातिषु । चिकित्सायामनिवेदस्तदारोग्यस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

आरोग्य के लक्षण—जो मनुष्य मंगल आचारों से युक्त हो, परिवार से युक्त हो, शद्ग्रावान

हो, स्वभाव अनुकूल हो, अच्छी तरह द्रव्य का संग्राही हो, सत्त्वगुणयुक्त हो, वैद्य-ब्राह्मण का भक्त हो और चिकित्सा करने में विरक्त न हो ये सब आरोग्य के लक्षण कहे हैं ॥ १-२ ॥

अथ मानपरिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रथ्याणां जायते क्वचित् । अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमप्रोक्ष्यते मथा ॥ १ ॥

परिभाषा—मान अर्थात् परिमाण (तौल) के बिना कहीं भी द्रव्यों का योग नहीं किया जा सकता, इस लिये प्रयोग (औषधियों के योग) में कार्य करने के निमित्त यहाँ पर मैं (अन्यकर्ता) मान कहता हूँ ॥ १ ॥

मानं च द्विविधं प्रोक्षं कालिङ्गं मागधं तथा । कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठमिति मानविदो विदुः ॥ २ ॥

मान (तौल) दो प्रकार का कहा गया है कालिङ्ग मान और मागध मान—परन्तु कालिङ्गमान से मागधमान को मान के ज्ञाताओं ने ब्रेष्ट कहा है ॥ २ ॥

असरेणुर्णुधैः प्रोक्षांश्चाशङ्किः परमाणुभिः । असरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ ३ ॥

मागध मान की परिभाषा—बुद्धिमानों ने तीस परमाणुओं का एक 'त्रसरेणु' कहा है । और त्रसरेणु का ही पर्यायवाची शब्द 'वंशी' कहा है ॥ ३ ॥

जालान्तरगतैः सूर्यकरैवंशी विलोक्यते । षड्वंशीभिर्मर्मीचिः स्थात्ताभिः षड्भिर्मर्मीचिः ॥ ४ ॥

जाली अर्थात् जंगल के अन्तर्गत गये हुए सूर्य की किरणों में 'वंशी' दिखाई देता है अर्थात् किरणों के प्रकाश में उड़ते हुए रजक जो दिखाई देते हैं उन्हें ही 'वंशी' कहते हैं । और दू वंशी की एक 'मरीचि' होती है और दू मरीचि की एक 'राई' होती है ॥ ४ ॥

तिसूभी राजिकाभिश्च सर्वपः प्रोक्ष्यते बुधैः । यवोऽष्टसर्वपैः प्रोक्षो गुज्जा स्यात्सञ्चतुष्यम् ॥ ५ ॥

पणितों ने ३ राई का एक 'सर्सो' कहा है, और ४ सर्सो का एक 'व' तथा ४ ज्व जी एक 'गुज्जा' अर्थात् १ रत्ती होती है ॥ ५ ॥

षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्थान्मासको हेमधानकौ । माषेष्वतुभिः ज्ञाणः स्थाद्वरणः स निगद्यते ॥

टङ्कः स एव कथितस्तद्रथ्यं कोल उच्यते । छुद्रभो वटकश्चैव द्रङ्गुणः स निगद्यते ॥ ७ ॥

६ रत्ती का 'मासा' होता है और उसके पर्यायवाची शब्द 'हेम' और 'धानक' (धान्यक) है ॥ और ४ मासों का एक 'शाण' होता है और उसी को 'धरण' और 'टङ्क' भी कहते हैं । और दो टङ्क का एक 'कोल' कहा जाता है । और कोल का पर्यायवाची शब्द क्षुद्रभ, वटक और द्रङ्गुण कहे जाते हैं ॥ ६-७ ॥

कोलध्यांतु कर्षः स्थात्तस्प्रोक्षः पाणिमानिका । अक्षः पित्तुः पाणितलं किञ्चिपाणिश्च तिन्दुकम् विद्वालपदकं चैव तथा षोडशिका मता । करमध्यं हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ ९ ॥

बदुङ्वरं च पर्यायैः कर्षं एव निगद्यते ।

दो कोल का एक 'कार्ष' होता है और कर्ष के पर्यायवाची शब्द—पाणिमानिका, अक्ष, पित्तु, पाणितल, किञ्चित्पाणि, तिन्दुक, विद्वालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह तथा उदुम्वर आदि कहे जाते हैं ॥ ८-९ ॥

स्थाकर्षभ्यामध्यपलं शुक्रिरष्टमिका तथा ॥ १० ॥

१. परमाणु-परिभाषा—

जालान्तरगते भानौ यत्पूर्कम् इत्यते रजः ।

तस्य त्रिशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥

अर्थात् जालियों में गये हुए सूर्य की किरणों में जो सूक्ष्म रजकण दिखाई पड़ते हैं उस एक कण के तीसवें भाग को परमाणु कहते हैं ।

दो कर्ष का एक अर्ध पल होता है और उसी को शुक्ति तथा अष्टमिका कहते हैं ॥ १० ॥

शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिरामं चतुर्थिका । प्रकुञ्जः षोडशी विश्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ११ ॥

दो शुक्ति का पल जानना चाहिये और मुष्टि, आत्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्ज, षोडशी और विश्व आदि पर्यायवाची नाम पल के कहे जाते हैं ॥ १२ ॥

षलाभ्यां प्रस्तुतिर्ज्ञेया प्रसुतश्च निगच्यते । प्रस्तुतिर्यामल्लिः स्यात्कुञ्जवोऽर्धशरावकः ॥ १२ ॥

अष्टमामं च विज्ञेयं कुञ्जाभ्यां च मानिका । शरावोऽष्टपलं तद्बृज्ञेयमन्न विचक्षणः ॥ १३ ॥

दो पल की एक प्रस्तुति (पसर) जाननी चाहिये और इसी को प्रसुत भी कहते हैं । और दो प्रस्तुति की एक अब्जली होती है इसी के पर्यायवाची शब्द कुञ्जव, अर्धशरावक तथा अष्टमान जानना चाहिये । दो कुञ्जव की एक मानिका होती है इसी को शराव तथा आठ पल का मान होने से अष्टपल भी विद्वान् कहते हैं ॥ १२-१३ ॥

शरावाभ्यां भवेयप्रस्थश्चतुर्ष्यस्थैस्तथाऽऽष्टपलं च तत् ॥ १४ ॥

दो शराव का एक 'प्रस्थ' तथा ४ प्रस्थ का एक 'आठक' होता है और इसी के पर्यायवाची शब्द भाजन, कंसपात्र और ६४ पल का मान होने से चतुर्ष्यपिल भी कहते हैं ॥ १४ ॥

चतुर्भिराठकैद्रोणः कलशो नहवणोऽर्थमः । उन्मानश्च घटो रशिर्द्वेणपर्यायसंक्षितः ॥ १५ ॥

चार आठक का एक द्रोण होता है और कलश, नल्वण, अर्थण, उन्मान, घट और राशि ये द्रोण के पर्यायवाची शब्द हैं ॥ १५ ॥

द्वोणाभ्यां शर्पुक्षसभी च चतुर्ष्यिशरावकः । शूर्पभ्यां च भवेद् द्रोणी वाहो गोणी च सास्मता ॥

दो द्रोण का एक सूर्प होता है और कुम्भ तथा ६ शराव का होने से चतुर्ष्यिशरावक इसके (सूर्प के) पर्यायवाची शब्द हैं । दो शूर्प की एक द्रोणी होती है और वाह तथा गोणी द्रोणी के पर्यायवाची शब्द कहे जाते हैं ॥ १६ ॥

द्रोणीचतुर्ष्यं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः । चतुर्ष्यसहस्रपलिका षणवत्त्वधिका च सा ॥ १७ ॥

चार द्रोणी का एक खारी होता है । विद्वान् ४०९६ (चार हजार छानवे) पलों को खारी कहते हैं ॥ १७ ॥

पलान्नं द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तिः । तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवं विनिश्चयः ॥ १८ ॥

दो हजार पलों को एक भार कहते हैं तथा १०० (सौ) पलों को एक तुला कहते हैं, सर्वत्र शार्कों में यही निश्चित है ॥ १८ ॥

साष्टकाद्विश्वानि कुञ्जवः प्रस्थमाठकम् । राशिर्गोणी खारिकेति यथोच्चरचतुर्गुणाः ॥ १९ ॥

माष, टङ्क, अक्ष, विश्व, कुञ्जव, प्रस्थ, आठक, राशि, गोणी और खारी ये सब प्रत्येक उत्तरोत्तर एक दूसरे की अपेक्षा चौगुने होते हैं ।

वर्थत्—४ माष (मासे) का १ टङ्क, ४ टङ्क का २ अक्ष, ४ अक्ष का १ विश्व,
४ विश्व का १ कुञ्जव, ४ कुञ्जव का १ प्रस्थ, ४ प्रस्थ का १ आठक,
४ आठक की १ राशि, ४ राशि की १ गोणी, ४ गोणी की १ खारी,
समग्रन्ती चाहिये ॥ १९ ॥

गुजादिमानमारभ्य यावरस्यात्कुञ्जवस्थितिः । द्रवाद्र्ष्टशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं सर्वं मतम् ॥ २० ॥

प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्वद्वार्द्योः । मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न कवित्समूतम् ॥ २१ ॥

द्रव (जल-दुग्धादि के समान), गीले (आर्द्र) तथा सूखे हुए द्रव्यों के मान के विषय की परिभाषा कहते हैं—गुजा आदिक (रक्ती से लेकर कुञ्जव मान तक द्रव, आर्द्र तथा शुष्क द्रव्यों का मान योगों में (औषध बनाने में) बराबर देना चाहिये और प्रस्थ आदिक मान से ऊपर द्रव

तथा आर्द्र द्रव्यों को योगों में (औषध बनाने में) सूखे द्रव्यों से द्विगुण (दूना) देना चाहिए । किन्तु तुला का मान जिस स्थान में हो वहाँ द्विगुण नहीं देना चाहिये जितना लिखा हो उतना ही देना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

मृद्वृद्वृवेणुलोहादेभाण्डं चतुर्षुलम् । विश्वीणं च तथोच्चं च तन्मानं कुञ्जवं वदेत् ॥ २२ ॥

कुञ्जवसंक्रमक भानपात्र की परिभाषा—मिट्टी, वृक्ष (काठ), वास अथवा लोहे के बने हुए चार घंगुल लम्बे चौड़े तथा उन्चे पात्र (भानपात्र) को कुञ्जव कहते हैं ॥ २२ ॥

घदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते । तद्वाज्ञैव स योगो हि कथ्यतेऽन्न विनिश्चयः ॥ २३ ॥

हति सागरधर्षपरिभाषा ॥

जो औषध जिस योग में पहले कहा हुआ हो उसी औषध के नाम से वह योग कहा जाता है, यहाँ ऐसा ही निश्चित किया गया है । जैसे लिखा हुआ हो 'रालाऽस्तु महादारु नगरैरण्डजं शृतम्' तो सर्व प्रथम रास्ता रहने से यह योग रास्तादि कहा जाता है ॥ २३ ॥

अथ कलिङ्गपरिभाषा ।

रिथ्यतिनास्थेव मात्रायाः कालमस्त्रिवयो चलम् । प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्री प्रकल्पयेत् ॥

कलिङ्गमान की परिभाषा—मात्रा की कोई स्थिति (परिमाण) नहीं है, अतः वैद्य को समय, योगी की अग्नि, वय, वल, प्रकृति, दोष और देश को देखकर मात्रा निश्चित कर लेनी चाहिये ॥ १ ॥

यतो मन्दाप्तयो हस्त्वा हीनसत्त्वा न नाशः कल्पी । अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोत्यते सुज्ञसम्भाता ॥

जब कि कलिङ्ग में मनुष्य मन्दाप्ति वाले, छोटे शरीर वाले और हीनवल वाले हैं, इस लिये उनके योग्य बुद्धिमानों की सम्मति से स्वीकृत मात्रा (औषध का परिमाण) कहते हैं ॥ २ ॥

यत्वो द्वादशभिर्गैरसंवर्षयैः प्रोत्यते बुधैः । यद्वद्वृयेन गुज्जा द्वादशशुक्लो वज्ञ उच्यते ॥ ३ ॥

बुद्धिमान लोग बारह श्वेत अर्थात् पीले सरसो का एक जव कहते हैं, दो जव की एक गुज्जा (रक्ती) और तीन रक्ती का एक वल कहते हैं ॥ ३ ॥

मात्रो गुज्जाभिरदायिः सप्तिर्विचित्रः । स्थाचतुर्मार्गकैः शाणः स निष्कल्प्तु वर्णयते ॥

आठ रक्ती का १ माष (मासा) और कहीं-कहीं ७ रक्ती का भी एक मासा होता है । चार मासे का एक शाण होता है, और शाण ही को निष्क और टक्क कहते हैं ॥ ४ ॥

ग्राहाणो माषकैः षडभिः कर्षः स्थादशमाषकैः । चतुर्षुक्षः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥

चतुर्षुक्षलैश्च कुञ्जवः प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥ ५ ॥

हति कलिङ्गपरिभाषा ॥

छः मासे का एक ग्राहण और दस मासे का एक कर्ष होता है । चार कर्ष का एक पल कहा जाता है, बुद्धिमान १० शाण के बराबर उसे मानते हैं । चार पल एक कुञ्जव होता है और प्रस्थ आदिकों का मान पूर्वकथित मान की तरह ही (जैसे कि मागध मान में कहा है) मानना चाहिये ॥ ४ ॥

मानचक्र—

मागधमान—

३० परमाणु का १ वसरेणु ।

६ व्रसरेणु का १ मरीचि ।

६ मरीचि का १ राई ।

६ राई का १ सर्सो ।

८ सर्सो का १ जौ

४ यव की १ गुज्जा ।

६ गुज्जा का १ मासा ।

४ मासे का १ शाण = $\frac{1}{3}$ तोला ।

योगरत्नाकरः ।

२ शाण का १ कोल = ५ तोला ।
 २ कोल का १ कर्ष = १ तोला ।
 २ कर्ष का १ अर्धपल = २ तोला ।
 २ अर्धपल का १ पल = ४ तोला ।
 २ पल की १ प्रसूति = ८ तोला ।
 २ प्रसूति की १ अंडलि = १६ तोला ।
 २ अंडलि की १ मानिका = ३२ तोला ।

१२ सर्सों का १ जौ ।
 २ जौ की १ रत्ती (गुआ)
 १ रत्ती का १ वल ।
 ७, ८ रत्ती का १ मास (मासा) ।

मागध मान

६ रत्ती का १ मासा
 ४ मासे का १ शाण (टक्क)
 २ शाण का १ कोल
 २ कोल का १ कर्ष
 २ कर्ष का १ अर्धपल (शुक्कि)
 २ शुक्कि का १ पल
 २ पल की १ प्रसूति
 २ प्रसूति की १ अंडलि (कुडव)
 २ कुडव की मानिका (शराब)
 २ शराब का १ प्रस्थ
 ४ प्रस्थ का १ आढक
 ४ आढक का १ द्रोण
 २ द्रोण का १ शूर्प = २०४८ तोला ।
 २ शूर्प की १ द्रोणी = ४०९६ तोला ।
 ४ द्रोणी की १ खारी = १६३८४ तोला ।
 १०० पलों का १ तुला = ४०० तोला ।
 २००० पलों का १ भार = ८००० तोला ।

कलिङ्ग मान

७, ८ रत्ती का १ मासा
 ४ मासे का १ शाण (टक्क)
 ६ मासे का १ गद्याण
 १० मासे का १ कर्ष
 ४ कर्ष का १ पल
 ४ पल का १ कुडव

२ मानिका का १ प्रस्थ = ६४ तोला ।
 ४ प्रस्थ का १ आढक = २५६ तोला ।
 ४ आढक का १ द्रोण = १०२४ तोला ।
 २ द्रोण का १ शूर्प = २०४८ तोला ।
 २ शूर्प की १ द्रोणी = ४०९६ तोला ।
 ४ द्रोणी की १ खारी = १६३८४ तोला ।
 १०० पलों का १ तुला = ४०० तोला ।
 २००० पलों का १ भार = ८००० तोला ।

कलिङ्ग मान-

४ मासे का १ शाण ।
 ६ मासे का १ गद्याण ।
 १० मासे का १ कर्ष ।
 ४ कर्ष का १ पल = १० शाण ।

आधुनिक मान

- = ६ रत्ती
- = ६ मासा
- = ६ मासा (इं आधा तोला)
- = १२ मासा (१ तोला)
- = २ तोला
- = ४ तोला
- = ८ तोले
- = १६ तोले
- = ३२ तोल (६ छ० २ तोल)
- = ६४ तोल (१२ छ० ४ भर)
- = २५६ तोल (३ सेर ३ छ० १ भर)
- = १०२४ तोल (१२ सेर १२ छ० १ भर)
- = २०४८ तोल (२५ सेर ९ छ० ३ भर)
- = ४०९६ तोल (१ मन ११ सेर ३ छ० ४ भर)
- = १६३८४ तोल (५ मन ४ सेर १२ छ० ४ भर)
- = २००० तोल (२ मन २० सेर)
- = ४०० तोल (५ सेर)

आधुनिक मान

- = ६ रत्ती या १ मासा
- = ४ मासे
- = ६ मासे (आधे तोला)
- = १ भर वा तोल
- = ४ तोल
- = १६ तोल (३ छ० १ भर)

इति मानचक्र

धान्यादिफलकन्दशाकगुणाः ।

अथ धान्यादिफलकन्दशाकगुणाः ।

भेता रक्तः स्थूलसूचमा ये चान्ये शालयः शुभाः । स्वादुपाकरसाः चिरधा वृष्या बद्धापवर्चसः ॥
 अब धान्यादि, फल, कन्द और शाक के गुण कहते हैं—शालिधान्य के गुण—शेत, रक्त,
 स्थूल अथवा सूक्ष्म जितने भी शालिधान्य हैं सब शुभ, पाक में स्वादु, रस में चिरधा, वृष्या और
 बद्ध अर्थात् बंधा हुआ थोड़ा मल निकालने वाले होते हैं ॥ १ ॥

कषायानुरसाः पथ्या लघ्वो मूत्रला हिमाः । वष्टिका व्रीहिषु श्रेष्ठा गौरकासितरौरतः ॥ २ ॥

साठी धान के गुण—साठी धान रस में कषाय, पथ्य, लघु (हल्का), मूत्रकारक, शीतल और
 त्रिहितान्यों में श्रेष्ठ है, वह साठी शेत अथवा शेत-कृष्ण किसी भी वर्ण का हो ॥ २ ॥

रुक्षः शीतो गुहः स्वादुः सरो विद्वातकृष्टयः । सन्धानकारी मधुरो गोधूमः स्वैर्यकृत्सरः ॥३॥

यव के गुण—यव रुक्ष, शीतल, गुरु, स्वादु, सारक और वायु तथा विद्व (पुरोष) करने
 वाला होता है ॥ ३ ॥

गेहूं के गुण—गेहूं सन्धानकारी (जुटानेवाला), मधुर, शरीर स्थिर करने वाला और
 सारक होता है ॥ ३ ॥

युगान्धरशिदोषज्ञः स्वादुः पथ्यो रसायनः ।

गोजई के गुण—गोजई स्वादु, पथ्य और रसायन है ॥ ३३ ॥

मुद्गाढकीमसूरादि शिर्वीधान्यं विवन्धकृत ॥ ४ ॥

कषायं स्वादु सकृप्राहि कद्ग्राकं हिमं लघु । मेदः श्लेषमात्रपित्तेषु हितं लेपोपसेकयोः ॥ ५ ॥
 मूंग, रहर, मसूर आदि का गुण—मूंग, रहर और मसूर आदि जिन्हें शिर्वीधान्य कहते हैं वे
 सब विवन्धकारी, कषाय, स्वादु, संग्राही, पाक में कट्ठ, शीतल, लघु, मेद, कफ, रक्त और पित्त तथा
 लेप और सेक करने में हितकर हैं ॥ ४-५ ॥

मुद्रस्तु पथ्यः संशुद्धणकण्ठिरोगिणाम् । बातानुलोभी कौलस्थो गुहमदूनीप्रत्यनिजित ॥६॥

मूंग और कलाय के गुण—मूंग पथ्य, ब्रण, कण्ठ तथा अक्षिरोग वालों के दोषों को शुद्ध करने
 वाला, वात को अनुलोभन करने वाला और कलाय गुलम, तूनी और प्रतूनी रोग को जीतने
 वाला होता है ॥ ६ ॥

बरोऽन्न मुद्रोऽपवचलः कलायस्तद्वात्तलः । चणको बातलस्तद्वात्तलः कफवातहत ॥७॥

यहाँ पर मूंग श्रेष्ठ है क्योंकि अल्प चल अर्थात् सारक होता है और कलाय अत्यन्त
 बातकारक है ॥

चना और कुलथी के गुण—चना कलाय जैसा ही बातकारक है और कुलथी कफ और वात
 को हरण करने वाली है ॥ ७ ॥

बास्तुकं ग्रहणीकुष्ठिदोषार्थं हरं सरम् । तद्वात्तुदला चिह्नी काकमाची च मेधिका ॥ ८ ॥

शाकादि के गुण—वायुआ, चिह्नी, काकमाची और मेधी के शाक का गुण—वायुआ—ग्रहणी, कुष्ठ,
 त्रिवोष और अर्श को मिटाने वाला तथा सारक है, इसी प्रकार छोटे दलवाली चिह्नी, काकमाची
 और मेधी के शाक को भी जाना चाहिये ॥ ८ ॥

तन्दुलीयो हिमो रुद्धो विषपित्तात्रकासितित् । चाङ्गेरी कफवातात्त्वं संग्रहण्यतिसारजित् ॥९॥

तण्डुलीय शाक के गुण—चाङ्गेरी कफ, वात, रक्त, संग्रहणी और अतीसार को हरने वाला है ॥ ९ ॥

चाङ्गेरी के गुण—चाङ्गेरी कफ, वात, रक्त, संग्रहणी और अतीसार को हरने वाला है ॥ ९ ॥

फलं विदोषशमनं भूलं चास्य विरेचनम् ।

परोरा के पत्र, नाल, फल और मूलादिक का गुण—परोरा हृद, शृग्मनाशक, स्वादु, शीतल, स्विचारक है, परोरे का पत्ता पित्त का नाश करने वाला, नाल कफ का नाश करने वाला, फल त्रिदोष का शमन करने वाला और मूल रेचन करने वाला है ॥ १०-१०३ ॥

पित्तलं दीपनं भेदि वातमं वृहतीद्युधम् ॥ ११ ॥

दोनों वृहती के गुण—दोनों वृहती पित्त करने वाली, दीपन, भेदी और वात का नाश करने वाली है ॥ ११ ॥

कारवेञ्चं सतिर्कं स्यादीपनं कफजित्परम् । कर्कोटकं उवरभासददुकुष्ठिविषापद्मम् ॥ १२ ॥

करेला का गुण—करेला तिक्त, दीपन और कफ का नाश करने वाला है ॥

कर्कोटक (ककोड़ी) के गुण—कर्कोटक ज्वर, श्वास, ददु, कुछ और विष को हरण करनेवाली है ॥

वातार्कं कफवातम्नं किञ्चित्पित्तप्रकोपनम् । सरलं मूत्रालं प्रोक्तं वलकृद्वालमेव तत् ॥ १३ ॥

भेटा के गुण—भेटा—कफ और वात का नाश करने वाला, थोड़ा पित्त कुपित करनेवाला, सारक और मूत्रकारक कहा है इसमें वाल ही अर्थात् छोटा ही फल भेटे का लेना चहिये ॥ १३ ॥

भेण्डी त्वं अलसा सोणा ग्राहिका रुचिकारिका ।

भेण्डी (भिण्डी) के गुण—भेण्डी अम्लरस वाली, उण, आही और रुचिकारक होती है ॥ १३३ ॥

विस्तीफलं स्वादु शीतं स्तम्भन लेखनं गुरु ॥ पित्तासदाहशोफद्वं वाताध्यानविवन्धकृत् ।

विस्तीफल के गुण—विस्तीफल स्वादु, शीतल, स्तम्भन, लेखन और गुरु है, तथा पित्त, रक्त, दाह और शोथ का नाश करने वाला, वात, अधमान और विवन्ध करने वाला है ॥ १४-१४३ ॥

कृष्माण्डं वृंहणं शीतं गुरु पित्तासदवातजित् ॥ १५ ॥

बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् । पक्षं नातिहिमं स्वादु सारकं दीपनं लघु ॥ १६ ॥

वस्तिशुद्धिकरं चेतो रोगदोषव्रयापद्मम् ।

कुष्माण्ड (कोहड़ी शेत) के गुण—कुष्माण्ड—वृंहण, शीतल, गुरु, पित्त, रक्त और वात को जीतने वाला है । कुष्माण्ड का बाल (छोटा) फल पित्तनाशक और शीतल है, मध्यम (अधपका) फल कफकारक है और पका हुआ फल अत्यन्त शीतल नहीं अर्थात् कुछ शीतल, स्वादु, सारक, दीपन और लघु होता है तथा वस्ति शुद्ध करने वाला, चैतन्यकारक रोग तथा तीनों दोषों को हरण करने वाला होता है ॥ १५-१६३ ॥

पिष्टुरुम्बीफलं वृंहणं कफपित्तदर्शं गुरु ॥ १७ ॥

मीठी लौकी के फल का गुण—मीठी लौकी का फल वृंहण, कफ और पित्त का हरण करने वाला और गुरु होता है ॥ १७ ॥

कटुतुम्बी हिमा हृदा पित्तकासकफापहा ।

कटुतुम्बी लौकी के फल के गुण—कटुतुम्बी लौकी (तितलीकी) के फल शीतल, हृद, पित्त, कफ और कास के हरण करने वाले होते हैं ॥ १७३ ॥

अपुसं मूत्रलं शीतं रुचं पित्तासदकृच्छजित् ॥ १८ ॥

तत्पक्षमुष्णमस्तं स्यादित्तलं कफवातजित् ।

त्रपुस (खीरा ककरी)—मूत्रकारक, शीतल, रुच, पित्त, रक्त और कृच्छ्र रोग को जीतने वाला होता है । त्रपुस का पका हुआ फल उण, अम्ल, पित्तनाशक, कफ और वात का हरण करने वाला होता है ॥ १८-१८३ ॥

१. देहात में भतुहा के नाम से प्रसिद्ध है ।

कोशातकी लघुस्तिका रुचाऽमाशयशोधिनी ॥

शोफपाण्डुवरल्लीहकुष्ठार्शःकफपित्तजित् । तत्पत्रं भेदनं शीतं लघु मेहविशोधजित् ॥ २० ॥

कोशातकी (तरोई) के फल पत्रादि के गुण—तरोई, लघु, तिक्त, रुक्ष, आमाशय शुद्ध करने वाली, शोथ, पाण्डु, उदर, ल्लीह, कुछ, अर्श, कफ और पित्त को जीतने वाली है, तथा तरोई के पत्ते—भेदन, शीतल, लघु, मेह और शोष को जीतने वाले हैं ॥ १९-२० ॥

शतपुष्पा कटुः द्विरक्षा तिक्तोण्णाश्लेषमातहा । रुच्या वस्तिहिता नेत्रया बद्धविट्किमिशुक्तुत् ॥

शतपुष्पा (सौफ) के गुण—सौफ कटु, द्विरक्षा, तिक्त, उण, श्लेषम और वातनाशक, रुचि, कारक, मूत्राशय को हितकारक, नेत्र को हितकारक, मलावरोधक, क्रिमि और शुक्रनाशक है ॥ २१ ॥

चक्रवर्यभिर्भं शाकं गुणैर्वास्तुष्टवन्धमतम् । सरं शीतं त्रिदोषद्वं लघु दीपनपाचनम् ॥ २२ ॥

चक्रवर्ति (चक्रवड) के शाक के गुण—चक्रवड के शाक गुण में वधुये के शाक के तरह सारक, शीतल, त्रिदोषव्यवहार, लघु, दीपन और पाचन होते हैं ॥ २२ ॥

शाकं तु सर्वोदाद्भूतं चक्षुर्घनं दाहि रोचनम् । बद्धविट्क बद्धमूत्रं गुरुणां च त्रिदोषकृत् ॥ २३ ॥

सर्वोदाद्भूत के शाक—सर्वोदाद्भूत के शाक नेत्रों के नाश करने वाले, दाहक, रोचक, मलावरोधकारक, मूत्रावरोधक, गुरु, उण, कफनाशक, शीतल, विद्रोषव्यवहार होते हैं ॥ २३ ॥

कौसुरभं स्वादु रुचोणं कफजित्पत्तलं लघु । चणकं शाकमुद्दिष्टं दुर्जरं कफवातकृत् ॥ २४ ॥

कौसुरभ के गुण—कौसुरभं स्वादु, रुक्ष, उण, कफनाशक, पित्तकारक और लघु होता है ॥ २३३ ॥

चणे के शाक के गुण—चणे का शाक दुर्जर, कफ और वात करने वाला होता है ॥ २४ ॥

शिशुश्वस्तीचणो लघुप्राणीहद्विदः कफवातजित् । तीचणोणो विद्रिष्टिष्ट्लीहत्रणग्रशाङ्गलपित्तजित् ॥

शिशुश्वस्तीचणो के गुण—सहजन का शाक तीक्ष्ण, लघु, आही, अधिकारक, कफ वात का नाश करने वाला, तीक्ष्ण, उण, विद्रिष्टि, म्लीहा, ब्रण, अम्लपित्त का नाशक है ॥ २५ ॥

अन्धान्तरे—

मधुशिशुः कटुस्तकः शोफद्वो दीपनः सदः । तत्पत्रं वातपित्तद्वं चक्षुर्घनं स्वादु शीतलम् ॥ २६ ॥

शिश्रग्जं कुसुर्भं स्वादुं कफपित्तहरं गुरु । सरः वायं गुरु प्राहि चक्षुर्घनं क्रिमिनाशनम् ॥ २७ ॥

मधुशिशु (मीठा सहजन) के गुण—मधुशिशु कटु, तिक्त, शोथव्यवहार, दीपक और सरक है । मधुशिशु के पत्ते व पुष्प के गुण—मधुशिशु के पत्ते वातपित्तनाशक, चक्षु को हितकर, स्वादु और शीतल होते हैं । और मधुशिशु के पुष्प—स्वादु, कफपित्तनाशक गुरु, कधाय, नेत्र को हितकर और क्रिमिनाशक होते हैं ॥ २६-२७ ॥

शोभाज्ञनकलं स्वादु कधायं कफपित्तजित् । शूलकृष्टव्यशासगुरुमधनं दीपनं परम् ॥ २८ ॥

सहजन के फल के गुण—सहजन के फल स्वादु, कधाय, कफपित्तनाशक, शूल, कुछ, क्षय, श्वास और गुरुण का नाश करने वाला और परम दीपन है ॥ २८ ॥

आद्रा कुसुरमधीरी कुर्यास्वादुसौगन्ध्यहृथ्यतः । शूष्का द्विरक्षा स्वादुपाका कधाया कटुका लघुः ॥

आद्रा कुसुरमधीरी (धनिया) के गीले और सूखे के भेद से गुण—गीली कुसुरमधीरी (हरी धनिया) स्वादु, सूखनियत और हृदय को तृप्त करने वाली है । और सूखी लिंग, स्वादुपाक, कधाय, कटु और लघु होती है ॥ २९ ॥

कदलीकुसुमं तिक्तं कधायं ग्राहिदीपनम् । उणवीर्यं बलासधनं तदगुणं चास्फुटं दलम् ॥ ३० ॥

कदली के फूल तथा शीत्रु पुटे हुए दल के गुण—कदली के फूल तिक्त, कधाय, ग्राही, दीपन, उणवीर्य और कफनाशक हैं और अस्फुट दल के भी ये ही गुण हैं ॥ ३० ॥

आगस्त्यपुष्पं शिशिरं चतुर्थज्वरशान्तिकृत् । नकान्ध्यनाशनं प्रोक्तं दीपनं श्लेषमपित्तनुत् ॥ ३१ ॥

अगस्त्य के फूल के गुण—अगस्त्य के फूल शीतल, चातुर्थिक ज्वर को शान्त करने वाले, रात्र्यान्ध्य (रत्नौधी) नाशक, दीपन और कफपित्तनाशक हैं ॥ ३१ ॥

सतिकं कटुकं पाके कषायं वातलं मतम् । आगस्त्यशिखः सद्गुणैः पुष्पस्य दुर्जरः ॥ ३२ ॥

और अगस्त्य-पुष्प तिक्त, पाक में कटु, कषाय और वातल है । अगस्त्य-शिख के गुण—अगस्त्य-शिख, अगस्त्य पुष्प के सद्गुण गुण वाला तथा दुर्जर होता है ॥ ३२ ॥

शतपत्री तरुण्युक्ता कणिका चारुकेसरा । सहा कुमारी गन्धाढ्या लाञ्छापुष्पातिमञ्जुला ॥ ३३ ॥

शतपत्री (गुलाब) के नाम—शतपत्री, तरुणी, कणिका, चारुकेसरा, सहा, कुमारी, गन्धाढ्या, लाञ्छापुष्पा और अतिमञ्जुला ये सब शतपत्री के नाम हैं ॥ ३३ ॥

शतपत्री हिमा द्वाद्या ग्राहिणी शुक्रला लघुः । दोषत्रयास्तजिन्द्रूपर्या तिक्ता कट्टीच पाचनी ॥

शतपत्री के गुण—शतपत्री शीतल, हृदय को हितकर, ग्राही, शुक्र-कारक, लघु, तीनों दोष और रक्त का नाशक, वर्णकारक, तिक्त, कटु और पाचन है ॥ ३४ ॥

मूलकं बालकं रुच्यं वीर्योऽनं पाचनं लघु । महत्तदेव रुचोर्योऽनं गुरु दोषत्रयप्रदम् ॥ ३५ ॥

मूली के छोटी बड़ी के भेद से गुण—छोटी मूली रुचिकारक, वीर्य में उष्ण, पाचन और लघु है और बड़ी मूली रुक्ष, उष्ण, गुरु और तीनों दोषों को उत्पन्न करने वाली होती है ॥ ३५ ॥

सूरणो दीपनो रुक्षः कफार्शः किमिजिङ्गुहुः । तद्दूदून्यो विशेषेण कफञ्चो रक्षपित्तकृत ॥ ३६ ॥

कन्दों के गुण—सूरण के गुण—सूरण दीपन, रुक्ष, कफ, अर्श, किमि-नाशक और लघु होता है । और जंगली सूरण के भी इसी प्रकार के गुण होते हैं विशेषता यह है कि वनसूरण कफनाशक और रक्षपित्त करने वाला होता है ॥ ३६ ॥

गृजनं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोऽनं लघु । संग्राहि रक्षपित्तशीर्घणीककवातजित् ॥ ३७ ॥

गजर का गुण—गजर मधुर, तीक्ष्ण, तिक्त, उष्ण, दीपन, लघु, संग्राही, रक्षपित्त, अर्श, ग्रहणी, कफ और वातनाशक है ॥ ३७ ॥

शीतलः कदलीकन्दो ग्राही रुचोऽस्त्रपित्तजित् । ईश्वकचायः कफङ्ग्राहातलः प्रदरे हितः ॥ ३८ ॥

कदलीकन्द के गुण—कदली कन्द शीतल, ग्राही, रुक्ष, रक्षपित्तनाशक, किन्नित् कषाय, कफ-कारक, वातकर्ता और प्रदर में हितकर है ॥ ३८ ॥

रुचाङ्गितपित्तकृद् गुरुवीं वातला गौरवाकुची । तिक्ता नोदिणिं पथ्या ग्रहण्यशीर्घणिकारनुत् ॥ ३९ ॥

गौर वाकुची के गुण—गौरवाकुची (श्वेत वाकुची) रुक्ष, अतिपित्तकारक, गुरु और वातकारक है तथा तिक्त, उदर रोगी के लिये अपथ्य, ग्रहणी और अर्श विकारनाशक है ॥ ३९ ॥

क्षुपजं मरिचं रुच्यं दोषोलं सर्वोरोगकृत् । विशेषतः प्रमेहाशीर्घणिकारेषु न शस्यते ॥ ४० ॥

क्षुपज मरिच के गुण—क्षुपज मरिच रुचिकारक, दोषकर्ता, सबं रोगों को करने वाला और विशेष करके प्रमेह और अर्श में अहितकर है ॥ ४० ॥

ब्रह्मर्मरीचं क्षुपजं ततोऽस्त्र्यश्यतरं गुणैः ।

ब्रह्मर्मरीच के गुण—ब्रह्मर्मरीच क्षुपज मरिच से भी कम गुणकारी है ॥ ४० ॥

क्षीरा कर्कटिका त्वचन्या राजकर्कटिका च सा ॥ ४१ ॥

कर्कटी (क्षीरा कर्कटी) क्षीरा कर्कटिका और दूसरी राजकर्कटिका है और सुदीर्घी, राजिलफला, वाण और कुलक कर्कटी कहते हैं ॥ ४१ ॥

सुदीर्घी राजिलफला बाणैः कुलककर्कटी । वालुकं श्लेष्मलं स्वादु लघु भेदि च पित्तजित् ॥ ४२ ॥

मधुराम्लरसं पित्तरक्तजित्पक्षुत्तमम् ।

वालुक (चिमड़) के गुण—वालुक कफकारक, स्वादु, लघु, भेदी और पित्तनाशक है । मधुर अम्ल रस वाला, पित्त रक्तनाशक और पका हुआ उत्तम होता है ॥ ४२-४२ ॥

अभिदीसिकरं षेतं शाकूटममलं सरम् । हुर्नामिक्षिमेहन्तं कफपित्तहरं परम् ॥ ४३ ॥

शाकूट (शाकूट षेत) के गुण—षेत शाकूट अभिदीसिकारक, दोषरहित और सारक है, अर्श, क्रिमि और प्रमेह नाशक तथा अत्यन्त कफ और पित्त हरण करने वाला है ॥ ४३ ॥

हुर्नामिहच्छ्यामलशाकूटं तु मन्दार्जिविष्मूलविवन्धहन्तु ॥

श्यामल शाकूट के गुण—श्यामल शाकूट अर्शनाशक, मन्दार्जि, पुरीष, मूत्र और विवन्ध-हरण करने वाला है ।

द्राश्वाबालफलं कदूषणविशदं पित्तास्तदोषप्रदं मध्यं चाम्लरसं रसान्तरगतं रुच्यातिवद्विप्रदम् ॥

पक्षं चेन्मधुरं तथाऽम्लसहितं तुष्णाद्विपत्तापहं पक्षं शुक्तमं श्रामातिशमनं संतर्पणं पुष्टिदम् ॥

फलों का गुण—द्राश्वा के बाल, मध्य और पके हुए फलों के गुण—दाल के छोटे फल कड़, उष्ण, विशद और पित्त रस दोष करने वाले होते हैं । और मध्य अर्थात् अधरके अम्लरस वाले, अन्तर में रस रहने से अति रुचिकर और अधिकारक होते हैं । पके हुए दाल—मधुर तथा अम्ल सहित, तुष्णा रक्षपित्त नाशक होते हैं । और पक कर सूखे दाल श्रम और पीड़ा नाशक, संतर्पक और पुष्टिकारक हैं ॥ ४४ ॥

द्राश्वा पका सरा शीता चक्षुद्या वृंहणी गुरुः । हन्ति तुष्णाद्वरश्वासवान्तिवाताच्चकामलाः ॥

कुच्छ्याद्विपत्तसंसोहदाशोषमदत्ययान् । आमा स्वस्त्रपुणा गुरुं सैवाम्ला रक्षपित्तजित् ॥ ४५ ॥

पकी हुई दाल सारक, शीतल, नेत्र की हितकारी, वृंहण और गुरु है, तथा तुष्णा, च्वर, श्वास, वमन, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्षपित्त, मोह, दाह, शोष और मदात्यय का नाश करती है । कक्षी दाल कम गुणवाली, गुरुता करने वाली, अम्ल तथा रक्षपित्त की जीतने वाली होती है ॥ ४५-४६ ॥

आओ ग्राही प्रमेहाद्वकपित्तविष्मालायेत् । तत्कलं वालमत्यमलं रुचं दोषत्रयास्तकृत् ॥ ४७ ॥

बद्धास्थित ताष्ठोवोक्तं वातहारि च पित्तलम् । पक्षं तु मधुरं वृच्यं स्त्रियं हृद्यं वलप्रदम् ।

गुरु वातहरं रुच्यं वृच्यं शीतमपित्तलम् ॥ ४८ ॥

संतर्पणं यः सकलेन्द्रियाणां बलप्रदो वृष्ट्यतमश्च हृद्यः ।

शीतुषु प्रहृष्टं प्रचुरं ददाति फलाधिराजः सहकार एव ॥ ४९ ॥

रसस्वस्य सरः जिग्धो रोचनो बलवर्णकृत् । आच्चीबीजं कषायं द्याच्छ्रूद्यतीसारनाशकृत् ॥ ५० ॥

आच्चपुष्पमतीसारकपित्तप्रमेहनुत् । अच्छुदोषहरं शीतं द्यच्छ्रुदातनाशनम् ॥ ५१ ॥

आच्चस्य पञ्चवं रुच्यं कफपित्तविष्मानम् ।

आम के गुण—(आम के फल कच्चे, मध्यवय के पके तथा आम्रस, दीज, पुष्प तथा पल्लव आदि के गुण)—आम का फलवाल अर्थात् छोटा अत्यन्त अम्ल, रुक्ष और तीनों दोषों तथा रक्त को करने वाला होता है । आम में जब गुठली हो जाती है वह भी बाल के सदृश ही गुण वाला तथा वातहारी और पित्तकारक होता है । पका हुआ आम मधुर, वृच्य, जिग्ध, हृद्य, बलप्रद, गुरु, वातहरण करने वाला, रुचिकारक, वर्णकारक, शीतल, पित्त नहीं करने वाला है तथा सम्पूर्ण शिद्रियों को तृप्त करने वाला बलदायक, वृच्य, हृद्य, दीज में अत्यन्त हृष्ट उत्पन्न करने वाला फलों का राजा आम है । पके आम का रस सारक, जिन्धन, रुचिकारक, बलवर्णी करती है । आम का दीज कषाय और वमन, अतीसार नाशक है । आम का पुष्प (मञ्जरी) अतीसार, कफ, पित्त, प्रमेहनाशक है तथा प्रदर के दोष को हरण करने वाला, शीतल, रुचिकारक और वातनाशक है । आम के पल्लव रुचिकारक और कफ-पित्तविनाशक हैं ॥ ४९-५१ ॥

पनसं शीतलं पकं जिग्धयं पित्तानिलापहम् ॥ ५२ ॥

वस्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्षपित्तचतुर्ष्यान् । आमं तदेव विष्मित्वा वातकं तुष्टरं गुरु ॥ ५३ ॥

ईष्वरकषायं मधुरं तद्वीजं वातलं गुरु । तत्कलस्य विकारधनं रुच्यं द्यवदोषनाशनम् ॥ ५४ ॥

कटहल के गुण (कच्चे, पक्के तथा बीज आदि के गुण) — कटहल पक्के शीतल, स्तिंश्व, पित्त वातनाशक, बलकारक, शुक्रदायक, रक्तपित्त, क्षत और क्षय नाश करने वाला है। कच्चा कटहल विषमिभ, वातकारक, तुवर (कषाय), गुरु और मधुर होता है। कटहल का बीज थोड़ा कषाय रसयुक्त, वातकारक, गुरु, फल के विकार का नाश करने वाला, रुचिकारक और त्वचा के दोष का नाशक होता है ॥ ५२-५४ ॥

कदली योनिदोषाश्मरक्षित्तहरा हिमा । तद्कन्दः शीतलो बस्यः केशः पित्तकफाद्वजित् ५५
सफलं मधुरम्भलमधो कषायं पित्तापहं शिशिररुद्धयमधापि नालम् ।

पुष्पं तद्ध्यनुगुणं क्रिमिहारि कन्दं पर्णं च शूलशमनं कदलीभवं स्थात् ॥ ५७ ॥

रक्तमापकफलं कषायमधुरं वृक्षं च शीतं तथा पित्ताश्वचिमदेनं गुहतरं पथ्यं न मध्मानले ।
पथ्यः शुक्रविवर्धनं क्रिमिहरं तुष्णापहं कानितदं दीसामौ सुखदं कफामयहरं मन्तर्पणं दुर्जरम् ॥

केले के गुण (केले के कच्चे, पक्के फल तथा पुष्प कन्दादि के गुण) — केला योनिदोष, अश्मरी, रक्तपित्त हरणकर्ता और शीतल होता है। केले का कन्द शीतल, बलकारक, केशों को दूढ़ करने वाला, पित्त, कफ और रक्त की जीतने वाला है। केले का कच्चा फल मधुर, शीतल, विषमिभ, बलकारक, गुरु तथा खिंच है और पित्त, तथा रक्तहरण करने वाला, दाह, क्षत, क्षय तथा वायु को जीतने वाला है। केले का बाल फल मधुर, अम्ल होता है तथा केले का नाल (अम्ल के बीच का) पित्तनाशक, कषाय, शीतल, रुचिकारक होता है। बैले का पुष्प इसके अनुरूप गुण करने वाला, क्रिमिहारी है। केले के कन्द और पर्णे शूल शमनकारक होते हैं। केले के पक्के फल कषाय, मधुर, बलकारक, शीतल, पित्तनाशक, रक्त को मर्दन करने वाला, गुहतर है तथा मन्दशिवालों के लिये पथ्य नहीं है तथा शीघ्र शुक्र बढ़ाने वाला, क्रिमिनाशक, तुष्णानाशक, कानितदायक, दीप अथि वालों के लिये सुखकर, कफरोगनाशक, सन्तर्पण और दुर्जर है ॥ ५५-५८ ॥
वारिकेलफलं शीतं दुर्जरं वस्तितशोधनम् । विषमिभ वृहणं वृक्षं वातपित्ताश्वदाहजित् ॥ ५९ ॥
तस्यामः शीतलं हृदयं दीपनं शुक्रलं लघु । तत्पादपित्तशोधनं शुक्रला वातपित्तजित् ॥ ६० ॥

विशेषतः कोमलनारिकेलं निहन्ति पित्तज्वरपित्तदोषान् ।

तद्ध्यजीर्णं गुरु पित्तकारि विद्वाहि विषमिभं मतं भिषमिभः ॥ ६१ ॥

नारियल के गुण (फल के कच्चे, पक्के, जल, वृक्षशिरोमज्जा आदि के गुण) नारियल के फल शीतल, दुर्जर, बृत्तिशोधक, विषमिभी, वृहण, बलकारक, वात, पित्त और रक्त को जीतने वाला है। नारियल का जल शीतल, हृदय को हितकर, दीपन, शुक्रकर्ता और लघु होता है। नारियल के वृक्ष के ऊपर की मज्जा शुक्रकर्ता, वात और पित्तनाशक है। कोमल नारियल विशेष कर पित्तज्वर और पित्तदोष नाश करता है। पुराने नारियल गुरु, पित्तकारी, विदाही और विषमिभी विद्वानों ने कहा है ॥ ५९-६१ ॥

खजूरिकाफलं शीतं स्वादु विश्वं शुष्पाद्वजित् । बृक्षं हन्ति महत्प्रियसमदमूर्छ्यमिदायथान् ॥

तस्माद्वस्वपगुणं ज्येयमन्यरखजूरिकाफलम् ।

खजूर के गुण — खजूर के फल शीतल, स्वादु, स्तिंश्व, भूख और रक्त को जीतने वाला है, बलकारक, वायु-पित्त-मद-मूर्छ्य और मदात्यय का नाश करता है। अन्यान्य खजूरों के फल के गुण—इससे कुछ कम जानना चाहिये ॥ ६२-६२२ ॥

दाढिमं ग्राहि दोषधनं हृदयं दीपनदीपनम् ॥ ६३ ॥

अनार के गुण — अनार ग्राही, दोषों का नाश करने वाला, हृदय को हितकर, रुचिकारक और दीपन है ॥ ६३ ॥

तद्वृद्धामलकं पथ्यं मधुराम्लरसं सरम् ।

आँवले का गुण — आँवला भी अनार जैसा ही गुणकारक, पथ्य, रस में मधुराम्ल और सारक है ॥ ६३३२ ॥

बदरं लघु संग्राहि रुद्धयमुण्णं समीरजित् ॥ ६४ ॥

कफपित्तकरं तद्धृकोमलं गुरु संपत्तम् । सौवीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥ ६५ ॥

बृंहं पित्तवाहास्त्रवृत्तृष्णानिलापहम् ।

बदरी फल के गुण — बेर लघु, संग्राही, रुचिकारक, उष्ण, वायु को जीतने वाला, कफ-पित्त कर्ता है। कोमल बेर-इसी प्रकार के गुण वाले तथा गुरु होते हैं। सौवीर नाम के बेर शीतल, भेदन, गुरु, शुक्रकारक, वृहण, पित्त, दाह, रक्तव्य, तुष्णा और वायु के नाशक होते हैं ॥ ६५-६५२२ ॥

जम्बूफलं ग्राहि रुचं कफपित्तव्यास्त्रजित् ॥ ६६ ॥

तद्वृजभृकफलं तद्वृद्धिशोश्वाद्वातनाशनम् ।

जम्बूफल के गुण — जामुन के फल ग्राही, रुक्ष, कफ, पित्त और ब्रण तथा रक्त को जीतने वाले हैं। छोटी जामुन के फल भी उसी गुण के हैं। विशेषता यह है कि वात को ये नाश करते हैं ॥

जबुर्जं भूत्रलं बृक्षं कोष्ठद्विद्धिकरं गुरु ॥ ६७ ॥

स्थिरं स्वादुतरं शीतं बृक्षं पित्तनिलापहम् ।

खबूजे का गुण — खबूजा मूत्र लाने वाला, बलकारक, कोष्ठद्विद्धिकारक, गुरु, लिंग, स्वादु, शीतल, वृक्ष और पित्त वात का हरण करने वाला है ॥ ६७-६७२२ ॥

वातामसुण्णं सुस्थिरं वृक्षं वातहृद्वृक्षकृत् ॥ ६८ ॥

वादाम के गुण — वादाम उष्ण, लिंग, वृत्तिहरणकर्ता, वृक्ष और शुक्रकारक है ॥ ६८ ॥

अस्तोटं मधुरं बृक्षं गुरुण्णं सुखनं समीरपित्तव्यं बृंहं कफकृद्गुरु ॥ ६९ ॥

रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत् ।

अखरोट के गुण — अखरोट मधुर, बलकारक, गुरु, उष्ण, वातहरणकारी, सारक, वात-पित्त के लिये सेवन करने योग्य, वृहण, कफकारक, गुरु, रस और विपाक में मधुर, शीतल, रुचिकारक और शुक्रकर्ता है ॥ ६९-६९२२ ॥

सीताफलं तु मधुरं शीतं पित्तविनाशनम् ॥ ७० ॥

हृदयं बलकरं स्वादु गुष्ठिदं स्ववप्वातलम् ।

सीताफल (शीरीफा) के गुण — सीताफल मधुर, शीतल, पित्तविनाशक, हृदय को हितकर, बलकारक, स्वादु, पुष्टिकारक और थोड़ा वात करने वाला होता है ॥ ७०-७०२२ ॥

रामाहृयफलं तद्वृदीपत्स्वादु च वातकृत् ॥ ७१ ॥

रामफल (शीरीफा का मेद) के गुण — रामफल सीताफल के गुण के समान गुण वाला, थोड़ा स्वादु और वातकारक होता है ॥ ७१ ॥

शुक्रादां मधुरं रुचं गुरु ग्राहि हिमं तथा । शुक्रानिलश्लेष्मकरं शुष्कमार्द्वं विशेषतः ॥ ७२ ॥

शुक्रादां (सिंगाडा) फल के गुण — शुक्रादां फल मधुर, रुक्ष, गुरु, ग्राही, शीतल, शुक्र-वायु और कफकारक ये शुष्क के गुण हैं—आर्द्र में इससे विशेष गुण होते हैं ॥ ७२ ॥

चिरेचनफलः शाखी रथामः करभवद्वधमः । अकर्किं कटुकः पीलुः कषायो मधुराम्लकः ॥ ७३ ॥

रसः स्वादुत्थं गुरुमाशः शमनो दीपनः परः । मधुरस्तु महारीलुर्वृष्टो विषविनाशनः ।

पित्तप्रशमनो रुद्धयो हामझो दीपनः परः ॥ ७४ ॥

पीलु (एक फल) फल के नाम तथा गुण — विरेचनफल, शाखी, रथाम, करभवलभ, अकर्कि, कटुक, और पीलु ये सब नाम पीलु के हैं। पीलु कषाय, मधुर, अम्ल, रस में स्वादु, गुरु,

अर्शनाशक और दीपन है। महापीलु (पीले भेद) के गुण—महापीलु मधुर, वृद्ध, विषनाशक, पित्तप्रशमनकारी, रुचिकारक, आमनाशक और परम दीपन है ॥ ७२-७४ ॥

सुस्वादु पाकरसयोर्गुरुं शीतलं च श्लेष्मामवातकरमजिरमस्तु ॥ ७५ ॥

अजीर पाक और रस में सुस्वादु, गुरु, शीतल, श्लेष्मा, आमवातकारक और अशि का शब्द (नाशक) है ॥ ७५ ॥

आमं तु केतकं वृद्धं कफपित्तकरं गुरु । अक्षग्रोचकं हृष्टं श्रमस्तु निवर्हणम् ।

एकं तु पित्तहस्तथादुरसमातपदोचनुषु । शीजपूरफलं हृष्टं रसेऽईकं दीपनं लघु ॥ ७६ ॥
रक्तपित्तहर्वं ग्राहि निहाहृष्टोधनं परम । त्वक् तस्य तिक्ता गुड्युष्णा क्रिमिवातकफापहा ॥
तन्मासं हृष्टं इति गुरु पित्तसमीरजित् । केसरो मधुरो ग्राही शूलगुरुमोदरापहः ॥ ७७ ॥
शीजमुष्णं क्रिमिरलेष्मवातनिद्रभंदं गुरु । तथुषुपं शीतलं ग्राहि रक्तपित्तहर्वं लघु ॥ ७९ ॥

केतक के कच्चे फल के गुण—केतक (निर्मली फल) कच्चा रुचिकारक, कफपित्तकारक, गुरु, अक्षमें रुचि करने वाला, हृदय, श्रम और कुम का नाश करनेवाला है। केतक के एके फल के गुण—केतक (निर्मली फल) पका हुआ पित्तनाशक रस में स्वादु और आतप के दोष को हरण करनेवाला है। बीजपूर (विजौरा) के फल, त्वक्, मांस, केसर, बीज तथा युष्मादिकों के गुण—बीजपूर का फल रुचिकारक, रस में अम्ल, दीपन, लघु, रक्तपित्त हरणकर्ता, वाणी, जिहा और हृदय का परम शोधक है। बीजपूर का त्वक तिक्त, गुरु, उष्ण, क्रिमि, वात और कफनाशक है। बीजपूर कार्हिमासं (गूदा) हृष्टं, शीतल, गुरु, पित्त और वायुनाशक है। बीजपूर का केसर मधुर, ग्राही, शूल, गुरु और उदररोग नाशक है। बीजपूर का बीज उष्ण, क्रिमि, कफ और वात नाशक, गर्भदायक और गुरु होता है। बीजपूर का युष्म शीतल, ग्राही, रक्तपित्तनाशक और लघु है ॥

मधुकर्कटिका शीता रक्तपित्तहरा गुरुः ।

मधुकर्कटिका (विजौरे का भेद) का गुण—मधुकर्कटिका शीतल, रक्तपित्तहरण कर्ता और गुरु होता है ॥ ७९३ ॥

कालिङ्गं ग्राहि इविपत्तशुक्रहृष्टीतलं गुरु ॥ ८० ॥

कालिङ्ग (तरबूज) के गुण—कालिङ्ग ग्राही, दृष्टि, पित्त, शुक्र हरण कर्ता, शीतल और गुरु होता है ॥ ८० ॥

नारङ्गमस्तुष्णं हृष्टं वातहरं रसम् । कट्टव्यमपरं हृष्टं दुर्जरं वातनाशनम् ॥ ८१ ॥

नारङ्ग (सन्तरा) के गुण—नारङ्ग, अम्ल, अत्यन्त उष्ण, रुचिकारक और परम वातहर होता है। दूसरे २ नीबू कद, अम्ल, हृदय, दुर्जर और वातनाशक हैं ॥ ८१ ॥

जड्बोरमस्तुष्णं गुरुष्णं कफवातजित् । आस्थवैरस्थहृष्टीढावहिमान्धकूमीज्येत् ॥ ८२ ॥

जड्बोर के गुण—जड्बोर अम्ल, शूलग्न, गुरु, उष्ण, कफ और वातनाशक, सूख की विरसता मिटाने वाला, पीड़ा, अस्फिमान्ध और कृमि की जीतने वाला होता है ॥ ८२ ॥

अम्लवेतसमर्थमस्तु भेदनं शतवेदिं च । हृद्रोगशूलगुरुष्मनं पित्ताद्यकफदूषणम् ॥ ८३ ॥

अम्लवेत के गुण—अम्लवेत अस्थन्त अम्ल, भेदन, शतवेदी, हृद्रोग, शूल और गुरुष्मनाशक, पित्त-रक्त और कफ को दूषित करने वाला है ॥ ८३ ॥

साराम्लमस्तु वातहरं गुरुष्मित्कफप्रदम् ।

साराम्ल (पक अम्लफल) के गुण—साराम्ल अम्ल, वातनाशक, गुरु और पित्त तथा कफ-कारक होता है ॥ ८३१ ॥

कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वादुम्लं कफपित्तजित् ॥ ८४ ॥

कर्मरङ्ग (कर्मरख) के गुण—कर्मरख शीतल, ग्राही, स्वाद में अम्ल, कफ और पित्त को जीतने वाला होता है ॥ ८४ ॥

निम्बूकमस्तु वातहरं पाचनं दीपनं लघु । राजनिम्बूकं स्वादु कफपित्तसमीरजित् ॥ ८५ ॥

निम्बूक (नीबू) के गुण—निम्बूक अम्ल, वातनाशक, पाचन, दीपन और लघु है। राजनिम्बू (गागल) के फल के गुण—राजनिम्बू के फल स्वादु और कफ, पित्त तथा वायु को जीतते हैं ॥ ८५ ॥
मिठनिम्बूफलं पित्तवातहरदगुरुरोचनम् । अम्रतृङ्गदाहिपित्ताद्धकृदिष्यगरापहम् ॥ ८६ ॥

मिठनिम्बू फल के गुण—मीठे नीबू के फल पित्त-वातहरण कर्ता, गुरु, रोचक, अम, तुणा, दाह, पित्त, रक्त, वमन, क्षय और विष दोष नाशक हैं ॥ ८६ ॥

अम्लिकाऽम्लागुहवातहरा पित्तकफाञ्चजित् । पका तद्धसरा रस्या वहिमस्तिविशुद्धकृत् ॥

अम्लिका (इमली) के कच्चे, पके, सूखे आदि के गुण—अम्लिका कच्ची गुरु, वातहरी, पित्त और कफ तथा रक्त को जीतने वाली होती है। अम्लिका पकी उसी (कच्ची) की तरह और रुचिकारक, अशि और मूत्राशय को शुद्ध करने वाली है ॥ ८७ ॥

हृष्टका हृष्टा अमञ्चनितुष्णाकूमिहरा लघुः ।

अम्लिका सूखी हृदय, श्रम, आन्ति, तुणा और कृमि को हरण करने वाली तथा लघु होती है ॥

तितिहीक समीरज्ञामामसुष्णं परं गुरु ॥ ८८ ॥

तितिहीकी (इमली) के कच्चे, पके के गुण—इमली कच्ची वायुनाशक, उष्ण और अस्थन्त गुरु होती है ॥ ८८ ॥

तत्पकं लघुं संग्राहि ग्रहणीकफवातजित् ।

इमली पकी लघु, संग्राही, ग्रहणी और कफ-वात को नाश करती है ॥ ८८२ ॥

करमदं गुरुष्णाम्लं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥ ८९ ॥

करमद (करौदा) के कच्चे, पके सूखे आदि के गुण—करमद गुरु, उष्ण, अम्ल, रक्तपित्त और कफकारक है ॥ ८९ ॥

तत्पकं भृष्टं हृष्टं लघुं पित्तसमीरजित् । शुद्धकं पक्षवद्यामं पक्षमप्याद्र्वामथर् ॥ ९० ॥

करमद पका मधुर, रुचिकर लघु, पित्त और वायुनाशक है। करमद सूखा कच्चा होने पर भी एके हुए पका के गुण का होता है और करमद गीला (आद्रै) पका होने पर भी कच्चे के गुण का होता है ॥ ९० ॥

कपित्थमामं संग्राहि लघुं दोषप्रयापहम् । पक्षवं गुरु तृष्णाहिकाशमनं वातपित्तजित् ॥ ९१ ॥

स्वादुम्लं सुवरं कण्ठशोषनं ग्राहि दुर्जरम् ।

कपित्थ (कैथ) के कच्चे, पके आदि के गुण—कपित्थ कच्चा संग्राही, लघु और तीनों दोषों का नाशक होता है। कपित्थ पका गुरु, तृष्णा और हिक्काशक, वात और पित्त को जीतने वाला, तद्ध में अम्ल, तुवर, कण्ठशोषक, ग्राही और दुर्जर होता है ॥ ९१-९१३ ॥

आग्रातमामं वातस्थं गुरुष्णं रुचिकाशमनं वातपित्तजित् ॥ ९२ ॥

आग्रात (अमदा) के कच्चे, पके आदि के गुण—आग्रात कच्चा वातनाशक, गुरु, उष्ण, रुचिकारक और सारक है ॥ ९२ ॥

पक्षवं स्वादुं दिमं हृष्टं मध्यतिपत्तवातजित् ।

आग्रात पका स्वादु, शीतल, वृद्ध, वायु, पित्त, क्षत और रक्तनाशक है ॥ ९२३ ॥

पूर्ण गुरु हिमं रुद्धं कषायं कफपित्तजित् ॥ ९३ ॥
मोहनं शीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् । आद्रं तु गुर्विभ्यनिद्व बहिष्ठिकरं सरम् ॥ ९४ ॥
स्विद्वं त्रिदोषहस्तर्व तन्नेदास्त्वद्वादित्येत् ।

पूर्णफल (सुपारी) के आद्र, स्विन्नादि के गुण—पूर्ण गुरु, शीतल, रुक्ष, कषाय, कफ-पित्त नाशक, मोहन, दीपन, रुचिकारक और सुख की विरसता नाशक है। सुपारी गीली गुरु, अभिष्यन्ती, अभितथा इटिकर्ता और सारक है। स्विन्न पूर्ण त्रिदोष नाशक और इसके जितने में भैरव हैं सबके गुण इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ ९३-९४ ॥

लघुनो द्वंहणो वृष्ट्यः दिनधोषाः पाचनः सरः ॥ ९५ ॥

भैशः संधानकृत्केश्यो गुरुः पित्ताद्वद्विद्विदः । रसायनं कफधासकासगुरुमध्वराद्वचीः ।
हनित शोफप्रमोहार्थः कोष्ठशूलानिलं कृमीन् ॥ ९६ ॥
तथपत्रं मधुरं द्वारं नालो मधुरपित्तिष्ठुलः ॥ ९७ ॥

लघुन के सप्तवं, नालादि के गुण—लहसुन वृहण, वृष्ट्य, दिनधोष, उष्ण, पाचन, सारक, द्वृटे हुए स्थान को जोड़ने वाला, केश को हितकर, गुरु, पित्त-रक्त और बुद्धिकर्ता, रसायन, कफ, श्वास, कास, गुल्म, ऊर, अरुचि, शोथ, प्रमेह, अर्श, कोष्ठशूल, वायु और कृमि का नाश करने वाला है। लहसुन का पत्ता मधुर और क्षार होता है। लहसुन का नाल मधुर और स्विन्न गुरु होता है ॥ ९५-९७ ॥
पलाण्हुस्तु गुणैस्तु वृष्ट्यः कफक्षात्पित्तलः । अनुष्णः केवल खातं स्वादुपाकरसैर्जयेत् ॥ ९८ ॥
आद्रं पाचनदीपनं स्विचिकरं वृष्ट्यं कट्टुण वरं स्वर्यं मेदहरं कफामयहरं शोफापहं शूलजित् ।
जिह्वाकोष्ठविशोधनं सलवणं पथ्यं सदाभोजने निम्बतोयविभित्रिं स्विचिकरं संदीपनं सारणम् ॥
कुडे पाण्डवामये कुड्हे इक्षपित्ते व्याघे उकरे । इहे निदावे शारदि नंव पूजितमार्दकम् ॥ १०० ॥

पलाण्हु (प्याज) के गुण—प्याज लहसुन के गुण बराबर हैं, प्याज विशेष कर कफकारक, अस्थन्ति पित्तकारक नहीं अर्थात् कुछ पित्त करता, उष्ण नहीं है, केवल वात जीतने वाला, पाक और रस में स्वादु है। हरे प्याज का गुण—हरे (गीले वा आद्र) प्याज पाचन, दीपन, रुचिकारक, वृष्ट्य, कटु, उष्ण, वल्दायक, मेदहारी, कफ रोग नाशक, शोथनाशक, शूलनाशक, जिह्वा और कोष्ठ को शुद्ध करने वाला, लवण रस वाला, भोजन में सदा पव्य है तथा नीव के रस में मिलाकर सेवन करने से रुचिकर, दीपन और सारक है। कुछ, पाण्डु रोग, मूत्रकूच्छ, रक्तपित्त, व्रण, ऊर, अद्व आदि में तथा निदाव (ग्रीष्म) और शरद ऋतु में आद्र प्याज नहीं सेवन करना चाहिये ॥

शाकेषु सर्वेषु वसन्ते रोगाः सहेत्यो देहिनाशनाय ।

तस्माद् बुधः शाकविश्वर्जनं हि कुर्वत्थाम्लेषु स पव दोषः ॥ १०१ ॥

शाक के दोष तथा अम्ल के दोष—सब शाकों में रोग होते हैं, इस हेतु से देह को नाश करते हैं। इसलिये बुद्धिमान् को शाक छोड़ देना चाहिये। तथा अम्ल में भी वही दोष है, इसे भी छोड़ देना चाहिये ॥ १०१ ॥

अथ समाख्यगुणाः ।

धूमात्मयो धूमवृक्षस्त्र वृहत्पत्राद्व धूसरः । तमाखुरुष्कफलो धूभयन्नप्रकाशकः ॥ १ ॥
बहुवीजो बहुफलः सूक्ष्मवीजस्तु दीर्घकः । दीर्घ पाटलवणं च तुर्पं तस्य प्रकीर्तिम् ॥ २ ॥

तमाखू के नाम—धूमात्म, धूमवृक्ष, वृहत्पत्र, धूसर, तमाखू, गुच्छफलक, धूमयन्त्र-प्रकाशक, बहुवीज, बहुफल, सूक्ष्मवीज और दीर्घक ये सब तमाखू के नाम हैं। तमाखू के पुष्प बड़े-बड़े और पाटल (खेत-हरे) वर्ण के होते हैं ॥ १-२ ॥

सस्य पत्रं तु तीष्णोषणं कफवातहरं परम । श्वासकासहरं चैव कोष्ठवातहरं तथा ॥ ३ ॥
वातानुलोमनकरं वस्तिशोधनमुत्तमम् । दम्भस्तर्वशमनं चैव क्रिमिकण्डवादिनाशनम् ॥ ४ ॥
मदपित्तभ्रमकरं वमनं रेचनं स्वृतम् । इष्टिमान्ध्यकरं चैव तीष्णशूककरं तथा ॥ ५ ॥

गुण—तमाखू के पत्र तीष्ण, उष्ण, अस्थन्ति कफ-वात हरण कर्ता, श्वास-कास हरण कर्ता तथा कोष्ठस्थित वातहरण कर्ता, वात अनुलोमनकारी और उत्तम मूत्राशय शोधक है तथा दाँत की पीड़ा शान्त करने वाला, क्रिमि, कण्डू आदि नाशक है। मद, पित्त और भ्रम करने वाला, वमन तथा रेचन करने वाला, जैत्र की ज्योति मन्द करने वाला, तीष्ण तथा शुक करने वाला होता है ॥ ३-५ ॥

तस्यैव धूमपानं तु विशेषाद् द्विशुकहस् । देशान्तरप्रभेदेन तीष्णं चाऽसर्वपित्तलम् ॥ ६ ॥
समनस्य प्रभावेण वृश्चिकादिविषं हरेत् । रेचनवादरेचातं श्लेष्माणं च निष्यच्छुति ॥ ७ ॥
इति धान्यादिफलकन्दशाकादिवर्गः ॥

धूमपान के गुण—उसी का धूमपान करने से विशेषकर हृदय और शुक का नाश करने वाला होता है। देशान्तर के भेद से तीष्ण और पित्तकारक होता है। वमनकारी प्रभाव से वृश्चिक आदि के विष को हरता है और रेचक होने से वात और कफ का नाश करता है ॥ ६-७ ॥

अथ मांसगुणाः ।

मांसवर्गो द्विवाच्यो जाङ्गलानूपमेदतः ।

तत्र जाङ्गललक्षणं गुणाश्च—मांसवर्गेऽत्र जङ्गला विलस्थाश्च गुहाशयाः ॥ १ ॥

तथा एषमृगा ज्येया विषिकराः प्रतुदा अपि । प्रसहा अथ च ग्राम्या अष्टौ जाङ्गलजातयः ॥ २ ॥

मांस के उण—मांस वर्ग दो तरह का जानना चाहिये जाङ्गल (जङ्गली जीवों के मांस) और आनूप जाति के (जल के किंकट वा जल में रहने वाले जीवों के मांस) और आठ भेद और लक्षण—यहाँ पर मांस वर्ग में जङ्गल, विलस्थ, गुहाशय, पर्णमृग, विषिकर, प्रतुद, प्रसह और ग्राम्य नाम के आठ प्रकार के जाङ्गल जाति के मांस जानना चाहिये ॥ १-२ ॥

हरिणैणकुरुक्षुर्गदयो जङ्गलाः । गोधाशशभुजङ्गादयो विलस्थाः । सिंहव्याघ्रवृक्षर्जादयो गुहाशयाः । वानरर्द्मार्जारादयः पर्णमृगाः । वार्तिक्लावतिरचिरविकिरणपिक्लादयो विषिकराः । हारीतकपोतसारिकालज्ञीटपिकादयः प्रतुदाः । काकोलुकगुभ्रशशिष्माचापादयः प्रसहाः । प्रसदा आहृत्य भक्षणात् । छागमेषवृषाशाया ग्राम्याः ग्रोक्ता महर्षिभिः ॥
इत्यदौ जङ्गलाः ।

हरिण, ऐण, कुरुक्ष, मृगादि अर्थात् जङ्गल के वल से चलने वाले जीव के मांस जङ्गल कहे जाते हैं। गोहटी, खरहा, सर्पादि विल में रहने वाले जीव के मांस विलस्थ कहे जाते हैं। सिंह, व्याघ्र, वृक्ष (मेडिया) भालू आदि गुफा में रहने वाले जीव के मांस गुहाशय कहे जाते हैं। वानर, ऋक्ष (रीक्ष) मार्जार आदि वृक्ष पर चढ़ने वाले जीव के मांस पर्णमृग कहे जाते हैं। खट्टर, लवा, तितिर, विकिर (पक्षी का नाम), कपिजल (एक पक्षी का नाम) आदि कुरेद कर खाने वाले जीव के मांस विषिकर कहे जाते हैं। हारिल, कपोत, सारिका (मैना), सञ्जरीट (खज्जन), पिक (कोयल) आदि चौंच से खाने वाले जीव के मांस प्रतुद कहे जाते हैं। काक, चलक, गृद, शश (खरहा) चिलह, चाहा आदि वलात्कार करके खाने वाले जीव के मांस प्रसह कहे जाते हैं। प्रसहा की परिभाषा—प्रसहा अर्थात् पकड़ या खींच कर भक्षण करने वाले छाग, मेष, वृष, अश आदि गाँव के रहने वाले जीव के मांस महर्षियों ने ग्राम्य कहे हैं ॥

अथानूपजातिलक्षणं तद्गुणाश्च ।

कूलेचरा: प्रुवाश्रापि कोशस्थाः पादिनस्तथा । मास्था पृतेऽन्न विश्वयाताः पञ्चधानूपजातयाः
आनूप जाति के मांस के भेद और लक्षण—कूलेचर, प्रुव, कोशस्थ, पादी और मत्स्य इतने
गहाँ अनूप जाति के पांच प्रकार के मांस विश्वयात हैं ॥ १ ॥

महिंश गण्डवाराग्नाश्चमरीवाराश्चादयः । एते कूलेचराः प्रोक्ता यस्मात्कूले चरमस्यपादम् ॥ २ ॥
भैंस, गण्ड (गेंडा), वाराह, चमरी (सोरही गाय), वारण (हाथी) आदि इतने जल के किनारे
चरने वाले हैं इसलिये इनके मांस को कूलेचर कहते हैं ॥ २ ॥

इंसासारभवकबृहद्वक्षीक्षादयः प्रुवसंज्ञकाः । शुक्रिशङ्खशम्बुकादयः कोशस्थाः कूर्मनक्ष-
षणिटकाशिष्युमारक्कटादयः पादिनः ।
रोहिताश्चास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परिकीर्तिताः ॥ ३ ॥

इत्यनूपजाः पञ्च ।

इंस, सारस, बक, बड़े बक, क्रौञ्च आदि तैरने वाले जीव के मांस प्रुवसंज्ञक हैं । सीप, शह्व,
धोया इत्यादि जो पुरु में रहते हैं उनके मांस कोशस्थ कहे जाते हैं । कछुये, नक, घण्टिका
(घण्डियाल), शिशुमार (सौंस), कर्णट (चेकड़े) आदि पैर से चलने वाले जीव के मांस पादी
कहे जाते हैं । रोहित भृळी इत्यादि जो जीव हैं उनको (या उनके मांस को) मत्स्य
कहे जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ जाङ्गलमांसगुणाः ।

पृणमासं हिमं रुद्धं ग्राहि दोषप्रयापहम् । षड्ग्रासं बलदं पथ्यं लघु रुद्धं उवराजनित् ॥ ४ ॥
इति इतिः ।

जाङ्गल मांस के गुण—पृण के मांस का गुण—पृण (काला हरिण वा कृष्ण भूग) का मांस
शीतल, रुचिकर, ग्राही, तीनों दोषों का नाश करने वाला, पट्टरस, बलदायक, पथ्य, लघु (इलका),
रुक्ष, ऊर और रक्त को जीतने वाला है ॥ ४ ॥

चित्राङ्गो वातलः कश्चिन्मधुरो बलवर्धनः । तद्बृहद्भवरमासं तु रुद्धं दोषप्रयापहम् ॥ ५ ॥
इति चित्रलसांबरौ ।

चित्राङ्ग के मांस का गुण—चित्राङ्ग भूग का मांस वातकारक, धोड़ा मधुर और बलवर्धक है ।
सांबर के मांस का गुण—सांबर भूग (भूग का एक भेद) का मांस चित्राङ्ग के ही समान तथा
रुद्ध और तीनों दोषों का नाश करने वाला है ॥ ५ ॥

शाशः शीतो लघुः स्वादुर्ग्राही पथ्योऽस्मिदीपनः । सक्षिपातश्वरस्थासरक्षपित्तकफापहः ॥ ६ ॥
इति शाशः ।

शश के मांस का गुण—शश (खरहे) का मांस शीतल, लघु, स्वादु, ग्राही, पथ्य और
अधिक्षीपन, सक्षिपात ऊर, शास, रक्त—पित्त और कफ नाशक है ॥ ६ ॥

गोधाऽनिलहृषा वृश्या रुद्ध्या मेष्या च कीर्तिता । मूषको बद्धविषमूत्रो वृश्योऽनिलापहः ॥

गोहटी के मांस का गुण—गोहटी का मांस वातहारी, बलकारक, रुद्ध और मेषाशक्ति बढ़ाने
वाला होता है । मूषे के मांस का गुण—मूषे का मांस पुरीष, मूत्र को रोकने वाला, बलकारक,
रुद्ध और वात को हरण करने वाला है ॥ ६ ॥

सङ्खः श्वासकासञ्चशोषदोषप्रयापहः । सेधा तथैव विज्ञेया विशेषाद्वलवर्धिनी ॥ ७ ॥
इति सेधासङ्खकौ ।

साही के मांस का गुण—सङ्ख (साही) का मांस, श्वास, कास, रक्त, शोष और तीनों दोषों
का नाश करने वाला होता है । सेधा के मांस का गुण—सेधा (साही का भेद) का मांस भी उसी
प्रकार (सङ्ख के साही ही) जानना चाहिये, विशेषतः यह बलकारक है ॥ ७ ॥

शृणालो बलदो रुद्ध्यः सर्ववातश्चयापहः । वानरः पवसन्नासमेदः पाण्डुक्रिमीजयेत् ॥ ८ ॥
इति शृणालबलवानरौ ।

सियार के मांस का गुण—शृणाल का मांस बलदायक, रुद्ध्य, सब प्रकार के वात और
क्षय को हटने वाला है । वानर के मांस का गुण—वानर का मांस वायु, श्वास, भेद, पाण्डु
और क्रिमि को जीतता है ॥ ८ ॥

वार्तिको मधुरः शीतो रुद्ध्य वक्षयातजित् । पारावतो गुरुः स्वादुः कवायो रक्षपित्तहा ॥ ९ ॥
इति वार्तिकपारावतौ ।

बटेर के मांस का गुण—बटेर का मांस मधुर, शीतल, रुक्ष, कफ और वात को जीतने वाला
होता है, पारावत (कबूतर) के मांस का गुण—कबूतर का मांस गुरु, स्वादु, कवाय और रक्षपित्त
हरण करता है ॥ ९ ॥

चटकः शीतलः खिरधः स्वादुः शुक्रकफशः । सनिपातहरो वेशमचटकः शुक्रः परः ॥ १० ॥
इति चटकः ।

चटक (गवरा) के मांस का गुण—गवरा का मांस शीतल, रिनगध, मधुर, शुक्र और कफ को
करने वाला है तथा सनिपात हरण करने वाला है । वेशमचटक (घर का गवरा) परम शुक्रकर्ता है ॥
लावा वहिकरा: खिरधा मधुरा ग्राहिणो हिमाः । पांशुलः श्वेष्मलस्तेषु दीर्घोऽग्निलनाशनाः ॥

लावा के मांस के गुण—जौर ४ भेद—लावा का मांस अधिकारी, रिनगध, मधुर, शाही और
शीतल होता है । पांशुल लावा का मांस कफकारक होता है और वीर्य में उण तथा वातनाशक है ॥ १० ॥
जौरो लघुतरो रुद्धो वहिकारी त्रिदोषजित् । पौण्ड्रकः पित्तकृष्णिक्षिण्डुर्वातकफापहः ॥ १० ॥

जौर लावा का मांस अत्यन्त लघु, रुक्ष, अधिकारी और त्रिदोषनाशक है । पौण्ड्रक के मांस का
गुण—पौण्ड्रक पित्तकारी, धोड़ा लघु वात और कफ का नाश करने वाला है ॥ १० ॥

दर्भरो रक्षपित्तहो हृदामयहरो हिमः । इति लावश्चतुर्विधः ।

दर्भर लवा का मांस रक्षपित्तनाशक, हृदय के रोग को नाशने वाला और शीतल है ॥ १०३ ॥

तित्तिरः कृष्णवर्णः श्वास तु जौरः कपिजलः ॥ ११ ॥

तित्तिर के मांस का गुण और भेद—तित्तिर कृष्ण, जौर और कपिजल (कपिल) वर्ण से
३ प्रकार के होते हैं ॥ ११ ॥

तित्तिरो वर्णदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः । श्वासकासञ्चवहरस्तस्माद्वैरोऽस्मिको गुणैः ॥ १२ ॥
इति तित्तिरः ।

तित्तिर का मांस वर्णदायक, ग्राही, हिक्का और त्रिदोष नाशक है तथा श्वास, कास और ऊर
नाशक है, इसमें जौर वर्ण के तित्तिर विशेष गुणवाले होते हैं ॥ १२ ॥

मधुरमासं सुरिनग्धं वातन्त्रं शुक्रवर्धनम् । बृहदं मेषाशक्ति ब्रोक्षं चक्षुरोगवित्ताशनम् ॥ १३ ॥
मधुर के मांस का गुण—मधुर का मांस स्तिनगध, वातनाशक, शुक्रवर्धक, बलकारक, मेषाशक्ति
बढ़ाने वाला और नेत्ररोग नाशक कहा गया है ॥ १३ ॥

योगरत्नाकरः ।

सेव्यं मयूरजं मांसं हेमन्ते शिलिरे मधौ । न शरद्ग्रीष्मयोः पथ्यं वर्षास्वपि हितं न च ॥१४॥
इति मयूरः ।

मयूर का मांस हेमन्त, शिलिर और वसन्त ऋतु में सेवन करने योग्य होता है। शरद और ग्रीष्मऋतु में पथ्य नहीं है अर्थात् हानिकारक है। इसी प्रकार वर्षाकृतु में भी हितकर नहीं है ॥१४॥
स्वादुः कवायश्च लघुः कपोतः कफपित्तहा । शुक्रो वस्योऽतिवृष्ट्यस्त्रीयवृद्धिकरः परः ॥१५॥
इति कपोतस्थृकैः ।

कपोत (होरावा कबूतर) के मांस का गुण—कपोत का मांस स्वादु, कवाय, लघु, कफ-पित्त नाशक होता है। शुक्र के मांस का गुण—शुक्र का मांस बलकारक, अत्यन्त वृष्ट्य और अत्यन्त वीर्य वर्धक होता है ॥ १५ ॥

कुकुटो बृंहणः स्त्रिघो वीर्योऽणोऽनिलजद्गुरुः । वृष्ट्यस्त्रीयः शुक्रककृद्वन्यो हृष्टः कफान्तकः ॥

कुकुट के मांस का गुण और भेद—कुकुट का मांस बृंहण, स्त्रिघण, वीर्य में उण, वात को जीतने वाला, गुरु, नेत्र को हितकारी, शुक्र और कफ करने वाला है। वन के कुकुट का मांस हृष्ट और कफ नाशक होता है ॥ १६ ॥

पानीयकुकुटः स्त्रिघो वृंहणः श्लेष्मलो गुरुः ॥ इति कुकुटः ॥

पानी में रहने वाले कुकुट का मांस स्त्रिघण, बृंहण, कफकारक और गुरु होता है ॥ १६२३ ॥

छागमांसं गुरु रित्यर्थं लघुप्राकं श्रिदोषजित् ॥ १७ ॥

अदाहि बृंहणं नातिशीतं पीनसनाशनम् । देहस्तुसमानत्वादनभिष्यन्दि बृंहणम् ॥ १८ ॥

तथापि कोमलच्छागमांसं पथ्यं श्रिदोषजित् ॥ इति छागमांसम् ॥

छाग के मांस का गुण—छाग का मांस गुरु, लिंग्घ, पाक में लघु और त्रिदोषनाशक, दाह नहीं करने वाला, बृंहण, अतिशीतल नहीं, पीनस का नाश करने वाला, देह के धातु की समानता रहने से अनभिष्यन्दि तथा बृंहण होता है। इसमें भी—कोमल (बच्चे) छाग का मांस पथ्य और त्रिदोषनाशक है ॥ १७-१६३ ॥

मेषमांसं गुरु रित्यर्थं वृष्यं पित्तकफप्रदम् । मेदःपुष्ट्यामदं वृष्यं कफपित्तकरं गुरुः ॥ १९ ॥

इति मेषमांसम् ॥ इति जाङ्गलमांसानि ॥

मेष (भेड़) के मांस का गुण—मेड़ का मांस गुरु, लिंग्घ, बलकारक, पित्त-कफप्रद, मेद-धातु को पुष्ट करने वाला, आम करनेवाला, वृष्य, कफ और पित्त करने वाला होता है ॥ १९ ॥

अथानूपमांसगुणाः ।

सौकरं पित्तलं स्वादु वृत्यं वातापहं गुरुः । मधुरं सूक्ष्मविमूत्रं वातपित्ताद्यनाशनम् ॥ १ ॥

आनूप मांस के गुण—सौकर आदि के मांस का गुण—सौकर का मांस पित्तकारक, स्वादु, बलकारक, वातनाशक, गुरु, मधुर, पुरीष-मूत्र को करनेवाला, वात-पित्त और रक्त करने वाला होता है ॥ १ ॥

अथ मत्स्यादिजलजन्तवः ।

मोरिका वातहृदया बृंहणी मधुरा गुरुः । पित्तहत्कफकृद्वृष्या वृष्या दीपा कृषि हिता ॥ १ ॥

इति मोरिका ।

मत्स्यादिजलजन्तुगुणाः ।

मत्स्यादि जल के जन्तुओं के मांस के गुण—मोरिका (मोरा) के मांस के गुण—मोरा मछली वातनाशक, बलकारक, बृंहणी, मधुरा, गुरु, पित्तहारिणी, कफकारी, रुचिकारी, वृष्या, अप्ति तीव्र करने वाली और कृश रोग में हितकर होती है ॥ १ ॥

शिलीन्ध्रः श्लेष्मलो वृत्यो विपाके मधुरो गुरुः । वातपित्तहरो हृष्ट आमशातकरक्ष सः ॥ २ ॥

इति शिलीन्ध्रः ।

शिलीन्ध्र (सिंगी) मछली के गुण—सिंगी मछली कफकारक, बलकारक, विपाक में मधुर, गुरु, वात-पित्त नाशक, हृष्ट और ओमवात कारक होती है ॥ २ ॥

वात्सल्यमस्त्यो हृदैष्टातपित्तं रुचिकरो लघुः । शकुलीं प्राहिणी हृष्टा मधुरा तुवरा स्मृता ॥ ३ ॥

इति वात्सल्यमस्त्यः ।

वात्सल्य के गुण भेद—वामी मछली वातहरण करने वाली, पित्तनाशक, रुचि करने वाली और लघु होती है। शकुली नाम की वामी ग्राहिणी, हृष्टा, मधुरा और तुवरा (कवाय) होती है ॥ ३ ॥

कविका मधुरा विस्त्रभा कवाया रुचिकारिणी । किञ्चित्पित्तकरी वातनाशिनी बलवधिनी ॥

इति कविका ।

कविका (केवई) मछली के गुण—केवई मछली मधुरा, विस्त्रभा, कवाया, रुचिकारिणी, थोड़ा पित्त करने वाली, वातनाशिनी और वल बढ़ाने वाली होती है ॥ ४ ॥

गरमीं मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृष्टः । कफझीं रुचिद्वृद्धिदीपनी बलवीर्यवृत् ॥ ५ ॥

इति गरमी ।

गरमी (गरई) मछली के गुण—गरई मछली मधुरा, तिक्ता, तुवरा (कवाय) वात-पित्त नाशने वाली, कफ नाशने वाली, रुचिकारी, अप्तिदीपनी और बलवीर्य करने वाली होती है ॥ ५ ॥

मदगुरो वातहृद वृष्यो वृत्यः कफकरो लघुः ॥ इति मदगुरः ।

मर्स्यगर्भो भृशं वृष्यः स्त्रिघः पुष्टिकरो गुरुः ॥ ६ ॥ इति मर्स्यगर्भः ।

मदगुर (मांगुर) मछली के गुण—मांगुर मछली वातहरण करनेवाली, वृष्या, बलकारिणी, कफकारिणी और लघु होती है। मर्स्य गर्भ (अण्डा) के गुण—मर्स्य गर्भ अत्यन्त वृष्य, स्त्रिघ, पुष्टिकारक और गुरु होता है ॥ ६ ॥

दग्धमस्त्यो गुणैः श्रेष्ठः पुष्टिकृद्वलवर्धनः ॥ इति दग्धमस्त्यः ।

दग्धमस्त्य (भुजी मछली) के गुण—भुजी हुई मछली गुण में श्रेष्ठ, पुष्टिकारक और बलवर्धक होती है ॥

महाशफरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकापहः ॥ ७ ॥

त्रिशिरो मधुरो रुच्यो वाते साधारणः स्मृतः ।

महाशफर (मर्स्यमेद) के गुण—महाशफर मछली, तिक्त, पित्त और कफ को नाश करने वाली होती है और शीतल, मधुर, रुचिकर और वातदोष में साधारण कही गयी है ॥ ७-७३ ॥

कृद्रमस्त्यः स्वादुरसा दोषत्रयविनाशनाः ॥ ८ ॥

लघुपाका रुचिकराः सर्वदा ते हिता मताः ।

कृद्रमस्त्या (छोटी मछलियों) के गुण—छोटी मछलियां रस में स्वादु, त्रिदोषनाशक, पाक में लघु, रुचिकारी और सर्वदा हित करनेवाली होती है ॥ ८-८३ ॥

अतिसूक्ष्मा: पुंसवहरा रुद्ध्या: कासानिलापहः ॥ ९ ॥

अतिसूक्ष्मा (अत्यन्त छोटी) मछलियों के गुण—अत्यन्त छोटी मछलियां पुरुषत्व का नाश करनेवाली, रुचिकारी, कास और वायु का नाश करने वाली होती है ॥ ९ ॥

नादेया बृंहणा मरस्या गुरुवोऽनिलनाशनाः । वाप्या वृद्ध्या: कफाष्टीलामूत्रकृष्णविवर्धदाः ॥

नदी की मछलियों के गुण—नदी की मछलियां, बृंहण, गुरु और वायुनाशक होती हैं। वापी की मछलियों के गुण—वापी (वावली) की मछलियां वृद्ध्य, कफ, अष्टीला, मूत्रकृष्ण और विवर्ध रोग करने वाली होती हैं ॥ १० ॥

तडागा गुरुवो वृद्ध्या: शीतला बलमूत्रदाः । सरोजा मधुरा: लिङ्घा वृद्ध्या वातनिवर्धनाः ॥

तडाग की मछलियों के गुण—तडाग की मछलियां गुरु, वृद्ध्य, शीतल, बल और मूत्र देने वाली होती हैं। सर (तालाब) की मछलियों के गुण—तालाब की मछलियां मधुर, लिङ्घ, बलकारीणी और वातनाशक होती हैं ॥ ११ ॥

सामुद्रा गुरुवो नातिपित्तलाः पवनापहाः । तत्रापि लवणाम्भोजा ग्राहिणो दृष्टिनाशनाः ॥ १२ ॥

समुद्र की मछलियों के गुण—समुद्र की मछलियां गुरु, अत्यन्त पित्त नहीं करने वाली, वायु नाशक होती हैं। तो भी समुद्र की मछलियां ग्राहिणी और दृष्टिनाशक होती हैं ॥ १२ ॥

हृदेश्वरा बलकरास्ते तु स्वर्व्युज्ज्लोऽश्वाः ।

हृद की मछलियों के गुण—हृद की मछलियां स्वर्व्यु जल में उत्पन्न होने वाली होने से बलकारक होती हैं ॥ १२३ ॥

हेमन्ते कूपजा मरस्या: शिशिरे सारसा हिताः ॥ १३ ॥

हेमन्तऋतु में कूप की मछलियां, शिशिरऋतु में सर की मछलियां हितकारीणी होती हैं ॥ १३ ॥

बसन्ते तु नदीजाता ग्रीष्मे हृदसमुद्धवाः । तडागजाता वर्षासु तास्वपद्या नदीमध्याः ॥ १४ ॥

वर्षा ऋतु में नदी की मछलियां, ग्रीष्मे ऋतु में हृद की मछलियां, वर्षा ऋतु में तडाग की मछलियां हितकारीणी होती हैं और वर्षा ऋतु में नदी की मछलियां अपथ्य हैं ॥ १४ ॥

नैर्देशः शरदि श्रेष्ठा विशेषोऽयुमुदाहतः ॥ इति मरस्यगुणाः ।

विशेष करके शरद ऋतु में निर्वर्ष की मछलियां श्रेष्ठ होती हैं ॥ १४४ ॥

अथ शङ्खादिगुणाः ।

शङ्खो वराटकश्चैव शुकिशम्बूकभस्त्रकाः । जीवश्चैवविधाः सर्वे कोशस्थाः परिकीर्तिताः ॥ १ ॥

शङ्खादिकों के गुण—शङ्ख, कौड़ी, शुक्ति (सीप), शम्बू (बोधा) और भलक इस प्रकार के जितने जीव पुट में रहने वाले हैं सब 'कोशस्थ' कहे जाते हैं ॥ १ ॥

कोशस्था मधुराः लिङ्घाः पित्तवातहरा हिमाः । बृंहणाश्च तथा वृद्ध्या वर्चस्थाः कफवर्द्धनाः ॥

कोशस्थ जीवों के मांस के गुण—कोशस्थ जीवों का मांस मधुर, लिङ्घ, पित्त-वात हरण करने वाला, शीतल, बृंहण, वृद्ध्य, पुरीषप्रवर्तक तथा कफवर्धक होता है ॥ २ ॥

कर्कटो बृंहणो वृद्ध्यः शीतलोऽसुरगदापहः ।

कर्कट (केकड़े) का मांस बृंहण, वृद्ध्य, शीतल, रक्तरोष को हरण करने वाला होता है ॥ २५ ॥

सिद्धान्नादिपाकगुणकथनम् ।

कश्चिपो शलदः लिङ्घो वातमः पुंसवकारकः ॥ ३ ॥

हृष्टानुपमासानि ।

कच्छिप (कछुये) का मांस बलदायक, लिङ्घ, वातनाशक और पुरुषत्व को देने वाला होता है।

अथ सिद्धान्नादिपाकगुणकथनम् ।

अथ भक्तम्—

जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम् । विपचेश्वावयेन्मण्डं स भक्तो मधुरो लघुः ॥ १ ॥

सिद्ध पाक आदि अन्न के गुण—भात बनाने की विधि तथा भात के गुण—चौदहगुणे जल में चार पल चावल को पकावे, पक जाने पर मांड को पसा लेवे उसे भात कहते हैं, वह भात मधुर, लघु होता है ॥ २ ॥

अत्युत्तमं बलहृष्टकं शीतं शुष्कं च हुर्जरम् । अतिकृष्णं ग्लानिकरं हुर्जरं तण्डुलान्वितम् ॥ २ ॥

अत्यन्त उत्तम भात बल हरण करने वाला होता है और शीतल तथा सूखा भात हुर्जर होता है। अत्यन्त गीला भात ग्लानिकर, हुर्जर होता है ॥ २ ॥

अतिद्रवं च यज्ञर्कं वासकासामिपीनसैः । हरेदर्ढं बलं ज्येष्ठं शकुद्रात्तिरोषकृद् ॥ इति भक्तम् ॥

अत्यन्त पतला बनाया हुआ भात व्यास, कास, अर्शी और पीनस हरनेवाला तथा बलवर्ण हरने वाला, पुरीष वात को रोकने वाला जानना चाहिये ॥ ३ ॥

तक्षसिद्धं तु यज्ञकं ग्रहण्याश्रमापहम् । वातम्बं बलदं श्लेष्मपितरकाभिवर्धनम् ॥ ४ ॥

इति तक्षसिद्धभक्तम् ।

तक्षसिद्ध भात के गुण—मट्ठे में बनाया हुआ भात ग्रहणी, अर्श, व्रम को हरने वाला, वात-नाशक, बलदायक, कफ, पित्त और रक्त को बढ़ाने वाला है ॥ ४ ॥

भृष्टतण्डुलं भक्तं श्विकृतकफजिङ्गु । वातपित्तहरं ग्राहि उवरथमातिसारजुत् ॥ ५ ॥

इति भृष्टतण्डुलभक्तम् ।

भूजे हुए चावल के भात का गुण—भूजे हुए चावल का भात रुचिकारक, कफनाशक, लघु, वात-पित्त नाशक, ग्राही, ज्वर, यज्ञमा और अतीसार नाशक होता है ॥ ५ ॥

यथोचिते जले धीतास्तण्डुलान्विपचेन्सुधीः । मण्डं संज्वात्य सर्पित्स्तु तत्र किञ्चिद्विनिविषेत् ॥

उवलन्तमेकमङ्गारं तदुपर्यपैदेवथ । घटिकानन्तरं दृष्ट्योपरिभागं विनिर्हेत् ॥ ६ ॥

भक्तं विभक्तमेतत्तु राजययोग्यं भनोहरम् ।

भात के प्रकार—यथोचित जल में चावल को धोकर और उचित जल में डाल कर बुद्धिमान् पकावे और उसका मण्ड (मांड) निकाल कर धोड़ा धी उसमें छोड़े और ढक कर एक जलता हुआ अङ्गार एक धड़ी तक रक्खे, तत्पश्चात् ऊपर का भाग कुछ निकाल देवे। यह भात भोज्य योग्य और मनोहर है ॥ ६-७४ ॥

अथ यवाग्नः—यवाग्नः वडगुणोऽस्तेवेः संसिद्धा विरलद्रवा ॥ ८ ॥

यवाग्न्याहिणी तृष्णाउवरम्भी वस्तितशोधनी ॥

यवाग्न के लक्षण—बनाने की विधि तथा गुण—छयुने जल में पकाये हुए द्रव को यवाग्न कहते हैं। यवाग्न ग्राही, तुष्णा और ज्वर को मिटाने वाली तथा मूत्राशय को शुद्ध करने वाली है ॥ ८-८५ ॥

अथ विलेपी—चतुर्गुणे तु संसिद्धा विलेपी घनसिद्धका ॥ ९ ॥
विलेपी दीपनी ब्रह्मा हृष्णा संग्राहिणी लघुः । व्रणस्त्रिशोभिगणी पथ्या तर्पणी तृद्गवरापदा ॥
आमशूलहरा स्वादुर्दीपनी रुचिपुष्टिकृत् ॥ इति विलेपी ॥

विलेपी के लक्षण तथा गुण—चौहुने जल में पकाये हुए अन्न को विलेपी कहते हैं । विलेपी दीपनी, बलकारक, हृदय-संग्राहिणी, लघु, ब्रण तथा नेत्र रोग वाले के लिये पथ्य, तुमिकारी, लघु और ज्वरनाशक, आमशूलनाशक, स्वादु, अस्त्री दीप करने वाली, रुचि करने वाली तथा पुष्टि करने वाली होती है ॥ ९-१०३ ॥

अथ पेया—पेया सिक्खान्विता तोये चतुर्दशगुणे कृता ॥ ११ ॥
पेया कुचिगदकुन्नित्तवरस्तमार्तिसारजित् । रुचिप्रिक्षम्भूर्देष्मलस्वेदानुलोमनी ॥ १२ ॥

पेया के लक्षण तथा गुण—चौदहुने जल में पकायी हुई सिक्ख सहित वस्तु (द्रव) को पेया कहते हैं । पेया कुक्षिरोग, क्लान्ति, ज्वर, स्तम्भ और अतिसार को नाश करती है और रुचि तथा अस्त्री करती है, लघु तथा दोष, मल और स्वेद को अनुलोमन करने वाली होती है ॥ ११-१२ ॥

अथ मण्डः—

मण्डश्चतुर्दशगुणे सिद्धस्तोये चतुर्दशकः । मण्डो ग्राही लघुः शीतो दीपनो धातुसाम्यकृत् ॥ १३ ॥
स्तोतोमार्दवकृतिपत्तवरस्त्वलेष्मध्रमापहः । वाट्यमण्डो चर्वैष्टैर्लज्जमण्डस्तु शालिभिः ॥ १४ ॥
वाट्यमण्डो लघुप्राही शूलदाहत्रिदोषनुत् । नवज्वरेऽपि पथ्योऽयं पटोलमगाथान्वितः ॥ १५ ॥
लाजमण्डो लघुप्राही लघुः पाचनदीपनः । अतीसारग्रहण्यशोरोचकारुक्त्रिदोषनुत् ॥ १६ ॥

मण्ड (मांड) के लक्षण, भेद और गुण—चौदहुने जल में सिद्ध किये और सिक्ख रहित द्रव को मण्ड कहते हैं । मांड ग्राही, लघु, शीतल, दीपन और धातुओं को सम करने वाला, स्तोतों (नाडियों) को आर्द्ध करने वाला, पित्त, ज्वर, कफ और भ्रम नाशक है । वाट्यमण्ड यव को भूज कर बनाया जाता है और लाजमण्ड उपरोक्त विधि से शालिधान का बनाया जाता है । वाट्यमण्ड लघु, ग्राही, शूल-दाह तथा त्रिदोष नाशक है और यह पटोल और पीपरि मिलाकर नये ज्वर के लिये भी पथ्य है । लाजमण्ड लघु, ग्राही, हृष्ण, पाचन और दीपन है तथा अतीसार, ग्रहणी, अर्श और अरोत्क की पीड़ा तथा त्रिदोष नाशक है ॥ १३-१६ ॥

अथ अष्टगुणमण्डः ।

तण्डुलैर्धमुद्राशैः किञ्चिद्भृतैः सुपाचितैः । हिङ्गस्त्रियूथधनिकातैलविकटुसंस्कृतः ॥ १ ॥
ज्वैयः सोऽष्टगुणो मण्डो उवरदोषत्रयापहः । रक्तःचुद्धधनः प्राणप्रदो वस्तिविशेषधनः ॥ २ ॥

अष्टगुणमण्ड के लक्षण तथा गुण—तण्डुल और आधा मूँग को थोड़ा भूज कर अच्छी तरह मण्ड की विधि से पचाये हुए तथा हृष्ण, सेंधा नमक, धनिया, तैल, त्रिकटु (सोंठ-पीपर-मरिच) मिलाये हुए द्रव को अष्टगुण मण्ड कहते हैं । अष्टगुण मण्ड ज्वर और त्रिदोष नाशक, रक्त और क्षुधा को बढ़ाने वाला, प्राणप्रद और मूत्राशय को शुद्ध करने वाला होता है ॥ १-२ ॥

अथ साराणि ।

सारं भोजनसारं सारं सारङ्ग्लोचनाधरतः । पित्तस्त्वलुवारंवारं नो चेन्मुखा भवति संसारः ॥ १ ॥
अग्निकाया: पलं पवचं प्रस्थे नौरे विनिविषेत् । अर्धाविशिष्टे पूते च मरिचार्धपलं तथा ॥ २ ॥
सैन्यवं जरणं हिङ्ग यथायोग्यं प्रकल्पयेत् । शुद्धणपिष्ठकृतं सर्वं तस्मिंस्तोये विनिविषेत् ॥ ३ ॥
कालशाकेन संयोज्य प्वाद्दर्ढं कुस्तुम्भर्वर्णं भिषक् । युनः पाकं विधायोथ यथाकालं च सेवयेत् ॥

अग्निकाफलसंभूतं सारं वातविनाशनम् । पित्तश्लेष्मकरं किञ्चित्सुरुच्यं चहिंयोधकम् ॥ ५ ॥

सार (पञ्च) के लक्षण, भेद और गुण—सार-भोजन का सार जो इमली आदि के योग से बना हुआ है वह तथा जो सूगनयनी लियों के अधर का सार (चुम्बन) है । इनको बार २ पीना चाहिये नहीं तो संसार में आना व्यर्थ है । अग्निकां (इमली) के फल के सार की विधि तथा गुण—अग्निकां (इमली) का पका हुआ एक फल लेकर एक प्रस्थ (६४ तो ०) जल में छीड़ और आधा शेष रहे और सह जावे तब मरिच आधा पल तथा सेन्या नमक, जरण (जीरा) और हृष्ण यथायोग्य मिलावे और खूब महीन पीस कर सब उसी जल में छोड़ देवे और वैद्य समय का शाक अर्थात् जिस शाक का समय हो वह मिला कर तथा गीली कुस्तुम्भर्वर्ण (धनिया) मिलाकर पुनः उसका पाक करे और यथा अवसर अर्थात् अवसर के अनुसार सेवन करे । अग्निकां फल से बना हुआ सार वातनाशक, पित्त-कफकारक, थोड़ा रुचिकर और अस्त्रिकारक है ॥ १-५ ॥

अथ यूषाः

वैदलयूषः—

यूषः स्मृतो वैदलानामष्टादशगुणेऽभसि । यूषो बहयो लघुः पाके रुच्यः कण्ठकफापहः ॥ १ ॥

यूष के लक्षण, गुण और भेद—दाल के यूष के गुण—दाल के अठारहुने पानी में सिद्ध किये हुए द्रव को यूष कहते हैं । यूष बलकारक, लघु, पाक में रुचिकर और कण्ठ के कफ का नाशक है ॥ १ ॥

मुद्रयूषः—

मुद्रानामुत्तमो यूषो दीपनः शीतलो लघुः । व्रणोऽर्द्वज्ञुरुद्धाहकफपित्तज्वराद्यजित् ॥ २ ॥

मुद्रामलकाभ्यां तु सुद्रयूषः सुसाधितः । पित्तवात्तहरः पथ्यो लघुरुद्धिप्रदः सरः ॥ ३ ॥

मूँग के यूष के गुण—मूँग का यूष उत्तम, दीपन, शीतल, लघु, ब्रण और अर्धजन्म के रोग, दाह, कफ, पित्त, ज्वर और रक्तदोष का नाशक तथा पित्त-वातनाशक, पथ्य, लघु, अस्त्रिकर्ता और सारक होता है ॥ २-३ ॥

सुद्रामलकयूषः—

सुद्रामलकयूषस्तु भेदनः कफपित्तजित् । तुद्राद्वाहशमनः शीतो मूच्छ्याभ्यमदापहः ॥ ४ ॥

सुद्रामलक यूष के गुण—मूँग तथा अँवले के मिले हुए यूष भेदन, कफ-पित्तनाशक, तुषा-दाह-शमनकर्ता, शीतल, मूँछी, भ्रम और मद नाशक है ॥ ४ ॥

कुलत्थयूषः—

कुलत्थयूषो गुरुमार्शः कफवाताशमशर्करा । तुनीप्रतुनीमेदासि मेहं हन्त्यप्रिकृत्सरः ॥ ५ ॥

कुलत्थ के यूष के गुण—कुलत्थी के यूष गुरु, अर्श, कफ, वात, पथरी, शंकरा, त्वंती, प्रतूनी, भेद, मेह को हरण करने वाले, अस्त्रिकर्ता और सारक होते हैं ॥ ५ ॥

चणकयूषः—

चणकैविहितो यूषोऽनुष्णस्तुवरको लघुः । रक्षपित्तप्रतिरथ्यायकासपित्तक्फापहः ॥ ६ ॥

चणक के यूष के गुण—चणे के यूष उष्णता रहित, कषाय, लघु, रक्तपित्त, प्रतिरथ्याय, कास, पित्त और कफ नाशक होते हैं ॥ ६ ॥

मकुष्ठयूषः—

मकुष्ठयूषः संग्राही पित्तश्लेष्मवरापहः । लघुः संतर्पणः पथ्यो हृष्णः शीनसकासजित् ॥ ७ ॥

मकुष के यूष के गुण—(मकुष = मोठ) के यूष संग्राही, पित्त, कफ और उवर नाशक, लघु, संतर्पण, पथ्य, हृष्ट, पीनस और कास नाशक हैं ॥ ७ ॥

मसूरादकीयूषः—मसूरयूषः संग्राही चूंही स्वादुः प्रमेहजित् ।

तथा कषायो मधुरश्च यूषो विशेषणो वातद्वाढकीनाशक ।

पित्तापहः—स्लेमहरो उवराणां कूमीजिहन्न्यादगुदबारणं च ॥८॥ इति यूषाः ।

मसूर के यूष के गुण—मसूर का यूष संग्राही, बृंहण, स्वादु और प्रमेहनाशक है । रहर के यूष का गुण—रहर का यूष कषाय, मधुर, शोषक, वातनाशक, पित्तनाशक, कफनाशक, उवर कूमी और गुदरोग को नाश करने वाला होता है ॥ ८ ॥

अथागस्तिसारः ।

अगस्तिसारः सुस्वादुस्तिको वायुकफप्रणुत् ।

पाण्डुलोकाश्चिप्ताहगुमशूलगदापहः ॥ ९ ॥ इत्यगस्तिसारः ।

अगस्तिसार के गुण—अगस्तिसार सुस्वादु, तिक्त, वायु और कफ नाशक, पाण्डु, शोथ, अरुचि, प्लीहा, गुद्म और शूल रोग नाशक है ॥ ९ ॥

अथ सूपाः ।

शुद्धसूपो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः । स्वादुनेत्रेऽनिलहरः कुरुमाषाः शुकवर्धनाः ॥ १ ॥

सूप के गुण और भेद—मूंग की दाल का गुण—मूंग की दाल लघु, ग्राही, कफ-पित्तनाशक, शीतल, स्वादु, नेत्र को हितकारी, वायुनाशक, कुरुमाष (माषभेद) और शुकवर्धक होता है ॥ १ ॥

माषसूपश्च कुरुमाषः खिर्घो वृद्ध्योऽनिलापहः । उषणः संतर्पणो बलयः सुस्वादू रुचिकारकः ॥

माष के दाल का गुण—उड़द की दाल कुरुमाष (माषभेद) खिर्घ, वृद्ध्य, वायुनाशक, उषण, संतर्पण, बलकारक, स्वादु और रुचिकारक है ॥ २ ॥

आढ़कीसूप उद्धिष्ठः—स्लेमपित्तहरो हिमः । किञ्चित्कषायो रुचिकृतसाज्यो दोषव्रयप्रणुत् ॥३॥

आढ़की की दाल के गुण—रहर की दाल कफ-पित्तनाशक, शीतल, थोड़ा कषाय, रुचिकारक और धी मिला दिया जावे तो त्रिदोषनाशक कहा गया है ॥ ३ ॥

चाणकः सूप आश्यातो रोचनः पाचनः परः । बलासपित्तनुदूरयो रक्तजिह्वातिवातलः ॥४॥

चने की दाल का गुण—चने की दाल रुचिकार, पचन, कफ-पित्तनाशक, बलकारक, रक्त को जीतने वाली और अत्यन्त वात करने वाली नहीं कही है ॥ ४ ॥

मकुषसूपोऽस्तवलः पाचनो दीपनो लघुः । चच्छुष्यो बृंहणो वृद्ध्यः पित्तश्लेष्माद्वरोगमृतः ॥५॥

मकुष (मोठ) की दाल के गुण—मकुष की दाल थोड़ा बलकारक, पाचन, दीपन, लघु, नेत्र को हितकारी, बृंहण, वृद्ध्य, पित्त-कफ और रक्त के रोग को हरने वाली होती है ॥ ५ ॥

मसूरसूपः संग्राही शीतलो मधुरो लघुः । कफपित्ताद्विदृष्यो विषमउवरनाशनाः ॥ ६ ॥

मसूर की दाल का गुण—मसूर की दाल संग्राही, शीतल, मधुर, लघु, कफ-पित्त और रक्त को जीतने वाली, वर्णकारक और विषमउवरनाशक होती है ॥ ६ ॥

राजमाषभवः सूपः स्वादुरुच्यः कषायकः । ग्राही गुरुर्वातकरः संतर्पणकृदृचिकारकः ॥ ७ ॥

राजमाष की दाल का गुण—बड़ी उड़द की दाल स्वादु, रुच्य, कषाय, ग्राही, गुरु, वायुकारक, दुरुप्रवर्तक और रुचिकारक होती है ॥ ७ ॥

सिद्धान्नादिपाकगुणकथनम् ।

निष्पावसूपः पित्ताद्वमूत्रस्तन्यानिलप्रदः । विदाह्युष्णो गुरुः शोफकफकृच्छुक्लः सरः ॥ ८ ॥

निष्पाव की दाल का गुण—सेम की दाल पित्त-रक्त-मूत्र-दुरुप्रवर्तक और वायुकारक, विदाही, उषण, गुरु, शोथ और कफ करने वाली, शुक्रकारक तथा सारक होती है ॥ ८ ॥

कुलसूपो वातज्ञः कदुः पाके कथायकः । कफाविरोधी पित्ताद्वकरोणः शासकासमुत्त ॥ ९ ॥

इति सूपाः ।

कुलथी की दाल का गुण—कुलथी की दाल वातनाशक, पाक में कट, कथाय, कफ का विरोध न करने वाली, पित्त तथा रक्तकारक, उषण, शास तथा कास का नाश करने वाली होती है ॥ ९ ॥

अथ पर्षटाः ।

पट्टजीरकबाह्यीकस्वजिकामरिचान्विताः । अरोचकजिगीषूणां पर्षटाः पुरतो भट्टाः ॥ १ ॥

पर्षटी (पपरी) के गुण, लक्षण और भेद—(पापड) बेसन में नमक, जीरा, हींग, सज्जीखार और मरिच आदि मिलाकर बनायी हुई पपरी (पापड) अरोचक वालों के लिये हितकर कहा गया है ॥ १ ॥

भाष्वाः पर्षटा वृश्या रोचनाः पाचनाः सदाः । गुरवो रक्तपित्ताद्विकफदा बहुवर्चसः ॥ २ ॥

उड़द के पापड का गुण—उड़द का पापड बलकारक, रोचक, पाचक, सारक, गुरु, रक्त-पित्त और अशी तथा कफदायक और बहुत मलकारक होता है ॥ २ ॥

कुशजाः पर्षटाः पृथ्या उवरादिश्वरणामये । अरोचकचिङ्गदः खिरधा लघवो दोषनाशनाः ॥३॥

इति पर्षटाः ।

मूंग के पापड का गुण—मूंग का पापड उवर, नेत्र तथा कान के रोग में पथ्य है, अरोचक-नाशक, खिंग, लघु और दोषनाशक है ॥ ३ ॥

अथ सुदूतपञ्जुलकृशरा ।

सुदूतपञ्जुलजा लेया कृशराऽहपवला लघुः । भक्तो तुर्जरा वृश्या पुष्टिकृतपर्णी हिमा ॥ ४ ॥

इति सुदूतपञ्जुलकृशरा ।

कृशरा के भेद, गुण और लक्षण—मूंग की खिचड़ी का गुण—मूंग तथा चावल की खिचड़ी, अल्प बलवाली और लघु होती है तथा भात से तुर्जर (पचने में गुरु), बलकारक, पुष्टिकारक, तुर्जिकारक और शीतल होती है ॥ ४ ॥

तण्डुलैमैचिकाकारैः कण्ठितैर्न च स्खण्डितैः । चतुर्थभागैर्मांवस्य वैश्वलैः परिनिश्चितैः ॥ २ ॥

षष्येचित्ताद्वुत्सिद्यैः संखेहा कामिनीवेयं कृशरा शिशिरे हिता ॥ ३ ॥

उड़द की खिचड़ी के लक्षण तथा गुण—मौती के समान, कुटे दुये तथा बिना दूटे हुए स्वच्छ चावलों में, चौथाई उड़द की दाल मिला कर यथोचित जल में पकायी हुई पवस् हींग, नमक तथा आदी मिलायी हुई तथा लेह (धूत) युक्त खिचड़ी लेहयुक्त कामिनी के समान शिशिर जल्तु में हितकर होती है ॥ ३ ॥

कृशरा तुर्जरा वृश्या गुर्वी वातविनाशिनी । बलपुष्टिमलश्लेष्मपित्तरेतःप्रदा सदा ॥ ४ ॥

इति सुदूतपञ्जुलकृशरा ।

गुण—खिचड़ी, तुर्जर, बलकारक, गुरु, वात को नाश करने वाली, बल, पुष्टि, नम, कफ, पित्त और वीर्य बढ़ाने वाली तथा सारक होती है ॥ ४ ॥

अथ पायसम् ।

अधर्वचिष्ठे कथनाद् हुग्धेऽसांश्च तण्डुलान् । पचेष्टातिद्रवघनं परमाक्षमिदं स्मृतम् ॥ १ ॥

पायस (स्वीर) के लक्षण, भेद और गुण—औटाने से बचे हुए आथे दूध में अष्टमांश चावल देकर न अतिद्रव, न धना ऐसा पकाया दुआ अथ पायस कहा जाता है ॥ १ ॥

पायसं हुर्जरं वस्थं धातुपुष्टिपदं गुरु । शुक्लं मधुरं पाके पित्तज्ञं बृंहणं सरम् ॥ २ ॥

इति ताण्डुलपायसम् ।

चावल के पायस का गुण चावल का पायस—हुर्जर, वलकारक, धातुपुष्टिकर्ता, गुरु, शुक्लकारक, पाक में मधुर, पित्तनाशक, बृंहण और सारक है ॥ २ ॥

गोधूमपायसं वस्थं मेदःकफकरं गुरु । शीतलं पित्तशमनं वातकृच्छुकवर्धनम् ॥ ३ ॥

इति गोधूमपायसम् ।

गोहूं के पायस का गुण—गोहूं का पायस वलकारक, भेद और कफ बढ़ाने वाला, गुरु, शीतल, पित्तशमनक, वातकारक और शुक्र को बढ़ाने वाला होता है ॥ ३ ॥

अथ पोलिका ।

गोधूमपोलिका वस्था कफहा वातनुद् गुरुः । शुक्ला मधुरा पाके पित्तज्ञी बृंहणी सरा ॥ १ ॥

इति गोधूमपोलिका ।

पोलिका (पूरी) के लक्षण, भेद और गुण—गोहूं की पूरी वलकारक, कफनाशक, वातनाशक, गुरु, शुक्लकारक, पाक में मधुर, पित्तनाशक, बृंहण और सारक होती है ॥ १ ॥

गोधूमन्तर्णं वस्थंश्चणकक्षाद्विधितम् । यवानीहिङ्कुलवज्जे: किंचिदार्जैश्च मर्दितम् ॥ २ ॥

संभव्यं चक्रिकास्तस्य कार्या निश्चास्तु मध्यतः । निर्धूमाक्षारसंभृष्टा अद्वधास्तान्नरोचिषः ॥ ३ ॥

अङ्गारककंटी वस्था बृंहणी शुक्ला लघुः । दीपनी कफहृदोगपीनसाक्षासवातनुत् ॥ ४ ॥

अङ्गारककंटी के लक्षण तथा गुण—गोहूं के चूर्ण में अर्थात् आटे में वसु (आठवां) अंश चने का बेसन मिला अजवाइन, हींग, नमक और थोड़ी धी देकर मर्दन करे, मर्दन के बाद उसका चक्रवा बीच में दबा हुआ बनावे और बिना धूये के आग पर भूजे जब लाल हो जावे (पक जावे जले नहीं) तब उतार ले, इसे अङ्गारककंटी कहते हैं । अङ्गार-कंटी वलकारक, बृंहणी, शुक्लकारक, लघु, दीपनी, कफहृदोग, पीनस, शास और वात को नाश करने वाली होती है ॥ २-४ ॥

मण्डको लघुरुणस्तु पथ्यो दोषव्यापहः । रेतःपुष्टिभाद्विप्रहः द्विनवधक्षं बृंहणः ॥ ५ ॥

इति मण्डकः ।

मण्डक (मांड) के गुण —मण्डक लघु, उच्च, पथ्य, तीनों दोषों को नाश करने वाला, रेत (वीर्य) पुष्ट करने वाला, कान्ति तथा इटि बढ़ाने वाला, खिंच और बृंहण होता है ॥ ५ ॥

अथाङ्गारिका ।

मर्दिता हृष्पाणिभ्यां शकंराष्ट्रसंयुता । अङ्गारिका भावाद्वया वातपित्तहरा गुरुः ॥ ६ ॥

इत्याङ्गारिका ।

अङ्गारिका (मलीदा) के लक्षण तथा गुण—अङ्गारिका आटे में घृत तथा शकर मिलाकर दृढ़

सिद्धान्नादिपाकगुणकथनम् ।

मर्दन कर आग पर पकाये हुए रोटी को कहते हैं । अङ्गारिका अत्यन्त वृथ्य, वात-पित्त हरण करने वाली और गुरु है ॥ १ ॥

अथ वटका ।

लवणमरिचिहुश्कवेरैः समुपचितो वरमाषज्जः सुपकः ।

अतिसुरभिवृतेऽथवा सुतैले विषति सुखे वटकः सुपुण्यभाजाम् ॥ १ ॥

वटक के लक्षण, भेद और गुण—नमक, मरिच, हींग, श्कवेर (आदी) मिले हुए, उड़द के बेसन के बने हुये, उचित रूप से धी अथवा तेल में पकाये हुए बड़ों को वटक कहते हैं, जिसे पुण्यतमा लोग ही खाते हैं ।

पवनारुचिदैन्यजयोऽटकाः ल्पितादितकम्पमहत्कटकाः ।

रसनातलरङ्गधरा वटकाः कफपित्तविकारकरा वटकाः ॥ २ ॥

वटक वायु, अरुचि के रोग को जीतने वाला, अदित वात और कम्प वायु को जीतने वाला, जिहा में सुन्दर स्वाद करने वाला, कफ और पित्त के विकार को करने वाला है ॥ २ ॥

अथ काजिकवटकः—बाह्यकपूपयुतनिमल्लारिपूर्णे कुम्भे वयोचितपद्मस्तमराजिकादैः । संधूपिताः कतिविवानि विनानि रुच्या वातम्प्रकाजिकवटा: कफपित्तला: स्युः ॥ ३ ॥

इति काजिकवटकः ।

कांजी के बड़ों के लक्षण तथा गुण—बेसन के वटक को हींग के धूप से युक्त जलपूर्ण घड़े में रखकर उसमें उचित नमक, राइ आदि देकर कई दिन तक सुख बन्द कर पड़ा रहने दे, यही कांजी के वटक हैं । कांजी के बड़े वातनाशक, कफ और पित्त करने वाले होते हैं ॥ ३ ॥

सुदूरटी गुरु इच्छा वातपित्तावदा मता । श्लेष्मला पुष्टिलकृच्छुकला भृदुलाऽशपत्रू ॥ ४ ॥

इति सुदूरवटकः ।

मूंग की बरी के गुण—मूंग की बरी गुरु, रुचिकर, वात, पित्त तथा रक्तकारक, कफकारक, पुष्टिकारक, वलकारक, शुक्लकारक, शुदूर और थोड़ी तृष्ण करने वाली होती है ॥ ४ ॥

चैद्यलैश्चानकैः दिवचैः स्वगुडैः सूक्ष्मपेषितैः । किंवा सलवणाजाजिहिङ्कुभिः पूरणीहृतैः ॥

एतैर्भृताश्च तत्तितः कृतगोधूमपूरिकाः ॥ ५ ॥

चने के दाल की पूरी के लक्षण, भेद और गुण—चने के दाल स्वेदित कर गुड़ के साथ खबू पीसकर अथवा नमक, जीरा, हींग से पूरित कर गेहूं की पूरी में भर कर अच्छी तरह पकाई जाती है ॥ ५ ॥

पूरिका मधुरा वस्था: श्रमवातामयापहः ॥ ६ ॥

शुक्ला बृंहणी शासपथ्या हृदोगनाशिनी । इथं सलवणा लघवी श्लेष्मवातविनाशिनी ॥ ७ ॥

इति वैद्यलपूरिका ।

गुड़ भिली दाल की पूरी मधुर, वलकारक, भ्रम और वात रोग को हरण करने वाली, शुक्लकारक, बृंहणी, शास में पथ्य, और हृदोग नाश करने वाली होती है, नमक आदि भिली दाल की पूरी लघु, कफ और वात का नाश करने वाली होती है ॥ ६-७ ॥

सुशाक्षिप्तिं घनहुग्धमिश्रितं सशर्करं वस्थसुपृतमेतत् ।

धृते सुपक्षं पृथुलीकृतं बृंहैर्निर्गते शालिज्जघेवरोदयम् ॥ ८ ॥ इति शालिजघेवरः ।

योगरत्नाकरः ।

चीनी, रुचक (सोचर नमक) सेन्धा नमक, कृष्णाम्ल (कोकम), पल्षक (फालसा), जासुन के फल का रस तथा राई आदि देकर बनाया राग खाण्डव मधुर और अम्ल आदि रस के योगों से बना होने से दीपन, ब्रह्मण, रुचिकारक, तीक्ष्ण, हृद्य और श्रमनाशक होता है ॥ ४-५ ॥

अथ रसाला-शिखरिणी (श्रीखण्ड)

द्विषिद्धं तु ल्यसितं त्वर्धपयो गालितं शनकैः । मरिचैलाशिशिसहितं भवति रसालाभिधं लोके ॥
रसाला-शिखरिणी (शिखरन) के गुण और लक्ष्य-वैधी हुई दही (बांध कर जिस दही का पानी निकाल दिया गया हो), और उसी के बराबर चीनी और उसके आधा दूध अच्छी तरह मिला कर उसमें मरिच, इलायची और कपूर मिला कर जो बनाया जाता है उसे रसाला कहते हैं ॥
अन्यज्ञ-ससितं द्विषिद्धाज्यमरिचैलादिसंस्कृतम् । मधितंकान्तकामिन्या कर्पूरपरिवासितम् ॥
रसाला शिखरिण्युक्ता मार्जारी मार्जिका द्वुधैः । रसाला शुक्रका बल्या रोधना आतपित्तजित् ॥

जिग्धा गुरुः प्रतिश्यायं विशेषेण विनाशयेत् ।

दूसरे मत से रसाला के लक्षण—चीनी के सहित दही, मधु और धी, मरिच, इलायची आदि देकर सुन्दरी खी द्वारा—मथा हुआ और कपूर से सुवासित किया हुआ हो । इस द्रव पदार्थ के शुद्धियान् रसाला, शिखरिणी, मार्जारी और मार्जिका कहते हैं । रसाला के गुण—रसाला शुक्रवर्धक, बलकारक, रोचक, वात-पित्त नाशक, स्निग्ध, हुरु और विशेष कर प्रतिश्याय का नाश करती है ॥

अथ भरित्थम् ।

लघुणमरिचच्चूर्णेनाऽधृतं रामठाद्यं दहनवद्दनपर्कं निभुतोदेत् युक्तम् ।

हरति पवनसंधं रलेष्यमहन्तु प्रसिद्धं जठरभरणयोग्यं चाहमोउद्यं भरित्थम् ॥ १ ॥

भरित्थ (भरता)—नमक, मरिच और हींग मिली हुई अद्य पर पकाई हुई नीबू के रस से बायु के दोष और कफ का नाश करती है तथा जठराद्यि को पोषण करने वाली और सुन्दर भोज्य यह भरित्थ है ॥ १ ॥

अथार्दकम्—धौतं खण्डितमार्दकं च सलिलैः क्षिं सुतसे धृते
सिन्धूर्थं मरिचं सुजीरयुगलं चूर्णकृतं प्रज्ञिपेत् ।

चूर्णं भृष्टयोग्न्धवं च वितुषं हृष्टवाज्यधृते दहे ।

दित्यं दोषविहीनमार्दकवरं सुस्वादु संजायते ॥ २ ॥ इत्यार्दकम् ।

आर्दक आदि के ढुकड़े को जल में भली भाँति धोकर तभे हुए धी में छोड़कर भूजकर-सेन्धा नमक, मरिच, दीनों जीरा (स्याह जीरा और सफेद जीरा) का चूर्ण मिलाकर धी में भूजे हुए बिना भूसे के चने के पिसान में हींग घृत में भूजकर मिला कर आग पर उसी अद्यक के साथ उसी धृत में देकर भूजकर आर्दक श्रेष्ठ और सुस्वादु होता है ॥ २ ॥

अथ पृथुकादयः ।

पृथु का गुरुबो वस्याः श्लेष्मला वातनाशनाः । दुर्जरा: शुक्रसिद्धा आमविष्टम्भकारिणः ॥ १ ॥

इति पृथुकाः ।

पृथुक चित्तडा आदि का गुण—पृथुक गुरु, बलकारिणी कफकारक और वात नाशक, दुर्जरा, शुक्र तथा रुचिकारक और आम तथा विष्टम्भ करनेवाली होती है ॥ १ ॥

लाजा लघुतरा: शीता वस्याः पित्तकफचिदः । वद्यतीसारदाहाद्यमेद्यतृष्णापहा: ॥ २ ॥

इतिलाजा: ।

आर्यिविचारः ।

लाजा का गुण—लाजा अत्यन्त लघु, शीतल, बलकारक, पित्त-कफ-नाशक, वमन अतिसार दाह-रक्त-मेद-मेह और तृष्णा नाशक है ॥ २ ॥

शिखीधान्यैर्धपकैः सुभृष्टैर्होलका मताः । होलकाषपानिला मेदःकंकदाद्य स्वभावतः ॥ ३ ॥

इतिहोला ।

होला का गुण, रस, लक्षण—शिखी धान्य को अधपके होने पर अच्छी तरह आग पर भूजे हुए को होरहा (होला) कहते हैं । होरहा अल्प वायुकारक और स्वाभाविक मेद और कफ को बढ़ाने वाला होता है ॥ ३ ॥

अथ वेसवारः ।

गुण्ठीमरीचपिपलयो धान्यकाजादिवादिमम् । पिपलीसूलसंकुत्सो वेसवार इति स्मृतः ॥ १ ॥

वेसवार (मसाला) के लक्षण और गुण—सेंठि, मरिच, पीपरि, धनिया, जीरा, अनार और पिपरा मूल की पीसी हुई और मिलाई हुई को वेसवार कहते हैं ॥ १ ॥

वेसवार गुणः स्तिव्यो बलयो वातरुजापहः । पुष्टिदः सर्वधातूनां विशेषान्मलनाशनः ॥ २ ॥

इति सिद्धाचादिपाकगुणकथनम् ।

वेसवार गुरु, स्तिव्य, बलकारक, वातरोग नाशक, सब धातुओं का पुष्टिकारक और विशेष कर मलनाशक है ॥ २ ॥

अथाऽऽयुविचारमाह ।

मिषगादौ परीक्षेत रुणस्याऽस्युः प्रयत्नतः ।

सत्यायुषि तु विस्तीर्णैः चिकित्सा सफला भवेत् ॥ १ ॥

आयु विचार—सर्व प्रथम वैद्य को यलपूर्वक रोगी की आयु-परीक्षा करनी चाहिये क्योंकि विस्तृत आयु रहने पर ही चिकित्सा सफल हो सकती है ॥ १ ॥

तत्र दीर्घायुषो लक्षणानि—सौम्या हृष्टिर्भवेद्यस्य श्रोत्रं स्वक्ष्यं तथैव च ।

स्वाहु गन्धं विजानाति स साध्यो नाश संशयः ॥ २ ॥

दीर्घायु के लक्षण—जिस रोगी की दृष्टि सौम्य हो, कणि और त्वचा भी सौम्य हो और जो स्वादु (अच्छे) स्वादयुक्त तथा गन्ध को जान सके अर्थात् प्राण शक्ति अच्छी हो वह साध्य है इसमें संशय नहीं ॥

पाणी पादौ च यस्यादौ दाहः स्वस्वपतरो भवेत् ।

जिह्वा: सुकोमला यस्य स रोगी न विनश्यति ॥ ३ ॥

हाथ, पैर जिसके उष्ण हों और दाह थोड़ा होता हो तथा जिह्वा जिसकी कोमल हो वह रोगी नहीं भर सकता है (साध्य है) ॥ ३ ॥

स्वेदहीनो ज्वरो यस्य शासो नासिकया सरेत् ।

कण्ठश कफहीनः स्यात्स रोगी जीवति ध्रवम् ॥ ४ ॥

जिस रोगी का ज्वर स्वेद रहित हो, शास नासिका से ही आती हो, कण्ठ में कफ नहीं हो वह रोगी निश्चित जीता है ॥ ४ ॥

यस्य निद्रा सुखेन स्वाद्यरीरं सोद्यमं भवेत् ।

इन्द्रियाणि प्रसक्षानि स रोगी नैव नश्यति ॥ ५ ॥

जिस रोगी को निद्रा सुख पूर्वक हो अर्थात् सोने में जिसे कष न हो, शरीर उद्यमशील (इल्की) हो और इन्द्रियां प्रसक्ष हों वह रोगी नहीं मरता है ॥ ५ ॥

अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि ।

अथ कालस्य विज्ञानं प्रवश्यामि यथाश्रुतम् । जीवितं मरणं वापि येन जानाति निश्चितम् ॥ ६ ॥

योगदाकरः ।

अल्पायु के लक्षण—ग्रन्थकार का कथन है कि अब काल (वय) का विज्ञान कहता हूँ जैसा कि मैं सुना हूँ और जिसके जानने से जीवन और मरण का निश्चित ज्ञान हो जाता है ॥ १ ॥

कालग्रहस्य यस्येदं दंध्रायाः संयुगे जगत् । अथैव वा प्रभाते वा सोऽवश्यं भक्षयिष्यति ॥२॥

कालग्रह जो है उसके दाँतों में यह संसार लगा हुआ है अर्थात् संसार नित्य ही काल (मृत्यु) के मुह में है, वह काल आज ही अथवा प्रातःकाल में (कल) अवश्य ही भक्षण करेगा ॥ २ ॥

रसं रसायनं योग्यं कालं ज्ञात्वा समाचरेत् । तस्याज्ञाने वृथा सर्वं तस्मात्प्रोच्यते मया ॥३॥

काल (वय वा समय) का ज्ञान करके तब योग्य रस का रसायन का प्रयोग करे क्योंकि, काल के ठीक नहीं जानने से सब व्यर्थ है, इसलिये मैं यहाँ काल (वय) ज्ञान कहता हूँ ॥ ३ ॥

शरीरशोल्योर्यस्य प्रकृतेविकृतिभवेत् । तदरिष्टं समासेन व्याप्तसत्त्वं निबोध मे ॥ ४ ॥

शरीर धारियों की प्रकृति में विकार उत्पन्न होना अरिष्ट कहलाता है जिसे विस्तृत रूप से मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥

शृणोति विविधाव्यादान् विपरीतं शृणोति वा ।

न शृणोति च योऽकस्मात् वदन्ति गतायुष्मम् ॥ ५ ॥

जो रोगी अनेक प्रकार के शब्द अन्यायास ही सुना करे अथवा विपरीत शब्द (कहा जाय कुछ और सुन लेवे कुछ) सुने अथवा सुने ही नहीं वह रोगी मर जाता है अर्थात् उसकी आयु समाप्त हो गयी ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

यत्पृष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् । उत्थगात्रोऽतिमात्रं यो भृशं शीतेन कम्पते ॥६॥
प्रहारं नैव जानाति यो गच्छेदन्यथाऽपि वा । पांशुनेत्रावकीर्णनि यश्चगात्राणि मन्यते ॥७॥

वर्णोऽन्यथा वा राजयो वा यस्य गान्ध्रे भवन्ति हि ।

स्नातानुलिप्तं च चापि भजन्ते नीलमालाकाः ॥ ८ ॥

विरीतेन गृह्णाति रसायनशोषयोजितान् । यो वा रसाक्ष संवेत्ति तं गतासुं प्रचक्षते ॥ ९ ॥

जो रोगी उष्ण पदार्थ को शीतल की तरह और शीतल पदार्थ को उष्ण की तरह विपरीत ग्रहण करे और शरीर उष्ण रहने पर भी शीत (ठंडक) से काँपे । प्रहार (आघात) को जो नहीं समझ सके अथवा दूसरे स्थान में जाना भी नहीं समझ सके । जो अपने शरीर को पांशु (धूल) से लिप्त समझे । जिसका वर्ण विपरीत हो जावे अथवा शरीर पर रेखा ऐसा हो जावे और स्नान, अनुलेपन से युक्त होने पर भी जिसके ऊपर नीले वर्ण की मञ्चवी बैठा करे तथा रस आदि के स्वाद को विपरीत ग्रहण करे अर्थात् नहीं समझे उसको गतायुष समझना चाहिये (कहा गया है) ॥ ९-१० ॥

सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धं च सुगन्धवत् ।

गृह्णाति योऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे निरामयः ॥ १० ॥

जो रोगी सुगन्धित वस्तु को दुर्गन्धित और दुर्गन्धित को सुगन्धित समझे और दूसरे गन्ध को ग्रहण करे वह रोगी भरने के बाद ही रोगमुक्त होगा अर्थात् उसे गतायुष समझना चाहिये ॥ १० ॥

रात्रे सूर्यं उवलन्ते वा दिवा वा वन्दूवर्चसम् ।

दिवा उयोर्वीषि यश्चापि उवलितानीव पश्यति ॥ ११ ॥

विश्वावतः सितान्मेघान् गगने निर्वने धनान् । विमानयान्नप्राप्तौ दैर्यश्च सङ्कुलमन्धवम् ॥१२॥

वश्वानिलं मूलिमन्तसन्तरिक्षेऽवलोकते । धूमलीहारवासोभिरावृतां यश्च मेदिनीश्च ॥ १३ ॥

प्रदीपमिव यो लोकं यो वा ल्लुतमिवाभ्यसा । भूमिष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ १४ ॥

यो न पश्यति वृद्धाणि यश्च देवीमरुन्धतीम् । भ्रवमाकाशगङ्गां च तं वदन्ति गतायुषम् ॥

स्वल्पायुषो लक्षणानि ।

जो रोगी रात में प्रज्वलित सूर्य को देखे और दिन में चन्द्रमा की किरणों को देखे और दिन में जलते हुए नक्षत्रों को देखे तथा स्वच्छ मेघ (आकाश) में विजली चमकती हुई देखे और स्वच्छ आकाश को मैयों से धिरा हुआ समझे और आकाश को विमान, यान तथा अद्वालिकाओं से व्याप्त समझे, आकाश में बायु को भूतिमान देखे, धूंधा, कुहेसा और कपड़े से ढकी हुई पृथ्वी को देखे, जो संसार को प्रशील (जलता हुआ) अथवा जल में तैरता हुआ देखे, भूमि को आठ पैर वाले जीव के आकार को देखे अथवा रेखाओं से धिरी हुई देखे, जो नक्षत्रों को न देखे और अरुन्धती नक्षत्र को न देखे, ध्रुव नक्षत्र को न देखे तथा आकाशगङ्गा (ताराओं से व्याप्त चौड़ी सतह सड़क की तरह आकाश के इस छोर से उस छोर तक रहती है) को न देखे उसे गतायुष कहते हैं ॥ ११-१५ ॥

आदर्शेऽम्बुनि धर्मे वा छायां यश्च न पश्यति ।

पश्यत्येकाङ्गीनां वा विकृतां भाडन्यसत्यजाम् ॥ १६ ॥

हीभियो नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा । अकरमाद्यं भजन्ते वा स परासुरालंशयम् ॥

जो मनुष्य दर्पण, जल तथा धूप में अपना प्रतिम्ब (छाया) नहीं देखता है, अथवा एक अङ्ग से हीन, विकृत किसी दूसरे की छाया की भाँति अपनी छाया को देखे, तथा लज्जा, भय, तेज, ओज (पराक्रम), स्मरणशक्ति और कान्ति जिसकी नष्ट हो गयी हो और अकरमात् यो पूर्वोक्त गुण वाला हो जावे वह दूसरे देवलोक का कहा जाता है अर्थात् वह मर जाता है ॥ १६-१७ ॥
शस्याधरोष्टः पतितः चित्तशोध्वं तश्चेत्तरः । उभौ वा जास्ववाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥

जिस मनुष्य का नीचे का ओठ गिर जावे (नीचे लट्क जावे) और ऊपर का टेढ़ा हो जावे अथवा दोनों भालू के ओठ की तरह हो जावे उस मनुष्य का जीवन दुर्लभ है अर्थात् वह नहीं जी सकता ॥ १८ ॥

आरक्ष दशना यस्य रथावा वा स्युः पतन्ति वा ।

खञ्जनप्रतिमा वाऽपि तं गतायुषमादिशेत् ॥ १९ ॥

जिस रोगी का दाँत लाल अथवा काला हो जावे अथवा गिर जावे और खञ्जन (खिडरिच पक्षी विशेष) की तरह श्याव हो जावे उसको गतायुष जानना चाहिये ॥ १९ ॥

कृष्णा तथाऽनुलिप्ता च जिह्वा शूना च यस्य वै ।

कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्ब्रह्मात्यसून् ॥ २० ॥

जिस रोगी की जिह्वा काली, स्लेह से लिप्त, शोथ युक्त अथवा कर्कश (रुक्ष) हो जावे वह शीघ्र प्राण का त्याग करता है ॥ २० ॥

कुटिला स्फुटिता चापि शुष्का वा यस्य नासिका ।

अवस्थूर्जति भग्ना वा स न जीवति मानवः ॥ २१ ॥

जिस रोगी की नाक टेढ़ी, उठी हुई अथवा शुष्क हो जावे, फड़के अथवा धूटे हुए जैसी हो जावे वह नहीं जीता है ॥ २१ ॥

विस्फूर्जति श्वसस्वेगोन्दच्चः शब्दं करोति च ॥

संषिसे विषमे स्तव्ये रूपे स्वस्ते च लोचने । रथातां च प्रसुते यस्व स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ २२ ॥

जिसकी नासिका श्वस के वेग से फड़के और उच्च शब्द करे तथा नेत्र टेढ़े, विषम, स्तव्य, रूप और लाल युक्त हो जायें और पसर जावे वह मनुष्य निश्चित ही गतायुष है ऐसा जानना चाहिये ॥ २२ ॥

केशः सीमन्तिनो यस्य सङ्कृचिते विनते अबौ ।

लुलन्ति वाऽचिरिचामिणि सोऽचिरात्याति मृत्यवे ॥ २३ ॥

जिस रोगी के बेश शाड़े (सैंवारे) जैसे हो जावे, उलटी वा टेढ़ी (नीची) भौंहें हो जावे अद्विष्म मन्त्रं चंचल हो जावे यह वह शीघ्र मर जाता है ॥ २३ ॥

नाऽहरत्यक्षमास्यथं न धार्यति च यः शिरः । एकाग्रद्विष्मूढात्मा सत्यः प्राणान् स मुद्दति ॥२४॥

जो रोगी सुंह में आहार न धारण करे अथवा शिरको रिथर न रखे, इष्टि जिसकी एकाग्र हो अर्थात् टकटकी बैंध जावे और अचेत हो जावे नह शीघ्र प्राण को छोड़ देता है ॥ २४ ॥

दृश्याप्यमानो बहुशः संमोहं योदधिगच्छति । बलचान् दुर्बलो वाऽपि तं पक्षं भिषगादिशेत् ॥

जो रोगी बलचान हो अथवा दुर्बल हो लेकिन उठाने पर मूर्छा उसे हो जाती हो उसे पक्ष अर्थात् गतायुष जानना चाहिये ॥ २५ ॥

निद्रा निरन्तरं यस्य यो जागर्ति च सर्वदा । मुहोद्वा वक्तुकामश्च प्रस्थास्येयः स जानता ॥

जिस रोगी को निरन्तर निद्रा लगी रहे अथवा निरन्तर जागता ही रहे और बोलने में अचेत हो जावे उसे गतायुष जानना चाहिये ॥ २६ ॥

बृत्तरोष्टु च यो लिङ्गात्पूर्कारांश्च करोति यः । ग्रेतैर्वा भाषते सोऽथ प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥२७॥

जो रोगी ऊपर के ओठ को चाटा करे और फूलकार (ओठों में शास कुर फुर करके निकले) किया करे अथवा यह प्रेत है ऐसा कहे उसे प्रेतरूप अर्थात् मरा हुआ जानना चाहिये ॥ २७ ॥

द्वेष्यः सरोमाकृपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते । पुरुषस्याविवार्तास्य स सथो जीवितं यज्ञेत् ॥२८॥

जिस मनुष्य की इन्द्रियों तथा रोमकूपों से रक्त का प्रवाह होता हो उसे परन्तु वह विष नहीं खाया हो अर्थात् विष खाने से ऐसा होने पर मरने की शंका कम होती है तो वह शीघ्र जीवन को छोड़ता है ॥ २८ ॥

सम्बिचकित्यमानस्य विकारो योऽभिवर्धते । प्रहीणवल्मीकिस्य लक्षणं तदगतायुषः ॥२९॥

जिसकी अच्छी तरह चिकित्सा करने पर भी विकार (रोग) बढ़ता ही जावे और बल-मांस क्षीण होता जाने उसे गतायुष जानना चाहिये ॥ २९ ॥

भूतः भ्रेताः पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च । मरणाभिमुखं जन्तुमुपसर्पन्ति नित्यशः ॥

भूत प्रेत पिशाच और अनेक प्रकार के राक्षस मृत्यु के निकट पहुंचे मनुष्य के पास नित्य ही पहुंचते हैं ॥ ३० ॥

तानि भेषज्जीर्याणि प्रतिद्वन्द्विति जिघांसया ।

तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषाम् ॥३१॥

जो गतायुष व्यक्ति पर उचित ओषधियों के वीर्य को प्रतिकूल फल देने वाले कर देते हैं और उनकी शक्ति नष्ट कर देते हैं इसी कारण सब क्रिया निष्पल होती है और वह मर जाता है ॥ ३१ ॥

जाग्रता नवलचास्तु दशलचास्तु पक्षिणः । रुद्धलचास्तु क्रियाद्याः स्थावराणां च विश्वातिः ॥

जिन्हास्तु गवादीनां चतुर्लक्षास्तु मानवान् । शतायुः पुरुषश्चैव वृषाणां तु सहस्राक्षम् ॥३२॥

द्वात्रिंशत्प्रत्यक्ष तुरङ्गाणां शतं कुरुत्वसिहयोः । व्याघ्राणां च चतुःषष्ठिः सहस्रं फणिकाक्योः ॥३३॥

जाग्रता नवलचास्तु शुनां द्वादशवत्सरम् । चतुर्विंशतिरुक्तं गोमहिष्याः सूकरस्य च ॥३४॥

अजानां द्वादशं प्रोक्तं मत्स्यानां मयुतं तथा । कुकुटा नव वर्षाणि मृगाणां विशलिर्भवेत् ॥३५॥

पक्षिणां दश वर्षाणि स्वराणां द्वादशद्वयम् । चतुर्विंशतिरुक्ताणां रासभानां तथैव च ॥३६॥

इत्यायुर्विवारः ।

जल से उत्पन्न जन्तुओं की नव लक्ष (लाख), पक्षियों की दश लक्ष क्रिमि इत्यादिकों की, पांच लाख, स्थावर जीवों की चौस लाख, गौ अदिकों की तीस लाख, मनुष्य मानव (दानव) अदिकों की चार लाख योनि हैं, उनमें पुरुष की सौ और वृक्षों की हजार, चौपायाँ (चतुर्गं) की साठ इस्ती और सिंह की सौ, व्याघ्रादिकों की चौसठ, सर्प तथा काक की हजार, शृगालों की सोलह वर्ष,

कुत्तों की बारह वर्ष, गौ, भैस और सूकर की चौबीस, बकरियों की बारह, मछलियों की हजार, कुकुटों की नव वर्ष, मृगाओं की चौस, पक्षियों की दस वर्ष, खरों (गदहों) की चौबीस, जटों की चौबीस और रासभों (बचरों) की चौबीस वर्ष की आयु होती है ॥ ३२ ॥

अथ नित्यप्रवृत्तिप्रकारमाह ।

दिनचर्यां निशाचर्यां ऋतुचर्यां यथोदितात्म । पुरुषः संघवहरन्सदा तिष्ठति नान्यथा ॥३॥

नित्यप्रवृत्ति (नित्य नियम करने) के प्रकार (भेद)—मनुष्य दिनचर्या रात्रिचर्या और ऋतुचर्या जिस प्रकार शास्त्र में लिखा हुआ है उस प्रकार करते रहने से स्थित (जीवित) का स्वस्थ रहता है अन्यथा नहीं ॥ ३ ॥

समदोषः समाशिश्च समधातुमलक्रियः । प्रसञ्चात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ दृत्यभिधीयते ॥२॥

स्वस्थ के लक्षण—जिस मनुष्य को वातादि दोष समान हो, अस्त्र समान हो, धूतुओं की (रस-रक्तादिकों की) तथा मलादिकों (मल, सूत्रादिक वा) किया समान (न कम न अधिक) हो, आत्मा, इन्द्रियों और मन जिसके प्रसरण हो उसे स्वस्थ कहते हैं ॥ २ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्धोते रस्त्वस्थो रक्षार्थमायुषः । तत्र सर्वाध्यान्यथर्थं स्मरेष्व मधुसूदनस् ॥३॥

दिनचर्या विधि—स्वस्थ मनुष्य आयु की रक्षा के लिये ब्राह्म मुहूर्त में (सूर्योदय के दो घण्टापूर्व क्षोकर उठ जावे और उस समय अपने सब प्रकार के पारों की शान्ति के लिये मधुसूदन (भगवान् विष्णु) का स्मरण करे ॥ ३ ॥

द्वात्रायाद्याद्वायाद्विद्विविवरणोऽचनन्तजामूर्तु । दर्शनं स्थर्णनं कार्यं प्रदुद्देन शुभावहम् ॥४॥

जो सोकर उठा हो उसे दही, धी, आदर्श (ऐनक) सरसों, बेल, गोरोचन, तथा पुष्पों की माला का दर्शन और स्पर्श करना शुभमादायक है ॥ ४ ॥

स्वमाननं धूते पश्येद्युच्छ्वेच्चिरजीवितम् ।

आयुष्यसुषिप्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् । तदन्त्रकूजनाभ्यानोदरगौरववाराणम् ॥५॥

अपने मुख की धी में देखना दीर्घ जीवन चाहने वालों के लिये श्रेष्ठ है । तथा प्रातःकाल में मल मूत्रादिकों का त्याग करना आयु के हितकर शास्त्र में कहा गया है । तथा प्रातःकाल मलादिकों के त्याग में आंत की गुणगुडाहट, आधमान (पेट का फूलना आयु से) और भेद का भारीपन आदि नहीं रहता है ऐसा कहा गया है ॥ ५ ॥

आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्धवातः ।

पुरीषमास्याद्यथावा निरति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥६॥

पुरीष के (शौच) वेग को रोकने से हानियां—पुरीष के वेग को रोकने से आटोप (शुद्ध गुडाहट), शूल, परिकर्तिका (गुदा में कतरने की तरह पीड़ा होता) न, मलका रुक जाना, कष्ठवैवात (डकार) होना अथवा मुख से मल का निकलना यह होता है ॥ ६ ॥

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो धमानं कुमो रुजा । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातिनिग्रहात् ॥

वायु के वेग रोकने पर हानियां—वायु के वेग को रोकने से वायु, मूत्र और मल का रुक जाना, पेट गुलना, (आफरा), छान्ति, पीड़ा (शूल) तथा उदर में अन्य कई प्रकार की वायु होती है ॥ ६ ॥

चरितमेहनयोः शूलं शूलं मूकच्छूलं शिरोरुज्जा । विनामो वंचणानाहः स्याश्चिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥

मूत्र के वेग को रोकने से हानियां—मूत्र के वेग को रोकने से मूत्राशय और शिश में पीड़ा, मूत्र में कष्ठ, शिर में पीड़ा, पीड़ा से शरीर का छुक जाना तथा वंक्षण का तन जाना आदि होता है ॥ ८ ॥

त वेगितोऽन्यकार्यः स्थान्न वेगानीरयेद्गुलात् । कामशोकभयक्रोधान्मनोवेगान्विधारयेत् ॥१४॥
वेग के रोकने और नहीं रोकने की व्यवस्था—वेग अर्थात् मल-मत्रादि का वेग होने के समय दूसरा कार्य नहीं करना चाहिये उसी कार्य को करना चाहिये तथा वेग न हो उस समय वल पूर्वक मलादिक को नहीं निकालना चाहिये । और मनुष्य को काम, शोक, भय, क्रोध और मनके वेग को रोकना चाहिए ॥ ९ ॥

गुदादिमलमार्गीणां ज्ञौचं कनिष्ठवलप्रदम् । पाविष्ठकरमायुष्यमलचमीकलिपापहत् ॥१०॥

मलादिकों के सम्यक् निकालने का फल—गुदा आदि मलके मासों की शुद्धता कान्ति तथा बलदायक, पवित्र करने वाला, आयु देने वाला, लक्ष्मी देने वाला तथा कलियुग के पारों को हरनेवाला है ॥ १० ॥

प्रज्ञालनं हि पाप्योश्च पादयोः शुद्धिकारणम् । मलश्रमहरं वृष्टं चक्षुष्यं रात्रसापहम् ॥११॥

मल आदि के त्यागने के पश्चात् हाथ-पैर को धोना-माजना, शुद्ध करने वाला, मल के श्रम को हरने वाला, वृष्ट, नेत्र की ज्योति बढ़ाने वाला और रजो गुण का नाश करने वाला कहा गया है ॥ ११ ॥

दन्तधावनप्रकारः—

अकंन्यग्रोधस्तिर्दकरज्ञकुम्भादिकम् । प्रागुद्गुमुखमासीनो निश्चो मौनवानपि ॥१२॥

दन्तधावन प्रकार (दतुअन की विधि) आक, बट, खदिर, करज (टैरी) और अर्जुन वृक्ष आदि के दतुअन पूर्व अथवा उत्तर मुख से स्थिर बैठ कर मौन होकर करे ॥ १२ ॥

मधुको मधुरे श्रेष्ठः करजः कठुके तथा । निष्वस्तु तिक्को श्रेष्ठः कथाये खदिरस्तथा ॥१३॥

मधुर काढ़ों में मधुये का दतुअन श्रेष्ठ है, कठुक काढ़ों में करज का दतुअन श्रेष्ठ है, तिक्क वृक्षों में नीम का दतुअन तथा कथाय में खदिर का दतुअन श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

समयं तु समालोक्य दोषं च प्रकृतिं तथा । यथोचितै रसैवैर्यैर्युक्तं द्रव्यं प्रयोजयेत् ॥१४॥
तेनाऽस्यरसवैरस्यगच्छजिह्वायास्यज्ञाय गदाः । हच्चैवशाश्वलघुता न भवन्ति भवन्ति च ॥१५॥

समय के विचार से दोष, प्रकृति देख कर यथोचित रस-वैर्य से युक्त वृक्ष का दतुअन करना चाहिये । इस प्रकार विचार कर किये हुए दतुअन से मुख के रस की विरसता, मुख का गन्ध और जिहा के रोग नहीं होते हैं और भोजन में रुचि, मुख की स्वच्छता और शरीर की लघुता (हल्कापन) होती है ॥ १४-१५ ॥

अकं वीर्यवटे दीसिः करजे विजयो भवेत् । गुह्ये चैवार्थसम्पत्तिर्दद्यां मधुरो ध्वनिः ॥१६॥

खदिर मुखसौगन्धयं विलेत् तु विपुलं धनम् । उदुम्बरे तु वाकुनिदिस्वान्नेत्वारोग्यमेव चा । कद्यवे च धृतिमेंद्रा चर्पके दृढवाक् श्रुतिः । शिरोये कीर्तिसौभाग्यमायुरारोग्यमेव च ॥१६॥
अपामार्गं धृतिमेंद्रा प्रज्ञाशक्तिस्तथा ध्वनिः । दादिर्यां सुन्दराकारः ककुमे कुटजे तथा ॥१७॥

जातीतगरमन्दारैर्दुःस्वप्नश्च विनश्यति ।

वृक्ष विशेष दतुअन करने से फल—आम के दतुअन करने से वीर्य, वट के दतुअन करने से दीपि (तेज), करज के दतुअन करने से विजय, पाकर की दतुअन करने से अर्ध-सम्पत्ति, वैर की दतुअन करने से मधुर ध्वनि, खदिर के दतुअन करने से मुख की सुगन्धि, बेल के दतुअन करने से विपुल सम्पत्ति, गूलर के दतुअन करने से वचन की सिद्धि (जो कहे वह पूर्ण हो), आम के दतुअन करने से आरोग्यता, कदम्ब के दतुअन करने से धैर्य और धारण शक्ति, चम्पा के दतुअन करने से वचन में इडता और शाश्व में इडता, शिरीष के दतुअन करने से यश, सौभाग्य, आयु और आरोग्यता, अपामार्ग के दतुअन करने से धैर्य, धारण शक्ति, समझने की शक्ति और ध्वनि (स्वर), अनार के दतुअन करने से आकार की सुन्दरता होती है । अर्जुन

और कुटज के दतुअन से भी सुन्दराकृति होती है और चमेली, तगर और मन्दार के दतुअन से दुःस्वप्न का नाश होता है ॥ १६-१७३ ॥

भृष्येहन्तथवनं द्वादशाङ्कुलमायतम् ॥२०॥

कनिष्ठिकावस्थूलं च मृदुग्रीष्य तथाऽवणम् । एकैकं धर्षयेहन्तं मृदुना कूर्चकेन तु ॥२१॥

दतुअन किस प्रकार का करना चाहिये—बारह अंगुल की लम्बी, कनिष्ठिका अंगुली के समान मोटी, मृदु, विना-गांठ की तथा चिकनी दतुअन को चबा कर मृदु कूंची बनाकर एक २ दाँत को रगड़-रगड़ कर साफ करना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

दन्ततशोधनचूर्णेन दन्तमासान्यवाधयन् । चौद्द्विकटदुकात्तेन तैलसिन्धुभवेन वा ॥२२॥

चूर्णेन तेजोवर्याश्च दन्ता ज्ञित्यं विशेषयेत् । शिरोहजातस्तुष्टिः श्रान्तः पामकुमान्वितः ॥२३॥

अद्वितीय कर्ण शूली च नेत्ररोगी न वजडवरी ।

अथवा दाँतों को साफ करने वाले मंजनों के साथ उस दतुअन से दाँत के निकट के मांस (मसूड़े) को बचाते हुए एक २ कर दाँत साफ करना चाहिये अथवा मधु और सौंठ, पीपरि, मरिच के चूर्ण से, कुण्ड तेल और सेंधा नमक के चूर्ण से अथवा तेजवल्कल के चूर्ण से नित्य दाँतों को शुद्ध करना चाहिये ॥ २२-२३३ ॥

वर्जयेहन्तकाष्ठं तु हृदामययुतोऽपि च ॥२४॥

किन २ मनुष्यों को दतुअन नहीं करना चाहिये—शिर की पीड़ा वाला, प्यास का रोगवाला, थका हुआ, मधु पीने से ड्रान्त, अरिंत रोग से पीड़ित, कर्ण शूल वाला, नेत्र रोग वाला, नये ज्वर वाला और हृदोग वाला मनुष्य का ठीक होने वाले दतुअन नहीं करे ॥ २४ ॥

न खादेद्गुलताश्वोष्टजिह्वादन्तगदेषु तत् । मुखस्य पाके शोथे च श्वासकासवमीषु च ॥२५॥

गला, तालु, ओठ, जिहा, दाँत आदि का रोगी, मुखपाक वाला, शोथ, श्वास, कास और वमन का रोग वाला काठ का दतुअन नहीं करे ॥ २५ ॥

दुर्बलोऽजीर्णभुक्तश्च हिक्कामृद्धमिदान्वितः ।

दुर्बल (क्षीण), भोजन जिसका परिपक्व न हुआ हो, हिक्का, मूर्छा और मदात्यय का रोगी काठ की दतुअन नहीं करे ॥ २५३ ॥

जिह्वानिलेखनं हैमं राजतं तात्रजं तथा ॥२६॥

पाटितं मृदु तरकाष्ठं मृदुपत्रमयं तथा । द्वाशाङ्कुलं मृदु द्विग्रंतेन जिह्वां लिखेत्सुखम् ॥२७॥

जिह्वानिलेखन (जीभी करने) प्रकार—सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँसे की बनाई हुई जीभी अथवा दन्तधावन प्रकरण में कहे हुए काठों को चीर कर बनाई हुई की अथवा कोमल पल्हनों की बनी हुई दस अंगुल प्रमाण की, कोमल, द्विग्रंत जीभी से जिहा को सुखपूर्वक छील कर शुद्ध करना चाहिये । अर्थात् इस प्रकार छीलना चाहिये कि बिना कष्ट के जिहा साफ हो जावे कटे-फटे नहीं ॥ २६-२७ ॥

तेनाऽस्यमलवैरस्यगच्छजिह्वाऽस्यदन्तज्ञाः । नश्यन्ति हृतिवैशाश्वं लघुता च भवन्ति हि ॥२८॥

जिह्वानिलेखन का फल—जीभी करने से मुख का मल, विरसता, गन्ध, जिहा, मुख और दाँतों के रोग नष्ट होते हैं तथा भोजन में रुचि, मुख की स्वच्छता और शरीर में लघुता होती है ॥ २८ ॥

गण्डूषमथु कुर्वत जीतेन पथसा मुहुः । कफतृष्णामलहरं मुखान्तःशुद्धिकारणम् ॥२९॥

गण्डूष का प्रकार और फल—बार-बार शीतल जल से कुछा करना चाहिये इससे कफ, तुष्णी और मल का नाश होता है और मुख की भीतर की शुद्धि होती है ॥ २९ ॥

सुखोष्णोदकगण्डूषः । कफाशुद्धिमलापहः । दन्तजाक्ष्यहरश्चापि मुखलाघवकारकः ॥३०॥

और भी बलार्थ के लक्षण—व्यायाम करने से जब ललाट, नासिका, शरीर की सन्धियों तथा कांस में पसीना होने लगे तब बलार्थ व्यायाम हुआ जाना चाहिये ॥ ५१ ॥

भुक्तवान्कृतसंभोगः कासी शासी कृष्णः चयी । रक्षिती चती शोषी न तं कुर्यात्कदाचन ॥

व्यायाम के अयोग्य व्यक्ति के लक्षण—तुरत भोजन किया हुआ, मैथुन किया हुआ, कास रोग बाला, श्वास, दुर्लता, क्षय, रक्तपित्त, क्षत और शोष का रोग बाला मनुष्य व्यायाम के अयोग्य है अर्थात् इहे व्यायाम नहीं करना चाहिये ॥ ५२ ॥

अतिव्यायामतः कासो उवरश्छदिर्ब्रमः कूमः । तृष्णा चयः प्रतमको रक्षितं च जायते ॥

अत्यन्त व्यायाम के दोष—व्यायाम अधिक करने से कास, उवर, वमन, भ्रम, क्लान्ति, तृष्णा, क्षय, प्रतमक और रक्तपित्त का रोग उत्पन्न होता है ॥ ५३ ॥

अभ्यङ्गादिविधिः—

अभ्यङ्गमाचरेक्षित्यं सर्वेष्वद्वेषु पुष्टिदम् । शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥ ५४ ॥

अभ्यङ्ग (तैलमर्दन) प्रकार—तथा गुण—तैलमर्दन नित्य करना चाहिये यह सम्पूर्ण अङ्गों में पुष्टि देने वाला है, इसको सिर, कान और पैर में विशेष कर नित्य लगाना चाहिये ॥ ५४ ॥

सार्वपं गम्धतैलं च यस्तेलं पुष्पवासितम् । अन्यद्व्यययुतं तेलं न दुष्पति कदाचन ॥ ५५ ॥

सरसों का तेल, गन्ध द्रव्यों द्वारा बनाया तेल, पुष्पों से सुवासित कर बनाये जाने वाले तेल अथवा अन्यान्य द्रव्यों (औषधादिकों) द्वारा बनाया तेल कभी दोषकारक नहीं होता है ॥ ५५ ॥

अभ्यङ्गो वातकफहच्छ्रमशान्तिबलं सुखम् । निद्रावर्णस्तदुव्वायुः कुरुते हृषिपुष्टिकृत् ॥ ५६ ॥

सम्पूर्ण अङ्गों में तेल लगाने के गुण—सम्पूर्ण अङ्गों में तैल मर्दन करने से बात, कफ और त्रम दूर हो जाता है, और वल, सुख, निद्रा, वर्ण (रूप), कोमलता, आयु, शरीर की हृषि तथा पुष्टि करता है ॥ ५६ ॥

अभ्यङ्गः शीलितो मूर्जि सकलेन्द्रियतर्पणः । हृषिपुष्टिकरो हन्ति शिरोभूमिगतान्गादान् ॥५७॥

शिर में तेल लगाने के गुण—शिर में तेल मर्दन करने से सम्पूर्ण हृषियां तृप्त होती हैं, शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है तथा शिरो भाग के रोगों का नाश होता है ॥ ५७ ॥

केशान् बहुतो दाढ्यं यदुतो दीर्घतो तथा । कृष्णतो कुरुते कुर्यादिकुरसः पूर्णतामयि ॥५८॥

केशों में अत्यन्त सघनता (बुद्ध उत्पन्न होना), कोमलता, दृढ़ता, कृष्णता तथा मस्तिष्क की पूर्णता शिर में तेल मर्दन करने से होता है ॥ ५८ ॥

न कर्णीदोगा न मलं न च मन्याहनुग्रहः । नोच्चैः श्रुतिनं वाधिर्यस्याक्षित्यं कर्णपूरणात् ॥५९॥

कर्णपूरण के गुण—नित्य कान में तेल डालने से कान के रोग नहीं होते, उन में मलादि नहीं रहने पाते, मन्यास्तम्भ रोग और हनुस्तम्भ रोग (मन्या नाम की शिरा और हनु का जड़ जाना) नहीं होते, कम सुनाई पड़ना और वधिरता नहीं होती है ॥ ५९ ॥

रसादैः पूरणं कर्णं भोजनात्प्रक्षप्रशस्यते । तैलादैः पूरणं कर्णं भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ६० ॥

कर्णपूरण के योग्य समय—रस आदि औपथ कान में डालना हो तो भोजन के पहले डालना चाहिये और तैल डालना हो तो सूर्य के अस्त हो जाने पर डालना चाहिये ॥ ६० ॥

पादाभ्यङ्गस्तु सुस्थैर्यनिद्रादृष्टिप्रसादकृत् । पादसुस्थित्यगस्तम्भसकोचस्फुटनप्रणुत् ॥ ६१ ॥

पादाभ्यङ्ग के गुण—पैर में तेल का मर्दन करने से पैर की दृढ़ता, निद्रा तथा नेत्र की निर्मलता को करता है तथा पैर की शूल्यता, भ्रम, स्तम्भ, संकोच होना और पैर का फटना आदि रोग नहीं होता है ॥ ६१ ॥

मूर्जोऽभ्यङ्गारक्णयोः शीतमाहुः कर्णाभ्यङ्गात्पादयोरेवमेव ।

पादाभ्यङ्गो नेत्ररोगान् हरेष्व नेत्राभ्यङ्गाद्वन्तरोगश्च नशयेत् ॥ ६२ ॥

सब प्रकार के अभ्यङ्ग के गुण—शिर के अभ्यङ्ग से कान में शीतलता होती है, कान के अभ्यङ्ग (पूरण) से पैर में शीतलता होती है, पैर के अभ्यङ्ग से नेत्र-रोग का नाश होता है और नेत्र के अभ्यङ्ग से दन्तरोग का नाश होता है ॥ ६२ ॥

व्यायामस्तुष्टवातुं पद्मयां सम्मदितं तथा । व्याधयो नोपसर्पनित वैनतेयमिवोशगाः ॥ ६३ ॥

विशेषकर पादाभ्यङ्ग के गुण—पैरों के व्यायाम (बैठक, चलना आदि) से थके हुए पुरुष को पैर में तेल का मर्दन करने से रोग इस प्रकार भागते हैं जिस प्रकार गरुड़ को देखकर सर्प भागते हैं ॥ ६३ ॥

रोमकूपसिराजालधमनीभिः कलेवरम् । तर्पयेद्वलमाधते स्नेहो युक्तोऽवगाहने ॥ ६४ ॥

शरीर में तेल लगा कर स्नान करने के गुण—तेल लगाकर स्नान करने से वह तेल रोम-कूप, सिरास्मूद् और धमनीयों से होकर शरीर में तर्पण और बल को करता है ॥ ६४ ॥

अद्विः संसक्तमूलानां तरुणां पञ्चवादयः । वर्धन्ते हि तथा नृणां स्नेहसिस्त्वादतावः ॥ ६५ ॥

जिस प्रकार जल से सीचे हुए वृक्ष के पछव आदि बढ़ते हैं उसी प्रकार तेल आदि से सीची हुई होने से शरीर की सब धातुयें बढ़ती हैं अर्थात् तैलमर्दन से सब धातुयें शरीर को तुम्प कर बढ़ती हैं ॥ ६५ ॥

नवजवरी शौजीर्णीं च वाभ्यक्त्यः कदाचन । तथा विरिक्तो वान्तश्च निरुदो यश्च मानवः ॥

तैलमर्दन के अयोग्य व्यक्ति के लक्षण—जिसे नवीन ज्वर हो, अर्जीर्ण हो, दस्त कराया जाता हो अथवा स्वतः अधिक दस्त होता हो, वक्षन होता हो निरुद वरित दी गयी हो उसे तैलमर्दन नहीं करना चाहिये ॥ ६६ ॥

पूर्वयोः कृच्छ्रता व्याधेसाध्यत्वमथापि वा । शोषाणां बहवः प्रोक्ता वद्विसादाशयो गदाः ॥

पहले कहे हुए अर्थात् नवजवरी और अर्जीर्णों को अभ्यङ्ग से रोग में फँच्छता वा असाध्यता होती है और शैव वग्न-विरेचन आदि वालों को अभ्यङ्ग से अनेक प्रकार के अझिमान्वादि रोग होते हैं ॥ ६७ ॥

उद्धृतनं कफहरं मेदोदृनं शुक्रदं परम् । बल्यं शोणितकृक्षकान्तिर्वप्सादमृदुर्वकृत् ॥ ६८ ॥

उद्वर्तन (उवटन) के गुण—उद्वर्तन लगाने का कफ मेद रोग का नाशक होता है और अत्यन्त शुक्रदायक तथा बल रक्त और कान्ति का कारक होता है तथा त्वचा को निर्मल और मृदु (कोमल) करने वाला होता है ॥ ६८ ॥

मुखलेपाद् हृष्टं चक्षुः पीनो गण्डस्तथाऽननम् । कान्तमध्यङ्गिटकं भवेत्कमलसज्जिभम् ॥६९॥

मुखोद्वर्तन के गुण—मुख में उवटन लगाने से नेत्र की दृढ़ता, कपोल का मांसल होना, और जाईं, मांसल, मुखपिण्डिका आदि से रहित हो मुख कमल के सदृश सुन्दर होता है ॥ ६९ ॥

लानप्रकारः—

द्वीपनं वृष्ट्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम् । कण्ठमलमध्यस्वेदसन्द्रावृद्धाहपादमनुत् ॥ ७० ॥

स्नान का प्रकार—स्नान करने से अशि की दीपि, वीर्य, आयु, दृढ़ता और बल बढ़ता है तथा कण्ठ, मल, थकावट, स्वेद, तन्द्रा, तृष्णा, दाह और पाप का नाश होता है ॥ ७० ॥

बाह्याश्रय सेकैः शीताशैरुप्तमान्तर्याति वाहितः । नरस्य स्नानमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥

बाहर से शीतल जल आदि के सिंचन से (स्नान से) शरीर की जम्बा (गर्भीं) पीड़ित हो कर भीतर (उदर में) जाती है, इसलिये स्नान करने के बाद ही मनुष्य की जठराग्नि तीव्र हो जाती है अर्थात् स्नान करते ही भोजन की इच्छा बढ़ जाती है ॥ ७१ ॥

प्रातःस्नानमलं च पापहरणं दुःस्वर्गविध्वंसनं शौचस्थाऽस्यतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसाम् ।
रूपध्येतकरं शरीरसुखदं कामाभिसन्धीपनं श्रीणिं मन्मथगाहनं श्रमहरं स्नाने इश्वरे गुणः ॥

प्रातःकाल के खान के गुण—प्रातःकाल का खान मल और पाप का नाश करता है, दुःस्वर्ग का नाश करता है, यह पवित्रता का स्थान है तथा मल हरता है, तेज को बढ़ाता है, स्वरूप में दीसि करता है, शरीर को सुख देता है काम और अभियोग को दीप करता है, श्री लोगों के काम की वृद्धि करता है और श्रम मिटाता है। खान में ये प्रकार के गुण हैं ॥ ७२ ॥

श्रीतेन पयसा स्नानं रक्षपित्तप्रशान्तिकृत् । तदेवोष्णेन तोयेन बह्यं वातकफापहरम् ॥७३॥

श्रीतल तथा उष्ण जल से खान के गुण—दोष—श्रीतल जल से खान करने से रक्षपित्त की शान्ति होती है और उष्ण जल के खान करने से बल बढ़ता है तथा वात और कफ का नाश होता है ॥ ७३ ॥

उष्णाङ्गुनाऽथः कायस्य परिषेको बलावहः । तेनैव चोक्षमाङ्गस्य बलहृकेशचुषाम् ॥७४॥

उष्ण जल से शिर के नीचे अवः काय का सेक करने से बल बढ़ता है। और शिर पर से उष्णोदक से खान करने से बल, केश और नेत्र की हानि होती है ॥ ७४ ॥

शिरःस्नानमच्छुष्यमरयुष्णेनाऽग्नुना सदा । वातश्लेष्मप्रकोष्ठे तु द्वितं तच्च प्रकीर्तिम् ॥

अत्यन्त उष्ण जल से शिर पर से सदा खान करने से बेत्र के लिये हानि पहुँचती है, परन्तु वात और कफ के प्रकोप में उष्णोदक का शिर पर से खान हितकर कहा गया है ॥ ७५ ॥

यः सदाऽऽमलकैः स्नानं करेति स विनिश्चितम् । वलीपलितनिमुक्तो जीवेद्वर्धशतं नरः ॥७६॥

अँवला भित्रित जल अथवा अँवला लगाकर खान करने के गुण—जो नित्य अँवले के जल अथवा अँवला लगाकर खान करता है वह निश्चित ही वली—पलित से मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है ॥ ७६ ॥

अशीतेनाभसा खानं पयः पानं युवस्थियः । एतद्वो मानवाः पर्यं स्त्रियधमशं च भोजनम् ॥

उष्णोदक से खान के विशेष वर्चन—(अशीतीकुमार का राजा भोज से कहा हुआ) ऐ मनुष्यो ! अशीत (उष्ण) जल से खान, दूध पीना, युवती की से सम्मोग, स्त्रिय (धृतादि मिश्रित) अल्प भोजन यही तुम्हारे लिये पर्य है ॥ ७७ ॥

खानं उद्धरेऽतिसारे च नेत्रक्रणीनिलार्तिषु । आधमानपीनसाजीर्णमुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥७८॥

स्नान के अयोग्य पुरुष—जिसे ज्वर, अतीसार, नेत्र कर्ण, वायु का रोग, आधमान, पीनस तथा अजीर्ण का रोग हो और जो तुरत भोजन किया हो उसे स्नान नहीं करना चाहिये ॥ ७८ ॥

स्नानस्थानन्तरं सम्यग्वद्येण तनुमार्जनम् । कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्ठूत्वाद्योषनाशनम् ॥७९॥

स्नान के बाद वस्त्र से शरीर पौँछने के गुण—स्नान के बाद वस्त्र (गमछे) से शरीर अच्छी तरह पौँछने से शरीर की कान्ति बढ़ती है, कण्ठू (खुजली) और त्वचा के दोष नष्ट होते हैं ॥ ७९ ॥

वस्त्रादिवरणम्—

कौशेयं चिन्नवस्त्रं च रक्षवस्त्रं तथेष्व च । वातश्लेष्महरं श्रीतकाले तत्त्वं विधारयेत् ॥८०॥

वस्त्र धारण प्रकार—ऋतु भेद से वस्त्रधारण का प्रकार और गुण—श्रीतकाल का वस्त्र और गुण—श्रीतकाल में कौशेय (पीताम्बर-टसर आदि), चित्रित (छपे वा कई रंग के) और लाल वस्त्र धारण करना चाहिये क्योंकि इस प्रकार के वस्त्र वात और कफ का हरण करते हैं ॥ ८० ॥

मेधयं सुशीतं पित्तधनं काषायं वस्त्रमुच्यते । तद्वारयेदुष्णाकाले तद्वाति कृष्णं शस्यते ॥८१॥

उष्ण काल का वस्त्र और गुण—उष्ण काल में काषाय (गोरये रंग का) वस्त्र पहनना चाहिये यह मैथ (तुष्टिकारक), श्रीतल और पित्तनाशक कहा गया है और उस काषाय में भी जो लबु (पतला) हो वह विशेष प्रशस्त है ॥ ८१ ॥

शुक्लं तु शुभदं वस्त्रं शीतातपनिवारणम् । न चोषणं न च वा शीतं तच्च वर्षामुख धारयेत् ॥

वर्षा काल का वस्त्र और गुण—वर्षा काल में जो वस्त्र शुक्ल रवेत (शुभदायक), शीत तथा धूप से रक्षा से करने वाला और न उष्ण न श्रीतल हो उसे धारण करना चाहिये ॥ ८२ ॥

यशस्थं काष्ठयमायुधं श्रीदमानन्दवर्धनम् । त्वच्यं वशीकरं रुद्धं नवं निर्मलमग्वरम् ॥८३॥

नवीन तथा निर्मल वस्त्र धारण के गुण—नवीन और निर्मल वस्त्र नवीन वाला, त्वचा के लिये हितकर, वशीकरण तथा स्त्रियों का वस्त्र होता है ॥ ८३ ॥

कषायि न जनैः सन्धिर्धार्यं मलिनमग्वरम् । तत्त्वं कण्ठूक्रिमिकरं ग्लान्यलभ्यमीकरं परम् ॥८४॥

मलिन वस्त्र धारण के दोष—कभी-भी भले मनुष्यों को मलिन वस्त्र नहीं धारण करना चाहिये इससे कण्ठू (खुजली), क्रिमि (जूँआ, लीक आदि), ग्लानि, दरिद्रता वा अशोभा उत्पन्न होती है ॥ ८४ ॥

कुहुमं चन्दनं चापि कृष्णागुरुविभित्तम् । उष्णं वातकफध्वसि श्रीतकाले तद्विष्यते ॥८५॥

प्रलेप के गुण ऋतुमेद से—श्रीतकाल का लेप और गुण—कुहुम (केसर), चन्दन और काला अगर का मिश्रित लेप उष्ण, वात और कफ का नाशक है इसलिये इसे श्रीतकाल में उपयोग में लाना चाहिये ॥ ८५ ॥

चन्दनं घनसारेण वालकेन च मिश्रितम् । सुगन्धिं परमं शीतमुधाकाले प्रशास्यते ॥८६॥

उष्ण काल का लेप और गुण—चन्दन, कर्पूर, सुगन्धवाला का मिश्रित प्रलेप सुगन्धित और परम श्रीतल है इसलिये इसे उष्णकाल के समय उपयोग में लाना चाहिये ॥ ८६ ॥

चन्दनं धूसूणोपेतं सूगनामिसमायुतम् । न चोषणं न च शीतं वा वर्षाकाले तद्विष्यते ॥८७॥

वर्षा काल का लेप और गुण—चन्दन, केशर और सूगनामिभि मिश्रित प्रलेप न उष्ण है न शीत है इसलिये इसे वर्षा काल के समय उपयोग में लाना चाहिये ॥ ८७ ॥

अनुलेपस्त्रामूर्ढ्वाकुर्णवन्धवशमदाहिति ।

सौभाग्यतेलस्ववर्धनकान्त्योब्लवर्धनः । स्नानान्दस्य लोकस्य त्वनुलेपोऽपि नो हितः ॥

सामान्य रूप से प्रलेप के गुण—शरीर में सुगन्धित द्रव्यों का लेप-प्यास, मूर्छा, दुर्गम्य, थकावट और दाह को दूर करता है, सौभाग्य, तेज, त्वचा का वर्ण, कान्ति, ओज और बल को बढ़ाता है लेप के अयोग्य पुरुष—जिन (उवरी, अतिसारी आदि २) लोगों को खान के अयोग्य कहा गया है उन लोगों को प्रलेप भी अहितकर होता है ॥ ८८ ॥

सुगन्धिपुष्पपत्राणां धारणं कान्तिकारकम् । पापर्चोग्रहरं कामौजःश्रीविवर्धनम् ॥८९॥

पुष्प और आभरण धारण के गुण—सुगन्धित पुष्प तथा पत्र धारण के गुण—सुगन्धित पुष्प और पत्रों के धारण करने से शरीर की कान्ति बढ़ती है, पाप और राक्षस ग्रह की वाधा नष्ट होती है, काम, ओज, और श्री (शोभा) बढ़ती है ॥ ८९ ॥

भूषणमूर्षयेद्वां यथायोग्यं विधानतः । शुचिः सौभाग्यसंतोषदायकं काञ्चनं समृद्धम् ॥९०॥

भूषण के भेद और गुण—यथायोग्य विधिपूर्वक भूषणों से ज़क को भूषित करना चाहिये। सुवर्ण के आभूषण धारण करने का गुण—सुवर्ण के आभूषण पहनने से पवित्रता, सौभाग्य और सन्तोष होता है ऐसा शाल में कहा हुआ है ॥ ९० ॥

ग्रहदुष्टिहरं पुष्टिकरं कृष्णस्वर्गनाशनम् । पापदौर्भाग्यशमनं रत्नाभरणधारणम् ॥९१॥

रलों के आभूषण धारण करने के गुण—रज्जुटिट भूषण धारण करने से ग्रहों (सूर्योदि की कुद्दिष्टि) के दोष का नाश होता है और यह पुष्टिकारक, दुःस्वर्ग, पाप और दुर्भाग्य का नाशक है ॥ ९१ ॥

होने पर ही भूख लगती है अतः यदि समय हुआ हो अथवा नहीं हुआ हो पर भूख लगी हो तो भोजन कर लेना चाहिये यही भोजन का उचित काल है ॥ ११० ॥

दद्वारशुद्धिरसाद्यो वेगोरस्यार्थोचितः । लघुता शुभिप्रसासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ १११ ॥

आहार परिपाक हो जाने का लक्षण—जब मनुष्य को शुद्ध डकार आने लगे, उत्ताह मालूम हो, मल-मूत्रादिक का उचित त्याग हो, शरीर इलका मालूम हो, भूख और प्यास मालूम पड़ने लगे तो किया हुआ आहार पच गया ऐसा जानना चाहिये ॥ १११ ॥

आहारं तु रहः (१) कुर्याद्विहरमपि सर्वथा । उभार्थ्यो लक्ष्युपेतः स्यात्काशे हीयते श्रिया ॥

भोजन करने के योग्य स्थान—मनुष्य को आहार और निहार (मल-मूत्रादिक का उत्सर्ग) एकान्त में सदा करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और न करने से दरिद्रता होती है ॥ ११२ ॥

उव्वरितं उवरसुकं वा दिनान्ते भोजयेत्तु । श्लेषमस्ये प्रवृद्धोद्धा वलवाननलसदा ॥ ११३ ॥

ज्वर वाले रोगी के पथ्य की व्यवस्था—ज्वर वाले को अथवा उवरसुक को दिन के अन्त में, कफ के नष्ट हो जाने पर और ऊज्ज्वला के बढ़ जाने से अधिके वलवान हो जाने पर अबु भोजन (एथ) देना चाहिये ॥ ११३ ॥

हीनदीनद्विधार्तानां पापाखण्डरेविणाम् । कुवकुटादिशुनां दृष्टिर्भोजने नेत्र शोभना ॥ ११४ ॥

भोजन के समय अशुभ दृष्टि का फल—भोजन करते समय हीन (अङ्गहीन), दरिद्र, भूखा, पापी, पाखण्डी, रोगी, कुकुट (मुर्गा) और कुत्ते की दृष्टि भोजन पर पड़ना अशुभ है ॥ ११४ ॥

विनुपानुसुहृद्वद्यपाककृद्धसविहिणाम् । सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरूपमा ॥ ११५ ॥

भोजन के समय के शुभदायक दृष्टि—भोजन करते समय पिता, माता, मित्र, वैद्य, पाककर्ता (भोजन बनाने वाला), हंस, मधुर, सारस और चकोर की दृष्टि भोजन पर पड़नी शुभदायक है ॥ ११५ ॥

भोजनादिपात्रम्—

दोषहृद द्वाष्टवं पथ्यं हैमं भोजनभाजनम् । रौप्यं भवति च द्वुष्यं पित्तहृत्कफवात्कृत् ॥ ११६ ॥

भोजनपात्र का वर्णन—स्वर्णादिवातु के भेद से पात्रों का वर्णन और शुन-स्वर्ण के पात्र में भोजन करना दोषनाशक, नेत्र की हितकारक और पथ्य कहा गया है। चौंदी के पात्र में भोजन करने से नेत्र को हितकर, पित्त को हरने वाला, कफ और वात को करने वाला कहा गया है ॥ ११६ ॥

कांस्यं बुद्धिप्रदं रुद्धं रक्षपित्तप्रसादनम् । पैत्तलं वातकृद्वसुणं क्रिमिकफण्णुत् ॥ ११७ ॥

कांसे के पात्र में भोजन करना बुद्धिप्रद, स्विकारक और रक्षपित्त को शान्त करता है। पित्तल के वर्तन में भोजन करना वातकारक, रुक्ष, उष्ण और क्रिमि तथा कफ का नाशक है ॥ ११७ ॥

आयसे कान्तपात्रे च भोजनं सिद्धिकारकम् । शोथपापहृद्धरं वस्यं कामलापहसुक्तमम् ॥ ११८ ॥

लोहे और कान्तिसार (पाठान्तर में काच) है अतः कान्तिसार वा काच) के पात्र में भोजन करना सिद्धिकारक, शोथ और पाण्डुरोग नाशक, वलकारक और कामला का नाश करने वाला उत्तम कहा गया है ॥ ११८ ॥

शैलजे मृद्गमये पात्रे भोजनं श्रीनिवारणम् । द्वारुज्ज्वे विशेषेण रुचिदं श्लेषमकृतथा ॥ ११९ ॥

(१) आहारनिर्वाहविहारयोगः सदैव सद्विविजने विदेयः ।

अन्यत्र भी लिखा है कि—आहार, निर्वाह (मलमूत्रोत्सर्ग) और विहार (मैथुनादि) तथा योगसाधन भले मनुष्यों को सदैव एकान्त में करना चाहिये ॥

पत्तर और मिठी के पात्र में भोजन करना लक्ष्मीनाशक है। काठ के वर्तन में भोजन करना विशेषतः रुचि उत्पन्न करने वाला और कफकारक है ॥ ११९ ॥

पात्रं पत्रमयं रुद्धं दीपनं विषपापुत् । जलपात्रं तु ताप्रस्थ तदभावे मृद्दो हितम् ॥ १२० ॥

पत्तों के बले पात्र में भोजन करना रुचिकारक, दीपन, विष और पाप का नाश करने वाला है। जलपात्र कैसा हो—जलपात्र तात्र का उत्तम होता है उसके अभाव में मिठी का जलपात्र हितकर है ॥ १२० ॥

पात्रं पवित्रं शीतं च घटितं ईक्टिकेन यत् । काचेन रवितं तदृक्तथा वैद्वर्यसंभवम् ॥ १२१ ॥

जो पात्र पाने के लिये स्फटिक या कांच का अथवा वैद्वर्य मणि का बना हो वह पवित्र और शीतल होता होता है ॥ १२१ ॥

भोजनक्रम—

भोजनाद्ये सदा पथ्यं लक्षणाद्वार्कमभक्षणम् । अप्सिसहीपनं रुद्धं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ १२२ ॥

भोजन करने का क्रम—भोजन समय का क्रत्य—भोजन के पूर्व सैन्यव लवण और अदक का सदा भक्षण पथ्य, अद्योपक, रुचिकारक, जिह्वा और कण्ठ को शुद्ध करने वाला होता है ॥ १२२ ॥

अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुभौत्का देवो महेश्वरः । इति संचिन्त्य यो भुद्धक्षे इष्टिदोषो न वाधते ॥

भोजन के पहले इष्टिदोष के नाश के लिये ब्रह्मादिक का स्मरण—भोजन करने के पूर्व इष्टिदोष के नाश के लिये अन्न ब्रह्मा का रूप है, रस विष्णु का रूप है और भोजन करने वाला महेश्वर का रूप है ऐसा विचार कर जो भोजन करता है उसे अन्न पर का इष्टिदोष नहीं लगता है ॥ १२२ ॥

असनीयभर्त्तमूर्तं कुमारं ब्रह्माचारिणम् । इष्टिदोषविनाशाय हनूमन्तं स्मराम्यहम् ॥ १२४ ॥

और भी कहा है कि इष्टिदोष की शान्ति के लिये—असनीय के गर्भ से उत्पन्न पवनकुमार ब्रह्माचारी हनुमान जी को इष्टिदोष दूर करने के लिये स्मरण करता हूँ—ऐसा कहना चाहिये ॥ १२४ ॥

असनीयात्तमना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । मध्येऽम्ललवणी पश्चात्कुतिकषायकान् ॥

भोजन करने का विधान मधुरादि रसों के क्रम से—भोजन में पहले तन्मय होकर (मन लगाकर) मधुर रस युक्त पदार्थ भोजन करना चाहिये, मध्य में अम्ल और लवण रस युक्त पदार्थ को भोजन करना चाहिये ॥ १२५ ॥

फलान्याद्वौ समसनीयादिमात्रिनि बुद्धिमान् । विना मोचकलं तद्वृजंनीया च कक्षी ॥

बुद्धिमान् मनुष्य आदि में (भोजन के आदि में) दाढिमादि (अनार आदि) फलों को खावे लेकिन फलों में केला और कक्षी को छोड़कर अर्थात् केला और कक्षी आदि में न खावे ॥ १२६ ॥

मृणालिविशकालकक्षेषु प्रभृतीन्यपि । यूवेमेच हि भोजनानि न तु शुक्रवा कलात्म ॥

मृणाल (कमल भाल), विस (मिसान), शालक, कन्द और कले प्रभृति पदार्थ भोजन के पहले ही खाना चाहिये, भोजन करने के बाद कदापि नहीं खाना चाहिये ॥ १२७ ॥

प्रियालजम्बुद्धरीफलानि गाङ्गोरिकोदुष्कृतिनिर्विकल्प ।

तालोफलं नागरनारिकेलासारं च भव्यं तिलमिथमात्रम् ।

अङ्गोलमालाफलानां फलानि वर्ज्यानि सदा प्रभासे ॥ १२८ ॥

प्रभात काल में नहीं खाने योग्य फल—प्रियाल, (बिरीजी), जामुन, वैर, गाङ्गोरिक, (एक फलिशेष), उद्मवर (गूलर), इमली, ताल का फल, सोठ, नारियल का सार, तिल मिला पदार्थ, आम, अङ्गोल, केला और आमला के फल को प्रातःकाल में नहीं खाना चाहिये ॥ १२८ ॥

युरु पिष्टमयं द्रव्यं लद्वकाम्बुद्युक्तम् । च आतु शुक्रवाम्बादेनान्ना रावेद बुमुहितः ॥

गुरु पदार्थ, पीठी के पदार्थ (कचौड़ी आदि), लड्डू और पृथक (चिउरा) आदि भोजन कर चुकने के बाद नहीं खाना चाहिये । इन सब वस्तुओं को बुझित मनुष्य मात्रा (प्रमाण) से खा सकता है ॥ १२९ ॥

जूतपूर्व खम्भनीखाकृ उपर्युक्त ग्राहको भूषु । अन्ते पुनर्देवाशी तु बलारोधे न मुख्यति ॥ १३० ॥

भोजन के पहले धी का बना कठिन पदार्थ तत्पश्चात् भूषु पदार्थ और अन्त में द्रव पदार्थ का भोजन करना चाहिये इस नियम से भोजन करने वाले मनुष्य को बल और अरोग्य की प्राप्ति होती है ॥ १३० ॥

अथस्वाहुतरं तद्विषयाद्युपर्युक्तश्च । सुकर्वा अथार्थते भूयस्तदुक्तं स्वादु भोजनम् ॥

स्वादु अन्न के लक्षण—जो जो भोजन में स्वाद युक्त (बिद्यार्थी) पदार्थ हो उसे उत्तरोत्तर पहले कम स्वाद का उसके बाद उससे अच्छा तब उससे भी अच्छा पदार्थ खाना चाहिये । और भोजन कर चुकने पर पुनः उसी वस्तु को खाने की इच्छा करे और मांगे तो उसे स्वादु भोजन कहते हैं ॥ १३१ ॥

सौम्यनश्च खलं पुष्टिसुखाहं रक्षनामुखश्च । रक्षादु खलमन्तर्यन्मस्वादु च विपर्ययश्च ॥ १३२ ॥

स्वादु अन्न के गुण—स्वादु अन्न के भोजन से प्रसन्नता, बल, शरीर की पुष्टि, उत्साह और जिहा को सुख (स्वाद मालम्) होता है । विना स्वाद के अन्न का गुण इसके विपरीत जानना चाहिये ॥ १३२ ॥

अथयुणानं खलं हन्ति शीतं शुष्कं च दुर्जरम् ।

अतिक्लिनं खलानिकरं युक्तियुक्तं हि भोजनम् ॥ १३३ ॥

अथयुण, शीतल, शुष्कादि अन्न के दोष—अत्यन्त उष्ण अन्न बल का नाश करता है, शीतल, शुष्क और दुर्जर अन्न के भी ये ही दोष हैं । अत्यन्त क्लिन (गीला) अन्न खलनिकारक है इससे युक्तियुक्त भोजन करना चाहिये ॥ १३३ ॥

ग्रन्थाद्यर्थते रक्षमङ्गलाभमज्ञाप्रवर्धनम् । लक्षणाद्यर्थते त्वस्थि तिक्तान्मेदः प्रवर्धते ॥ १३४ ॥

कटुकाद्यर्थते मांसं कवायाद्यर्थते रसः । असाक्ष वर्धते शुक्रं वडसा धातुवर्धनाः ॥ १३५ ॥

मधुरादिक भेद से भोजन के गुण—मधुर अन्न के भोजन से रक्त बढ़ता है, एवं अम्ल (खट्टे) से भजा, नमकीन से अस्थि, तिक्त से भेद, कटु से मांस और कपाय से रस, अन्न के भोजन से शुक्र बढ़ता है । इस तरह छ प्रकार के रस धातुओं (रस-रक्तादि) को बढ़ाते हैं ॥ १३४-१३५ ॥

अतिकृतशिताद्यारोग्यान्वेष्याद्य विन्दिति । भोजयं शीतमहर्यं च स्याद्विलिप्तमशनतः ॥

अत्यन्त शीत्र तथा विलम्ब से भोजन के दोष—बहुत जल्दी २ भोजन करने से अन्न वा भोजन का गुण-दोषादि नहीं मालम होता है । बहुत धीरे-धीरे खाने से भोजन शीतल तथा अद्यत हो जाता है ॥ १३६ ॥

अन्यान्यलो भवे द्रव्यमात्रां गुर्वी विवर्येत् । स्वभावतश्च गुरु यत्था संस्कारतो गुरु ॥

गुरु अन्न के भेद और उसका निवारण—मन्दाद्यि वाले मनुष्य को गुरु द्रव्य का भोजन नहीं करना चाहिये । गुरु पदार्थ चाहे वह स्वाभाविक गुरु हो अथवा संस्कार (बनाने से) से गुरु हो अथवा मात्रा में गुरु हो ॥ १३७ ॥

मात्रागुरुस्तु मुद्रादिमर्यादिः प्रकृतेर्गुरुः । संस्कारगुरुं पिण्डाङ्गं ग्रोकमित्युपलक्षणम् ॥ १३८ ॥

मात्रा में, स्वभाव में और संस्कार में गुरु का लक्षण—मूँग आदि द्रव्य मात्रा में गुरु होते हैं अर्थात् ये लघु पदार्थ हैं अधिक खाने से गुरु होते हैं, उत्तर आदि स्वाभाविक गुरु होते हैं और पीठी के बने हुए (कचौड़ी-वटकादि) संस्कार से गुरु कहे गये हैं । ये सब मूँग आदि उपलक्षण हैं

सी प्रकार अन्यान्य पदार्थों का भी ग्रहण करना चाहिये ॥ १३८ ॥

आदारं यद्विद्यं योद्यं पैयं लेहं तथैव च । योद्यं भक्तं तथा चार्यं गुरु विद्याशेषात्तरम् ॥

भोजन के भेद—भोजन चूष्य (चूसने योग्य ऊंच आदि), पैय (पीने योग्य दूध, शर्वत आदि), लेह (चादने योग्य रसाला आदि), भोज्य (भोजन करने योग्य भात आदि), भक्त (काटकर दांत से खाने योग्य लड्डू आदि) और चार्य (चवा कर खाने योग्य चिउड़ा भूजा आदि) के भेद से छव प्रकार (भेद) के होते हैं ऐसा जानना चाहिये । और इसमें प्रत्येक को एक दूसरे से गुरु जानना चाहिये ॥ १३९ ॥

गुरुणामधर्षसौहित्यं लघूजां जातिलृप्ता । इवो द्रवोज्ञरक्षापि न मात्रागुरुरिष्यते ॥ १४० ॥

गुरु (स्वाभाविक अथवा संस्कार से गुरु) और इसी प्रकार लघु (स्वाभाविक अथवा संस्कार से लघु) भोज्य पदार्थों के भोजन करने का परिमाण-गुरु पदार्थों के भोजन करने पर आधी चुप्ति हो जितनी मात्रा में वही मात्रा गुरु पदार्थ की उचित है अर्थात् गुरु पदार्थों को जितना खाने का भूख हो उसके आधा खाना चाहिये । लघु पदार्थों के खाने पर जितनी मात्रा से पूरी चुप्ति हो उतनी मात्रा लघु पदार्थ की उचित है अर्थात् लघु पदार्थ जितना खाने का भूख हो उतना खाना चाहिये । इव (दुर्घादि) तथा द्रवबहुल (तकादि) पदार्थ की जितनी भी मात्रा हो जावे अर्थात् अधिक भी पीया जावे तो हानिकर (गुरु) नहीं अर्थात् हसकी मात्रा नहीं है ॥ १४० ॥

द्रवाद्यप्रवृत्तिं शुष्कं तु सम्भवयोग्येष्यते । विषुष्कमस्यमध्यरूपं न पाकं साधु गच्छति ॥

सूखा पदार्थ यदि अधिक द्रव से युक्त हो तो पूरी चुप्ति तक खा लेने पर भी अच्छी तरह पच जाता है परन्तु केवल सूखा पदार्थ पूरा नहीं पचता है ॥ १४१ ॥

पिण्डीकृतादि पदार्थों के दोष—पिण्डाकार (गोल) बनाया हुआ वा भली भाँति नहीं गोल हुआ अन्न खाने से विद्याह उत्पन्न होता है । शुष्क, विशुद्ध और विष्टम्भी पदार्थों के भोजन करने से जठराद्य मन्द हो जाती है ॥ १४२ ॥

गुरुस्तदा न इवैरिषुव्यावा न विकार्या न लाव वहून् ।

न जलाभिरतिशालृष्टिः स्वकृत्यालृष्टिकेवलान् ॥ १४३ ॥

सत्तु खाने की विधि—भोजन कर चुकने के बाद सत्तु नहीं खाना चाहिये, एवं दाँत से काट कर, रात को और बहुत (अधिक) मात्रा में सत्तु नहीं खाना चाहिये । तथा जल से अन्तरित कर अर्थात् सत्तु खाते समय कई बार जल नहीं पीना चाहिये और दो बार या केवल सत्तु नहीं खाना चाहिये अर्थात् जल के द्वारा सत्तु नहीं निगलना चाहिये ॥ १४३ ॥

पुनर्दीनं पृथक्षयानं सामिर्यं प्रयसा लिति । द्रवतच्छेदनपुण्यं च सत्तु सक्तुषु घर्जयेत् ॥ १४४ ॥

सत्तु में वर्जन कर्म—(सत्तु खाते समय निम्न लिहित कर्म नहीं करना चाहिये)—सत्तु खाकर पुनः सत्तु खाना, सत्तु खाकर अलग जल-पीना, मांस अथवा दूध के साथ सत्तु खाना, रात में किंवा दाँतों से काट २ कर सत्तु खाना और सत्तु की गर्मी कर खाना इन सात कर्मों को नहीं करना चाहिये ॥ १४४ ॥

बहु स्तोकमकाले वा ज्येष्ठं लद्विषमाशनम् ।

आलस्यगौरकादोपशब्दाद्य कुरुते वासान् । हीनमात्रं तनोः काश्यं कशीति च बलवद्यम् ॥

विषमाशन के लक्षण—अधिक भोजन करना, कम भोजन करना और कभी असमय में भोजन करना ‘विषमाशन’ कहलाता है । अधिक तथा अत्यन्त कम भोजन के दोष—अधिक भोजन करने से आलस्य, शरीर का भारी होना, पेट में गुड़-गुड़ शब्द करना और अवसरना होना यह सब होता है । अत्यन्त कम भोजन करने से शरीर दुर्बल होता है और बल का नाश होता है ॥ १४५ ॥

अग्राहकाले भुजानो द्वासमर्थतनुर्मरेतः । सांस्तान् धीनवाऽप्नोति मरणं चाषिगच्छुति ॥ १४६ ॥

नियत समय के पहले भोजन करने के दोष—नियत समय से पूर्व भोजन करने से मनुष्य असमर्थ हो जाता है और अकाल में भोजन करने से उत्पन्न होने वाले पूर्वोक्त रोग हो जाते हैं और वह मृत्यु को भी प्राप्त होता है ॥ १४६ ॥

कालेऽस्तीतेऽशतो जन्तुर्वायुयुनाऽप्यहतेऽन्ले । कृद्धाद्विपद्यते भुक्तं न स्याज्ञोक्तुं पुनः इप्यात् ॥

समय के बाद भोजन करने के दोष—समय के बीत जाने पर भोजन करने से मनुष्य की जठराशि वायु से नष्ट हो जाती है, कष्ट से भोजन पचता है और पुनः भोजन की इच्छा नहीं होती है ॥ १४७ ॥

कुरुभार्गद्वयं भोज्यैस्तुतीये वारि पूरयेत् । वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ १४८ ॥

भोजन का प्रमाण—उदर के दो भाग को भोज्य पदार्थों से और तीसरे भाग को जल से पूर्ण करना चाहिये तथा चौथे भाग को वायु के विचरने के लिये छोड़ देना चाहिये ॥ १४८ ॥

रसेनाशस्य रसना प्रथमेनोपतर्पिता । न तथा स्वादुतामेति ततः सेष्याऽनुबुनाऽन्तरा ॥

भोजन के समय पहले जिस पदार्थ को खाया जाता है उसके रस से जिहा तृप्त हो जाती है इससे जब दूसरा पदार्थ खाया जाता है तो उसका उचित स्वाद नहीं मालम होता है अत एव एक रस के भोजन कर चुकने पर और दूसरे रस खाने के पहले जल पीते रहना चाहिये जिससे जिहा दूसरे-रस के पूर्ण स्वाद लेने लायक शुद्ध हो जावे ॥ १४९ ॥

अस्यम्बुपानाम् विषयतेऽधं निरञ्जुपानाम् स एव दोषः ।

तस्माक्षरो वद्विविधधनाय सुहुसुहुर्वारिपि विवद्भूरि ॥ १५० ॥

भोजन के समय अधिक जल पीने वा जल नहीं पीने के दोष एवं बीच २ जल पीने का विधान—भोजन के समय अधिक जल पीने से भोजन (अक्ष) का परिपाक नहीं होता है इसी प्रकार जल नहीं पीने से भी अक्ष का परिपाक-नहीं होता है, इसलिये मनुष्य को उचित है कि जठराशि की शुद्धि के लिये वारम्बार थोड़ा २ जल पीवे ॥ १५० ॥

भुक्तस्याऽद्वौ जलं पीतं काश्यमन्दा ग्रिष्ठोषकृत् ।

मध्येऽप्निदीपनं श्वेषमन्ते स्थौल्यकफप्रदम् । समस्थूलकृष्णा भुक्तमध्यान्तप्रथमाम्बुपाः ॥

भोजन के समय आदि, मध्य और अन्त में जल पीने का फल—भोजन के पहले जल पीने से अग्नि दीप होती है यह श्रेष्ठ है और अन्त में जल पीने से स्थूलता तथा कफ बढ़ता है। और भी कहा गया है कि—भोजन के मध्य, अन्त और आदि में जल पीने वाले का शरीर क्रम से सम, स्थूल तथा कृश होता है अर्थात् मध्य में जल पीने वाले का सम, अन्त में पीने वाले का स्थूल और आदि में पीने वाले का शरीर कृश होता है ॥ १५१ ॥

तुषितस्तु न चाक्षीयात्मुषितो न पिबेऽलम् । तुषितस्तु भवेद् गुरुभी तुषितस्तु जलोदरी ॥

प्यासे और भूखे मनुष्य को क्रम से भोजन और जलपान का विवेद—प्यासा हुआ मनुष्य भोजन नहीं करे और भूखा मनुष्य जल नहीं पीवे क्योंकि प्यासा हुआ मनुष्य यदि भोजन करता है तो उसे गुलम रोग होता है और भूखा मनुष्य यदि जल पीता है तो उसे जलोदर रोग होता है ॥ १५२ ॥

असीयात्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । मध्येऽग्न्ललक्षणौ पश्चाकटुतिक्कचायकान् ॥

मधुरादि रसों के क्रम से भोजन विधान—मनुष्य को दत्तचित्त होकर पहले मधुर रस के पदार्थों को तत्पश्चात् मध्य में अम्ल, लवण रस युक्त और अन्त में कटु-तिक्क और क्षाय रस युक्त पदार्थों को भोजन करना चाहिये ॥ १५३ ॥

त्वं भुक्तवा समाचामेऽच्युषग्रहणपूर्वकम् । भोजने दत्तलग्नानि निर्व्याऽत्तमलं वरेत् ॥ १५४ ॥

भोजन के बाद आचमन की विधि—इस प्रकार (पूर्वोक्त विधि) से नियमपूर्वक भोजनोपरान्त पापड़ आदि खाकर मुख शुद्ध कर आचमन करे और दाँतों में लगे हुए भोज्य पदार्थों की भली भाँति तिनके (खरिके) से निकाल कर आचमन किया करे ॥ १५४ ॥

दत्तलग्नान्तशतं चाच्चं शोधनेनाऽस्त्रेष्वेच्छन्ते । कुर्याद्बन्हिर्वैतं तद्विसुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥ १५५ ॥

खरिका करने की विधि और शुण—दाँतों के भीतर लगे हुए अवादिकों को खरिका से धीरे-धीरे निकाले इस प्रकार दाँतों में लगे हुए अवादिकों को निकाल कर साफ नहीं करने से मुख से दुर्गन्धि आती रहती है ॥ १५५ ॥

दत्तलग्नमनिहर्यं लेपं मध्येत दत्तवत् । न तत्र वदुशः कुर्याद्वितं निर्वरणं प्रति ॥ १५६ ॥

दाँतों में लगे हुए पदार्थ यदि निकालने पर भी नहीं निकले तो दाँत की भाँति जानकर उस लेप को निकालने का बहुत यत्न नहीं करना चाहिये ॥ १५६ ॥

आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिपद्यं चतुर्थी स्वप्नेत् ।

भुक्तवा पाणितले शृङ्गा चक्षुषोर्यदि दीयते ॥

जात्रोया विनश्यन्ति तिमिराणि तथैव च । भुक्तवा च लंभमरेण्यमाशयादीन्मुखावहान् ॥

भोजनोपरान्त आचमन कर जलयुक्त हाथों से नेत्रपर्शी का फल—भोजन के बाद आचमन कर उसी जलयुक्त हाथों से नेत्रों का स्पर्श करना चाहिये । क्योंकि कहा भी है—भोजन के पश्चात् दोनों पाणितल (दोनों हाथों) को परस्पर रगड़ कर नेत्रों में यदि लगाया जावे तो उत्पन्न हुए नेत्रों के रोग नष्ट हो जाते हैं और तिमिर रोगादि भी नष्ट हो जाते हैं । भोजन के बाद की किया—भोजन के बाद नित्य सुखदायक अगस्त्यादिक का स्मरण करना चाहिये ॥ १५७ ॥

आदौ सूपायज्यभक्तं सकथिक्मुदितं पायसं चाऽथ रथं

पक्षाङ्गं मध्यमध्ये बहुविष्वपुलं व्यक्त्वनान्यत्र भोज्ये ।

अन्ते दुर्गं सिताळ्यं शतप्रतुलरसं साध्मस्यन्तमिष्ट

दृध्यक्षं वा यथेच्छं परिकलितमिष्टं देशीरिया विष्वध्यात् ॥ १५८ ॥

भोजन करने की विस्तृत विधि—पहले धी मिला हुआ दाल-भात-रोटी तथा कढ़ी आदि का भोजन करना चाहिये अथवा सुन्दर बना हुआ पायस (खीर) खाना चाहिये, मध्य मध्य में पक्वान (पूरी आदि), अनेक प्रकार के मांसादि और शाकादि (तरकारी आदि) का भक्षण करना चाहिये और अन्त में मिश्री मिला ओटाया हुआ दूध अथवा बनाये हुए मधुर रसों के साथ अन्न एवं अत्यन्त मीठे, अम्ल, दध्यक्ष अथवा जो प्रिय भोज्य पदार्थ ही अथवा जैसी देश की रीति हो उस प्रकार की विधि से यथेच्छ अथ भोजन करना चाहिये ॥ १५८ ॥

आदिमध्यावसानेषु भोजने पथसा युते ।

काश्यं साद्यं तथा स्थौल्यमिति स्युः क्रमशो गुणाः ॥ १५९ ॥

भोजन करते समय आदि मध्य और अन्त में जल पीने का फल—भोजन करते समय पहले, बीच में और अन्त में जल पीने से क्रम से काश्यं (दुर्बलता), समता और स्थूलता होती है अर्थात् पहले पीने से दुर्बलता, मध्य में पीने से शरीर सम और अन्त में पीने से शरीर स्थूल होता है ॥

आद्वौ द्रवं समशीयस्त्राम्बु न पिबेद्द्वृहु । मध्ये युक्तिन्द्रिये यथेष्टं शस्यते जलम् ॥ १६० ॥

भोजन करते समय जल पीने का विधान—भोजन के आदि में यदि द्रव पदार्थ खावे तब जल बहुत न पीवे, भोजन के मध्य में कठिन भोजन करे तब इच्छानुसार जल पीवे ॥ १६० ॥

तथा च भोजनस्यान्ते पीतमधुरु वलप्रदम् । द्रवप्रधानमुक्तान्ते किंतु तन्मात्रया पिबेत् ।

भोजन के अन्त में जल पीना बलदायक होता है किन्तु द्रवप्रवान में उसे मात्रा से हो पीना चाहिये अधिक नहीं ॥ १६१ ॥

विष्णुरन्नं तथैवास्तपरिणामश्च वै यथा । सथेन तेन मदभुक्तं जीर्यत्वज्ञमिदं तथा ॥ १६२ ॥

भोजन के बाद देवस्मरण-किया—भोजन के बाद इस प्रकार स्मरण करना चाहिये कि—अन्न विष्णु है और इसका परिणाम (परिपाक होना) भी विष्णु है इस सत्य के द्वारा मेरा भोजन किया अन्न पच जावे ॥ १६२ ॥

अगस्तिरभिर्वद्वानलभ्य भुक्तं ममान्नं जरयन्वशेषम् ।

सुखं ममैतत्परिणामसम्भवं यद्भूत्वरोगं मम चाक्षेहम् ॥ १६३ ॥

अगस्ति, अग्नि और बडवानल ये लोग मेरे खाये हुए अन्न को पूर्ण रूप से पचा देवें और इस अन्न के पच जाने पर के परिणाम सुख को देवें और उनकी कृपा से मेरा शरीर निरोग और सुन्दर हो ॥ १६३ ॥

अङ्गारकमगर्स्ति च पावकं सूर्यमधिनौ । यश्चैतान्संस्मरेक्षियमन्नं तस्याऽऽशु जीर्यति ॥ १६४ ॥

मङ्गल, अगस्ति, अग्नि, सूर्य और अदिवनीकुमार आदि हन पांचों का जो नित्य स्मरण भोजन के अन्त में करता है उसका भोजन किया हुआ पदार्थ शीघ्र पच जाता है ॥ १६४ ॥

अगस्ति कुरुकर्णं च शनिं च वद्वानलम् । आहारपरिपाकार्थं स्मरामि च वृकोदरम् ॥

अगस्ति, कुरुकर्ण, शनि, वडवानल और भीम को आहार के परिपाक के लिए स्मरण करता हुआ ऐसा कहे तो उसका अन्न शीघ्र पच जाता है ॥ १६५ ॥

हस्तुष्टार्य स्वहस्तेन परिमाऊर्यं तथोदरम् । अनायासप्रदायीनि कुर्याःक्षमाण्यतनिद्रितः ॥ १६६ ॥

उपर्युक्त प्रकार से अगस्त्यादिकों का उचारण कर अपने हाथों को उदर पर फेरे और परिश्रम नहीं पड़ने वाले कर्म को अतनिद्रित (तन्द्राश्लूप्य) होकर करे ॥ १६६ ॥

धूमताम्बूलभक्षणप्रकारः—

ज्ञीर्णेऽन्ने वर्धते बायुर्विधधे पित्तमेघते । भुक्तमात्रे कफश्चापि क्रमोऽयं भोजनोपरि ॥ १६७ ॥

धूम-ताम्बूल भक्षण प्रकार—निरन्तर भोजन किये हुए आहार के पच जाने पर बायु बढ़ता है, विद्युत रहने पर पित्त बढ़ता है और भोजन करते ही कफ बढ़ता है। यही भोजन के बाद वातादिकों के बढ़ने का कम है ॥ १६७ ॥

धूमेनापेद्या हृषीर्वा कटुतिक्तकशयकैः । पूर्णकपूरकस्तूरीलवङ्गसुमनःफलैः ॥ १६८ ॥

फलैः कटुकशयवैर्चामुखवैशाकारिभिः । ताम्बूलप्रवसहितैः सुगन्धैर्वा विचक्षणः ॥ १६९ ॥

भोजनोपरान्त ही जो कफ बढ़ता है उसका प्रतीकार—भोजन करते ही जो कफ बढ़ जाता है उसकी शान्ति लिये धूमपान अथवा हृदय को प्रिय लगाने वाले कटु, तिक्क और कषाय द्रव्य, सुपारी, करूं, कस्तूरी, लवङ्ग, जायफर आदि अथवा कटु, कषाय रसयुक्त फल जो सुख की विरसता दूर करने वाले हों अथवा पान के साथ सुगन्धित द्रव्यों का भक्षण विद्वान को करना चाहिये ॥ १६८-१६९ ॥

रत्ने सुसोधिते साते भुक्ते वान्ते च सङ्गरे । सभायां विद्वां राजां कुर्यासाम्बूलचर्वणम् ॥

पान कब-कब खाना चाहिये ? उसका विधान—रत्ने के समय एवं सोकर उठने पर तथा स्नान, भोजन और वमनादि करने पर, बुद्ध के समय, पण्डितों तथा राजाओं की सभा में पान खाना चाहिये ॥ १७० ॥

प्रस्तुषसि भुक्तसमये युधतीनां चैव संगमे विश्वमे ।

विद्वाजासभायां ताम्बूलं यो न भज्यतेस्य पशुः ॥ १७१ ॥

पान खाने के और भी वचन—प्रातः सोकर उठने पर, भोजन करने पर, युवतियों के साथ सहवास करते समय और मैथुन के बाद, विद्वान और राजाओं की सभा में जो पान नहीं खाता है वह मनुष्य होते हुए भी पशु के समान है। अर्थात् उपर्युक्त स्थानों में पान अवश्य खाना चाहिये ॥ १७१ ॥

ताम्बूलं कटुतिक्तसुष्टुपुरुं चारं कषायान्वितं
वाताधनं क्रिमिनाशनं कफहरं दुर्गन्धिनिर्नाशनम् ।

वृक्षश्याम्बरणं विशुद्धिकरणं कामाम्बिसदीपनं

ताम्बूलस्य सखे व्रियोदश गुणाः द्वयोऽपि ते कुलभाः ॥ १७२ ॥

ताम्बूल का गुण—पान तिक्क, कटु, उण, मधुर, क्षार, कषाय रस से युक्त, वात, क्रिमि, कफ तथा दुर्गन्धि का नाश करने वाला, सुख को भूषित तथा शुद्ध करने वाला, कामाम्बि को बढ़ाने वाला है—हे मिठ ! पान के इस प्रकार तेरह गुण कहे हैं जो कि स्वर्ग में भी दुर्लभ हैं ॥

ताम्बूलमुक्तं तीचणोणं रोचनं तुवरं सरम् । तिक्क चारोषणं कामरकपित्तकरं छषु ॥ १७३ ॥

वश्यं श्लेष्मास्यद्वीर्णन्ध्यमलवातश्रमापहम् । मुखवैशाद्यसौगन्ध्यकान्तिसौषुवकारकम् ॥ १७४ ॥

ताम्बूलमलध्वंति लिह्विन्द्रियविशेषानम् । मुखप्रसेकशमनं गलामयविनाशनम् ॥ १७५ ॥

और भी—ताम्बूल तीण्ण, उण, रुचिकारक, कषाय, सारक, तिक्क, क्षार और कटु रस वाला, कामोदीपक, रक्षितकारक, लघु, वश में करूने वाला, कफ-और सुख की दुर्गन्धि, मल, वात तथा श्रम (थकावट) को दूर करने वाला, सुख को स्वच्छ तथा सुगन्धित करने वाला, शरीर की कानित और सुन्दरता को बढ़ाने वाला, दन्त के मल का नाश करने वाला, जिहा जो रस की प्रधान इन्द्रिय है उसे शुद्ध करने वाला, सुख से लार गिरने को रोकने वाला और गलासम्बन्धी समस्त रोगों का नाश करने वाला कहा गया है ॥ १७३-१७५ ॥

नवं तदेव मधुरं कषायामुरसं गुरुः । बलासजननं प्रायः पश्चशाकगुणं स्मृतम् ॥ १७६ ॥

नवे पान का गुण—वही उपर्युक्त पान यदि नवा हो तो वह मधुर और कषाय अनुरसयुक्त, गुरु, कफ को उत्पन्न करने वाला और प्रायः करके पत्ते के शाक के गुणों वाला कहा गया है ॥

वङ्गदेशोऽद्वचं पणं परं कटुरसं सरम् । पात्तनं पित्तजनकमुण्ठं कफहरं मतम् ॥ १७७ ॥

बङ्गल के (बंगला) पान के गुण—बंगला पान—अत्यन्त कटु, सारक, पाचक, पित्त उत्पन्न करने वाला, उण और कफनाशक होता है ॥ १७७ ॥

पणं पुराणमकटु चुङ्गकं तनु पाण्डुरम् । विशेषाद् गुणवद्वैष्मन्यद्वीनगुणं मतम् ॥ १७८ ॥

पुराने पान के गुण—पुराना पान अकटु (कम कटु) अर्थात् कम कटु रसवाला होता है। इन में जो छोटा, पतला, पाणु वर्षी का अर्थात् पीले वा श्वेत पत्तों वाला होता है उसे विशेष रूप से गुणकारक समझना चाहिये। इससे अन्य पान अर्थात् नवा पान पुराने की अपेक्षा कम गुण वाला जानना चाहिये ॥ १७८ ॥

पूर्णं गुरुं हिमं रूपं कषायं कफपित्तनुत् । मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥ १७९ ॥

पूरीकल (सुपारी) के गुण—सुपारी गुरु, शीतल, रुप, कषाय रस वाला, कफ और पित्त का नाश करने वाला, मोहनक, अग्निदीपक, रुचिकारक और सुख की विरसता को दूर करने वाला है ॥ १७९ ॥

पूर्णं स्थाद् दृढमध्यं यस्त्वसं चापि त्रिदोषमुत् । सरसं गुर्वभिष्यन्दि तदभृतं वह्विनाशनम् ॥

तथा—जिस सुपारी का मध्य भाग कठिन हो और स्वेदित कर बनाई गयी हो अर्थात् चिकनी सुपारी त्रिदोषनाशक होती है । सरस (नंवीन वा कच्ची) सुपारी के दोष—रससुक्त नई सुपारी गुरु, कफकारक तथा अत्यन्त असिनाशक होती है ॥ १८० ॥

खदिरः कफपित्तश्वरचूर्ण वातवलासनुत् । संयोगतिक्षिदोषम् सौमनस्यं करोति च ॥ १८१ ॥

खैर चूना मिश्रित पान के गुण—खैर कफ और पित्त का नाश करने वाला है और चूना वात और कफ का नाश करने वाला है और दोनों का संयोग (मिश्रण) त्रिदोषनाशक और मन की प्रसन्नता को करने वाला है ॥ १८१ ॥

पूर्णाधिकं प्रभासे स्यान्मध्याह्ने खदिराधिकम् । चूर्णाधिकं निशायां तु ताम्बूलं भृष्येत्सदा ॥

पान में खैर-चूना सुपारी कब किस मात्रा से देना चाहिये, इस का विधान—पान में प्रातः काल सुपारी अधिक देकर, दोपहर को खैर अधिक देकर और रात्रि में चूना अधिक देकर पान सदा खाना चाहिये ॥ १८२ ॥

तस्मादग्नं तथा मूलं मध्यं पर्णस्य वर्जयेत् । पर्णमूले भवेद् व्याधिः पर्णग्रे पापसंभवः ॥ १८३ ॥
पर्णमध्यं हरत्यायुः सिरा बुद्धिविनाशिनी । आयुरग्रे यशो मूले लक्ष्मीमध्ये व्यवस्थिता ॥

पान के अग्न भाग, मूल और सिरों आदि त्यागने का वचन—पान के पत्ते के मूल भाग के खाने से व्याधि होती है, पान के अग्रभाग के खाने से पाप होता है, पान के मध्य भाग के खाने से आयु का नाश होता है, पान की सिराओं के खाने से बुद्धि का नाश होता है । और भी—पान के अग्रभाग में आयु, मूल भाग में यश और मध्यभाग में लक्ष्मी रहती है अतः पान का अग्रभाग, मूल भाग (जिधर डंडी) और मध्य-भाग निकाल देना चाहिये ॥ १८३—१८४ ॥

आर्यं विषोपमं वीतं द्वितीयं मेहि दुर्जरम् । सुतीयादि तु पातालं सुधातुलयं रसायनम् ॥ १८५ ॥

पान खाने पर पहिली पीक विष की तरह है, दूसरा पीक प्रमेह-कारक और दुर्जर है अतः इन्हें थूक देना चाहिये और तीसरा—चौथा आदि पीक निगलना चाहिये, यह अमृत की तरह और रसायन है अर्थात् पान खाकर दो पीक थूक देना चाहिये इसके बाद का खाना चाहिये ॥ १८५ ॥

आलस्यविद्वध्युपजिह्विकानां सतालुदन्ताद्वृद्धरोगिणां च ।

गलास्यगण्डापचित्तालुशोष्ठेषामयानां तद्विप्रशस्तम् ॥ १८६ ॥

पान किन २ रोगियों को खाना चाहिये—पान—आलस्य, विद्रुषि, उपजिह्विका, तालु, दन्त अर्द्धद, गला, मुख, गलगण्ड, अपची, तालुशोष और कफ के रोगियों के लिये प्रशस्त (हितकर) है ॥

न नेत्रकोपे न च रक्षपित्ते ज्ञाते न दहै न विषे न शोषे ।

मदात्यये नापि न मोहमूर्छाध्यासेषु ताम्बूलसुशान्तिं वैश्याः ॥ १८७ ॥

पान किन—किन रोगियों को नहीं खाना चाहिये—नेत्र के कोप (अभिष्वद् रोग) वाले एवम् रक्षपित्त, क्षत, दाह, विष, शोष, मदात्यय, मोह, मूर्छा और शास रोग में ताम्बूल खाना वैद्यों ने निषिद्ध कहा है ॥ १८७ ॥

ताम्बूलं नातिसेवेत विरिक्तो न बुमुक्षितः । देहद्वकेशादन्ताद्विश्रोद्धवर्णवलस्यः ॥ १८८ ॥

अधिक पान खाने के दोष—जिसे विरेचन दिया गया हो, जो भूखा हो, उसे अधिक पान नहीं खाना चाहिये, और अधिक पान खाने वाले का देह, देखने की शक्ति, केश, दाँत, जठरायि, कर्णेन्द्रिय, शरीर का वर्ण और बल का नाश होता है ॥ १८८ ॥

ज्वोषपित्तानिलालं स्यादतिताम्बूलभक्षणात् ।

ताम्बूलं न हितं दृन्तद्वृद्धलेकणरोगिणाम् । विषमूर्छामदातीनां ज्वितीनां रक्षपित्तिनाम् ॥

और भी अधिक पान खाने के दोष—अधिक पान खाने से शोष, पित्त, वातरक के रोग

होते हैं । और भी रोगियों को पान खाने का निषेध—पान दाँत के रोग और दुर्बल नेत्र वालों को, विष, मूर्छा, मद, क्षत और रक्षपित्त वाले रोगियों के लिये हितकर नहीं है ॥ १८९ ॥

शतपदादिकमः—

सुक्रधा शसपदं गल्लेष्वनेस्तेन तु जायते । अशसंघातवैथिरुर्थं ग्रीवाजानुकटीसुखम् ॥ १९० ॥

भोजन के बाद टहलने के गुण—भोजन करने के बाद सौ कदम चलना चाहिए परन्तु धीरे—धीरे, रेसा करने से खाये हुए अन्न का समूह शिथिल होता है और ग्रीवा, जानु (घुटना) तथा कटिभाग को सुख होता है ॥ १९० ॥

सुक्रवोपविशतस्तुन्दं शयानस्य बलं भयेत् । आयुश्वकमसामाणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥

भोजन के बाद टहलने और दैड़ने का फल—भोजन के बाद तुरन्त बैठने से पेट बड़ा होता है ('तन्द्रा' पाठान्तर में तन्द्रा होती है), सोने से शरीर का बल बढ़ता है, धीरे—धीरे सौ कदम टहलने से आमु बढ़ती है और दैड़ने से मृत्यु होती है ॥ १९१ ॥

शासान्ती समुत्तानस्तान्द्वायामे पञ्चास्त्वपाणाश्चायाच्चासुखम् ।

भोजन के बाद टहलने पर लेटने (सोने) की विधि—भोजन के बाद जब सोने जावे तब पहले चाढ़ बार श्वास जब तक आवे तब तक उतान सोवे, और उसके दूना अर्थात् ३६ सोलह बार श्वास आवे तब तक दाहिने करवट सोवे, उसके बाद उसके भी दूना अर्थात् ३२ बत्तीस बार श्वास आवे तब तक बायें करवट सोवे तत्पश्चात् जैसी इच्छा हो सोवे ॥ १९२ ॥

वामदिशायामनलो नामेष्वर्वेऽर्सित जन्तुनाम् । तस्मात् वामपार्श्वं शयीत सुक्रप्रपाकार्थम् ॥

सर्वदा बायें करवट सोने का वचन—मनुष्य के बायें तरफ नाभि के ऊपर जठरायि है इस लिये भोजन के परिपक होने के लिये बायें करवट सर्वदा सोना चाहिये ॥ १९३ ॥

त्रिवोषणमनी खट्टवा तूली वातकफापहा । भूशय्या बृंहणी वृथ्या काष्ठपट्टी तु वातला ॥

भोजन के बाद खट्ट, गदा, भूमि और चौकी पर सोने के फल—खट्ट पर सोने से त्रिवोष का नाश होता है, गदा लगे हुए पलंग आदि पर सोने से वात और कफ का नाश होता है, भूमि पर सोने से पुष्टि और बीर्य की वृद्धि होती है और काठ की चौकी आदि पर सोने से बायु बढ़ता है ॥ १९४ ॥

भूशय्या वातलाऽतीव रुचा पिसास्तनाशिनी । सुशय्याशयनं हृदं पुष्टिनिद्राध्यतिप्रदम् ॥

श्रामानिलहृदं वृष्यं विपरीतमतोऽयथा ।

और भी वचन—दूसरा वचन ऐसा है कि भूमि पर सोने से अत्यन्त वात तथा रुक्षता उत्पन्न होती है और पित्तरक्त का नाश होता है । अच्छी शय्या पर सोना हृदय को हितकर, शरीर की पुष्टि, निद्रा और बीर्य देने वाला है, एवं श्राम और वायु हरने वाला है और बीर्य को बढ़ाने वाला है । इसके विपरीत अर्थात् खराब शय्या पर सोने से उपर्युक्त गुणों के विरुद्ध फल होता है ॥ १९५—१९५५ ॥

संवाहनं मांसरक्तस्थावादकरं परम् ॥ १९६ ॥

प्रीतिनिद्राकरं वृष्यं कफवातश्चापहम् ।

शरीर दबवाने का गुण—शरीर दबवाने से मांस, रक्त और त्वचा को अत्यन्त सुख होता है एवं प्रसन्नता और निद्रा उत्पन्न होती है तथा बीर्य की वृद्धि और कफ, वात, तथा श्राम का नाश होता है ॥ १९६—१९६५ ॥

प्रवातं रौचयवैपर्यं तत्तमक्षहाहपित्तनुत् ॥ १९७ ॥

स्वेदमूर्छापिपासाध्नमप्रवातमतोऽन्यथा ।

सुखं प्रवातं सेवेत ग्रीष्मे शरदि चोत्तरम् ॥ १९८ ॥

निर्वातमायुषे सेव्यमारोदयं यत्र सर्वदा ।

अधिक वायु और धीरे-धीरे वहनेवाली वायु के सेवन का फल—अधिक वहती हुई वायु के सेवन से रक्षता, विवर्णता और शरीर में कजड़ाहट होती है एवम् दाह, पित्त, स्वेद, मूर्छा और पिपासा का नाश होता है। और अधिक नहीं वहने वाली वायु इसके विपरीत गुणों वाली है, सुखपूर्वक प्रवात का सेवन व्रीष्म कृतु और शीतकृतु के बाद करना चाहिये। निर्वात स्थान का नित्य सेवन करना चाहिये, इससे आयु बढ़ती है और यह सर्वदा आरोग्यदायक है। १९७-१९८॥

पूर्वोऽनिलो गुरुः सोष्णः रिनग्धः पित्ताज्जटूषकः ॥ १९९ ॥

विदाही वातलः श्वान्तिकफशोषवतां हितः । स्वादुः पुरुभिष्यन्दी त्वचादोषाशीविषक्षिमीन् ॥
लंगिनापातञ्चवस्थासमामवातं प्रकोपयेत् ।

पूरब से आने वाली (पूर्वी) वायु का फल—पूर्वी हवा गुरु, उष्ण, रिनग्ध, पित्त और रक्त को दूषित करने वाला, दाहकारक, वातोत्पादक, श्वम-कफ और शोष वाले के लिये हितकर है। और-स्वादु रस को उत्पन्न करने वाली अर्थात् अन्नादिक वा फलादि जो भक्ष्य हैं उनमें मधुरता का संचार करने वाली, इसी प्रकार लवण रस उत्पन्न करनेवाली, अभिष्यन्दी तथा त्वचाचा का दोष, अर्द्ध, विष, क्रिमि, सन्धिपात ज्वर, श्वास और आमवात को कुपित करने वाली होती है।

दक्षिणः पवनः स्वादुः पित्तरक्षक्ष्वरो लघुः ॥ २०१ ॥

वीर्येण शीतलो बृशथक्षुष्यो न च वातलः ।

दक्षिण से आने वाली वायु का फल—दक्षिणी वायु स्वादुरसोत्पादक, पित्त-रक्तनाशक, लघु, वीर्य में शीतल, बलकारक, नेत्र को हितकारक है और वात करने वाली नहीं है। २०१-२०२॥

पश्चिमः पश्चनस्तीचणः शोषणो बलहस्तुः ॥ २०२ ॥

मेद-पित्तकफश्वसी ग्रभज्ञनविवर्धनः ।

पश्चिम की हवा का फल—पशुआ हवा तीक्ष्ण, रसों को सुखाने वाली, बलनाशक, लघु एवं मेद, पित्त और कफ का नाश करने वाली तथा वात को बढ़ाने वाली होती है। २०२-२०३॥

उत्तरो माहतः शीतलः रिनग्धो दोषग्रकोपकृतः ॥ २०३ ॥

क्लेदः प्रकृतिस्थानां बलदो मधुरो लघुः ।

उत्तर की हवा का फल—उत्तरहिया हवा शीतल, रिनग्ध और दोषों के कोप को बढ़ानेवाली, आर्द्धता उत्पन्न करनेवाली, स्वस्थ मनुष्यों को बल देने वाली, मधुर रस को उत्पन्न करने वाली और लघु होती है। २०३-२०४॥

आग्नेयो दाहकृदूषो नैऋतो न विद्वाहकृतः ॥ २०४ ॥

वायव्यस्तु भवेत्तिक देशानः कटुकः रम्यतः ।

विषवायायुरनायुष्यः प्राणिनां बहुरोगकृतः ॥ २०५ ॥

अतस्तं नैव सेवेत सेवितः स्यांश्च शर्मणे ।

अश्रिकोण आदि की तथा चारों तरफ वाली (चौवाई) हवा का फल—अतिन कोण से आई हुई हवा दाह करनेवाली तथा रुक्ष होती है। नैऋत्य कोण से आई हुई हवा दाह करने वाली नहीं होती है। वायव्य कोण से आई हुई हवा तिक्त रसोत्पादक होती है। ईशान कोण से आई हुई हवा कडुक रसोत्पादक होती है। चौवाई हवा आयु को नाश करने वाली और प्राणियों को बहुत रोग उत्पन्न करने वाली होती है इसलिये चौआई हवा नहीं सेवन करना चाहिये क्योंकि इसके सेवन करने से कल्याण नहीं होता है। २०४-२०५॥

ध्यजनस्यानिलो दाहस्वेदमूर्ख्याश्रमापहः ॥ २०६ ॥

पंखे की हवा का भेद और गुण—पंखे की हवा दाह, स्वेद, मूर्ख्य और श्रम का नाश करने वाली है। २०६॥

सालाङ्गन्तभवो वातस्थिदोषशमको भ्रतः । वंशव्यजनजस्तूलो रक्षपित्तप्रकोपनः ॥ २०७ ॥
चामरो बलसंभूतो मायूरो वेगलस्तथा । एते दोषजितो वातः रिनग्धा हृष्टाः सुपूजिताः ॥

ताङ्ग के पत्तों से बने पंखे की हवा विदोषनाशक कही गयी है। चैवर, वल के बने पंखे, मोर के पाख के बने पंखे और बेत के बने पंखे की हवा दोषों को हरण करनेवाली, रिनग्ध, हृदय को हितकर तथा उत्तम कही गयी है। २०७-२०८॥

दिवास्वापं न कुर्वत यतोऽसौ स्थातकफाक्षः । ग्रीष्मवर्जयेषु कालेषु दिवास्वापो निषिद्धयते ॥

दिन में सोने का निषेध—दिन में सोना नहीं चाहिए क्योंकि दिन में सोने से कफ बढ़ता है। इसलिये ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर अन्य किसी भी ऋतु में दिन में नहीं सोना चाहिये। २०९॥

उचितो हि दिवास्वापो निर्यं तेषां शरीरिणाम् । वाताद्यः प्रकृप्यन्त येषामस्वपत्ती दिवा ॥

दिन में सोने योग्य मनुष्य—जिन्हें नित्य दिन में सोने का अभ्यास है उन्हें दिन में सोना चाहिये क्योंकि ऐसे लोगों को नहीं सोने से वातादि दोष कुपित हो जाते हैं। २१०॥

भोजनान्तप्रापिद्वास्वापः पाषाणमपि जीर्यति । भोजनान्ते दिवास्वापाद्वातपित्तकफोऽन्नः ॥

भोजन के पहले दिन में सोने से अविन्देसी तीव्र होती है कि पत्थर जैसा भी पदार्थ खावे तो वह पच जाता है। और भोजन के बाद दिन में सोने से वात, पित्त और कफ की उत्पत्ति होती है। २११॥

च्यांयामप्रमदाध्ववाहनरतान् छान्वानतीसारिणः

शूलरक्षासवतस्तृष्णापरिगतान् हिक्कामरुपीहितान् ।

शीणान्वीणकफाभिष्ठाशूलं मधुहतान् बृद्धान् साजीर्णिनो

शान्त्री जागरिताद्वाराजितशानान् कामं दिवा स्वापयेत् ॥ २१२ ॥

जो मनुष्य व्यायाम करने वाले, रात में खी-सम्भोग करने वाले, रास्ता चलने वाले, सवारी (घोड़े आदि) पर जलने वाले या क्लान्त (थके हुए) शरीर वाले एवं जो अतीसार, शूल, इवास, तुषा, हिक्का और वायु से पीड़ित या क्षीण हैं, जिनका कफ क्षीण हो गया है जो शिशु हैं, जिनको मद ने नष्ट कर दिया है अर्थात् जो अधिक मध्यसेवी या बुद्ध हैं, जिन्हें रसशेषाजीर्ण का रोग है, जो रात के जगे हैं, जो भोजन नहीं किये हैं, उन्हें दिन में खूब सोना चाहिये। २१२॥

दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रा साम्यीकृता तु यैः ।

न तेषां स्वपत्तां दोषो जाग्रत्तां चोपजायते ॥ २१३ ॥

जो मनुष्य दिन में सोने अथवा रात्रि में सोने का अभ्यास कर निद्रा को प्रवृत्तिस्थ कर लिया है उसके सोने-जागने का दोष नहीं उत्पन्न होता है अर्थात् जिसे दिन में सोने रात में जागने वा रात में सोने दिन में जागने का जिस प्रकार का भी अभ्यास हो वैसा करने से कोई दानि नहीं होती है। २१३॥

भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृतः । कफं करोति वपुषः पुष्टि सौख्यं तनोति हि ॥

भोजन के बाद सोने का फल—भोजन के बाद सोने से वात का और पित्त का हरण होता है, कफ बढ़ता है, शरीर की पुष्टि होती है और सुख प्राप्त होता है। २१४॥

शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम् । वमनं कफनाशाय उत्तरनाशाय लहूनम् ॥ २१५॥

शयन, मर्दन, वमन और लहून के फल—शयन करने से पित्त का नाश, मर्दन करने से वात का नाश, वमन करने से कफ का नाश होता है एवं लहून करने से उच्चर का नाश होता है ॥

शब्दान् स्पर्शस्तथा रूपाणि रसान् गन्धान् भन्ति प्रियान् ।

भुक्तवानपि सेवेत तेनान्नं सातु तिष्ठति ॥ २३६ ॥

पेट में अन्न के भलीभांति पचने के अन्यान्य कारण—भोजन किया हुआ पुरुष यदि भनको प्रिय लगने वाले शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का सेवन करे तो उसका अन्न अच्छी तरह स्थित होता है अर्थात् पचता है ॥ २३६ ॥

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धो ज्ञापिसतः । भुक्तमप्रयतं चाष्टमतिहास्यं च वा प्रयेत् ॥

खाये हुये अन्न का पेट में स्थिर न होने के कारण—बृंदा उत्पन्न करने वाले शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, अपवित्र अन्न और अत्यन्त हँसना इसको यदि भोजन किया हुआ पुरुष सेवन करे तो उसका पेट में स्थित अन्न वमन हो कर निकल जाता है ॥ २३७ ॥

शयनं चासनं चाति न भजेत द्रवाधिकम् । नाभ्यातपौ न प्लवनं न यानं नापि वाहनम् ॥

भोजन के बाद अन्यान्य त्याज्य कर्म—भोजन के बाद अधिक सोना, अधिक द्रव पदार्थ का सेवन (या रथादि पर चढ़ना) और अन्नि तथा वाम का सेवन, जल में तैरना, मार्ग चलना तथा घोड़े आदि की सवारी करना यह सब त्याग देवे ॥ २३८ ॥

व्यायामं च द्रवाध्यं च धावनं पानमेव च । युद्धं गीतं च पाठं च मुहूर्तं भुक्तवांस्थजेत् ॥

भोजन किया हुआ मनुष्य व्यायाम, मैथुन, दौड़ना, मत्यादि-पान करना, युद्ध करना, गीत गाना और पढ़ना आदि कर्म एक मुहूर्त (लगभग पौन घण्टा) तक छोड़ देवे ॥ २३९ ॥

अर्थम्बुपानाद्विष्माशनाच्च संघारणात् स्वप्नविपर्याप्तम् ।

कालेऽपि सात्यं लघु वापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ २४० ॥

अजीर्ण होने के कारण—अत्यन्त जल पीने से, विषम अर्थात् कभी कम और कभी अधिक भोजन करने से, मल-मूत्रादिकों के वेग को रोकने से और सोने के नियम के उल्हून से मनुष्य का समय पर, अनुकूल तथा लघु भी भोजन किये हुये अन्न का परिपाक नहीं होता है ॥ २४० ॥

अजीर्णं भुज्यते यत्तु तद्वध्यशनमुद्यते ।

प्राप्तभुक्ते खनले मन्दे द्विरहो न समाहरेत् । पूर्वभुक्ते विद्वद्येऽस्ते भुज्यानो हन्ति पावकम् ॥

व्यायशन के लक्षण—अजीर्ण होने पर भी जो भोजन किया जाय उसे ‘अध्यशन’ कहते हैं। अध्यशन का निषेध—पूर्वांक का भोजन किया हुआ यदि पचा न हो और अधि-मन्द हो तो दिन में दुवारा नहीं खाना चाहिये किन्तु रात में खाना चाहिये। पूर्व का भोजन किया हुआ अर्थात् रात या दिन का किया हुआ यदि विद्यर्थ रह जावे और उसमें पुनः भोजन किया जावे तो वह भोजन अधि को नष्ट कर देता है ॥ २४१ ॥

भवेष्यदि प्रातर्जीर्णशङ्का तदाभ्यानागर सन्धवानाम् ।

चिर्योगितं शीतजलेन भुक्तवा मुक्तामशङ्को मितमङ्गमशात् ॥ २४२ ॥

रात्रि के भोजन से अजीर्ण होने पर भी भोजन करने की युक्ति—यदि रात में खाये हुए अन्न के अजीर्ण होने की शङ्का हो तो हरी, सोंठ और सेन्धा नमक का चूर्ण बनाकर शीतल जल से खाकर अजीर्ण की शङ्का से मुक्त होकर परिमित आहार करना चाहिये ॥ २४२ ॥

सुखाचारः—

अद्वा वर्णकफस्थौष्यसौकुमार्थविनाशनः । पादचलक्रमणं नातिशैहपीडाकरं भवेत् ॥ २४३ ॥

तदायुर्श्वलमेष्वामिप्रदमिन्द्रियोधनम् ।

आस्या वर्णकफस्थौष्यसौकुमार्थसुखप्रदा । उष्णीषं कानितकृष्णं केशं रजोषातकफापहम् ॥
सुखदायक आचरण—रास्ता चलने, धीरे र ठहलने, बैठे रहने आदि के गुण—रास्ता चलने से शरीर का वर्ण, कफ, स्थूलता और सुकुमारता का नाश होता है। धीरे र ठहलने से शरीर को अत्यन्त पीड़ा नहीं होती है तथा आयु, बल, मेधा और अशि की बुद्धि होती है और इन्द्रियों को शक्ति प्राप्त होती है। बैठे रहने से वर्ण, कफ, स्थूलता, सुकुमारता और सुख की बुद्धि होती है। पगड़ी आदि सिरपर धारण करने के गुण—पगड़ी आदि सिर पर धारण करना शरीर की कान्ति का बढ़ाने वाला, केशों के लिये हितकर तथा धूलि आदि एवम्-कफ का नाश करने वाला है ॥

पादाभ्यामनुपानज्ञयो सदा चलक्रमणं तुणाम् । आनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रियधनमदृष्टिम् ॥

विना ज्ञाना पहने चलने के दुर्युग—विना जूते के सदा चलना-फिरना मनुष्यों के लिये आरोग्यप्रद नहीं होता है बल्कि आयु की हानि करता है एवं इन्द्रियों तथा नेत्र की ज्योति को नष्ट करता है ॥ २४५ ॥

छन्नस्थ धारणं वर्षातपचातरजोपहम् । हिमधनं हितमणोश्च मङ्गलयमपि कीर्तिम् ॥ २४६ ॥

छाता धारण करने के गुण—छाता लगाने से वर्षा, धूप, वायु और धूल आदि से रक्षा होती है एवं शीत का नाश अर्थात् शीत से रक्षा होती है, नेत्र को हितकर होता है और मङ्गलप्रद कहा गया है ॥ २४६ ॥

सर्वोरामाहृत्वलस्थैर्यधैर्यवीर्यविवर्धनम् । अदृश्यमकरं चापि भयम्भन्दं दण्डधारणम् ॥ २४७ ॥

दण्ड धारण करने के गुण—दण्डा हाथ में रखने से शक्ति, उत्साह, बल, स्थिरता, धैर्य तथा पराक्रम बढ़ता है, और यह शरीर को सहाय देने वाला और भय को दूर करने वाला है ॥ २४७ ॥
उद्धर्यच्छादनवसंयुक्ता शिरिंका सर्ववल्लभा । तस्याभारोहणं नृणां त्रिदोषशमकं मतम् ॥ २४८ ॥

पालकी पर चढ़ने के गुण—लपर छोड़े हुई पालकी सब को प्रिय लगने वाली है और उसपर चढ़कर चलना मनुष्यों के लिये त्रिदोषनाशक कहा गया है ॥ २४८ ॥

आतश्लेष्माद्यात्मानामहिता अमङ्गतरिः । पित्तानिलकरो हस्ती लच्यायुःपुष्टिवर्धनः ॥ २४९ ॥

नाव पर चढ़ने के गुण—नाव पर चढ़कर चलना वात और कफ के रोगियों के लिये अहित-कर है तथा नाव पर चढ़ने से ग्रम वा सिर धूमने का रोग होता है। हाथी पर चढ़ने के गुण—हाथी पर चढ़ कर चलने से पित्त और वायु बढ़ता है, तथा लक्ष्मी, आयु तथा शारीरिक पुष्टि की बुद्धि होती है ॥ २४९ ॥

घोटकारोहणं वातपित्तामिश्रमङ्गमतय । मेदोवर्णकफन्तं च हितं तद्विलिनी परम् ॥ २५० ॥

घोड़े पर चढ़ने के गुण—घोड़े पर चढ़कर चलने से वात, पित्त और अमि की बुद्धि तथा श्रम (धक्कावट) उत्पन्न होता है एवं मेद, वर्ण और कफ का नाश होता है, इसलिये यह बलवान मनुष्यों के लिये ही हितकारक है ॥ २५० ॥

आतपः स्वेदमूर्ढात्पित्तसृष्टणाङ्गमश्रमान् । दाहं विवर्णतां कुर्यादेतांश्लाया ध्योहति ॥

धूप तथा छाया सेवन के गुण—धूप में रहने से स्वेद, मूर्ढा, रक्तपित्त, तृष्णा, क्लान्ति, श्रम, दाह और विवर्णता उत्पन्न होती है। और छाया में रहने से उपर्युक्त दोषों की निवृत्ति होती है ॥ २५१ ॥

वृष्टिवृष्या हिमा ब्रस्या निद्रालस्थविवर्धनी । भयाचहा मोहकीकुहितिःकफवातला ॥ २५२ ॥

वर्षा-सेवन के गुण—वर्षा में भीगना वृष्य, शीतल, बलदायक, निद्रा तथा अलस्य का बढ़ाने वाला है। कुहेसा सेवन के गुण—कुहेसा का सेवन भय को उत्पन्न करने वाला, मोहकारक तथा कफ एवम् नात को बढ़ाने वाला है ॥ २५२ ॥

अभिवृतकफस्तमभशीतवेपथुनाशनः । आमाभिष्यन्दशमनो रकपित्तप्रकोपनः ॥ २३३ ॥

अथ सेवन के गुण—आग तापने से बात, कफ, स्तब्धता, शीत और वैष्णु (कैपकैंपी) का नाश होता है तथा आमाभिष्यन्द का शमन होता है और रक्तपित्त कुपित होता है ॥ २३३ ॥

सद्यः श्लेष्मकरो धूमो नेत्रयोरहितो भृष्टाम् । शिरोगौरवकृष्णापि वातपित्तं च कोपयेत् ॥

धूपे का फल—धूँआ लगने से शीत कफोत्पत्ति होती है, नेत्र को अत्यन्त हानि होती है, स्त्रि को भारी करता है और वात-पित्त कुपित होते हैं ॥ २३४ ॥

मैत्रीं सद्मित्रसमिश्रं कुर्यात् सत्सु तु सर्वथा । संसर्गं साधुभिः कुर्यादसरसङ्घं परिष्यजेत् ॥२३५॥

सदाचार—मित्रता दो प्रकार की होती है, एक सज्जन की मित्रता दूसरी असज्जन (दुष्ट) की है, इसमें सज्जन के साथ सब प्रकार की अर्थात् मन, कर्म और वचन से मित्रता करनी चाहिये, तथा सज्जनों का ही साथ करना चाहिये कुसंगति (दुष्टों का साथ) छोड़ देनी चाहिये ॥ २३५ ॥

सेवेत देवभूदेववृद्धौ वैद्यनृपातिथीन् । चितुसुखाधायिनः कुर्याद्वावमन्येत कानपि ॥ २३६ ॥

देवता, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा और अतिथि इनकी सेवा करनी चाहिये, याचकों को विमुख नहीं करना चाहिये और किसी का अपमान नहीं करना चाहिये ॥ २३६ ॥

गुरुणां संतिधौं तिष्ठेऽसदैव विनाथानिवतः । पादप्रसारणादीनि तत्र नैव समाख्येत् ॥ २३७ ॥

गुरुजनों के निकट सदा नव्र होकर बैठना चाहिये वहां पर (गुरु के निकट) पैर फैलना, बेंगे बैठना आदि नहीं करना चाहिये ॥ २३७ ॥

अपकारपरेऽपि स्यादुपकारपरः पुमान् । आत्मवस्तकलान्पश्येद्वैशिणो दूरतो वसेत् ॥ २३८ ॥

अपकार करनेवाले के प्रति भी उपकार ही करना चाहिये और अपने समान ही सबको समझना चाहिये तथा शत्रुओं से दूर रहना चाहिये ॥ २३८ ॥

न कंचिद्वात्मनः शान्तं नाऽस्तमानं कस्यचिद्रिपुम् । प्रकाशयेष्वापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः ॥

यदि कोई अपना शत्रु हो अथवा स्वयं किसी का शत्रु हो, तथा कहीं अपना अपमान हुआ हो अथवा स्वामी की अकृपा अपने ऊपर हो तो उसे प्रकट नहीं करना चाहिये ॥ २३९ ॥

नाऽस्तमानमुद्धके परवेष्य न द्वःः प्रविशेष्यलम् ।

तथा नाज्ञातगामीर्थं न हिस्प्राणिसेवितम् ॥ २४० ॥

अपना मुख दर्पण की भाँति जल में नहीं देखना चाहिये, नंगे शरीर जल में नहीं प्रवेश करना चाहिये और जिस जल की गहराई ज्ञात नहीं हो तथा जिस जल में हिंसक जीव (मगरादि) रहते हों उस जल में प्रवेश नहीं करना चाहिये ॥ २४० ॥

काले हितं मितं सरथं संवादि मधुरं वदेत् । भुजीत मधुरं प्रायः विग्रहं काले हितं मितम् ॥

समय के अनुकूल हितकारक, थोड़ा, स्तव्यता पूर्ण प्रसंग के अनुसार, और मधुर वचन योलना चाहिये। और समय के अनुकूल ही अर्थात् समय होने पर प्रायः करके मधुर, लिप्त, हितकारक और परिमित भोजन भी करना चाहिये ॥ २४१ ॥

न रात्रौ दृष्टि भुजीत न च निर्लब्धं तथा । नासुदूरस्पं नाशीद्रं न चाप्यष्टशक्तरम् ॥२४२॥

दही रात में नहीं खाना चाहिये, विना नमक मिलाये दही नहीं खाना चाहिये तथा विना मूँग की दाल, मधु, घृत वा शकर मिलाये दही नहीं खाना चाहिये अर्थात् उपर्युक्त किसी वस्तु के विना मिलाये केवल दही नहीं खाना चाहिये ॥ २४२ ॥

ज्ञानस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति । तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ॥ २४३ ॥

दूसरे मनुष्य के आशय को समझ कर जो जैसा हो उसको उसी भाँति सन्तुष्ट करना चाहिये, दूसरे को प्रसन्न करने में जो चतुर होते हैं वे इसी प्रकार का वर्ताव करते हैं ॥ २४३ ॥

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शङ्कितः । नोषमाद्विमेष्टकापि हेतावीर्ध्येत्कले न तु ॥

अकेले सुख का उपभोग नहीं करना चाहिये, सब जगह सब पर विश्वास नहीं करना चूहिये न सब जगह शङ्का ही करनी चाहिये। उद्योग करने से कभी विरत नहीं होना चाहिये अर्थात् निरन्तर उद्योग करत रहना चाहिये और किसी के कार्य के फल पर ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये बल्कि उसके हेतु कोई ईर्ष्या कर उसे करने का प्रयत्न करना चाहिये ॥ २४४ ॥

वेगाक्ष धास्येत्किञ्चन्मनोवेगान्विधारयेत् । न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत् ॥

मल-मूत्रादि के वेगों को कभी धारण नहीं करना चाहिये किन्तु मन के वेग को रोकना चाहिये, इन्द्रियों को अत्यन्त पीड़ित नहीं करना चाहिये अर्थात् बलात् इन्द्रियों के वेग को नहीं रोकना चाहिये और इन्द्रियों का अत्यन्त लालन भी नहीं करना चाहिये अर्थात् इन्द्रियों के वेग में भी नहीं होना चाहिये ॥ २४५ ॥

वर्षां दिष्टु च्छन्त्री दण्डी राघटवीषु च । सोपानस्तत्त्वं रक्षन्विचरेदयुगमावृद्धक ॥२४६॥

वर्षा और धूप आदि में छाता लगा कर रात्रि में और जंगल में या भय के समय ढंडा धारण कर और जूता पहन कर शरीर की रक्षा करते हुये और चार हाथ तक आगे तक भूमि देखते हुए चलना चाहिये ॥ २४६ ॥

नर्दीं तरेन बाहुभ्यां नाशिनस्कन्धमभिव्यजेत् । सन्दिश्वनां वृक्षं च नाडज्ञेहेद् दुष्ट्यानवदा ॥

बाहु से (तैर कर) नदी नहीं पार करना चाहिये और जिस तरफ अशि का समूह हो उसकी तरफ नहीं जाना चाहिये, जिस नाव में डूबने आदि का सन्देह हो उस नाव पर और जिस वृक्ष पर से गिरने या उसके दूटों का सर्वे हो ऐसे वृक्ष पर तथा दुष्ट स्वभाव के हाथी-घोड़े आदि पर नहीं चढ़ना चाहिये ॥ २४७ ॥

नासंवृतसुखः कुर्याद्वासार्या सुविच्छाणः । कासं हासं तथोदगारं जङ्घमणं छवधुं तथा ॥

बुद्धिमान सभा आदिक में मुंह बिना ढके, खांसना, हँसना, डकार, जङ्घाई, छींक आदि को नहीं करे ॥ २४८ ॥

नासिकां न विकुण्णीयान्वासीतोकटकः क्वचित् ।

नोर्ध्वानुश्चिरं तिष्ठेष्व नखैविलिखेद् सुखम् ॥ २४९ ॥

नासिका को नहीं निखोरा करे, कभी उत्कट आसन से नहीं बैठे, उपर जानु करके अधिक देर तक नहीं बैठे और नख से भूमि नहीं खोदे ॥ २४९ ॥

संमार्ज्जनीरजो लैव देहे दध्यात् कदाचन । न नखेन तृणं क्षिन्याङ्गोच्छिष्टो ब्राह्मणं स्वप्नेत् ॥

ज्ञाह की धूल देह पर कभी नहीं पड़ने देवे, नख से तृण को नहीं काटे और जूठे सुख से ब्राह्मण को न छूवे ॥ २५० ॥

नोपरकं न चोद्यन्तं नास्तं यान्तं दिवाकरम् । सर्वथा तु समीक्षेत न जले प्रतिविश्वतम् ॥

ग्रहण लगे हुये एवं अगते तथा दूबते हुए सूर्य को कभी नहीं देखे तथा जल में पड़े हुए भी सूर्य के प्रतिविश्व को नहीं देखे ॥ २५१ ॥

नेत्रेत प्रतलं सूर्यं दीप्तामेध्याग्निं च । पौरन्दरं धनुलेव दर्शयेत्कमपि क्वचित् ॥ २५२ ॥

अत्यन्त छोटी, अत्यन्त चमकीली, अपवित्र तथा अग्नि वस्तु को नहीं देखना चाहिये और इन्द्रधनुष को देखकर दूसरे को कभी नहीं दिखाना चाहिये ॥ २५२ ॥

रिपोरञ्जं न भुजीत गणिकाष्ममपि क्वचित् ।

प्रतिभूर्नं भवेत् क्वापि न च साक्षं वृथा बदेत् ॥ २५३ ॥

शत्रु और वेशा का अन्न भी कभी नहीं खाना चाहिये । किसी का जामिन कभी नहीं होना चाहिये और न व्यर्थ का साक्षी (गवाह) किसी भी व्यक्ति का होना चाहिये ॥ २५३ ॥

स्थरीं न बारयेज्ञात् द्युतं दूशात् परित्यजेत् ।

विश्वासं नाऽचरेत्खीणां ताः स्वतन्त्राश्रम नाचरेत् ॥ २५४ ॥

किसी भी व्यक्ति का धरोहर नहीं रखना चाहिये और जूँड़े को दूर से ही छोड़ना चाहिये । खिलों का विश्वास नहीं करना चाहिये और उन्हें (खिलों को) कभी स्वतन्त्र नहीं होने देना चाहिये ॥ २५४ ॥

रक्षणीया सदा पती यौवने तु विशेषतः ।

न मिक्षशयने स्वप्न्यात्र चैको विवरे विले । नैको देवालये नैव रात्रौ तरुतले न च ॥२५५॥

पती की सदा परपुरुष से रक्षा करनी चाहिये, यौवनावस्था में तो और भी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिये । दूरी हुई शय्या पर नहीं सोना चाहिए, अकेले विवर या विल (उफा) में किंवा रात्रि में देवमन्दिर और वृक्ष के नीचे अकेले नहीं सोना चाहिए ॥ २५५ ॥

एवं दिनानि गमयेत्सदा चारपरः सदा । ततो रात्रिप्रयुक्तानि कुर्यात्कर्माणि मानवः ॥२५६॥

इस प्रकार सदाचारयुक्त मनुष्य को सदा दिन व्यतीत करना चाहिये, इसके बाद रात्रि में करने वाले कर्मों को जो कि शाख में कहे गये हैं उनको करना चाहिये ॥ २५६ ॥

दृश्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत् । स विन्दस्यायुराशेषं प्रीतिं धर्मं धनं यज्ञः ॥

इस प्रकार संक्षेप में जो सदाचार कहा गया है उसको भली-भाँति करने वाला मनुष्य आयु, आरोग्य, प्रीति, धर्म, धन और यज्ञ को प्राप्त करता है ॥ २५७ ॥

पृतानि पञ्च कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद् बुधः । आहारं मैथुनं निद्रां सम्पाठं गतिमध्वनि ॥

सन्ध्या के समय के वर्जित कर्म—दुष्टिमान मनुष्य निम्नलिखित इन पाँचों कर्मों को सन्ध्या के समय छोड़ देवे—१ आहार, २ मैथुन, ३ निद्रा, ४ पढ़ना, ५ रास्ता चलना । अर्थात् इन पाँचों कर्मों को नहीं करे ॥ २५८ ॥

भोजनाज्ञायते द्याघिमेध्युनाद् गर्भंवैकृतम् । निद्रायां निःस्वता पाठादायुर्हानिर्गतेर्भयम् ॥

सन्ध्या काल में निषिद्ध कर्मों के करने का फल—सन्ध्या काल में भोजन करने से व्याधि, मैथुन करने से गर्भ में विकार, सोने से दरिद्रता, पढ़ने से आँख की हानि और रास्ता चलने से भय होता है ॥ २५९ ॥

अथ रात्रिचर्याः ।

उनोत्सा शीता स्मरानन्दप्रदा तटपित्तदाहहृत् ।

ततो हीनगुणः कुर्याद्वश्यायोऽनिलं कफम् ॥ १ ॥

रात्रिचर्या प्रकरण—(रात में करने योग्य कार्यों का वर्णन)—चाँदनी, ओस और अन्धकार के गुण—चन्द्रमा की चाँदनी शीतल, कामसम्बन्धी आनन्द को देने वाली, रुषा, पित्त और दाह का नाश करने वाली है । ओस चाँदनी के गुणों से हीन गुणवाला वर्षात् उपर्युक्त सब गुणों को घोड़ी मात्रा में करने वाला तथा वायु और कफ को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १ ॥

तमो भयावहं मोहदिङ्गमोहज्जननं भवेत् । पित्तहृक्कृत्कामवर्धनं कुमकृच तत् ॥ २ ॥

अन्धकार भयकारक, मोह करने वाला तथा दिशा-अम करने वाला होता है, एवं पित्तहृण करने वाला, कफकारक, काम को बढ़ाने वाला और कुन्नित उत्पन्न करने वाला होता है ॥ २ ॥

रात्रौ तु भोजनं कुर्यात्प्रथमप्रहरान्तरे । किञ्चिद्दूनं समशीथाद् दुर्जं रं तत्र वर्जयेत् ॥ ३ ॥

रात में भोजन करने का समय तथा परिमाण—रात में भोजन पहले पहर के अन्दर ही करना चाहिये और दिन से योग्य कम खाना चाहिये तथा जो दुर्ज (कठिन) पदार्थ ही उसे नहीं खाना चाहिये ॥ ३ ॥

शरीरे जायते निर्य देहिना सुरतस्पृष्ठा । अव्यव्यायाम्येहमेदोषुद्धिः विथिलता तनोः ॥ ४ ॥

श्लो—प्रसंग के प्रति वचन—मनुष्यों को शरीर में प्रायः नित्य मैथुन की इच्छा होती है और प्रबल इच्छा होने पर नहीं मैथुन करने से प्रमेह तथा मैदरोग की वृद्धि और शरीर में विथिलता होती है ॥ ४ ॥

वलिनो ममसो रोधाकोधाद्वा ब्रह्मचर्यतः । नारीणामरसज्जायात्कीणं शुक्रं भवेन्द्रुणाम् ॥५॥

क्षीण शुक्र होने के कारण—बलवान् पुरुष को मैथुन से मन को रोकने से, क्रोध अधिक करने से, अधिक ब्रह्मचर्य से, खिलों में रस की अज्ञानता से मनुष्य क्षीणवीर्य हो जाता है ॥ ५ ॥

वौद्यर्थं सुसंशोषक्य पाण्डुत्वं सदनं अमः । क्लैब्यं शुक्रविसर्वाक्षं क्षीणशूक्रस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

क्षीणशुक्र होने के लक्षण—दुर्बलता, सुख का सुखना, शरीर का पाण्डु वर्ण होना, अज्ञ में ग्लानि मालूम होना, अम होना, नयुंसकता होना और वीर्य का अनायास निकल जाना ये सब क्षीण शुक्र होने के लक्षण हैं ॥ ६ ॥

संबन्ध्यरिवश्चभा नृपथूर्मित्राङ्गना रोगिणी

शिथ्यश्चाद्याग्नवृष्ट्यभाडितपितोन्मत्ता महापापिनी ।

पिङ्गा प्रवज्जिता सती गुरुवृद्धृद्वादा तथा गर्भिणी

म्लेच्छा कृष्णतमा तथाऽपरिचिता ध्याया इमा योगितः ॥ ७ ॥

मैथुन के अवोग्य (वर्जित) खिलों—सम्बन्धिनी, शत्रु की ली, राजा की ली, मित्र की ली, रुणा ली, शिष्य की ली, ब्राह्मण की ली, अत्यन्त प्रतित ली, उन्माद रोग वाली ली, महापापिनी ली, पाण्डु वर्ण की ली, संन्यासिनी, सती, गुरु की ली, बढ़ी ली, गर्भिणी ली, म्लेच्छ जाति की ली, काली कुरुपा ली तथा जिस-ली से परिचय न हो ऐसी खिलों को मैथुन के लिये त्याज्य कहा है ॥ ७ ॥

सेवनं योगितां कुर्याद् बुधो बुद्ध्या रतिक्रमम् । बालामुग्धाविरुद्धानामनुरागविभावनात् ॥

ली सेवन (मैथुन) क्रम—बुद्धिमान मनुष्य बाला, मुग्धा (तरुणी), अधिरुद्धा आदिकों के अनुसार अनुराग मेद से रति का क्रम जानकर खिलों का सेवन करे ॥ ८ ॥

सालेति गीयते नारी यावद्वार्णिं वोदश । ततस्तु तत्त्वं ज्ञेया द्वाग्निशाद्वसरावधि ॥ ९ ॥

तद्वृद्यमधिरुद्धा स्यात्पञ्चाशद्वसरावधि । बृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सवज्जिता ॥ १० ॥

बाला, तरुणी, अधिरुद्धा (प्रौढ़ा) और बृद्धा आदिकों का वय—जब तक ली सोलह वर्ष तक की रहती है तबतक 'बाला' कही जाती है, और इसके ऊपर बत्तीस वर्ष की अवस्था तक तरुणी कही जाती है । और उसके ऊपर बृद्धा जानना चाहिये जो कि काम-केलि से शृण्य होती है अर्थात् उन्हें काम शक्ति बहुत कम होती है इसलिये उनसे मैथुन करना निषिद्ध है ॥ ९-१० ॥

निदावशरदोर्चाला हिता विविधे मता । तरुणी शीतसमये प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥ ११ ॥

बाला, तरुणी, प्रौढ़ा आदि खिलों के सेवन (संयोग) का समय—विषयी पुरुषों के लिए निदाव (श्रीम) और शरद् क्रतु में बाला ली का संभोग, शीतकाल में तरुणी ली का सम्भोग, वर्षा क्रतु और वसन्त क्रतु में प्रौढ़ा ली का सम्भोग हितकर मात्रा गया है ॥ ११ ॥

नित्यं बाला सेष्यमाना नित्यं वध्यते वलम् । तरुणी हास्येच्छक्षिं प्रौढोद्भावथते जराम् ॥
बाला आदि स्थियों के सम्मोग का फल—नित्य बाला खी से सम्मोग किया जावे तो इससे

नित्य बल बढ़ता है, तरुणी खी से सम्मोग किया जावे तो शक्ति का हास होता है और प्रौढा खी से सम्मोग किया जावे तो वृद्धता उत्पन्न हो जाती है अर्थात् मनुष्य शीघ्र वृद्ध हो जाता है ॥

सधो मांसं नवाक्षं च बाला खी शीघ्रभोजनम् । धृतमुष्णोदकञ्चानं सधः प्राणकराणि षट् ॥

किञ्च-किन पदार्थों के सेवन से सधः बल उत्पन्न होता है—सधः (टटका) मांस, नया अंडा, बाला खी, दूध का भोजन, धी और उष्ण—जल से खान इन छब पदार्थों के सेवन से तुरत बल उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥

पूर्तिमांसं स्थियो वृद्धा बालाकस्तरणं वधि । ग्रामाते मैथुनं निद्रा सधः प्राणहराणि षट् ॥

सधः बल दूरण करने वाले पदार्थ—सङ्गा हुआ मांस, वृद्धा खी, कन्या राशि के सूर्य, तरुण (अधमांती) दही, प्रातः काल का मैथुन और प्रातः काल सोना इन छब पदार्थों के सेवन करने से तुरत बल का नाश होता है ॥ १४ ॥

धृद्धोऽपि तरुणीं गरवा तरुणत्यमदाप्नुयात् । वयोऽधिकां स्थियं गत्वा तरुणः स्थविरायते ॥

तरुणी के साथ वृद्ध पुरुष और वृद्ध के साथ तरुण पुरुष के सम्मोग का फल—वृद्ध पुरुष यदि तरुणी खी से नित्य सम्मोग करे तो वह तरुणत्व को प्राप्त हो जाता है अर्थात् तरुण की भाँति शक्ति बाला हो जाता है और यदि तरुण पुरुष—अपने से अधिक अवस्था बाली (वृद्धा) खी से नित्य सम्मोग करे तो वह वृद्ध की भाँति शक्तिहीन हो जाता है ॥ १५ ॥

आयुष्मन्तो भन्दजरा वधुर्वर्णवालानिवृताः । स्थिरोपचित्मांसाक्ष भवन्ति शीघ्र संयताः ॥

नियमित खी—गमन का फल—नियमपूर्वक शाखामुकूल जो पुरुष खी—सम्मोग करते हैं उनकी आयु अधिक दिनों तक रहती है, बुद्धामा भी धोरे—धीरे वयोऽनुसार होती है, शरीर का वर्ण और बल भी देर तक रहता है और मांसादिकों की उत्पत्ति और स्थिति भी चिरकाल तक बनी रहती है ॥ १६ ॥

सेवेत कामतः कामं तु सो वाजीकृतां द्विष्टे । ग्रामामं तु नियेवेत मैथुनं शिशिरागमे ॥ १७ ॥

धृत्यहाद्वासन्तशशरदोः पच्चाद्वर्षानिदाग्रयोः ।

ऋतु भेद से खीसेवन विधि—हेमन्त ऋतु में वाजीकरण ओषधियों का सेवन कर इच्छापूर्वक काम की दृष्टि पर्यन्त खीसम्मोग करे । इसी प्रकार शिशिर ऋतु में भी सम्मोग करे । वसन्तादि ऋतुओं में कितने २ दिनों पर खीसेवन करना चाहिये उसका बचन—वसन्त और शरद ऋतु में तीन-तीन दिनों पर, वर्षा ऋतु और ग्रीष्म ऋतु में एक पक्ष (१५ दिन) पर खी—सम्मोग करना चाहिये । दो ऋतु जो छठती हैं हेमन्त और शिशिर इसके लिये खास नियम नहीं लिखा है पर समयानुसार इच्छापूर्वक सम्मोग करना चाहिये ॥ १७-१७२ ॥

शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते तु दिवा निशि ॥ १८ ॥

वर्षासु वारिदध्वाने शरदसु सरसः स्मरः ।

ऋतु भेद से खी सेवन का समय भेद—शीतकाल में रात्रि में, ग्रीष्मकाल में दिन में, वसन्त ऋतु में दिन या रात्रि दोनों में, वर्षा ऋतु में जब मैथ गर्जन—वर्षा आदि होने लगे तभी और शरद ऋतु में जब कामदेव की प्रवलता हो तभी खी सम्मोग करना चाहिये ॥ १८-१८२ ॥

त्रिभिर्किरिहोभिर्हि समेयात्प्रसदां नरः ॥ १९ ॥

सर्वेष्वृत्तुषु धर्मेषु पश्चापच्छाद व्यजेद् खुधः ।

अन्य मत से ऋतु भेद से खी सम्मोग का बचन—दुष्टिमान् पुरुष सभी ऋतुओं में तीन-तीन दिनों पर खी सम्मोग करे किन्तु ग्रीष्म ऋतु में पक्ष-पक्ष (१५ दिन) पर खी सम्मोग करे ॥ १९-१९२ ॥

आयुःहयभयाद्विद्वाशाह्नि सेवेत कामिलीम् ॥ २० ॥

अवशो यदि सेवेत तदा ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ २१ ॥

दिन में खी सम्मोग का निषेध और बचन—विद्वान् पुरुष आयु के क्षय होने के भय से दिन में मैथुन नहीं करे अर्थात् दिन में मैथुन करने से आयु का नाश होता है । यदि कोई पुरुष इन्द्रियों में बिल्कुल आसक्त है (अजितेन्द्रिय है) वह यदि दिन में मैथुन करना चाहे तो ग्रीष्म और वसन्त ऋतु में सेवन करे अर्थात् जो अजितेन्द्रिय हो और दिन में ही मैथुन करना चाहे तो वर्षा और वसन्त ऋतु में मैथुन कर सकता है ॥ २०-२१ ॥

नोपेयापुरुषो नारीं सन्धयोर्न च पर्वसु । गोसर्गं चार्धरात्रे च तथा सन्ध्यादिनेऽपि च ॥

खी सम्मोग में निषिद्ध काल (समय) —पुरुष प्रातः और सायम्, पर्व दिन (अमावास्या, एकादशी, संकान्ति, पूर्णिमा आदि विशेष तिथियां), गोसर्ग (गोओं के चरने जाने के समय), अर्द्ध रात्रि में और दिन के दोपहर में इन समयों में खी—सम्मोग नहीं करे ॥ २२ ॥

करपस्योद्ग्रन्थवथसो वाजीकरणसेवितः । सर्वेष्वृत्तुषु वृहवृद्यवृद्याद्यो न निवार्यते ॥ २३ ॥

जो अत्यन्त स्वस्थ या चौबन मदोन्मत्त किंवा जिसने वाजीकरण का सेवन किया है, वह सब ऋतुओं में दिन वा रात्रि में मैथुन का निवारण नहीं करता है अर्थात् ऐसे के लिये काल, समय का बचन नहीं है ॥ २३ ॥

धृत्यहाद्वासन्तशशरदोः वाजीकरणसेवितः । विहारं भार्या कुर्याद्वेषोऽतिशयसंबृते ॥ २४ ॥

इद्ये अध्याहान्तागाने सुगन्धिसुखमालते ।

खी सम्मोग के बायं पुरुष पर्व स्थान—जिस पुरुष ने धृत्यहाद्वासन्तशशरदोः वाजीकरण का भोजन किया है, और जो निर्भीक, आरोग्य एवं सुख है ऐसा पुरुष जो स्थान अत्यन्त द्वाका हो (गुप्त हो), रमणीय हो, और जहाँ पर जियों का मधुर गन चुनाई पड़ता हो, तथा सुगन्धित और सुखकर आयु आती हो ऐसे स्थान में अपनी खी के साथ विहार करे ॥ २४-२४२ ॥

देशे गुरुजनासल्लेऽन्त्रेऽतित्रपाकरे ॥ २५ ॥

शूद्र्यमाणव्यथाहेतुवचने च गमेत न ।

खी सम्मोग के अयोग्य स्थान—जिस स्थान से गुरुजनों का स्थान निकट हो और वह स्थान छुला या अत्यन्त लज्जाजनक हो, और व्यथा के बचन जिस स्थान पर सुनाई पड़ते हों (कराहना आदि) ऐसे स्थान पर खी सम्मोग नहीं करना चाहिये ॥ २५-२५२ ॥

सातश्वन्दनलिपाङ्गः सुगन्धसुखनोन्वितः ॥ २६ ॥

शुक्षवृद्यः सुवसनः सुवेषः समलङ्घकृतः । लाभवृलवदनः परन्यासनुरक्तोऽधिकस्मरः ॥ २७ ॥

पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छ्रव्यने शुभे ।

खी सेवन के योग्य पुरुष—जान किया हुआ, चन्दनादिका सुगन्धित लेप लगाया हुआ, प्रसन्नचित्त वाला, वृद्य पदार्थों को खाया हुआ, सुन्दर वस्त्र पहना हुआ, सुन्दर वेष से सुसज्जित हुआ, पान खाया हुआ, पहली के प्रेम में अधिक अनुरक्त एवं अधिक काम की उत्पत्ति जिसको हो, ऐसा पुत्र की इच्छावाला पुरुष अच्छी शय्या पर खी के साथ सम्मोग करे ॥ २६-२७२ ॥

अर्थाशितोऽधृतिः द्वादान् सव्यथाङ्गः पिपासितः ॥ २८ ॥

बालो बुद्धोऽन्यवेगातैस्यजेऽग्री च मैथुनम् ।

खी सेवन के अयोग्य पुरुष—जो पुरुष अत्यन्त भोजन किया हो, जो धैर्यरहित वा काम से अधीर या भूखा हो, जिसे शरीर में कष हो, तथा जो प्यासा, बल्क, बृद्ध, काम के वेग से अन्य मल-मूत्रादि वेग वाला तथा रोगी हो ऐसे पुरुष को मैथुन नहीं करना चाहिये ॥२८-२९॥

भार्या तुल्यगुणोपेतां तुल्यक्षीकां कुलोऽग्राम ॥ २९ ॥

अभिकामोऽभिकामां च हृष्टो हृष्टामलङ्घकृताम् । स्वेत प्रसदां युक्त्या वाजीकरणवृंहितः ॥

मैथुन के योग्य ली—जो खी पुरुष के समान गुणवाली, समान शीलवाली, अच्छे कुल की उत्पन्न, अत्यन्त काम वाली, प्रसन्न चिकित्वाली और सुन्दर भूषणों से युक्त हो उस खी के साथ वाजीकरण और बृहण ओषधियों का सेवन कर हृष्ट-पुरुष हुआ विधिपूर्वक पुरुष सम्मोग करे ॥

सीमन्ताच्यधरे कपोलगलके कुचौ कुचोरःस्थले

नाभिशोणिवराङ्गजानुषु तथा गुलके पदाङ्गुष्ठके ।

वामाङ्गे हरिणीहृषां मनसिङ्गो मासस्य पक्षद्वये

शुङ्करथामविभागतः सुविहरस्यूर्धर्वां एवं क्रमात् ॥ ३१ ॥

खी को काम के लिये आकर्षित (उत्तेजित) करने की विधि—शुङ्क पक्ष में खियों के प्रायः, वायं अङ्ग में कामदेव का निवास आगे लिखे हुये कम से रहता है जिससे पुरुष को उत्तित है कि उन-उन स्थानों का ताड़न, चुम्बन, मर्दन तथा स्पर्शादि से काम के लिये आकर्षित करे अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर कम से शुङ्क पक्ष में जैसे शुङ्क प्रतिपदा को सिर के मध्य में, द्वितीया को नेत्रों में, तृतीया को अधर में, चतुर्थी को कपोल में, पञ्चमी को गले में, षष्ठी को कुक्षि में, सप्तमी को स्तन में, अष्टमी को छाती में, नवमी को नाभि में, दशमी को नितम्ब में, एकादशी को योनि में, द्वादशी को जानु में, त्रयोदशी को गुलक में और चतुर्दशी को पैर के अंगूठे में, द्वितीया को गुलक देश में, तृतीया को जानु में, चतुर्थी को योनि में, अन्त में चतुर्दशी को सिर में काम की प्रवलता रहती है अर्थात् इन-इन तिथियों में लिखित स्थानों में मर्दन-चुम्बन करने से खी आकर्षित होती है ॥ ३१ ॥

सीमन्ते नखरं सुचुम्बनविधिं नेत्रे कपोलेऽधरे

दन्तांग्रं विधीत किंच नखरं कुचौ सुकण्ठेऽपि च ।

मन्दं चक्षसि ताढनं कुचयुगे श्वर्णौ द्वं मन्दनं

नाभौ किञ्च चपेटिकां स्मरगृहे मातङ्गीलायितम् ॥ ३२ ॥

कम इस प्रकार है—सिर में नख लगाना, नेत्र तथा कपोलों का चुम्बन करना, अधर को दाँत से पकड़ना, कुक्षि और कण्ठ में नख लगाना, उरःस्थल में मन्द-मन्द ताड़न करना, कुच तथा नितम्ब का मर्दन करना, नाभि में चपेटिका (चपाती) लगाना, योनि में मैथुन करना आदि से लियों में कामोद्रेक होता है इससे इन क्रियाओं को कामी पुरुष को व्यवहार में लाना चाहिये ॥

गुलकजानुपदाङ्गुष्टसमये घातनानि च । दृष्टचन्द्रकलास्पशाद् द्रावयेदग्नुजेऽप्याम् ॥ ३३ ॥

गुलक देश, जानु तथा पैर के अंगूठे में ताड़न करना चाहिये । इस प्रकार अभीष्ट चन्द्रकला के अनुसार स्पर्शादि से खियों के द्रावण में पुरुष को सुगमता होती है अर्थात् इससे खियों द्रवित होती है ॥ ३३ ॥

रजस्वलामकासां च मलिनामश्रियां तथा । वर्णवृद्धां तयोवृद्धां तथा व्याधिप्रीढिताम् ॥३४॥
हीङ्गाङ्गी गर्भिणीं द्वेष्यां योनिरोगसमन्विताम् । सगोद्रां गुरुपर्वीं च तथा द्रवितामपि ॥३५॥

नाभिगच्छेत्ततो नारीं भूरिचैगुण्यशङ्क्या ।

मैथुन के अयोग्य ली—जो खी रजस्वला हो, कामवासना से रहित हो, मलिन वेष वाली (मैली कुचैली) हो, अपने को जो प्रिय नहीं मालूम हो, अपने वर्ण से ऊँचे वर्ण वाली हो, अपनी आयु से अधिक आयु वाली हो और रोगिणी हो, हीन अङ्गों वाली (लंगड़ी, लूली, कानी आदि), गर्भिणी, जिससे द्रेष हो, जो योनिरोग वाली हो, अपने गोत्र की हो, उस की ली हो, तथा संन्यासिनी हो ऐसी खियों के साथ कभी भी मैथुन नहीं करना चाहिये क्योंकि इनके सहवास से अनेक प्रकार की हानि होने की सम्भावना है ॥ ३४-३५॥

रजस्वलां गतवतो नरस्यासंयतामनः ॥ ३६ ॥

दृष्ट्याऽग्नुस्तेजसां हानिरध्मश्च ततो भवेत् ।

विशेषतः रजस्वला के संगम के दोष—अजितेन्द्रिय पुरुष यदि रजस्वला से सम्मोग करते हैं तो उनकी दृष्टि, आयु, तथा तेज की हानि होती है और इससे अधर्म भी होता है ॥ ३६-३६॥

लिङ्गिनीं गुरुपत्नीं च सगोद्रामथ पर्वसु ॥ ३७ ॥

वृद्धां च सन्ध्ययोग्रापि गच्छतो जीवनघ्यः ।

और भी वर्जित रित्रियों एवं समय में सम्मोग का दोष—संन्यासिनी, शुरुपत्नी, अपने गोत्र वाली, पर्व के दिनों में, बृद्धा स्त्री, दोनों सन्ध्याओं (प्रातः सायम्) में, इन वर्जित खियों और समयों में सम्मोग करने से जीवन का नाश होता है ॥ ३७-३७॥

गर्भिण्यां गर्भपीडा स्याद्व्याधितायां बलघ्यः ॥ ३८ ॥

और भी—गर्भिणी के साथ सम्मोग से भैंस की पीड़ा होती है, रोगिणी से सम्मोग करने से वल का नाश होता है ॥ ३८ ॥

हीनाङ्गीं मलिनां द्रूष्यां ज्ञामां वन्ध्यामसंवृते । देशोऽभिगच्छतो रेतः द्वीषं म्लानं मनो भवेत् ॥

हीन अङ्गों वाली, मैली कुचैली, जिससे द्रेष हो, क्षीण शरीर वाली, बन्ध्या आदि दोनों वाली स्त्री से तथा खुले स्थान में मैथुन करने से पुरुष क्षीण वीर्य और म्लान मन का हो जाता है ॥ ३९ ॥

द्रुष्यितः कुद्वित्तश्च मध्याह्ने तृष्णितोऽवलः । रिथतस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपं च विन्दति ॥

बुमुक्षित आदि पुरुष एवं मध्याह्न में सम्मोग के दोष—जो पुरुष भूखा हो, जिसके चित्र में क्रोध हुआ हो, मध्याह्न का समय हो, जो प्यासा हो, जो दुर्बल हो ऐसा मनुष्य मैथुन करे तो उसके शरीर में स्थित शुक्र की हानि तथा वायु का कोप होता है ॥ ४० ॥

व्याधितस्य रुजा प्लीहा मूरुर्धा मृत्युञ्च जायते ।

प्रत्युषस्यर्धरात्रे च वातपित्त प्रकुप्यतः ॥ ४१ ॥

रोगी पुरुष वा वर्जित काल में मैथुन करने का दोष—रोगी पुरुष यदि मैथुन करे तो उसे पीड़ा, प्लीहा रोग, मूरुर्धा और मृत्यु तक होती है । और प्रातःकाल (सूर्योदय के पूर्व) और अर्ध रात्रि में मैथुन करने से वात और पित्त दोष कुपित होते हैं ॥ ४१ ॥

स्तिर्यग्नेनावयोनौ च द्रुष्योनौ तथैव च । उपदंशस्तथा वायोः कोपः शुक्रसुखज्यः ॥ ४२ ॥

पशु आदि तथा द्रुष्यित योनि में मैथुन करने के दोष—पशु आदि की योनि में अथवा अयोनि (छाविम, गुरु, हस्तादि) में तथा दोयों से द्रुष्यित योनि में मैथुन करने से उपदंश तथा वायु का कोप शुक्र और सुख का नाश होता है ॥ ४२ ॥

उच्चारिते मूर्त्रिते च तेतसश्च विधाश्चे । उच्चारे च भवेच्छीद्यं शुक्रामर्थात्तु सम्बवत् ॥ ४३ ॥

मल-मूत्रादि के वेग के समय तथा विपरीत होकर मैथुन करने तथा वीर्य वेग को रोकने

के दोष—जो पुरुष मल, मूत्र या वीर्य के बेग को रोककर अथवा उत्तान होकर (आप नीचे होकर स्त्री को कमर कर के) मैथुन करता है उसे शीघ्र शुक्राशमरी नामक रोग के होने की सम्भावना होती है अर्थात् ऐसा करने वाले को शुक्राशमरी हो जाती है ॥ ४३ ॥

संवर्मेत्तत्त्वज्ञेत्तस्माधितो लोकद्वयेऽहितम् । शुक्रं तूपस्थितं मोहाक्षं संधार्यं कदाचन ॥ ४४ ॥

विशेषकर उपस्थित शुक्र (वीर्य का रखलन के समीक्षा आनेपर) के रोकने की हानि—पुरुष को चाहिये कि उपर्युक्त वर्जित मैथुनसंबन्धी सभी वातों को त्याग देवे क्योंकि इससे दोनों लोक में उसकी हानि होती है अर्थात् इस लोक में निन्दा, कष्ट और परलोक में अधर्म । उसमें भी उपस्थित वीर्य को शिशन में कभी धारण नहीं करना चाहिये ॥ ४४ ॥

स्नानानुलेपनहिमानिलखण्डस्वाद्यशीतास्तुदुर्धरसयुषसुराप्रसन्धाः ।

० सेवेत चानुशयनं विरतौ रतस्य तस्यैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम ॥ ४५ ॥

रति के अन्त में हितकर द्रव्य—जो पुरुष मैथुन के पश्चात् स्नान, लैप, शीतल वायु, शक्तरा मिश्रित खादी पदार्थ, शीतल जल, दूध, रस, वूष, मदिरा और निद्रा आदि का सेवन करता है उसके शरीर में जो हास होता है वह तुरत शान्त हो शरीर में पुनः बल का संचार हो जाता है ॥

स्नानं सशकर्तं द्वारं अचयमैच्छवसंस्कृतम् । वातो मांसरसः रसप्त्वो व्यवायान्ते हिता अमी ॥

और भी—मैथुन के अन्त में स्नान, शक्तरा मिला दूध, शक्तरा मिला मोज्व पदार्थ, वायु का सेवन, मांस का रस और निद्रा का सेवन करता है उसके लिये यह सब कर्म हितकर कहा गया है । अर्थात् रति के अन्त में इन कर्मों को करना चाहिये ॥ ४६ ॥

अतिव्यवायाज्ञायन्ते रोगाश्राद्देष्काद्यः । शूलकासज्वरस्थासकाश्यं पाण्डव्याभ्युद्याः ॥

अत्यन्त मैथुन से हानि—अत्यन्त मैथुन करने से आक्षेपक आदि रोग उत्पन्न होते हैं और शूल, कास, जवर, श्वास, दुर्बलता, पाण्डु रोग और क्षय रोग होते हैं ॥ ४७ ॥

रात्रौ जागरणं रुहं कफद्वयविवार्तिंजित् । निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्यमतन्द्रितम् ॥

पुष्टित्तिंवलोक्याद्यहिक्षिं करोति च ॥ ४८ ॥

रात में जागने और सोने का फल—रात में जागने से रुक्षता होती है, कफ दोष और विष की पीड़ा का नाश होता है रात में सुखपूर्वक समय पर सोने से धातुओं में समानता, तन्द्रा नहीं होना, शरीर की पुष्टि, वर्ण, बल, उत्साह और अश्वी की प्रवलता होती है ॥ ४८ ॥

यो लेडि शयनस्तमये मधुमिश्रं व्रांजपूदलचूर्णम् ।

० स ब्रीडाकरवातप्रसरनिरोधः सुखं स्वपिति ॥ ४९ ॥

सुखपूर्वक सोने की ओषधियाँ—जो मनुष्य सोने के समय में विजौरे चीबू के पत्ते के चूर्ण को मधु मिला कर चाटता है उसे लज्जा करने वाली वात (अथोवायु-पादं) का अवरोध होता है वह सुखपूर्वक सोता है ॥ ४९ ॥

सवितुस्तुदयकाले प्रसूतीः सलिलस्य पिवेदद्यौ । रोगजरापरिमुक्तो जीवेद्वृत्तसरक्षतं साप्रम् ॥

प्रातः सूर्योदय के पूर्व जल पीने का गुण—सूर्य के उदय होने के समय के निकट, समय में जो मनुष्य आठ पसर (प्रसृति) जल पीता है वह रोग और बुदापा से मुक्त होकर सौ वर्ष से अधिक जीवित रहता है ॥ ५० ॥

अनुदितेऽनुदितेऽविमण्डले पिवति तोयमनुजिक्षतमून्नविट् ।

० अनुलिपित्तकफानलदोषाहच्छ्रुतसमा रसते तरुणीशतम् ॥ ५१ ॥

और भी—सूर्य के उगने के समय से पूर्व प्रतिदिन जो मनुष्य मल-सूत्र के त्याग प्रथम जल,

पीता है वह वात-पित्त-कफ और अश्वी दोष से मुक्त होकर सौ शुवतियों के साथ सम्मोग करने की शक्ति बाल्य होता है ॥ ५१ ॥

विगतघननिनिश्चये प्रात्तस्थाय नित्यं पिवति खलु नरो यो ग्राणरध्रेण वारि ।

० स भवति मतिपूर्णश्चमुषा तार्थतुश्यो वलिपित्तिविहीनः सर्वरोगविमुक्तः ॥ ५२ ॥

प्रातः नासिका से जल पीने का गुण—रात्रि के अन्त में अन्धकार के भिट जाने पर अर्थात् प्रातःकाल उठ कर नित्य जो मनुष्य नासिका के छिंद्रों द्वारा जल पीता है वह बुद्धि से परिपूर्ण, नेत्र की ऊद्योगति में गशड़ के समान, बली-पलित से विहीन और सब रोगों से मुक्त होता है ॥ ५२ ॥

अर्जःशोथग्रहण्यो ज्वरज्जरजराकोषमेदोविकारा-

० मृत्राधातात्रपित्तश्रवणगलविहारःश्रोणिशूलाविरोगाः ।

ये चान्धे वातपित्तशतजकफकृता व्याधयः सनित जन्मो-

० स्तास्तानभ्यासयोगादपहरति पथः पीतमन्ते निशायाः ॥ ५३ ॥

और भी प्रातः जलपान के गुण—प्रातःकाल जलपान करने से अर्श, शोथ, व्याहॄणी, जवर, उदर रोग, जरा, कोषगत रोग, मेदरोग, मृत्राधात, रक्तपित्त एवम् कान, गला, सिर, कटिशूल, नेत्र के रोग तथा जो अन्यान्य वात, पित्त, क्षतज (रक्त) और कफ आदि के सम्बन्ध की व्याधियाँ हैं उन सबों को अभ्यास के योग से रात्रि के अन्त में पीआ बुधा जल हरण करता है ॥ ५३ ॥

स्नेहपीते चतेऽशुद्धावाद्यमाने स्तिमितोदरे । हिक्काया कक्षवातोत्थे व्याधौ तद्वारि वारयेत् ॥

नासिका से जल पीने के अयोग्य पुरुष—जो मनुष्य स्नेहपान किया हो या जिसका क्षत (ब्रण) अशुद्ध हो गया हो अथवा क्षत की रोगी हो या वमन वा विरेचन से शरीर शुद्ध कर रहा हो या जिसे आधमान, मन्दायि, हिक्का और कफ तथा वात का रोग हो ज्ये उक्त नासिका जलपान को त्याग देना चाहिये अर्थात् उपर्युक्त व्यक्तियों को नासिका से जलपान नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥

नरो दिनादिचर्याभियो न चर्तेत नित्यशः । स एव लभते रोगं ततः पद्यं समाचरेत् ॥ ५५ ॥

हिति दिनरात्रिचर्या ।

दिनादिचर्या नहीं करने के दोष—जो मनुष्य दिनचर्या आदियों को नित्य नहीं करते हैं वे रोग को प्राप्त होते हैं अर्थात् नियम जो कहे गये हैं उनके विरुद्ध चलने से रोग होता है । इस लिये पथ्य (नियम) से रहना चाहिये ॥ ५५ ॥

अथ ऋतुचर्योमाह—

शिशिरः पुष्पसमयो झीष्मो वर्षा शशद्विमः । माधादिमासयुम्भे स्युकृतवः षट् क्रमादभी ॥

० द्रृतुओं के नाम—शिशिर, वसन्त, झीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त ये द्रृतुओं मास से दो-दो महीने के एक-एक ऋतु क्रम से होती हैं अर्थात् माघ-फालगुन शिशिर, चैत्र-वैशाख वसन्त, जैष-आषाढ़ झीष्म, सावन-भाद्रो वर्षा, कुआर-कार्तिक शरद्, अग्निन-पूस हेमन्त इस प्रकार क्रम से द्रृतुओं होती हैं ॥ १ ॥

उत्तरायणमत्राऽद्यौः परैः स्थाद्विष्णायायनम् । आद्यमुण्ठं बलहरं ततोऽन्यद्वलदं हिमम् ॥ ३ ॥

उत्तरायण और दक्षिणायन का लक्षण—इन द्रृतुओं में आदि की जो तीन (शिशिर, वसन्त, झीष्म) द्रृतुओं हैं इनसे सूर्य का उत्तरायण होता है अर्थात् इन द्रृतुओं में सूर्य उत्तर की ओर होकर उगते हैं इसी की 'उत्तरायण' कहते हैं और दूसरी जो तीन (वर्षा, शरद्, हेमन्त) द्रृतुओं हैं इनसे सूर्य का 'दक्षिणायन' होता है अर्थात् इन द्रृतुओं में सूर्य दक्षिण की ओर होकर

उगते हैं इसको 'दक्षिणायन' कहते हैं। इसमें जो पहले उत्तरायण कहा गया है वह उष्ण और बल का हरण करने वाला होता है और दूसरा जो दक्षिणायन कहा जाता है वह बलदायक और शीतल होता है ॥ २ ॥

शिशिरः शीतलोऽतीव रुक्षो वाताम्रिवर्धनः । वसन्तो मधुरः खिरधः श्लेष्मवृद्धिकरश्च सः ॥
ऋतुओं के उष्ण-दोष—शिशिर ऋतु-अव्यन्त शीतल, रुक्ष, वात और अंथि को बढ़ाने वाला है। वसन्त ऋतु-मधुर, खिरध और कफ की वृद्धि करने वाला है ॥ ३ ॥

ग्रीष्मो रुक्षोऽतिकटुकः पित्तकृत्कफनाशनः । वर्षा शीतविद्वाहिन्यो वह्निमान्द्यानिलप्रदाः ॥
ग्रीष्म ऋतु—अव्यन्त रुक्ष, कठ, पित्तकारक और कफनाशक है। वर्षा ऋतु शीतल, दाहो-त्पादक, अग्निमान्द्य और वायुकारक है ॥ ४ ॥

शरदः ऋतु—शरदः शीतलः खिरधः स्वाहुर्जंठवह्निकृतः ॥५॥
शरद ऋतु—उष्ण, पित्तकारक और मनुष्यों को मध्यम बल देने वाली है। हेमन्त ऋतु—शीतल, खिरध, स्वादु और जठराग्निवर्धक है ॥ ५ ॥

चयप्रकोपप्रशासा वाचोग्रीष्मादिषु त्रिषु । वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥ ६ ॥
किस ऋतु में किस दोष का संचय, प्रकोप और शमन होता है, और उसका कारण—वायु के संचय, कोप और शमन का समय और हेतु—ग्रीष्म से लेकर तीन ऋतुओं तक में वायु का क्रम से संचय, प्रकोप और शमन होता है अर्थात् ग्रीष्म में वायु का संचय, वर्षा में प्रकोप और शरद में शमन होता है। पित्त के संचय, प्रकोप और शमन का समय और हेतु—वर्षा से लेकर हेमन्त तक में पित्त का क्रम से संचय, प्रकोप और शमन होता है अर्थात् वर्षा में पित्त का संचय, शरद में प्रकोप और हेमन्त में शमन होता है। कफ के संचय, प्रकोप और शमन का समय हेतु—शिशिर ऋतु से लेकर ग्रीष्म ऋतु तक में कफ का क्रम से संचय, प्रकोप और शमन होता है अर्थात् शिशिर ऋतु में कफ का संचय, वसन्त में प्रकोप और ग्रीष्म ऋतु में शमन होता है ॥ ६ ॥

चयकोपशमान्दोषा विहाराहारसेवनैः । समान्यैर्नित्यकालेऽपि विषरीतैर्विपर्ययम् ॥ ७ ॥
असमय में भी दोषों के संचय, प्रकोप और शमन के कारण—वातादिक दोषों का तुचित आहार-विहार से समय नहीं रहने पर भी संचय, कोप और शमन होता है और आहार-विहार, की विपरीतता से समय रहने पर भी संचय, कोप और शमन नहीं होता अर्थात् समय नहीं होने पर (शीत ऋतु में) भी आहार-विहार के कारण वायु दुष्प्रिय हो सकती है इसी प्रकार वर्षा में भी उचित आहार-विहार के कारण कुपित हो सकता है, ऐसा और दोषों के लिए भी समझना चाहिये ॥ ७ ॥

स्वस्थानस्थस्य दोषस्य वृद्धिः स्यात् स्तब्धकोष्टता ।

पीतावभासता वह्निमन्दता चाङ्गगौरवम् ॥ ८ ॥

आलस्यं चयहेतौ तु द्वेषश्च चयलक्षणम् ।

सञ्जयेऽपहता दोषा लभन्ते नोत्तरा गतिः । ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति वलवत्तराः ॥ ९ ॥

दोषों के संचय होने के लक्षण—अपने स्थान पर स्थित दोष की वृद्धि, कोष्ठ में स्तव्यता, शरीर में पीलापन, अंथि की मन्त्रता, शरीर का भारीपन, आलस्य और दोष के संचित होने के कारण से आहारादिक में अस्थि होना ये सब दोष के संचय होने के लक्षण हैं। संचय होने की ही अवस्था में यदि दोषों के नाश होने की क्रिया (औषधादि) कर दिया जावे तो संचय के बाद की अवस्था अर्थात् प्रकोप नहीं होने पाता ऐसा नहीं करने पर अर्थात् संचय के समय ही उसके

शान्ति का यह नहीं करने पर दोष संचय के बाद की गति अर्थात् प्रकोप को प्राप्त होने पर अत्यन्त बलवान् हो जाते हैं ॥ ८-९ ॥

अथ वर्षासु हिताहितमाह—

वर्षासु प्रवक्तो वायुस्तस्मान्मषादयस्थायः । रसाः सेव्या विशेषण पवनस्योपशान्तये ॥ १ ॥

वर्षा ऋतु की हिताहितविधि—हितकरविधि—वर्षा ऋतु में वायु की प्रवलता होती है, इसलिये मधुरादिक तीन (मधुर-अम्ल, लवण) रसों से युक्त पदार्थों का सेवन विशेष रूप से वायु की शान्ति के लिए करनी चाहिये ॥ १ ॥

भवेद्वर्षासु वपुषि छिक्षत्वं वद्विशेषतः । तत्कलेदशान्तये सेव्या अपि कट्वादथस्थायः ॥ २ ॥

वर्षा ऋतु में विशेष कर शरीर आदर्द होता है इसलिये उस आद्रता की शान्ति के लिये कट्वादिक तीन (कठ, तिक्त, कघाय) रसों से युक्त पदार्थों का भी सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

स्वेदनं मर्दनं सेव्यं दध्युषाणं जाङ्गलामिषम् ।

गोधूमाः शालयो मासा जलं कौपं दिवश्चयुतम् ॥ ३ ॥

वर्षा ऋतु में स्वेदनविधि, मर्दन, उष्ण दही, जाङ्गल जीवों का मास, गेहूं, शालिघान का चावल, कूर्यों का जल और आकाश से गिरा (वर्षा का युक्तिपूर्वक लिया) जल, यह सब सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

न भजेत्पूर्वपवनं दृष्टि घर्म हिमं श्रमम् । नदीनीरं दिवास्वापं रुचं नियं च मैथुनम् ॥ ४ ॥

अहितकर विधि—वर्षा ऋतु में पूर्व पवन (उरवैया वायु), वर्षा में रोगना, धाम में रहना, ओस में रहना, परिश्रम, नदी का जल, दिन में सोना, रुक्ष पदार्थों का सेवन और नित्य मैथुन करना यह सब नहीं सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ शरदि हिताहितमाह—

सर्पिः स्वादुकषायतिक्करसो यद्धीतलं यज्ञघु

स्तीरं स्वरूपमितैश्वदः पटुरसः स्पृशः पलं जाङ्गलम् ।

गोधूमा यवमुदशालिसहिता नादेयमंशूदकं

चन्द्रश्चन्द्रनभिन्दुरादिरजनी मासयं पटो निर्मलः ॥ ५ ॥

शरद ऋतु की हिताहित विधि—शरद ऋतु में धृत, मधुर, कघाय, तिक्त रस सुक्त पदार्थ, जो पदार्थ शीतल या लघु हो वह, दूध, स्वच्छ शकर, युड, थोड़ी मासा में नियम युक्त पदार्थ, जाङ्गल जीवों का मास, गेहूं, यव, मूंग, शालिघान का चावल, नदी का जल तथा 'अंशूदक' (दिन में धूप में और रात्रि में ओस में रखा हुआ) जल, कपूर, चन्दन, चन्द्रमा की किरणों से युक्त रात्रि का प्रथम प्रहर का सेवन, युपादिकों की माला और स्वच्छ वस्तु का धारण करना ये सब हित-कर होते हैं ॥ ५ ॥

विश्रामः सुहृदां गणेषु मधुरा वाचः सरङ्गीडनं

पित्तानां च विरेचनं वलवतो युक्तं सिरामोक्षणम् ।

एतान्यत्र घनावसानसमये पश्यानि सुञ्चेदधि

ध्यायामालकटूष्टणतीचणदिवसम्बन्धं हिमं चाऽस्तपम् ॥ ६ ॥

और भी—गिरों के मध्य बैठकर विश्राम करना, तथा मधुर वार्तालाप करना, तालाब में जलकीडा करना, पित्त का विरेचन और जो बलवान् पुरुष हों उनको रक्तमोक्षण करना यह सब वर्षा के अन्त अर्थात् शरद ऋतु में पथ्य (हितकर) हैं। और दही, व्यायाम, अम्ल-कटु-उष्ण-

तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन, दिन में सोना, ओस तथा धाम का सेवन करना छोड़ देवे अर्थात् शरद क्रतु में ये अहितकर हैं ॥ २ ॥

दिवा रविकरैर्ज्ञं निभिः शीतकरांशुभिः । लेयमंशूदकं नाम स्त्रियं दोषत्रयापहम् ॥ ३ ॥

अंशूदक के लक्षण—जो जल दिन भर सूर्य की किरणों में रहे, रात भर चन्द्रमा की किरणों में रहे अर्थात् दिन भर धाम में और रात भर चाँदनी एवम् ओस में रखा जावे उसे 'अंशूदक' कहते हैं । यह अंशूदक स्त्रिय और तीनों दोषों को इरण करने वाला है ॥ ३ ॥

इष्टवः शालयो मुद्राः सरोऽभ्यः क्षयितं पथः । शारथेतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्द्रुदम्भः ॥ ४ ॥

और भी शरद क्रतु के पथ—ईख, शालिधान्य का चावल, मूंग, तालाब का जल, औटाया हुआ जल और प्रदोष अर्थात् सायंकाल में चन्द्रमा की किरणों का सेवन शरद क्रतु में ये सब पथ (हितकर) हैं ॥ ४ ॥

अथ हेमन्ते हिताहितमाह—

प्रातमौजनमम्लमिष्टलवयानभ्यङ्गर्घमश्मात्
गोधूमैषवशालिमाषपिशितं पिष्टं नवान्नं तिलान् ।
कस्तूरीं वरकुद्धुमागुरुयुतमुण्णाम्बु शौचेऽनलं
स्त्रियं खीस्वसुखं गुरुणवसनं सेवेत हेमन्तके ॥ ५ ॥

हेमन्त क्रतु की हिताहितकर विधि—हेमन्त क्रतु में भोजन करना, अम्ल, मधुर, नमकीन रस युक्त पदार्थ का भोजन, अभ्यङ्ग (तैलादि की मालिस), धाम में बैठना, परिश्रम करना, गेहूं, ईख के रस के बने पदार्थ (गुडादि), शालिधान्य का चावल, उरद, मांस, पीठी के पदार्थ, नया अद्य, तिल, कस्तूरी, उत्तम कैशर, अगर, गरम जल से स्नानादि, आग तापना, स्त्रियों में आत्मसुख (सम्भोग) करना, गम्भीर एवम् उष्ण वस्त्र इन सबों का सेवन करना हितकर है । अर्थात् हेमन्त क्रतु में इनका सेवन करना चाहिए ॥ ५ ॥

अथ शिशिरे हिताहितमाह—

शिशिरे शीतमधिकं रौचयं चाऽद्यानकालज्ञम् । विशेषतस्तु तत्रैव हेमन्तस्य मतो विधिः ॥
शिशिर क्रतु की हितकर विधि—शिशिर क्रतु में शीत अधिक होती है और सूर्य के उत्तरायण होने से रस का शोषण होता है अतः रुक्षता होती है । अतः इस क्रतु में विशेष कर हेमन्त क्रतु के तरह ही व्यवहार करना चाहिए ॥ ६ ॥

अथ वसन्ते हिताहितमाह—

वानित नस्यमथाभयां त्रु मधुना व्यायाममुद्धर्तनं
संसेवेत मध्ये कफनकवलं मांसं तथा जाङ्गकम् ।
गोधूमान्वहुभेदशालिसितान्मुद्रान्यवान्विकाँ-
स्त्वलेपं चन्दनकुद्धुमागुरुकृतं रुक्षं कटूषणं लघु ॥ ७ ॥

वसन्त क्रतु की हिताहित विधि—हितकर—वसन्त क्रतु में वमन किया, नस्य किया, मधु के साथ हरड़ खाना, व्यायाम करना, उबडन लगाना, कफनाशक औषधों का कवल धारण करना (छुला करना), जाङ्गल जीवों का मांस खाना, गेहूं, अनेक प्रकार के शालिधान्य के चावलों का सेवन करना (खाना), मूंग, यव और साठी का चावल खाना, चन्दन, केसर और अगर का लेप लगाना, रुक्ष, कदु, उष्ण और लघु पदार्थों का सेवन करना हितकर है अर्थात् वसन्त में इनका सेवन करना चाहिए ॥ ७ ॥

शीतोष्णवारिण्याः ।

मिष्टमग्नं दधि स्त्रियं दिवास्त्रव्यन्तं च दुर्जरम् । अवश्ययमपि प्राङ्गो वसन्ते परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥

अहितकर—वसन्त क्रतु में मधुर, अम्ल, दधि और स्त्रिय पदार्थ, दिन में सोना, दुर्जर (देर में पचने वाले) पदार्थ का सेवन, ओस में बैठना बुद्धिमान मनुष्य त्याग देवे अर्थात् ये सब अहितकर हैं ॥ ८ ॥

अथ ग्रीष्मे हिताहितमाह—

स्वादु स्त्रियधिमें लघु द्रवमयं द्रव्यं रसाला सितां
सक्तुचीरसुजाङ्गलानि सितया शालि रसं मांसजम् ।
शीतांशुं स्वपनं दिवा मलयजं शीतं पथः पानकं
सेवेतोष्णिने त्यजेत् कटुकसाराम्लघर्मधमान् ॥ ९ ॥

ग्रीष्म क्रतु में हिताहित विधि—ग्रीष्म क्रतु में मधुर रससुक्त, स्त्रिय, शीतल, लघु, द्रवयुक्त (पतले) पदार्थ, रसाला (सिखरन), चीनी, सत्तू तथा दूध, जाङ्गल जीवों का मांस, चीनी मिथित शालिधान्य का चावल, मांस का रस (सुखवा) आदि का भोजन, चन्द्रमा की चाँदनी में रहना, दिन में सोना, चन्दन लगाना, शीतल जल पीना, पानक (शर्वत) पीना, इन सब कार्यों को करना चाहिये अर्थात् ये हितकर हैं । और ग्रीष्म क्रतु में कदु, क्षार, अम्ल रस युक्त पदार्थ, धाम तथा परिश्रम इन सबों को त्याग देना चाहिये अर्थात् ये अहितकर हैं ॥ ९ ॥

क्रतुचर्येषु य एतैस्तु विधिभिर्वर्तते नरः । दोषान्तुकृतान्नैव लभते स कदाचन ॥ १० ॥

क्रतुचर्याये जो कही गयी है उनके तर्तने के कल—इन क्रतुओं की विधि को जो मनुष्य उचित रूप से व्यवहार में लाता है वह क्रतु के दौष को कभी नहीं प्राप्त होता अर्थात् जो पुरुष क्रतुचर्यों का विधिपूर्वक पालन करता है वह सर्वदा आरोग्य रहता है ॥ १० ॥

तसं तसांशुकिरणः श्रीतं शीतांशुरशिमिभिः । समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योद्यनिविषम् ॥ ११ ॥
शुचिं हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम् । नाभिष्यन्दिन वा रुक्षं पानदिष्वयूतोपमम् ॥

हंसोदक की विधि और गुण—जो जल सूर्य की किरणों से तप्त हो और चन्द्रमा की किरणों से शीतल हो, दिन-रात ऐसे पड़ा रहे तथा जो अंगस्त्रोदय के बाद का निर्विष पवित्र जल हो । वह हंसोदक कहा जाता है, दोनों जल निर्मल, विकारों का नाश करने वाला, न अभिष्यष्टदी, न रुक्ष, मलनिःसारक और पाने में असृत के समान है ॥ ११-४ ॥

अथ शातजलगुणाः ।—

पानीयं शीतलं रुक्षं हन्ति पित्तविषयमान् । द्वाहाजीर्णश्मर्छर्विमोहमूर्च्छार्मदात्ययान् ॥ १२ ॥
मूर्च्छापित्तोद्धाहेषु विषे रक्ते मदात्यये ।

अमङ्गुमातिसारेषु मार्गोथ्यवमयो तथा । ऊर्ध्वर्गे रक्तपित्ते च शीतमभ्यः प्रशास्यते ॥ १३ ॥

शीतल जल के गुण—शीतले जल रुक्ष, पित्त, विष और अम का नाशक, दाह, अजीर्ण, श्वस, वमन, मोह, मूर्च्छा, मदात्यय, अम, आदि का नाशक होता है अत एव मूर्च्छा, पित्त, अम्भा, दाह विष, रक्त, मदात्यय, अम, क्लान्ति, अतीसार, रास्ता चलने से उत्पन्न वमन की पीड़ी और ऊर्ध्वर्ग रक्तपित्त आदि रोगों में हितकर है ॥ १३-२ ॥

अथ उष्णवारिण्याः ।—

यत्कवाच्यमानं निर्वेगं निष्ठेन निर्मलं भवेत् । अवश्यविषाणं भवति तदुष्णोदकमुपयते ॥ १४ ॥

उष्ण जल के लक्षण और गुण—जो औटाया जाता हुआ जल आग पर वेगरहित, निष्ठेन और निर्मल हो जाता है और अर्थात् वश विष हो जाता है उसे 'उष्णोदक' कहते हैं ॥ १४ ॥

कफमेदोनिलामध्यं दीपनं वस्तिंशोधनम् । कासशासउवरहरं पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥ २ ॥
उष्णोदकं पीने से कफ, मेद, वायु और आमदोष का नाशक, दीपन, वस्तिशोधक, कास-
श्वास और ज्वर को इरने वाला और सदा पथ्य है ॥ २ ॥

तस्म पाथः पादभागेन हीनं पथ्यं प्रोक्तं वातजातामयम् ।
अर्धांश्चोनं नाशयेद्वातपित्तं पादप्रायं तस्मुं दोषव्यवहरम् ॥ ३ ॥

जो जल आग पर औटासे में चतुर्थीश ही जलने पर तीन भाग बाकी रहे तभी उतार लिया
जाय, वह पथ्य और वात से जायमान रोगों का नाशक है। और जो जल आवे अंश में जल
गया हो वह वात और पित्त का नाशक होता है। जो जल तीन भाग जल जावे अर्थात् चतुर्थीश
ही बचे वह त्रिदोषनाशक है ॥ ३ ॥

तस्यायः पिण्डसंसिकं लोकनिर्वापितं जलम् । सर्वं दोषहरं पथ्यं सदा नैरुद्यकारकम् ॥ ४ ॥
जिस जल में डेले (ईंट के टुकड़े) को आग में गर्म कर तुशाया गया हो वह जल सब दोषों
को हरने वाला, पथ्य और सदा आरोग्य प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥

उष्णोदकं श्रेष्ठतमं वदन्ति विश्वाशवानीसहितं क्रमेण ।
कफे च वाते न च पित्तरोगे सर्वेषु रोगेषु न शीतलामृषु ॥ ५ ॥

सौठ और जवाइन दिया जो उष्णोदक (अर्धवशिष्ट) है वह क्रम से कफ और वात का
नाश करने वाला है अर्थात् सौठ मिश्रित कफ को और जवाइन मिश्रित वात को हरता है, किन्तु
रक्तपित्त में उष्ण जल नहीं देना चाहिये और सभी रोगों में शीतल जल भी नहीं देना चाहिये ॥

अथ ऋतुविशेषे जलकथनियमः—

शारदं चार्धं पादोनं पादहीनं तु है मतम् ।

शिशिरे च वसन्ते च ग्रीष्मे चार्धांवशेषितम् । विषरीते क्रतृतौ तद्वाष्पाषु व्यष्ट्यावशेषितम् ॥ १ ॥

ऋतु विशेष से उष्णोदक के नियम—शारद ऋतु में अर्धपाद हीन ही (आठवां भाग) उष्ण
जल अर्थात् थोड़ा गर्म पीना चाहिये हेमन्त क्रतु में पादहीन अर्थात् चौथाई भाग जल हुआ
उष्णोदक पीना चाहिये। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म क्रतु में अर्धांवशेष उष्ण जल पीना चाहिये।
विषरीते क्रतु उपरिस्थित होने पर तथा प्रावृत् (वर्षा) में अष्टावशेष (७ भाग जल जाने पर आठवां
भाग अवशिष्ट) रहने पर उष्ण जल पीना चाहिये ॥ १ ॥

अथ रात्रिसेवितोष्णोदकगुणाः—

भिन्नतिः इकेभ्यसंघातं माहृतं चापकर्त्ति । अजीर्ण अरथत्याशु पीतमुष्णोदकं निष्ठा ॥ १ ॥

रात में पीये दुए उष्णोदक के गुण—रात में उष्णोदक पीने से कफ के समूहों का नाश होता
है, वायु का अपकर्षण होता है, अजीर्ण शीघ्र जीर्ण होता है ॥ १ ॥

उष्णोदकनियेषः—

दिवा शतं तु थपोयं रात्रौ तदगुहतां ब्रजेत् । रात्रौ शतं दिवा तद्वद् गुरुष्वमविगच्छति ॥ १ ॥
उष्णोदक नियेष—दिन का औटाया हुआ जल रात्रि में गुरु हो जाता है और रात का औटाया
हुआ उसी प्रकार प्रातः तक गुरु हो जाता है अतः उसे नहीं पीना चाहिये। अर्थात् दिन का
औटाया रात में और रात का औटाया दिन में नहीं पीना चाहिये ॥ १ ॥

शीतोदकनियेषः—

पार्श्वशुले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे ।

आस्माने स्तिमिते कोषे सद्याशुद्धे नवज्वरे । हिङ्कार्या स्वेहपीते च शीतामृषु परिवर्जयेत् ॥ १ ॥

शीतोदक नियेष—पार्श्वशुल, प्रतिश्याय, वातरोग, गलग्रह, आस्मान, स्तव्यता आदि रोग में,
कोष शुद्धि करने पर, नवे ज्वर में, हिङ्का में और स्वेहपान करने पर शीतल जल छोड़ देना
चाहिये ॥ १ ॥

उदकमन्दाचरणम्—

अरोग्यके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ छ्ये ।

मन्दामावृद्धरे कोषे उवरे नेत्रामये तथा । छ्ये च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ १ ॥

कम जल पीने के वचन—अरुचि, प्रतिश्याय, प्रसेक (थूक गिरना), शोथ, क्षय, मन्दामि,
उदर, कोष (गतरोग), ज्वर, नेत्ररोग, ब्रण और मधुमेह में पानी कम ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ शृतशीतगुणाः—

गुशमाक्षोंग्रहणीक्षयेषु जठरे मन्दानलाध्मानके

शोके पाण्डुगलग्रहे व्रणगादे मेहे च नेत्रामये ।

वाताहृष्यतिसारके कफयुते कोषे प्रतिश्यायके-

उष्णं वाहि सुशीतलं श्रद्धहिमं स्ववृपं प्रदेयं जलम् ॥ १ ॥

औटाकर ठंडा किये पानी के गुण—युख्म, अर्श, ग्रहणी, क्षय, जठर, मन्दामि, आस्मान,
शोथ, पाण्डु, गलग्रह, ब्रणरोग, प्रमेह, नेत्ररोग, वातरोग, अरुचि, अतिसार, कफ, कोष के रोग
और प्रतिश्याय के रोग में औटा कर ठंडा किया (शृत शीत) और थोड़ा जल देना चाहिये ॥ १ ॥

उदकपाकः—

आमं जलं जीर्णति याममात्रासद्धर्मामात्राच्छुतशीतलं च ।

सद्धर्मामात्रात् तु शृतं कहुण्ठं प्रायः प्रपाके श्रय एव कालाः ॥ १ ॥

जलपाकविधि के काल—पीया हुआ कच्छा जल एक पहर में जीर्ण होता है उससे आपे समय
(अर्थात्) में शृतशीत जल जीर्ण होता है और उससे आपे समय (एक पहर के चतुर्थीश) में
औटाया हुआ थोड़ा गर्म जल जीर्ण हो जाता है। प्रायः करके जल के पाक होने के तीन काल
(समय) है ॥ १ ॥

जलाधिक्यपरिणामः—

जलाधिक्याम्मनुष्याणामामवृद्धिः प्रजायते । आमवृद्धा तु मन्दामिर्मन्दामी चाप्यजीर्णता ॥
अजीर्णेन उवरोपतिष्ठर्वाद्वे धातुनाशनम् । धातुनाशस्वरोगा जायन्ते चोत्तरोत्तरम् ॥ २ ॥

जल अधिक पीने के फल—मनुष्यों को अधिक जल पीने से आम दोष की वृद्धि होती है,
आम वृद्धि होने से मन्दामि, मन्दामि होने से अजीर्ण, अजीर्ण से ज्वर की उत्पत्ति, ज्वर से
रसादि धातुओं का नाश और धातु के नाश होने से सब रोग होते हैं इस प्रकार अधिक जल पीने
से उत्तरोत्तर सब रोग होते हैं ॥ १-२ ॥

शक्तरासहितं नीरं कफकृपवसापहम् । सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं दोषनाशनम् ॥ २ ॥

सगुडं मूत्रकृद्धृष्टं पित्तश्लेषकरं भवेत् ।

शकर, चीनी, मिश्री, और गुड़ के रस का गुण—शकर मिला पानी (शकर का रस) कफ-
कारक और वायुनाशक है। चीनी और मिश्री मिला पानी (चीनी और मिश्री का रस) शुक्र-
कारक और दोषनाशक है। गुड़ मिला पानी (गुड़ का रस) मूत्रकृच्छ्रनाशक, पित्त और कफ-
कारक होता है ॥ ३-३२ ॥

नारिकेलोदकगुणः—

स्त्रियं स्वादु हिमं हृदयं दीपनं चरितशोषनम् । शृण्यं पित्तपिपासानने नारिकेलोदकं लघु ॥ १ ॥
इति वारिगुणाः ।

नारियल के जल का गुण—नारियल का जल खिंचन, मधुर, शीतल, हृदय, दीपन, चरित-शोषन, शृण्य (वीर्यवर्धक) और पित्त तथा पिपासा का नाश करने वाला और लघु होता है ॥ १ ॥

अथ दुष्टगुणाः—

दीपानले कृष्णे पुंसि काले वृद्धे रतिप्रिये । मतं हितसमं यस्मात्सद्यः शुक्रकरं पथः ॥ २ ॥

दूध के गुण—जिसकी अभि उद्दीप हो, जो कृश (दुर्वल), बालक या वृद्ध हो और जिसे रति में प्रेम हो, उसके लिये दूध हितकर तथा सद्यःशुक्र को उत्पन्न करने वाला है ॥ २ ॥

जीर्णजवरे मूत्रकूच्छे इक्षपित्ते मदात्यथे । कासे श्वासे प्रश्नसन्ति गव्यं शीरं भिषजवराः ॥ ३ ॥

जीर्णजवर, मूत्रकूच्छ, रक्तपित्त, मदात्यथ, कास, श्वास आदि रोग में गाय के दूध को वैद्यवर श्रेष्ठ कहते हैं अर्थात् इन-इन रोगों में गाय का दूध हितकर है ॥ ३ ॥

गोबीरं मधुरं शीतं गुडं खिंचनं रसायनम् । वृंहणं स्तन्यकृदृशं जीवनं वातपित्तनुद् ॥ ४ ॥

गाय के दूध का गुण—गाय का दूध मधुर, शीतल, गुरु, खिंचन, रसायन, वृंहण, दुर्घोत्पदक, बलकारक, जीवन शक्ति देनेवाला, वात और पित्त का नाशक है ॥ ४ ॥

गव्यं माहिषमाजं च कारभं खेणामाविकम् । ऐमभैक्षणं चेति शीरमध्विधं मतम् ॥ ५ ॥

दूध के भेद—दूध गाय, भैस, बकरी, ऊंट, खी, भेड़ी, हथिनी, गदही और घोड़ी इस प्रकार आठ जीवों को होता है और काम में लिया जाता है ॥ ५ ॥

अथ तत्र वर्णभेदाः ।

कृष्णगव्या वरं शीरं वातपित्तकफप्रणुत् । पीताथा वातपित्तन्द्रं रक्ताथा वातहप्तरम् ॥ १ ॥

गाय के वर्ण के भेद से दूध के गुण—काली रंग की गाय का दूध श्रेष्ठ है और वात-पित्त तथा कफ नाशक है। पीले रङ्ग की गाय का दूध वात और पित्त का नाशक है। लाल रङ्ग की गाय का दूध परम वातनाशक है ॥ १ ॥

विद्रायास्तद्वारुद्यातं शेतायाः श्लेष्मलं गुरु ।

बालवस्त्राविवर्तसानां गवां शीरं त्रिदोषकृत् ॥ २ ॥

अनेक रङ्गों वाली गाय का दूध भी उसी के समान अर्थात् वातनाशक होता है। श्वेत रंग की गाय का दूध कफकारक और गुरु होता है। जिस गाय का वृहत् छोटा बछड़ा हो और जिस का बछड़ा न हो उसका दूध त्रिदोषकारक है ॥ २ ॥

बद्धकथयात्तिदोषमन्तं तर्पणं बद्धकृत्यः । पिण्याकाशानाजातं शीरं गुडं ककावहम् ॥ ३ ॥

निद्रारेतोबद्धस्थौल्यवहिमान्तकरं हिमम् । कृष्णगव्याः पथः फेने द्वाजानां चातिशस्यते ॥

मन्दाप्तीनां कृशानां च विशेषादतिसारिणम् । उत्साहदीपनं बद्धं मधुरं वातनाशनम् ॥ ४ ॥

वकेनी गाय का दूध त्रिदोषनाशक, त्रिसिकारक और बलकारक है। खरी आदि खाने वाली गाय का दूध गुरु, कफकारक, निद्रा, वीर्य, बल, स्थूलता और अभि की मन्दता करनेवाला तथा शीतल है। काली गाय तथा बकरी के दूध के फेन (शांति) का गुण—काली गाय के दूध का फेन अत्यन्त प्रशस्त कहा गया है और मन्दाप्ति, कृश (दुर्वल) और विशेषकर अतिसार वाले के लिये गुणकारक है। और उत्साह देनेवाला, बलकारक, मधुर और वातनाशक है ॥ ३-५ ॥

सद्यो बलकरं तपशीरं दृष्टविलोक्तम् ।

क्षीणे उवरातिसारे च सामे च विषमे उवरे । मन्दाप्ती कफमाश्रित्य पथः फेनः प्रशस्यसे ॥ ५ ॥

मधे हुए दूध के गुण—दूध गर्मकर भयनी से भय कर तत्काल कुछ गर्म रहते पीने से सबैः बलकारक हैं। क्षीणता, उवरातिसार, आमरोग, विषमज्वर, मन्दाप्ति और कफ के आश्रित रोगों में दूध का फेन हितकर है ॥ ६ ॥

अथ माहिषम् ।

माहिषं मधुरं चीरं रिनभ्यं गुण बलप्रदम् । निद्राशुक्रकरं शीतमभिष्यन्त्यग्निमान्त्यकृत् ॥ १ ॥

भैस के दूध का गुण—भैस का दूध मधुर, स्निग्ध, गुरु, बलदायक, निद्रा और शुक्रकारक, शीतल, अभिष्यन्दी और अर्निमान्दी करने वाला है ॥ १ ॥

अथाऽऽज्ञम्—

आजं गव्यगुणं प्राहि विशेषाहीपनं लघु । हन्ति चयाऽतीसारत्रिदोषाच्चभ्रमज्वरान् ॥ १ ॥

अजानामखण्कायस्ताक्तद्वित्तिकनिषेचणात् । नारथम्बुपानादव्यायामात्रिदोषव्यममापयः ॥ २ ॥

बकरी के दूध के गुण—बकरी का दूध गाय के दूध के गुणों में युक्त तथा विशेष कर अर्निदीपक और लघु है, क्षय, अशै, अतीसार, त्रिदोष, रक्त, भ्रम और उवर का नाशक होता है। बकरियों के छोटे शरीर होने से, कट्टु-सिक्क आदि रस युक्त पदार्थों के सेवन करने से, जल कम पीने से और व्यायाम करने (चलने-फिरने) से बकरी का दूध त्रिदोषनाशक होता है ॥ १-२ ॥

अथाऽऽविकम्—

आविकं मधुरं केशं स्त्रियं वातकफप्रणुम् । शुक्र कासेऽनिलोद्भूते केवले चानिले वरम् ॥ ३ ॥

भेड़ी के दूध का गुण—भेड़ी का दूध मधुर, केशों को हितकर, स्त्रिय, वात और कफ का नाशक, गुरु वात से उत्पन्न कास और केवल वात के रोग में श्रेष्ठ (हितकर) होता है ॥ ३ ॥

अथौष्ट्रम्—

औष्ट्रं स्वादु पयो रुचं लवणं लघु दीपनम् । किमिकुष्टकफानाहशोफोदरहरं परम् ॥ ४ ॥

ऊंट के दूध के गुण—ऊंटनी का दूध मधुर, रुक्ष, लवण रसयुक्त, लघु, दीपन, किमि-कुष्ट-कफ-आनाह-शोथ और उदर रोग का नाशक है ॥ ४ ॥

अथैभम्—

इस्तन्या दुर्जं दुर्धं वातश्लेष्मकरं गुरु । मधुरं पित्तनुद्यूत्यं शीतं भ्रमवसा हितम् ॥ ५ ॥

हथिनी के दूध का गुण—हथिनी का दूध दुर्ज, वात और कफ कारक, गुरु, मधुर, पित्त-नाशक, बल के लिये हितकर, शीतल और परिश्रम करने वालों के लिये भी हितकर है ॥ ५ ॥

अथाऽऽवम्—

आश्वसुधां पयो रुचं वल्यं आसानिलापहम् । अम्लं पृष्ठ लघु स्वादु स्वर्यमैकशर्पं तथा ॥ ६ ॥

घोड़ी के दूध का गुण—घोड़ी का दूध उष्ण, रुक्ष, बलकारक, व्यास और वायु नाशक, अम्ल, लवण रस युक्त, लघु और मधुर अर्थात् स्वादिष्ट होता है। इसी प्रकार सभी एक खुर वालों का समझना चाहिए ॥ ६ ॥

अथ गार्दभम्—

जाखावातहरं साम्लं लवणं रुचिदीपिकृत् । कफकासहरं बालरोगसं गार्दभीपयः ॥ ७ ॥

गदही के दूध का गुण—गदही का दूध हाथ-पैर आदि के वात रोग को हरण करने वाला, अम्ल रस युक्त, लवण रस युक्त, रुचिकारक, अशिदीपक एवं कफ, कास, वालों के रोग का नाशक है ॥ ७ ॥

अथ मातुषम्—

नार्था लघु पथः श्रीतं द्वीपनं वातपितजित । चक्षुशूलाभिषातधनं नस्याश्वयोतनयोहितम् ॥
प्रलापमूच्छ्याभ्रमद्वाहयुक्ते तृष्णवित्ते दोषसमूहमूर्तौ ।
पयोऽङ्गनानां पितृतां नराणां प्रागेव जूर्तिः प्रशमं प्रयाति ॥ २ ॥

खो के दूध का गुण—स्त्री का दूध—लघु, शीतल, अभिदीपक, एवं वात पित्त, नेत्रों का शूल और अभिषात का नाशक, नस्य कर्म और आश्वयोतन कर्म के लिए हितकर है, प्रलाप-मूच्छ्याभ्रम दाह और तृष्ण रोग से युक्त, तथा जो मनुष्य दोष-समूहों की मूर्ति हो गया हो अर्थात् जिसे सब दोष हो गये हों, उनके लिए स्त्री के दूध पीने से उक्त दोष तथा ज्वर शान्त हो जाते हैं अर्थात् इन सर्वों में हितकर है ॥ १-२ ॥

स्तन्यं रुद्राष्टसंयुक्तमाहारार्थं प्रयोजयेत् ।

रुद्राष्ट से युक्त दूध का पान करना चाहिये ।

योगसारे—दोषउत्तरेऽतिसारे च शुले च ग्रहणीगदे ॥ ३ ॥

पाण्डुरोगे चये व्याक्षः ज्वोके मन्दाभिकेऽहस्तै ।

प्रसेके च प्रतिशययोः किमिरोगे भगन्दरे । उदावते विसूच्यां च श्वतन्यपानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥
मातुष्यं मधुरं श्वतन्यं कथायात्तुरसंहितम् । नस्याश्वयोतनपथं च जीवनं लघु द्वीपनम् ॥ ५ ॥

योगसार में कथित दूध के गुण—त्रिदोष वाले ज्वर, अतीसार, शूल, ग्रहणी, पाण्डु, क्षय, अर्झ, शीत, मन्दाभिः, अर्थचि, प्रतेक (शूक अधिक आना), प्रतिशयाय, क्रियम, नगान्दर, उदावते और विसूचिका रोग में दुष्प्रापान हितकर कहा गया है । योग सार मत से नारी के दूध का गुण—स्त्री का दूध मधुर, अनुरस में (कुछ) कथाय, हृदय को हितकर, शीतल, नस्य और आश्वयोतन विधि के योग्य, पथ्य, जीवन शक्तिदाता, लघु और अभिदीपक है ॥ ३-५ ॥

अथ धारोणगुणः ।

धारोणं श्वस्यते गर्वं धाराशीतं तु भाहिषम् । श्वतोणमाविकं पथं श्वतशीतमजापयः ॥ १ ॥

धारोणादि दूध के गुण—दूध गाय का धारोण हितकर है, धाराशीत (कुछ देर का दुहा हुआ) मैस का दूध हितकर है, दुधने के बाद गर्व किया हुआ मैड का दूध हितकर है, गर्व कर (औटा कर) शीतल किया हुआ वकरी का दूध हितकर है ॥ १ ॥

पितृतन्यं श्वीरं वातपानं चाऽऽविकं पथः । वातपितृतहरं गर्वं श्रिदोषज्ञमजापयः ॥ २ ॥

और भी दूध के गुण—मैस का दूध पितृताशक, मैड का दूध वातनाशक, गाय का दूध वात-पितृताशक और वकरी का दूध त्रिदोषनाशक है ॥ २ ॥

धारोणं पवनप्रकोपशमनं दुर्गं गवो तुष्टिकृत्

पाण्डुं कामकां निहन्ति तरसा हीणोर्जूरुष्टिकरम् ।

दाह देहगतं कराण्डिग्रनयनउवालो च पितृतांति

कुषाणं कृशतो कृशानुजनितो कृच्छ्रांश्च रोगाखयेत् ॥ ३ ॥

और भी धारोण दूध के गुण—गाय का धारोण दूध पवन (वायु) के प्रकोप को शान्त करने वाला, पुष्टिकारक, पाण्डु-कामला को शीघ्र हरण करने वाला, क्षीण पुरुषों के ओज को बढ़ाने वाला, श्री (शोभा) कारक, शरीर के दाह, कर-पाद-नयन की ज्वाला को इरने वाला, पितृ की अधिकता इरने वाला, दूषित रक्त, कृशता, जठराभिसंबन्धी कृच्छ्र (कठिन) रोगों को जीतने वाला है ॥ ३ ॥

अथापकदुर्घटगुणः ।

आमं चीरमभिष्यन्दिन् गुरु श्लेषमवर्धनम् । तदपथ्य भवेत्सर्वं गद्यमाहिषवर्जितम् ॥ १ ॥

अपक (कच्चा-विना औटाया) दूध का गुण—कच्चा दूध अभिष्यन्दी, गुरु, कफ और आम बढ़ाने वाला और अपथ्य है परन्तु गाय और मैस का छोड़कर अर्थात् गाय-मैस का कच्चा दूध अहितकर नहीं है ॥ १ ॥

अथ कथितदुर्घटगुणः ।

श्रतोणं कफथातधनं श्रतशीतं तु पितृत्तुत् । अर्धोदकं चीरशिष्टमामाश्वुतरं हितम् ॥ १ ॥

ओटे हुए दूध के गुण—साधारणतः औटा हुआ दूध कफ और बात का नाशक है, औटाकर शीतल किया हुआ दूध पितृताशक है । दूध में आधा जल देकर औटा हुआ और दूध शेष रहने पर उतारा हुआ दूध कच्चे दूध से अत्यन्त लघु और हितकर है ॥ १ ॥

अक्षथितं दश घटिकाः कथितं द्विगुणात् ताः पयः पथम् ।

उषसि रसाद्य यावत्तावदुचिकृतपयः प्राश्यम् ॥ २ ॥

विना औटा हुआ दूध दस घड़ी और औटाया हुआ उसके दूना अर्थात् बीस घड़ी तक पथ्य है अर्थात् इतने समय तक का दूध खाया जा सकता है । दूसरे दिन अर्थात् वासी होने पर जब तक उसमें उचित स्वाद रहे और रुचिकर लगे तब तक पोना चाहिये ॥ २ ॥

जीर्णज्वरे किन्तु कफे विलीने स्याद् दुर्घटपानं तु सुधासमानम् ।

तदेव धीतं तस्मादवरे च निहन्ति हालावलवन्मसुष्यम् ॥ ३ ॥

दुर्घटपान के गुणगुण—जीर्ण ज्वर में किन्तु उस ज्वर में कफ नहीं हो तो उसमें दूध का पीना अमृत की तरह है । वही दूध यदि नये ज्वर में पीआ जावे तो वह मनुष्य की विष की तरह मार डालता है ॥ ३ ॥

चतुर्थमागं सलिलं निधाय-यत्वाद्यावर्तितमुत्तमं तत् ।

मध्यमियद्वं बलपुष्टिकारि ओजःप्रदं चीरमतिप्रशस्तम् ॥ ४ ॥

यदि दूध में चौथाई भाग जल मिला वर यलपूर्वक औटाकर सेवन किया जावे तो वह अत्यन्य उत्तम है, सब रोगों का नाशक, बलपुष्टि कारक और ओज को देने वाला अत्यन्त हितकर है ॥ ४ ॥

बल्य बृंदणग्निवृद्धिजननं पूर्वाहुकाले पश्चो

मध्याह्वे बलदायकं रुचिकरं कृच्छ्राशमरीच्छेदम् ।

बालेष्विकरं क्षये बलकर वृद्धस्य रेतःप्रदं

शार्वी चीरमनेकदोषशमनं सेव्यं सदा प्राणिनाम् ॥ ५ ॥

समय विशेष से दूध पीने के गुण—दिन के पूर्व समय अर्थात् प्रातः काल दूध पीने से बलकारक, बृंदण और अग्निवृद्धिकारक होता है । दिन के मध्य भाग में अर्थात् दोपहर को पीने से बलदायक, रुचिकारक, कृच्छ्र (मूत्रकृच्छ्र) और अश्मरी रोग का नाशक है । वय के अनुसार तथा रात्रि में दूध पीने के गुण—बालकों दूध पीने से उसकी अश्वदी है, क्षयवाले को दूध पीने से उसका बढ़ता है, और बृंदे को दूध पीने से उसका शुक्र बनता है । रात्रि में दूध पीने से अनेक प्रकार के दोषों (रोगों) को शान्ति होती है, इसलिये मनुष्यों को नियंत्रण का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

मवउवरे च मन्दाग्नी ह्यामदोषेषु कुष्ठिनाम् । शूलिनां कफदोषेषु कासिनामतिसारिणाम् ॥

पथः पानं न कुर्वीत विशेषाक्रिमिदोषदम् । शक्तरासहितं स्त्रीरं कफकृत्यवनापहम् ॥ ३ ॥

दूध पीने के अयोग्य प्राणी—नये ज्वर वाले को, मन्दाद्यि वाले को, आम दोष के रोगी को, कुष्ठ वाले को, शूलवाले को, कफ दोष वाले को, कास वाले को, अतीसार वाले को और विशेष कर क्रिमिदोष वाले को दूध नहीं पीना चाहिये। दूध कृषि कर्त्तक है अतः क्रमि वाले के लिये विशेष अहित है। शक्तर, चीनी, मिश्री, गुड़ आदि मिश्रित दूध के गुण—शक्तर मिला दूध कफकारक और वायुनाशक होता है ॥ ६-७ ॥

स्थितासितोपलाशुनं शुक्रलं दोषनाशनम् । पशुङ्कं मूत्रकृच्छ्रनं पित्तश्लेषमकरं तथा ॥ ८ ॥

चीनी और मिश्री मिला दूध शुकर्वर्धक और दोषनाशक है। गुड़ मिला दूध मूत्रकृच्छ्रनाशक और पित्त एवम् कर करने वाला है ॥ ८ ॥

स्त्रीरं न भुजीत कदाऽप्यतप्तं तंसं च नैतस्त्रयेन सार्धम् ।

पित्तुन संधानकषायसुद्धोक्तोशातकीकन्दफलादिकेश ॥ ९ ॥

वर्जित क्षीर—दूध कभी बिना गर्भ किया नहीं पीना चाहिये, और गर्भ को भी लवण के साथ नहीं खाना चाहिये और पिट (पिसे हुए) पदार्थ, संधान (आसवारिष्ट) कषाय पदार्थ, मूंग, कोशातकी (तरोई), कन्द फल आदि के साथ दूध नहीं खाना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ क्षीरामित्राणि ।

सहकारफलं चैव योस्तनी माद्विकं घृतम् । नवनीतं शङ्कवेरं पिप्पलीं मरिचानि च ॥ १ ॥
सिता पृथुकसिन्धूपथं पटोलं नागराभ्याः । शीरेण सह शश्यते वर्गेषु मधुरादिषु ॥ २ ॥

दूध के मित्र अर्थात् दूध के साथ खाने योग्य पदार्थ—सहकार फल (आम), गोस्तनी (मुनका), मधु, घृत, मक्खन, आदी, पीपरि, मरिच, चीनी, सेन्धानमकयुक्त पृथुक (चिड़ा), परोरा, सोठ, हर्दा और मधुर वर्ग के सब पदार्थ दूध के साथ खाना हितकर कहा गया है ॥ १-२ ॥

तथा—अद्भुत्वामलकं पथ्यं शक्तरा मधुरेषु च ।

पटोलः शाकवर्गेषु कटुकेष्वाद्रकं भवेत् ।

कवायेषु यवाश्रेष्व लवणेषु च सैन्धवम् ॥ ३ ॥

और भी—अम्ल पदार्थों में आँवला, मधुर पदार्थों में शक्तरा, शाक वर्गों में परोरा, कटुवर्गों में अद्रक, कवायरसयुक्त पदार्थों में यव और लवणरसों में सेन्धानमक दूध के साथ पथ्य अर्थात् हितकरं है ॥ ३ ॥

अथ क्षीरामित्राणि ।

मस्य मांसपृष्ठमुदगमूलकैः कुष्ठमावहितं सेवितं पयः ।

शाकजाग्रवसुरादिमेवितं मारयत्यवृथमाषु सर्पवन् ॥ १ ॥

दूध के अमिन्द्र अर्थात् दूध के साथ खाने के अयोग्य पदार्थ दूध के साथ मछली, मांस, गुड़, मूंग और मूली के सेवन करने से अर्थात् खाने से कुष्ठ होता है। शक्तर, जामुन और सुरा आदि को दूध के साथ सेवन करने से सर्प के काढने से जिस प्रकार आदमी मर जाता है उसी प्रकार इससे भी मर जाता है ॥ १ ॥

तथा—नैकध्यं पथ्यमाइशन्नायासर्वं द्वीपां द्रवाद्रवम् ।

मूलकाद्या हरितकासत्तेलायांयकसर्वाः ॥ २ ॥

कपितर्थं जग्मु जग्मीत् पनमं मातुलिङ्गकर्म । वांशं कीरीं बद्रं कदलीं चाम्लदाकिमम् ॥ ३ ॥
फलर्मद्विवर्धं स्नान्यसद्वृद्धवक्लान्यपि । शीरे विशुद्धान्यैकध्यं सह वै भुज्यते यदि ।

बाधिर्यमःन्ध्यं वैवर्यं सूक्तवं चाथ मारणम् ॥ ४ ॥

और भी—दूध के साथ निम्न लिखित पदार्थों को नहीं खाना चाहिये, सब प्रकार के उण पदार्थ वे द्रव हैं अथवा अद्रव हैं, नहीं खाना चाहिये एवं मूली आदि हरे शाक, तेल, खरी, सरसों, कैंथ का फल, जामुन, जमीरा नेव, कटहल, विजौरा नेव, वांस का फल, करीर का फल, बैर, केला, अम्ल दाढ़िम (खट्टा अनार) तथा इस प्रकार के अन्य भी खट्टे फल, करीर का फल और बेल का फल भी दूध के साथ नहीं खाना चाहिये। इन विशुद्ध फलों को दूध के साथ खाने से वधिरता, अन्धता, शरीर की विर्णता, सूक्तवं और सूत्यु तक होती है ॥ २-४ ॥

अथ सन्तानिकारुणाः ।

सन्तानिका स्वामुरुपा श्वादुरधोपरि रिथता ।

सन्तानिका गुणः शीता वृद्ध्या पित्ताभ्यवात्तुत ॥ १ ॥

इति हुरधिगुणाः ।

दूध की मलाई के गुण—दूध की मलाई दूध ही के रूप की दूध के गर्भ होने से उसके ऊपर रहती है वह गुरु, शीतल, वीर्यवर्धक, पित्त-रक्त और वात का दाशक होती है ॥ १ ॥

अथ दधिगुणाः ।

गच्छं दध्युत्तमं वैवर्यं पाके स्वादु रुचिप्रदम् । पवित्रं दीपनं खिरवं पुष्टिकृत्यवनापहम् ॥ १ ॥

दही के गुण भेद—गाय के दूध की दही अत्यन्त उत्तम, बलकारक, पाक में स्वाद (मधुर), रुचिकारक, पवित्र, दीपिकारक, लिंग, कफकारक, वात-पित्तनाशक, स्वादुपाकमधियन्दिवृत्यं गुर्वच्छूषणम् ॥ १ ॥

माहिवं दधि सुधिगच्छं लेष्मलं वातपित्तनुत् । स्वादुपाकमधियन्दिवृत्यं गुर्वच्छूषणम् ॥ २ ॥

भैस के दूध की दही अत्यन्त लिंग, कफकारक, वात-पित्तनाशक, स्वादुपाक अर्थात् पाक में मधुर, अभिष्यदी, वीर्यवर्धक, गुरु और रक्त को दूषित करने वाली होती है ॥ २ ॥

आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषव्रयापहम् । शस्यते आसकासार्वाः श्यकाशर्येषु दीपनम् ॥ ३ ॥

वकरी के दूध की दही उत्तम, ग्राही, लघु, तीनों दोषों को नाश करने वाली और शास—कास-अर्दा-श्यक और दुर्बलता में हितकर एवम् दीपन है ॥ ३ ॥

निःसारदुराधदधिगुणाः—

आसारं दधि सध्यमाहि कपायं शातलं लघु । विष्टिभि दीपनं रुच्यं ग्रहणीरोगनाशनम् ॥ १ ॥

निस्सार अर्थात् मध वर मध्यन निकाले दूध की दही के गुण—मध्ये हुए (मध्यन निकाले) दूध की दही संयाही, कपाय, शातकारक, लघु, विष्टिभी, दीपन, रुचिकारक और ग्रहणी रोग का नाशक है ॥ १ ॥

मन्ददधिगुणाः—विदाहि सृष्टिविष्टिभूतं सन्दजातं विद्विष्टिभित ॥ १ ॥

मन्दसंक्रक दही के गुण—मन्द (अधमौती) दधि दाहकारक, मल-मूत्रकारक और त्रिदोष नाशक है ॥ १ ॥

मन्दं दुर्ग्राधदध्यन्दरसं किञ्चिद्धानं भवेत् । मन्दकरं दधि श्रेष्ठ तृष्णापित्ताभ्यादाहनित ॥ २ ॥

मन्द दधि के लक्षण—जो दही अभी दूध ही की भाँति हो, दही का रस (स्वाद) जिसमें नहीं प्रकट हो और दुल वन (गाढ़ी) हो गयी हो उसे मन्द दधि कहते हैं। शक्तर के साथ दही खाना-श्रेष्ठ है तथा पिपासा, पित्त, रक्त और दाह का नाश करने वाला है ॥ २ ॥

संगुङ्कं वातनुद वृत्यं दृहं पंतर्पं गुरु । न ग्राही दधि सेवेत न चाप्यवृत्तशक्तरम् ॥ ३ ॥

नासुद्दसुपं नात्मौद्रं नोरणं नाऽमलकविना ।

शस्यते दधि नो रात्री शास्तं चामुचृतान्वितम् ॥ ४ ॥

इक्षपित्तकफोथेषु विकारेषु हितं न तत् । मूत्रकृष्णे प्रतिशयाये शीतमे विषमज्वरे ॥ ५ ॥

गुण के साथ दही खाना—वातनाशक, वीर्यवर्धक, वृद्ध, तुषिकारक और गुरु है। दही खाने का नियेष—रात्रि में दही नहीं खाना चाहिये, बिना धी और शक्ति मिला दही नहीं खाना चाहिये और मूंग की दाल, मधु, उष्ण की हुई और आमला के बिना दही नहीं खाना चाहिये। और भी—रात्रि में दधि खाना उचित नहीं है किन्तु जल और धी मिला हो तो खाना चाहिये। और रक्त-पित्त तथा कफ से उत्पन्न रोगों में वह धी और जल मिला हुआ भी दधि हो तो भी नहीं खाना चाहिये अर्थात् हितकर नहीं है। मूत्रकृष्ण, प्रतिशयाय, शीत से उत्पन्न विषम ज्वर, में दही हितकर नहीं है ॥ ५ ॥

अनिसारेहवौ कार्ये दिवा च दधि शस्यते । हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ॥ ६ ॥

दही खाने का विधान—अतीसार, अरुचि, दुर्बलता के रोग में और दिन में दही खाना हितकर है। क्षत्रु भेद से दही खाने का विधान और नियेष—शिशिर और वर्षा क्षत्रु में दही खाना उचित है ॥ ६ ॥

शारद्यीष्मवप्नतेषु प्रायशसनद्विग्हितम् । दधनस्तुपि यत्तोयं तन्मस्तु परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥

मस्तु कुमहरं बल्य लघु भक्षाभिलाषकृत् । चोनोदिक्षोधनाहृदि कफतृष्णानिलापहम् ॥

अवृद्धं प्रीणनं शीत्रं भिनति गलसहग्रहम् ॥ ८ ॥

शरद, ग्रीष्म और वसन्त क्षत्रु से प्रायः करके दही खाना अहितकर है। मस्तु के लक्षण और गुण—दही के ऊपर के पानी को 'मस्तु' (दही का तोड़) कहते हैं। दही का तोड़ बलान्तिनाशक, बलकारक, लघु, भोजन में रुचि कराने वाला, नाड़ियों को शुद्ध करने वाला, प्रसन्नताकारक, कफ-पिपासा और वायु का नाशक, अवृद्ध, (थोड़ा वीर्यवर्धक) और मल समूह जो एकत्रित होते हैं उनका शीघ्र भेदन करने वाला होता ॥ ७-८ ॥

अथ सरगुणः—

दधनस्तुपरिभागो यो धनः स्नेहसमन्वितः । लोके सर इति ख्यातो दध्नो वारि तु मरिविति ॥

सर (साढ़ी) के लक्षण और गुण—दही के ऊपर स्नेहयुक्त जो धना पदार्थ रहता है उसे 'सर' कहा जाता है और दही जो जल को 'मस्तु' कहा जाता है ॥ १ ॥

सरः स्वादुरुरुद्धर्यो वातव्यहित्रणाशनः । वस्तेविधमनश्रामः पित्तलेघविवर्धनः ॥ २ ॥

इति दधिगुणाः ।

साढ़ी मधुर, गुरु, वीर्यवर्धक, वात और अद्धि का नाशक और यदि उस सर (साढ़ी) में अन्तरा आ गयी हो तो वस्ति का विषमन करता है और पित्त तथा कफ का वर्धक है ॥ २ ॥

अथ तक्रगुणः ।

उद्धिन्मधितं घोलं तक्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् । मस्तु निर्जलं घोलं मधितं सरवर्जितम् ।

तक्रं पादजलं प्रोक्तमुद्धिज्ञार्थवारिकम् ॥ १ ॥

दिवोदामप्रभृतयस्तक्रमंजलं ज्ञातः । पादतोयं विनिग्रहन्त्युद्धिद्विति तत्तथा ॥ २ ॥

तक (मट्टा) का नाना भेद और गुण—मट्टा भिज्व-भिज्व लक्षणों के अनुसार नाम से चार प्रकार का उद्धित, मधित, घोल और तक कहा जाता है। घोल का लक्षण—साढ़ी सहित बिना जल दी मधी हुई दही को 'घोल' कहते हैं। मधित का लक्षण—साढ़ी निकालकर (अलग कर) जो

दही बिना जल मिलाये मथ दिया जावे उसे 'मधित' कहते हैं। तक के लक्षण—जिस दही में चतुर्थीश जल देकर मधा जाय उसे 'तक' कहते हैं। उद्धित के लक्षण—जिस दही में आधा जल देकर मधा जाय उसे 'उद्धित' कहते हैं। दिवोदाम प्रश्नति जो है वे आधा जल देकर मधे हुए दही को 'तक' कहते हैं, और चतुर्थीश जल देकर मधे हुए दही को 'उद्धित' कहते हैं ॥ १-२ ॥

आतपित्तहरं घोलं मधितं कफपित्तनुसु । तक्रं त्रिवोषशमनमुद्धितरक्फदं स्मृतम् ॥ ३ ॥

तक्रादिकों के गुण—घोल वात और पित्त का नाशक है; मधित कफ-पित्तनाशक है, तक्र त्रिवोषनाशक है और उद्धित कफदायक कहा गया है ॥ ३ ॥

शब्दं तु दीपनं तक्रं मेधमर्जिलोपनुत् । हितं गुलमातिसारेषु द्वीहाशोंग्रहणीगदे ॥ ४ ॥

गाय—मैस आदि के भेद से तक्रादि के गुण—गाय का तक दीपन, मेधावर्धक, अर्श और त्रिवोष नाशक है तथा गुलम-अतीसार-झीहा-अर्श और ग्रहणी रोग में हितकर है ॥ ४ ॥

ग्राहिषं श्लेष्मलं तक्रं सान्द्रं घोफकरं गुरु । सुचित्रं छागलं तक्रं लघु सोषत्रायापहम् ॥ ५ ॥

मैस का तक्र कफकारक, घना शोथ करने वाला और गुरु होता है। बकरी का तक्र सुखित्र (अत्यन्त पिच्छिल), लघु और त्रिवोषनाशक है ॥ ५ ॥

गुहमशोंग्रहणीशोषपाण्डवामयविनाशनम् । वासेठलं सैन्धवोपेतं स्वादु पित्ते सशक्तरम् ॥ ६ ॥

और गुलम-अर्श-ग्रहणी-शोथ और पाण्डु रोग का नाशक है। और भी दोषभेद से तक्र के गुण—वात के रोग में तक अम्ल रस युक्त एवम् सैन्धवा नमक मिलाकर खाना हितकर है। पित्त दोष में मधुर रस युक्त एवम् चीनी मिला तक्र हितकर है ॥ ६ ॥

पिबेतक्रं कफे रुक्तं व्योषकारसमन्वितम् । मूत्रकृष्णे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम् ॥ ७ ॥

कफ के दोष में तक रुक्त एवम् सौठ-पीपरि-मरिच और ज्ञारयुक्त हितकर है। मूत्रकृष्ण में गुड के साथ, पाण्डु रोग में चित्रक के साथ तक्र हितकर है ॥ ७ ॥

हिकृजीवयुतं घोलं सैन्धवेनावधूलितम् । तक्रवेदतिवातप्रमशोंडतीसारनाशनम् ॥ ८ ॥

सुख्यं पुष्टिदं बल्यं वस्तिरुद्धितम् ।

हींग-जीरा और सैन्धवनमक मिलाया हुआ घोल अत्यन्त वातनाशक एवम् अर्श और अतीसार का नाशक है। और रुचिकारक, पुष्टिकारक, बलकारक और वस्तिरुद्धितम होता है ॥ ८-८३ ॥

शीतकालेडभिमान्द्ये च कफवातामयेषु च ॥ ९ ॥

अहस्त्री ज्ञोतसां रोधे तक्रं स्थावस्त्रूपमम् ।

तक्र सेवन विषय—शीतकाल में, और अद्धिमान्द्य, कफ, वात के रोग, अरुचि और स्त्रोतो-वरोध में तक्र का सेवन असृत जैसा गुणकारी है ॥ ९-९३ ॥

नैव तक्रं ज्ञते दधाशोणकाले न दुर्बले ॥ १० ॥

न मूर्छांश्चमदाहेषु न शोरे रक्षितज्जे ।

तक्र के नियेष के विषय—तक्र क्षतरोग, उणकाल और दुर्बलता में नहीं देना चाहिये। और भी तक्र मूर्छा-अम-दाह और रक्तपित्त से उत्पन्न रोगों में नहीं देना चाहिये ॥ १०-१०३ ॥

तक्रं तक्रलवणोपेतं दीपनं ग्रहणीगदे । तक्रं लवणहीनं यद्ग्रहणयशोंविकारकृत् ॥ ११ ॥

तक्र के अन्यान्य भेद से गुण-दोष—तक्र नमक मिलाकर सेवन करने से ग्रहणी रोग में दीपन है। और बिना नमक का तक्र ग्रहणी और अर्श का विकार करने वाला है ॥ ११ ॥

ज्ञुद्धर्धनं नेत्रज्ञापहं च प्राणप्रदं शोणितमासदं च ।

आमाभिघातं कफवातहन्तु त्वश्चौ गुणा वै कथिता हि तक्रे ॥ १२ ॥

तक के विशेष गुण—तक क्षुधावर्धक, नेत्रोगनाशक, प्राणप्रद (बलकारक), रक्त और मांस का बढ़क, आमनाशक, कफ और वात का नाशक है, इस प्रकार तक के आठ गुण कहे गये हैं ॥१३॥

अथ वृथिततकगुणाः ।

तकमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च । पीनसशासकासादौ पक्वमेव विशिष्यते ॥ १ ॥

कच्चा तथा कथित (गर्भे किये हुए) तक के गुण—कच्चा तक कोष्ठित कफ का नाश करता है और कण्ठस्थित कफ को बढ़ाता है। पीनस, शास और कासादिक रोग में विशेषतः पक्व ही तक देना चाहिए ॥ १ ॥

न तक्षसेवी व्यथते कदाचित्त तक्षदृधाः प्रभवन्ति रोगाः ।

यथा सुराणाममृतं प्रधानं तथा नराणां भुवि तक्षमाहुः ॥ २ ॥

विशेष वचन तक के लिये—तक का सेवन करने वाला कभी पीड़ित नहीं होता है अर्थात् रोगी नहीं होता है और तक से दर्घ रोग किर कभी नहीं होता है। जिस प्रकार देवताओं के लिये अमृत प्रधान है उसी प्रकार पृथ्वी पर मनुष्यों के लिये तक प्रधान कहा गया है ॥ २ ॥

तकाहृष्टुरो मन्थः कूर्चिका वृथितकवत् । गोजाविमहिषीतकं तद्वृथिगुणाः पृथक् ॥ ३ ॥

तक से भी लघु भूत होता है। और कूर्चिका (दही या मट्टा से फटा हुआ दूध सिक्ख सहित) निचोड़ी हुई दही और तक के गुण जैसी गुणवाली होती है। अर्थात् दही से फटे का गुण दही जैसा और तक से फटे का गुण तक जैसा होता है। चार पल जल में एक पल दही देकर मंथन करने को 'मन्थ' कहते हैं। गौ, बकरी, मेड़ी और भैंस के तक का उन सरों के अलग-अलग दही के गुण के अनुसार गुण जानना चाहिए ॥ ३ ॥

कैलासे यदि तकमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवे-
द्वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदशापि किं केशवः ।

इन्द्रो दुर्भगता लयं द्विजपतिलङ्घोदरत्वं गणः
कुष्ठित्वं च कुवेशको दहनतामस्त्रिक्षिप्ति ॥ ४ ॥

इति तकगुणाः ।

नक्त महिमा—कैलास पर यदि तक होता तो क्या गिरीश (शिव) नीलकण्ठ ही रहते? अर्थात् उनके कण्ठ पर के विष की कालिमा नष्ट हो गयी होती। द्वैकुण्ठ में यदि तक होता तो क्या केशव द्याम ही रहते? देवलोक के राजा इन्द्र दुर्भग (सौन्दर्यहीन) ही रहते? चन्द्रमा जैसे द्विजपति को क्षय होता? गणेश का उदर इतना बढ़ा रहता? कुबेर को कुष्ठ रोग रहता? और अशिंदेव के अन्दर दाह होता? कभी नहीं अर्थात् तक के सेवन से विष, विवर्णता, असौन्दर्य, क्षय, उदररोग, कुष्ठ और दाह आदि सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ नवनीतगुणाः ।

नवनीतं हिमं गद्यं वृथं वर्णवल्लभिकृत । संप्राहि वातपित्तार्शः ल्येव्विदितकासजित् ॥ १ ॥

तद्वितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ।

नवनीत (मक्खन-नैनू) के गुण मेद—गाय का मक्खन शीतल, वीर्यवर्धक, वर्ण-बल और अदिकारक, संग्राही, वात-पित्त-अर्श-क्षय-अदित और कास का नाशक है। यह बालक और वृद्ध के लिए हितकर है और विशेष कर शिशुओं के लिए अमृत की तरह है ॥ १-१३ ॥

माहिर्पं नवनीतं तु वातश्लेष्मकरं गुरुः ॥ २ ॥

दाहपित्तश्लेष्मकरं मेदः शुक्लविर्वर्धनम् । आजं त्रिवोषशमनं नवनीतं तथोद्दरम् ॥ ३ ॥

भैंस का मक्खन—वात-कफकारक, गुरु, दाह-पित्त-श्लेष्म को हरण करने वाला, मेद को बढ़ाने वाला और शुक्ल को बढ़ाने वाला है। बकरी का मक्खन त्रिदोषनाशक और सब में श्रेष्ठ है ॥ २-३ ॥

शीरोत्थं तदतिस्तिनवधं लक्ष्मीवृथं रक्षितनुत् । वृथं बलकरं ग्राहि मधुरं शीतलं परम् ॥ ४ ॥

दूध के मक्खन के गुण—दूध से निकाला मक्खन अत्यन्त स्तिर्ण, नेत्र को हितकर, रक्षितना शक, वीर्यवर्धक, बलकारक, ग्राही, मधुर और परम शीतल है ॥ ४ ॥

नवनीतं तु सधस्तं स्वादु ग्राहि हिमं लघु । मेध्यं किञ्चिक्षणायामलभीषतकांशसंक्रमात् ॥ ५ ॥

सध: निकाले मक्खन के गुण—तुरत का निकाला मक्खन स्वादु (मधुर), ग्राही, शीतल, लघु, मेधाकारक और थोड़ा तक के अंश सहित होने से थोड़ा कपाय और अम्ल होता है ॥ ५ ॥

अथ चिरन्तननवनीतगुणाः ।

सदारकदुकाङ्गुरवार्षुद्यर्शः कुष्कोपनम् । श्लेष्मलं गुरु मेदस्य नवनीतं चिरन्तनम् ॥ १ ॥

इति नवनीतगुणाः ।

पुराने मक्खन के गुण—पुराना मक्खन क्षार, कटु और अम्लरस का हो जाता है और उससे बमन-अर्श और कुष्ठ कुपित होता है अर्थात् बढ़ता है, और वह कफकारक, गुरु तथा मेदावर्द्धक होता है अर्थात् पुराना मक्खन अहितकर है ॥ १ ॥

अथ घृतगुणाः ।

धीकान्तिसमृतिकारकं बलकरं मेधाकरं शुद्धिकृद्वात्तदनं शमनाशनं स्वरकरं पित्तापहं पुष्टिदम् । चह्वैवृद्धिकरं विपाकमधुरं वृथं वृथं वृथं वृथं वृथं वृथं सद्य समावृत्तिम् ॥

घृत के गुण—मेदादि—गाय के धी का गुण—गाय का धी का बुद्धि, शरीर की कान्ति और स्मरण शक्ति को करने वाला, बलकारक, मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला, शुद्धिकारक, वातनाशक, शमनाशक, स्वर को बढ़ाने वाला, पित्तनाशक, पौष्टिक, अस्तिवर्धक, विपाक में मधुर, वीर्यवर्धक, शरीर में दृढ़ता करने वाला और सब धूतों में उत्तम है इसका सेवन करना चाहिए। इसमें भी तुरत का निकाला हुआ धी और भी बहुत गुणों वाला होता है ॥ १ ॥

सर्पिंगं वामामृतं विषद्यं च चुप्त्यग्नोग्यकरं च वृथम् ।

रसायनं भन्दमतीत्र मेध्यं स्नेहो भस्मं चेति बृथाः स्तुवन्ति ॥ २ ॥

इति गायम् ।

और भी—गाय का धी असृत की तरह, विषनाशक, नेत्रों को हितकर, आरोग्यकारक, वीर्यवर्धक, रसायन, गन्धमुक्त, अत्यन्त मेधावर्धक और सब स्नेहों में उत्तम है ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं ॥ २ ॥

अथ माहिषम्—

सर्पिंगांहिषमुत्तमं धृतिकरं सौख्यप्रदं कान्तिदं, वातश्लेष्मनिवर्हणं बलकरं वर्णप्रसादशमम् । दुर्बलमग्रहणीविकारशमनं मन्दान्तोहीपनं चचुप्त्यं न वगच्यतः परमिदं हृथं मनोहारि च ॥

भैंस के धी का गुण—भैंस का धी उत्तम, द्रैयंधरण धी शक्ति को करने वाला, सुखदायक, कान्तिदायक, वात और कफ नाशक, बलकारक, वर्ण को साफ करने वाला, अर्श, ग्राही के विकार को शमन करने वाला, मन्दाग्नि को तीव्र करने वाला, नेत्र को हितकर नवीन गाय के धी से कम गुण होने पर भी हृथ तथा मन को प्रसन्न करने वाला है ॥ १ ॥

आजं घृतं दीप्तम् च चकुप्त्यं बलवर्धनम् । कासे आसे चये वाऽपि पद्यं पानेषु तद्वृत्तु ॥ १ ॥

बकरी के धी का गुण—बकरी का धी दीपन, नेत्र को हितकारक, बलवर्धक, कास-शास-क्षय में भी पथ्य तथा पीने में लघु है ॥ १ ॥

अथाऽविकम्—

आविकं धूतमतीव गुहराद्वृज्यमेव सुकुमारनराणम् ।
सच्च एव बलपुष्टिकरं इत्याद्यौद्रकं श्यभुमाशकरं च ॥ १ ॥

इत्याविकमीद्यं च ।

भेड़ी के धी का गुण—भेड़ी का धी अत्यन्त गुरु होने से सुकुमार मनुष्यों को नहीं सेवन करना चाहिये । ऊँटनी के धी का गुण—ऊँटनी का धी सच्चः (टटका) होने पर बलकारक, पौष्टिक, और शोथनाशक होता है ॥ २ ॥

अथ नूतनधृतगुणः—

योजयेभवमेवाऽऽज्ञं भोजने तर्पणे श्रमे । बलचये पाण्डुरोगे क्षामलानेत्रोगयोः ॥ १ ॥

नवीन धी का गुण—नवीन (टटका) धी का भोजन, तर्पण, श्रम, बलक्षय, पाण्डु रोग, कमला और नेत्र के रोगों में प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ पुराणधृतम्—

सर्पिः पुराणं विशेयं दशावर्षं स्थितं तु यत् । सर्पिः पुरातनं श्रेष्ठं त्रिष्ठोषतिमिरापहम् ॥ १ ॥

मूल्छार्कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनशनम् । दशसंवत्सराद्वृज्यमाद्यमुकं इसायनम् ॥ २ ॥

पुराने धी का गुण—लक्षण—जो धृत दस वर्ष तक रक्खा रहे उस धी को पुराना धी जानना चाहिये । पुराना धी श्रेष्ठ और तिमिर रोग नाशक है और मूल्छार्कुष्ठ-उम्माद-ग्रह दोष और अपस्मार का नाशक है । दस वर्ष से अधिक का पुराना धी रसायन है ॥ १-२ ॥

शतवर्षस्थितं यत्तु कुम्भसर्पिस्तदुच्यते । रक्षोदनं कुम्भसर्पिः स्वापरतस्तु महाधृतम् ॥ ३ ॥

कुम्भ सर्पिं और महाधृत के लक्षण और गुण—जो धृत सौ वर्ष तक रक्खा रहे उसे 'कुम्भ सर्पिं' कहते हैं । कुम्भ सर्पिं राक्षस ग्रह का नाश करने वाला होता है । सौ वर्ष से अधिक का धृत 'महाधृत' कहा जाता है ॥ ३ ॥

येयं महाधृतं भूपैः सर्वतोऽपि गुणाधिकम् । यथा यथा जरां याति गुणवस्थास्था तथा ।

महाधृत राजाओं के लिये येय है और यह सब से गुण में अधिक है इसके पश्चात जितना पुराना धी होता जाता है उतना ही अधिक गुण वाला होता है ॥ ४ ॥

भद्रणात्कासरोगधन्मस्तनाक्षेत्रोगजित् । शिरोऽभ्यङ्काद्वृज्यञ्जन्त्रोगनं तपुरातनम् ॥ ५ ॥

विशेष कर पुराने धी के गुण—पुराना धी खाने से कास रोग का नाश करता है । अज्ञन करने से नेत्र के रोगों का नाश करता है और सिर में लगाने से गले के ऊपर के रोगों का नाश करता है ॥ ५ ॥

अथ रोगविशेषं धृतनिषेधः ।

राजयचमणि वाले च वृद्धे श्लेष्माश्रये गदे । रोगे सामे विसूच्यां च विवर्धे च मदात्यये ॥

ज्वरे मन्दानले मेहे न सर्पिर्वहु मन्यते ॥ १ ॥

इति धृतगुणः ।

रोग विशेष में धृत के सेवन का निषेध—राजयचमणि रोग में बालकों और बड़ों को कफाश्चित रोग आमयुक्त रोग, विसुचिका, विवर्ध, मदात्यय, ज्वर, मन्दात्यय और प्रमेह में धी अधिक नहीं जाना चाहिये ॥ १ ॥

अथ तैलगुणः ।

सर्ववातहरं तैलं विशेषातिलसम्भवम् । तैलं संयोगसंस्कारात्तरसर्वरोगहरं स्वृतम् ॥ १ ॥

तैल का गुण—तिल के तैल का गुण—सभी तैल वात को हरण करने वाले होते हैं, विशेष कर तिल का अत्यन्त वातनाशक है । और तैल संयोग (औषधादि के संयोग) और संस्कार (औषधादि देकर पकाने आदि) से सब रोगों को हरण करने वाला कहा गया है ॥ १ ॥

तिलतैलमलङ्घरोति केशान्मधुरं तिक्ककथायमुण्णतीषणम् ।

बलकृतकफवातजन्तुखर्जुणकण्ठहरं च कान्तिदायि ॥ २ ॥

तिल का तैल केशों को निम्नले करने वाला, मधुर, तिक्क, कधाय, उण और तीक्ष्ण होता है, एवं बलकारक, कफ-वात-जन्तु (जू आदि), खर्जू (खुजली), ब्रण, कण्ठ आदि का नाशक, कान्तिदायक होता है ॥ २ ॥

कण्ठहरं कान्तिविवर्धनं च खर्जूविशुद्धि ब्रणरोपणं च ।

तिलस्थ जातं खलु यद्यच तैलं शालेषु वृद्धेव्यपि पथ्यमेतत् ॥ ३ ॥

और तिल से उत्पन्न तैल—कण्ठनाशक कान्ति तथा पुरीष का वर्धक, ब्रणरोपक होता है । और बालकों एवम् बूढ़ी के लिये पथ्य है ॥ ३ ॥

न पित्तरोगे न च शोणिसे च पथ्यं महाधातविकारसंवेदे ।

तिलोद्धर्वं तैलमुदाहरन्ति वासाश्रितान्द्विन्ति समस्तद्वोषान् ॥ ४ ॥

इति तिलतैलम् ।

तिल का तैल पित्त और रक्त के रोगमें नहीं देना चाहिये । और यह बहुत बड़े वात के निकार में पथ्य है तथा वात से सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण दोषों का नाश करता है ॥ ४ ॥

अथरण्डतैलम् ।

तैलमेरण्डं बल्यं शुरुणं मधुरं सरम् । तिक्कोणं पिस्तलं विक्कं रक्षेण्डोद्धर्वं भृशम् ॥ १ ॥

एरण्ड तैल के गुण—रेढ़ी का तैल बलकारक, शुरु, उण, मधुर, सारक, तिक्क, उण, पित्त-वर्धक, और अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त लाल एरण्ड का तैल होता है ॥ १ ॥

एरण्डतैलं क्रिमिनाशनं च सर्वत्र शुक्लग्रस्मल्प्रणाशम् ।

कुष्टापहं चापि रसायनं च पित्तप्रकोपानिलशोधनं च ॥ २ ॥

एरण्ड का तैल क्रिमिनाशक और सब जगह शुल्नाशक, वायु तथा कुष्ट का नाशक है, रसायन है, पित्त कुपित करने वाला और वायुशोधक है ॥ २ ॥

वधर्गुरुमानिलकफानुदरं विषमज्वरम् । वातशुलगजेन्द्राणामेरण्डसनेहकेसरी ॥ ३ ॥

इत्येरण्डतैलम् ।

वधर्ग, शुल, अनिल (वायु) कफ, उदररोग और विषम ज्वर का नाशक है । और वातशुल स्पी गजेन्द्र के लिये एरण्ड तैल सिंह है ॥ ३ ॥

अथ सार्वपत्तैलम्—

सार्वपं क्रिमिनुच्छं कुष्टकण्ठहरं दद्यु । पित्तासद्वृज्यं हन्ति भेदाकर्णशिरोग्रहान् ॥ १ ॥

सरसों के तैल का गुण—सरसों का तैल क्रिमि, कुष्ट और कण्ठ का नाशक, लघु पित्त और रक्त को दूषित करने वाला तथा मैद-कर्ण और शिरोग्रह का नाश करने वाला होता है ॥ १ ॥

अथ कुसुमपत्तैलम्—

कुसुमपत्तैलं विषमिष पाके च कटुकं गुरु । विद्वाहि च विशेषेण सर्वदोषप्रकोपणम् ॥ ३ ॥

कुसुम के तेल का गुण—कुसुम का तेल विषम्भी, पाक में कटु, गुरु, विदाही और विशेष कर सब दोषों को कुपित करने वाला है ॥ १ ॥

अथ राजिकातैलम्—

सार्वपेण समं तैलं राजिकायाथ कृच्छ्रजित् । कण्ठूपामाहरं ददृक्किमिनुस्तीचणकं पुनः ॥ २ ॥

राई के तेल का गुण—राई का तेल सर्वों के तेल के समान गुणों वाला, मूनहच्छनाशक, कण्ठू और पामानाशक, ददृ-क्रिमिनाशक और तीक्ष्ण होता है ॥ २ ॥

अथ क्षीमादितैलम्—

चौमं तैलमच्छुद्ध्यं पित्तकृद्वातनाशम् । अचञ्ज कफवात्प्लं केरयं ददक्षोन्नतर्पणम् ॥ ३ ॥

इत्यत्सीविभीतकतैलम् ।

क्षीमादि (अतसी) के तेल का गुण—तीसी का तेल नेत्रों को अहितकर, पित्तकारक और वातनाशक होता है। बहेरे के तेल का गुण—बहेरे का तेल कफ-वातनाशक, केंद्रों को द्वितकर, दृष्टि और कानों को तुष करता है ॥ ३ ॥

ज्योतिष्मतीभवं तैलं पित्तलं स्मृतिशुद्धिदम् । निम्बतैलं जयेकुष्ठवृग्मेहमहाक्रिमीन् ॥ ४ ॥

ज्योतिष्मती (मालकांगुनी) के तेल का गुण—मालकांगुनी का तेल पित्तकारक, स्मृति (स्मरण शक्ति) और बुद्धिदायक है। नीम के तेल का गुण—निम्बतैल कुष्ठ, व्रण, मेह और महाक्रिमि का नाशक होता है ॥ ४ ॥

अथ धान्यतैलम्—

सर्वधान्यसमावर्तजातानि फलजानि च । तैलवाचानि तश्लेपः स्वर्जूकण्ठूविनाशनः ॥ ५ ॥

इति तैलानि ।

धान्य तैल का गुण—सब प्रकार के धान्यों से और फलों से उत्पन्न स्नेह जो है वे सब अपने २ धान्य फल के गुणों से युक्त होते हैं और उसका तेल के तरह प्रयोग करने पर खर्जू और कण्ठू का नाश होता है ॥ ५ ॥

अथ मधुगुणाः ।

त्रिदोषद्वन्द्वं मधु प्रोक्तमन्यस्थात्सिपातहम् । हिकाधासक्रिमिच्छुदिमोहतृष्णाविषापहम् ॥ ६ ॥

मधु के गुण—मधु त्रिदोषनाशक और सत्रिपात नाशक कहा गया है और हिकाधास-क्रिमिवर्मन-मोहतृष्णा तथा विष का नाशक है ॥ ६ ॥

मादिकं आमरं शौद्रं पौतिकं छाव्रमेव च । आर्ध्यमौद्दालकं दालमिथ्यै मधुजातयः ॥ ७ ॥

मधु के भेद—मधु मादिक, आमर, शौद्र, पौतिक, छाव्र, आर्ध्य, औद्दालक और दाल इस प्रकार आठ जाति का होता है ॥ ७ ॥

मादिकं तैलसंकाशं आमरं स्फटिकोद्भवलम् । शौद्रं कविषवर्णं च पौतिकं तैलसंनिभम् ॥ ८ ॥

आठ प्रकार के मधु का वर्ण-लक्षण—मादिक नाम का मधु तैल के समान वर्ण वाला होता है, आमर नाम का मधु स्फटिक समान उड्जतल वर्ण वाला होता है। शौद्र नाम का मधु कपिल वर्ण का होता है, पौतिक नाम का मधु-तैल-कै-समान वर्ण वाला होता है ॥ ८ ॥

छाव्रं तर्पीतकरिलमार्घ्यं श्वेतपिशङ्ककम् । शौदालकं पीतकपिलं नामावर्णं तु दालकम् ॥ ९ ॥

छाव्र नाम का मधु कपिल और पीत वर्ण का होता है, आर्घ्य नाम का मधु श्वेत और भरे-वर्ण का होता है। औद्दालक नाम का मधु पीत और कपिल वर्ण का होता है, दालक नाम का मधु अनेक वर्ण का होता है ॥ ९ ॥

मादिकं च मधु श्रेष्ठं नेत्रामयहरं लघु । पौतिकं लघु संग्राहि कफधनं वातपित्तकृत् ॥ ५ ॥

मधु के पृथक् २ गुण—मादिक नाम का मधु श्रेष्ठ, नेत्रोगनाशक और लघु होता है। पौतिक मधु लघु, संग्राही, कफनाशक और वात-पित्तकारक है ॥ ५ ॥

शौद्रं मादिकवज्ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् । आमरं रक्तपित्तधनं मूत्रज्वाड्यकरं गुह ॥ ६ ॥

शौद्र मधु मादिक के समान गुण वाला होता है और विशेष कर प्रमेहनाशक है। आमर मधु रक्तपित्तनाशक, मूत्रावरोधक और गुरु होता है ॥ ६ ॥

नवीनं मध्वमिष्यनिदं रिनग्नं श्लेष्महरं सरम् । उराणं प्राहि तद्रूपं मेदोद्वमतिलेखनम् ॥ ७ ॥

नवीन मधु के गुण—नवीन मधु अभिष्यन्दी, स्तिर्ग्न, कफनाशक और सारक है। पुराने मधु के गुण—पुराना मधु ग्राही, रक्ष, मेदनाशक और अत्यन्त लेखन है ॥ ७ ॥

त्रिदोषशोषजवरनाशनं च शासं प्रमेहं व्रणशोषनं च ।

पित्तं च तृष्णां नयने जलं च रक्तं च गुरुमं क्षिमिश्यलकृष्टम् ॥ ८ ॥

श्लामिधातं ह्यरसोऽभिष्वातं लघ्यं प्रमेहं द्वृदरं च हिक्काम् ।

पित्तातिसारं प्रहणीगदं च शौद्रं तु सर्वान्विविहिनित रोगान् ॥ ९ ॥

मधु के अन्यान्य गुण—मधु त्रिदोष, शोष, ज्वर, रक्त, श्वास, प्रमेह का नाशक और व्रणशोषक, पित्त, तृष्णा, नेत्र से जल गिरना, रक्त, गुरुम, क्षिमि, शूल, कुष्ठ, श्वक का अभिष्वात, उरोऽभिष्वात, क्षय, प्रमेह, उदर रोग, हिक्का, पित्तातिसार और ग्रहणी आदि सब रोगों का नाशक होता है ॥ ८-९ ॥

अथ विशेषगुणाः—

चये मादिकसुहिंदं आमरं रक्तपित्तनुत् । शौद्रं मेहहरं प्राहुर्वर्णे पौतिकसुत्तमम् ॥ १ ॥

मधु के गुण—मादिकादि भेद से विशेष गुण—मादिक नाम का मधु क्षय के रोग में लाभदायक होता है, आमर मधु रक्तपित्तनाशक होता है, शौद्र प्रमेहनाशक होता है, पौतिक मधु व्रण के नाश करने में उत्तम कहा है ॥ १ ॥

छाव्रं सर्वं शास्तं स्यादार्घ्यं च्छुद्ध्यमुत्तमम् । औद्दालकं कुष्ठहरं श्विकृद्वालकमीरितम् ॥ २ ॥

एते विशिष्टाः कथिता मधुनो सुनिभिर्गुणाः ।

छाव्र नाम का मधु सब जगह हितकर होता है, आर्घ्य मधु नेत्र के रोगों के नाश करने में उत्तम है, औद्दालक मधु-कुष्ठनाशक है और दाल मधु श्विकारक कहा गया है। ये सब मधु के विशेष गुण मुनियों ने कहा है ॥ २-२३ ॥

अथ मधुपाकविधिः—

प्रस्थं च मधुनः शौदं गदां च कुष्ठवद्वयम् ॥ ३ ॥

निशाऽभ्यारजो दृश्यात्प्रथेकं च पलं पलम् । मधुववसानं विषचेत्मधुपाके त्वयं विधिः ॥ ४ ॥

इति मधुगुणाः ।

मधुपाक की विधि—मधु एक प्रस्थ (५१ एक सेर = ४ तो०), गाथ का दूध २ कुडव (आधा सेर-३१ तो०), हरदी और हर्रा का चूर्ण प्रत्येक एक पल (४ चार तो०) लेकर पकावे। यही मधुपाक की विधि है ॥ ४ ॥

अथ मधुगुणाः—

दृच्छुः स्वादुर्गुणः शीतो वृद्ध्यः स्त्रिरधो वलप्रदः । जीवनो वातपित्तस्त्रः कृथान्मूत्रकक्षिमीन् ॥

शु (ऊँख) के गुण—ऊँख स्वादु (मधुर), गुरु, शीतल, वीर्यवर्धक, स्त्रिघ, बलदायक, जीवनशक्तिदाता, वात-पित्तनाशक और मूत्र-कफतथा किमि को उत्पन्न करने वाला है ॥ १ ॥

स मूले मधुरोद्यर्थं मध्ये मधुर एव च । अग्रे ग्रन्थिषु विजेयो लबणो रसतस्तथा ॥ २ ॥
इति सामान्येण्युः ।

ऊँख में स्थानमेद से रसप्रधानता—ऊँख के मूल भाग में अव्यन्त मधुर रस और मध्य भाग में केवल मधुर रस और अग्रे भाग तथा ग्रन्थिस्थान में लवण रस की विशेषता जाननी चाहिये ॥ २ ॥

अथेषुभेदाः—

छोहितेष्वुर्गुणः शीतो दाहपित्तास्त्रकृच्छनितः । पौण्ड्रकः शीतलः स्त्रिघो वृंहणः कफकृत्सनः ॥ ३ ॥

ऊँख के भेद और गुण—लोहित वर्ण का जो ऊँख होता है वह गुरु, शीतल, दाह, पित्त, रक्त और मूत्रकृच्छन का नाशक है । पौण्ड्रक नाम का ऊँख शीतल, स्त्रिघ, वृंहण, कफकारक और सारक है ॥ ३ ॥

कृष्णेषुस्तदगुणेण्यो विशेषाद् दाहनाशनः । वंशेषुरीषत्कफकृद्वृध्यः विशेषो निवन्धनुस ॥

कृष्णेषु (काले रंग का ऊँख)—पौण्ड्रक के समान ही गुण वाला है और विशेषकर दाहनाशक है । वंशेषु—वॉस के समान (वॉस गेडा) जो ऊँख होता है वह थोड़ा कफकारक, वीर्यवर्धक, स्त्रिघ और विवन्धनाशक होता है ॥ ४ ॥

कृत्वा पौण्ड्रकगणहकान्तुसुहिरांश्चन्द्रांशुमिर्भावितान् ।

प्रत्युषेऽथ पथावलं भजति यो युक्त्या ज्वरात्शिरम् ।

मुक्तः स्यादविरेण शीतकमुखाज्ञेण्यज्वराद्यचमतः ।

पित्तं याति शमं प्रयाति चपुषः पुष्टि बलं पावकः ॥ ३ ॥

वृध्यो रक्तान्पित्तश्चमशमनपरः शीतलः इषेषमद्वृद्धः ।

स्त्रिघो हृष्ट्यश्च रुद्धो रचयति स मुद्रं मूत्रशुद्धिं विधत्ते ।

कान्ति देहस्य धन्ते बलमपि कुरुते वृंहणस्तुसिद्धायी ।

दम्भेनिष्येष्य काष्ठे मृदु यदि इसतो भक्षितश्चेष्वुद्धः ॥ ४ ॥

प्रातःकाल दाँतों से चबा कर ऊँख खाने के गुण—पौण्ड्रक ऊँख को ढुकड़ा कर चन्द्रमा की किरणों से भावित कर अर्थात् उन ढुकड़ों को रात भर चाँदनी में रख कर प्रातःकाल जो जीर्ण ज्वर का रोगी बल के अनुसार युक्तिपूर्वक दाँतों से चबा कर मृदु रस का भक्षण करता है वह जीर्ण ज्वर से मुक्त हो जाता है तथा इसके सेवन से शीत ज्वर, जीर्ण ज्वर और यक्षमा से मुक्ति होती है, उसका पित्त शान्त हो जाता है, शरीर पुष्ट होता है, अग्नि (जटराङ्गि) बलवान होता है, यह वीर्यवर्द्धक, रक्तोष, रक्तपित्त, श्रम को शान्त करने वाला शीतल है और थोड़ा कफकारक, स्त्रिघ, हृष्ट्य के लिये हितकारक, रुचिजनक, आनन्दवर्द्धक, मूत्रशुद्धिकारक है, शरीर में कान्ति देने वाला, बलकारक वृंहण और तृप्तिदायक होता है ॥ ३-४ ॥

अमुके पित्तहन्तारो भुक्ते पित्तप्रकोपणाः । भुक्तिमध्ये गुहतमा इतीक्षणां गुणात्मयः ॥ ५ ॥

भोजन के पूर्व, मध्य और पर में खाने के गुण दोष—इख को भोजन के पहले खाने से पित्तका नाश होता है और भोजन के बाद खाने से पित्त कुपित होता है और भोजन के मध्य में खाने से अव्यन्त गुरु होता है इस प्रकार ऊँख के तीन गुण होते हैं ॥ ५ ॥

अथ फागितम्—फागितं गुर्वभिष्यन्दि दोषलं मूत्रशोधनम् ॥ ६ ॥

फागित (राव) के गुण—राव गुरु, अभिष्यन्दी, दोषकारक और मूत्रशोधक है ॥ ६ ॥

अथ गुडः—

गुडः समधुरसारो गुरुणः कफवातुष । अहितः पित्तरके च जीर्णश्चैव रसायनः ॥ ७ ॥

गुड के गुण—गुड मधुर रस मुक्त, श्वारयुक्त, गुरु, उष्ण, कफ-वातनाशक और पित्त-नाश में हितकर होता है । और पुराने गुड का गुण—पुराना गुड रसायन होता है ॥ ७ ॥

अथ जीर्णगुडगुणाः—

पित्तन्नः पवनापहो इचिकरो हृष्ट्यज्ञिदोषार्तिन्तुत

संयोगेन विशेषतो उवरहरः सन्तापशानितप्रदः ।

विषमूत्रामयनाशनोऽग्निजननः पाण्डुप्रमेहापहः

स्त्रिघः स्वादुरसो लघुः अमहरः पथ्यः पुराणो गुडः ॥ ८ ॥

और भी—पुराना गुड—पित्त तथा वायुनाशक, रुचिकारक, हृष्ट्य, विदेशनाशक, संयोग से अर्थात् औषधों के योग से युक्त होने पर विशेष कर उवरनाशक, संताप की शान्ति देनेवाला, विषमूत्र के रोगों का नाशक, अग्निकारक, पाण्डु और प्रमेह का नाशक, स्त्रिघ, स्वादु (मधुर) रस युक्त, लघु, श्रमनाशक और पंथ्य है ॥ ८ ॥

अथ शर्करागुणाः—

सितोपला सरा गुर्वी वातपित्तहरा हिमा । वृष्णा अमश्लमच्छर्दिवाहमूर्छामिदापहा ॥ ९ ॥

इति शर्करा ।

शर्करा (चीनी) की मिश्री के गुण—सितोपला (मिश्री) सारक, गुरु, वातपित्तनाशक, शीतल, वीर्यवर्धक, भ्रम, क्लान्ति, वसन, दाह, मूर्छा और मद का नाशक होती है ॥ ९ ॥

अथ रायपुरी—

हृष्ट्या पुष्टिप्रदा स्त्रिघा मोहदाहमद्वभान् । निहन्ति खण्डा विशिरा गुरुः पित्तसमीरजित् ॥

रायपुरी शर्करा के गुण—यह रुचिकारक, पुष्टिदायक, स्त्रिघ, मोह, दाह, मद और भ्रम का नाशक है । खाँड़ शीतल, गुरु, पित्त और वायु का नाशक है ॥ १ ॥

अथातिश्वेतशर्करा—‘सितामस्त्यपिण्डकापश्ली’ इति मदनपालनिधपटौ ।

सिता हिमा सरा वृष्णा बलतुषिकरी लघुः ।

तृष्णकमध्रमपित्ताच्छाहमोहानिकापहा ॥ १ ॥

अतिश्वेत शर्करा के नाम गुण—मदनपालनिधपटौ में सिता, मस्त्यपिण्डका और यही नाम है । तिता (चीनी)—शीतल, सारक, वीर्यवर्धक, बल तथा गुसि का कारक, लघु, तुषा, क्लान्ति, भ्रम, रक्त-पित्त, दाह, मोह और वायु का नाशक है ॥ १ ॥

माधवी शर्करा रुचा कफपित्ताच्छाहिद गुरुः ॥ ३ ॥

इति शर्करागुणाः ।

माधवी शर्करा (मधु से बनी चीनी) के गुण—माधवी शर्करा रुचा, कफ-पित्त-रक्तनाशक और गुरु है ॥ ३ ॥

अथ मूत्राष्ट्रकम् ।

महिषाजाविगोऽव्यानां खरणामुद्धहस्तिमाय । मूत्राष्ट्रकमिति हृष्ट्यात् सर्वशास्त्रेषु सम्मतम् ॥

मूत्रप्रकरण—मूत्राष्ट्रक—भैस, बकरी, भेड़ी, गौ, अश, खर (गदहा), जँट और हाथी के मूत्र को सब शास्त्रों के भत्त से ‘मूत्राष्ट्रक’ कहते हैं ॥ १ ॥

अथ गोमूत्रम्—

गोमूत्रं कदु तिकोणं सच्चारं लेखनं सरम् । लघ्वप्रिदीपनं मेष्यं पित्तलं कफवात्पित् ॥ २ ॥
शूलगुलमोदरानाहविकारास्थापनादिषु । मूत्रप्रयोगसारेषु गद्धं मूत्रं प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

गोमूत्र का गुण—गोमूत्र कदु, तिक्करस युक्त, उष्ण, क्षारयुक्त, लेखन और सारक है, लघु अविदीपक, मेहकारक, पित्तकारक, कफ-वातनाशक, शूल-गुलम-उदर-आनाह-आदि विकार, आस्थापन बरित आदि में और मूत्र का प्रयोग जिस स्थान में करना है वहाँ गाय के मूत्र का प्रयोग करना चाहिये ॥ २-३ ॥

अथ मूत्रम्—

कासशासापहं शोफकाभलापाणद्वूरोगजित् । छांगं रुद्धोष्णकदुकमीषन्मारुतकोपनम् ॥ ४ ॥
बकरी के मूत्र का गुण—बकरी का मूत्र कास-भास, शोथ, कामला, पाण्डु रोग का नाशक, रुक्ष, उष्ण, कदु और थोड़ा वायु को कुपित करने वाला है ॥ ४ ॥

अथ मूत्रम्—

पलीहोदरथासकासशोफवर्चोंग्रहे हितम् । सच्चारकदुं तिक्कमुष्णवात्प्रसादिकम् ॥ ५ ॥
मेडी के मूत्र का गुण—मेडी का मूत्र प्लोहा, उदर, शास, कास, शोथ और पुरीषग्रह (कब्ज) में हितकारक है। और क्षारयुक्त, कदु, तिक्क, उष्ण और वातनाशक है ॥ ५ ॥

माहिषमूत्रम्—

हुर्नामोदरशूलं शु कुष्ठमेहविसूचित्वा । आनाहशोफगुलमेषु पाण्डुरोगे च माहिषम् ॥ ६ ॥
मैस के मूत्र का गुण—मैस का मूत्र अर्द्ध, उदर, शूल, कुष्ठ, प्रमेह, विसूचिका, आनाह, शोथ, गुलम और पाण्डु रोग में हितकर है ॥ ६ ॥

गजमूत्रम्—

सतिकं लवणं मेहि वातधनं पित्तकोपनम् । तीष्णं चारं किळासे च गजमूत्रं प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥
गजमूत्र का गुण—हाथी का मूत्र तिक्क तथा लवण रसयुक्त, मलभेदक, वातनाशक, पित्त कुपित करने वाला, तीष्ण, क्षार और किलास कुष्ठ में हितकर है ॥ ७ ॥

अथ मूत्रम्—

दीपनं कदु तीष्णोष्णं वातरोगविकारनुत् । आशवं कफहरं रुद्धं क्रिमिद्वृविनाशनम् ॥ ८ ॥
अथमूत्र के गुण—घोड़े का मूत्र दीपन, कदु, तीष्ण, उष्ण, वात रोग के विकार तथा कफ का नाशक, रुक्ष, क्रिमि और दहु रोग का नाशक है ॥ ८ ॥

उष्णमूत्रम्—

औष्णं कुष्ठोदरोन्मादशोफार्शःक्रिमिवात्पित् ॥ ९ ॥
ऊंट के मूत्र का गुण—ऊंट का मूत्र कुष्ठ, उदर, उन्माद, शोथ, अर्द्ध, क्रिमि और वात का नाशक, विष तथा चित्त के विकारों का नाशक, तीष्ण और जठरामि के रोग का नाशक है ॥ ९ ॥

गर्दभमूत्रम्—

दीपनं गार्दभं मूत्रं क्रिमिवात्कफापहम् । क्षयायतिक्कमेषु द्विकाशासहरं परम् ॥ १० ॥
गर्दभ के मूत्र का गुण—गर्दभ का मूत्र दीपन, क्रिमि, वात और कफ का नाशक है, क्षय और तिक्क है तथा अत्यन्त हिक्का तथा शास का नाशक है ॥ १० ॥

मानुषमूत्रम्—

पित्तरक्तमिहरं रेचनं कफवात्पित् । तिक्कं मोहरं मूत्रं मालुषं तु द्विषापहम् ॥ १ ॥
इत्यष्टमूत्राणि ।

मनुष्य के मूत्र का गुण—मनुष्य का मूत्र रक, पित्त तथा क्रिमि का नाशक, रेचक, कफ-वातनाशक, तिक्क, मोह और विष का नाशक है ॥ १ ॥

अथ त्रिफला ।

एका हरीतकी योजया हूँ च योजयौ विभीतकौ । चत्वार्यामलकान्येव त्रिफला प्रकीर्तिता ॥
त्रिफला के लक्षण—गुण—एक हरीतकी, दो विभीतक और चार आँवले के योग को ‘त्रिफला’ कहते हैं ॥ १ ॥

त्रिफला शोथमेहस्तो नाशयेद्विवरमज्वरम् । दीपनी श्लेष्मपित्तझी कुष्ठहन्त्री रसायनी ॥
सर्विंधुस्थौ संयुक्ता स्वैव नेत्रामयाज्ञयेत् ॥ २ ॥

त्रिफला—शोथ, प्रमेह । विषमज्वर का नाशक, अविदीपक, कफ-पित्त तथा कुष्ठ का नाशक, रसायन और मधु-धृत मिला हुआ होने पर नेत्रों के रोगों का नाशक है ॥ २ ॥

अथ त्रिकदु ।

पिष्पली मरिचं शुण्ठो व्रयमेतद्विमिश्रितम् ।

त्रिकदु इयुषणं व्योषं कदुत्रिकमथोर्यते । दीपने रुचिदं वातश्लेष्ममन्वामिश्रूलनुत् ॥ ३ ॥

त्रिकदु के लक्षण और गुण—पीपरि, मरिच और सोंठ इन तीनों के मिश्रण को त्रिकदु, इयुषण, व्योष और कदुत्रिक कहते हैं । त्रिकदु, दीपन, रुचिकारक, वात, कफ, मन्दानिन, और शूल का नाशक है ॥ ३ ॥

अथ पञ्चकोलम् ।

पिष्पलीपिष्पलीमूलचव्यचित्रकनायरै । पञ्चकोलकमुच्यते ॥ १ ॥

पञ्चकोल के लक्षण और गुण—पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ इन पांचों के मिश्रण को ‘पञ्चकोल’ कहते हैं ॥ १ ॥

पञ्चकोलं त्रिदोषप्रदृष्टं दीपनयाचनम् । स्वरमेद्वोहरं चैव शूलगुलमार्तिनाशनम् ॥ २ ॥

पञ्चकोल त्रिदोषनाशक, रुचिकारक, दीपन, पाचन, स्वर तथा मेदका नाशक, शूल और गुलम की पीड़ा का नाशक है ॥ २ ॥

अथ षड्घणम् ।

पञ्चकोलं समरिचं षड्घणमुदीर्यते । पञ्चकोलगुणं तत्त्वं विशेषाद्विवर्धनम् ॥ ३ ॥

षड्घण के लक्षण और गुण—पञ्चकोल में मरिच को मिला देने से ‘षड्घण’ कहा जाता है। यह पञ्चकोल के गुणों वाला होता है, विशेषता यही है कि यह अविष्वर्धक होता है ॥ ३ ॥

अथ चतुरुषणम् ।

इयुषणं ग्रन्थिकयुतं जायते चतुरुषणम् । चतुरुषणमालयातं गुणैर्युष्युषणवद् शुधैः ॥

कफामिग्रान्थिविद्वभाश्विपीनसकासनुत् ॥ १ ॥

चतुरुषण के लक्षण और गुण—इयुषण में ग्रन्थिक (पिपरामूल) को मिला देने से ‘चतुरुषण’ कहा जाता है। चतुरुषण की इयुषण ही के समान गुणवाला तथा कफ, अग्निमाला, विषम, अरुचि, पीनस और कास का नाशक समझना चाहिये ॥ १ ॥

अथ त्रिजातचतुर्जाते ।

खगेलापत्रकैस्तुर्ष्वैस्तुर्षिसुगन्धिं त्रिजातकम् । नागकेसरसंयुक्तं चातुर्जातकमुच्यते ॥ ३ ॥

त्रिजात और चातुर्जात के लक्षण और गुण—दालचीनी, इलायची और तेजपात के मिश्रण को ‘विसुगान्धि’ और ‘त्रिजात’ कहते हैं। और उसी त्रिजात में नागकेसर मिला देने से उसे ‘चातुर्जात’ कहते हैं ॥ १ ॥

स्वरमेदशासकासमुखदोषविचाशनम् । वृथं ब्रह्मं च योगाहं चातुर्जातं रसायनम् ॥ २ ॥

त्रिजात और चातुर्जात—स्वरमेद—श्वास—कास और मुख के दोष का नाशक, वीर्यवर्धक, बलकारक, योगाह (योगों में पड़ने योग) और रसायन है ॥ २ ॥

अथ दशमूलकम् ।

विश्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काशमरी पाटला तथा ।

शालिपर्णी पृथिवर्णी वृहतीद्वयगोम्भृतम् । दशमूलमिदं श्वाससनिपातज्वरापहम् ॥ ३ ॥

दशमूल के लक्षण, और गुण—दशमूल के लक्षण गुण—बिल्ब (बेल), अरनी (गनियार), सोनापाठा, गम्भार, पाढ़र, सरिवन, पिठिवन, दोनों वृहती अर्थात् बनभट्टा (बड़ी कटेरी), भटकटैया (छोटी कटेरी) और गोखरु इन दस औषधों के मिश्रण को ‘दशमूल’ कहते हैं। दशमूल—श्वास, संविपात और ज्वर का नाशक होता है ॥ ३ ॥

शालिपर्णी पृथिवर्णी वृहती कण्टकारिका । तथा गोम्भृतसंयुक्तं पञ्चमूलमिदं लघुम् ॥ २ ॥

लघु पञ्चमूल के लक्षण—सरिवन, पिठिवन, बड़ी कटेरी, भटकटैया और गोखरु इन पांच के मूल को ‘लघु पञ्चमूल’ कहते हैं ॥ २ ॥

विश्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काशमरी चाथ पाटला । इयं महत्पञ्चमूलं दशमूलसुभे युते ॥ ३ ॥

वृहत् पञ्चमूल के लक्षण—बेल, गनियार (अरनी), सोनापाठा, गम्भार और पाढ़र इन पांचों के मिश्रण को ‘वृहत् पञ्चमूल’ कहते हैं और इन्हीं दोनों (लघु और वृहत्) पञ्चमूलों के मिश्रित योग को ‘दशमूल’ कहते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चमूलं त्रिदोषस्त्रिवातन्नं दशमूलकम् । उवरकासधासशूलमध्वरम्भव्यहृचिनाशनम् ॥ ४ ॥

पञ्चमूल त्रिदोषनाशक होता है और दशमूल वात, ज्वर, कास, श्वास, श्लू, मन्दाद्य और अरुचि का नाशक होता है ॥ ४ ॥

अथ मध्यमपञ्चमूलम्—

बलापुनर्नवैरपद्मशूर्पर्णीद्वयेन च । मध्यमं कफवातन्नं नातिपित्तकरं परम् ॥ ५ ॥

मध्यम पञ्चमूल का लक्षण और गुण—बला, पुनर्नवा, एरण्ड, माषपर्णी और मुद्रपर्णी के मिश्रण को ‘मध्यम पञ्चमूल’ कहते हैं। मध्यम पञ्चमूल कफ—वातनाशक तथा अत्यन्त पित्त नहीं करने वाला अर्थात् थोड़ा पित्तकारक होता है ॥ ५ ॥

अथ पञ्चवल्कलानि—

न्यग्रोधोदुम्बराध्यथप्तलच्छयेतसवशकलैः । सर्वैरेकत्र मिलितैः पञ्चवशकलमुच्यते ॥ ६ ॥

पञ्चवल्कल के लक्षण और गुण—वट, गूलर, पौपर, पाकर और वेत के छाल के मिश्रण को ‘पञ्चवल्कल’ कहते हैं ॥ ६ ॥

रसे कषायं शीतं च वर्णं दाहतृष्णापहम् । योनिदोषं कफं शोफं हन्तीदं पञ्चवशकलम् ॥ २ ॥

पञ्चवल्कल, रसमें कषाय, शीतल, वर्णकारक, दाह और तृष्णा नाशक, योनिदोष, कफ और शोफ का नाशक होता है ॥ २ ॥

अथ पञ्चभृत्युणाः—

देवदाली शमी भृत्यी निर्गुणी शमकं तथा । रोगार्ते ज्वानपात्राहं पञ्चभृत्युणिति स्वृतम् ॥

पञ्चभृत्युण के लक्षण और गुण—देवदाली (वन्दाल), शमी, भृत्यी (मांग) निर्गुणी (सेन्हुआर) और शमक (तालिसपत्र) के मिश्रण को ‘पञ्चभृत्युण’ कहते हैं। पञ्चभृत्युण रोगियों के खान और पान के लिये कहा गया है ॥ १ ॥

अथाऽम्लपञ्चकम्—

बीजपूर्णं च जड्बीरं नारिङ्गं सात्त्वलदेतसम् ।

फलपञ्चालकं व्यातं तिसिरीसहितं परम् । पञ्चालकं समुद्दिष्टं सधोरुं आस्त्वपञ्चकम् ॥ ३ ॥

अम्लपञ्चक के लक्षण और गुण—बिजौरा नीबू, जड्बीरी नीबू, नारिङ्गी, अम्लवेत और इमली के फलों के मिश्रण को ‘अम्लपञ्चक’ कहते हैं अथवा ‘पञ्चालक’ कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ पञ्चाकारानि—

रक्षक्यमक्कलमूलाद्युप्रसार्यत्वं व्यासिनः । पञ्चाकाराभिति द्वोद्वयं प्राज्ञैरेकत्र विभित्तम् ॥ १४ ॥

पञ्चाकार के लक्षण—औषधियों के त्वचा (छाल), पत्ता, फल, मूल और पुष्प इन पांचों [एक रक्ष की पांचों वस्तु] के मिश्रण को ‘पञ्चाकार’ कहते हैं ॥ १ ॥

अथ संतर्पणगुणाः ।

प्राणादादिमस्त्वर्जैर्मन्दिताश्च सशक्तरम् । लाजचूर्णं सुमध्वाद्यं सन्तर्पणसुदाहसम् ॥ १ ॥

सर्पं लीसलं पाणे नेत्रोरेगविचाशनम् । वृथं रसायनं हृथं वीर्यंवृद्धिकरं परम् ॥ २ ॥

सन्तर्पण के लक्षण और गुण—द्राक्षा, अनार, खजूर इनके निकाले हुए रस में चीनी, लाजा (भान की लील) चूर्ण और मधु को मिश्रित किए योग को ‘सन्तर्पण’ कहते हैं। पीने से सन्तर्पण-युक्तिकर्ता और शीतल, नेत्र रोग नाशक, बलकारक, रसायन, हृथ और वीर्यवर्धक है ॥ १-२ ॥

अथ यक्षकर्दमः ।

कुकुमागुरुकर्दमकरस्तूरीचन्दनग्नानि च । महासुगन्धं इत्युक्तो नामतो यक्षकर्दमः ॥ ३ ॥

पश्चकर्दमं पश्चं स्वाक्षीर्तस्वशरोषहृष्टसः । सुगन्धिः कान्तिदश्वैर्विर्तिविचाशनः ॥ २ ॥

यक्षकर्दम (महासुगन्ध) के लक्षण और गुण—केसर, अगर, कर्पूर, कस्तूरी, और चन्दन के मिश्रित योग को ‘महा सुगन्ध’ वा ‘यक्षकर्दम’ कहते हैं इस प्रकार का ‘यक्षकर्दम’ शीतल, रवरोष नाशक, सुगन्धि, कान्तिकारक, सिर की पीड़ा और विष का नाशक होता है ॥ १-२ ॥

अथ केशरनामगुणाः ।

शेषं कुकुममधिशेखरमसुक्काशमीरजीपीतकं, काशमीरं रुचिरं धरं च पिशुनं रक्तं शठं शोणितम् ।

शाहीकं शुसूणं वरेण्यमसूणं काशेयकं जागुडं, कान्तं च द्विशिखं च केशरवरं गौरीवराचीरिसम् ॥ १५ ॥

राजनिधिण्डु के मत से केशर का नाम और गुण—कुकुम, अधिशेखर, असूक, काशमीर, पीतक, काशमीरी, रुचिर, वर, पिशुन, रक्त, शठ, शोणित, शाहीक, शुसूण, वरेण्य, मसूण, काशेयक, जागुड, कान्त, वहिशिख, केशर वर, गौरीवराचीरि ये सब केसर के नाम हैं, अर्थात् पर्यायवाची शब्द हैं ॥ १ ॥

कुकुमं सुरभि तिक्कटूणं कासवातकफकण्ठरुजाम्बम् ।

मूर्धशूलविषदोषविहन्तु रोचनं च ततुकान्तिकरं च ॥ २ ॥

मुगन्धि युक्त केशर, तित्स, कठु, उष्ण, कास-वात-कफ और कण्ठ की पीड़ाका नाश करनेवाला और शिरःशूल, विषदोष का नाशक, रुचिकारक, शरीर में सुन्दरता देने वाला होता है ॥ ३ ॥

वसंतकाले घुसणेन युक्तः कस्त्रिकाच्छन्नचास्तेषः ।

आधासितस्त्वेच्चवमज्ञिकाभिष्ठिदोषजिन्मन्मथजन्मभूमिः ॥ ३ ॥

वसन्त क्रतु में केसर से युक्त कस्त्री, चन्दन का सुन्दर लेप करना और सुन्दर माला धारण करना त्रिदोष नाशक और कामदेव की जन्मभूमि अर्थात् कामोदीपक है ॥ ३ ॥

अथ पञ्चसुगन्धिः ।

कङ्गोलकं पूराफलं लब्धकुमुमानि च । जातीफलानि कर्पूरमेत्यञ्चसुगन्धिकम् ॥ १ ॥

पञ्चसुगन्धि के लक्षण और गुण—कङ्गोल (मरिच), सुपारी, लंबंग का पुष्प, जायफर और कर्पूर के मिश्रण को 'पञ्च सुगन्धि' कहते हैं ॥ १ ॥

सुगन्धिपञ्चकं शीतं रक्तपित्तविनाशनम् । हन्त्याशु मुखैवगन्धं पीनसं वा कक्षाच्चित् ॥ २ ॥

सुगन्धिपञ्चक शीतल, रक्त-पित्त नाशक, शीघ्र मुख की दुर्गन्धि का नाश करने वाला, पीनस और कफ-रक्त का नाश करने वाला है ॥ २ ॥

अथ षट्साः ।

कटुस्तितः कवायश्च लवणोऽम्लस्तु पञ्चमः । मधुरेण समायुक्तः कथिताः षट्सा अमी ॥ १ ॥

षट् रस के लक्षण—कठु, तित्स, कवाय, लवण और पांचवा अम्ल तथा मधुर रस के मिश्रण को 'षट्स' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ मधुरत्रिकम्—

शृतं गुणोऽथ माहीकं विज्ञेयं मधुरत्रयम् । शैयं त्रिमधुरं चैव प्रोक्तं च मधुरत्रिकम् ॥ १ ॥

मधुरत्रिक के लक्षण—घी, गुड़ और मधु के मिश्रण को मधुर त्रय, त्रिमधुर और मधुरत्रिक कहते हैं—ऐसा जानना चाहिये ॥ १ ॥

अथ समत्रिकम्—

हरीतकी नागरं च गुडं चैकत्र मिश्रितम् । त्रिसमं भाष्यते प्राज्ञेतरथा च्यपि समत्रिकम् ॥

समत्रिक के लक्षण—हरीतकी, सौंठ और गुड़ के मिश्रण को बुद्धिमान 'त्रिसम' और 'समत्रिक' भी कहते हैं ॥ १ ॥

अथ क्षारत्रयम्—

स्वर्जिक्षारो यवक्षारटक्णक्षार एव च । क्षारत्रयं समाख्यातं त्रिकारं च प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

क्षारत्रय के लक्षण—सज्जीक्षार, यवक्षार और टक्णक्षार के मिश्रण को 'क्षारत्रय' और 'त्रिक्षार' भी कहते हैं ॥ १ ॥

अथ क्षारपञ्चकम्—

पलाशतिळमुखाणां खाराः स्वर्जियवाग्रजैः । समांशमिलिताः पञ्च क्षारपञ्चकमादिशेत् ॥ १ ॥

क्षारपञ्चक के लक्षण—पलाश क्षार, तिळ क्षार, मुख (मोखा) क्षार, सज्जी खार और जवा खार के समांश मिश्रण को 'क्षारपञ्चक' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ क्षाराष्टकम्—

अपामार्गपलाशाक्तिलमुख्यवाग्रजम् । स्वर्जिटक्णपांसुंयुक्तं क्षाराष्टकमुदाहृतम् ॥ १ ॥

क्षाराष्टक के लक्षण—अपामार्ग क्षार, पलाश क्षार, मन्दार क्षार, तिळक्षार, मुख (मोखा) क्षार, यवक्षार, स्वर्जिक्षार और टक्णक्षार के मिश्रण को 'क्षाराष्टक' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ क्षारद्वयम्—

स्वर्जिका यावश्यकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम् । ज्ञेयौ वह्निमौ खारौ स्वर्जिकायावश्यकज्ञौ ॥ १ ॥

क्षारद्वय के लक्षण गुण—स्वर्जिक्षार और यवक्षार के मिश्रण को 'क्षारद्वय' कहते हैं, इन दोनों स्वर्जिक्षार और यवक्षार को अस्ति के समान गुण वाले जानना चाहिये ॥ १ ॥

क्षारश्राव्येऽपि गुरुमार्णीग्रहणीरुक्षिष्युः सराः ।

पाचनाः क्रिमिपुरस्ववात्राः शर्करेश्मरिनाशनाः ॥ २ ॥

अन्यान्य क्षारों के गुण—इन दो क्षारों के बाद जो क्षार कहे गये हैं सब गुलम, अर्श, ग्रहणी रोग नाशक, सारक, पाचक, क्रिमि, पुरुषत्व, शर्करा और अस्मरी नाशक होते हैं ॥ २ ॥

अथ लवणत्रयम्—

सैन्धवं रुचकं चैव विडं च लवणत्रयम् । एतद्विलंतं प्रोक्तं नामतः शास्त्रकोविदैः ॥ १ ॥

लवणत्रय के लक्षण—सैन्धव (सेंधा) लवण, सौवर्चल (काला नमक) और विडलवण (पूतिलवण-विरिया नोन) के मिश्रण को 'लवणत्रय' कहते हैं और शास्त्रज्ञाताओं ने इसे 'त्रिलवण' भी कहा है ॥ १ ॥

अथ लवणपञ्चकम्—

सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्दिदमेव च । सामुद्रेण समायुक्तं ज्येष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ १ ॥

लवणपञ्चक के लक्षण—सौवर्चल (काला) नमक, सैन्धव लवण, विड (पूति लवण) लवण, औद्दिद (खादी) लवण और सामुद्र लवण (पांगा) के मिश्रण को 'लवणपञ्चक' जानना चाहिये ।

एकद्वित्रिचतुर्पञ्चलवणानि क्रमाद्विदुः । मधुरं सृष्टविषमूलं स्तिनधं सूचमं द्वलापहम् ॥

लवण एक, दो, तीन, चार और पांच जहां कहे वहां—उनमें कम से एक से सौवर्चल, दो से सौवर्चल और सैन्धव, तीन से—सौवर्चल सैन्धव और विड, चार से—सौवर्चल सैन्धव, विड और औद्दिद तथा पांच से—सौवर्चल, सैन्धव, विड, औद्दिद और सामुद्र लेना चाहिये । लवणों के गुण—लवण मधुर, मलमूत्रकारक, स्तिनध, सूक्ष्म और बलनाशक तथा वीर्य में उष्ण, दीपन, तीक्ष्ण कफनाशक और पित्तवर्धक जानना चाहिये अर्थात् ये सब गुण लवण में विद्यमान रहते हैं ॥ २ ॥

अथ लवणषट्कम्—

सामुद्रं सिंधुं रुचकं विडं रोमकपांशवम् । षट्ते च समाख्याता लवणाः शास्त्रकोविदैः ॥ १ ॥

लवण षट्क के लक्षण—सामुद्र लवण (पांग), सैन्धव लवण, रुचक (काला) लवण, विड लवण (पूति लवण), रोमक लवण (साम्भर लवण) और पांशु लवण (खारी) इनके मिश्रण को शास्त्र के ज्ञाताओं ने लवण षट्क कहा है ॥ १ ॥

अथ चन्दनम् ।

स्वादे तिर्कं कथे पी छेदे रक्तं तनौ सितम् । ग्रन्थिकोटरसंयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुद्दयते ॥ १ ॥

चन्दन के लक्षण, भेद और गुण—चन्दन की परीक्षा जो चन्दन स्वाद में तिर्क, रस वाला हो, धिसनमें पीले वर्ण का हो, काटने पर लाल वर्ण का हो, देखने में शेष वर्ण का हो, और गाठ तथा कोटर (खोदिला) वाला हो वह चन्दन श्रेष्ठ कहा गया है ॥ १ ॥

चन्दनं शीतलं रुक्षं तिक्तमाहुदानं लघु । हृद्यं वर्णं विषश्लेष्मतुरुषापित्ताद्वदाहजित् ॥ २ ॥

गुण—चन्दन शीतल, रुक्ष, तिर्क, वित्त को प्रसन्न करने वाला, लघु हृदय को हितकर, वर्ण शरीर की कान्ति) बढ़ाने वाला, विष-कफ-तृष्णा-पित्त-रक्त और दाह नाशक होता है ॥ २ ॥

कालीयकं इक्षुणं विशेषाद्रोगनाशनम् । कृष्णागुरुणं कर्णाद्विरोगनुच्छीतकं लघु ॥ ३ ॥
कालीयक (पीतचन्दन) के गुण—कालीयक चन्दन रक्त चन्दन के गुणों से युक्त एवम् विशेष कर रोगों का नाश करने वाला होता है । कृष्णागुरु (काली अगर) के गुण—काली अगर कर्ण, अक्षिरोग नाशक, शीतल और लघु होता है ॥ ३ ॥

अथ गुदूचीस्त्वगुणाः ।

खिक्कासत्त्वं हरति सकलं दुस्तरं तीव्रतापं, काले चोकं भवति च वृणां यौवनेषु उवरेषु ।
दाहं मेहं ज्वरमध्यचित्कृष्णासपाण्डवश्चहिकाः, स्त्रीणां रक्तप्रदरजनिते रोगराजेऽपि युक्तम् ॥ १ ॥

गुदूची सत्त्व के गुण—गुदूची का सत्त्व सब प्रकार के दुरतर एवम् तीव्र ताप को हरण करता है, समय के अनुसार सेवन करने से युक्तवस्था में, ज्वर में—दाह, प्रमेह, ज्वर अस्त्रिच, तृष्णा, श्वास, पाण्डु, अर्श, दिक्का, खियों के प्रदर से उत्पन्न रोग राज (यक्षमा) आदि में हितकर कहा है ॥ १ ॥

अथ स्वरसादयः ।

अथात्र स्वरसः कशकः काथश्च हिमाण्डकी । शेशाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्थुर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

स्वरस आदि की व्यवस्था—कषाय के मेद—स्वरस, कल्प, क्षाय, हिम और फाट इस प्रकार कषाय के पांच मेद होते हैं । इन पांचों कषायों में प्रत्येक उत्तरोत्तर लघु होते हैं अर्थात् स्वरस से कल्प, कल्प से काथ, काथ से हिम और हिम से फाट लघु होता है ॥ १ ॥

अथ स्वरसकल्पना ।

अहतास्तरणाकृष्णाद्वद्वयात् लघुणात् समुद्देशेत् । वस्त्रनिष्ठीदितो यः स्थान्द्रसः स्वरस उच्चते ॥

स्वरस की विधि—जो औषधि अहत अर्थात् कटी—खुटी (कीड़े आदि अथवा शीतात्पादि से नष्ट) नहीं हुई तथा तत्काल की लाई हुई खुली और पीसी हुई हो और वस्त्र से छान कर उसका जो रस निकाला जाय उसे 'स्वरस' कहते हैं ॥ १ ॥

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं विसं च द्विगुणे जले । अहोरात्रं स्थितं तस्मान्नवेद्वा रस उत्तमः ॥ २ ॥

आदाय शूर्णं द्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे । जलेऽद्विगुणिते साध्यं पादशिष्टं च गृह्णाते ॥ ३ ॥

दूसरी विधि—एक कुडव सूखी औषधि चूर्णकर दुगुने जल में एक दिन रात-भिजो दिया जाय उसके बाद कपड़े से छानने पर जो रस निकले उसे भी उत्तम स्वरस कहते हैं । अथवा स्वरस बनाना जहाँ असम्भव हो वहाँ सूखा द्रव्य (सूखी औषधि) लेकर अठगुने जल में औटे और जब चौथाई शेष रहे तो उत्तर कर छान कर स्वरस के स्थान में काम में लावे ॥ ३ ॥

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमधं प्रयोजयेत् । निशोषितं चाप्तिसिद्धं पलमात्रं रसं पिवेत् ॥ ४ ॥

कषायों की मात्रा—कषायों में स्वरस उरु होता है अतः उसकी मात्रा आधा पल अर्थात् दो तोला देनी चाहिये । रात्रि भर रक्षा हुआ अर्थात् दूसरी विधि से बनाये हुए तथा अग्नि से बनाये हुए कषाय की मात्रा एक पल चार तोला देनी चाहिये ॥ ४ ॥

मधुषेतागुडवाराजीरकं लवणं तथा । धूतं तैलं च चूर्णादीन् कोलमात्रान् रसे क्षिपेत् ॥ ५ ॥

कषायादि के प्रक्षेप की मात्रा—मधु, चीनी, गुड, क्षार, जीरा, लवण धूत, तैल और चूर्णादि का प्रक्षेप यदि कषाय, (स्वरसादि) में देना हो तो एक कोल अर्थात् छः मासा देना चाहिये ॥ ५ ॥

स यथा—

अनृतासायाः रसः चौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजितः । हरिद्राचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाहिकः ॥ ६ ॥

गुदूची स्वरस के गुण—गुदूची का स्वरस मधु मिलाकर पीने से अथवा हरिद्रा का चूर्ण

मिला कर पीने से अथवा औंवले का रस तथा मधु मिला कर पीने से सब प्रकार के प्रमेह का नाश करता है ॥ ६ ॥

अथ पुटपाककल्पना ।

पुटपाकस्य मात्रेण लेपस्याङ्गारवर्णता । लेपं च दृथुकुलं स्थूलं कुर्याद्वाङ्गुष्ठमात्रकम् ॥ १ ॥
पुटपाक विधि—पुटपाक के सिद्ध हो जाने के लक्षण—पुटपाक के परिपक हो जाने की मात्रा (लक्षण) यह है कि पुटपाक के ऊपर का लेप जब अझार जैसा लाल हो जाय तब समझना चाहिये कि 'पुटपाक' सिद्ध हो गया । लेप पुटपाक के ऊपर दो अड्डुल मोटा लगाना चाहिये अथवा अंगूठे के जितना मोटा लगाना चाहिये ॥ १ ॥

काशमरीचटजङ्घादिपत्रैवैष्टनमुत्तमम् । पलमात्रो रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत् ॥
कस्तकचूर्णद्रवायास्तु देयाः स्वरसवद् बुधैः ॥ २ ॥

पुटपाक के वैष्टन के द्रव्य—पुटपाक बनाने के लिये कल्प किये द्रव्य के ऊपर गम्भीर, वट और जामुन आदि के पत्तों का वैष्टन उत्तम होता है । अर्थात् जिस द्रव्य का पुटपाक की विधि से रस निकालना हो उस द्रव्य का कल्प बनाकर उपरोक्त पत्तों के मोटे वैष्टन से वैष्टित कर उसके ऊपर दो अड्डुल वा अंगूठे जितना मोटा मिट्टी का लेपकर, सुखाकर आग में डाले और जब उसका लेप अझार के समान हो जावे तब उसे निकाल ले । पत्ते आदि अलग कर रस निचोड़ कर काम में लावे । पुटपाक से निकाले रस की मात्रा—पुटपाक से निकाले हुए रस की मात्रा एक पल (चार तोला) ग्रहण करना चाहिये और उसमें मधु देना हो तो एक कर्ष (१ तो ०) देना चाहिये तथा कल्प, चूर्ण और द्रव आदि देना हो तो बुद्धिमान् को स्वरस में कहे हुए मात्रा के अनुसार देना चाहिये ॥ २ ॥

स यथा—

तरकालाकृष्णकुटजस्य तण्डुलवारिणा । पिण्डां चतुर्ष्वलमितां ज्ञम्बूपमूववेष्टिताम् ॥ ३ ॥
सूक्ष्मबद्धां च गोभूमपिष्टेन परिवेष्टिताम् । लिंसां च घनपक्षेन गोमयस्त्विना दहेत् ॥ ४ ॥
अङ्गारवर्णां च मूदं द्विष्टा वहेः समुद्देशेत् । ततो रसं गृहीत्वा च शीतं चौद्रयुतं पिवेत् ।
जयेसर्वानीसारान्दुस्तरान् सुविरोधितान् ॥ ५ ॥

जैसे (उदाहरण)—कुटज पुटपाक (अतीसार रोग में)—तत्काल कुटज की त्वचा लाकर चावल के धोवन में पीस कर चार पल (सौलह तोला) मात्रा में, और जामुन के पत्तों से वैष्टित कर सूत से अच्छी तरह बांधकर उसके ऊपर गेहूं के आंटे का दो अड्डुल मोटा लेप ऊपर से मिट्टी का लेप कर गोइठा (कण्ठे) के अंग्रिमे डाल दे जब वह मिट्टी का लेप अझार के समान लाल हो जावे तब अग्नि से निकाल ले और ठंडा होने पर उसके ऊपर की मिट्टी पत्रादि हटाकर रस निचोड़े और उस रस में ठंडा होने पर मधु का एक कर्ष (१ तो ०) प्रक्षेप देकर पीवे तो सब प्रकार के दुस्तर एवं पुराने अतीसार का नाश होता है ॥ ३-५ ॥

अथ कल्पकः ।

द्रव्यमात्रं शिलापिण्डं शुष्कं चा सजलं भवेत् । प्रक्षेपावापकल्पस्ते तन्मात्रा कर्षसमिता ॥ ३ ॥

कल्प विधि—आर्द्ध द्रव्य (औषधि) को शिला पर पीस देवे अथवा शुष्क द्रव्य को जल देकर अच्छी तरह पीस देवे तो उसे कल्प कहते हैं, इसमें प्रक्षेप भी दिया जाता है और इसके खाने की मात्रा १ कर्ष (१ तो ०) होती है ॥ ३ ॥

कल्पके मधु धूतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया । सितां गुडं समं दद्याद् द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥

कल्क में प्रक्षेप देने की मात्रा-कल्क में मधु, घृत और तेल का प्रक्षेप देना हो तो दूनी मात्रा से देना चाहिये अर्थात् कल्क जितना हो उससे दूना, चीनी और गुड़ देना हो तो सम अर्थात् कल्क के बराबर और द्रव पदार्थ देने हों तो कल्क से चौमुखा देना चाहिये ॥ २ ॥

स यथा—

**त्रिवृद्धा पञ्चवृद्धा वा सप्तवृद्धाऽथ कणाः । पिवेत्पिण्डा वशदिनं तास्तथैवापकर्षयेत् ॥
एवं विशदिनं सिद्धं पिप्पलीवर्धमानकम् । अनेन पाण्डुवातास्त्रकासश्चासाखचित्तरः ॥
उद्धराणांस्थथश्लेषमवाता नश्यन्त्युरोग्रहः ॥ ४ ॥**

उदाहरणार्थ जैसे वर्धमान पिण्डी कल्क—पाण्डुवादि रोग में तीन, पांच अथवा सात पिप्पली कम बढ़ाकर पीस कर दस दिन तक पीवे और उसी प्रकार कम से घटा कर दस दिन पीवे अर्थात् पहले दिन तीन, पांच वा सात, दूसरे दिन छः, दस वा चौदह इस प्रकार दस दिन तक बढ़ाये और फिर दस दिन इसी कम से घटावे इस तरह पीसी हुई पिप्पली को बीस दिन तक खावे इसे सिद्ध वर्धमान पिप्पली कहते हैं। इसके सेवन करने से पाण्डु, वातरक्त, कास, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदर, अर्श, क्षय, कफ, वात और उरोग्रह आदि कम नाश होता है।

वृद्धमान पिप्पली कल्क की स्पष्ट सेवन विधि—

दिन प्रमाण कल्कार्थं पिप्पली का प्रमाण—

प्रथम दिवस	३,	५,	अथवा	७	दिन प्रमाण कल्कार्थं पिप्पली का प्रमाण—
द्वितीय	६,	१०,	"	१४	एकादश दिवस ३०, ५०, अथवा ७०
तृतीय	९,	१५,	"	२१	द्वादश „ २७, ४५, „ ६३
चतुर्थ	१२	२०,	"	२८	त्रयोदश „ २४, ४०, „ ५६
पंचम	१५,	२५,	"	३५	चतुर्दश „ २१, ३५, „ ४९
षष्ठ	१८,	३०,	"	४२	पञ्चदश „ २८, ३०, „ ४२
सप्तम	२१,	३५,	"	४९	षोडश „ १५, २५, „ ३५
अष्टम	२४,	४०,	"	५६	सप्तदश „ १२, २०, „ २८
नवम	२७,	४५,	"	६३	अष्टादश „ ११, १५, „ २१
दशम	३०,	५०,	"	७०	उनविंशति „ ६, १०, „ १४

बलानुसार सेवन करना चाहिये अर्थात् हीन वल का मनुष्य ३ ही पीपरि से प्रारम्भ करे, मध्य वल का मनुष्य ५ से और पूर्ण वल का मनुष्य ७ पीपरि से प्रारम्भ करे, ऊपर वही ३, ५, ७ की गणना का क्रम लिखा गया है।

इस कल्क अथवा किसी कल्क में अनुपानार्थ दूध या द्रव पदार्थ पूर्व कथित चतुरुण ही लेना चाहिये इससे कम नहीं।

अथ काथः ।

**पानीयं षोडशगुणं छूणो द्रव्यपले-क्षिपेत् । मृत्युन्मृत्युं विनियोगद्वयाद्याह्यमष्टमोशाक्षेपितम् ॥ १ ॥
तज्जलं पाययेद्वीमान् कोणाणं सूदूप्रियाधितम् । श्वतः काथः कथायश्च निर्यहः स निगद्यते ॥ २ ॥**

काथ विधि—मेद, लक्षण और गुण—काथ बनाने की विधि—कुटा हुआ द्रव्य (औषध) एक पल (चार तोला) सोलह गुणे (६४ तो ०) पानी में ढोड़कर मिट्टी के पात्र में रख कर मधुर आग पर औटाके और अष्टमांश (८ तो ०) शेष रहने पर उसे उतार लेवे उस मधुर मिट्टी पर

पकाये कोण (कुछ गरम) जल को बुद्धिमान् वैद्य पिलावे। उस जल को शून्त, क्षाथ, कथाय और निर्यह कहते हैं ॥ १-२ ॥

आहारसपांकं च संजाते द्विपलोन्मितम् । वृद्धवैद्योपदेशेन पिवेत्काथं सुपाचितम् ॥ ३ ॥

काथ की मात्रा—आहार के रस के पच जाने पर यह काथ दो पल (८ तो ०) पीवे। वृद्ध वैद्यों का आदेश है कि काथ, अन्न खूब चम जाने पर पीना चाहिये ॥ ३ ॥

काथे द्विपेसितामशैश्वर्तुर्धृष्टमषोडशः । पित्तदातककातङ्के विपरीतं मधु द्वृतम् ॥ ४ ॥

काथ में प्रक्षेप देने की मात्रा—काथ में यदि चीनी ढोड़ना हो तो क्रम से वात, पित्त और कफ के दोष में चतुर्थीश, अष्टमांश और षोडशांश देना चाहिये अर्थात् वात के रोग में काथ के चतुर्थीश, पित्त में अष्टमांश और कफ में षोडशांश चीनी ढोड़ना चाहिये, किन्तु यदि मधु छोड़ना हो तो इसके विपरीत अर्थात् वात के रोग में काथ से षोडशांश, पित्त में अष्टमांश और कफ में चतुर्थीश मधु ढोड़ना चाहिये ॥ ४ ॥

जीरकं युग्मुलं चारं लवणानि शिलाजनु । हिञ्चु त्रिकटुकं चेव काथे शाश्वतिं लिपेत् ॥ ५ ॥

जीरा, गुग्गुल, क्षार, लवण, शिलाजांश, हींग और त्रिकटु (सौठ-वीपूरि-मरिच) आदि यदि प्रक्षेप करना हो तो काथ में एक शाण (३ मासे) ढोड़ना चाहिये ॥ ५ ॥

चारं धृतं तलमूत्रं चान्यद् द्रव्यं तथा लिपेत् । कलकचूर्णादिकं काथे निर्विपेत् कर्वसमितम् ॥ ६ ॥

क्षीर, घृत, तल, मूत्र अथवा इसी प्रकार का अन्य द्रव्य और कलक-चूर्णादि यदि प्रक्षेप करना हो तो काथ में एक कर्व ढोड़ना चाहिये ॥ ६ ॥

स यथा—

गुद्धचीधान्यकारिष्टकचन्द्रनपद्धकः । गुद्धचायादिरथं काथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ ७ ॥

जैसे उदाहरणार्थ गुद्धचायादि काथ ज्वरों में—गुद्धची, धनियाँ, नीबू, लालचन्दन, पच्चाकाढ़ इन सब द्रव्यों का बनाया हुआ काथ सर्व ज्वरनाशक कहा है ॥ ७ ॥

अथ हिमकल्पना ।

**मृणगद्रव्यपलं सम्यक्षपद्मभिर्निरपलैः प्लुतम् । निःशोषितं हिमः स स्यात्यथा शीतकषायकः ॥
तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैव निश्चयः ॥ १ ॥**

हिम कल्पना—हिम बनाने की विधि और मात्रा—अच्छी तरह कुटी हुई (चूर्णित) ओषधि (द्रव्य) एक पल (४ तो ०) को छगुने (२४ तो ०) जल में रात भर भिजोवे अथवा औषध जल को खूब शोप लेवे तब उस जल को काम में लाना चाहिये, उसे हिम वा शीत कथाय कहते हों और उसकी मात्रा फाण्ट जो आगे कहेंगे उसीकी तरह से सब स्थानों में लाना चाहिये ॥ १ ॥

स यथा—

आग्र जग्न्वं च ककुभं चूर्णीकृत्य जले लिपेत् । हिमं तत्त्वं पिवेत् प्रातः मृशौद्रं रक्षपित्तलित् ॥ २ ॥

जैसे उदाहरणार्थ आग्रादि हिम रक्षपित्त प्रात गुण में—आम, जामुन और अलून के ठाल को चूर्ण कर जल में छोड़ देवे प्रातः आल उसके हिम को मधु भिला कर पीवे तो रक्षपित्त वा नाश करता है ॥ २ ॥

अथ फाण्टकल्पना ।

**मृणगद्रव्यपले सम्यग्जलमूत्राणि विनिश्चिपेत् । मृत्युन्मृत्युं कुडवोन्मानं तत्त्वं स्वाच्येत्पटात् ॥ ३ ॥
स स्यात्वर्ध्वप्रद्वयः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । मधुशैतागुद्धादीश्च काशश्वत्त्र निश्चिपेत् ॥ ४ ॥**

फाण्ट कल्पना—बनाने की विधि, मात्रा तथा प्रक्षेप मान—अच्छी तरह कुटी हुई औषधि (द्रव्य) एक पल (चार तो०) को मिट्ठी के पात्र में एक कुडव (१६ तो०) उण जल में छोड़े तत्पश्चात् उसे कपड़े से छान लेवे, वह चूर्ण का द्रव फाण्ट कहा जाता है । और उसके पीने की मात्रा—दो पल (८ तो०) है । उसमें यदि मधु, चीनी और गुड़ आदि का प्रक्षेप देना हो तो काथ की तरह अर्थात् काथ के प्रक्षेप की मात्रा से देना चाहिये ॥ १-२ ॥

अथ वर्था—

मधुकपुष्पं मधुकं चन्दनं सपरुषकम् । मृणालं कमलं लोध्रं गम्भारीं नागकेसरम् ॥ ३ ॥

त्रिफलासारिवाद्राचालाजान् कोणजले क्षिपेत् ।

सितामधुयुतः पेयः फाण्टो वाऽसौ हिमोऽथवा ॥ ४ ॥

बातपित्तज्वरं दाहं तृणामूर्ढ्छर्तिभ्रमान् । रक्तपित्तं मदं हृत्याक्षात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥

जैसे उडाहरणार्थी मधुकपुष्पादि फाण्ट वात-पित्त ज्वर आदि में—मधुए का युष्प, मुलहठी, लाल चन्दन, फालसा, कमलनाल, कमल, लोध, गम्भार का छाल, नागकेसर, त्रिफला (आँवला, हर्दा, बहेरा), सारिवा, द्राक्षा (दाख) और धान की खील को उण जल में छोड़ देना चाहिये और छान कर उसमें चीनी और मधु का प्रक्षेप देकर फाण्ट बना कर अथवा इन औषधों को हिम ही बना कर पीने से वात-पित्त ज्वर, दाह, तृणा, मूर्ढ्छ, अरति (पीड़ा), ब्रम, रक्त-पित्त और मद का नाश होता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ ३-५ ॥

अथ चूर्णकल्पना ।

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिण्ठं वस्त्रयालितम् । तरस्याच्चूर्णं रजः लोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥

चूर्णं कल्पना—चूर्ण की विधि, लक्षण मात्रा और प्रक्षेप मान—जो द्रव्य (औषध) अत्यन्त शुष्क कर भली भांति पिसा हुआ और कपड़े से छाना हुआ हो उसे चूर्ण, रज और क्षोद कहते हैं । और उसकी मात्रा एक कर्ष (१ तो०) की खानी चाहिये ॥ १ ॥

चूर्णं गुड़ः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत् । चूर्णेषु भजितं हङ्कु जीरकं चेति केष्वन ॥ २ ॥

चूर्ण में यदि गुड़ देना हो तो चूर्ण जितना हो उसके बराबर देना चाहिये, चीनी देनी हो तो दूना देना चाहिये । और चूर्ण में कहीं हींग और जीरा देने को कहा गया हो तो भूजा हुआ अर्थात् हींग और जीरा भूज कर देना चाहिये ॥ २ ॥

अथ वटककल्पना ।

वटका अथ कथ्यन्ते तत्त्वाम् गुटिका वटी । मोदको बटिका पिण्डी गुडो चर्तिस्तथोऽथते ॥ १ ॥

वटक कल्पना—गुटिका (गोली) के नाम—(पर्यायवाची शब्द) वटक का दूसरा नाम—गुटिका, वटी, मोदक, बटिका, पिण्डी, गुड़ और वट्ठि ये सब गुटिका (वटक) के नाम हैं ॥ १ ॥

लेहवत् साध्यते वह्नी गुडो वा शर्कराऽथवा । गुग्गुलुवां क्षिपेत्तत्र तच्चूर्णं निर्मिता वटी ॥ २ ॥

विधि—अभि पर गुड़, शर्करा अथवा गुग्गुल को चढ़ा कर अबलेह जैसा कर उसमें चूर्णादि मिला कर गुटिका बनाइ जाती है ॥ २ ॥

कुर्यादवहिसिद्धेन क्षिप्त गुग्गुलुना वटीम् । द्रवेण मधुना वाऽपि गुटिका कारयेद् गुधः ॥ ३ ॥

कहीं कहीं गुदिमान् विना आग पर चढ़ाये ही गुग्गुल की वटी बनाते हैं, अथवा द्रव पदार्थ या मधु मिलाकर गोली बना लेते हैं ॥ ३ ॥

सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः । सर्वचूर्णसमः कार्यो गुग्गुलमधु तत्समम् ॥ ४ ॥

गुटिका में प्रक्षेपादि विधि—वटी के योग में चूर्ण जो लिखे हों उनसे चौहुनी चीनी देनी चाहिये, और उसके (चूर्ण के) दूना गुड़ देना चाहिये, चूर्ण सब औषधियों का आपस में समान ही देना चाहिये और गुग्गुल तथा मधु चूर्ण के समान ही देना चाहिये ॥ ४ ॥

प्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषरवैः । कर्षप्रमाणां तम्मात्रां बलं इट्टा ग्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

मोदक (वटी) में यदि द्रव पदार्थ देना हो तो दूना देना चाहिये । वटक की मात्रा—गुटिका खाने की मात्रा एक कर्ष (१ तो०) देना चाहिये यह शाक्यों मात्रा है, परन्तु वैद्य को रोगी का बलादि देखकर इसकी मात्रा ठीक करना चाहिये ॥ ५ ॥

अथावलेहः ।

काथादेयस्पुनः पाकाद्वनत्वं सा रसक्रिया । सोऽबलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्थापलोन्मिता ॥

अबलेह—विधि—काथादिक को पुनः पाक करने से जो घनत्व होता है अर्थात् गाढ़ा हो जाता है उसको रसक्रिया, अबलेह तथा लेह कहते हैं । और उसके सेवन करने की मात्रा एक पल (४ तो०) है ॥ १ ॥

सिता चतुर्गुणं कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः । द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ २ ॥

अबलेह में यदि चीनी देनी हो तो चूर्ण के चौहुनी देनी चाहिये और गुड़—देना हो तो चूर्ण से दूना देना चाहिये, द्रव देना हो तो वह भी चौहुना देना चाहिये, यह विधि सब प्रकार के अबलेहों के लिये निश्चित समझना चाहिये ॥ २ ॥

दुधमिद्धुरसो यूषः पञ्चमूलकायाकः । वौताकायो यथायोग्यमनुपानं प्रशास्यते ॥ ३ ॥

अबलेह का अनुपान—दूध, रेख का रस, यूष, पञ्चमूल का क्षाय, अथवा वासा का काथ जो इसमें से रोगानुसार उपयुक्त हो विचार कर अनुपान के लिये अबलेह के साथ देना चाहिये ।

अथ स्नेहपाकविधिः ।

आदौ संचारयेत् काथं दुधं कर्षकं ततः क्रमात् । ततोऽन्यत् सुरभि द्रव्यमेष स्नेहविधिः क्रमात् ॥

इति मालतीमुकुरात् ।

स्नेहपाक—विधि—स्नेह (धृतादि) बनाने में पहले उसमें देने वाले काथ को बना लेना चाहिये—बाद में दूध देना चाहिये तब वटक इसके बाद अन्यान्य द्रव्य जो देने हों वह क्रमसे देना चाहिये वही स्नेहसाधन की विधि है ॥ १ ॥

तेलं कृत्वा कटाहे इट्टतरविमले मन्दमन्दानले तत्

पक्वं निष्केनभावं गतमिह हि यदा शैयभावं समेत्य ।

मजिष्ठाराश्चिलोप्त्रैर्जलधरनलदैः सामलैः साहपद्यैः

सूचीपुष्पाङ्गिनीरूपहितमथ तैस्तैलगन्धं जहाति ॥ २ ॥

तेल को मूर्च्छित करने की विधि—तेल को एक दृढ़ तथा स्वच्छ कडाही में रखकर मन्द २ अद्यि में पकावे, तेल पक कर जव फेन रहित हो जावे तब उतार लेवे जब वह तेल शीतल हो जावे तब उसमें मजीठ, हरित्रा, लोध, नागरमोथा, खस, आँवला, बहेरा, हर्दा, केतकीमूल और सुगन्धवाला इन द्रव्यों के विधिपूर्वक किये कल्प से भावित करने से तेल का दोष नष्ट होकर शुद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

तैलस्येन्दुकलांशकेन विकसा ग्राद्या तु मूर्च्छाविधौ
ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीहबेरलोप्रान्विताः ।

सूचीयुष्मवटावरोहनलिकास्तस्थाथ पादोशकाः ॥

पाच्यास्तेलकगन्धदोषहतये कल्पकीकृतास्तद्विद्दैः ॥ ३ ॥

मूर्च्छा-विधि में उपर्युक्त ओषधियों तथा तेल का प्रयोग—तेल के घोडशाश मजीठ और अन्य हरड, बहरा, आमला, नागरमोथा, हरिद्रा, हाउबेर, लोध, केतकीपुष्प, वरोह और नालिका इसमें से प्रत्येक द्रव्य-मजीठ के चतुर्थीश लेना चाहिये। इनके कल्पों से पाचित तेल अपने गन्धादि दोप से रहित हो जाता है ॥ ३ ॥

आत्रजम्बूकपिथानां वीजपूरकविष्वदयोः । शोधनं तिलतैलस्य पल्लवानां तु पञ्चकम् ॥ ४ ॥

तेल को शुद्ध करने वाले पञ्चपल्व—आम, जामुन, कैत, वीजपूर-(विजौरा) और बेल के पल्वों (पत्तों) को तेल की शुद्धि के लिये ढोड़ना चाहिए ॥ ४ ॥

कल्पकाच्छतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्काशश्चतुर्गुणः । काशाच्छतुर्गुणं वारि क्वाथः क्वाथः क्वाथसमो भ्रमः ॥

तैलपाक में कल्पादिक का परिमाण—तेल बसने में जो कल्पीय द्रव्य लिये हों उनके चौंगुना देना (वृतादिक) पदार्थ देना चाहिये, स्नेहादि से चौंगुना क्वाथ और क्वाथ से चौंगुना जल देना चाहिये और चतुर्थीश शेष रहने पर उतार लेना चाहिये ॥ ५ ॥

मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽप्युणं जलम् । कठिनात्कठिने द्रव्ये वारि घोडशभागिकम् ॥ ६ ॥

खेहार्थं क्वाथ के लिये जल मान—मृदु पदार्थों (ओषधियों) में काथ करने के लिये चौंगुना जल देना चाहिये, कठिन पदार्थों में अठुना और अत्यन्त कठिन पदार्थों में सोलह गुना जल देना चाहिये ॥ ६ ॥

कर्षादितः पलं यावद्वारि घोडशकं चिपेत् । तदूध्वं कुट्टवं यावतिषुपेदष्टगुणं जलम् ॥ ७ ॥

खेह के काश्य द्रव्य की मात्रा के अनुसार जल मान—कर्ष (१ तो ०) से लेकर पल [४ तो ०] पर्यन्त द्रव्य का यदि काथ करना हो तो सोलह गुना जल देना चाहिये और इससे ऊपर अर्थात् पल से ऊपर कुट्टव पर्यन्त द्रव्य का यदि काथ करना हो तो अठुना जल देकर काथ करना चाहिये ॥ ७ ॥

प्रस्थादितः चिपेशीरं स्वारी यावद्वतुर्गुणम् । शब्दहीनोऽप्तिनिक्षिष्ठः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥

इति योगरत्नावलितः ।

प्रस्थ मान से लेकर स्वारी मान पर्यन्त द्रव्य का काथ करना हो तो चौंगुना जल देकर करना चाहिये। स्नेह सिद्ध की परीक्षा—जो स्नेह पदार्थ सिद्ध किया गया हो वह यदि अग्नि पर दिया जाय और उसमें कोई शब्द न हो अर्थात् उचित सिद्ध न होने से स्नेह अग्नि में पड़ने पर चिट् र शब्द करता है वह शब्द यदि उसमें न हो तब स्नेह सिद्ध हुआं समझना चाहिये।

यदा फेनोद्ग्रामस्तैले फेनशान्तिश्च सप्तिष्ठिः । वर्णगन्धरसोरपतिः स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत् ॥ ९ ॥

और भी बचन—जब सिद्ध किये हुए तेल में फेन होने लगे और सिद्ध किये घृत में फेन शान्त हो जावे तथा जिस प्रकार का बचन या गया हो उस प्रकार के गन्ध, वर्ण और रस उसमें [वृतादिक में] उत्पन्न हो जावे तब उस स्नेह को सिद्ध हुआ जानना चाहिये ॥ ९ ॥

अकल्पकद्रव्ययोगानां कठिनानां विचारतः । क्वाथो चिधीयतेऽन्येषां कल्प एव भिष्ठमतः ॥

इति वैद्यालङ्कारात् ।

स्नेहादिक में देने के हेतु कल्पीय तथा काथीय द्रव्यों का विचार—जो द्रव्य [ओषध] अत्यन्त कठिन होने से कल्प बनाने लायक न हों उनका विचार कर काथ करना चाहिये, शेष अन्य द्रव्यों [मृदु पदार्थों] का कल्प ही देना चाहिये ऐसा वैयों का मत है ॥ १० ॥

ईषरिपष्टो भवेत्कल्पः क्वाथोऽप्तिनिक्षिष्ठो भ्रमः । स्नेहपाकस्थिधा श्रोक्षो मृदुमध्यः स्वरस्तथा ॥

योडा-सा पिसा हुआ पदार्थ ‘कल्प’ होता है, आग पर औटाया हुआ ‘क्वाथ’ कहा जाता है। स्नेह पाक का भेद—स्नेह पाक मृदु, मध्य और खर भेद से तीन प्रकार कहा गया है ॥ ११ ॥

ईषरसरसकल्पस्तु स्नेहपाका मृदुर्भवेत् । मध्यपाकस्थ सिद्धिश्च कल्पके नीरसकोमले ॥ ११ ॥

ईषरक्षितिनकल्पश्च स्नेहपाको भवेत्स्वरः । तदूध्वं द्रव्यपाकः स्याद्वाहक्षिष्ठप्रयोजकः ॥ १२ ॥

स्नेहादि स्नेह पाक का लक्षण—सिद्ध किये जिस स्नेह में के कल्पीय पदार्थ थोड़े रसयुक्त हों उसे मृदुपाक और जिसमें के नीरस हो गये हों किन्तु कोमल हों उसको ‘मध्यपाक’ तथा जिसमें के कल्पीय पदार्थ कुछ कठिन हो गये हों उसे स्नेह को ‘खरपाक’ समझना चाहिये। इसके ऊपर ‘स्नेहपाक’ को ‘द्रव्यपाक’ समझना चाहिये। और द्रव्यपाक यह दाह उत्पन्न करने वाला और निष्प्रयोजन है (काम में नहीं लाना चाहिये) ॥ १२-१३ ॥

आमपाकश्च निर्वायों वहिमान्धकरो गुरुः । नस्थाथ स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥

अम्बुदार्थ खरः प्रोक्षो युज्ञयादेवं पथोचितम् ।

घृतलैलगुडार्दीश्च साधयेष्वैकवासरे । प्रकुर्वन्युषितास्त्वंते विशेषाद् गुणसंचयम् ॥ १५ ॥

इति शाङ्खधरात् ।

आमपाक का स्नेह निर्वाय [गुणीन], अग्निमान्धकरक और गुरु होता है। नस्थकमें के लिये मृदुपाक का स्नेह; सब कार्यों के लिये मध्यपाक का स्नेह और अम्बुदार्थ के लिये खरपाक का स्नेह काम में लाना चाहिये। स्नेहादिकों की सिद्धि का दिन प्रमाण—घृत, तैल और गुडादिक को एक ही दिन में नहीं सिद्ध करना चाहिये, ये पूर्णित [वासी] होने पर विशेष गुणों का सञ्चय करते हैं ॥ १४-१५ ॥

तैलं संस्थाप्य पात्रे विधिवदथ पचेहासरादप्तिनानात्

वद्यैर्दुर्वैश्च कल्पस्तदनु सुरभिभिः शोधनीयविशुद्धेः ।

कस्तूरीचन्दनगौजलजलदस्टीरक्षपाटीरकुष्ठः

त्वङ्मसिष्ठुरुक्षागुरुनखरदलैः पीतकङ्गोलमुख्यैः ॥ १६ ॥

इति स्नेहपाकविधिः ।

अन्य बचन—तैल को विधिपूर्वक पात्र में रखकर—प्रत्येक द्रव्यों [काथ, दुग्ध तथा कल्पादि] के साथ एक एक दिन पृथक्-पृथक् पाक करना चाहिये अर्थात् पहले एक दिन काथ के साथ, फिर दुग्ध के साथ, फिर कल्प के साथ तथा अन्त में एक दिन शोधित सुगन्धित द्रव्यों के साथ पाक करना चाहिये। सुगन्धि के लिये जो द्रव्य शोधन योग्य हों उन्हें शुद्ध कर लेना चाहिये। सुगन्धि द्रव्यों में प्रायः प्रचलित तथा मुख्य द्रव्य कस्तूरी, चन्दन, कपूर, सुगन्धवाला, नागरमोथा, कच्चुर, लालचन्दन, कूट, दालचीनी, मजीठ, शिलाजीत, अगर, नसी, पद्मकेसर और कङ्गोल हैं ॥ १६ ॥

अथ लाक्षारसविधिः ।

दशांशं लोध्रमादाय तदशांशां च सर्जिकाम् ।

किञ्चिच्च बद्धीपत्रं वारि घोडशास्त्रम् । वस्थपतो रसो ग्राहो लाचाराः पादप्रोषितः ॥ १७ ॥

लाक्षारस की विधि—दस भाग लोध, उसके दशांश सजी, थोड़ा दैर का पता, जल सोलह भाग देकर औटावे, जब चतुर्थीश रहे तब कपड़े से छान कर लेवे ॥ १७ ॥

अथाऽऽसवारिष्टादयः ।

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यस्थं विष्ठितं भवेत् । आसवारिष्टमेदैस्तथोद्यते भेषजोचितम् ॥ १८ ॥

सन्धान विधि—द्रव पदार्थों में यदि कोई औषध चिरकाल तक स्थित रहता है वह सन्धान की प्राप्त हो जाता है, वह औषध के योग्य होने से आसव और अरिष्ट भेद का कहा जाता है ॥ १ ॥
यद्यपैषुषधाम्बुद्ध्यां सिद्धं मध्यं स आसवः । अरिष्टः व्याथसिद्धः स्थात्योमानं पलोन्मितम् ॥

आसवारिष्ट-लक्षण-मात्रा—जो विना पकाये हुए औषध तथा जल से सन्धान तैयार किया जाता है उसे 'आसव' कहते हैं। और जो काथ से सन्धान तैयार किया जाता है उसे 'अरिष्ट' कहते हैं। उन दोनों की मात्रा पीने के लिये ४ तो ० (१ पल) की होनी चाहिये ॥ २ ॥

अनुक्रमानारिष्टेषु द्रवद्वये गुडातुलाम् । शौद्रं चिपेद् गुडादर्थं प्रयेपं दशकाशकम् ॥ ३ ॥

सामान्य रूप से अरिष्ट की विधि—अरिष्ट में जहाँ पर द्रवादिक पदार्थों का मात्र [तौल] नहीं लिखा हो वहाँ द्रव एक द्रोण [२५६ पल], गुड़ एक तुला [१०० पल], मधु गुड़ से आधा [५० पल] और अन्यान्य प्रक्षेप की ओषधियां गुड़ से दशाश [१० पल] छोड़नी चाहिये ॥ ३ ॥
ज्ञेयः शीतरसः शीधुरप्रवधमधुरद्रवैः । निरः पक्वरसः सीधुः संयक्षमधुरद्रवैः ॥ ४ ॥

सीधु के भेद—[सिरका] विना पकाये हुए मधुर द्रव ऊंख आदि] के रस से जो सीधु [मध या सिरका] तैयार होता है उसे 'शीतरस सीधु' कहते हैं। और जो पकाये हुए इक्षु रसादिक से सीधु तैयार किया जाता है उसे 'पक्वरस सीधु' कहते हैं ॥ ४ ॥

परिषक्षास्त्रसंखानसमुत्पदां सुरां गुणः ।

सुरामण्डः प्रसक्षा स्थात्तसः काहृत्वरी घना ॥ ५ ॥

तदधो जगलो क्षेयो मेदको अगलाद्वनः । पक्षोऽसौ द्रवसाः स्थात्युरावीर्यं च किण्वकम् ॥ ६ ॥

सुरा तथा सुरा के भेद—अन्नादिकों को परिषक्ष कर जो मध बनाया जाता है उसे 'सुरा' कहते हैं। 'सुरामण्ड' अर्थात् सुरा के ऊपर सटे हुए मांड जैसे द्रव पदार्थ को 'प्रसक्षा' कहते हैं और उससे धने [गाढ़े] भाग को 'काहृत्वरी' कहते हैं, और उसके नीचे और धने [गाढ़े] भाग को 'जगल' कहते हैं, जगल से भी नीचे के धने भाग को [मेदक] कहते हैं, पकाये हुये अक्ष के सन्धान से अर्थात् वारणी यन्त्र द्वारा खींचे हुये सार पदार्थ 'सुरा' के निकाल लेने पर वचों कुर्दि सिद्धी को 'हत्तसार' कहते हैं और 'सुरारीज' [यिष्ट-yest] और 'किण्व' भी कहते हैं ॥ ५-६ ॥

यस्तालखर्जरसैः सन्धिं सा हि वारणी ।

कन्दभूलफलादीनि सस्तेहृष्टवणानि च ॥ ७ ॥

यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तत्पुरुक्मभिधीयते । विनष्टमग्लतां यातं मधु वा मधुरद्रवः ॥ ८ ॥

विनष्टः संधितो यस्तु तत्पुरुक्मभिधीयते । गुडाम्बुना सस्तैलेन कन्दशाकफलैस्तथा ॥ ९ ॥

साधितं चाम्लतां यातं गुडसुरुक्म प्रचञ्चते । पवमेवेहुसुरुक्म स्थान्युद्धीका सम्भवं तथा ॥ १० ॥

वारणी के लक्षण—जो मध ताड़ और खजूर आदि के रस से प्रस्तुत किया जाता है उसे 'वारणी' कहते हैं। सूक्त-लक्षण—जो मध द्रव पदार्थ में कन्द, मूल, फल, लेह (तेल-ची), लवण आदि मिलाकर प्रस्तुत किया जाता है उसे 'सूक्त' कहते हैं। चुक्त के लक्षण—जो मधु (शहद) नष्ट होकर अम्लता को प्राप्त होता है (खट्टा हो जाता है) तथा जो मधुर रसादिक गन्ने का रस, शर्करा या गुड़ का शर्वत सन्धानित हुआ नष्ट होकर अम्ल रस का हो जाता है उसे चुक्त कहते हैं। गुड़ सुक्त के लक्षण—गुड़ के रस से तेल, कन्द, शाक, फल आदि देकर जो सन्धान बनाया जाता है और जब उसमें अम्लता आ जाती है उसे 'गुडसुक्त' कहते हैं। इसी प्रकार इक्षुसुक्त अथवा मूदीका का भी 'सुक्त' जानना चाहिये ॥ ७-१० ॥

तुषाम्बु सधितं ज्ञेयमामैर्विद्वित्तैर्यथैः ।

वदैः सुनिस्तुवैः पवैः सौवीरं संधितं भवेत् ॥ ११ ॥

कुशमाषधान्यमण्डादिसंधितं कलिकं विदुः । सण्डाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्वपांदिभिः ॥

तुषाम्बु (तुषोदक), सौवीर, काञ्जिक (काँजी) और सण्डाकी के लक्षण—जो यवादिक को दर कर भूसी सहित का कच्चा ही सन्धान बनाया जाता है उसे 'तुषाम्बु' कहते हैं। यवादिक को भूसी रहित कर के और पका कर सन्धान बनाया जाता है उसे 'सौवीर' कहते हैं। जो सन्धान कुल्मास जैसे हुए गेहूं, धान्य और मण्डादिक देकर बनाया जाता है उसे 'काञ्जिक' (काँजी) कहते हैं। और जो सन्धान मूली और सर्सों आदि से बनाया जाता है उसे 'सण्डाकी' कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

अथ शिलाजतुकरणम् ।

मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मसखणां प्रकल्पत्वैः ।

लिङ्गिष्वास्युष्णपानीये वामैकं स्थापयेत् सुधीः ॥ १ ॥

मर्द्यथित्वा ततो नीरं गृहीयाद्युष्णरातितम् । स्थापयित्वा च मृत्यावै धारयेद्यातपे तुधः ॥ २ ॥

उपस्थितं वनं वस्त्वादिपित्येवन्यपानके । धारयेद्यातपे तस्मादुपरिस्थं वनं नयेत् ॥ ३ ॥

एवं पुनः पुनर्नित्वा द्विमासाम्यां शिलाजतु । भूयाक्षर्यथामं वहौ तिसं लिङ्गोपमं भवेत् ॥

निर्धूमं च ततः द्युदं संधकायेषु योजयेत् । अवस्थितं च यच्छ्रेष्ठतरिमल्लीरं विनिष्पितेत् ॥ ५ ॥

हृति शिलाजतुकरणम् ।

शिलाजीत का प्रकरण—पहले शिलायुक्त (जिस पत्थर में शिलाजीत हो) खण्ड को लाकर छोटे २ टुकड़े कर अत्यन्त उठाने जल में बृद्धिमूल एक पहर रखते उसके बाद खूब मर्दन कर (मसल कर) कपड़े में छान लेते तब उसे छने हुए जल को भिट्ठी के बर्तन में रख कर धूप में रख देते। उस के बाद द्रव के ऊपर स्थित धन (गाढ़े) भाग को दूसरे पान में युक्ति से निकाल लेते पुनः धूप में रख कर उसमें धनता उत्पन्न होने पर निकाल २ रखता जाते, इस प्रकार दो भास तक धन भाग धूप में रख कर निकाले तब नीचे के काले धनपदार्थ को निकाले यही शिलाजीत कार्य के लिये होता है और अंग्रे में देने से लिङ्ग के समान हो जाता है और विना धूये का होता है इसे शुद्ध और सब काम के लायक जानना चाहिये, और उसके नीचे शेष जो जल हो उसे फेंक देना चाहिये ॥ १-५ ॥

धात्वादीनां लक्षणशोधनमारणगुणानाह—

स्वर्णतारतात्राणिं नागवहौ च तीचणकम् ।

धातवः सप्त विशेषा अष्टमः व्यापि पारदः ॥ १ ॥ एकीयमतम् ।

धातु आदिकों का लक्षण (शोधक और गुण आदि)—धातुओं के नाम-भेद—सुवर्ण, रजत, पीतल, नाग, वंग (रांगा), नाग, शीशा और तीचण लोहा इस तरह सात प्रकार का धातु होता है। कोई २ आठवां धातु 'पारे' को कहते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ १ ॥

स्वर्ण तारं च ताम्रद्व वह्नो नागस्तु पञ्चमः ।

रीतिका च तथा धोषो लोहं चेत्यष धातवः ॥ २ ॥

अन्य मत से—सुवर्ण, रजत, ताम्र, वंग, नाग, पीतल, और धोष (कांसा) इस प्रकार ये सात धातु और आठवां, लोहा ये ही आठ धातुओं होती हैं ॥ २ ॥

तैले तके गांव मूत्रे का जिक्रे च कुलध्यके । सप्तधा तसनिर्वापात् सर्वलोहं विशुद्धति ॥ २ ॥

धातुओं की शुद्धि का प्रकार—सब धातुओं तेल, तक, गोमूत्र, कांसी और कुलध्य के काथ में अंग्रे में तपा २ कर सात बार बुझाने से शुद्ध हो जाती हैं ॥ ३ ॥

पित्र का नाश करता है, हृदय को हितकर, पौष्टिक, क्षय, व्रण, शरीर की अस्थिमन्दता, हिक्का, तथा आनाह (आधमान) का नष्ट करनेवाला और कफ का अत्यन्त नाशक एवं मनुष्यों के लिए सर्वदा हितकर है तथा रोगानुसार अनुपान भेद से सब प्रकार के रोगों का भी नाश करता है ॥ १ ॥

अथ रौप्यम् ।

गुरु जिग्धं गृहु शेतं द्वाहे छेदे च यद्यमभ्यः ।

बणीप्रियं चन्द्रद्वस्त्वच्छं तारमन्त्र गुणान्वितम् ॥ १ ॥

रौप्य उत्तम (चाँदी) के लक्षण—जो चाँदी गुरु, खिण्ड, कोमल, शेत, तपाने तथा काटने में भी शेत, देखने में उत्तम चन्द्रमा के समान स्वच्छ हो वह उत्तम है ॥ १ ॥

कूनिर्मं कठिनं रुक्षं रक्षीयतद्दलं लघु । द्वाहे छेदे च यद्यहु रूप्ये दोषा दृशा स्मृताः ॥ २ ॥

अयोग्य रजत के लक्षण—जो अन्यान्य धातु मिश्रित, कठिन, रुक्ष, लाल अथवा पीले दल चाला, लघु (इलका) और तपाने तथा काटने में जो नष्ट हो जावे इसप्रकार दस दोषों वाला अयोग्य रजत कहा गया है ॥ २ ॥

शोधनम्—

पश्चीकृतं तु रजतं सम्पत्सं ज्ञातवेद्धसि । निर्वापित्तमास्यस्य इसे वारत्रयं शुचि ॥ १ ॥

रौप्य शोधन—रजत को सूक्ष्म पत्र करके अग्नि में तपाकर अगस्त्य के रस में तीन बार तपाने से रौप्य शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

मारण—तारप्राणि सूक्ष्माणि कृत्वा ततुर्थयोः पृथक् ।

सूतगन्धकयोस्तुरथालयोः । खरवसंस्थयोः ॥ १ ॥

करकं कृत्वा कुमार्यद्विस्तेन तानि प्रलेपयेत् ।

शारावदमुटे रुदं त्रिशाद्वन्योपलैः पुटेत् । पचं रजतमाप्रोति गृह्णिं वारद्वयेन चै ॥ २ ॥

रौप्य मारण—अत्यन्त पतले शुद्ध चाँदी का पत्तर करके उसके बराबर पारा, गन्धक और हरताल को खरल में रखकर कुमारी (बीकुआर) के रस से कल्प बनाकर उस पर (रौप्य पत्रपर) लेप कर शाराव-सम्पुट में रख कपरमिटी कर तीस गोश्ठे की अग्नि में पूके इस प्रकार दो बार करने से रजतभस्म हो जाता है ॥ १-२ ॥

अन्यच्च—विद्याय पिण्डं सूतेन रजतस्याय मेलयेत् ॥ ३ ॥

तालगन्धं समं पश्चात्मद्वयेत्तिमुकद्रवैः । द्विन्नैः पुटेभ्येत्तिमुकद्रवैः ॥ ४ ॥

अन्य विधि—पिसे हुए पारद-गन्धक और हरताल को बराबर लेकर उसमें एक भाग रौप्य यम शुद्ध मिला कर नीबू के रस में मर्दन कर दी अथवा तीन बार पुट देने से चाँदी का भस्म रस कर्म के योग्य हो जाता है ॥ ३-४ ॥

अन्यच्च—मालिकं दरदनिम्बुजप्लुतं सूक्ष्मरौप्यवलसञ्चयं पुटेत् ।

द्वित्रिवारमय अस्यतां व्यजेत्पातकौध इव शङ्करस्मृतेः ॥ ५ ॥

और भी विधि—शुद्ध रौप्य पत्र में मालिक (स्वर्णमालिक या रौप्यमालिक) और दरद सिंगरिफ, नीबू के जल में मर्दित कर शाराव-सम्पुट में रखकर दो अथवा तीन बार फूंके इससे (इस योग से) इस प्रकार रौप्य का भस्म हो जाता है जिस प्रकार शङ्कर के स्मरण से पाप भस्म हो जाता है ॥ ५ ॥

गुणः—तारं शीतकषायमग्निमधुरं दोषत्रयच्छेदनं

स्तिन्धं दीप्तनमित्तिकुचिक्षिगद्यजिह्वाहं विषादिं हरेत् ।

मेदोद्देवि मदात्ययात्ययकरं कान्त्यायुरारोग्यकृ-

थप्यमाप्समृतिशूलपाण्डुपलितसूनीहृष्वरचनं सरम् ॥ ३ ॥

रौप्यभस्म के गुण—रौप्यभस्म शीतल, क्षय, अम्ल, मधुर और तीनों दोषों का नाशक, लिङ्घ, दीप्तन, नेत्र और कोष के रोग, दाह तथा विष आदि का नाशक, मेद की हरने वाला, मदात्यय रोग का नाशक, शरीर की कान्ति (शोभा), आयु और आरोग्य का कारक, यक्षमा-अपस्मार-शूल-पाण्डु-पलित (व्यंगादि), पुष्टि और ज्वर का नाशक एवं सारक होता है ॥ १ ॥

अशुद्धं रजतं कुर्यात्पाण्डुकण्ठवलग्रहान् । विवन्धं वीर्यनाशं च शलहार्मिं शिरोरुजम् ॥ २ ॥

अशुद्ध रजत के दोष—अशुद्ध रजतभस्म पाण्डु-कण्ठ और गलयह का रोग उत्पन्न करता है, विवन्ध, वीर्य का नाश, बल की हानि और सिर में पीड़ा उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

अथ ताप्रम् ।

न विषं विषमित्याहुस्तान्नतु विषमुच्यते । एको दोषो विषे तात्रे स्वष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः ॥
तात्र की विष से भी अधिकदोषपता—विष से अधिक विषैला तात्र विष है क्योंकि विष में एक दोष होता है और तात्र में प्राकृतिक आठ दोष होते हैं अर्थात् तात्र विष से अधिक विषवाला होता है ॥ १ ॥

अमो मुच्छर्ण विद्वाहृथ स्वेषक्षेदनवाऽत्यः ।

अहचिक्षितसन्तापं पते दोषा विषोपमाः । तस्मात्संशोधयेत्तात्रं तस्योषितिनिवृत्तये ॥ २ ॥

तात्र के आठ दोष—भ्रम-मूच्छर्ण-दाह-स्वेष-उत्क्षे-वमन-अरुचि-चित्त में ताप इस प्रकार आठ दोष विष के समान तात्र में होते हैं । इसलिये इन सब दोषों की निवृत्ति के लिये तात्र का शोधन करना चाहिये ॥ २ ॥

शोधन—बज्जीदुरुद्धैः सलवणैस्तान्नपत्रं विलेपयेत् ।

अग्नौ सम्पत्ताप्य निर्गुण्डीरसैः ससेच्येतिशः । स्नुद्धाक्षीरसेचैर्वा शुहृदशुद्धिः प्रजायते ॥ १ ॥

तात्र का शोधन—बज्जी (थूहर) के दूध में लवण मिश्रित कर तात्रपत्र पर लेप कर अग्नि में तपा २ कर निर्गुण्डी के रस से तीन बार सींचने-बुझाने से अथवा लुही (थूहर) और मदार के दूध से तपा २ कर सींचने से तात्र को शुद्ध हो जाती है ॥ १ ॥

अन्यच्च—गोमूत्रेण पत्तेयामं तात्रपत्रं ददामिना ।

साम्लवणैरेण संशुद्धं तात्रं प्राप्नोति संवर्या ॥ २ ॥

तात्र-शुद्धि का अन्य मत—तात्रपत्र को इदं अग्नि (अधिक आँच) में गोमूत्र में देकर एक याम (प्रहर) तक पकावे और उसमें अल तथा क्षार देवे तो तात्र शुद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

मारण—चूर्णं शुद्धस्य तात्रस्य समसूतं विमर्दयेत् ।

सख्वे जब्दीश्वरीरेण तथोस्तुक्षयं तु गन्धकम् । दिनं गजमुटे पाच्यं तात्रभस्म प्रजायते ॥ १ ॥

तात्र मारण—शुद्ध तात्र चूर्णं और उसके बराबर पारद मिला कर जमीरी नीबू का रस देकर खल में खूब रखाए । इसके बाद दोनों के बराबर गन्धक देकर रखाए तत्पश्चात् एक दिन भर गजमुट में देकर फूंक देने से तात्र का भस्म हो जाता है ॥ १ ॥

अन्यच्च—तिलपर्णीसैरस्तान्नपत्राणि परिलेपयेत् । शुभ्रवर्णं भवेत्तिप्रं नात्र कार्या विद्यारणा ॥

तात्रमारण का अन्यमत—तिलपर्णी (बन तिल) के रस को शुद्ध तात्रपत्र पर लेप करके फूंक देवे तो शीघ्र शेत वर्ण का भस्म हो जाता है । इसमें अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ २ ॥

अन्यच्च त्रपुत्राम्—

शुद्धतात्रस्य पत्राणि शुद्धिप्रतितानि च । शुषु शुक्तिपत्रं तेन वेष्टयित्वा तात्र तात्र तात्र तात्र तात्र ॥ १ ॥

योगरत्नाकरः ।

यामं पचेद्वटीयन्त्रे यदा अपुमयं तदा । तस्वाङ्गशीतं निष्काश्य भव्येहूङ्गसम्भितम् ॥ ९ ॥
त्रपुत्रात्र—शुद्ध तात्रपत्र दो शुकि (१ पल) और शुद्ध वंग का पत्र १ शुकि (२ तो ०) लेकर तात्र पर वंगपत्र लेपेट देवे पश्चात् एक पहर तक घटीयन्त्र में पचावें, इससे अपु (वंग) मय ताम्र हो जाता है उसको स्वांगशीत होने पर निकाल कर खरल कर एक रक्ती की मात्रा से खावे ॥ १-२ ॥

शृङ्गवेयवारशोषणे स्तज्जिहन्ति च । कफामयाहचिप्लीहृष्टपुत्तात्रभिदं खणात् ॥ ३ ॥

आदी वा सौंठि, यवक्षार और पीपरि के चूर्ण के अनुपान से इस त्रपुत्रात्र का सेवन करने से कफ का रोग, अरुचि, और प्लीहा आदि क्षण भर में नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ सोमनाथतात्रम्

शृष्टतुरुषेन सूतेन बलिना तरसमेन च । तदधर्येन तालेन शिलया च तदधर्या ॥ १ ॥
विधाय कज्जली शलचणां सुषमकज्जलसज्जिभाम् । कज्जल्या तात्रपत्राणि पथर्थेण विलेपयेत् ॥
यन्नाध्यायविनिर्दिष्टवालुलायन्त्रं पवेत् । प्रपेशयगामं तु स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ५ ॥

तत्तद्रोगहरानुपानसहितं तात्रं द्विष्टहृष्टिमितं
 तस्मीढं शरिणामशूलसुखं शूलं च पाष्ठुष्टवद्धम् ।
 गुरुमप्लीहृष्टयास्त्रिसादसद्वन्द्वं श्वासञ्ज्ञ कासं तथा
 दुष्टं च ग्रहणीं हरेद्व्रवभिदं तरसोमनाथाभिधम् ॥ ४ ॥

सोमनाथ तात्र—तात्र के बराबर पारा और उसी के बराबर गन्धक, उसके आधा हरताल तथा उसके आधा मैनशिल इन सबों की चिकनी कज्जली [अत्यन्त सूक्ष्म कज्जल की तरह] करके उस कज्जली को कम से तात्रपत्र पर लेप करे । तथा यन्नाध्याय देखर अर्थात् यन्नाध्याय में लिखित बालुकायन्त्र में इस कज्जलीकृत वस्तुओं को दो याम (पहर) पर्यन्त पकावे और स्वाङ्गशीत होने पर निकाल कर दो रक्ती की मात्रा से रोगानुसार अनुपान से खावे । इसके सेवन से परिणाम शूल, उदर रोग शूल, पाण्डु, ज्वर, गुरु, प्लीहा, क्षय, अथिमान्त्र, रुग्णानि, श्वास, कास और दुष्ट ग्रहणी को यह सोमनाथ तात्र निश्चित ही हरण करता है ॥ १-५ ॥

अन्यत्र योगरत्नसमुच्चये पाठान्तरम्—

नेषालं समरुद्वीजमसुरसुखयस्तोस्तालकं ।
स्तस्याधीर्धशिलां विधाय विधिना शलचणां परां कज्जलीम् ।
लिप्रवा तात्रदलान्यधार्धमनया भाषणे पचेषामकं
यन्नाध्यायसमुक्षश्वविधिना तस्वाङ्गशीतं हरेत् ॥ १ ॥

और 'योगरत्न समुच्चय' की पाठान्तर विधि—शुद्ध तात्र के बराबर पारद, गन्धक और इन दोनों के समान हरताल और उसके आधा मैनसिल लेकर विधिपूर्वक उत्तम कज्जली करके तात्रपत्र पर ऊपर-नीचे चारों तरफ लेप कर 'बालुका यन्त्र' जो यन्नाध्याय में कहा है उसमें एक याम (पहर) पचा कर स्वाङ्गशीत होने पर निकाल कर काम में लावे ॥ १ ॥

सामान्यतात्रगुणः—

तात्रं शीतं निहन्यादवृणकुमिजटरानाहसम्प्लीहपाण्डु
श्वासश्लेष्माच्चवात्तज्यपत्रनगदं शूलयुग्मं च गुरुमम् ।
कुषान्यादशापि रसरबलरुचिकृत्वमेदोर्लिपित् ।
च्छेदि प्रोक्तं रवशुद्धं क्रिमिसुदरगदाधमानकुषादि कुर्यात् ॥ १ ॥

सामान्य तात्र के गुण—तात्र भस्म शीतल, व्रण, क्रिमि, जठर, वानाह, प्लीह, पाण्डु, श्वास, कफ रक्त-वात क्षय एवं धायु के समस्त रोग, दोनों प्रकार के शूल (शूल-परिणाम शूल), गुरु, अठारह प्रकार के कुष्ठ आदि को नष्ट करता है और काम, बल और रुचि को करने वाला, मेद तथा अम्ल पित्त को नाश करने वाला होता है । अशुद्ध तात्र के दोष-अशुद्ध तात्र भस्म सेवन करने से क्रिमि, उदर का रोग, अधिमान और कुषादि होते हैं ॥ १ ॥

अथ रीतिकांस्ये ।

रीतिका द्विष्टिधा ज्ञेया त्रासद्या राजरीतिका ।
काकतुण्डी द्विसीधा सा तथोराद्या गुणाधिका ॥ १ ॥
 रीति और कांस्य के मेद लक्षण—रीतिका (पीतल) दो प्रकार की होती है उसमें पहली 'राजरीतिका' है और दूसरी 'काकतुण्डी' है । इसमें पहली राजरीतिका गुण में अधिक है ॥ १ ॥
 समतप्ता कालिके चिसा तात्रा स्थाद्वाजरीतिका ।
 काकतुण्डी तु कृष्णा स्थान्नासौ सेष्या विजानता ॥ २ ॥

राजरीतिका तपा कर काँची में छोड़ने से लाल वर्ण की होती है और काकतुण्डी काली हो जाती है, इसको जानकर (वैद्य) काम में न लेवे ॥ २ ॥
कांस्यं च द्विविधं प्रोक्तं पुष्पतैलिकभेदतः । पुष्पं श्वेततमन्तप्र तैलिकं कपिशप्रभम् ॥ ३ ॥
एतयोः प्रथमं श्रेष्ठं संसेव्य रोगशान्तये । राजरीतिरसथा घोषं तात्रवद्धोधयेद्विषक् ॥ ४ ॥
 कांस्य दो प्रकार का होता है एक पुष्प (फूल) कांस्य और दूसरा तैलिक (तैलिया) कांस्य । पुष्प कांस्य श्वेत वर्ण का और तैलिया कांस्य धूसर वर्ण का होता है । इसमें भी पहला (पुष्प कांस्य) ही श्रेष्ठ है और रोग शान्ति के लिये इसी का सेवन करना चाहिये । राजरीतिका (कांसे) का शोधन मारण आदि—राजरीतिका और घोष की वैद्य तात्र की तरह शोधन करे ॥ ३-४ ॥

तात्रवन्मारणं चापि तयोरुक्तं भिषजवर्देः ।

रीतिकायुग्लं रुचं सतिकं लवणं सरम् । शोधनं पाण्डुरोगधनं क्रिमिधनं लेखनं हिमम् ॥५॥
 इन दोनों का मारण भी वैद्यों ने तात्र की ही तरह कहा है । रीतिका (पीतल के गुण—दोनों प्रकार की रीतिका (पीतल) रुक्ष, तिक्त तथा लवण रस युक्त सारक, शोधन, पाण्डु रोग तथा क्रिमि का नाशक, लेखन और शीतल है ॥ ५ ॥
कांस्यं तिक्तोरुणं लेखनं विशदं सरम् । रुचं गुरु च चकुल्यं कफपित्तहरं परम् ॥ ६ ॥
 कांस्य का गुण—कांसा कवाय, तिक्त, उज्ज्वल, लेखन, विशद, सारक, रुक्ष, गुरु, नेत्र को हितकर और अत्यन्त पित्त तथा कफ का नाश करने वाला है ॥ ६ ॥

अथ लोहम् ।

सुण्डं तीक्ष्णं तथा कान्तमिति लोहं ग्रिधा स्मृतम् ।
सुण्डाष्टुताधिकं तीक्ष्णं तीक्ष्णात्कान्तं शताधिकम् ॥ १ ॥
 लौह के मेद-लक्षण—सुण्ड, तीक्ष्ण तथा कान्त के मेद से लोह तीन प्रकार का कहा गया है । सुण्ड लोह से सौगुना अधिक गुणकारी तीक्ष्ण लोह होता है और तीक्ष्ण लोह से सौ गुना अधिक गुणकारी कान्त लोह होता है ॥ १ ॥
सुण्डं तु वर्तुलं भूमै पवैते पु च जायते । राजवरयादि तीक्ष्णं स्थात्कान्तं चुम्बकसम्भवम् ॥
 सुण्डादिकों की उत्पत्ति का स्थान—सुण्ड लोह वर्तुलाकार होता है तथा भूमि एवं पर्वतीय

प्रदेशों में उत्पन्न होता है और गजवल्यादि लोह को तीक्ष्ण लोह कहते हैं तथा चुम्बक से उत्पन्न लोह कान्त लोह होता है ॥ २ ॥

यथार्ज्ञं दश्यते लोहे तीक्ष्णं लोहं तदुत्तम् । कासीसामलकलकास्ते लोहेऽङ्गं दश्यते मुख्यम् ॥३॥

तीक्ष्ण लोह के लक्षण—जिस लोह में अङ्ग दीर्घ पड़े ऐसा तीक्ष्ण लोह होता है । यह उत्तम है । कासीस और आमला के कल्प से लेपित लोह के धोदेने से अङ्ग (जौहर) दिखाई पड़ता है ॥३॥

अथ कान्तलोहलक्षणम् ।

यत्पात्रस्थे प्रसरति जले तैलविन्दुर्न दस्ते
हिङ्गुर्गन्धं विसूजति निजं तिक्ततो निश्चकहकः ।
पात्र्यं दुधं भवति शिखराकारकं नैति भूमि
दग्धाङ्गाः स्युः सजलचणकाः कान्तलोहं तदुत्तम् ॥ १ ॥

कान्त लोह के लक्षण—जिस लोह के पात्र में जल भरकर उसमें तेल की बैंड छोड़ने पर फैले नहीं, तथा जिस लोह के पात्र में हींग रखने से हींग का गन्ध नष्ट हो जाय, नीम का कल्प जिसमें रखने से कट्टा रहित हो जाये तथा दूध जिस लोह पात्र में से उबाल खाकर भूमि पर न गिरे और जिस लोह पात्र में जल में भिगोया हुआ चना रखने पर दग्ध की भाँति इयाम हो जावे उस लोह को कान्त लोह कहते हैं ॥ १ ॥

लोहशोधनम्—

शाश्रकेन सँहिलप्तं किञ्चाकपथसाऽयसः । दलं हुताशने ध्मातं सिक्तं त्रैफलवारिणा ॥
एवं त्रिः कुते लोहं शुद्धिमाल्पोत्थसंजायम् ॥ २ ॥

लोह शोधन—शशक (खरदे) के रक्त में थोड़ा मदार का दूध मिला लोह के शुद्ध पात्र पर लेप कर अशि में तपा २ कर त्रिफला के जल से सीचना चाहिये । इस प्रकार ३ बार करने से लोह निश्चित ही शुद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

अन्यच—श्वाध्यमष्टुणे तोये त्रिफला धोदां पलम् ।

तत्क्वाये पादशेषे तु लोहस्य पलपञ्चकम् ॥ २ ॥

कृत्वा पत्राणि तसानि सप्तवारं निषेचयेत् । एवं प्रलीयते ध्वार्मिरिजो लोहसऽभवः ॥ ३ ॥

और भी—सोलह पल (६४ तो०) त्रिफला को अठगुने जल में क्वाथ करे जब चतुर्थीश रहे तब उसमें ५ पल (२० तो०) लौहपत्र तपा २ कर सात बार बुझाने से पर्वत से उत्पन्न अन्य धातु नष्ट होकर लौह बाहु (सुण्ड लौह) शुद्ध हो जाता है ॥ २-३ ॥

लोहमारणम्—

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसमस्मना । मध्यसं मूलिकाभित्ति कनिष्ठं गन्धकादिभिः ॥ १ ॥

लौहमारण—सब लोहों का मारण पारद भस्म के साथ श्रेष्ठ कहा गया है, मूलिका आदि (मूली के रस से) का मारण मध्यम कहा गया है और गन्धक आदि का मारण कनिष्ठ कहा गया है ॥ १ ॥

शुद्धस्य सुतराजस्य भागो भागद्वयं वलः । द्वयोः समं सारचूर्णं मर्दयेत्कन्यकारुला ॥ २ ॥

यामद्वयं तस्य गोलं संवेष्यैरण्डजोर्दलः । ततः सूत्रेण सम्बद्ध्य स्थापयेत्तात्रसम्पुटे ॥ ३ ॥

शुद्धयेद्वद्वनं तस्य सृदा संशोध्य तत्पुनः । त्रिदिनं धान्यराशिस्थं तत उद्धध्य मर्दयेत् ॥ ४ ॥

इजस्तद्वयालितं नीरे तरति हस्तवत् । सोमामृताभित्तिं लोहभस्म प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, गन्धक दो भाग की कजली करे और दोनों के बराबर शुद्ध लौह चूर्ण लेकर धृतकुमारी के रस में मर्दन दो याम (पहर) तक करना चाहिये, जब गोला बैंध जावे तब

इरण्ड के पत्ते से उस गोलक को बेष्टित कर सूत से भली भाँति बौधना चाहिये और बौध कर ताम्र के सम्पुट में रख कर उसके मुख कपर-मिट्टी से बन्द कर सुखा देवे, सूखने पर तीन दिन धान की राशि में रख कर निकाले और उसके बेष्टन आदि को निकाल कर मर्दन करे और कपड़े में जारे, उस चूर्ण को जल पर छोड़ने से वह तैरता है अर्थात् लौह का भस्म हो जाता है इस विधि को 'सोमामृत' कहते हैं ॥ २-५ ॥

अन्यच—द्वादशांशेन दशदं तीक्ष्णचूर्णस्य मेलयेत् ।

कन्धानीरेण सऽमर्थं यामयुभ्यं तु तपुनः ॥ ६ ॥

शारस्वतस्थुटे कृत्वा पुटेद्रजपुटेन चै । सप्तसैवं कृतं लोहस्त्रजो वारितरं भवेत् ॥ ७ ॥

दूसरी विधि—शुद्ध लौह चूर्ण का बारहवाँ भाग हिंगुल लेकर दोनों धृतकुमारी के रस में दो याम (पहर) तक मर्दन कर गजपुट में फूके । इस पकार सात पुट देने से लौह का वारितर (जल पर तैरने वाला) भस्म हो जाता है ॥ ६-७ ॥

अन्यच—लौहचूर्णं पलं स्वावै सोरकस्य पलं तथा ।

अश्वगन्धापालं चापि भवेत्तम्रं मर्दयेत् ॥ ८ ॥

कुमार्थद्विदिवं पश्चाद्वोलकं रुपत्रकः । स वैष्णवं च मृदा लिप्त्वा पुटेद्रजपुटे पचेत् ॥ ९ ॥

स्वाक्षीतं समुद्धाय सिन्दूराभस्योरजः । मृतं वारितरं ग्राह्यं सर्वकार्यकं परम् ॥ १० ॥

लौह भस्म की अन्य विधि—शुद्ध लौह चूर्ण सोरक [सोरा] और अश्वगन्ध प्रत्येक एक २ पल (४ तोला) लेकर सबको एकत्र मर्दन करे फिर एक दिन भर धृतकुमारी के रस में बोट कर पश्चात् गोलक बना रेड़ के पत्ते का बैंडन देकर मिट्टी का लेप कर 'गजपुट' में रख फूक देवे स्वांगशीत होने पर निकाल कर चूर्ण करे । यह सिन्दूर की तरह चूर्ण (मर जाने पर का भस्म) जल पर तैरने वाला सब कार्यों के लिये उचित कहा गया है ॥ ८-१० ॥

अन्यच—द्वाद्विमीपत्रजरसैर्लोहचूर्णं च भावितम् ।

आतपै सप्तसै तेन पुनर्गजपुटद्वयम् ॥ ११ ॥

हृथं कृतं च तद्वस्म शुद्धं वारितरं भवेत् । योजयेत्सर्वरीगेषु सर्वं गुरुवचो यथा ॥ १२ ॥

लौह भस्म की और भी विधि—अनार के पत्ते के रस से शुद्ध लौह चूर्ण को धूप में रख ७ बार भावित कर गजपुट में रख दो बार फूंके । इस प्रकार किया हुआ शुद्ध वारितर भस्म हो जाता है और यह सब रोगों में गुरु के वचन (आशीर्वाद) की तरह गुण करने वाला होता है ॥ ११-१२ ॥

अन्यच—गृहीत्वा तीक्ष्णं चूर्णं तथवं च गवां दधि ।

एकत्र कारयेद्वाण्डे यावद्व्योधरवसान्त्यात् ॥ १३ ॥

उद्धृत्य गालयेद्वौ त्रिफलायाः पुटत्रयम् । देवं वारितरं सद्यो जायते नान्तं संशयः ॥ १४ ॥

और भी विधि—तीक्ष्ण लौह का शुद्ध चूर्ण लेकर उसी प्रकार (उसके ढूबने भर) गाय की दही लेकर एकत्र पात्र में तब तक रखे जब तक दधि सूख न जावे सूखने पर निकाल कर त्रिफला के रस में रगड़ तीन पुट देवे । इससे सुन्दर वारितर भस्म हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥ १३-१४ ॥

अन्यच—एकभागं लौहचूर्णं तत्समो नवसागरः ।

किञ्चित्सोदकं ग्राह्यं सर्वं वस्त्रे निवध्य च ॥ १५ ॥

यामान्ते वर्षयेत्पाणी सद्यो वारितरं भवेत् । योजयेत्सर्वरीगेषु सर्वरोगानुपत्तये ॥ १६ ॥

और भी विधि—एक भाग शुद्ध लौहचूर्ण और उसी के समान भाग नवसादर लेकर उसमें

थोड़ा गर्भ जल देकर खरलकर वस्त्र में बौंध देवे । यक याम (पद्म १) के बाद हाथों से खून मसले इससे शीघ्र बारितर भस्म हो जाता है । इसको सब रोगों में अनुपान के योग से काम में लाना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

निरुत्थानम्—

सर्वमेतन्मृतं लोहं धमातश्यं मित्रपञ्चकैः । हृत्येवं स्याक्षिहस्थानं सेष्यं वारितरं भवेत् ॥ १ ॥
लौह का निरुत्थान—ऐसे सब प्रकार के मरे हुए लौह मित्रपञ्चकों से लिप्सकर आग में तपाने से यदि निरुत्थ हो जाय और बारितर हो जाय तो सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

पञ्चमित्रं यथा—मधुगुडधृतगुलाटक्षणं पञ्चमित्रम् ॥ इति ॥

मित्रपञ्चक—मधु, गुड, धी, शुजा और टक्षण को पञ्च मित्र कहते हैं ।

अन्यच—रफिकाधृत लाल्हया तुरं चौद्धमित्रितं टक्षणान्वितम् ।

ऊर्णया तथा धमाततां गताः सप्त धाततो यान्ति जीवताम् ॥ २ ॥

अन्यमत से निरुत्थान—यातुओं को गुजा (रत्ती), घृत, लाल्हा, मधु, टक्षण तथा ऊर्ण वस्त्रों से मिश्रित कर धमायित करने [आग में तपाने] से सब प्रकार के धातु जीवित होते हैं ॥ २ ॥

गन्धकं चोद्यितं लोहं तुरुषं खल्वे विमर्दयेत् । दिनैकं कन्यकाद्वायै रुद्धवा गजपुटे पचेत् ॥
हृत्येव सर्वलोहार्ता कर्तव्यं तक्षिहस्थितम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार उथित लौह और गन्धक बराबर लेकर खरल में दिन भर अर्थात् बारह घण्टा कुमारी के रस में मर्दन करे, इसके पश्चात् गजपुट में फूंके । इस प्रकार से सब प्रकार के धातुओं को निरुत्थान करना चाहिये ॥ ३ ॥

गुणः—कान्तं तु शीतं मधुरं क्षायमायुष्करं धातुविवर्धनं च ।

हन्यात्रिदोषवृणमेहकुष्ठप्लोहोदरप्रनिधिष्ठिकर्मिण्य ॥ १ ॥

लौह भस्म के गुण—लौहभस्म (कान्त लौह का भस्म) शीतल, मधुर, क्षाय, क्षायुवर्धक तथा धातुवर्धक है और त्रिदोष, वृण, मेह, कुष्ठ, प्लोहा, उदर, प्रनिधि, विष और क्रिमि का नाश करता है ॥ १ ॥

पाण्डुं पीडियति तथं तपयति त्वैष्यं चिञ्णोति त्वणात् ।

कास नाशयति भ्रमं शासयति श्लेष्मामयान्वादति ।

अस्त्रं गुल्मसशूलपीनसवमिथेसप्रमेहाहृची-

राशून्मूलयति प्रकम्पनहरं लोहं हिमं चाचुषम् ॥ २ ॥

और पाण्डु रोग को पीडित (शमन) करता है, क्षय का नाश करता है, क्षीणता को क्षीण करता है अर्थात् घटाता है, क्षणभर में कास का नाश करता है, भ्रम को शमन करता है, कफ के रोग को खा जाता है अर्थात् नाश कर देता है । रक्त दोष, शूल सहित गुल्म, पीनस, वमन, श्वास, प्रमेह और अस्त्रि को शीघ्र नष्ट करता है । प्रकम्प रोग को हरण करता है और यह लौह शीतल और नेत्र को हितकर होता है ॥ २ ॥

शुद्धं पित्तकानिलमोहं हन्ति हितं शिवशक्त्या लोहम् ।

पाण्डुगदामयशूलविनाशि ग्रोहमस्तुदं रोगविकासि ॥ ३ ॥

शुद्ध लौह पित्त-कफ और वायु के रोग, भोह आदि को शिव की शक्ति से नष्ट करता है तथा पाण्डु रोग, और शूल को भी नष्ट करता है । अशुद्ध लौह रोग को उत्पन्न करने वाला है । ऐसा कहा गया है ॥ ३ ॥

ये गुणा सूतरूपस्थ ते गुणः कान्तभस्मनः । कान्तामावे प्रदातव्यं रूपमित्याह भैरवः ॥

अशुद्ध लौह का दोष—भरे हुए रौप्य (चॉटी) भस्म में जो गुण है वही गुण कान्त लौह के भस्म में होता है । भैरव का कथन है कि कान्त लौह के भस्म के अभाव में रौप्य का भस्म दिया जा सकता है ॥ ४ ॥

कूष्माण्डं तिळतैलं च माषान्नं राजिकां तथा । मध्यमस्तुरसं चैव त्यजेष्ठोहस्य सेवकः ॥ ५ ॥
मरस्यं जीवकवार्ताकभावं च कारवेशलक्षम् । व्यायामं तीक्ष्णकं मध्यं तैलाग्नं दूरतस्त्यजेत् ॥

लौह सेवन करने वाले के लिये वर्जित पदार्थ—लौह सेवन करने वाले को कूष्माण्ड (कोहड़ी), तिळ का तैल, उरिद, राई, मध्य तथा अम्लरस युक्त पदार्थ त्याग देना चाहिये अर्थात् नहीं खाना चाहिये और—मछली, जीवक, वार्ताक (बैगन), उरिद, करैली नहीं खाना चाहिये तथा व्यायाम, तीक्ष्ण द्रव्य (मरिच आदि), मध्य, तैल और अम्ल पदार्थ दूर से ही त्याग देना चाहिये अर्थात् इन्हें नहीं खाना चाहिये ॥ ५-६ ॥

अनुपानानि—

वशलं वशलार्धमानं च यथायोगेन योजयेत् । विफला लोहशूर्णं च वलीपलितनाशनम् ॥ १ ॥

लौह भस्म की मात्रा तथा अनुपान—लौह भस्म एक बल (दो रत्ती) अथवा आधा बल (एक रत्ती) की मात्रा से यथायोग सेवन करना चाहिये । विफला के साथ लौह भस्म सेवन करने से वली-पलित का नाश होता है ॥ १ ॥

व्योषं भार्वीं च मधुना छोहं चातुरुजापहम् । कज्जलीमधुकृष्णाभर्या श्लेष्मरोशनिवारणम् ॥

व्योष (सौंठ, पीपरि, मरिच), ब्रह्माण्डी और मधु के साथ सेवन करने से लौह भस्म धातु की पीड़ा को नष्ट करता है । और कज्जली (प्लारद-गन्धक), मधु और पीपरि के साथ सेवन करने से कफ रोग को नष्ट करता है ॥ २ ॥

शकरा च चतुर्जातं रक्तपित्तजापहम् । पुनर्नवा च गोहीरैबैलवृद्धिकरं परम् ॥ ३ ॥

शकरा (चीनी), चतुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) के साथ लौह भस्म के सेवन करने से रक्तपित्त की पीड़ा नष्ट होती है । पुनर्नवा (गदहपुरना) और गोदुरध के साथ सेवन करने से बल की धृद्धि होती है ॥ ३ ॥

पुनर्नवारसेनैव पाण्डुरोगिनिशुद्धनम् । हरिद्रा लोहशूर्णं च पिपली मधुना सह ॥

विशति च प्रमेहाणां नाशयेष्ठात्र संशयः ॥ ४ ॥

केवल पुनर्नवा (गदहपुरना) के रस के साथ लौह भस्म का सेवन करने से पाण्डुरोग नाशक होता है । हरिद्रा, पीपरि और मधु के साथ लौह भस्म का सेवन करने से वीर्यो प्रकार के प्रमेह का नाशक होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥

शिलाजतुसमायुक्तं मूष्मकृष्णनिवारणम् । वासकः पिपली द्राढा लोहं च मधुना सह ॥ ५ ॥

गुटिकां भज्येत्प्रातः पञ्चकासनिवारणम् । ताग्वलेन समायुक्तं भज्येष्ठोहसुच्चमम् ॥ ६ ॥

अग्निदीपिकरं बृद्धं देहकानितविवर्धनम् । किमत्र बहुनोदत्तेन देहलोहकरं मतम् ॥ ७ ॥

शिलाजीत के साथ लौह सेवन करने से मूष्मकृष्ण का नाश होता है । वासक (अरसा), पीपरि और द्राढ़ा (मुनका) के साथ लौह की गोली बना कर प्रातः भक्षण करने से पांचों प्रकार के कास नष्ट होते हैं । ताम्बूल के साथ उत्तम लौह भक्षण करने से अश्वि तथा देह की कान्ति बढ़ाने वाला होता है । यहां वहुत क्या कहा जाय लौह भस्म सेवन करने से देह लौह के समान हो जाता है ॥ ५-७ ॥

अपौष्टीष्ठस्तोकपुर्वीर्हं गन्धकपारदेः । अपौष्टी लोहजं चूर्णमायःस्त्रयकरं नृणाम् ॥ ८ ॥

अशुद्ध लौह के दोष—थोड़ी ओषधियों के साथ बनाया थोड़े पुटों में तथा पारद-गन्धक के

योग से रहित बनाया हुआ लोह भस्म तथा अपक लोह भस्म (कच्चा लौह भस्म) मनुष्यों का आश्रित होता है ॥ ८ ॥

अथ मण्डूरकरणम् ।

शताद्वासम् किहुं मध्यं चाशीतिवार्षिकम् । अधमं विष्वर्षीयं ततो हीनं विष्वेषम् ॥ १ ॥
मण्डूर (लौहकिंडु)—सौ वर्ष का पुराना लौहकिंडु उच्चम, असी वर्ष का पुराना मध्यम और साठ वर्ष का यथाना अधम कहलाता है और इससे नीचे का अर्थात् साठ वर्ष से कम का पुराना मण्डूर विष की तरह है ॥ १ ॥

अचाक्षरैधर्मेतिकट्टं लोहजं तद्वर्णं जलैः । सेचयेत्प्राप्तान्तः सप्तवारं पुनः पुनः ॥ २ ॥
चूर्णयित्वा ततः क्षारैद्विगुणैस्त्रिकलोऽन्वैः । आलोह्य भर्जयद्वृहौ मण्डूरं जायते वरम् ॥ ३ ॥

लौहकिंडु की शुद्धि—बहेरे के अंगार में मण्डूर को तपा कर गाय के जल अर्थात् गोमूत्र से बहेरे के पात्र में सात बार तक सिंचन करे । इस प्रकार शुद्धि किया हुआ मण्डूर चूर्ण कर दिग्युण त्रिफला के काथ में आलोहित (मर्दित) कर अग्नि में भजित करने (भूजने) से मण्डूर ब्रेष्ट (सेवन करने योग्य) हो जाता है ॥ २-३ ॥

मण्डूरं शिशिरं रुच्यं पाण्डुष्यथुशोथजित् । हलीमकं कामलां च प्रीहानं कुम्भकामलाम् ॥४॥

मण्डूर के गुण—मण्डूर-शीतल, रुचिकारक, पाण्डु, श्वशु और शोथनाशक, हलीमक, कामला, हीहा और कुम्भकामला का नाशक होता है ॥ ४ ॥

अथ वङ्गम् ।

खुरकं मिश्रकं चेति द्विविधं वङ्गमुद्यते । खुरं तत्र गुणैः श्रेष्ठं मिश्रकं न हितं मतम् ॥ १ ॥

वङ्ग का नाम, शुद्धि और गुणादि—वङ्ग का भेद-खुरक और मिश्रक नाम से वङ्ग दो प्रकार होता है । जिसमें खुरक (खुर रांग) गुण में श्रेष्ठ है और मिश्रक हितकर नहीं है ॥ १ ॥

चवलं मृदुलं चिरधं दुतद्रावं सगौरवम् । निःशब्दं खुरं खङ्गं स्यानिमश्रकं श्यामशूभ्रकम् ॥ २ ॥

वङ्ग लक्षण—जो शुभ्र, मृदु, लिंग, शीघ्र द्रव होने वाला, युरु और द्रव करने के समय शब्द नहीं करने वाला होता है, उसे खुरक वङ्ग कहते हैं । और जो श्याम वर्ण का और धूमिल हो उसे मिश्रक वंग कहते हैं ॥ २ ॥

वङ्गशोधनम्—

द्रावयित्वा निशायुक्ते तिसं निर्गुणिद्वारसे । विशुद्ध्यति श्रिवारेण खुरवङ्गं न संशयः ॥ १ ॥

वङ्गशोधन—वङ्ग को अग्नि पर लोहे आदि के पात्र में रखकर गलवे, जब वह पूर्ण द्रव के रूप में हो जावे तब हल्दी और निर्गुणी के रस में तुक्का देवे, इस प्रकार तीन बार तुक्काने से खुरक वङ्ग निश्चित ही शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

वङ्गमारणम्—

शाणमात्रं भवेद्वङ्गं भुजक्तो रक्तिकामितः । खर्पेरे गलितं सर्वं लोहद्वर्या विघ्नयेत् ॥ ३ ॥

प्रहराजायते भस्म भिस्तकज्जलसच्चिभम् । शुक्तात् याति तद्वस्म तीव्रल्परवहिना ॥ २ ॥

वङ्ग मारण—शुद्ध वंग एक शाण (३ मासा) और शुद्ध भुजक (शीशा) एक रस्ती, दोनों को खर्पेर (स्वपड़ा) में अग्नि पर गलाकर लोहे के पात्र में लोहे से ही वर्षण करे अर्थात् धोटे । एक पहर में कजली की तरह भस्म हो जावेगा । तीव्र अग्नि-आंच उसमें देने से भस्म श्वेत वर्ण का होता है ॥ १-२ ॥

अन्यच—पलाशद्रवयुक्ते वङ्गपत्राणि लेपयेत् ।

तालेन पुष्टितं भस्म श्रिवारं जायते भ्रवम् ॥ ३ ॥

वङ्ग मारण की अन्य विधि—पलाश के द्रव (पलाश के रस,) को शुद्ध वङ्ग पर लेप कर उसमें शुद्ध हरताल मिलाकर पुट में बन्द कर तीन बार फूंकने से निश्चित वङ्ग भस्म हो जाता है ॥

अन्यच—भष्माततैलसंलिप्तं वङ्ग व्योम वेष्टितम् ।

विश्वापिष्पलपालाशकाष्ठाम्बौ याति पञ्चताम् ॥ १ ॥

और भी—मिलाये के तेल से शुद्ध वंग को संलिप्त कर वर्षा से वेष्टित कर, इमली, पीपर (अक्षत्य) और पलाश के काठ की अग्नि में तीन बार फूंकने से वङ्ग भस्म हो जाता है ॥ २ ॥

अन्यच—मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे विश्वापत्त्यथवचो इतः ।

द्विष्टवा चिष्टवा चतुर्थीशं लोहद्वर्या विचालयेत् । ततो द्वियामसात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते ॥

और भी विधि—मिट्टी के बर्तन में शुद्ध वङ्ग को द्रवित कर, इमली और अक्षत्य (पीपल) के ढाल का चूर्ण अलग-अलग देकर चतुर्थीश अर्थात् वङ्ग के चौथाई चूर्ण देकर लोहे के करछी से चलाये इस तरह से दो पहर में वंग भस्म हो जाता है ॥ २ ॥

अथ भस्मसमं तालं चिष्टवाऽम्लेन प्रमद्येत् । ततो गजपुटे पक्षवा पुनरप्लेन मर्दयेत् ॥ ३ ॥
तालेन दक्षमांशेन यामयेकं ततः पुटेत् । एवं वङ्गं तु नियते भ्रवम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार का बनाया भस्म और उसके बराबर हरताल मिलाकर अम्ल द्रव के साथ मर्दन करे, इसके पश्चात गजपुट में पकाकर पुनः अम्लद्रव के साथ मर्दन करे । तब पुनः दशांश ताल (हरताल) देकर एक पहर तक पुट देवे इस प्रकार दस पुट देने से पका हुआ वङ्ग निश्चित ही भस्म हो जाता है ॥ २-३ ॥

वङ्गमुणा:—

वङ्गं सिक्कोष्णकं रूपमीष्ट्वातप्रकोपणम् । मेहश्लेष्मामयधनं च मेहांशं किमिनाशनम् ॥ १ ॥

वङ्ग के भस्म के गुण—वंगभस्म तिक्त, उष्ण, रुक्ष, किञ्चित् वात प्रकुपित करनेवाला, मेह, के रोग मेह और किमि का नाशक होता है ॥ २ ॥

अशुद्धमस्तं वङ्गं प्रमेहादिगदप्रदम् । गुरुमहृदोगशूलार्थः कासशासवमिप्रदम् ॥ २ ॥

विना मरे एवं अशुद्ध वङ्ग के दोष—अशुद्ध और विना मरे वङ्ग के सेवन से प्रमेहादिक रोग, गुलम, हृद्रोग, शूल, अर्श, कास, श्वास और वमन उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

अथ नागः ।

दुतद्रावं महाभारं छेदे कृष्णं समुज्जवलम् । पूतिगन्धं बहिः कृष्णं शुद्धं सीसमतोऽन्यथा ॥ १ ॥

नाग (शीशक) के लक्षण, शोधन, शारण गुणादि—जो शीघ्र द्रव हो जावे, अत्यन्त युरु हो, काटने में कृष्ण वर्ण का हो, देखने में उज्ज्वल, दुर्गन्ध युक्त, बाहर कृष्णवर्ण का हो उसे 'उत्तम' नाग जानना चाहिये, इसके विपरीत नाग 'अधम' जानना चाहिये ॥ १ ॥

नागशोधनम्—

नागो द्रुतोऽप्निसंयोगाद्रविकुर्वते निपातितः । सचिक्षद्विहणिद्वारं शुद्धिमाण्युतात् ॥

नागशोधन—नाग को छिदवाली हण्डिका में रख कर उसके नीचे अर्कदुर्घ रखवे तब अग्नि दिखावे, इससे नाग शीघ्र अग्नि के संयोग से छिद्र से होते हुए दुर्घ में गिरेगा, इस प्रकार तीन बार करने से नाग शुद्ध होता है ॥ १ ॥

नागमारणम्—

अशत्यचिष्टवा त्वं भस्म नागस्य चतुर्णाशतः । चिपेष्टांगं पचेत्पत्रे चालयेष्टोद्वादुना ॥ १ ॥

यावद्वस्म तदुद्धर्ष्य भस्मतुश्यां मनःशिलाम् । जडीरैरारनालैर्वा पिष्टा रुद्धवा पुटे पचेत् ॥

नागमारण—प्रथम नाग को मृत्पात्र में अग्नि पर गलाकर उसके चतुर्थीश पीपल (अक्षत्य)

तथा इमली के छाल का भस्म (चूर्ण) छोड़कर लोहे की करछुल से चलावे । इस प्रकार ६ प्रहर में नागभस्म तैयार हो जाता है । भस्म हो जाने पर उसके बराबर मनःशिला मिलावे और जम्बीरी नीबू अथवा आरनाल के रस में पीसकर पुट में बन्द कर फूंक देवे ॥ १-२ ॥

स्वाङ्गशर्थं पुनः पिष्टवा विशर्थंशशिलायुतम् ।

अश्वलेनैव तु यामकं पूर्वचत्पाचयेत्पुटे । पूर्वं षष्ठिषुटे पक्षो नाशः स्यात्सुनिरुद्धितः ॥ ३ ॥
स्वाङ्गशीत होने पर पुनः उसके बीसवां भाग मनःशिला मिलाकर अम्ल पदार्थ (जम्बीर-नीरादि) के योग से पीसकर उपर्युक्त रीति से पुट में देकर फूंके । इस प्रकार साठ पुट में नाग का उत्तम भस्म हो जाता है ॥ ३ ॥

अन्यच—मनःशिलागन्धशुताटरुपपरिपलुतं नागदलं विमृष्टम् ।

पुटेचिभिः कुम्भमितैः प्रथाति भस्मरूपयोगदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ४ ॥

अन्य विधि—शु० मैनसिल, शु० गन्धक, शु० नाग तीनों समान लेकर अरुसा के रस में खरल कर सम्पुट में रख गजपुट में तीन बार फूंकने से नाग का उत्तम भस्म हो जाता है ॥ ४ ॥

अन्यच—ताम्बूलीरससिष्टशिलालेषात्पुनः पुनः ।

इति चिभिः पुटेनार्गो चिह्नाथो जायते भ्रूषम् ॥ ५ ॥

अन्य विधि—पान के रस में पिसे हुए मैनसिल का बार २ लेप कर फूंका हुआ नाग अर्थात् शुद्ध नाग पर पान के रस में पीस कर मैनसिल का लेपकर फूंक देने से ३२ बार में नाग का उत्तम भस्म हो जाता है ॥ ५ ॥

नागगुणाः—

अशुद्धं सीसकं द्विनग्धं तिक्तं वातकफापहम् । प्रमेहतोथदोषधनं दीपमनं चामवातनुत् ॥ १ ॥

नाग के गुण—नाग भस्म अत्यन्त उष्ण, लिघ्न, तिक्त, वात-कफ-प्रमेह तथा तथा जल सम्बन्धी दोष का नाशक, अश्विर्धक और आमवात नाशक होता है ॥ १ ॥

अशुद्धः कुरुते नागः प्रमेहशूद्धयकामलाः । तरसरासंशुद्ध एवाथं मारणीयो भिषजवदः ॥ २ ॥

इति नागः ।

अशुद्ध नाग के दोष—अशुद्ध नाग के सेवन से प्रमेह, क्षय और कामला का रोग होता है इसलिये वैद्य को मलीमाँति शुद्धकर मारना चाहिये ॥ २ ॥

अथोपधातवः ।

अश्रकं मार्किं ताळं शिला नीलाज्जनं तथा । तुथ्यकं रसकं चैव ग्रीकाः सप्तोपधातवः ॥ १ ॥

उपधातु वर्णन—अश्रक, मार्किक (स्वर्णमार्किक तथा रौप्यमार्किक), हरताल, मैनसिल, नीलाज्जन (काला सुरमा), तुथ्यक (तृतीया) और पारद ये सात उपधातु कहे जाते हैं ॥ १ ॥

अथाश्रकम् ।

शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णं चैव थथाक्रमम् । पिनाकं दर्दुरं नागं वर्णं चेति चतुर्विधम् ॥ १ ॥

अश्रक के नाम मेद, शोधन, मारण तथा गुणादि—क्रम से अश्रक श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण से पिनाक, दर्दुर-नाग और वज्र नाम से चार प्रकार का होता है अर्थात् श्वेत वर्ण—को पिनाक, अश्रक, रक्त वर्ण का दर्दुर (मेद) अश्रक, पीत वर्ण का नाग अश्रक और कृष्ण वर्ण का वज्राश्रक होता है ॥ १ ॥

दलानि सुख्तनले पिनाकं भेकं स्वरादं कुरुतेऽनलस्थम् ।

फूलकाररावं भुजगः करोति शृणिकियं बहिगतं सुवज्रम् ॥ २ ॥

लक्षण—पिनाक नाम का अश्रक अग्नि में देने पर अपने दल को छोड़ देता है । दर्दुर नाम का अश्रक मैदक के समान स्वर करता है । नाग नाम का अश्रक फुफ्कार का शब्द सर्प की तरह करता है । वज्र नाम का अश्रक अग्नि में देने पर कोई विकार शब्द नहीं करता है ॥ २ ॥

पिनाकं कुरुते कुष्ठं दर्दुरं सृत्युदायकम् । नाशं भगन्दरं कुर्याद्वज्रार्थं गदवृद्धिजितः ॥ ३ ॥

पिनाक नाम के अश्रक का सेवन करने से कुष्ठ होता है, दर्दुर नाम के अश्रक का सेवन से सृत्यु की सम्भावना होती है । नाग नामक अश्रक के सेवन से भगन्दर होता है और वज्राश्रक के सेवन से रोग समूह नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

अश्रकशोधनम्—

प्रतसं सप्तवारणि निषिंसं कालिकेऽध्रकम् ।

निर्दोषं नायते नूनं प्रतिसं वाडपि गोजले । त्रिकलाक्षिते वाडपि गावां दुखे विशेषतः ॥

अश्रक शोधन—अश्रक को अग्नि में तपा तपा कर सात बार कोंजी में बुझाने से अथवा गोमूत्र, त्रिफला के काथ वा गाय के दूध में सात बार बुझाने से विशेष शुद्ध होता है ॥ २ ॥

अन्यच—कृष्णाश्रकं धमेद्वृहौ ततः चीरे विनिषियेत् ।

भिन्नपञ्चं ततः क्रावा तण्डुलीयाश्लयोद्र्वैः ॥ २ ॥

भावयेद्धयामं तु होवं शृण्यति चाश्रकम् ॥ ३ ॥

अन्य विधि—कृष्णाश्रक को अग्नि में तपा कर दूध में बुझावे तदुपरान्त उसके पत्रों (परत) को अलग २ करके चौलाई के स्वरस और अम्ल द्रव (नीबू के रस) में आठ पहर तक भावना देने से अश्रक शुद्ध हो जाता है ॥ २-३ ॥

धान्याश्रकम्—

पादीशालिसंयुक्तमभ्रं बद्धवाऽथ कम्बले । त्रिक्रां स्थापयेषीरे ततिकुञ्जं मर्द्येत्कैः ॥ १ ॥

कम्बलाद् गालिसं सूक्ष्मं बालुकासदकं च यत् । तदान्याश्रमिति प्रोक्तमय भारणसिद्धये ॥२॥

धान्याश्रक विधि—अश्रक से चतुर्विंश शालिधान्य लेकर दोनों को कम्बल में बौंध तीन रात तक जल में रखें जब वह पूर्ण रूप से भींग जावे तब हाथों से खूब मर्दन करे । उस कम्बल में से छने हुए छोटे २ बालुका सदृश प्राप्त अश्रक को ‘धान्याश्र’ कहते हैं और इसे मारण के लिये ग्रहण करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अश्रमारणम्—

कृत्वा धान्याश्रकं तत्त्वं शोषयित्वाऽथ मर्द्येत् । अर्कस्त्रैदिनं खस्वे चक्राकारं च कारयेत् ॥

वेष्टयेदक्षपत्रै शृण्यगग्नातुरे पचेत् । पुनर्मर्द्यं पुनः पाद्यं सप्तवारां पुनः पुनः ॥ २ ॥

ततो बट्टाटाकाशैस्तद्वैयं पुटव्रथम् । त्रियते नात्र सन्देहः सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ३ ॥

अश्रमारण—उपर्युक्त विधि से धान्याश्र करके सुखा लेवे जब सूख जावे तब भली भाँति खल में रख कर मदार के दूध में मर्दन कर टिकिया को बनावे, टिकिया सुखाकर मदार के पत्तों से बैष्टित कर गजपुट की विधि से फूंक देवे, इसी प्रकार बार २ मदार के दूध में मर्दन कर मदार पत्र का बैष्टन देकर ७ बार गजपुट में फूंके । इसके उपरान्त वट की जटा (बटोह) के काथ में रंगड़ कर टिकियों को बटपञ्च का बैष्टन देकर गजपुट की विधि से तीन बार फूंके इस प्रकार का फूंका हुआ अश्रक निःसन्देह मर जाता है, इसे सब रोगों में प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १-३ ॥

तुह्यं धूतं मृत्याभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत् । धूते जीर्णे तद्वां सुखरोगेषु योजयेत् ॥ ४ ॥

इस प्रकार का मरा हुआ अश्रक लोहे की कड़ाही में रखकर उसके बराबर धीं देकर पकावे जब धीं जल जावे तब उस अश्रक को निकाल कर सब रोगों में प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ४ ॥

धान्याभकं रविचीरै रविमूलदवेण वा । पिष्टा पिष्टा पुरेपाकारसस्था त्रियतेऽभकः ॥ ५ ॥
धान्याभक को मदार के दूध अथवा मदार की जड़ के रस में मर्दन कर टिकिया बना गजपुट
में ७ बार फूंकने से अभक मर जाता है ॥ ५ ॥

अन्यच—धान्याभं मेघनादैः कदलिघनजलैष्टङ्गाङ्गोलतोयैः
खल्वे सम्मर्थं गाढं तदनु गजपुटान् द्वादशौर्वं प्रदद्वात् ।
मीनालीभृङ्गतोयैखिफलजलयुतैर्भर्तयेत्सप्तवारं

गन्धं तुरुथं च दध्वा प्रवरगजपुटापञ्चतां याति मेघः ॥ ६ ॥

अन्य मारण विधि—धान्याभ को मेघनाद (चौलाई का रस), कदली (केला) के जल, मोथे
के रस, टङ्ग और अङ्गोल के जल से खल में खूब मर्दन कर गजपुट में बारह बार फूंके, तत्पश्चात्
मत्स्याक्षी (मट्ठी), भृङ्गराज और त्रिफला के जल में पृथक्-पृथक् ७ बार मर्दन कर अभक के
बराबर गन्धक देकर गजपुट में फूंकने से अभक निश्चित ही मर जाता है ॥ ६ ॥

अन्यच—दुरुधत्रयं कुमार्यम्बु गजमूत्रं नुमूत्रकम् । वटभृङ्गमजारकमेभिरभ्यं सुमदितम् ।
शतधा पुटितं भस्म जायते पद्मरागवत् ॥ ७ ॥

अन्य मारण विधि—शुद्ध अभक (धान्याभ) को दुरुधत्रय (गाय, भैस तथा बकरी का दूध),
द्वृतकुमारी का रस, हस्तिमूत्र, नरमूत्र, वट (वरोह) का रस (पाठान्तर में भृङ्गराज का रस)
और बकरी के रस में मर्दन कर टिकिया बना-बना कर सौ बार गजपुट में फूंकने से अभक का
पद्मराग के समान भस्म होता है ॥ ७ ॥

अन्यच—धान्याभकं समादाय मुस्ताकाथैः पुटव्रयम् ।

तद्वत्पुनर्नवानैरिः कासमर्दरसस्था ॥ ८ ॥

नायवल्लोदलैः सर्पित्तीरदेयं पृथक् पृथक् । द्विने दिने मर्दयित्वा काथैर्वटजटोऽस्तैः ॥ ९ ॥

दध्वा पुटत्रयं पश्चात्विषुटं सुसलीद्वैः । त्रियोऽन्नुरक्षायेण प्रिपुटेष्टाननरीरसैः ॥ १० ॥

मोचाकन्दरसैः पार्थ्य त्रिवारं कोकिलाल्जैः । इसैः पुटेत्तो धेनुचीरादेकं पुटं मृदुः ॥ ११ ॥

कृष्णा धृतेन मधुना स्वच्छया सितया तथा । एकमेकं पुटं दध्वादध्रस्यैवं मृतिभवेत् ॥ १२ ॥

और भी विधि—धान्याभक को लेकर नागरमोथा के काथ में मर्दन कर टिकिया बनाकर
तीन बार गजपुट में फूंके तत्पश्चात् पुनर्नवा के रस तथा कासमर्द (कसाँदी) के रस में मर्दन
कर उसी प्रकार गजपुट में फूंके (३ पुट दें) । पुनः पान का रस, धी और दूध अलग-अलग देकर
एक दिन मर्दन कर और वट के जदा (वरोह) के काथ में भी मर्दन कर तीन पुट देवे । पुनः
मुसली के द्रव में (रस में) मर्दन कर टिकिया बना कर तीन बार पुट देवे । तीन बार पुनः गोखरू
के काथ में मर्दन कर पुट (तीन पुट) देवे, पुनः बानरी के रस में मर्दन कर तीन पुट देवे ।
पुनः मोचा कन्द (केले के कन्द) के रस में मर्दन कर तीन पुट देवे और तीन पुट कोकिलाक्ष
(तालमधुना) के रस में मर्दन कर देवे । इसके बाद गाय के दूध में मर्दन कर एक मृदु
(लघु) पुट देवे और इसी प्रकार दही, धी, मधु और स्वच्छ चीनी वा मिश्री में मर्दन कर
अलग २ एक पुट देवे इससे (क्रियाओं से) अभक मर जाता है ॥ ८-१२ ॥

अन्यच—धान्याभकस्य भागैङ्गं ही भागो टङ्गस्य च ।

पिष्टा तदध्यमूलायां रुदध्वा तीव्राग्निना पचेत् ॥

स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १३ ॥

और भी अभक मारण की विधि—धान्याभक एक भाग, टङ्ग दो भाग, इनको एकत्र पीस
कर अन्धमूषा में बन्दकर [अन्धमूषा विधि से तीव्र अस्त्रि में बन्दकर] पकावे और जब आप से

आप अन्धमूषा शीतल हो जावे तब उसमें से औषध निकाल कर चूर्ण कर सब रोगों के योग में
प्रयोग करें ॥ १३ ॥

अभ्रकगुणाः—

निश्चन्द्रकं भजेत्तत्त्वं शुद्धदेहे रसायनम् । सच्चन्द्रं विषवज्ज्ञेयं मृत्युकृद्धयाघ्रोमवत् ॥ १ ॥

अभ्रक भस्म के युग—दोष से रहित अर्थात् वगन-विरेचन से शुद्ध शरीर वाला भ्रुव्य
निश्चन्द्र [चमचमाहट रहित] उत्तम भस्म सेवन करे, तो रसायन है और सच्चन्द्र [चमचमा-
हट सहित] अनुत्तम भस्म सेवन करना विष की तरह जानना चाहिये और व्याघ के रोग की
तरह मृत्युकृद्धयाघ्र के जानना चाहिये ॥ १ ॥

वराग्नु गोधृतं चांचं कलापद्धिकसमांशकम् । मृद्गमिना पचेष्टोहे द्वामृतीकरणं विवदम् ॥

अभ्रक का अमृतीकरण—त्रिफला का जल १६ भाग, गाय का धृत ६ भाग, अभ्रक १० भाग
लेकर सबको एकत्र कर मृदु अधिपर लौहपत्र में रख पकावे इसे 'अमृतीकरण' कहते हैं ॥ २ ॥

वेष्टुद्वयोषसमन्वितं धृतयुतं वज्ञोन्मितं सेवितं
दिव्याभं द्वयपाण्डुरुप्रहणिकाशूलामकोष्टामयान् ।

आर्तिचासगदं प्रमेहमर्हितं कासामयं दुर्धरम्

अन्दाप्रिं जटश्वयां विजयते खं हन्ति सर्वामयान् ॥ ३ ॥

वेष्ट [विडङ्ग], व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) और धी मिलाकर एक रत्ती की मात्रा से
उत्तम अभ्रक सेवन करने से क्षय, पाण्डु, ग्रहणी, शूल, आम और कोष्ट के रोग, अर्दित, शास,
प्रमेह, अरुचि, भयकर कास, मन्दायशि और ज्वाला ज्वाला की पीड़ा को तथा सब प्रकार के रोगों को
नष्ट करता है ॥ ३ ॥

गौरीतिजः परममस्तं वातपिण्डश्वयन्नं, प्रज्ञावोचि प्रशमितजरं वृत्यमायुष्यमग्रयम् ।

वस्तं दिव्यं विचिदमकं वीपनं शीतवीर्यं, तत्त्योगैः सकलगदहृदद्वयोमसूतेद्वद्विनिष्ठ ॥४॥

गौरीतिज (अभ्रक) अत्यन्त अनुत्त, वात-पित्त तथा क्षय का नाशक, प्रज्ञाशक्ति (बुद्धि) को
देने वाला, जरा को शमन करने वाला, वीर्यवर्धक, उत्तम आयु कर्ता, वलकारक, स्त्रियों, रुचिका-
रक, कफ नहीं करने वाला, दीपन और शीतवीर्य एवं भिन्न २ अनुपानों से सम्पूर्ण रोगों का
नाश करने वाला तथा सूतेन्द्रविनिष्ठ (पारे को बन्धनकर्ता) होता है ॥ ४ ॥

क्षारामलं द्विलं कोलं कर्कटीं कारवेरलकक्षम् । वृन्ताकं च करीरं च तैलं चांचे विवर्जयेत् ॥५॥

अभ्रक सेवन में वजित पदार्थ—अभ्रक सेवन करने वाला क्षार, अम्ल, दिव्दल, कोल (वेर),
कर्कटी (करकी), करैली, बैगन, करीर और तैल को छोड़ देवे अर्थात् इन्हें न खावे ॥ ५ ॥

अभ्रकानुपानानाम्—

अभ्रकं च निशायुक्तं पिष्टली भ्रुव्यान्न सह । विंशतिं च प्रमेहाणां नाशयेद्वाच्च संशयः ॥ ६ ॥

अभ्रक का अनुपान तथा अनुपान देव से युग—अभ्रक भस्म हलदी का चूर्ण, पीपरचूर्ण
और मधु के साथ सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेह का नाश करता है इसमें सन्देह नहीं ॥६॥

अभ्रकं हेमसंयुक्तं द्वयोरेत्तव्याशनम् । रौप्यहेमाभ्रकं चैव धातुवृद्धिकरं परम् ॥ ७ ॥

अभ्रक सुवर्ण के साथ सेवन करने से क्षय रोग का नाश करता है । चाँदी और सुवर्ण के साथ
सेवन करने से अत्यन्त धातुवर्धक होता है ॥ ७ ॥

अभ्रकं च हरीतक्या गुडेन सह योजितम् । पृलाशकरया युक्तं रक्षपित्तविनाशनम् ॥ ८ ॥

अभ्रक हरीतकी चूर्ण, गुड, इलायची और शकरा (चीनी) के साथ मिलाकर सेवन करने
से रक्षपित्त का नाश करता है ॥ ८ ॥

त्रिकटु त्रिकलां चैव चातुर्जातं सशक्तरम् । मधुना लेहयेप्रातः चथार्णः पाण्डुनाशनम् ॥४॥
अभ्रक त्रिकटु (सौठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (आंवला, हरे, बहेरा), चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर) के चूर्ण और शक्कर के साथ मधु से प्रातः चाटने से क्षय, अर्द्ध और पाण्डु रोग का नाश करता है ॥ ४ ॥

गुदूचीसच्चवण्डाभ्यां मिश्रितं मेहनाशनम् । एलागोजुरभूषाश्रीसितागथ्येन मिश्रितम् ॥५॥
प्रातः संसेवनानिन्तयं मेहकृच्छ्रनिवारणम् । पिप्पलीमधुसंयुक्तं अमजीर्णवराप्राप्तम् ॥६॥

गुदूची के सत्र और चीनी के साथ अभ्रक सेवन करने से प्रमेह का नाश करता है और इलायची, गोबरु, मुँइ, आंवला, चीनी और गाय की दही के साथ मिलाकर नित्य प्रातः खाने से मैह और मृद्रुच्छ्र का तथा पीपरन्दूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से अम तथा जीर्णवर का नाश करता है ॥ ५-६ ॥

मधुचिकलया युक्तं नेत्रं पुष्टिकरं मतम् । मूर्वासच्चयुक्तं व्योम व्याणामां च विनाशनम् ॥७॥
मधु और त्रिफला के चूर्ण के साथ अभ्रक सेवन करने से नेत्र की ड्योति पुष्ट होती है । मूर्वा के सत्र के साथ अभ्रक सेवन करने से व्रण का नाश होता है ॥ ७ ॥

गोदीश्चीरकन्दाभ्यां बलवृद्धिकरं परम् । भल्लातकयुक्तं व्योम त्वक्षोदोषनिवारणम् ॥८॥
गाय के दूध तथा क्षीरकन्द (विदारीकन्द) के साथ अभ्रक सेवन करने से बल की वृद्धि अत्यन्त होती है । भल्लातक (शुद्ध भिलावे) के साथ सेवन करने से अर्ज के दोष का नाश होता है ॥ ८ ॥

नागरं पौष्टिकं भारीं गगनं मधुना सह । अश्वगन्धायुक्तं खादेद्वात्तथ्याद्विनिवारणम् ॥९॥
सौठ, पुष्करमूल, भारी और असगन्ध के साथ मधु मिलाकर अभ्रक सेवन करने से व्रातव्याधि का नाश होता है ॥ ९ ॥

चातुर्जातं सिता चाअभं पित्तरोगनिवारणम् । कट्फलं पिप्पली छाँद्रं श्लेष्मरोगनिवारणम् ॥१०॥
चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) और चीनी के साथ अभ्रक सेवन करने से पित्त के रोगों का और कायफर, पीपर और मधु के साथ सेवन करने से कफ के रोगों का नाश करता है ॥ १० ॥

सर्वचारयुक्तं चात्रमग्निवृद्धिकरं परम् । मूत्राधातं मृशकृच्छ्रमशमरीमपि नाशयेत् ॥११॥
सब प्रकार के क्षारों के साथ सेवित अभ्रक अत्यन्त अश्विर्धक, मूत्राधात, मृत्तकृच्छ्र और अश्मरी का भी नाश करता है ॥ ११ ॥

विजयारससंयुक्तं शुक्रस्तम्भकरं परम् । लवज्ञमधुसंयुक्तं चातुर्वृद्धिकरं परम् ॥१२॥
विजया (भांग) के रस के साथ सेवन करने से अभ्रक अत्यन्त शुक्रधारक (स्तम्भक) और लवज्ञ तथा मधु के साथ सेवन करने से अत्यन्त धातुवर्धक होता है ॥ १२ ॥

गोदीरं शर्करायुक्तं पित्तरोगविनाशनम् । अभ्रकं विधिसंयुक्तं पथ्ययोगेन योजितम् ॥१३॥
बलीपलितनाशः स्याजीवेच शशदा शतम् ॥१३ ॥

गाय के दूध और शक्कर के साथ सेवित अभ्रक पित्तरोग को नाश करता है । विधिपूर्वक पथ्य और योग से सेवित किया हुआ अभ्रक बली-पलित का नाशक और सौ वर्ष जिलानेवाला है ॥

वेज्ञव्योषसमन्वितं धृतयुक्तं दल्लोन्मितं सेवितं
दिव्याभ्रं लायपाण्डुसंग्रहणिकाशूलं च कुष्ठामयम् ।

सर्वधासगदं प्रमेहमहर्चिं कासामयं दुर्धरं

मन्दादिनं जठरद्यथा परिहरेच्छलेष्मामयाच्छ्रितम् ॥१४॥

उत्तम अभ्रक वेल्ल [वायविड्ज], व्योष [सौठ, पीपर, मरिच] और धृत के साथ एक रक्ती प्रमाण में सेवन करने से क्षय, पाण्डु, घ्राणी, श्लू, कुष्ठ, सर्वशास, प्रमेह, अरुचि, संयंकर कास, मन्दादिन और जठर की पीड़ा एवं कफ के रोग का निश्चित नाश करता है ॥ १४ ॥

नातः परतरं किञ्चिज्जग्मस्तुविनाशनम् ॥१५॥

इससे [अभ्रक से] बढ़ कर जरा और स्तुतु का नाशक और कोई औषध नहीं है ॥ १५ ॥

अथ स्वर्णमास्त्रिकम् ।

स्वर्णवर्ण गुरु श्लिष्मीष्वन्नीलच्छ्रविच्छ्रटम् । कये कलकवद्धृष्टं तद्वरं हेममास्त्रिकम् ॥१॥

स्वर्णमास्त्रिक के लक्षण—शोधन मारण—गुणादि—जो वर्ण में सुवर्ण के समान, गुरु, श्लिष्म विक्षिक्तील, देखने में सुन्दर ही और कस्टी पर कसने में सुवर्ण के समान विस जावे वह ‘सुवर्ण मास्त्रिक’ उत्तम होता है ॥ १ ॥

अशुद्ध सास्त्रिक कुर्यादाद्यं कुरुष्टं द्वयं क्रिमीन् । शोधनीयं प्रयत्नेन तस्मात्कनकमास्त्रिकम् ॥२॥

अशुद्ध सुवर्ण मास्त्रिक के दोष—अशुद्ध सुवर्ण मास्त्रिक सेवन करने से अन्धापन, कुष्ठ, क्षय और क्रिमि रोग होता है, इसलिए सुवर्ण मास्त्रिक को यत्नपूर्वक शुद्ध करना चाहिए ॥ २ ॥

शोधनम्—

त्रिभागं मास्त्रिकं ग्राहां चतुर्थांशेन सैन्धवम् । जम्बीरजरसैर्वाऽपि वीजपूरद्वैः पचेत् ॥ १ ॥
घर्षितं लोहपात्रे च चाति पात्रं च रक्तात्म । ततः शुद्धस्वर्णायाति स्वर्णमास्त्रिकमीहशम् ॥२॥

स्वर्ण मास्त्रिक शोधन विधि—तीन भाग स्वर्ण मास्त्रिक और चतुर्थांश अर्थात् एक भाग सैन्धव लवण लेकर लोहे के कड़ाही में जम्मीरी नीबू अथवा विजौरे नीबू के रस में अग्नि पर पकावे और तब तक लोहे की कलछी से चलाता रहे जब तक कि स्वर्णमास्त्रिक लोहे की कड़ाही जैसा लाल न हो जावे । इस प्रकार की क्रिया से स्वर्णमास्त्रिक शुद्ध हो जाता है ॥ १-२ ॥

अन्यवः प्रकारः—

एरण्डतेललुहाग्नुसिद्धं शुद्धयति मास्त्रिकम् ।

शुद्धं वा कद्लीकन्दतोयेन घटिकाद्यम् । तसं छिसं वराकाये शुद्धिमायाति मास्त्रिकम् ॥३॥

अन्य शोधन की विधि—स्वर्ण मास्त्रिक एरण्ड तैल तथा विजौरे नीबू के रस में मर्दन करने से शुद्ध होता है अथवा कद्ली [केला] के मूल के रस में दो घड़ी पर्यन्त मर्दन करने से शुद्ध होता है अथवा तपाकर त्रिफला के क्वाथ में तुक्काने से शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

अन्यच—अग्निस्तपश्रियासैः शिश्रमूलं सुधेषितम् ।

तन्मध्ये पुटितं शुद्धं जिङ्गुजालेन पाचितम् ॥२॥

और भी—अगरत के पत्र के निर्यास [स्वरस] और सहिजन के मूल को पीस कर उसके बीच में स्वर्ण मास्त्रिक रख कर बटपत्र से बेष्टित कर पुट देकर नीबू के रसमें पकाने से स्वर्ण मास्त्रिक शुद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

स्वर्णमास्त्रिकमारणम्—

मास्त्रिकस्य चतुर्थां दशा गन्ध विमर्दयेत् । उरवृकस्य तैलेन ततः कार्या सुचक्षिका ॥१॥

शरावसम्पुटे कृत्वा पुटेज्जपुटेन च । शान्त्यस्य तुष्मूर्धविधो दत्त्वा शीतं समुद्देत् ।

सिन्दूराभं भवेद्दस्म मास्त्रिकस्य न संशयः ॥ २ ॥

स्वर्णमास्त्रिक मारण—स्वर्णमास्त्रिक के चतुर्थांश शुद्ध गन्धक देकर मर्दन करे और मर्दित हो जाने पर एरण्ड तैल से टिकिया बनावे और उस टिकिया को शराव सम्पुट में रख कर गजुपट

१० यो० प०

में फूक देवे और उसके ऊपर नीचे धान का भूसा करके रख देवे जब शीतल हो जावे तब उसे छोड़े, उसमें सिन्हूर के वर्ण का मालिक भर्म रहेगा । इसमें कोई शङ्खा नहीं है ॥ १-२ ॥

अन्यच—अजामूलेऽथात् लैले कबाबे वा कुलरथजे । तक्के वा धर्षितं पक्षं त्रियते स्वर्णमालिकम्॥

अन्य मारण विधि—स्वर्ण मालिक शुद्ध लेकर बकरी के मूत्र अथवा एरण्डतैल अथवा कुलीयी के काढ़े वा तक्के में धर्षित कर पुट दिया हुआ स्वर्णमालिक भर्म हो जाता है ॥ ३ ॥

गुणः—मालिकं त्रिक्षमधुरं मेहार्षाःऽथकुष्ठनुद् । कफपित्तहरं शीतं योगदाहि रसायनम् ॥२॥

स्वर्णमालिक का गुण—स्वर्णमालिक तिक्क, मधुर, मेह-अर्शक्षय और कुष्ठ का नाश करने वाला, कफ-पित्त नाशक, शीतल, योगदाही और रसायन है ॥ १ ॥

मालिको रजतहाटकप्रभः शोधितोऽतिगुणः सुसेवितः ।

मेहकुष्ठकृमिशोफपाण्डुतापस्मृतीर्हर्ति सोऽस्मर्ती जयेत् ॥ २ ॥

रौप्य अथवा स्वर्णमालिक शुद्धकर सेवन करने से अत्यन्त गुणकारी, मेह, कुष्ठ, कृमि, शोथ, पाण्डु, ताप और स्मृति दोष को हरण करके वाला और अस्मर्ती को नष्ट करने वाला है ॥ २ ॥

सन्दानलस्वं बलहानिमुझां विष्टभतामन्यगदांश्च दुष्टान् ।

करोति मालां ब्रान्पूर्विकों च मालीकधार्मुखरूपरूपकः ॥ ३ ॥

अपक के दोष—मालिक धातु अपक रहने पर मन्दादि, दुलेता, विष्टभ तथा अन्याक दूषित हुष्ट रोग, ब्रण पूर्वक कण्ठमाला आदि करता है तथा मारी होता है ॥ ३ ॥

मालीकधार्मः सकलामयधनः प्राणो रसेन्द्रस्य परं हि वृद्धः ।

हुमेल्लोहुद्यसेलकश्च गुणोत्तरः सर्वरसायनाग्रहः ॥ ४ ॥

और भी गुण—मालिक धातु सब प्रकार के रोगों का नाश करने वाला, रसेन्द्र (पारद) का ग्राण अर्थात् गर्भ चुति के लिये उत्तम, अत्यन्त दीर्घ वर्धक, नहीं मिलने वाले दो धातुओं को मिलने वाला, अधिक गुण युक्त तथा सब रसायनों में अग्र (अगुआ) है ॥ ४ ॥

अथ तारमालिकम् ।

कांस्यव्याखारमालीकं कषे छृष्टं तु रूप्यवश् । गुण रिनग्धं सिसं यस्तद्वृष्टे स्यात्तारमालिकम् ॥१॥

तार (रौप्य) मालिक के लक्षण-शोधन-गुणादि—जो कसौटी पर कसने से कांसे के समान और धिसने पर रूपे के समान, गुरु, स्तिंग्ध, इवेत हो वह रौप्य मालिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

स्वर्णमालिकवद्व्याका विज्ञेयस्तारमालिके । अतस्तद्वोषशास्त्रयं शोधनं कथयते यथा ॥ २ ॥

रौप्य मालिक के दोष—स्वर्ण मालिक के समान ही रौप्यमालिक का दोष जानना चाहिये इसलिये उन दोषों की शान्ति के लिये शोधन विधि कहा जाता है ॥ २ ॥

शोधनम्—कर्कोटीमेवश्वस्त्रीजै रसेन्द्रव्योरजैर्दिनम् ।

आतपे भासना देया शुद्ध स्यात्तारमालिकम् ॥ १ ॥

रौप्य मालिक शोधन—कर्कोटी (वांश करोड़ा), मेव श्वसी (मेदा सिंधी) और जमीरी नीबू के रस में एक दिन धूप में भावना देने से तारमालिक शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

तन्मारणम्—स्वर्णमालिकवद्वैर्यं तारमालिकमारणम् ।

विमलाया गुणः किञ्चिन्न्यूनाः कनकमालिकात् ॥ १ ॥

रौप्य मालिक मारण—स्वर्ण मालिक की भाँति रौप्य मालिक का मारण भी जानना चाहिये और शुद्ध तथा मृत हो जाने पर स्वर्ण मालिक से किञ्चित् न्यून गुण वाला होता है ॥ १ ॥

तालकविधि—

शुद्धदं तालमायुर्हरकक्षमाहसमेहस्य । सापस्कोटाङ्गसङ्कोचान्कुद्दसे तेन शोधयेत् ॥ २ ॥

अशुद्धताल के दोष—अशुद्ध हरताल आयु-नाशक, कफ-वायु और मेह कारक, ताप, स्फोट और अङ्गसङ्कोच करता है, इसलिये शुद्ध करना चाहिये ॥ १ ॥

शोधनम्—तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं काञ्जिके चिपेत् ।

दोलायन्त्रेण यामैकं पकवं शुद्धयति तालकम् ॥ २ ॥

हरताल शोधन—ताल के छोटे २ डुकड़े करने के बाद न्यूर्ण कर उसकी काँजी में छोड़े और एक पहर तक 'दोलयन्त्र' में पकवे तब ताल शुद्ध होता है ॥ २ ॥

तन्मारण—सदलं तालकं शुद्धं पुनर्नव्या रसेन तु ।

स्वर्णे विरम्यदेवकदिनं पश्चाद्विशेषेत् ॥ १ ॥

संशोध्य गोलकं तस्य कुर्यात् च विशेषेत् । ततः पुनर्नव्या चारैः स्थावर्यं तु प्रपूर्येत् ॥ २ ॥

तथा सद्गोलकं धूत्वा पुनर्नसेनैव पूर्येत् । आकण्ठं पिटरं तस्य पिधानं धारयेन्युखे ॥ ३ ॥

स्पालीं सुख्लयां समारोप्य क्रमादृद्धिं विवर्धयेत् । दिनान्यन्तरशून्यानि पञ्चविहिं प्रदीपयेत् ॥ ४ ॥

एवं सु विधयते तालं मात्रा तस्यैकरक्तिका । अनुपानान्यनेकानि यथायोदयं प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

हरताल मारण—शुद्ध हरताल का पत्तर लेकर पुनर्नव्या (गदह पुरना) के रस के साथ खल में दिन भर मद्दन कर, गोला बनाकर सुखावे, उस गोले को एक हाँड़ी में आधी हाँड़ी पुनर्नव्या का क्षार रखकर उसमें गोला रख उस हाँड़ी को पुनर्नव्या के क्षार से गले तक भर देवे इसके पश्चात् हाँड़ी का मुख बन्द कर आग पर चढ़ावे और धीरे धीरे और धीरे अँच बढ़ावे इसप्रकार लगातार विना अन्तर दिये हुए (निरन्तर) पांच दिन तक आग पर रखकर पकावे इस प्रकार करने से हरताल मर जाता है । इसको मात्रा एक रत्ती है और प्रकार के अनुपान से अनेक रोगों में प्रयोग किया जाता है ॥ १-५ ॥

गुणः—हरितालं कटु स्तिंग्धं कषायोणं हरेद्विषम् ।

कण्ठ्वृद्धकृष्णरोगात्तारपित्तकफव्यान् ॥ १ ॥

हरताल का गुण—हरताल कटु, स्तिंग्ध, कषाय, उषण, विष हरण करने वाला, कण्ठ, कुष्ठ रोग, रक्त, वात, पित्त-कफ-और ब्रण नाश करने वाला है ॥ १ ॥

सालकं हरते रोगान्कुष्ठं मृत्युजरापदम् । शोधितं कुरुते वीर्यं कान्ति वृद्धिं तथाऽऽग्निः ॥ २ ॥

शुद्ध हरताल कुष्ठ रोग, मृत्यु तथा जरा का नाशक है और वीर्य, कान्ति को वृद्धि तथा आयु-कारक है ॥ २ ॥

अथ मनःशिला ।

मनःशिला भन्दवलं जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण ।

मलस्य बन्धं किल मूर्त्रोणं सशक्तं कृपद्वगादं च कुर्यात् ॥ १ ॥

अशुद्ध मैनसिल के दोष—अशुद्ध मैनशिल वल की मन्दता मूल बन्ध, मूत्र रोग और शर्करा सहित मूत्र कृच्छ्र रोग का करने वाला होता है ॥ १ ॥

शोधन—पचेत्यहमजामूले दोलायन्त्रे मनःशिलाम् ।

भावयेत्प्रसाध्या मूत्रैवज्ञायाः शुद्धिस्त्रृच्छति ॥ १ ॥

मैनसिल शोधन विधि—मैनशिल को बकरी के मूत्र में 'दोलायन्त्र' द्वारा तीन दिन पकावे तत्पश्चात् सात वार करकरी के मूत्र की भावना देवे । इस प्रकार मैनशिल शुद्ध हो जाता है ।

अन्यच—अगस्तिपञ्चतोयेन भाविता सप्तवारकम् ।

शुद्धवेत्से वाऽपि विशुद्धयति मनःशिला ॥ २ ॥

अन्य विधि—अग्रस्त के पत्ते के अथवा अद्रक के रस को सात र भावना देने से मैनशिल शुद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

गुणः—मनःशिला गुरुर्बृण्ठा सरोषणा लेखनी कटुः ।

तिक्ता स्तिनग्धा विषश्वासकासभूतविषाञ्चनुत् ॥ १ ॥

मैनशिल के गुण—मैनशिल गुरु, वर्ण कारक, सारक, उष्ण, लेखन, कटु, तिक्त, स्तिनग्ध, विष-श्वास-कास-भूत-विष और रक्त दौष का नाशक होता है ॥ १ ॥

अथ स्तोतोऽञ्जनम् ।

स्तोतोऽञ्जनं द्विघा प्रोक्तं श्वेतकृष्णप्रभेष्टः । त्रिफलावारिणा श्वेद्यं तद्दूधं शुद्धिमृच्छति ॥

स्तोतोऽञ्जन के भेद—अञ्जन दो प्रकार का होता है श्वेत और कृष्ण । त्रिफला के जल में श्वेदित करने से दोनों की शुद्धि होती है ।

गुणः—सौबीरं ग्राहि मधुरं चचुर्यं कफपित्तजित् ।

हिघमाष्याञ्चनुच्छीतं स्तोतोऽञ्जनमपीदशम् ॥ २ ॥

गुण—सौबीराजन ग्राही, मधुर, नेत्र को हितकर, कफपित्त नाशक, हिक्का क्षय, रक्त नाशक और शीतल है । इसी प्रकार स्तोतोऽञ्जन भी जानना चाहिये ॥ २ ॥

अथ तुथम् ।

विषया मर्दयेत्तुथं मार्जारिककपोतयोः दशांशं टक्कणं दृश्या पचेष्यद्युपुटे ततः ॥

पुटं दृश्या पुटं शौद्धैर्देशं तुथं विशुद्धयति ॥ १ ॥

तूतिया का शोधन मारण—तूतिया को बिल्ली और कपोत की विषा के साथ मर्दन कर उसके दशांश टक्कण देकर लघु (हल्का) पुट देते इसके पश्चात दृश्य के साथ सर्दन कर एक पुट तथा मधु के साथ मर्दन कर एक पुट देने से तुथ शुद्ध और भूत हो जाता है ॥ १ ॥

अन्यच—ओतोविंशा समं तुथं सचौदं टक्कणाळूप्रियुक् ।

त्रिष्वैवं पुटितं शुद्धं वानितञ्चन्तिविषजितम् ॥ २ ॥

दूसरी विधि—विल्ली की विषा, तूतिया और मधु सम भाग तथा और टक्कण चतुर्थीश मिला कर तीन बार पुट देने से तुथ शुद्ध होना है तथा वर्मन, अम आदि दौष नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

गुणः—तुथकं कटुकं शारं कषायं विशदं लघु ।

लेखनं भेदि चचुर्यं कण्ठकृमिविषाप्यम् ॥

कफास्त्रिपित्तकृष्टैनं मेहमेदोविनाशनम् ॥ १ ॥

तुथ के गुण—तूतिया कटु क्षार, कषाय, विशद, लघु, लेखन, भेदी, नेत्र को हितकर, कण्ठ-क्रिमि और विष नाशन, कफ-रक्त-पित्त और कुष्ठ नाशक और प्रमेह तथा मेद रोग का नाश करने वाला होता है ॥ १ ॥

अथ खर्परम् ।

नूमूत्रे वाथ गोमूत्रे सप्ताहं इसकं पचेत् । दोलायन्त्रेण शुद्धं स्थान्तः कायेषु योजयेत् ॥ २ ॥

खर्पर शोधनादि—खर्पर (खपरिया) को मनुष्य के मूत्र अथवा गोमूत्र में सात दिन तक दोलायन्त्र के पकावे इसके खपरिया सब कार्य में लाने योग्य शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

खर्परं कुटुकं शारं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतं चचुर्यं कफपित्तनुत् ॥

विषाञ्चकुटुकण्ठौनां नाशनं परमं मतम् ॥ २ ॥

खर्पर का गुण—खपरिया कटु-क्षार, कषाय, वामक (वर्मन करनेवाला); लघु, लेखन, (मल भेदक) शीतल, नेत्र को हितकर, कफ-पित्त नाशक, विष-रक्त और कण्ठ का अत्यन्त नाश करने वाला होता है ॥ २ ॥

अथ पारदः ।

इसो विप्रः सितो रक्तः चक्रियः पीत ऊरजः । शुद्धः कृष्ण इति प्राप्ता वर्णमेदाच्चतुर्विधः ॥ १ ॥

पारद के भेद—पारद इवेत वर्ण का विप्र, रक्त वर्ण का क्षत्रिय, पीत वर्ण का वैश्य और कृष्ण वर्ण का हो तो शुद्ध इस प्रकार चार भेदों वाला जानना चाहिये ॥ १ ॥

ब्राह्मणः कल्पयते कर्षये गुटिकायां च बाहुजः । धातुश्चादे तथा वैश्यः शुद्धश्चेतरकर्मणि ॥ १ ॥

कल्पयोग (काया कल्पयोग) में ब्राह्मण जाति के इवेत वर्ण पारद से कार्य करना चाहिये । ग्रुटिका (खेचरी ग्रुटिका) आदि में क्षत्रिय जाति का रक्त वर्ण, धातुवाद (धातु परिवर्तन करने) में वैश्य वर्ण का पीत पारद और अन्यान्य कर्मों में शुद्ध जाति का कृष्ण वर्ण पारद काम में लाना चाहिये ॥ २ ॥

अन्तः सुनीलो बहिरुजवलाङ्गो मध्याह्नचन्द्रप्रतिमप्रकाशः ।

शस्तोऽथ धूः परिपाण्डुरथ चिन्नो न योज्यो इसकर्मसिद्धये ॥ ३ ॥

ग्रहण करने योग्य और अयोग्य पारद के लक्षण—जो पारद अन्तर्मांग में नील वर्ण का हो, बाहर अर्धांत लगभी भाग में उज्ज्वल वर्ण का मध्याह्न के सूर्य के समान प्रकाश वाला हो वह उत्तम और कार्य में लाने योग्य है और जो धू धू वर्ण का, पाण्डु वर्ण का और चित्रित वर्ण का हो वह पारद रस कर्म के योग्य नहीं होता है ॥ १ ॥

पूर्वैदेवा इसेन्द्रस्य ये च ग्रोका मनीषिभिः । अतस्तेषां प्रशान्त्यर्थं ग्रोद्यते कर्म साम्रतम् ॥

पहले पारद के दोष जो विद्वानों ने कहा है उसको शान्ति के लिये आगे कर्म (शान्ति की किया) कहते हैं ॥ ४ ॥

यथा—मलशिलिविषनामानो इसस्य नैसर्गिकाच्चयो द्वोषाः ।

मूर्ढां मलेन कुरुते शिलिनादाहं विषेण मुख्यं च ॥ ५ ॥

रस के दोष—पारद के मल, शिली (अविन), और विष नाम के तीन प्रकार के नैसर्गिक दोष हैं । जिनमें मल दोष से मूर्ढा, शिलि दोष से दाह और विष-दोष से मुख्य होती है ॥ ५ ॥

अन्यच—मलेन मूर्ढां दहनेन दाहं विषेण मुख्यं वितनोति सूतः ।

मलादिद्वयशयमेतद्व नैसर्गिक शुद्धिमतोऽभिधात्मये ॥ १ ॥

और भी दोष के प्रति वचन—मल दोष से मूर्ढा, शिलि (दहन) दोष से दाह और विष दोष से मुख्य पारद करता है । इसलिये मलादि तीनों दोषों की नैसर्गिक स्वाभाविक), शुद्धि कहते हैं ॥ १ ॥

नागो वङ्गो मलं वहिश्चाच्चयं च गिरिविषम् । पारदे कम्बुकः सप्त गुणा नैसर्गिका इमे ॥ २ ॥

पारद के नैसर्गिक गुण—पारद में नाग, वङ्ग, मल, वहि, चाब्रव्य गिरि और विष ये सप्त कन्चुक नाम के पारद के नैसर्गिक (स्वाभाविक) दोष हैं ॥ २ ॥

रक्षेष्विक्षिप्तिनिशाधूमसारोर्णभस्मन्तूर्णकैः । ग्रन्थीरद्वसंयुलैर्गदोषापनुत्तये ॥ ३ ॥

दोष नाशक विधि—लाल ईंट (पका ईंट), हरिद्रा, धूमसार ऊर्ण के भस्म तथा चूर्ण (चूना) जम्बीरनीर से युक्त कर मर्दन करने से 'नाग' दोष की शान्ति होती है ॥ ३ ॥

विशालाङ्गोलमूलानां रजसा काञ्जिकेन च । शनैः शनैः स्वहस्तेन वङ्गदोषविमुक्तये ॥ ४ ॥

कहुवी तरोई की जड़, अङ्गोल के मूल के चूर्ण और कांजी के साथ धीरे २ पारद को मर्दन करने से 'वङ्ग' दोष की शान्ति होती है ॥ ४ ॥

राजचूषस्य मूलोथथ्यूर्णेन सह कन्यका । मलदोषापनुरथर्थं चित्रको बहिदूषणम् ॥ ५ ॥

राजचूष (अमल तास) के मूल के चूर्ण के साथ और कुमारी के रस के साथ पारद को मर्दन करने से मल दोष की शान्ति होती है । चित्रक (चित्र के मूल) के स्वरस से अश्विदोष शान्त होता है ॥ ५ ॥

चाम्भस्य कृष्णधन्तरो गिरि हन्ति कटुन्यम् । त्रिफला विषनाशाय कन्यका इस कञ्जुकान् ॥

चाम्भस्य दोष काले धूतरे के रस से, गिरि दोष (त्रिकुण्ड) सौंठ, पापर, मरिच (चित्र का विष दोष त्रिफला काथ से और सप्त कञ्जुक दोष धृत कुमारी से शान्त होता है ॥ ५ ॥

अन्यः प्रकारः—आरघवधो हन्ति मल प्रयन्मास्कुमारिका सप्त हि कञ्जकांश ।

अङ्गोलमूलं च विषं निहन्याद्वस्य वहिः किल पापकं च ॥ १ ॥

रस की अन्य दोष नाशक विधि—आरघवध से मल दोष, धृतकुमारी से सप्त कञ्जुक दोष, अङ्गोल मूल से विष दोष और चित्रक से अश्विदोष का नाश होता है ॥ १ ॥

अत्येकं सप्तवारं च मर्दितः पारदो भवेत् । तदा विशुद्धतां याति सर्वयोगाहिनो भवेत् ॥ २ ॥

इन सर्वों (आरघवध के साथ (पृथक् २) सात वार मर्दन करने से पारद सब योगों में ग्रहण करने योग्य हो जाता है ॥ २ ॥

अन्यच—कुमारीत्रिफलाद्योषचित्रकं निशुकं इसम् ।

दिनैकं मर्दितं कृत्वा शुद्धो भवति पारदः ॥ १ ॥

और भी विधि—कुमारी, त्रिफला, त्रिकुण्ड, चित्रक और नीबू के रस के साथ एक-एक दिन अलग-अलग मर्दन करने से पारद शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

अथ च—आरानालेन चोप्तेन चालयेत्प्रतिमर्दनम् ।

रसं तत्र प्रयातं तु शोषयित्वाऽथ पातयेत् ॥ १ ॥

गृहीत्वा प्रक्षिप्तेस्तु व्यादेवं पारदः शुचिः । पारदात्प्रोद्वासां तु मिलित्वा सकलं भिषकः ॥

मर्दन विधि—अनारानाल (कांजी) गरम कर औषधों से घोटे हुए पारद को प्रत्येक वार धोते अर्थात् एक वार किसी औषध के साथ मर्दन कर उपर्युक्त विधि से धोकर सुखा कर तब फिर औषध के साथ पातन करे फिर ऊर्धवपातन से निकाल कर पारद को शुद्ध जाने । इसके लिये जिन २ द्रव्यों का चूर्ण इसमें देना हो सब मिलाकर पारद में धैंडशांश होना चाहिये ॥ १-२ ॥

चूर्णं ग्रदेयं च पलं मर्दने तस्खल्यके । अजाशकृत्तथाभिः च खलित्वा भूमिमावयेत् ॥ ३ ॥

सप्तयोपदि स्थितं खलं तस्खल्यवं जगुबुधाः । एतन्मर्दनमास्यातं इससंशुद्धये तुष्टेः ॥ ४ ॥

तस्खल के लक्षण—बकरी की भींगी (विडा), और भूसा अंडी को भूनि में खन कर उसके अन्दर रख दे फिर उसके ऊपर खरल रख कर उस खरल में पारद योगों के साथ मर्दन करने को 'तस्खल' कहते हैं । रस की शुद्धि के लिये इतने को मर्दन विधि बुद्धिमानों ने कहा है ॥ ३-४ ॥

शूष्यपणं त्रिफला वन्ध्याकन्दुदाद्यान्वितम् । चित्रकेण निशाचारकन्यार्ककनकद्वयैः ॥ १ ॥

सूतं कृतेन काथेन वारान्सप्त विमर्दयेत् । हथं सूतचित्रः सूतो जद्यास्यप्तापि कञ्जुकान् ॥

मूलचित्र विधि—शूष्यपण (सौंठ-पीपर-मरिच), त्रिफला (अंवरा-हर्दा-बहेरा वन्ध्या, ककोटी (बांझ ककोड़ा), छोटी कटेरी, चित्रक, हरिद्रा क्षार, कुमारी, मंदार और धूतरे के रस अथवा

काथ कर के सूत (पारद) को अलग २ साफ कर मर्दन करने से पारद मूर्च्छित हो सप्त कञ्जुक दोषों को त्याग देता है ॥ १-२ ॥

उत्थापनं—तत उत्थापयेत्सूतमातर्ये निशुकादितम् ।

उत्थापनं विशिष्टं तु चूर्णं पातनयन्वन्नके । धूत्वाऽभन्नावूर्वभाण्डान्तं सल्ग्रहेत्पारदः शुचिः ॥ १ ॥

उत्थापन विधि—इसके पश्चात् पारद को नीबू के रस में धूप में रख खरल करके उत्थापन करे । विशिष्ट उत्थापन प्रकार यह है कि हिंगुल के चूर्ण की मिट्ठी के पात्र में ३ दिन तक जन्मीरी नीबू या चाङेरीस्वरस में भावना देवे फिर नीबू और चाङेरी स्वरस के साथ एक चूड़े पात्र में रखकर उसके ऊपर उत्तान शराव रख दे किन्तु शराव को पेंदी की खडिया मिट्ठी से लीप दे और सन्धि भी खडिया मिट्ठी से बन्द कर दे तथा शराव में धानी भर दे और पात्र के नीचे आग जलादे जब २ पानी गम्भीर हो जाय तब २ उसे हटा कर दूसरा ठंडा जला ढालता जावे । इस तरह ३० बार जल बदलता रहे । इस प्रकार करने से ऊपर उड़कर लगे हुए पारद को निकाल कर वस से छान कर कींजी से बार २ धोकर पारद को ग्रहण करे ॥ १ ॥

स्वेदनं—स्वं चतुर्गुणे वस्त्रे इसोनकशरावके ।

निमन्यं होलायन्वे तु प्रकरण्य द्विवसं पचेत् ॥ १ ॥

स्वेदन—पारद को चौपरते वस्त्र में लेपेटे हुए लहसुन के कल्प के बने शकोरे में रख कर दोलायन्व में दिन भर पचावे ॥ १ ॥

सप्तयोषत्रिफलाद्विकन्याकस्तु तुष्टाशुभ्नि । शेषदोषापनुत्थर्थमिदं स्वेदनमीरितम् ॥ २ ॥

पारद को व्योष (सौंठ, पीपर, मरिच) त्रिफला, चित्रक और कुमारी के कल्प और धान की भूसी के जल से शेष सम्पूर्ण दोषों की शान्ति के लिये 'स्वेदन' करना चाहिये ॥ २ ॥

पलादूनस्य सूतस्य द्विकन्यकस्य पलैः शास्तैः । न संस्कारः प्रकर्तव्यं संस्कारः स्थात्तोऽपरः ॥ ३ ॥

पारद का संस्कार एक पल से कम या सौ पल से अधिक रहने पर नहीं करना चाहिये । इसके पश्चात् आगे का संस्कार करना चाहिये ॥ ३ ॥

शुभेऽहनि प्रकर्तव्यं आरभो इसशोधने । एकान्ते धामनि शुभे पुराऽभ्यर्थ्ये हि भैरवः ॥ ४ ॥

शुभ दिन में रस के शोधन का आरम्भ करना चाहिये और एकान्त में अच्छे नक्षत्र में प्रथम भैरव की अर्चना कर के तब करना चाहिये ॥ ४ ॥

गुणाऽशुणाः—सूतोऽशुद्धतया गुणं न कुरुते कुष्ठादिनमांशकिमी-

द्विकन्यरोषकजाड्यदाहमरणं धन्ते नृणां सेवनात् ।

शुद्धः स्यात्सकलामयौ वशमनो यो योगवाहो मृतो

युक्तया बद्गुणगन्धयुगक्षहरो योगीन धात्वादिशुक् ॥ १ ॥

मूर्च्छार्तो गद्दहस्तयै व्यवर्ति दत्ते निबद्धोऽर्थं-

स्तद्धस्मामयवार्धकादिहरणं दक्षपुष्टिकान्तिप्रदम् ।

शूष्यं मृत्युविनाशानं बलकरं कान्ताजनानन्ददं-

शार्दूलातुलभवकृतमभुजां योगानुसारि स्फुटम् ॥ २ ॥

पारद के गुण-दोषों में अशुद्ध पारद के दोष-पारद अशुद्ध रहने से लाभ नहीं कराता है और कुछ, अशिमान्य, क्रिमि, छाँदि (वमन), अरुचि, जड़ता, दाह और मृत्यु तक अशुद्ध पारद सेवन करने से मनुर्यों को हो जाती है । शुद्ध तथा मृत पारद के गुण—शुद्ध पारद सम्पूर्ण रोग समूह द्वं वाप को शमन करने वाला होता है और जो मृत पारद है वह योगवाही होता है और युक्ति पूर्वक बद्गुण (६ गुना) गन्धक के योग से मृत किया हुआ पारद सर्वयोग नाशक होता है ।

और मिला देने से धातुओं को खा जाता है और मूर्छित होने पर रोगनाशक हैं। वद्ध होने पर आकाश में गमन करने वाला अर्थदायक है, तथा भस्म होने पर रोग और बार्धक्य आदि का नाशक इष्टि को पुष्टि करने वाला, कन्तिदायक, वीर्यवर्धक, मृत्युनाशक तथा बलकारक है और जियों को अनन्द पहुंचाने की शक्ति (कामशक्ति) दाता, सिंह के समान अतुल पराक्रम देने वाला है और जो क्रम से सेवन करते हैं उन्हें अनुपान के योग के अनुसार पूर्वोक्त गुणदाता होता है ॥ १-२ ॥

अन्यच—मूर्छुर्ण गतो यो हरते च रोगान्वद्धो यदा खेचरतासुपैति ।
लीनो भवेत्तर्वसमृद्धिदायी विराजतेऽस्मी नितर्ण रसेन्द्रः ॥ १ ॥

और भी—जो पारद मूर्छित होता है वह रोग को हटाने वाला, वद्ध (पारद की) होने पर आकाश में गमन की शक्ति देने वाला और विलीन (भस्म) हो जाने पर सब प्रकार की समृद्धि देने वाला है अतः यह रसेन्द्र (पारद) अत्यन्त सुशोभित होता है अर्थात् इन सब गुणों से पारद की प्रशंसा है ॥ २ ॥

मूर्छिकरवा हरति हृजं वन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।

अमरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः कृष्णाकरः सूताद् ॥ २ ॥

मूर्छित होने पर पारद रोग का नाश करता है, वद्ध होने पर मुक्ति देने वाला होता है, मृत होने पर अमर करनेवाला होता है इसलिये ग्रन्थकार का कहना है कि पारद से अधिक कृपा करनेवाला कौन है ॥ २ ॥

अर्थः सहाया निखिलं च शास्त्रं हस्तक्रिया कर्मणि कौशलं च ।

नित्योद्यमस्तपत्परता च विद्विरेभिर्गुणैः सिद्ध्यति सूतकेन्द्रः ॥ ३ ॥

पारद सिद्धि के साधन—धन की सहायता, सम्पूर्ण रस शास्त्र का ज्ञान हस्तक्रिया में प्रवीणता कार्य में चतुरता सतत उद्योग तत्परता तथा ठीक अंगिन का योग देना इन सब गुणों में पारद की सिद्धि होती है अर्थात् पारद सिद्ध करने से ये सब बातें होनी चाहिये ॥ ३ ॥

अथवा दरदाकृष्टं विवर्णं लवणाम्बुजाजि दोलायाम् ।

रसमादाय यथेच्छुं कर्तव्यस्तेन भैषजो योगः ॥ ४ ॥

हिंगुलाकृष्ट रस के गुण—हिंगुल से (अर्धवा पातन यन्त्रद्वारा) निकाला पारद लेकर नमक के पानी में दोलायन्त्र द्वारा पाककर प्रत्येक कार्य के लिये निर्दोष और शुद्ध माना है अर्थात् हिंगुलोत्थ पारद नमक में जल में दोलायन्त्र द्वारा पाचित कर देने पर सब दोषों से रहित हो जाता है ॥ ४ ॥

निम्बूसेन सम्पिण्डं प्रहरं दरदं द्वधम् । ऊर्ध्वपातनन्यन्त्रेण सकृप्राद्वो निर्मलो रसः ॥ ५ ॥

हिंगुल से पारद निकालने की विधि—हिंगुल को नींव के रस में एक पहर तक मर्दन कर कर्वपातन यन्त्र द्वारा विधि पूर्वक उत्तम पारद निकाल लेना चाहिये ॥ ५ ॥

रसस्य सुखकरणम्—

अथवा बिन्दुलीकीटै रसो मर्द्यस्तिवासरम् । लवणाम्लैर्मुखं तस्य जायते धातुभक्षकम् ॥ १ ॥

रस का सुखकरण—पारद को बिन्दुली (कीट विशेष) के रस के साथ तीन दिन तक मर्दन कर नमक और अम्ल द्रव्य के साथ युनः मर्दन करे तो पारद धातु भक्षण करने वाला होता है अर्थात् पारद में धातुभक्षण की शक्ति होती है ॥ १ ॥

अन्यच—सास्यो रसः स्थापदुशिग्रतुत्थैः सराजिकैः शोषणकैश्चिराग्रम् ।

पिष्टस्ततः स्विकृत्तनुः सुवर्णमुख्यानयं खादति सर्वधातृन् ॥ १ ॥

और भी—पारद को नमक, सहिजन, तुत्थ, राई और सोंठ के साथ तीन दिन मर्दन स्वेच्छित हो जाने से उसे सब धातुओं को खाने का मुख होता है ॥ १ ॥

बड्गुणगन्धकजारणम्—

तस्स्वर्वे रसं विप्रवा अधश्चुल्यास्तुषाभिभिः ।

स्तोक स्तोकं चिपेद्वृन्धमेवं बड्गुणं चरेत् ॥ १ ॥

बड्गुण गन्धकजारण—भूमि की चुल्ही में (भूमि खनकर बनाई चुल्हि में भूमि की अशि करके उसके ऊपर तपाये हुए खरल में पारद रखकर उसमें थोड़ा थोड़ा करके छोड़ते हुए छ गुना गन्धक देकर जला देवे ॥ १ ॥

अथवा कच्छपयन्त्रेण गन्धकजारणम्—

मृकुण्डे निदृष्टेष्टीरं तन्मध्ये च शारावकम् । महकुण्डपिधानामें मध्ये मेखलया युतम् ॥

विप्रवा च मेखलामध्ये संशुद्धं रसमुत्तमम् । रसस्योपरि गन्धस्य रजो दृश्यत्समाशकम् ॥

दृश्योपरि शारावं च भस्ममुद्धी प्रदापयेत् । तस्योपरि पुष्टं दृश्याच्चुरिभिर्गोमयोपलैः ॥ ३ ॥

एवं पुनः पुनर्गन्धं बड्गुणं जीर्यते बुधैः । गन्धे जीर्णं भवेत्सूतस्तीचणाभिः सर्वकर्मसु ॥ ४ ॥

अथवा कच्छप यन्त्र द्वारा गन्धक जारण—मिट्टी के कुण्ड (बड़े भाष्ट) में जल रखें और उसके बीच में एक शाराव (बड़ी परई) जो मुझे पर रुक सके रखकर उसके मध्य में एक छोटे शाराव (शकोरा) रखकर उसमें शुद्ध पारद रखकर समान शुद्ध गन्धक उसमें मिला कर छोटे शारावसम्पुट को विधि पूर्वक बन्द कर उसी पर चार उंचाई की अशि से पुट देवे । इसी प्रकार द्वारा करके गन्धक दे दे कर छ पुट में छ गुना गन्धक मिलाकर और जला कर रखने से बड्गुण गन्धक का भक्षण कर पारद तीक्ष्ण अंगि वाला हो जाता है और सब कार्यों में व्यवहृत होता है । (बड्गुण बलिजारित इसे ही कहते हैं ॥ १-४ ॥)

तदगुणाः—समे मन्थे तु रोगध्ने द्विगुणे राजयचमनुत् ।

जीर्णे तु ग्रिगुणे गन्धे कामिनीदपंनाशनः ॥ १ ॥

चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रविशारदः । भवेत्पञ्चगुणे सिद्धः बड्गुणे मृत्युनाशनः ॥ २ ॥

सम-द्विगुणादि जारित गन्धकयुत रस के गुण—पारद के समान गन्धक जारण करने से रोगनाशक और पारद से द्विगुण गन्धक जारण करने से राजयक्षमा नाशक, ग्रिगुण गन्धक जारण करने से खोदर्प नाशक अर्थात् अत्यन्त कामोदीपक, चतुर्गुण जारण करने से तेजोदायक, पञ्चगुण जारण करने से सर्व शास्त्रों के जानने की शक्ति देने वाला और बड्गुण जारण करने से मृत्यु का नाशक होता है ॥ १-२ ॥

दिनमेकं रसेन्द्रस्य यो ददाति हुताशनम् । द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ३ ॥

पारद में अशि देने से पाप के नाश होने का वचन—जो मनुष्य एक दिन पारद में अशि देता है उसके सब पाप गल जाते हैं और करने पर भी नहीं लगते अर्थात् पारद में अशि देना पुण्य है ॥ ३ ॥

रसवन्धनम्—

रम्भा व्रीरा स्तुही चैव द्वीरक्षुकिरेव च ।

दिनारिश्वेष गोरम्भा मीनाशी काकमाचिका । एभिस्तु मर्दितः सूतः पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १ ॥

रस का बन्धन—रम्भा (कदली), वीर (थेत कनेर), सुही, शूहर, क्षीरकचुकी (खीरनी) हल्दी, गोरम्भा (एक गोड़ों का तृण है), मत्स्याक्षी और काकमची (मकोप) के रस के साथ अलग २ मर्दन करने से पारद का पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् बन्धन ही जाता है ॥ १ ॥

अन्यच—पुष्टिपतमोजमन्द्रमध्ये सूतो नियोजितो शुक्त्या ।

बद्धो भवति कियन्निर्दिवसैः पुष्टप्रभावेण ॥ २ ॥

और भी—मासिक की अवस्था में युक्ति पूर्वक खीं की योनि में रखा हुआ शुद्ध पारद कुछ समय में आर्तव के प्रभाव से बद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

अन्यच—भूलताक्षीवरीमूलं वारिणा मर्दयेद्दृढम् ।

तम्भूतां लेपयेन्मध्ये तन्मध्ये निष्ठिपेद्रसम् ॥ ३ ॥

पञ्चटङ्गप्रमाणां तां मूषामङ्गाके क्षिपेत् । एवं बद्धो भवेत्सूतो मूषाव्याप्तिःस्थो द्वयो भवेत् ॥ ४ ॥

और भी—भूलताक्षी (केचुआ), सर्प का विष तथा सतावरी इनको जल के साथ दृढतापूर्वक मर्दन कर विष पूर्वक मूषा बनाकर उसमें शुद्ध पारद डाल कर मूषा को अझारों पर रख कर पकाने से पारद बद्ध हो जाता है । मूषा पांच टङ्ग के प्रमाण का बनावे इस मूषा में रहने से पारद दृढ हो जाता है ॥ २-४ ॥

मुखमध्यगतस्तिष्ठेन्मुखरोगविनाशनः । शारीरे क्रमिते सूते जरापलितजिज्ञासः ॥ ५ ॥

बद्ध पारद का गुण—इस बद्ध पारद की वटी को सुख में रखने से मुख रोग नष्ट होते हैं । शारीर में धारण करने से जरा तथा पालित रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

स्तम्भयेच्छुद्धसङ्कृतं कामोरपद्धनकारकः । पुनर्नवं वयः कुर्यात्साधकानां न संशयः ॥ ६ ॥

यह बद्ध पारद शक्ति के आधारों से रक्षा करता है कामशक्ति (रति शक्ति) उत्पन्न करना है । शारीर को नवीन (नव शक्ति शाली) कर देता है । ये सब गुण अपने साधकों को ये करते हैं अर्थात् इसके सेवन करने वाले इस कल को प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

रसमारणम्—

अपामार्गस्य बोजानां मूषायुमं प्रकल्पयेत् । तस्मयुटे न्यसेसूतं मलयूद्धमित्रितम् ॥ १ ॥

द्रोणपुषीप्रसूनानि विडङ्गमरिमेदकः । यत्पच्चूर्णमध्यश्चेद्वचा मुद्रां प्रदापयेत् ॥ २ ॥

तं गोलं मुद्रयेत्स्वयल्म्यमूषासम्युटे सुधीः । मुद्रां दर्वा शोषयित्वा ततो गजयुटे पचेत् ।

एवमेकपुदेवै जायते सूतभस्मकम् ॥ ३ ॥

रसमारण—अपामार्गी के बीजों को पीस कर दो मूषा निर्माण करे उस मूषे के भीतर काको-दुम्बर के दूध में घोटा हुआ शुद्ध पारद रख दे फिर गूमा का पुष्प, वायवीड़ंग, विट् खदिर इन सबों का चूर्ण कर भिलाकर आधा नीचे आधा ऊपर सन्धिकरण कर दें फिर उस (गोले) मूषा की मिट्ठी के मूषा में रख कर सन्धिवन्धन कर धूप में सुखा कर विष पूर्वक राजपुट में पकावे । इस तरह एक ही पुट में पारद का भस्म हो जाता है ॥ १-३ ॥

अन्यच—शुद्धसूतं समं गन्धं चट्टधीरेविमर्दयेत् । पाच्येन्मृतिकापात्रे वटकाष्ठेविमर्दयेत् ॥ ४ ॥

लघविनाना द्विनं पाच्यं भस्मसूतं भवेद्धव्रम् । द्विगुडं पर्णखण्डेन पुष्टिमण्डि च वर्धयेत् ॥ ५ ॥

और भी दूसरी विधि—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक समान लेकर बटक्षीर के साथ मर्दन कर एक चूर्ण पात्र में रख कर अग्नि पर पाक करे और पाक करते समय वट की लकड़ी से चलाता रहे इस प्रकार मन्द २ अग्नि पर दिन भर पकावे इस किया से पारद का निश्चय ही भस्म हो जाता है । इस भस्म को दो रत्ती प्रमाण से पात्र के अनुपान से सेवन करने से शारीर की पुष्टि और अग्नि की वृद्धि होती है ॥ १-२ ॥

रससिन्दूरः ।

पलद्वयं शुद्धरसं पलायं शुद्धगन्धकम् । क्षवर्धं नवसारं च जम्बवेण विमर्दयेत् ॥ १ ॥

काचकुप्ती विपेत्वै सप्तधा शुद्धकर्पटे । विलेप्य काचकुप्तीं तामातपे शोषयेद्दृढम् ॥ २ ॥

द्विभाष्टे ततः कूर्पीं न्यसेरिसकतेयन्त्रके । कूर्पिकाकण्ठमानेन पूरयेविष्वालुकाः ॥ ३ ॥

पञ्च पूज्याः कुर्मार्थश्च ततश्चुर्पां विनिश्चिपेत् । पवेद्यामाष्टकं चैव कूर्पिकां च वाणे चणे ॥

संशोध्य पाच्येद्यान्ते रसाङ्गशीतं समुद्धरेत् । ग्राहं च दरदाकारं देवदानवृत्तुलंभम् ॥ ४ ॥

सेवयेद्वोगानाशाय तत्तद्रोगानुपानतः । वक्षं वा वक्षयुमं वा कण्या मधुमा सह ॥ ५ ॥

सेवितं कामिनीं कामं दर्शयेद्वितीयैतुकम् । वीर्यदग्धकरं क्षीघं योषामद्विभानाम् ॥ ६ ॥

सिन्दूरं हर्वर्कीर्यमस्मवमिदं रूत्तमिमान्यापहं ।

यक्षमादित्यपाण्डुभोक्षुदरं गुहमप्रमेहापहम् ।

शूलप्रीहिविनाशनं उवरहरं दुष्टव्यानाशये-

दण्डामिं ग्रहणाभगान्दरहरं छिद्रिष्ठोपापहम् ॥ ८ ॥

रससिन्दूर बनाने की विधि—दो गल (४ तो०) शुद्ध पारद, आधा पल शुद्ध गन्धक, आधा कर्ष (आधा तोला) नवसादर लेकर प्रथम कजली कर जमीरी नीदू के रस में मर्दन करके कांच की शीशी में रख कर उपर सात वार कपरमिट्टी कर उस शीशी को धूप में सुखा लेवे, तत्पश्चात छिद्रयुक्त बालुकायन्त्र में उस शीशी को रख कर शीशी के गले तक बालू भर देवे तत्पश्चात ५ कुमारियों का पूजन कर उक्त बालुकायन्त्र को चूल्हे पर चढ़ावे और उस कूपी को आठ पहर तक निरन्तर अंग्रे देकर पचावे और क्षण २ पर लोह की शलाका से कूपी के मुख को साफ करता रहे । और स्वाङ्गशीत होने पर उतारे और उस काचकूपी में से हिंगुल के समान आकार बाली, देव तथा दानवों को भी दुर्लभ ऐसी ओषधि निकाल कर रोगानुपान से रोग की शार्णित के लिये सेवन करे । इसकी मात्रा—एक रत्ती अथवा दो रत्ती को मात्रा में पीपरि और मधुके साथ सेवन करने से कामिनी के लिये रति में कौतुक दिखाने वाला, वीर्यवन्धन (स्तम्भन) करने वाला, शीघ्र लियों के मद को चूर कराने वाला तथा यह सिन्दूर शिव बीज (पारद) से बना हुआ होने से रक्षता, अश्रिमान्य, यद्यमा आदि एवं क्षय, पाणु, शोध, उदररोग, गुलम और प्रेमेह का नाशक, शूल, प्रीहा, उवर, दुष्ट व्रण, अर्श, व्याहणी, भगन्दर, वस्त्र और त्रिदोष का नाशक है ॥ १-८ ॥

अन्यच—सूतः पञ्चपलः द्वद्वेष्वरहितस्तुल्यमागो बलिः

इौं चैतौ नवसारपादकलितौ भंमद्य कूर्पां न्यसेत् ।

तां यन्त्रे सिक्तायस्यके तलविले पक्षवाऽकर्यामं हिमं

मिश्वा कुरुमपिभरं रसवरं भस्माऽऽददेव्याशाट् ॥ १ ॥

वाते सहौद्रपिप्पलयित्वं कफहस्ति व्यूषणं सामिचूर्णीं

पित्ते सेला स्पिता स्याद् व्रणविति वृहतीनागराद्वृत्ताम् ।

पुष्टी साउयत्रियामा हरनयनकला शालमली पुष्टवृन्तं

किवा कान्ताललाटाभरणरसपतेः स्यादन्तानमेतत् ॥ २ ॥

रससिन्दूर की दूसरी विधि—पांच उल (२० तो०) दोषादिक से रहित शुद्ध पारद, उसी के बराबर शुद्ध गन्धक और दोनों के चतुर्थीश नवसादर इन तीनों को मर्दन कर (कजली कर) काचकूपी में रखें और कपरमिट्टी आदि विधि को करके बालुकायन्त्र में रख कर अंग्रे याम (बारह पहर) तक अंग्रे निरन्तर देवे जब शीतल हो जावे तब कुम्हमसदृश उत्तम पदार्थ को

वैद्य उस काचकूपी से ग्रहण कर लेवे । इस औषधं को वैद्य निम्न प्रकार से सेवन करावे—वात के रोग में मधु और पीपरि के अनुपान से, कफ के रोग में शूषण (सोठि, पीपरि-मरिच) और चित्रक चूर्ण से, पित्त के रोग में इलायची और चीनी से, व्रण रोग में बृहती (बड़ी कट्टी) सौंठ और गीली गुड़ची के रस से, पौष्टिक के लिये घृत, हरदी और रुद्राक्ष से या सेमर के पुष्प के द्रुत्त के अनुपान से सेवन करना चाहिये, यह सब रसों का राजा है इसका सेवन इन अनुपानों से करे ॥१-२॥

अन्यच्च—भागो रसस्य व्रथ एव मागा गन्धस्य माषः पद्मनाशनस्य ।

सम्मर्थं गाहं सकलं सुभाष्टे तां कज्जलीं काचकूते निवध्यात् ॥१॥

संरस्य मृत्कर्पं कर्वटीनां सुखे सचूर्णं गुटिकां च स्वता ।

क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पवस्त्वा तां बालुकायन्त्रगतां ततः स्यात् ॥२॥

बन्धूकपुष्पाहणमीशजस्य भस्म प्रयाजयं च किलाऽमयेषु ।

निजानुपानैर्मरणं जरा च हन्त्यस्य वल्लः क्रमसेवनेन ॥३॥

अपहरति रोगवृन्दं द्रढयति कायं महद्वलं कुरुते ।

शुक्रशतानि च सूते सिन्दूशस्यो रसः पुंसाम् ॥४॥

निखिलस्यभक्षणदक्षतरं व्रणकुष्ठभग्नदरमेहरम् ।

बलदीधितिशुक्समृद्धिकरं रसभस्म समस्तगदापहम् ॥५॥

तीसरी विधि—गुण पारद एक भाग, गुण गन्धक तीन भाग और गुण शीशा भस्म एक भाग लेकर सब को भलीभाँति मर्दन कर कज्जली कर काचकूपी में रखकर उसपर ७ वार कपरमिट्टी कर उसके मुख पर गुटिका देकर (कर्क) चूने से बन्द कर मृदु, मध्य और तीव्र अस्थि के क्रम से तीन दिन तक निरन्तर बालुकायन्त्र में पकावे और शीतल होने पर उसमें से बन्धूकपुष्प (गुल दुपहरिया) के समान लाल वर्ण का पदार्थ लेकर पीस कर सब प्रकार के रोगों में प्रयोग करे । इसको अनुपान विधान से सेवन करने से मरण, जरा (बृहता) और सम्पूर्ण रोगसमूहों का नाश होता है तथा यह शीर को इड़ (बलवान) करता तथा अत्यन्त बल देता है और यह ‘सिन्दूर’ नामक रस मनुष्यों को सौ वर्ष तक जीवित रखता है और सम्पूर्ण क्षय, व्रण, कुष्ठ, भग्नदर, मैह आदि का नाशक है तथा बल, तेज तथा शुक की समुद्दि को करने वाला यह रस समस्त रोगों का नाशक है ॥१-५॥

अन्यच्च—पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रं तु गन्धकम् । विचिवरकज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधाङ्गुरवारिण ॥
भावनात्रितयं द्वस्वा स्थालीमध्ये निधायेत् । विश्राय काच्छपं यन्त्रं बालुकाभिः प्रप्रयत् ॥
दथात्तदनु मन्दाज्ञि भिषम्यामचतुर्थम् । जायत रससिन्दूरं वसणाहणसज्जिभम् ॥३॥

अनुपानविशेषण करोति विधिशानुगान् । चयकुष्ठमस्तु प्राहसेहनं पाण्डुनाशनम् ॥४॥

चौथी विधि—एक पल (चार तोला) शुद्ध पारद और इसी के बराबर शुद्ध गन्धक लेकर दोनों की विधिपूर्वक कज्जली कर न्यग्रोध-(वटवृक्ष) के अंकुर के जल से (स्वरस से) तीन भावना देकर स्थाली (आतशी शीशी) में रखकर काच्छप-यन्त्र में रखकर बालुका से पूर्ण कर उसमें चार पहर तक अस्थि देवे इससे तरुण सुर्य (प्रातःकाल के सूर्य) के समान रक्तवर्ण का रस-सिन्दूर होता है और यह, अनुपान विशेष से अनेक गुणों वाला है तथा क्षय, कुष्ठ, वायु, झींहा, मैह और पाण्डु का नाशक है ॥१-४॥

विशिष्टानुपानानि—

यथा जलगतं तैलं तत्त्वणादेव सर्पति । एवमौषधमङ्गेषु प्रसर्पत्यनुपानतः ॥१॥

रससिन्दूर सेवन करने में विशिष्ट अनुपान—अनुपान की प्रधानता—जिस प्रकार जल में

पड़ा हुआ तैलं क्षणमात्र में चारों तरफ फैल जाता है उसी प्रकार खार्ड हुई औषधि अनुपान के प्रभाव से सम्पूर्ण शरीर में फैलती है ॥१॥

पिष्पली मधुना सार्धं बातमेहं हिनस्ति च । त्रिफला शर्करासार्धं पित्तमेहरा स्मृता ॥२॥

पिष्पली और मधु के साथ सेवन करने से बातप्रमेह और त्रिफला तथा शर्करा के साथ से पित्तप्रमेह का नाश करता है ॥२॥

पिष्पली मरिचं शुण्ठीं सार्गां च मधुना सह । कासधासप्रशमनः शूलस्य च विनाशनः ॥३॥

पीपरि, मरिच, सौंठ, भारजी (बभनेठी) और मधु के साथ सेवन करने से कास, श्वास तथा शूल का नाशक होता है ॥३॥

हरिद्रा शर्करासार्धं दधिरस्य विकारनुत् । शूषणं त्रिफला वासा कामलापाङ्गुलमन्धाहृत् ॥४॥

हरदी और शकर के साथ सेवन करने से रक्तविकार और शूषण (साड़ि, पीपरि, मरिच), त्रिफला और अलसा के साथ से कामला, पाण्डु और अग्निमान्ध का नाशक होता है ॥४॥

पिष्पली चित्रकं पथ्या तथा सौवर्चलं श्विषेत् । अग्निमान्धवद्धकोष्ठद्वयथानाशनं परम् ॥५॥

पीपरि, चित्रा, हर्दी और सौवर्चल निमक के साथ सेवन करने से अग्निमान्ध, वद्धकोष्ठता और हृदय की पीड़ा का नाशक होता है ॥५॥

शिलाजतु तथैला च सितोपलसमन्वितम् । मूत्रकृच्छ्रे ग्रस्तस्तोऽयं सर्वं नागार्जुनोदितम् ॥६॥

शिलाजीत, इलायची और मिश्री के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र का नाश करने में प्रशस्त होता है, यह नागार्जुन ने सत्य कहा है ॥६॥

लवङ्गं कुरुकुर्मं पत्री हिङ्गुलं करहाटिकायं पिष्पली विजया चैव समानीमानि कारयेत् ॥७॥
कपूरादिहेनाच्च नागाज्ञागार्धकं श्विषेत् । सर्वमेकत्र सम्मर्थं धातुवृद्धौ प्रशापयेत् ॥८॥

लवङ्ग, केशर, पत्री (जावित्री, हिङ्गुल शुद्ध, करहाटिका (अकरकरा), पीपरि और विजया (शुद्ध भांग) इन सब को समान (१-२ भाग और कपूर, अदिफेन (अपील और नाग (शीशी) भस्म प्रत्येक आधा २ भाग लेकर सब औषधियों को एकत्र मर्दन कर धातुवृद्धि के लिये रससिन्दूर के साथ अनुपान में देना चाहिये ॥ ७-८ ॥

सौवर्चलं लवङ्गं च भूनिश्वश्च हरीतकी । अस्थानुपानयोगेन सर्वज्वरविनाशनः ॥९॥

सौवर्चल लवण, लवङ्ग, चिरैता और हरे इसके अनुपान से सेवन करने से ‘रससिन्दूर’ सद प्रकार के ज्वर का नाशक होता है ॥९॥

तथा रेचकरः ग्रोकः सोवर्चलफलस्त्रिकात् । लवङ्गं कुरुमं चैव दरदेन च संयुतः ॥१०॥

ताजबूलेन समं भयो धातुवृद्धिकरः परः ।

तथा सौवर्चल लवण और त्रिफला के अनुपान से रससिन्दूर का सेवन करने से रेचक होता है । लवङ्ग, केशर और शुद्ध हिङ्गुल बराबर मिलाकर पान के साथ रससिन्दूर भक्षण करने से अत्यन्त धातुवृद्धक होता है ॥ १०-१०२ ॥

विदारीचूर्णयोगेन धातुवृद्धिकरो मतः ॥

विजया दीप्यसंयुक्तो वमनस्य विकारनुत् ॥११॥

विदाराकन्द के चूर्ण के साथ सेवन करने से भी धातुवृद्धक होता है । विजया (भांग) और चित्रक के चूर्ण के साथ सेवन करने से वमन के विकार का नाशक होता है ॥११॥

सौवर्चलं हरिद्रा च विजया दीप्यकस्तथा । अनेनोदरपीडां स स्थोजातां विनाशयेत् ॥१२॥

सौवर्चल लवण, हरिद्रा, विजया (भांग) और चित्रक के साथ सेवन करने से सद्यः उत्पन्न हुई उदर की पीड़ा (शूल) का नाशक होता है ॥१२॥

चतुर्वर्षं पलाशस्य वीजाच्च हिंगुणं गुणात् । अस्यानुपानयोगेन कृमिदोषविनाशनः ॥ १३ ॥

पलाश का बीज २२ रत्ती और इसके दूना गुड़ (२४ रत्ती) मिलाकर इसके साथ सेवन करने से कृमि दीप का नाशक होता है ॥ १३ ॥

अहिफेन लब्धं च ददर्श विजगा तथा । अस्यानुपानतः सद्यः सर्वातीसारनाशनः ॥ १४ ॥

अहिफेन, लब्ध, हिंगुल तथा विजगा के साथ सेवन करने से शीघ्र सब प्रकार के अतीसार का नाशक होता है ॥ १४ ॥

सौवर्णलेन दीप्येन आप्निमान्यहृः परः । छुट्टोधजनकश्चैव मिद्दनामोष्ठोदितम् ॥ १५ ॥

सौवर्णल लवण और चित्रक के साथ सेवन करने से अत्यन्त आश्रिमान्यनाशक और शुधावर्धक होता है ऐसा सिद्ध नामेभर ने कहा है ॥ १५ ॥

गुह्यचीसश्वयोगेन सर्वपुष्टिकरः स्मृतः । युक्तानुपानसहितः सर्वान्नोगान्विनाशयेत् ॥ १६ ॥

गुह्यची सत्त्व के साथ सेवन करने से सब प्रकार का पुष्टिकारक कहा गया है। इसी प्रकार यथायोग्य अनुपान के साथ रससिन्दूर का सेवन करने से सब रोगों का नाश होता है ॥ १६ ॥

पारदस्य पद्धयापथ्यानि

सन्धवासृतधान्याक्षीरकार्द्रकसंयुतम् । तण्डुलीयकवारातिकपटोलं लाजसाधितम् ॥ १ ॥
गोभूमजीर्णशाहृयन्नं गडयं चौरं घृतं दधि । हंसोदकं मुद्रशसं रसेन्द्रे च हितं विकुः ॥ २ ॥

पथ्य—सेंधा नमक, घृत, धनिया, जीरा, आर्द्रक से युक्त पकाये हुके तण्डुलीयक (चौराई) वैगन, पटोल, काजा (खील) पथ्य हैं। गोद्धु, मुराने चावल, गायकी दही, दूध, घृत और भैंस की दही, हंसोदक, भूंग का रस (यूष) ये सब पारदसेवन करने वाले के लिये पथ्य कहे गये हैं ॥ १-२ ॥

ग्रन्थान्तरे—अथयह्नं मलिने योजयं तैलैनारायणादिभिः ।

अस्तलां भीततोयेन मस्तके परिषेष्येत् ॥ ३ ॥

तृष्णायां नारिकेलाम्बु मुद्रयूर्षं सशकर्षम् । द्राक्षादादिमरुर्जैरकदलीनां फलं भजेत् ॥ २ ॥

ब्रह्मतीविश्वकूष्माण्डं वंशायं रारवेष्वकम् । माषान्मसूरनिष्पावं कुलथास्त्वयेन तिलान् ॥ ३४ ॥

लक्ष्मोद्वृत्तं स्नानं ताच्चभाष्टं सुरासप्तम् । अनूपमासं धान्यास्तं भोजनं कदलीदले ॥ ४४ ॥

कांस्यके गुह्यविष्मिति सीचणं खोणं भृशं तथा । अपथ्यं सूतराजस्य पुरा प्रोक्तं महर्षिभिः ॥

ग्रन्थान्तर से पथ्यापथ्य—मर्दन में नारायणादिक तैल का मर्दन करें, खियों को पारा सेवन के समय शीतल जल से मस्तक का सिंचन करना चाहिये, तृष्णा लगने पर नारिकेल का जल, शर्करा के साथ भूंग का यूष, द्राक्षा, अनार, खर्जूर (हुड्हारा) और कदलीफल खावें, ब्रह्मती (बड़ी कटेरी), विलव, कृष्माण्ड (कोहड़ा), वंशाय (वाँस के अंकुर), करैली, उरद, मसूर, सेम, कुलथायी, लवण, तिल, लक्ष्मन, उद्वर्तन (उवर्टन), स्नान, तामे का पात्र, सुरा, आसव, आनूप जीवों का मास, धान्याम्ल (धान्य से सिढ़ अम्ल) और कदली के पत्र पर भोजन, कांस्य-पात्र में भोजन, गुरु, विष्मी, तीक्ष्ण तथा अत्यन्त उष्ण आदि का सेवन पारद के सेवन करने में अपथ्य पहले के महर्षियों ने कहा है ॥ १-५ ॥

कृष्माण्डं ककडी कोलं कलिङ्गं करमदंकम् । कीरं चेति षट्काष्टीत्रससुख्यर्जयेजानः ॥ ६ ॥

कृष्माण्ड, ककडी, कोल (वैर) कलिङ्ग (तरबूजा), करमद (करौना), करीर ये ककारादिक ६ पदार्थ रससेवन करने वाले त्याग दें ॥ ६ ॥

अथ गन्धकः ।

चतुर्वर्षा गन्धक ग्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः । इको हेमक्रियासूक्तः पीतश्चैव रसायने ॥
ब्राणाविलेपने श्वेतः श्रेष्ठः कृष्णः सुदूर्लभः ॥ १ ॥

मेद—गन्धक रक्त, पीत, श्वेत और कृष्ण के मेद से चार प्रकार का कहा है, रक्त वर्ण का गन्धक सुवर्णक्रिया (सोना बनाने में उचित होता है, पीत वर्ण का गन्धक रसायन कर्म में प्रयुक्त होता है 'ब्राणादि' के लेपन-कार्य के लिए श्वेत वर्ण के गन्धक उत्तम कहे गये हैं और कृष्ण वर्ण का गन्धक श्रेष्ठ और दुर्लभ होता है ॥ १ ॥

सहृदध्माण्डस्य परस्थितोऽयं शुद्धो भवेत्कूर्मपुटेन गन्धः ।

आम्भायां कृता कज्जलिकाऽनुपानैः सर्वामयझी रसगन्धकाभ्याम् ॥ २ ॥

गन्धकशुद्धि—दूध के वर्तन के ऊपर वज्र रखकर उसके ऊपर गन्धक का चूर्ण रखकर उसके ऊपर पतला लोहेका तथा रखकर उसपर अग्नि रख दे । इससे या कुर्मपुट में दर्शक करने से गन्धक द्रवित हो कर दूध में गिरेगा फिर द्रवित गन्धक को दूध में से निकाल कर गर्भ जल से धोले । यह गन्धक शुद्ध होता है । पारद और गन्धक दोनों को कज्जली कर अनुपान के विधान से सेवन करने पर सब प्रकार के रोगों का नाश होता है ॥ २ ॥

गन्धकः कटुकस्तिको वीर्योष्णस्तुवरः सरः । पित्तलः कटुकः पाके कण्ठद्वीसपंजन्तुजितः ॥ ३ ॥
हन्ति कुष्ठस्यप्लीहककवातान् रसायनम् ।

अशोधितो गन्ध एष कुष्ठसंतापकारकः । शुक्रौजः चयमावल्यं करोति च रुचिग्रणुत् ॥ २ ॥

गन्धक का गुण—गन्धक कटु, तिक्क, वीर्य में उष्ण, तुवर (कधाय), सारक, पित्तकारक, पाक में कटु, कण्ठ, विसर्प और कृमियों का नाशक तथा कुष्ठ-क्षय-प्लीहा-कफ और वात का नाशक एवं रसायन है । अशुद्ध गन्धक के दोष—विना शोधन किया गन्धक कुष्ठ और सन्ताप का कारक, शुक्र और ओज का क्षय तथा दुर्बलता उत्पन्न करने वाला और रस्विका नाशक है ॥ १-२ ॥

अथ हिंगुलः ।

ददर्शिविधः प्रोक्तश्चर्मारः शुक्तुण्डकः । हंसपादस्तुतीयस्तु गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥ १ ॥

मेद—हिंगुल तीन प्रकार का चर्मार, शुक्तुण्ड और हंसपाद नाम का कहा है और प्रत्येक उत्तरोत्तर गुणवान होता है ॥ १ ॥

चर्मारस्वतिरकः स्थाकिञ्चित्पीतः शुकास्यकः श्वेतरेखः प्रथालाभो हंसपापाः स उत्पत्ते ॥

लक्ष्म—चर्मार नामक हिंगुल अत्यन्त रक्तवर्ण का होता है, शुक्तुण्ड नामक हिंगुल किंचित् पीत वर्ण का होता है और श्वेत रेखा वाला तथा प्रवाल के वर्ण का हंसपाद नामक हिंगुल होता है ॥ २ ॥

अशुद्धो वृद्धः कुर्याद्वान्यं क्षेण्यं कुमं भ्रमम् । मकोहं मेहं च संशोध्यः क्रमाद्वैष्टेस्तु हिंगुलः ॥

अशुद्ध हिंगुल के दोष—अशुद्ध हिंगुल सेवन करने से अन्वता, क्षीणता, कूम, भ्रम, मोह, मेह आदि होता है इसलिये दैव क्रम से हिंगुल का शोधन करे ॥ ३ ॥

मेषीषीरेण ददर्शमरुलवर्णेण भावितम् । सप्तवारं प्रथानेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ४ ॥

हिंगुलशोधन—मेषी के दूध अथवा अम्लवर्ण की सात वार भावना देने से हिंगुल निश्चित शुद्ध हो जाता है ॥ ४ ॥

मारण—वज्रमात्रं तालपिण्डं शारवे स्थापयेत्ततः । तदिम्नकर्षसं लेणं शकलं ददर्शस्य च ॥ १ ॥

पूर्येदाद्र्वकरसं द्विगुणं तत्र तुदिमात् । पुष्पाणि माषमात्राणि परितः स्थापयेत्ततः ॥ २ ॥

शरावसम्पुटं ददर्श सुख्ययो मध्यामिना पचेत् । बटिकान्नपर्यन्तं सत उत्तापं पैचेत् ॥ ३ ॥

हिंगुलमारण—प्रथम शकोरे में तीन रक्ती पिसा हुआ हरताल रखे उसमें एक कर्वं हिंगुल का छुकड़ा देवे और उसके दुरुने अद्रक के रस से उस पात्र को पूर्ण करे तत्पश्चात् तक मासा लवंग चारों तरफ से शराब (शकोरे) में रख कर शराबसम्पुट में देकर चूद्धे में मध्यम अशि (आँच) के द्वारा पकावे तीन बड़ी तक पकाने पर उतार कर पीस लेवे ॥ १-३ ॥

साम्बूके गुजभास्रं तु देयं पुष्टिकरं मतम् । पाण्डी च्छे च शूले च सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४ ॥

हिंगुल का गुण—ताम्बूल में एक रक्ती की मात्रा से देने से पौष्टिक है तथा पाण्डु, क्षय, शूल आदि सब रोगों में सेवन किया जाता है ॥ ४ ॥

अथ वज्रम् ।

व्याप्रीकन्दिगतं वज्रं दोलायन्त्रेण पाचयेत् । ससाहं कोद्रवकाथैः कुलिशं विमलं भवेत् ॥ १ ॥

वज्रशोधन—व्याप्रीकन्द (कटेरी की जड़) में बन्द कर रखा हुआ वज्र (हीरा) दोला यन्व द्वारा कोदो के काढ़े में सात दिन पकाने से शुद्ध होता है ॥ १ ॥

मारण—त्रिवर्षीरुदकार्षीसीमूलमादाय पेशयेत् । त्रिवर्षनागवशस्या वा निजद्रावैः प्रयेषयेत् ॥ १ ॥

तद्रोलके विषेद्वात्रं रुदधा गजपुटे पचेत् । एवं ससुपुट्टेनून् कुलिशं मृतिमृच्छति ॥ २ ॥

वज्रमारण—तीन वर्ष के पुराने कपास की जड़ पीस कर अथवा तीन वर्ष के पुराने पान की लता की जड़ लेकर और पान हीं के द्राव (रस) में पीस कर उसके गोले में वज्र (हीरे) को रख कर वेष्टन देकर गजपुट में पकावे इस प्रकार ६-७ युट में हीरा शूल्यु की प्राप्ति (भस्म) होता है ॥ १-२ ॥

अन्यच—त्रिःसङ्कृत्वः संतसं खरमूत्रेण सेचितम् । मङ्गुणेस्तालकं पिष्ठा तद्रोले कुलिशं चिपेत् ॥
मध्यमातं वज्रिमूत्रेण सिक्तं पूर्वकमेण वै । भस्मीभवति तद्वज्रं शङ्खशीर्साशुसुन्दरम् ॥ २ ॥

और भी विधि—हीरे को तपा-तपा कर २१ वार गदहे के मूत्र से बुझावे तत्पश्चात् खटमल और हरताल पीस कर गोला बना उसमें हीरा रखकर खूब तपा कर घोड़े के मूत्र से पूर्व कथित क्रम से सिंचन करने से वज्र (हीरा) की शङ्ख तथा चन्द्रमा के वर्ण के समान शुभ्र (झुन्दर) भस्म होती है ॥ १-२ ॥

अन्यच—हिङ्कुसैन्धवसंयुक्तकाथै कौलत्थने चिपेत् । तसं तसं पुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णं त्रिससधा ॥

और भी—हींग और सेंधा नमक मिला हुआ कुथली के काथ में तपा-तपा कर २१ वार बुझाने से वज्र का चूर्ण (भस्म हो जाता है ॥ १ ॥

मण्डकं कांस्यजे पात्रे चिन्हिंग्वा स्थापयेत्सुधाः ।

स भीतो मूत्रयेत्त्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत् । तसं तसं च बहुधा वज्रस्यैवं मृतिभवेत् ॥ २ ॥

मेढ़कों को पकड़ कर कांस्य के पात्र में विद्वान रखें, वे मेढ़क भय से मूत्र करेंगे तब उस मूत्र में वज्र को तपा-तपा कर बहुत बार बुझाने से वज्र शूल्यु की प्राप्ति होता है ॥ २ ॥

गुणः—वज्रं समीरकपित्तगदाजिहन्ति वज्रोपमं च कुरुते वपुस्तमश्च ।

शोषच्चयन्त्रमभगन्दरमेहमेदः पाण्डुदरश्यथुहारि च षष्ठ्यापल्लयम् ॥ १ ॥

वज्र के गुण—हीरा वायुक कफ और पित्त के रोगों को नष्ट करता है और शरीर को वज्र के समान करता है तथा उत्तम श्री (शोभा) करता है एवं शोष-क्षय-अम-भगन्दर-मेह भेद-पाण्डु-उदर रोग-क्षयथु (शोथ) और षण्ठवाण्डव (नंपुंसकों की नपुंसकता) को हरण करने वाला होता है ॥ १ ॥

अथ वैक्रान्तम् ।

वैक्रान्तं वज्रवच्छोद्यं नीलं वा लोहितं तथा । हथमूत्रेण सिङ्गेत तप्तं तप्तं द्विससधा ॥ १ ॥
ततस्तु मेष्ठुमृत्यास्तु पञ्चाङ्गे गोलके द्विपेत् ।

पुटेमूषापुटे रुदधा कुर्यादिवं च सप्तधा । वैक्रान्तं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ २ ॥

वैक्रान्त का शोधन—वैक्रान्त को वज्र की भाँति शोधन करे वह (वज्र) वाहे नील हो अथवा लोहित हो । वैक्रान्त मारण—वैक्रान्त को १४ बार तपा २ कर घोड़े के मूत्र में बुझावे तत्पश्चात् मेष्ठुमृती के पञ्चाङ्ग को पीस उसके गोले में वैक्रान्त को रख कर मूषापुट में ७ बार फूंके इसने वैक्रान्त भस्म हो जाता है । इस वैक्रान्त भस्म के वज्र-भस्म के स्थान पर काम में लावे ॥ १-२ ॥

वातपित्तनिलध्वंसि षड्सं देहाद्वर्कत् । पाण्डुदरजवरशासकासयथमप्रमेहनुत् ॥ १ ॥

वैक्रान्त का गुण—वैक्रान्त कफ-पित्त और वात का नाशक, छब्बी रसोवाला, देह को इड़ (बलवान) करने वाला, पाण्डु-उदर-जर-ज्वास-कास-यस्मा और प्रमेह का नाशक होता है ॥ १-१ ॥

अथ शेषरत्नशोधनमारणानि ।

शोधनं—शुद्धयस्यलेन माणिक्यं जयन्त्या भौकिकं शुचि ।

चिद्रुमं चारवर्गेण तार्थं गोदुर्घातः शुचि ॥ १ ॥

पुष्पशारं च कौलत्थकाथयोगेन शुद्धयति ।

रोचनाभिश्च गोमेदं वैद्युर्यं प्रिफलाजलैः । नीलं नीलोरसैर्वज्रविना शुद्धति दोलथा ॥ २ ॥

रलशोधन—अम्ल वर्गों से माणिक शुद्ध होता है, जयन्ती के रस से मोती शुद्ध होती है, क्षार वर्ग से विद्वग (मूंगा), गो दुध से तीक्ष्णी (मरकत मणि), कुलधी के क्वाथ के योग से पुष्पराज (पुष्पराज), गोरोचन से गोमेद, त्रिफला के जल से वैद्युर्य मणि और नीली (लील) के रस से दोला यन्व में पचाने से नीलम नाम का रल विना वज्र के विना अर्थात् हीरा को छोड़ कर शेष सब रल शुद्ध होता है ॥ १-२ ॥

अन्यच—स्वेदयेहोलिकायन्त्रे जयन्त्या: स्वरसेन च ।

मणिमुक्ताप्रवालानि यामैकं शोधनं भवेत् ॥ १ ॥

अन्य विधि—मणि, मुक्ता और प्रवालादि जयन्ती के रस में दोलायन्त्र में रख एक पहर तक स्वेदन करने से (पकाने से) शुद्ध होते हैं ॥ १ ॥

मारण—लकुच्छद्रावसप्तिष्ठैः शिलातालकगन्धकैः ।

वज्रं विनाऽन्यरत्नानि त्रियन्तेष्ठपुटैः खलु ॥ १ ॥

रलादिकों का मारण—वज्र को छोड़ शेष अन्य रल मनशिला, हरताल और गन्धक लकुच्छ (बड़हर) के द्रव में पीस कर आठ पुट देने से मर जाते हैं ॥ १ ॥

अन्यच—कुमार्या तण्डुलीयेन स्तन्येन च निषेद्येत् ।

प्रथेकं सप्तवेलं च तस्तसानि कृत्वा ॥ १ ॥

मौकिकानि प्रवालानि तथा रलान्यशेषतः । चूणाद्विविधवर्णानि त्रियन्ते नाश्र संशयः ॥ २ ॥

रलादिकों के मारण की अन्य विधि—कुमारी के द्रव (रस), चौलाई के रस और दूध प्रत्येक में सात-सात बार तपा २ कर बुझाने से मुक्ता, प्रवाल तथा अन्यान्य रल भी जो अनेक प्रकार के हैं वे क्षण भर में शृत हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ १-२ ॥

उष्मामधिकवन्युक्ताप्रवालानि च मारयेत् । वज्रवसर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्प्रथा ॥ ३ ॥

ऊपर कथित स्वर्णमाणिकी की भाँति मुक्ता तथा प्रवाल को मारना चाहिये तथा वज्र की भाँति अन्य सब रलों का शोधन-मारण करना चाहिये ॥ ३ ॥

गुणः—रत्नानि चोपरत्नानि चक्रव्याणि सराणि च ।

शीतलानि कथायाणि मधुराणि शुभानि च ॥ १ ॥

कृष्णाणि मङ्गलान्यायुस्तुष्टुष्टिकराणि च । ग्रहालक्ष्मीविष्णवेष्यपापसंतापनानि च ॥ २ ॥

यथमपाण्डुप्रमेहार्थःकासचासभगन्दरान् ।

उवरवासपंकुष्ठानि शूलकृच्छ्रव्याणमयान् । इन्निति पुष्टि यशः कान्तिपुण्यानि च चृणां भृशस्य ॥

रत्नादिकों का गुण—जितने रत्न तथा उपरत्न हैं सब नेत्रों को द्वितकर, सारक, शीतल, कथाय, मधुर और शुभप्रद होते हैं तथा वीर्यवर्धक, मङ्गलकारक, आयुकारक सन्तोषदायक, पौष्टिक, ग्रह (दुष्ट यथा) तथा दरिद्रता नाशक, विष-दुर्बलता-क्षीणता-पाप-सन्ताप (पीड़ा) आदि के भी नाशक होते हैं । तथा यक्षमा-पाण्डु-प्रमेह-अर्श-कास-श्वास-भगन्दर-ज्वर-विसर्प-कुष्ठ-शूल-कृच्छ्र (मूत्रकृच्छ्र) और व्रणादिक रोगों के नाशक एवं मनुष्यों को शारीरिक पुष्टि, यश-कान्ति तथा पुण्यादि को अत्यन्त करने वाले होते हैं ॥ २-३ ॥

अथ शिलाजतु ।

निदावे धर्मपर्वतसा धातुसारं धराधराः । निर्यासवप्रसुम्भान्ति तच्चिलाजतु कीर्त्यते ॥ ३ ॥

शिलाजीत के नाम भेद, शोधन, गुणादि—शिलाजीत की उत्पत्ति-ग्रीष्म ऋतु में पर्वतों में वित धातुओं के धर्म से सन्तप्त होने पर निर्यास की भौंति धातु सार का स्वाव होता है उसी वित पदार्थ को 'शिलाजीत' कहते हैं ॥ १ ॥

शोधनम्—अधोषकाले इवितपयुक्ते च्यञ्चे निवाते समसूमिभागे ।

चत्वारि पात्रायनितायसानि न्यस्याऽस्तपे उत्तमनोऽधधानः ॥ ३ ॥

शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षिप्य तोयं द्विगुणं ततोऽस्मात् ।

उषणं तदर्थं शृतमन्त्र दश्वा विशीघ्रये तन्मृदितं च्यथावत् ॥ २ ॥

नतस्तु यत्कृत्यामुपैति चार्ध्वं संतानिकावद्रविरशिमयोगात् ।

पात्रात्तदन्यत्र सतो निदध्यात्तस्यान्तरे चोषणजलं निधाय ॥ ३ ॥

ततश्च तस्मादपरत्र पात्रे तस्माच्च पात्रादपरत्र भूयः ।

पुनस्तस्तोऽन्यत्र निधाय कृष्णं यस्तस्हतं तत्पुनराहरेद्व ॥ ४ ॥

यदा विशुद्धं जलमच्छ्रुमूर्द्धं प्रसव्य भावान्मलमेत्यधस्तात् ।

तदा ध्यजेत्तस्तलिलं मलं च शिलाजतु स्याज्जलशुद्धमेवम् ॥ ५ ॥

शिलाजीत-शोधनविधि—ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य में अधिक तरन (उछाता) हो जावे, आकाश में ग्रेषादि नहीं हों (स्वच्छ रहे) और वायु नहीं हो ऐसे समय में सावधान होकर सभतल भूमि में कृष्ण वर्ण के लोहे के चार पात्र रखवे और पहले एक पात्र में उत्तम शिलाजीत रख कर उसके दुगुना उषण जल देकर भलीभाँति मर्दन कर सूर्यताप में रख देवे, सूर्यताप से उस पात्र में जल के ऊपर मलाई सदृश कृष्ण वर्ण का पदार्थ जब जम जावे तब उस मलाई सदृश पदार्थ को दूसरे पात्र में जल पर से निकाल लेवे और उसमें पुनः किञ्चित् उषण जल आधा देकर ताप में रख देवे, जब उस पात्र में भी मलाई सदृश कृष्ण वर्ण का पदार्थ जम जावे तब उसमें से भी तीसरे पात्र में निकाल पुनः उषण जल देकर ताप में रख देवे और जब उसमें भी वह पदार्थ जम जावे तब चौथे पात्र में निकाल कर रख कर उषण जल छोड़े इस प्रकार करने पर चौथे पात्र में स्वच्छ जल ऊपर हो जावेगा और उत्तम पदार्थ पात्र के तल भाग में जम जावेगा तब ऊपर का अल निकाल कर नीचे के जमे हुए पदार्थों के जलशुद्ध शिलाजीत आनन्द चाहिये और काम में लाना चाहिये ॥ ५-६ ॥

गैरिकम् ।

शुद्धशिलाजतुपरीक्षा ।

बहौ विसं तु निर्धमं यत्तु लिङ्गोपमं भवेत् ।

तुणग्रेणाम्भसि चिसमबो गलति तन्तुवत् । गोमुकगन्धिं मलिनं शुद्धं ज्येयं शिलाजतु ॥ १ ॥

शुद्ध शिलाजीत की परीक्षा—जो शिलाजीत असि में छोड़ने पर धूम के बिना जले अर्धात् असि में जल जावे परन्तु धूंधों न निकले और ऊपर लिङ्गाकार हो उठे और जिसे तुण से उठा कर जल में छोड़ने से उसमें से गलित हो हो कर तन्तु की भौंति जल के ऊपर से तल भाग में लाने लगे तथा जिसमें से गोमूत्र के गन्ध के समान गन्ध निकले और वर्ण मलिन हो उसे 'शुद्ध शिलाजीत' जानना चाहिये ॥ १ ॥

शिलाजतु रसायन कटुकतिकमुण्ठं कृमि—चयोदरभिदशमरीक्षयथुपाण्डुकण्ठहरम् ।

प्रमेहस्मिकुष्ठजिकफसमीरुत्तमाहृत्यापलितमानसानपि सकासकृच्छ्रप्रणुत् ॥ २ ॥

शुद्ध शिलाजीत के गुण—शिलाजीत रसायन, कटुतिक और उषण है तथा कृमि, क्षय, उदर रोग, अस्मरी, शोथ, पाण्डु, काढ़, प्रगैर, वमन, कुष्ठ, कफ, वायु, अर्श, वली-पलित रोग, मानस रोग (मिर्गी आदि), कास और मूत्रकृच्छ्रादि रोगों का नाशक है ॥ २ ॥

अशुद्धं दाहमूर्च्छायन्त्रमविचाच्चशोषतः । शिलाजतु प्रकुरुते मान्यमनेश विद्युप्रहम् ॥ ३ ॥

अशुद्ध शिलाजीत के दोष—अशुद्ध शिलाजीत दाह, मूर्च्छा, अर्श, पित्त, रक्त, शोष, मन्दादि और मलबन्ध का कारक है ॥ ३ ॥

अथ सिन्दूरम् ।

सिन्दूरं निशुकद्वाचैः पिष्ठा बहौ विशोषयेत् । ततस्तप्तुलतोयेन तथाभूतं विशुद्धति ॥ १ ॥

सिन्दूरशोधन—प्रथम तिन्दूर को नीबू के रस में मर्दन कर असि के ताप पर सुखावे पश्चात् चावल के धोवन में मर्दन कर आग पर रख सुखा देने से सिन्दूर शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

सिन्दूरसुकं वीसपंकुष्ठकण्ठविषापहम् । भग्नसंधानजननं व्यशशोधनरोपणम् ॥ २ ॥

शुद्ध सिन्दूर के गुण—शुद्ध सिन्दूर विसर्प-कुष्ठ-कण्ठ और विष का नाशक है, भग्न (हड्डी दूट जाने) आदि का संयोजक और व्रण का शोधन तथा रोपण करने वाला है ॥ २ ॥

अथ समुद्रफेनः ।

समुद्रफेनश्चुद्धयो लेखनः शीतलः सरः । कर्णज्ञवहृजायूथहरः पाचनवीपनः ॥ १ ॥

समुद्रफेन का गुण—समुद्रफेन नेत्रों को द्वितकर, लेखन, शीतल और सारक है, कर्ण के स्नान-पीड़ा और गृथ का नाशक है, पाचन तथा दीपन है ॥ १ ॥

अशुद्धः स करोरयङ्गभूतं तस्माद्विशोषयेत् । समुद्रफेनः संविष्टो निशुतोयेन शुद्धति ॥ २ ॥

अशुद्ध के दोष—अशुद्ध समुद्रफेन अङ्ग-भङ्ग करने वाला है इसलिये शुद्ध कर कार्य में लाना चाहिये । समुद्रफेन का शोधन-समुद्रफेन नीबू के रस में मर्दन करने से शुद्ध होता है ॥ २ ॥

अथ गैरिकम् ।

गैरिकं किञ्चिद्वाजयेन भृष्टं शुद्धं प्रजायते । कायकान्तिवदःस्थैर्यवलीजोवृदिकारकम् ॥ १ ॥

प्रमेहकुष्ठपिटिकावर्षवृद्धविषापहम् । स्वप्नयैरिकमन्यत्तु श्रेष्ठं सामाध्यगैरिकात् ॥ २ ॥

गैरिक (गेल) की शुद्धि-गुणादि—गेल धूत में थोड़ा मर्दन करने से शुद्ध हो जाता है । शुद्ध गेल शरीर की कान्ति, आगु की स्थिरता, वल और ओज (पराक्रम) की वृद्धि करने वाला होता है तथा प्रमेह, कुष्ठ, पिटिका, सब प्रकार के व्रण तथा विष का नाशक होता है । दूसरा जो स्वर्ण गैरिक है वह सामाध्यगैरिक है गेल से श्रेष्ठ कहा गया है ॥ १-२ ॥

अथैरण्डबीजशुद्धिः ।

गम्भीरहृष्टबीजानां नारिकेलोदकेन च । याममात्रामवेद्युद्धिर्दन्तीबीजं पचेष्यथा ॥ १ ॥

एरण्ड बीज की शुद्धि—एरण्डबीज को नारिकेले के जल के साथ एक पहर तक दोलायन्त्र में पकाने से शुद्ध होता है और इसी प्रकार से दन्ती की भी शुद्ध होती है ॥ १ ॥

अथ मरिचशुद्धिः ।

मरिचं चाम्लतकेण भावितं घटिकाग्रथम् । मरिचं निस्तुवं कृत्वा शुद्धं भवति निश्चितम् ॥ ३ ॥

मरिच की शुद्धि—मरिच को अम्लता को प्राप्त हुए तक (मट्ठे) में तीन घड़ी तक भावना देने के बाद उसकी भूंसी को अलग कर लेने से उसकी शुद्धि निश्चित ही हो जाती है ॥ ३ ॥

अथ पिधपलीशुद्धिः ।

बैदेही चित्रकरम्बैरातपे भावयेषुपुरे । सम्यक् शुद्धा भवत्यन्न रसयोरोषु योजयेत् ॥ १ ॥

पीपरि की शुद्धि—पीपरि चित्रकमूल के रस में भावित कर सूर्य के ताप में रखने से शुद्ध हो जाती है और इस प्रकार की पीपरि रसों के योग में देने योग हो जाती है ॥ १ ॥

अथ हिङ्गशुद्धिः ।

पश्चपत्रसे याममातपे भावितं विहुः । रामतं शुद्धिमाणोति रसयोरोषु योजयेत् ॥ १ ॥

हिङ्गशोधन—हींग को कमल के पत्ते के रस में सूर्य के ताप में १ पहर तक रख भावना देने से रस कार्य के योग्य शुद्ध हो जाती है ॥ १ ॥

अथ शङ्खः ।

शङ्खः श्वारो हिमो ग्राही प्रहणीरेकनाशनः ।

तेऽपुष्पहरो व्यर्थस्तामुपयिटिकाप्रणुत् । अशुद्धो गुणदो नैष शुद्धोऽम्लः स गुणग्रहः ॥ ३ ॥

दक्षिणावर्तशङ्खस्तु त्रिदोषघ्निः शुचिनिधिः । ग्रहालचमीद्यथवेद्वामतादिद्ययुद्धमः ॥ २ ॥

शङ्ख के गुण तथा शोधन—शङ्ख क्षार, शीतल, ग्राही, ग्रहणी तथा अतिसार और नेत्रपुष्प (मोतियाविन्द) का नाशक, वण्कारक, तारुण्य (शुवावस्था) की पिटिका आदि का नाशक होता है । अशुद्ध होने से यह गुणकारी नहीं होता है और यह अम्ल से शुद्ध होता है और शुद्ध ही गुणदायक होता है । जिस शङ्ख की नाभि दक्षिणावर्त हो अर्थात् दाहिने ओर से मुड़ी हो वह शङ्ख त्रिदोषनाशक पवित्र, वैश्वर्यदाता है और दुष्ट ग्रह, दारिद्र्य, क्षय, विष और दुर्बलता आदि का नाशक होता है ॥ १-२ ॥

अथ भूनागसत्त्वमयूरपक्षसत्त्वगुणाः ।

ताम्रभूभवनागांश्च विश्वरिपद्यात् समेन तान् । पुरलालोर्णनाभिः स्थान्मरस्यपिण्याकठङ्गौः ॥

द्रवमेतत्त्वं संयोज्य मर्दविवरा धमेत्युत्तम् । सुम्भनितं साम्रवत्सत्त्वं तत्पक्षा अपि विहणाम् ॥ २ ॥

भूनागसत्त्व और मयूरपक्षसत्त्व के गुण—ताम्र उत्पक्ष होने के स्थान की भूमि से ३० केंचुप छेवे और उसके समान उग्गुल, लाक्षा, मकरी, मत्स्य, तिल की खरी, सुहागा लेकर एकत्र मर्दन कर पात्र में रख अविन में तपाने से ताम्बे के सूक्ष्म सत्त्व तैयार हो जाता है । इसी विष से मोर के पख का भी सत्त्व तैयार हो जाता है ॥ १-२ ॥

भूनागसत्त्वं विशिरं सर्वकुष्ठव्यवरणग्रनुत् । तत्सुष्टजलपानेन स्थान्मर्दविवरा अति जङ्गमम् ॥ ३ ॥

विषं नश्यति तत्पक्षगतः सूतोऽग्नितो दृढः । एवं मयूरपक्षोथसत्त्वस्यापि गुणो मतः ॥ ४ ॥

भूनाग तथा मोर के पख के सत्त्व का गुण—केनुओं का सत्त्व शीतल, सब प्रकार के कुष्ठ तथा वृण रोग को नष्ट करने वाला होता है तथा इस सत्त्व के संसर्ग का या सत्त्वमिश्रित जल के

पीने से स्थावर तथा जंगम दोनों विष नष्ट हो जाते हैं । और उस सत्त्व बने हुए पात्र में पारद को रख कर अग्नि में तपाने से पारद का इड़ीकरण होता है । इसी प्रकार का गुण मोर के पंख के बने हुए सत्त्व में भी होता है अर्थात् केनुओं और मोरपंख के सत्त्व बनाने की विधि एक ही है और गुण भी एक ही है ॥ ३-४ ॥

अथ कर्पूरशुद्धिः ।

गोदुधये त्रिफलाकाये भृङ्गदावे समांशके । मर्दवियाममात्रं तु कर्पूरं शुद्धिमाण्यात् ॥ ३ ॥

कर्पूर का शोधन—कर्पूर को समभाग गाय के दूध, त्रिफल के क्वाथ और भृङ्गदाव के स्वरस में पृथक्-पृथक् एक-एक पहर तक मर्दन करने से शुद्ध होता है ॥ १ ॥

अथ टङ्गणशोधनम् ।

अशुद्धष्टक्षणो वानितभानितकारी प्रयोजितः । अतस्तं शोधयेदेवं गोमयेनाऽप्लुतः शुचिः ॥

टङ्गणशोधन—अशुद्ध टङ्गण के सेवन करने से बमन, भ्रान्ति (धूमटा) आदि होता है इसलिये टङ्गण को शुद्ध करना चाहिये । टङ्गण को गोमय (गोबर) में एक दिन-रात भिगो कर निकाल लेने से शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

टङ्गणो विहृतस्वर्णरूप्ययोः शोधनः सरः । विषद्वेषहरो हृष्टो वातश्लेष्मविकारनुव ॥ २ ॥

गुण—टङ्गण अग्निकारक, सुवर्ण तथा रौप्य का शोधक, सारक, विषदोषनाशक, हृष्ट को हितकर तथा वात तथा कफ के विकार का नाशक होता है ॥ २ ॥

अथ विषम् ।

कालकूटो वरसनामः शङ्खकश्च प्रसीपनः ।

हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सकृतकस्तथा । सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषमेदा अमी जब ॥ १ ॥

विष के नेद—कालकूट, वर्तनाम, शङ्खक, प्रदीपन, हालाहल, ब्रह्मपुत्र, हारिद्र, सकृतुक और सौराष्ट्रिक नाम से विष नव प्रकार का होता है ॥ १ ॥

आह्वाणः पाण्डुरस्तेषु चत्रियो रक्तवर्णकः । वैश्यः पीतभ्रमः शुद्धः कृष्णामः स तु लिन्दितः ॥

जो विष पाण्डु वर्ण का हो उसे ब्राह्मण वर्ण का, रक्त वर्ण का हो उसे क्षत्रिय वर्ण का, पीत वर्ण का हो उसे वैश्य वर्ण का और कृष्ण वर्ण का हो उसे शूद्र वर्ण का जानना चाहिये और यह शूद्र वर्ण का विष निन्दित है इसे कार्य में नहीं लाना चाहिये ॥ २ ॥

रसायनं विषं विग्रहं देष्टपुष्टी तु बाहुजम् । कुष्ठनाशो ग्रयुञ्जीत वैश्यं शूद्रं तु धातुषु ॥ ३ ॥

रसायन के कार्य में विग्रह वर्ण का विष ग्रहण करना चाहिये, देह की पुष्टि के कार्य में क्षत्रिय वर्ण का, कुष्ठनाशार्थी और वैश्य वर्ण का और धातुसम्बन्धी कार्य में शूद्र वर्ण का विष ग्रहण करना चाहिये ॥ ३ ॥

विषं ग्राणहरं युक्तस्था प्राणकृत्य रसायनम् । योगवाहिः परं श्लेष्मवातहसंनिपातजित् ॥ ४ ॥

गुण—विष ग्राणनाशक वस्तु है परन्तु युक्तिपूर्वक उसे बनाने से (शुद्धि आदि करने से) प्राणकारक (बलदायक), रसायन, योगवाही और अत्यन्त कफ-वात एवं संक्षिपत का नाशक होता है ॥ ४ ॥

शोधनं—विषं तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रस्तप्तेन अन्तर्येत् ।

गोमूत्रमध्ये निष्प्रद्य श्वापयेदातपे व्यहम् ॥ ५ ॥

गोमूत्रं तु ग्रहात्तथं नूतनं प्रथयं त्रुष्टैः । त्र्यहेऽतीते तत्तुद्धृत्य शोधयेन्मूर्तु पैषथेत् ॥

शुद्धत्येवं विषं सेव्यं शोधयं भवति चातिजित् ॥ ५ ॥

विषशेषम्—विष को खण्ड-खण्ड (दुक्षेन्द्रुक्षे) करके एक छोटे वस्त्र में बांध कर गोमूत्र में रखकर तीन दिन तक धूप में रखे तथा नित्य प्रति गोमूत्र बदलता जावे। इस प्रकार तीन दिन की किया व्यतीत हो जाने पर विष को निकाल धूप में सुखाकर पीठे इस तरह विष शुद्ध हो जाता है और पीड़नाशक होता है ॥ २-२ ॥

अन्यच—खण्डीकृत्य विषं वस्त्रपरिवर्द्धं तु दोक्षया ।

अथापयसि संविषं यामतः शुद्धिमाण्युत्यात् । अजाहुग्राम्याभावतस्तु गव्यव्युत्तिरेण शोषयेत् ॥४॥

अन्य विधि—विष को खण्ड २ करके कपड़े में बांध कर बकरी के दूध में दोलायन्त्र में रख एक पहर पकाने से विष शुद्ध हो जाता है और यदि बकरी का दूध न हो तो गाय के दूध से ही शुद्धि करे ॥ १ ॥

अन्यच—विषग्रन्थि मले न्यस्य माहिषे इदमुदितम् । करीषाप्नौ पचेयाम वस्त्रपूर्तं विषं शुचिः ॥

अन्य विधि—विष के खण्डों को कपड़े में बांध कर मैरा के गोबर में रख बन्द कर एक पहर करीषाप्नि (कसी की आग) पर पकाने से विष शुद्ध होता है इसे वस्त्र से पोछ कर कार्य में ले ॥ ५ ॥

अन्यच—कणशो वस्त्रानाम च कृत्वा बद्ध्वा च कर्पेटे ।

दोलायन्त्रे जलव्यारे प्रहरास्तुद्धिक्षुच्छ्रुतिः ॥ १ ॥

और भी विधि—विष (बत्सनाग) को खण्ड-खण्ड करके कपड़े में बांध कर जल तथा क्षीर में दोलायन्त्र द्वारा पकाने से एक पहर में शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

मारण—तुषयेन टक्कणेनैव द्विगुणेनोषणेन च । विषं संयोजितं शुद्धं सृतं भवति सर्वथा ॥५॥

विष का मारण—शुद्ध विष के बराबर टक्कण और द्विगुण ऊपण (काली मरिच) का चूर्ण मिला कर पीसकर रखने से विष सृत हो जाता है ॥ १ ॥

गुणा—विषं इसायनं बृशं वातस्त्वेभ्यविकारनुत् । कटुतिक्कषापं च मदकारि सुखप्रदम् ॥

व्यवायि शीतनुशाहि कुष्ठवात्स्त्रानाशनम् । अर्द्धनमान्द्याभासकासप्तीहोदरभगन्दरान् ॥

गुलमपाद्वन्नाशार्णसि नाशयेकमशो नृणाम् ॥ २ ॥

विष का गुण—विष इसायन, बलकारक, वात तथा कफ के विकार का नाशक, कटु, तिक्त, क्षय, मदकारक, सुखदायक, व्यवायि गुणयुक्त, शीतनाशक, दाहक, कुष्ठ, वात, रक्त या बातरक्त, अद्यमान्द्य, श्वास, कास, प्लीहा, कास, उदर, भगन्दर, गुलम, पाण्डु, ब्रण और अर्श रोग को क्रमशः नष्ट करता है ॥ २-२ ॥

अथ गौरीपाषाणभेदः ।

गौरीपाषाणकः प्रोक्तो द्विविधः श्वेतरक्तः । श्वेतः शङ्खस्त्रव्यक्तो दाढिमाभः प्रकारितिः ॥ १ ॥

गौरीपाषाण का भेद—गौरीपाषाण (संखिया) दो प्रकार का कहा गया है एक श्वेत वर्ण का दूसरा रक्त वर्ण का, इसमें श्वेत वर्ण का जो होता है वह शङ्ख के वर्ण का और रक्त वर्ण वाला दाढिम के वर्ण का होता है ॥ १ ॥

श्वेतः क्रित्रिमकः प्रोक्तो रक्तः पर्वतस्त्रभवः । विषरूपधरी तौ हि रसकर्मणि पूजितौ ॥ २ ॥

श्वेत वर्ण का गौरीपाषाण कृत्रिम कहा गया है और रक्त वर्ण का पर्वत से उत्पन्न हुआ होता है दोनों ही विष का रूप धारण करने वाले रस कर्म के लिये उत्तम कहे गये हैं ॥ २ ॥

नामान्याह—गौरीपाषाणकश्वान्यो विकटो रक्तरूपकः ॥ १ ॥

गौरीपाषाण के नाम—पहले का नाम गौरीपाषाण है और दूसरे का विकट तथा रक्तरूपक है ॥

युग्मानाह—रसद्वन्द्यकरः इनद्वयो दोषद्वयो रसद्वयोर्भूतः ॥ १ ॥

गौरीपाषाण का गुण—गौरीपाषाण रसद्वन्द्यन करने, वाला, स्त्रिय, दोषसाशक, रस और वीर्य का कारक होता है ॥ १ ॥

शुद्धिमाह—घननादरसान्विते च मलः परिपाच्यः किल दोलिकाद्यन्त्रे ।

शुभवहित्यो दिनं च मन्दः परिदेयः परिजायते स शुद्धः ॥ १ ॥

गौरीपाषाण की शुद्धि—लाल रंग की चौराई के स्वरस में दोलायन्त्र द्वारा विधिपूर्वक संखिया को दिन भर मन्द २ अद्वि पर पकाने से शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

अन्यच—उष्णीपाषाणसंखुद्धिव्यवधयते शास्त्रसम्मतम् ।

चूर्णकृतं पटे बद्ध्वा शिलाचारोदकेन च ॥ १ ॥

दोलायन्त्रे दिनेकं तु पांचतःशुद्धिमाण्युत्यात् । विकटं पोटलीं बद्ध्वा दोलायन्त्रे काञ्जिके ॥ टक्कणे वा नवां दुधे पांचयेद्वषटिकाद्यम् । आजमासरसे वाऽपि शुद्धो भवति निश्चयात् ॥३॥

अन्य विधि—उष्णीपाषाण (गौरीपाषाण) की शास्त्रोत्तर शुद्धि कहते हैं कि गौरीपाषाण को चूर्ण करके कपड़े में बांध कर शिला (मैनसिल) और यवक्षार के जल के साथ दोलायन्त्र में रख दिन भर पकाने से शुद्धि को प्राप्त होता है अर्थात् शुद्ध होता है । विकट (रक्त गौरीपाषाण) को कपड़े में बांधकर दोलायन्त्र के द्वारा कांजी में, टक्कण जल में अथवा दूध में दो घड़ी पर्यन्त पकाने से अथवा बकरे के मांस के रस में पकाने से निश्चय ही शुद्धि को प्राप्त होता है ॥ १-३ ॥ उष्णीपाषाणमलं च केचिकामान्तरं विदुः । वाते कफे तथा श्वासे योजयन्ति चिकित्सकाः ॥

उष्णीपाषाण (संखिया) और मल ये गौरीपाषाण के पर्यायवाची शब्द हैं ये सा कोई २ कहते हैं । इसको चिकित्सक वात, कफ तथा शीत के रोग में कार्य (व्यवहार) में लाते हैं ॥ ४ ॥

अथोपविधम् ।

अर्कस्त्रीरस्तुहीरीलाङ्गलीकरवीरकः । गुड्जाहिफेनधत्तूरः सप्तोपविषजातयः ॥ १ ॥

उपविष की गणना—मदार का दुग्ध, स्तुही (थूहर) का दुग्ध, कलिहारी, कनेर, गुजा, अहिफेन और धूतूर ये सात जाति उपविष के हैं ॥ १ ॥

मतान्तरम्—अर्कस्त्रुलाङ्गलीगुज्जाहयादिविषमुष्टयः । धूर्तोऽहिफेनजैयालौ नवोपविषजातयः ॥

मतान्तरम्—मदार, स्तुही, कलिहारी, गुजा, हयारि (कनेर) विषमुष्टि (कुचिल), धत्तूर, अहिफेन और जयपल (जमालगोदा) ये नव उपविष की जातियाँ हैं ॥ १ ॥

अर्कद्वयं स्वरं वातकुष्ठकण्ठविषमुष्टम् । निहन्ति प्लीहगुज्जाशोर्यकृच्छ्लेष्मोदृशकिमीन् ॥३॥

अर्क के गुण—दोनों मदार (रक्त तथा श्वेत) सारक, वात, कुष्ठ, कण्ठ, विष, प्लीहा, गुलम, अर्श, यकृत, कफ, उदर और कुमि रोग के नाशक होते हैं ॥ २ ॥

अथ स्तुक् ।

सेहुण्डो रेचनस्तीचणो दीपनः कट्टुको गुहः । शूलमष्टीलिकाध्मानगुहमशोकोदशनिलान् ॥ १ ॥

हन्ति दोषान्यकृत प्लीहकुष्ठोन्मादाश्मपाण्डुताः । अर्कसेहुण्डयोद्दुर्धयं तत्त्वयं शुद्धमुष्टयते ॥३॥

स्तुही के गुण—सेहुण्ड रेचक, तीक्ष्ण, दीपन, कट्ट, गुह तथा शूल, अड्डीला, आध्मान, गुलम, शोथ, उदर, वातु रोग, दोष, यकृत, प्लीह, कुष्ठ, उन्माद, अस्मरी, पाण्डु आदि का नाशक होता है । अर्क—सेहुण्डदुष्ट की शुद्धि के बचन—मदार और सेहुण्ड का दूध स्वतः शुद्ध होता है ॥ १-२ ॥

अथ लाङ्गली ।

लाङ्गली शुद्धिमायाति दिनं गोमूत्रसंस्थिता । कलिकारी सारकुष्ठशोफार्जीवणशूलजित् ॥

तीक्ष्णोण्णा क्रमिनुज्ज्वली पित्तला गर्भंपातिनी ॥ १ ॥

लाङ्गली की शुद्धि और गुह—कलिहारी को दिनेभर गोमूत्र में रखने से शुद्ध हो जाती है । कलिहारी—सारक, कुष्ठ, शोथ, अर्श, व्रण और शूल का नाशक है और तीक्ष्ण तथा उष्ण, क्रमिनाशक, लघु, पित्तला और गर्भनाशक होती है ॥ १ ॥

अथ गुज्जा ।

गुज्जा कालिकसंस्थिवशा शुद्धिमायाति यामतः ।
गुज्जा लघुहिंमा रुक्षा भेदनी श्वासकासवित् । कोऽगा वृष्ण्या कुष्ठकण्ठश्लेष्मपित्तव्यापहा ॥
गुज्जा की शुद्धि और गुण—गुज्जा को एक पहर तक कांजी के साथ स्वेदन करने से शुद्धि होती है । गुज्जा लघु, शीतल, रुक्ष, भेदी, श्वास-कासनाशक, किञ्चित् उष्ण, वीर्यवर्धक, कुष्ठ, कण्ठ, कफ, पित्त और व्रण का नाशक होती है ॥ १ ॥

अथ हयारिः ।

हयारिविषवच्छोधयो गोदुरुधे दोषकेन तु ।
करवीरहृष्टं नेत्रोगकुष्ठव्यापहम् । लघृष्टां कृमिकण्ठदूरं भस्त्रितं विषवन्मतम् ॥ १ ॥
हयारि का शीधन और गुण—हयारि (कनेर) को वर्तनाभ की भाँति गोदुरुध के साथ दोलायन्त्र में एक पहर तक पकाने से शुद्ध हो जाता है । दोनों प्रकार के करवीर नेत्रोग, कुष्ठ और व्रण के नाशक हैं तथा लघु, उष्ण, कृमि और कण्ठ नाशक तथा भक्षण करने से विष की भाँति हानिकारक हैं ॥ १ ॥

अथ विषतिन्दुकः ।

किञ्चिद्वाजयेन संभृष्टो विषमुष्टिर्विशुद्ध्यति । विषमुष्टिर्विशुद्ध्यति कदुस्तीचणोदणः इलेष्मवातहा ॥
सारमेयविषोन्मादहरो मदकरः स्मृतः ॥ १ ॥

विषतिन्दुक (कुचिला) की शुद्धि और गुण—किञ्चित् वृत्त में भूजने से विषमुष्टि (कुचिला) की शुद्धि होती है । विषमुष्टि-तिक्त, कड़, तीक्ष्ण, उष्ण, कफ-वात, कुर्त्ते का विष तथा उन्माद का नाशक और मदकारक कहा गया है ॥ १ ॥

अथ जैपालः ।

जैपालोऽस्ति गुक्षस्तिको वानितकृज्जवरकुष्ठनुतः । उष्णः सरो व्रणश्लेष्मकण्ठकृमिविषापहः ॥
जैपाल का गुण—जैपाल गुरु, तिक्त, वमनकारक, ज्वर और कुष्ठ नाशक, उष्ण, सारक, व्रण-कफ-कण्ठ-कृमि और विष का नाशक है ॥ १ ॥

जैपाल रहितं त्वग्कुररसज्ञाभिर्मले माहिषे
निविसं व्यहुमुख्यातोयविमले खरवे सवासोर्दितम् ।
लिसं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसनिभं
निम्बुकांश्चुभिभावितं च बृहुशः शुद्धं गुणाङ्गं भवेत् ॥ १ ॥

जैपाल की शुद्धि—जैपाल के बीज को छिल्का, अड्डुर और जिहा से रहित अर्थात् अलग कर भैस के गोबर में तीन दिन रख कर गर्म जल से खूब धोकर खल में पीस कर नये खर्पर (खपड़े) पर लेप कर उसके स्नेह को निवृत्त करे अर्थात् रज के समान निःस्नेह करे इसके पश्चात् नीबू के (रस) की कई भावना देवे इससे जैपाल शुद्ध होता है और अत्यन्त गुण वाला होता है ॥ १ ॥

अन्यच—जैपाल निस्तुष्टं कृत्वा दुरुधे दोलायुतं पवेत् ।

अन्तिंश्चांश्चपरित्यज्य युक्त्याच्च इसकर्मणि ॥ १ ॥

अन्य विधि—जैपाल बीज की भूसी (त्वक्) अलग कर दुरुध के साथ दोलायन्त्र में पकावे और उसकी जिहा (भीतर का अड्डुर) अलग कर देवे तब यह रस कार्य में लाने के लिये शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

अन्यच—वस्त्रे बध्वा तु जैपालं गोमयस्योदके न्यसेत् ।

पाचयेद्यामसात्रं तु जैपालः शुद्धता व्रजेत् ॥ २ ॥

सविषे गरुडमन्त्रः ।

अन्य विधि—जैपाल को वस्त्र में बाँध कर गोबर के रस में छोड़े और एक पहर तक पकावे इससे जैपाल शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

अथोन्मत्तः ।

धत्तूरबीजं गोमूत्रे चतुर्थामोषितं पुनः । कण्ठितं निस्तुष्टं कृत्वा शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ १ ॥

उन्मत्त (धत्तूर) की शुद्धि और गुण—धत्तूर के बीज को गोमूत्र में चार पहर उषित (भिंगो) कर उनके भूसी (छिल्के) को अलग कर योगों में देने के योग्य शुद्ध कर लेना चाहिये अर्थात् इस प्रकार शुद्ध होता है ॥ १ ॥

धत्तूरो मधुवर्णामिवातकृज्जवरकुष्ठनुत् । उष्णो गुरुवर्णश्लेष्मकण्ठकृमिविषापहः ॥ २ ॥

धत्तूर—मद, वर्ण, अग्नि और वात का कारक तथा ज्वर और कुष्ठ का नाशक, उष्ण, गुरु, ग्रन, कफ, कण्ठ, किञ्चि और विष का नाशक है ॥ २ ॥

अथाहिफेनम् ।

अहिफेनं शृङ्गबेररसैर्भाव्यं त्रिसहस्रा । शुद्धयतुक्तेषु योगेषु योजयेत्प्रद्विधानतः ॥ १ ॥

अहिफेन की शुद्धि—अहिफेन की अदक के रस में २१ भावना देने से शुद्ध होती है तब इसे सर्वं योगों में देना चाहिये ॥ १ ॥

अष्टूकं शोषणं ग्राहि ष्टेम्भनं वातपित्तलम् । मदतृददाहकृष्टुकस्तम्भनायासमोहकृत् ॥२॥

अतिसारे ग्रहण्यां च हितं दीपनयाचनम् । सेवितं दिवसैः कैश्चिद्अभ्यर्थ्यन्यथाऽर्तिकृत् ॥

अहिफेन का गुण—अहिफेन शोषक, ग्राही, कफनाशक, वात, पित्त, मद, तृष्णा, दाह, शुक्रस्तम्भन, आयास और मोह का कारक, अतीसार और ग्रहणी में हितकर, दीपन और पाचन है । नित्य सेवन करने से बुमाता है और अन्यान्य रोगों को पैदा करता है ॥ २-३ ॥

नवधिर्मर्दितः सूतशिल्कापदः प्रज्ञायते । सुखं च जायते तस्य धार्तूर्य ग्रसतेतराम् ॥ ४ ॥

इन पूर्वोक्त ५ उपविषों का पारद के साथ मर्दन करने से पारद छिन्नपक्ष होता है और उसको सुख हो जाता है जिससे वह अत्यधिक धातु भक्षण करता है ॥ ४ ॥

भक्षिका पित्तला तिक्ता तीपणोणा ग्राहिणी लघुः । कर्षणी दीपनी रुद्ध्या मद्कृकवातहत् ॥

बद्बूलरवक्षयायेण भज्ञां संस्वेद्य शोषयेत् । गोदुरुधमावनां दत्त्वा शुष्कां सर्वं योजयेत् ॥६॥

भक्षिका (भांग) का गुण—भक्षिका पित्त करने वाली, तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, ग्राही, लघु, शरीर को छुशा करने वाली, दीपनी, रुचिकर्ता, मद करने वाली, कफ-वातनाशक होती है । भांग की शुद्धि—बब्डुल के त्वचा के क्वाय में स्वेदित कर सुखाने के बाद गोदुरुध की भावना देकर पुनः सुखा कर सब कामों में लाना चाहिये । ऐसी भांग शुद्ध होती है ॥ ५-६ ॥

अथ सविषे गरुडमन्त्रः ।

ॐ नमः प्रचण्डगरुडाय पद्मिराजाय विष्णुवाहनाय विनतासुताय हे गरुड कश्यपसुत वैनतेय ताचर्य स्वर्णवज्रं वच्छुवज्रं तुण्डनस्त्रप्रहरणायानन्तवासुकितशककोटपद्ममहापद्माश-
कृपालकुलिकजयविजया घृण्डानागकाल उच्चाटनीमूलवक्षिष्प्रहरणावहननधूनन शीघ्रकर्त्त्वे र
आवेश २ ढण्डरहे हे श्रीगरुडाय नमः ।

मन्त्रेणानेन मन्त्रज्ञो जलं सुखलक्मात्रकम् । सप्तवाराभिजहं तु पाययेद्वास्तचेतनम् ॥ १ ॥

सर्पादिविषवेगेन स्थौ निर्विषमाप्नुयात । त्रिवारमेवं पानीयं पातक्यं न पिवेद्विषी ॥ २ ॥

सुखमर्दे तदा त्वये कर्त्तव्यस्तज्जलेन हि ।

अथवा मस्तके तस्य तर्जन्या ताढ़येद्व बुधः । त्रिवारं मन्त्रपूर्वं तु निर्विषो भवति इणात् ॥३॥

सर्वविष में गश्छ मन्त्र तथा विधि—मन्त्र—ॐ नमः प्रचण्डग्रहणाय पक्षिराजय……शीघ्र कम्प २ आवेश २ ढण्डरदे है श्रीग्रहणाय नमः । इस मन्त्र से मन्त्रज्ञ एक चुल्लू जल को सात बार अभिमन्त्रित कर जो मनुष्य-विष से अचेत हो गया हो उसे तीन बार पिलावे इससे सर्पादिक के विष के वेणु से मनुष्य शीघ्र मुक्त हो जाता है, यदि वह जल पीने में असमर्थ हो गया हो तब उस जल को उसके मुख में तीन बार डाल देवे अथवा मरतक में तर्जनी अड्डी से तीन-बार मन्त्र पढ़कर मारे इससे शीघ्र मनुष्य निविष अर्थात् विष से रहित हो जाता है ॥ १-३ ॥

अथाभ्रकसत्त्वपातनविधिः ।

भावयेच्छूर्णितं त्वञ्च दिनैकं कालिकेन च । रमभासुरणजैनरेभूलकैष दुमेलयेत् ॥ १ ॥
तुर्यांशट्टकणेतैव छुद्मस्त्व्यैः समं नुनः । महिवीमलसंविमश्राविषायास्याय गोलकान् ॥२॥
खराद्विना धमेद्वादं सत्वं सुच्छति कास्यवत् । मारितं तात्रवद्यवध्यारदाख्या निषेवयेत् ॥३॥

अभ्रकसत्त्वपातन विधि—अभ्रक को चूर्ण कर एक दिन भर कौजी से भावना देकर कदली, सूरण और मूली का रस भिलाकर पृथक् २ मर्दन करे, तत्पश्चात् तुर्यांश (चतुर्थीश) टक्कण और उसी के बावर छुद्र मरत्य मिलावे और उसमें महिवी का मल (गोवर) भिलाकर गोलक बनावे और उस गोले को खर अग्नि में पकाने से कास्य की भाँति गाढ़ा सत्व निकल आता है, तात्र के समान मारे हुए इस अभ्रक सत्व को अभ्रक और पारद के साथ सेवन करे ॥ १-३ ॥

सत्वमध्यस्य विशिरं विद्वेष्वन्न रसायनम् । विशेषाप्युत्सवजननं वयसः स्तम्भनं परम् ॥४॥
अभ्र सत्व का गुण—अभ्रक का सत्व शीतल, विद्वेष्वनाशक, रसायन, विशेष कर पुरुषव्य करने वाला और आयुःस्थापक है ॥ ४ ॥

आगस्त्यपत्रनिर्यासमर्दितं सुरणस्थितम् । अञ्च गोष्ठगतं मासं जायते पारदोपमम् ॥ ५ ॥

अभ्रक की चावल्यदोषवनाशक विधि—अभ्रक आगस्त्य के पत्र-निर्यास (स्वरस) में मर्दित कर सूरण के अन्दर भर दे और उसे गोशाला की भूमि में गाढ़ कर एक मास तक पड़ा रहने दे बाद को निकाल ले । यह पारे के समान हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ तालकसत्त्वम् ।

लाचाराजितिलाभिश्च टक्कणं लवणं गुडम् । तालकाधेन समिश्रं मूषायां स्थिरभाजने ॥
हृद्धका पुटेदधोयन्त्रे सत्वं सुच्छति सत्वंश ॥ ६ ॥

तालक के सत्व की विधि—लाचा-राई-तिल-सहिजन-टक्कण-सेंधा लवण और गुड प्रत्येक द्रव्य ताल के आधा लेकर दृढ़ मूषा में बन्द कर स्थिर पात्र में रख अथो यन्त्र-द्वारा फूंकने से तालक सत्व छोड़ता है अर्थात् इसका सत्व निकल जाता है ॥ ६ ॥

अथ क्षारकल्पना ।

चारवृचस्य काष्ठानि शुष्काण्यमौ प्रदीपयेत् । नीत्वा तत्त्वस्म मृत्पात्रे विप्तवा नीरे चतुर्गुणे ॥
विमर्थं चारयेदाश्रीं प्रातरच्छं जलं नयेत् । नक्षीरं काथयेद्वहौ यावस्वर्वं विशुष्यति ॥ ७ ॥

ततः पात्रासमुद्दृश्य क्षारो ग्राणः स्थिताप्रभः ।

चूर्णभः प्रतिसार्यः स्यासैजसः काथवस्थितः । इति चारवृचं धीमान् युक्तकार्यं चुयोजयेत् ॥
क्षार की कल्पना—क्षार वृक्ष की लकड़ियों को सूखी २ लेकर अद्वि में जलाना चाहिये, जल कर राख दी जाने पर उस राख को मिट्टी के पात्र में रख कर उसमें चौगुना जल छोड़ना चाहिये और भली भाँति मिला कर रातभर रस देना चाहिये और प्रातःकाल ऊपर के स्वच्छ जल की लेकर अद्वि पर क्वाथ करे और उस क्वाथ को तव तक पकावे जब तक वह जल सम्पूर्ण

सूख न जावे अन्त में जो श्वेत वस्तु तलभाग में शेष रह जावे उसे निकाल लेवे इसी चूर्ण को क्षार कहते हैं । क्षार का गुण—यह क्षार चूर्ण रूप का होता है और प्रतिसारण कार्य में अर्थात् ब्रण आदि को दग्ध करने के काम में आता है और क्वाथ रूप में (द्रव) होने पर तैजस अर्थात् अस्ति स्वरूप (दाहक) होता है इस प्रकार के चूर्ण वा क्वाथ रूप (द्रव) में प्रस्तुत हन दोनों क्षारों को बुद्धिमान वैद्य उचित कार्य में प्रयुक्त करे ॥ १-३ ॥

अथाभ्राववर्गः ।

सत्वाभावे गुह्यस्यास्तु अभृताया इसः स्मृतः । चित्रफाभावतो दन्ती चारः शिखरिजोऽथवाः ॥

अभाव प्रकरण अर्थात् किसके अभाव में क्या देने का विचार—गुह्याची के सत्व के अभाव में गुह्याची का रस; चित्रक के अभाव में दन्ती अथवा अपामार्ग का क्षार लेवे ॥ १ ॥

अभावे धन्वयासस्य प्रदेष्याऽथ दुरालभा । तगरस्याण्यभावे तु कुष्ठं देयं भिषयवरः ॥ २ ॥

मूर्च्छाभावे त्वचो ग्राणा जिह्नीप्रभवा बुधैः अहिंसाया अभावे तु मानकन्दः प्रशस्यते ॥३॥

लघ्मणाया अभावे तु नीलकण्ठशिखा भता । बुक्कुलाभावतो देयं कह्नारोत्पलपङ्कजम् ॥ ४ ॥

नीलोत्पलस्याभावे तु कुमुदं तत्र दीयते । कमलस्यायायभावे तु कमलाच इति दमृतः ॥ ५ ॥

बुक्कुलस्यायायभावे तु आभावक् तत्र दीयते । जातीपत्रं न यश्रित्वं लवङ्गं तत्कलं स्मृतम् ॥६॥

अर्कण्डिपयसो द्वाभावे तद्वसो भता । पौष्कराभावतः कुष्ठं तथैरप्यजटा भता ॥ ७ ॥

स्थौर्णेयक्षस्याभावे तु निषिरिभर्दीयते गदः । चविकाग्नजपिष्पत्यौ पिष्पलीमूलवस्मृते ॥ ८ ॥

अभावे सोमरात्यास्तु प्रुष्ठाटफलं मतम् । यत्र न स्याद्वारुनिशा तद्वा देया निशा बुधैः ॥९॥

रसाक्षनस्याभावे तु सम्यद्वार्षीं प्रयुजयते । सौरासूर्यभावतो ज्येष्ठा इष्टिं का तदगुणा जनैः ॥

तालीसपत्रकाभावे स्वर्णतालीं ग्रासास्यते । भार्यभावे तु तालीसं कण्टकारीजटाऽथवा ॥ १० ॥

हृचकाभावतो दध्याक्षवर्णं पांसुर्वर्णकम् । लवणानामभावे च सैन्धवं तत्र दीयते ॥ १२ ॥

अभावे मधुष्यष्यास्तु धातर्कीं च प्रयोजयेत् । अङ्गवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमिष्यते ॥ १३ ॥

तदभावे तु सर्वत्र जग्मीरादिरसः स्मृतः । द्वाढा यदि न लभ्येत प्रदेयं काशमरीफलम् ॥ १४ ॥

तयोरभावे कुमुदं मधुकस्य मतं बुधैः । लवङ्गकुमुदं देयं नस्यस्याभावतः पुनः ॥ १५ ॥

धमासा के अभाव में जवासा, और तंगर के अभाव में वैद्य को कूठ देना चाहिये। मूर्वा के अभाव में काले सेमल की छाल, अहिंसा (कण्टकपालीके अभाव में मानकन्द, लक्षणा के अभाव में मोरशिखा, मौलसरी के अभाव में श्वेत कमल या लाल कमल देना चाहिये। नीलोत्पल के अभाव में कुमुदनी और कमल के अभाव में कमल का बीज ग्रहण करना चाहिये। मौलसरी के छाल के अभाव में बूल की छाल, जाविनी के अभाव में लवण या जायफर ग्रहण करे। मदार के पत्तों के दूध के अभाव में मदार के पत्तों का रस, पुष्करमूल के अभाव में कूठ या एरण्डमूल की छाल लेवे और थुनेर (गठिन का ही भेद है) के स्थान में कूठ लेवे, चब्य और गजपीपरि का गुण पिपरामूल के समान है अर्थात् चब्य और गजपीपरि के स्थान में पिपरामूल ग्रहण करना चाहिये। सोमराजी के अभाव में पवाड़ का बीज और जहाँ पर दारहरी यादि नहीं हो तो उसके अभाव में हल्दी लेना चाहिये। रसवत के अभाव में दारहरी का प्रयोग करे, सौराष्ट्र मृत्तिका के अभाव में फिटिकीरी को उसके गुण के अनुकूल होने से ग्रहण करे, तालीसपत्र के अभाव में स्वर्णताली और भारंगी के अभाव में तालीसपत्र अथवा कण्टकारी का सूल ग्रहण करे। रुचक लवण के अभाव में पांसु लवण और जहाँ सब लवणों का अभाव हो वहाँ सेवा लवण देवे। जेठी मधु के अभाव में धाय का कूल प्रयोग करे और अन्सवेत के अभाव में चुक (चुक) देवे। चुक के अभाव में सब जगह जम्बूरी आदि जीवू के रस को देवे और यदि दाख नहीं

मिले तो उसके अभाव में गम्भार का फल देवे, यदि दाख और गम्भार का फल दोनों का अभाव हो तो मुहूर का फूल लेवे । नवी द्रव्य के अभाव में लौग का फूल लेना चाहिये ॥ २-१५ ॥

वसी विदारी सुसली जीरकं च निशाद्वयम् । दीप्त्यकं देवदारश्चाभावे त्वेकं प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥
कण्टकारीयुगं चैव धावनीयुगमेव च । शतपुष्पाद्वयं चैव उक्षीरयुगलं तथा ॥ १७ ॥

सुद्धपर्णीमाषपर्णीयुगम् चैव ततो भवेत् । तर्कारीयुगलं चैव सर्वत्रैति विनिश्चयः ॥ १८ ॥

शतावरि, विदारीकन्द, सुसली, जीरा और दोनों हरदी (हरदी-दाख हरदी), चित्रक तथा देवदारु इन सब द्रव्यों में एक के अभाव में दूसरा द्रव्य प्रयोग में लाना चाहिये । छोटी कटेरी-बड़ी कटेरी, शालिपर्णी-पृष्ठिपर्णी, सौंफ और सोवा तथा खस और सुगन्धवाला सुद्धपर्णी-माषपर्णी, छोटी अरणी-बड़ी अरणी, इन प्रत्येक दो-दो ओषधियों में से एक दूसरे के अभाव में ग्रहण करे ॥ १६-१८ ॥

पृथक्पृथग्दन्द्रमध्येऽभावे तत्र प्रयोजयेत् । परस्परस्याभावे तु एकं तत्र प्रयोजयेत् ॥ १९ ॥

दो-दो ओषधियों जो दी गयी हैं उनमें से किसी एक का अभाव हो तो उसके स्थान में दूसरी ग्रहण करे (अर्थात् जैसे छोटी कटेरी के अभाव में बड़ी कटेरी और बड़ी कटेरी के अभाव में छोटी कटेरी इस तरह से) । परस्पर के यदि दो में से कोई वस्तु अर्थात् दोनों नहीं मिले तो उसके स्थान में उसके समीप के दूसरे जो दो ओषधि हैं उनमें से लेकर प्रयोग करे ॥ १९ ॥

कस्तुर्यभावे कङ्कोळं देयं यत्र भिषणवदैः । कङ्कोळस्याप्यभावे तु जातीयुष्यं प्रदीयते ॥ २० ॥

अथवा मालतीयुष्यं पत्रं वा दीयते तुधैः । कर्पूराभावतो देयं सुगन्धिं सुस्तकं तथा ॥ २१ ॥

कर्पूराभावतो देयं ग्रन्थिपर्णं विशेषतः । कुङ्कुमाभावतो दद्याक्सुभक्तुसुमं नवम् ॥ २२ ॥

शोखण्डचन्दनाभावे कर्पूरं देयमिष्यते । अभावे च ततो वैद्यः प्रदिष्टेद्रक्तचन्दनम् ॥ २३ ॥

रक्तचन्दनकाभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः । निर्गन्धं च सगन्धं च द्विविधं रक्तचन्दनम् ॥ २४ ॥

शोखण्डस्याप्यभावे तु योजयेन्मतिमान्मयक् । परस्परस्याभावे तु योजयेन्दननवयम् ॥ २५ ॥

मुस्ता चातिविषाभावे देया तत्र शिवा मता । अभावे च हरीतकया मता कर्कतश्चिक्षिका ॥

अभावे नागपुष्पस्य पश्चकेसरमिष्यते । मङ्गातकस्याभावे तु नदीभङ्गतको मतः ॥ २७ ॥

मेदाजीवककाकोलीकृद्विद्वन्द्रुपि वाऽसति । वरीविदार्यस्यगन्धावाराहीश्च क्रमादिष्टेत् ॥ २८ ॥

वाराहीश्च तथाऽभावे चर्मकारालुको मतः । वाराहीकन्दकः प्रोक्तः पश्चिमे गृष्णिसंक्षकः ॥ २९ ॥

कस्तुरी के अभाव में वैद्य कङ्कोळ को देवे और कङ्कोळ का भी यदि अभाव हो तो जाविनी देवे । अथवा यदि जाविनी का भी अभाव हो तो उसके स्थान में (कस्तुरी वा कङ्कोळ के स्थान में) मालती (चमेली) का पुष्प वा पत्र देवे । कर्पूर के अभाव में सुगन्धित मोथा देवे, विशेषकर कर्पूर के अभाव में ग्रन्थिपर्ण (गठिन) देवे । केसर के अभाव में नवीन कुसुम पुष्प देवे, शोखण्डचन्दन और श्वेतचन्दन के अभाव में कर्पूर देने को कहा गया है, यदि कर्पूर का भी अभाव हो तो वैद्य लालचन्दन देवे, लालचन्दन के अभाव में नवीन खस देवे । लालचन्दन दो प्रकार का होता है एक गन्धरहित दूसरा गन्धवाला इसलिये बुद्धिमान् वैद्य एक के अभाव में दूसरा ग्रहण करे परस्पर तीनों चन्दनों के अभाव में एक के बदले दूसरे चन्दन को ग्रहण करे । नागमोथा और अतीस के अभाव में हर्दा देना चाहिए और हर्दा के अभाव में काकड़सिंगी देना चाहिये । नागकेसर के अभाव में पदुमकेसर देना चाहिये और भिलावे के अभाव में नदी भङ्गतक देना चाहिये । मेदा-महामेदा, जीवक-क्रपभक, काकोली-क्षीर-काकोली, ऋद्धि-वृद्धि इन चारों द्वन्द्वों के अभाव में क्रम से शतावरि-विदारीकन्द-असगन्ध और वाराहीकन्द लेना चाहिये अर्थात् मेदा-महामेदा के स्थान में शतावरी, जीवक, क्रपभक के स्थान में विदारीद्वन्द, काकोली-

क्षीरकाकोली के स्थान में असगन्ध और ऋद्धि-वृद्धि के स्थान में वाराहीकन्द का ग्रहण करना चाहिये । वाराहीकन्द के अभाव में चर्मकार आलू (चमारालू-गेंठी) ग्रहण करना चाहिये । पश्चिम में वाराहीकन्द को 'गुटि' (गेंठी) कहते हैं ॥ २०-२१ ॥

क्षीरान्विता मूलकतुर्स्यकन्दा सप्ताष्टपत्रा सितरक्काण्डा ।

विभर्ति या पञ्चममध्यमधारसा कञ्जुकी श्वेतवपुर्वरेण्या ॥ ३० ॥

दूधवाली, सूली के समान जिसके कन्द हैं, जिसके पत्ते एक में सात या आठ हैं, श्वेत तथा लाल रंग के जिसके काण्ड (ढंडी) हैं, जो प्रतिवर्ष नवीन पलव (पत्र) वड़वे अर्थात् जिसमें प्रतिवर्ष नवे पत्ते निकले वह श्वेत वर्ण वाली कञ्जुकी अच्छी होती है ॥ ३० ॥

श्वासकक्षवाराहाद्वृष्णा मानकन्दका । ताम्बुलवस्त्री छुबनावस्त्री वाराहकुटिका ॥ ३१ ॥

जिसका श्वास वर्ण हो और जो कठोर, सुअर के अण्डकोश के समान कन्द वाला हो उसे ताम्बुलवस्त्री, छदनावस्त्री, और वाराहकुटिका कहते हैं । इसे देहात में पिण्डालु या रतार कहते हैं ॥ ३१ ॥

अश्वलाताभावतश्चित्रं नलश्चेष्वोरभावतः । कुशस्य चाप्यभावे तु काशो ग्राह्यः प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥

भिलावे के अभाव में चित्रकमूल, ईख के अभाव में नल (नरकट) और कुश के अभाव में काश तृण ग्रहण करना चाहिये ॥ ३२ ॥

विश्वकारमर्यतुर्करीपाटलादुण्डुकं मंहत् । हस्वं बृहत्यंशुमतीद्वयगोदुरुकं भवेत् ॥ ३३ ॥

बेल (विल) गम्भार, अरणी (गनियारी), पाटला, सोनापाठा ये पांच ओषधि एकत्र होने से बृहत् पञ्चमूल कहे जाते हैं । छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी और गोखरू ये पांच ओषधि एकत्र होने से लघु पञ्चमूल कहे जाते हैं ॥ ३३ ॥

पूर्वेषां दशमूलानामेकमूलं प्रयोजयेत् । अभावे तदृष्टुणु मूलं योजयं वैश्विशारदः ॥ ३४ ॥

इन सब अर्थात् दसों ओषधियों के एकत्र होने से 'दशमूल' कहे जाते हैं इन दस मूलों में से एक मूल के अभाव में उसी के गुण की दूसरी ओषधि विचार कर वैद्य ग्रहण करे ॥ ३४ ॥

मधु यत्र न लभ्येत तत्र जीर्णगुदो मतः । मरस्यपिण्डिकाखण्डसिताः क्रमेण गुणवत्तराः ॥ ३५ ॥

जहाँ पर मधु का अभाव हो वहाँ पुराना गुड ग्रहण करना चाहिये, मरस्यपिण्डिका-खांड और श्वेत शर्करा क्रम से गुणवान और उत्तम है अर्थात् एक से दूसरा अधिक गुणयुक्त है ॥ ३५ ॥

मरस्यण्डस्याभावतो देयं खण्डं च परिकीर्तितम् । तदभावे सिता योजया तुधैः सर्वत्र निश्चयः ॥

मरस्यपिण्डिका के अभाव में खांड और खांड के अभाव में श्वेत शर्करा देनी चाहिये । यह सब स्थानों के लिये विद्वानों ने निश्चित किया है ॥ ३६ ॥

निर्गुण्डयाश्राप्यभावे तु सुरसा दीयते तुधैः । सुलस्या अध्वभावे तु निर्गुण्डी योजयेत्ततः ॥

तुदिमान् को निर्गुण्डी के अभाव में तुलसी देना चाहिये, और तुलसी के अभाव में भी निर्गुण्डी (संभाल) देना चाहिये ॥ ३७ ॥

कुठेरिकायाश्राभावे तुलसीं तत्र योजयेत् । पुर्वनवायाश्राभावे रक्ता सा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥

कुठेरिका अर्थात् बाबुर्द तुलसी के अभाव में तुलसी साधारण (आम्य तुलसी) देना चाहिये । पुर्वनवा (गदद्वुरना द्वेत) के अभाव में रक्त पुर्वनवा देना चाहिये ॥ ३८ ॥

रासना यदि न लभ्येत कोलाञ्जनमिति रस्तम् । सुवर्णस्याप्यभावे तु स्वर्णमातिकसुर्चयते ॥

तारमातिकमायोद्यं तदभावे तु यत्कतः । मातिकस्याप्यभावे तु प्रदुष्यास्वर्णगैरिकम् ॥ ३९ ॥

यदि रासना का अभाव हो तो उसके स्थान में कुलञ्जन देना चाहिये और सुवर्ण के अभाव में सुवर्णमातिक (सोनामास्त्री) ग्रहण करना चाहिये । यदि स्वर्णमातिक का अभाव हो तो उसके

स्थान में रौप्यमालिक (रूपामाली) ग्रहण करना चाहिये तथा दोनों मालिकों के अभाव में स्वर्णे
गैरिक (पीली गेल) देनी चाहिये ॥ ४३-४० ॥

शुद्धो रसो हाटकादि सूतं यथं न लभ्यते । सत्र लोहेन कर्माणि भिषक्षुर्बाध्यत्यनतः ॥ ४१ ॥
जिस स्थान पर शुद्ध स्वर्णादिक रस भस्म नहीं मिले वहाँ अर्थात् स्वर्ण भस्मादिक रस के
अभाव में वैध लौह भस्म को सबके स्थान में यत्नपूर्वक काम में लावे ॥ ४१ ॥

कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं योजयेद्वैष्टसत्तमः । अभावे मौकिकस्यापि सुकाशुर्क्षिप्रयोजयेत् ॥ ४२ ॥
कान्त लौह के अभाव में तीक्ष्ण लोह ग्रहण करे और मोती के अभाव में मोती का सीप
ग्रहण करे ॥ ४२ ॥

वैद्ययादीनि इत्यानि लभ्यन्ते यथं न क्वचित् । तत्र सुकादिभूतिं च योजयेत् भिषवरः ॥ ४३ ॥
जिस स्थान पर वैद्यर्य (लहसुनिर्या) आदि मणियों का अभाव हो वहाँ बुद्धिमान् वैध मोती
आदि की भस्म का प्रयोग करे ॥ ४३ ॥

अभावे रसभूत्याक्षं सिन्दूरं रसपूर्वकम् । तदभावे तु दरदं योजयेत्तत्र बुद्धिमान् ॥ ४४ ॥
पारद भस्म के अभाव में रससिन्दूर ग्रहण करे और रससिन्दूर के अभाव में बुद्धिमान् वैध
शुद्ध हिङ्कुल का व्यवहार करे ॥ ४४ ॥

अलाभे सति तद्द्रव्यं प्रत्याक्षायेन योजयेत् । गोहीशाभावतश्छागं पथः सर्वत्र दीयते ॥ ४५ ॥
जिस स्थान में जिस द्रव्य का अभाव हो उस स्थान में उसी नाम—गुणवाली दूसरी ओषधि
को ग्रहण करे जैसे गौ के दूध के अभाव में सब स्थानों में बकरी का दूध ग्रहण करे ॥ ४५ ॥

गोहृतस्याभावे तु चाऽऽज्ञं सर्वत्र दीयते । अत्रःप्रोक्तानि वस्तूनि तानि तेषु च योजयेत् ॥
गौ के घृत के अभाव में सब जगड़ बकरी का घृत देवे । इस प्रकरण में कहीं हुई ओषधियों
को एक के स्थान में दूसरी का प्रयोग करे ॥ ४५ ॥

शीराभावे रसो मौद्रो मास्यरो चा प्रयुक्त्यते ।
वारभटोक्तिः—उष्णजीतगुणोक्तर्वात्त्र वीर्यं द्विधा स्मृतस्त्रः ॥

शिखा विषाक्तो द्रव्यस्य स्वाद्वृक्कटुकात्मकः ॥ ४६ ॥

दूध के अभाव में मूंग की अथवा मसूर की दाल का रस प्रयोग करे । वांगमट की सम्मति—
उष्ण तथा शीत इन गुणों की उत्कर्षता (प्रवलता) के कारण वीर्य भी दो प्रकार का कहा गया है
(उष्ण वीर्य और शीत वीर्य) अर्थात् (जिस द्रव्य में) उष्ण गुण अधिक है उसे उष्णवीर्य और
जिस द्रव्य में शीत गुण अधिक है उसे शीतवीर्य कहते हैं । द्रव्यों का विषाक्त (पाचन) भी
तीन प्रकार का होता है पहला स्वादु अर्थात् मधुर, दूसरा अम्ल और तीसरा कटु ॥ ४६ ॥
आदौ षड्समप्यनन्मधुरीभूतमीयते । फेनेभूतं कफं यातं विदाहादम्लतां गतः ॥

अधिना शोषितं पक्षं पिण्डितं कटु मारुताद् ॥ ४७ ॥

प्रथम छोड़े रस वाले अन्न अथवा भोज्य पदार्थ भोजन करने पर कफ के प्रभाव से युक्त
कफ की तरह होगा और वह मधुर होगा । फिर आमाशय में जांकर दाढ़क अंग्रि के द्वारा पक
कर अम्लता को प्राप्त होगा । पुनः वह पकाशय में जांकर अंग्रि के द्वारा शोषित होकर और वायु
से पिण्डीभूत होकर कटुता को प्राप्त हो जावेगा ॥ ४७ ॥

चरकाचार्यस्तु—तीक्ष्णं रुद्धं लघु त्रिव्यं द्वृद्ध्यं द्वृद्ध्यं गुरु शीतलम् ।

वीर्यमष्टविधिं केचिद् द्विव्यं प्राद्वृत्रयः ॥ ४८ ॥

चरकाचार्य की सम्मति—तीक्ष्ण, रुद्ध, लघु, स्त्रिव्य, द्वृद्ध, उष्ण, गुरु और शीतल इस
प्रकार इन आठ गुणों की उत्कर्षता (प्रवलता) के कारण वीर्य आठ प्रकार के (तीक्ष्ण वीर्य, रुद्ध,

वीर्यादि के नाम के) होते हैं । यह चरकाचार्य का मत है और कोई २ दो ही प्रकार के अर्थात्
शीत और उष्ण ही वीर्य मानते हैं ॥ १ ॥

रसवीर्यविषाक्तै समं द्रव्यं विचिन्त्य च । युक्तात्त्रिव्यमन्यच द्रव्याणां च रसादिकम् ॥

अभाव के द्रव्यों का रस (स्वाद), वीर्य और विषाक्त इनको सोच कर तब उपयोग
वैध को करना चाहिये अर्थात् जिस द्रव्य के अभाव में दूसरा द्रव्य देना हो तो उसी द्रव्य के
अनुसार रस, वीर्य और विषाक्त वाला द्रव्य ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥

कुटेरिकायाः स्वरसेन सम्यक् स्वर्णादिकानां च भवेत् भस्म ।

वान्त्यादिद्वोषं न करोति तत्त्वं वन्योपलाभिर्जसंज्ञकं पुटम् ॥ ३ ॥

बाहुर्दु तुलसी के स्वरस में शुद्ध स्वर्णादिकों को मलीभाति भर्दन कर बन उपलों से गजपुट
की विधि से पुटपाक करने से भस्म हो जाता है और वमन आदि दोष को नहीं करता है ॥ ३ ॥

वमनं रेचनं नस्य कण्ठपूरणमेव च । रक्तनिः वमनसेन कथयते नातिविस्तरम् ॥ ४ ॥

वमन, विरेचन, नस्य कर्म, कण्ठपूरण, रक्तमोक्षण इन सब विधियों को संक्षेप से कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ वमनम् ।

शरकाले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् । वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥

वमन—मनुष्यों को शरकाल, वसन्त काल और प्रावृट ऋतु में कुशल वैध वमन और विरेचन
करावे ॥ ५ ॥

बलवन्तं कफव्यासं हृलासादिनीषिदित्तम् । तथा वमनसात्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ ६ ॥

वमन के योग्य व्यक्ति—जो बलवान्, कफ से युक्त तथा हृलासादि से कष पा रहे हों तथा
जिनको वमन सात्यं हो और धैर्यवान् हों उन्हें वमन कराना चाहिये ॥ ६ ॥

विषदोषे स्तन्यरोगे मन्दाद्यौ स्लीपदेऽर्जुदे । हृद्रोगकुष्ठवीसपैमेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ ६ ॥

विदारिकापचीकामधासपीनसकृद्विषु । अपस्मारे उवरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ७ ॥

नासाताश्वोष्पाके च कर्णस्त्रावेऽधिजिह्वके । गलशुष्पृष्ठ्या मतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा ॥ ८ ॥

मेषोदोषेऽर्जुदौ च च वमनं कारयेत्तिष्कृ ।

विष दोष में, स्तन्य के रोग में एवं मन्दाभिः, श्लीपद, अर्जुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, मैह, अजीर्ण,
अम, विदारिका, अपची, कास, श्वास, पीनस, वृद्धि (अन्तवृद्धि), अपस्मार, उवर, उन्माद,
रक्तातिसार, नासा, तालु और ओषध का पाक, कर्णस्त्राव, अधिजिह्वक, गलशुष्पृष्ठी, अतीसार, पित्त
और कफ के रोग, मैद्रोषी और अश्वचि के रोग में वैध वमन करावे ॥ ८-९ ॥

न वामनीयस्तिमिरी न तुश्मी नोदीरी कृशः ॥ ९ ॥

नातिचूद्धो गर्भिणी च न स्थूली च उत्तातुरः । सुकुमारं कृशं बालं चूद्धं भीरुन वामयेत् ॥ १० ॥

वमन के अयोग्य व्यक्ति—जिसे तिमिर रोग, गुलम, उदर रोग हो तथा जो कृश या अत्यन्त
चूद्ध हो और गर्भिणी या अत्यन्त स्थूल, क्षत से पीड़ित, सुकुमार, अत्यन्त कृश, बालक, चूद्ध
या भीरु हो उसे वमन नहीं कराना चाहिये ॥ १०-१ ॥

वमने चापि वेगः । स्युराष्ट्रौ पित्तात्त उत्तमाः । पद्मवेगा मध्यमा वेगाभ्यावस्थवरा मताः ॥ ११ ॥

जिस वमन में आठ वेग आवे और अन्त में पित्त आवे वह 'उत्तम' है और छ वेग आवे वह
'मध्यम' तथा चार वेग आवे वह 'अध्यम' कहा गया है ॥ १ ॥

कृष्णाराठकलं सिन्धुं कफे कोण्ठक्लः पिवेत् । पटोलंचासानिन्वैष्विषे पित्ते शीतजलं पिवेत् ॥ १२ ॥
सरलेष्मवातपीडायां सक्तीरं मधुलं पिवेत् । अजीर्णे कोषणपानीयं सिन्धुं पीरवा चमेरसुखीः ॥

विधि—कफ के रोग में पीपरि, मैनफल और सेन्वा नमक उच्छ्वास से वमन के लिये पीवे । पित्त के रोग में परोरा, अखसा और नीम को शीतल जल से वमन कराने के लिये पीवे । बात और कफ की पीड़ा में दूध के साथ मैनफल का चूर्ण पीकर वमन करे । और अजीर्ण के रोग में किञ्चित उष्ण जल के साथ सेन्वा नमक मिलाकर बुद्धिमान पीवे ॥ ९-१० ॥

अन्धान्तरे—पटोलनिभवसलिलं चारुलपित्ते च वान्मित्रकृत् ।

लक्षणं वृत्तयुक्तं च वमनार्थं सुखावहम् ॥ १ ॥

अन्धान्तर से वमन की विधि—अमलापित्त में पटोल तथा निम्ब का जल पीकर वमन करे और घृत में लवण मिलाकर वमन के लिये पीना सुखकर है ॥ १ ॥

हृत्कण्ठशिरसा शुद्धिर्दीर्घसिरग्नेश्च लाघवम् । कफपित्तविनाशक्षं सम्यवान्तस्य खेष्टम् ॥ २ ॥

सम्यग् वमन के लक्षण—हृदय, कण्ठ और सिर की शुद्धि होना, अधि की वृद्धि और शरीर का दृक्का होना, कफ और पित्त का नाश होना ये सब लक्षण भली प्रकार वमन करने के होते हैं ॥ २ ॥

ततोऽपराह्ने दीपामिं सुदूरविक्षिकशालिमिः । हृचैषं जाङ्गलरसैः कृत्वा यूखं च भोजयेत् ॥ ३ ॥

वमन में पथ्य विधि—भली भाँति वमन होने के उपरान्त उस दिन अपराह्न में अग्नि दीप होने पर मूंग की दाल, साठी और अग्नहनी का चावल, हृदय के लिये हितकर जाङ्गल जीवों के मांस का रस भोजन करावे ॥ ३ ॥

अजीर्ण शीतापानीर्थं व्यायामं मैथुनं तथा । स्नेहाभ्यङ्क्रमोपं च दिनैकं वर्जयेत्सुधीः ॥ ४ ॥

वमन के बाद के निषिद्ध कर्म—वमन किया भयुत्य एक दिन तक अजीर्ण, शीतल जल, व्यायाम, मैथुन, तैलाभ्यङ्क्रम, अधिक क्रोध आदि त्याग देवे ॥ ४ ॥

अथ विरेचनम् ।

क्षिवद्विविष्टाय वान्तराय दधारसम्यविदेचनम् । अक्षान्तस्य स्वधः स्वर्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥
मन्दामिं गौरवं कुर्याजनयेद्वा प्रवाहिकाभ् । अथवा पाचनेनैव वलासं चापि पाचयेत् ॥ २ ॥

विरेचन विधि—जो पुरुष स्तिंग द्वारा (स्नेह पान किया हो), जो स्विन्न हो (स्वेदकिशा किया हो) तथा जो वमन किया कर चुका हो उसे भली भाँति विरेचन देना चाहिये । जिसे वमन नहीं कराया गया हो और विरेचन करा दिया जावे तो उसका नीचे की तरफ गया हुआ कफ ग्रहणी को आच्छादित कर देता है और मन्दामिं, शरीर का भारीपन आदि करता है और प्रवाहिका भी उत्पन्न कर देता है । अथवा पाचन औषध से भी कफ को पचा देना चाहिये ॥ २-२ ॥
रिनग्रस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः स्विक्षस्य रेचनम् । शरहतौ वसन्ते च देहशुद्धौ विरेचयेत् ॥ ३ ॥

विरेचन योग्य पुरुष—जिसको स्नेह पान कराकर स्तिंग स्वेदन कर्म से स्विन्न किया गया हो उसको रेचन कराना चाहिये, और वसन्त ऋतु और शरद ऋतु में देह की शुद्धि के लिये विरेचन कराना चाहिये ॥ ३ ॥

अन्यदात्यधिके कार्यं स्वेदनं शीलयेद्बुधः । पित्ते विरेचनं युज्यादामोद्धते गदे तथा ॥ ४ ॥
उद्वरे च तथाऽऽध्माने कोष्ठशुद्धौ विरेचयेत् ।

परन्तु बुद्धिमान् वैष्य इससे अन्य अवस्था में भी आवश्यकता होने पर स्वेदन करा दे तथा पित्त के रोग और आम से उत्पन्न रोग में, उदर तथा अधमान में और विशेष कर कोष्ठशुद्धि के लिये विरेचन करावे ॥ ४-४३ ॥

दोषाः कदाचिक्युप्यन्ति जिता लक्ष्मनपाचनैः ॥ ५ ॥

ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरक्षयः ।

कदाचित् लक्ष्मन पाचन से दोष कुपित हो जाय किन्तु जो दोष संशोधन (वमन-विरेचन) द्वारा शुद्ध होते हैं उनकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ५-५३ ॥

बालवृद्धावित्तिं च विरेचनम् । इत्तद्विषयो भयानिवृत्तः ॥ ६ ॥

शान्तस्तुषात्तः स्थूलश्च गर्भिणी च वयवशी । नवप्रसूता नारी च मन्दामिश्र मदात्ययी ॥ ७ ॥
शस्यादितश्च रुक्षश्च न विरेचया विजातात् ।

विरेचन के अयोग्य पुरुष—जो बालक, बृद्ध, अति स्तिंग (जिन्हें स्नेह अधिक दिया गया हो), भत्ताले, क्षीण, जिन्हें अधिक भय हो, थके हुए, प्यासे, स्थूल, गर्भिणी, नये उत्तर वाले, नवप्रसूता खी, मन्दामिं के रोगी, मदात्यय वाले, शस्य-शस्यादि से पीड़ित और रक्ष शरीर वाले हों उन्हें वैष्य विरेचन नहीं करावे ॥ ६-७३ ॥

जीर्णउवरी गरवद्यासो वातरकी भयान्दहरी ॥ ८ ॥

अर्णांपाण्डुवरग्रन्थिद्वारोगास्त्रिपीडितः । योनिरोगप्रमेहातों गुरुमधीहृष्णादितः ॥ ९ ॥

विद्धिधिक्षुर्दिविशिष्टफोटविसूचीकुष्टसंयुतः । कण्ठनासाशिरोवक्त्रगुरुमेहामयानिवृत्तः ॥ १० ॥
शुष्मितोपाचिरोगात्तः कुमितारानलादितः । शुलिनी मूरुव्रातार्ता विरेचकार्हा नरा मताः ॥ ११ ॥

विरेचन के योग्य पुरुष—जो जीर्णउवर वाले, विष से व्यास, वातरक्त या भगन्दर वाले, अर्ण, पाण्डु, उदर, ह्रदोग और अस्त्रिय की पीड़ा वाले, योनि रोग, प्रमेह, गुरु, प्लीहा और व्रण की पीड़ा वाले, विद्धि, वमन, विस्फोट, विसूचिका, कुष्ट, कण्ठ, नासिका, सिर, मुख, गुदा, शिशन के रोग वाले, प्लीह, शोथ, नेत्र रोग वाले, कुमि, क्षार और वायु की पीड़ा वाले, शूल और मूत्राधात की पीड़ा वाले हों वे मनुष्य विरेचन के योग्य शास्त्र में कहे गये हैं ॥ ८-११ ॥

अथ रेचनम् ।

एरण्डतैतलं त्रिफलाकारेन द्विगुणेन च । युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा न विरेण विरिचयते ॥ १ ॥

रेचन योग—एरण्ड तैलं द्विगुण त्रिफला के काथ में मिलाकर पीने से अथवा दूध के साथ मिलाकर पीने से शीघ्र विरेचन होता है ॥ १ ॥

श्रिवृता कौटंज बीजं पिष्पली विश्वभेषजम् । समृद्धीकारसं चौदं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ २ ॥

निशोथ, कुटंज बीज, पीपरि, सौंठ, मुनका का रस और मधु मिलाकर वर्षा ऋतु में विरेचन देना चाहिये ॥ २ ॥

श्रिवृद्धुशालमा मुस्ता शक्करोदीध्यचन्दनम् । द्राष्टाम्बुद्धा स्वयच्याहं शीतलं च व्यासये ॥

निशोथ, दुरालमा (जवासा), नागरमोथा, शकर, सुगन्धवाला, लाल चन्दन, मुनका, जेठी मधु इनका काथ शरद ऋतु में विरेचनार्थ सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

पिष्पलीं नाशरं सिन्धुं श्यामा च श्रिवृता सह ।

लिहेरक्षीद्वेष शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् । श्रिवृता शकरातुलया ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ ४ ॥

पीपरि, सौंठ, सेन्धा नमक, श्यामा (काली निशोथ) और निशोथ का चूर्ण मधु के साथ शिशिर और वसन्त ऋतु में विरेचनार्थ सेवन करना चाहिये । निशोथ और उसके बराबर शकर मिलाकर ग्रीष्म ऋतु में विरेचन के लिये देना चाहिये ॥ ४ ॥

अन्धान्तरे—एरण्डतैल यवने विरेचन द्राष्टाम्बुद्धा शूलं तथैव ।

काथः कफे श्रेष्ठफलों गुडेन दुर्घाभया सर्वमलं तथैव ॥ ५ ॥

अन्धान्तर की विरेचन विधि (योग)—वात के प्रकोप में एरण्ड तैल से, पित्त के प्रकोप में मुनका, दूध, जल और घृत से तथा कफ के प्रकोप में त्रिफला के काथ में गुड मिलाकर विरेचन

योगरत्नाकरः ।

करना चाहिये । सब प्रकार के दोष दूर करने के लिये दुष्प्र के साथ हर्ष के प्रयोग से विरेचन करना चाहिये ॥ १ ॥

अन्यच—पिण्डलीमूलमभया द्विगुणोत्तरम् । चूर्णमुष्णाम्बुना पेणं स्वस्ये सुखविरेचनम्॥

और भी—स्वस्थ पुरुष के लिये पीपरि, पिपरामूल, हर्ष उत्तरोत्तर द्विगुण अर्थात् पीपरि से द्विगुण पिपरामूल और पिपरामूल से द्विगुण हर्ष का चूर्ण उष्ण जल से पीने से सुखकर विरेचन होता है ॥ १ ॥

अन्यच—पादमद्वकण्ठहस्तैः पथ्या त्रिवृतं च नाशरं लक्षणम् ।

निष्कथितपीतसारं नरपतियोग्यं विरेचनं भवति ॥ १ ॥

अन्य सुखकर विरेचन—(पादमद्वकण्ठहस्तैः)^३ हरीतकी, निशोथ, सौंठ, सेधा नमक का काथ कर निकाला हुआ सार पदार्थ राजाओं (अत्यन्त सुकुमारों) को पिलाने के योग्य सुखकर विरेचन होता है ॥ १ ॥

अन्यच—प्रपथ्यासैन्धवकणाचूर्णमुष्णाम्बुना सह । एतज्ञाराचकं स्थातं रेचनं च हितावहम् ॥

और भी—पथ्या (हरीतकी), सेन्धा नमक, पीपरि का चूर्ण उष्ण जल से देने से हितकर रेचन होता है और इसे 'नाराचक' कहते हैं ॥ १ ॥

अन्यच—वशम्बुना देशमाख्यवीजीं सुवर्णमित्रं कुमुसाभिधानम् ।

विचित्रविद्याभरनामकोडयं मलं विना मुक्तिं चाऽऽममेव ॥ १ ॥

और भी—त्रेफला के रस से इन्द्रजौ, सुहांगा, लौग इसका चूर्ण सेवन करने से विना मल के आम निकल जाता है । इसका नाम 'विचित्रविद्याधर' है ॥ १ ॥

अथ मेघनादरेचनरसः ।

दरदं टक्कणं चैव सैन्धवं च कटुत्रयम् । त्रिफला हारहूरा च कूमिङ्गं रामटं तथा ॥ १ ॥

दृश्युर्दीप्यं समानं च दृनी सर्वद्वयाभासिका । जग्धीरवारा सम्भर्यं चणकस्य ग्रस्माणतः ॥२॥

उष्णोदकानुपानेन कृद्याभान्तं विरेचनम् । तस्योपरि हितं देयं पथ्यं दध्योदनं परम् ॥३॥

उद्दो पाण्डुशोके च शोफोदरजलोदरे । सर्वज्वरे च विषमे मेघनादः प्रशस्यते ॥ ४ ॥

मेघनाद नामक रेचन रस—हिङ्गुल, टक्कण, सेधा नमक, त्रिकटु (सोंठ-पीपरि-मरिच), त्रिफला, हारहूरा (मुनका), वायभिरंग, हींग और दस्यु (चोरक), दीप्य (अजवाइन) सब समान भाग तथा सबके आधा दन्ती का चूर्ण मिलाकर जग्धीरी नीबू के रस के साथ मर्दन कर चने के प्रमाण की गोली बनाकर उष्ण जल के अनुपान से लेने से कृस्यामान्त (त्रिभिं से लेकर आम तक का) विरेचन होता है और इसके ऊपर हितकर पथ्य दही-भात आदि देना चाहिये । उदर-पाण्डु-शोथ-शोथोदर-जलोदर-सर्वज्वर और विषम ज्वर में यह मेघनाद रस लाग्नकारक कहा गया है ॥ १-४ ॥

पीतवा विरेचनं शीतजलैः संसिद्धं चक्षुषो । सुगन्धिं किञ्चिदाद्याय ताम्बूलं शीलयेद्वरम् ॥१॥
न वातस्थो न वेगांश्च धारयेत्त्वं चक्षुपेत्त्वा । शीताम्बु न सृष्टोरकापि कोणं नीरं पिवेत्तरः ॥२॥

विरेचन की विधि—विरेचन पीकर शीतल जल से नेत्रों को धोकर थोड़ी सुगन्धि सूख कर ताम्बूल खावे, बायु सेवन न करे, वेगों को न रोके, सोबे नहीं, शीतल जल का स्पर्श भी नहीं करे और किञ्चित् उष्ण जल पीवे ॥ १-२ ॥

इन्द्रियाणां बूलं बुद्धः प्रसादो वहिदीपता । धातुस्थैर्यं चयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥ ३ ॥

विरेचन का फल—विरेचन कराने से हन्दियों में बल, बुद्धि में निर्मलता, अभिनवृद्धि, धातुओं और आयु की स्थिरता आदि होती है ॥ ३ ॥

प्रवातसेवा शीताम्बु द्वेष्टाम्बुमजीर्णताम् । व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥४॥

विरेचन करने वालों के लिये अपथ्य—विरेचन लिया मनुष्य बायुसेवन, शीतल जल, तैल-मङ्ग, अजीर्ण होने योग्य भोजन, व्यायाम और मैथुन को नहीं करे ॥ ४ ॥

शालिषष्टिकमुद्राधैर्यवार्णं भोजयेत् कृताम् । जाङ्गलैर्विकिकशार्णं वा रसैः शास्थोदनं हितम् ॥५॥

पथ्य—शालिषष्टिक, शाली और मूँग आदि का यवागू बनाकर भोजन करे, जाङ्गल जीव और धिकिकर (विषेरकर खाने वाले), पक्षियों का भासरस एवं शालिषष्टिक का भात भोजन करना विरेचन लिये व्यक्ति के लिये हितकर है ॥ ५ ॥

विरेकस्थाविवेगेन मूर्च्छां अंशो गुदस्य च । शूलं कफातियोगः स्थानसांसधावनसञ्चितम् ॥

मेदोनिभं जलाभासं रक्तं वाऽपि विरिचयते ।

अत्यन्त विरेचन कराने के दीप्य—विरेचन के अधिक होने से मूर्च्छा और गुदप्रश्न तथा शूल रोग होता है, कफ का अतियोग, मांस के धीवन, मैदं, जल अथवा रक्त की भाति मले निकलता है ॥

तस्य शीताम्बुभिः सिवर्वा शरीरं तद्वृलाम्बुभिः ॥

सहकारत्वचाकलो दधना सौवीरकेण वा । पिष्टा नाभिप्रलेपेन इन्त्यतीसारमुलवणम् ॥६॥

अधिक विरेचन की शामक विधि—अधिक विरेचन होने पर शरीर को शीतल जल या चावल के धोवन से सिंचन करना चाहिये और सहकार (बूम) की त्वचा का कल्प, दही वा सौवीर के साथ पीसकर नाभि-स्थान में लेप करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ अतीसार नष्ट होता है । इसे अधिक विरेचन होने में वा उल्वण अतीसार में देना चाहिये ॥ ७-८ ॥

अथ नस्यम् ।

नस्य विषेयं गुडनागरेण जलेन वा सैन्धवपिण्डलीभ्याम् ।

ग्राणास्थमन्याहृनुबाहुष्टु-शिरोडक्षिकण्ठश्रवणामयेषु ॥ १ ॥

नस्य की विधि—ग्राण, मुख, मन्त्र, हतु, बाहु, पृष्ठ, सिर, नेत्र, कण्ठ और कर्ण के रोग में नस्य की विधि कही गयी है । नस्य द्रव्य के चूर्ण जल और गुड मिलाकर अथवा सेधा नमक और पीपरि के चूर्ण में जल मिला कर नस्य देना चाहिये ॥ १ ॥

शुस्फवयथयवा स्नाते नस्यं योदयं न कर्विचित् । कृते नस्ये शिरःस्नानं क्लोधादीक्ष विकर्जयेत् ॥

नस्य के अयोग्य व्यक्ति—जो भोजन कर चुका हो अथवा स्नान कर चुका हो वहे कभी नस्य नहीं देना चाहिये । नस्य के उपरान्त वर्जित कर्म—नस्य लेने पर सिर से स्नान तथा कोधादिक नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ कर्णपूरणम् ।

रसादैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक् प्रशस्यते । तैलादैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ १ ॥

कर्णपूरण विधि—रसादिकों से यदि कर्णपूरण करना हो तो भोजन के पहले करना चाहिये । और यदि तैलादिक से पूरण करना हो तो सूखारस्त के पश्चात् करना चाहिये ॥ १ ॥

स्वेदयेत् कर्णदेशं तु परिवर्तनशायिनः । मूत्रैः स्नेहे रसैः कोणैः पूरयेत् ततो भिषक् ॥ २ ॥

प्रथम परिवर्तनशायी होकर कर्ण प्रदेश का स्वेदन करना चाहिये तब मूत्र-स्नेह रस आदिक को किञ्चित् उष्ण करके कान में छोड़ना चाहिये ॥ २ ॥

स्वस्थस्य पूरणे स्नेहैर्मात्राशतभवेदने । शतत्रयं श्रोत्रश्च रोगे तथैव च ॥ ३ ॥

कर्णपूरण की मात्रा (समय)—स्वस्थ पुरुष के लिये कर्ण पूरण में स्नेह पदार्थ की मात्रा बिना पीड़ा के सौ बार तक गिना जा सके तब तक की जानती चाहिये । कर्ण के रोग तथा सिर के रोग वाले के लिये तीन सौ की गिनती के समय तक कर्णपूरण रखना चाहिये ॥ ३ ॥

कर्ण प्रपूरयेस्मयक द्वेष्टायैर्मात्रयोक्त्या । नोच्चैः श्रुतिं वाबियं स्याक्षित्यं कर्णपूरणात् ॥४॥

युग—कथित मात्रा के अनुसार स्नेहादिकों से कर्णपूरण करना चाहिये । नित्य इस प्रकार कर्णपूरण करने से कम सुनना या बविरता आदि नहीं होती है ॥ ४ ॥

अथ मात्रा ।

दद्वजानुकरावर्तश्छोटिका वाऽङ्गुलिद्वयात् । निमिषोन्मेषकालो या वस्तौ मात्रा कृता बुधैः ॥

मात्रा—दाहिने और के बुटने के ऊपर दक्षिण हस्त एक बार फेरने में या दो अङ्गुलियों से चुटकी बजाने या पलक बन्द करने और खोलने में जितना समय लगता है उतने समय का काल १ मात्रा काल कहलाता है । यह वर्णित और पूरण के विषय में विद्वार्नों ने मात्राकाल कहा है ॥

अथ रक्तसुतिः ।

शरकाले स्वभावेन कुर्याद्वक्षुतिं नरः । स्वग्रोषग्रन्थिशोथादा न रथू रक्तसुतो यतः ॥ १ ॥

रक्तमोक्षण विधि—शरद ऋतु में मनुष्य को स्वभावतः रक्तमोक्षण कराना चाहिये । इससे त्वचा का दोष अन्तिशोथादिक रक्तज दोष नहीं होते हैं ॥ १ ॥

हन्द्रगोपनिभं ज्येष्ठं प्रकृतिश्यमसंहतम् । शोथे दाहेऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽसुजः सुतौ ॥ २ ॥

शुद्ध रक्त के लक्षण—रक्तमोक्षण के उपरान्त रक्त यदि इन्द्रगोप (बीरबहुटी की) भाँति लाल तथा पतला दिखाई देवे तो प्रकृतिश्य जानना चाहिये । शोथ, दाह और अङ्गपाक में खुल निकलवाने पर जब पतला तथा लाल रंग का रक्तस्नाव हो तब ठीक रक्तस्नाव हुआ ऐसा समझना चाहिये ॥ २ ॥

वातरक्ते तथा कुष्टे सपीडे तुर्जयानिले । पाणिरोगे श्लीपदे च विषहुष्टे च शोणिते ॥ ३ ॥

ग्रन्थ्यर्त्तुदापचीचुद्रोगरक्ताधिमन्थु । विदारीस्तनभोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥ ४ ॥

रक्ताभिष्यन्दतन्द्राधार्यां पूतिद्वाणास्यदाहके । यकृष्टलीहविसर्पेषु विद्रधै पिटकोद्भूमे ॥ ५ ॥

कर्णेष्ट्रियाणवक्त्राणां पाके द्वाहे शिरोरुजि । उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्नावः प्रशस्यते ॥ ६ ॥

किस २ रोग में रक्तमोक्षण कराना चाहिये—वातरक्त, कुष्ट, पीड़ा देने वाली तुर्जय वायु, पाणिरोग, श्लीपद, विषहुष्टि (विष के दोष), रक्ताभिष्यन्द, अन्ति, अर्बुद, अपची, क्षुद्रोग, रक्त अधिमन्थ, विदारी रोग, स्तनरोग, गात्रसाद, गात्रगौरव, रक्ताभिष्यन्द, तन्द्रा, पूतिनासा, पूतिमुख (नासा तथा मुख से दुर्घान्ध आना), दाह, यकृत प्लीहा, विसर्प, विद्रधि, पिटिका का उद्भव, कर्ण, ओढ़, ग्राण और मुख के पाक, दाह, सिर की पीड़ा, उपदंश और रक्तपित्तादि में रक्तमोक्षण उपयुक्त कहा गया है ॥ ३-६ ॥

गोश्चूलेण जलौकाभिरलाभुभिरपि त्रिधा । वातपित्तकफूर्द्धं शोणितं च्चावथेद बुधः ॥ ७ ॥

विधि—गौ के सींग (सिंधी), जलौका और अलादू (तुम्बी) इन तीन प्रकारों से वात, पित्त और कफ के विकार में रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ७ ॥

हिंदोषाद्यां च संदुष्टं त्रिदोषेरपि दूषितम् । शोणितं च्चावथेद्यक्त्या सिरामोक्तैः पद्वैस्तथा ॥

दो द्वारों के द्वारा दूषित होने में अथवा त्रिदोष की दुष्टि में भी युक्तिपूर्वक सिरामोक्षण (नस काट कर) के द्वारा तथा पद के द्वारा अर्थात् पांछ लगाकर रक्तस्नाव कराना चाहिये ॥ ८ ॥

गृह्णाति शोणितं श्वङ्गं दशाङ्गुलमितं बलात् । जलौका हस्तमात्रं तु तुम्बी च द्वादशाङ्गुलम् ॥
पदमङ्गुलमात्रं स्वासिरा सर्वाङ्गिशोधिनी ।

सिंधी दस अङ्गुल तक के स्थान के रक्त को बलपूर्वक खींचती है, जलौका एक हाथ तक के रक्त को खींचती है, तुम्बी बारह अङ्गुल तक के रक्त को खींचती है, पद (पाछ) एक अङ्गुल स्थान तक के रक्त को खींचती है और सिरामोक्षण सम्पूर्ण अङ्गों का शोथन करती है ॥ ९-१० ॥

शीतोपचारैः कुपिते च्छतरक्षस्य माखते ॥ १० ॥

कोष्णेन सपिषा शोथं शानकैः परिषेष्यते ।

अति रक्तमोक्षणोपरान्त की विधि—यदि रक्तमोक्षण के पश्चात् शीतोपचार करने से वायु कुपित हो तो किञ्चित् उष्ण घृत से शोथादि जो हों उन्हें सेकना चाहिये ॥ १०-१०१ ॥

चीणस्यैणशाश्वोरभृहिणश्चागमांसजः ॥ ११ ॥

रसः समुचितः पाने रुदीं वा षष्ठिका हिताः ।

पथ्य—रक्तमोक्षण से क्षीण पुरुष को एण (मृग विशेष), खरहा, भेड़, हरिण और छाग के भास का रस पान करने अथवा श्लीर और साठी का चावल खाने में हितकर है ॥ ११-१११ ॥

द्यायाममैथुनक्षेष्यधशीतस्वानप्रवातकान् ॥ १२ ॥

एकासनं दिवा निद्रां चाशास्त्रकुभोजनम् । शोकं वाऽमृदीर्णं च त्यजेष्यावद्वलं भवेत् ॥ १३ ॥

रक्तमोक्षण में वर्जित कर्म—रक्तमोक्षण किया व्यक्ति व्यायाम, मैथुन, क्रोध, शीतल जल से स्नान, तेज वायु का सेवन, एकासन अर्थात् एक कर बैठना, दिन में सोना, क्षार-अम्ल और फटु पदार्थ का भोजन, शोक, वादाविवाद और अजीर्ण होनेवाले कर्म को त्याग देवे जब तक कि पूर्ण बलवान नहीं हो जावे ॥ १२-१३ ॥

इति वमन-रेचनादिकथनम् ।

अथ शब्दपरिभाषाकथनम् ।

तत्र सहेतुकान् सलक्षणान् करिचिद्विकारानाह—

सुष्टुते तन्द्रालक्षणम्—इन्द्रियार्थेष्वसंविचित्योर्वं जम्भाणं कुमः ।

निद्रात्संवेद यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

शब्द परिभाषा प्रकरण—हेतु और लक्षण के साथ कुछ विकारों को कहते हैं । सुष्टुत के भत से—तन्द्रा लक्षण—जब अपने २ विषयों को ग्रहण करने में इन्द्रियों असमर्थ हो जावे अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अवणादि के ग्रहण में असमर्थता हो जावे, श्लीर भारी हो जावे, जम्भार्थ आवे, छान्ति सालम हो और निद्रा से आतुर के समान चेष्टाये हों इस प्रकार के लक्षण जिसके शरीर में हो जावे तब उसे 'तन्द्रा' समझनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ जम्भालक्षणम् ।

पीरवैकमनिलोद्धाससुद्धमेद्विवृताननः । यं सुञ्चति सनेत्राश्च स जम्भस इति संज्ञितः ॥ १ ॥

जम्भा लक्षण—जब मुङ्ग से वायु के एक उच्छ्वास को पीकर उन्हें उसे मुङ्ग खोलकर बाहर घमन की भाँति निकाले और उस वायु के निकालते समय नेत्रों में आँख सू आजावे तो उस शरीर की क्रिया को 'जम्भा या जम्भार्थ' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ कुमः ।

योऽनायासश्रमो देहे प्रवृद्धशासवर्जितः । कुमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रवासकः ॥ १ ॥

कुम लक्षण—जब शरीर में बिना परिश्रम के ही श्रम मालूम हो, श्वास में भी वृद्धि नहीं हो, इन्द्रियों के विषय-अवृण में वाधा पहुंचती हो तब इस प्रकार के शरीर के लक्षण को 'कुम' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ क्षवथुः ।

प्राणोदानौ समौ स्यात् सूर्विन् स्त्रोतः पथे स्थितौ ।
नस्तः प्रवर्तते शब्दः क्षवथुं तं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

क्षवथु लक्षण—प्राण और उडान वायु दोनों समान रूप से जब शिरोभाग में जाकर स्त्रोतों एवं अर्थात् मुख, नाक, नेत्रादि के मार्ग में स्थित हो जाते हैं (रुक जाते हैं) और रुककर निकलते समय नासिका द्वारा शब्द करते हैं तब उसे (उस शरीर की अवस्था को) 'छीक' (छिका) कहते हैं ॥ १ ॥

अथाऽलस्यम् ।

सुखस्थर्प्रसङ्गित्वं दुःखद्वेष्ट्यलोकता । शक्तस्य चायनुन्ताहः कर्मस्वालस्यसुच्यते ॥ १ ॥

आलस्य लक्षण—जिसके शरीर में जब सुखदायक स्पर्श की ओर भी रुचि नहीं हो, दुःख से दृष्ट करने में भी अन्यमनस्कता हो, शक्तियुक्त होते हुए भी किसी कार्य के करने में उत्साह न हो, तब उस शरीर की अवस्था को 'आलस्य' कहते हैं ॥ १ ॥

अथोत्क्लेशः ।

उत्क्लेश्यात्मं न निर्गच्छेत् प्रसेक्षित्वात्तेषितम् । हृदयं पीड्यते चास्य तमुक्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

उत्क्लेश लक्षण—जी के मन्त्रलाने पर भी और सुह से पानी या थक आदि के गिरने पर भी अर्थात् इन (बमन के पूर्व) लक्षणों के होते हुए भी बमन नहीं हो, और हृदय में पीड़ा हो, ऐसी शरीर की अवस्था को 'उत्क्लेश' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ ग्लानेर्लक्षणम् ।

चक्षे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्देष्टनं भ्रमः । न चान्यदभिकाञ्जेत रक्तान्ति तस्य विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

ग्लानि—जब मुख में मधुरता, तन्द्रा, हृदय में पीड़ा और भ्रम हो, और किसी वस्तु की ओर इच्छा न हो अर्थात् अन्यमनस्कता हो तब ऐसे लक्षण जिसके शरीर में हों उसे 'ग्लानि' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ गौरवम् ।

आद्रं चर्मावनदं च यो गात्रं मन्यते न रः । तथा गुरु शिरोऽस्थर्थं गौरवं तद्विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

गौरव लक्षण—जिस मनुष्य का शरीर भीगे हुए चर्म से आवृत की भाँति मालूम पड़े तथा सिर अत्यन्त भारी मालूम पड़े उस शरीर की अवस्था को 'गौरव' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ हृल्लासलक्षणम् ।

हृल्लासो हृदयादीषद्यथः पट्टवस्त्रुनिर्गमः ॥ १ ॥

हृल्लास लक्षण—जिसके हृदय में कुछ पीड़ा के साथ मुख से लवण रस युक्त जल का स्राव हो उस शरीर की अवस्था को 'हृल्लास' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ हेमाद्रौ उवरादिरोगोदेशः ।

उवरातिसारौ महणी द्यात्मोऽजीर्ण विसूचिका । सालसा च विलग्वी च कृमिरुक्पाण्डुकामलाः ॥
हलीमकं रक्षितं राजथम्भा उरःस्तम् । कासो हिका तथा श्वासः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥ २ ॥

कृदिस्तुष्णा च मूर्छां च तथा पानात्ययादयः । दाहाख्यश्च तथोन्मादो ह्यपस्मारोऽनिलामयः ॥
वातरक्तमूहस्तम्भ आमवातोऽथ शुलस्क् । पक्षिजं शुलमानाह उद्वावर्तोऽथ गुरुमङ्कः ॥ ३ ॥
हृदोगो मूर्छकृच्छं च मूत्रावातस्तथाऽस्मरी । प्रमेहो मधुमेहश्च विदिकाश्च प्रमेहज्ञाः ॥ ५ ॥
मेदोदोषोद्वर्द्धं शोथो वृद्धिक्ष गलगण्डकः । गण्डमालाऽपच्ची ग्रन्थिरुद्वं श्लीपदं तथा ॥ ६ ॥
विद्रिश्विर्णशोथश्च हृद्वाणा अभ्यनादिकौ । भग्नदोपदंशी च शुक्रदौषस्वयगामयः ॥ ७ ॥
शीतपित्तमुद्वर्द्धश्च उत्कोठश्चाङ्गपित्तकम् । विसप्तश्च सविस्फोटस्तथैव च मधुरिका ॥ ८ ॥
ज्वादस्थकर्णासाऽधिक्षिरः ज्वालाकामयाः । विषं चेत्येवमुहेशः संग्रहेऽस्मिन् प्रकीर्तिः ॥ ९ ॥

इसादि से ज्वरादि रोगी की गणना जो कि इस अन्ध में है—ज्वर, अतीसार, यहणी, अर्श, अजीर्ण, विसूचिका, अलसक, विलग्वी, छुमि, पाण्डु, कामला, हलीमक, रक्तित्त, राजथम्भा, उरःशतः, कास, हिका, श्वास, स्वरभेद, अरोचक, छुदि, तृष्णा, मूर्छा, पानात्यय, दाह, उम्माद, अपस्मार, वातव्याधि, वातरक्त, उरुस्तम्भ, आमवात, शूल रोग, परिणाम शूल, आनाह, उद्वावर्त, गुलमरोग, हृद्रोग, मूर्छकृच्छ, मूत्रावात, अश्मरी, प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिटिका, मेद रोग, उदर, शोथ, वृद्धि, गलगण्ड, गण्डमाला, अपच्ची, ग्रन्थि, अर्द्ध, श्लीपद, विद्रिथ, व्रण-शोथ, भग्न और नाडीसंक्षक दो त्रण, भग्नदर, उपरंशा, शुक्रदोष, त्वचादोष, शीतपित्त, उदर्द, उत्कोठ, अम्लपित्त, विसप्त, विस्फोटक, मधुरिका, शुक्रदोष, मुखरोग, कण्ठरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, छीरोग, वालरोग और विषरोग आदि इन रोगों का इस योगरत्नाकर अन्ध में स्वामाविक संग्रह है ॥ १-९ ॥

अथ क्रमप्राप्तं प्रथमं ज्वरलक्षणम् ।

दुष्प्राप्तमानसंकुद्धद्वनिःश्वाससम्भवः । ज्वरोऽष्टधा पृथग्नृद्वसंधातागम्भुजः स्मृतः ॥ १ ॥

क्रमप्राप्त प्रथम ज्वर रोग का लक्षण—ज्वर की उत्पत्ति—दक्ष प्रजापति के अपमान से क्रोधित हुए शक्त भगवान् के व्यास से उत्पन्न हुआ ज्वर पृथग्नृद्वसं (अलग २ वात, पित्त और कफ के दोष का), द्वन्द्वज मेद ३ (दो दो दोषों वात-पित्त, वात-कफ और पित्त-कफ के दोषों का), सांघातिक मेद (संनिपात के कारण का) १ और आग्ननुज मेद १ (प्रहार, घात, श्रमादि के कारण का), इस प्रकार से आठ प्रकार का कहा गया है ॥ १ ॥

ज्वरन्ध संप्राप्तिमाह—मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।

बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ २ ॥

ज्वर की सम्प्राप्ति—मिथ्या (विपरीत) आहार-विहार से कुपित हुए आमाशय में रहने वाले वातादिक दोष रस धातु के अनुग्रामी होकर कोष्ठ की अश्वि को बाहर कर शरीर तपा देते हैं उसी को 'ज्वर' कहते हैं ॥ २ ॥

पूर्वरूपमाह—अमोऽरतिविवर्णत्वं वैरस्य नयनप्रूपः । इच्छाद्वैष्ट्रै मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥
ज्वरभादङ्गमर्द्धो गुरुता रोमहर्षोऽहस्तिरस्तमः । अप्रहृश्च शीतं च भवन्त्युत्प्रस्यति उवरे ॥ ३ ॥

ज्वर के पूर्वरूप—ज्वर उत्पन्न होने के पूर्व ये सब लक्षण दिखाई देते हैं, जिन्हें ही थकावट मालूम होते, किसी वस्तु की ओर इच्छा न होते, शरीर का दर्ण बदल जाते, सुख का स्वाद अच्छा नहीं लगता, नेत्र आँसू से भरने लगते, शीत, वायु और जलमा की बार-बार इच्छा हो और बार बार उससे द्रेष मालूम पड़े, जम्भाई आवे, अङ्ग द्रूढ़े, शरीर भारी मालूम पड़े, रोमाद्ध होते, भोजन की इच्छा न रहे, आँखों के सामने अन्धेरा दिखाई पड़े, भन की प्रसन्नता नष्ट हो जाते, और जाड़ा मालूम होते । ये सब लक्षण होने वाले ज्वर के होते हैं ॥ ३-४ ॥

सामान्यतो विशेषात् जग्माऽस्यर्थं समीरणात् । पित्तास्यनयोदीहः कक्षाशास्त्राभिनन्दनम् ॥

उपर्युक्त लक्षण सामान्य लक्षण हैं, विशेष लक्षण वातादि दोषों के भेद से इस प्रकार हैं कि-वायु से उत्पन्न होने वाले ज्वर के पूर्व जग्माई अधिक लगती है, पित्त से उत्पन्न होने वाले ज्वर के पूर्व नेत्र में दाह होता है और कफ से उत्पन्न होने वाले ज्वर के पूर्व अन्न में अरचि होती है ॥५॥

सर्वलिंगसुचक्षायः सर्वदोषप्रकोपजे । रूपैरन्यतराभ्यां तु संस्पर्शेन्द्रजं विदुः ॥ ६ ॥

और सब दोषों (वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों) से उत्पन्न होने वाले ज्वर के पूर्व में उपर्युक्त सभी लक्षण अर्थात् जग्माई, नेत्र में दाह और अन्न में अरचि ये सब होते हैं । तथा संसर्गज अर्थात् दो-दो दोषों (वात-पित्त, वात-कफ और पित्त-कफ) से होने वाले ज्वर के पूर्व संसर्गज अर्थात् दो-दो दोषों बालों में (जग्माई-नेत्रदाह, जग्माई-अन्न में अरचि और नेत्रदाह तथा अन्न में अरचि) लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

अथ सामान्यज्वरलक्षणम् ।

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गहणं तथा । युगपद्यन्त रोगे तु स उवरो ध्यपदिश्यते ॥७॥

ज्वर के सामान्य लक्षण—जिस रोग में स्वेद (पसीना) का अवरोध हो जाय अथवा स्वेद (अश्वि) मन्द हो जाय, शरीर तप जाय और सम्पूर्ण अङ्ग जकड़ जावें ये सब लक्षण एक साथ ही जावे तो उसे 'ज्वर कहा जाता है' ॥ ७ ॥

अथ वातज्वरलक्षणम् ।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठोष्टुख्यशोचनम् । निद्रानाशः उच्चस्तम्भो गात्राणां रौचयमेव च ॥१॥
शिरोहृद्वात्रस्वक्ष्रवैरस्यं वद्यविट्कता । शूलाध्माने जड्मणं च भवन्यनिलजे उवरे ॥२॥

वातज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में शरीर में कम्प हो, ज्वर का वेग कभी कम रहे, कभी अधिक हो जावे, कण्ठ, ओठ और सुख सूख जावे, नींद न लगे, छींक नहीं आवे, शरीर रुक्ष हो जावे, सिर, हृदय और सम्पूर्ण अङ्गों में पीड़ा होवे, सुंह का स्वाद विगड़ जावे, मल रुक जावे, शूल हो, पेट फूल जावे और जग्माई आवे ये सब लक्षण यदि हों तो उसे 'वात ज्वर' कहते हैं ॥१-२॥

अथ पित्तज्वरलक्षणम् ।

वेगस्तीच्छोऽतिसारश्च निद्रालपत्वं तथा वसिः । कण्ठोष्टुख्यनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृष्टा । पीतविषमूत्रेनेत्रवक्त्रपैत्तिके अम् एव च ॥२॥

पित्तज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में ज्वर का वेग तीव्र हो, अतीसार हो, निद्रा कम लगे, बमन हो, कण्ठ, ओठ, मुख और नासा में पाक हो जावे अर्थात् व्रण की भाँति पक जावे, पसीना अधिक हो, प्रलाप (अनर्गल वार्ता) हो, मुख का स्वाद कटु हो जाय, मूर्च्छा हो, दाह हो, मद हो, तृष्टा हो, मल-मूत्र-नेत्र और त्वचा पीत वर्ण की हो जावे और अम हो तो उसे पैत्तिक ज्वर कहते हैं ॥ २-२ ॥

अथ श्लेष्मज्वरलक्षणम् ।

स्वैरित्यं रितमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता । शुक्लमूत्रुरीतिनिद्रता । ज्ञोतोरोधो विद्वलपत्वं प्रसेको बहुमूत्रता ॥ २ ॥
नास्युणगात्रात् छर्दिरप्रिसादोऽविषाकता । प्रतिश्यायोऽविषिः कासः कफज्वरक्षणोश्च शुक्लता ॥

कफज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में शरीर पर जल से भीता हुआ बल लपेटा गया हो ऐसा जान पड़े, ज्वर का वेग मन्द हो, आलस्य मालूम पड़े, सुंह भीड़ा मालूम हो, मूत्र-मल-त्वचा ये

श्वेत वर्ण के हो जावें, शरीर जकड़ जावे, भोजन से तुसि होना अर्थात् अनिन्द्या होना पेट भरा सा हो, शरीर सारी हो, ठंडा मालूम हो, उबकाई हो, रोमाङ्ग हो, निद्रा अधिक हो, नाड़ियों में रुकावट हो, मल अल्प हो, प्रसेक हो, मूत्र अधिक हो, शरीर अत्यन्त उष्ण न हो, बमन हो, अग्नि मन्द हो, भोजन का पाक न हो, प्रतिश्याय (सर्दी) हो, अरुचि हो, कास हो और नेत्र श्वेत वर्ण के हों उसे कफज्वर कहते हैं ॥ १-२ ॥

अथ वातपित्तज्वरलक्षणम् ।

तृष्णा मूर्च्छा अमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोहृजा ।

कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । पर्वभेदव्युत्तम्भां च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ १ ॥

वात-पित्त ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में तृष्णा, मूर्च्छा, अम, दाह, निद्रानाश, सिर में पीड़ा, कण्ठ और मुख में शोष, बमन, रोमाङ्ग, अरुचि, नेत्रों के सामने अन्धकार दीखना, शरीर के जोड़ों में दूटने की सी पीड़ा हो और जग्माई आवे उसे वात-पित्त ज्वर कहते हैं ॥ १ ॥

अथ वातश्लेष्मज्वरलक्षणम् ।

स्तैरित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च । शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १ ॥

वात-कफ ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में शरीर पर भीगा हुआ बल लपेटे जैसा जान पड़े, शरीर की सन्धियों में दूटने जैसी पीड़ा हो और निद्रा तथा शरीर सारी मालूम पड़े, सिर में भारीपन, सर्दी (नाक से कफ पिरे), कासु, पसीना नहीं होना, शरीर में दाह और ज्वर का वेग मध्यम हो उसे वात-कफ ज्वर कहते हैं ॥ १ ॥

अथ पित्तश्लेष्मज्वरलक्षणम् ।

लिसतिक्षास्थता तन्द्रा मोहः कासोऽहृत्यस्तुषा । मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

पित्त-कफ के लक्षण—जिस ज्वर में कफ सुंह में चिपका सा हो और स्वाद कड़ हो, तन्द्रा, मोह, कास, अरुचि, तृष्टा हो, और शीत्र २ दाह और शीत मालूम पड़े उसे पित्त-कफ ज्वर कहते हैं ॥ १ ॥

अथ सन्धिपातज्वरलक्षणम् ।

विरोधिकैरस्यापानैरजीर्णाभ्यसनेन च । व्यामित्रसेवनाच्चापि सन्धिपातः प्रकृप्यति ॥ २ ॥

संनिपात ज्वर के लक्षण—संनिपात के कुपित होने के कारण—विरोधी अन्न-पानादि करने से अजीर्ण और अध्यशन से, मिथ्रित पदार्थों के सेवन से संनिपात कुपित होता है ॥ १ ॥

चणे दाहः चणे शीतमस्थिसन्धिशिरोहृजा । साक्षाते कलुषे रक्ते निर्मुम्भे चापि लोचने ॥ २ ॥

सस्थनौ सहजौ कण्ठौ कण्ठः शूकैरिष्वाऽऽवृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽविर्भमः ॥

तद्वच्छीतं महानिद्रा दिवा जागरणं निशि । सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदोऽति नैव वा ॥

गीतनर्तनहास्यादिविकृतेहाप्रवर्तनम् । परिदृश्या खरस्पर्शा जिह्वा खस्त्वाङ्गता परम् ॥ ५ ॥

श्वीकनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मित्रितस्य च । शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ॥ ६ ॥

स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराहर्दानमरपद्मशः । कृशत्वं नातिगात्राणां प्रतंत कण्ठकूजनम् ॥ ७ ॥

कोटानी श्यावरकानीं मण्डलानीं च दर्शनम् । मूकत्वं छोतसां पाको गुह्यवसुदरस्य च ॥

चिरात् पाकश्च दोषाणां सन्धिपातज्वराकृतिः ॥ ८ ॥

सन्धिं लक्षण—जिस ज्वर में क्षण-क्षण में दाह और शीत मालूम हो, अस्थिसन्धियों और सिर में पीड़ा मालूम हो, नेत्र से जल गिरे, नेत्र का वर्ण धूसर या रक्त वर्ण हो जाय और वाहर

निकलने या टेढ़े जैसा हो जाय, कान में शब्द तथा पीड़ा हो, कण्ठ में सूजा (कटै) से घिरे हुए के समान हो, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, कास, थास, अरुचि और अम हो, शीत मालूम हो, दिन में अत्यन्त नींद लगे, रातमें जागे, सदा निद्रा ही लगे अथवा न लगे, अधिक प्रसीना हो अथवा पसीना ही न हो, गीत गावे, नाचे, विष्फीरत चेष्टा को करे, जीभ ले के समान हो जाय, स्पर्श में खरखरी हो, अङ्ग अत्यन्त ढील हो जाय, रक्त-पित्त और कफ मिल हुआ थूके, सिर इधर-उधर करता रहे, तृष्णा हो, निद्रा नष्ट हो जाय, हृदय में पीड़ा हो, पर्सीना-मूत्र और मल बहुत देर पर थोड़ा हो, शरीर अत्यन्त कृश न हो, निरन्तर कण्ठ में शब्द हो, शरीर पर कोठुक्क व्याम तथा रक्त वर्ण का मण्डल दिखाई देवे, बोली बन्द हो जावे, स्त्रोतों (नासिकादि) में पाक (पिण्डिका), उदर में भारीपन और वातादिक दोषों का पाचन बहुत दिनों में हो तो उसे 'सन्निपात ऊर' कहते हैं ॥ २-८ ॥

अथ ग्रन्थान्तरात् सन्निपातभेदाः ।

अम्लस्त्रिघोषातीष्टौः कटुमधुरसुरातापसेवाकथायैः

कामक्रोधातिरुक्तरपिशिताहारसौहित्यशीतैः ।

शोकव्यायामचिन्ताप्रहगणविनितारथन्तसङ्गप्रसङ्गैः

प्रायः कृप्यनित्पुंसां मधुसमयशरद्वर्षणे सन्निपाताः ॥ १ ॥

सन्निपात ऊर के कारण—अत्यन्त अम्ल, लिंगव, उष्ण, तीक्ष्ण, कटु, मधुर, सुरा, आत्पादि और कथाय रस आदि के सेवन करने से, अत्यन्त काम-क्रोध और रुक्ष, अत्यन्त गुरु तथा भासादिक आहार तथा सौहित्य (भर पेट) भोजन करने से, शीत, शोक, व्यायाम, चिन्ता, ग्रहवाधा, अत्यन्त ली-प्रसङ्गादि से प्रायः करके पुरुषों को वसन्त, शरद् और वर्षा ऋतु में सन्निपात (त्रिदोष) कुपित होते हैं ॥ १ ॥

तेषां तन्मान्तरे नामानि—सन्धिकश्चान्तकश्चैव रुद्गाहश्चित्तविभ्रमः ।

शीताङ्गस्तन्दिकश्चैव कण्ठकुब्जश्च कर्णकः ॥ २ ॥

विश्वातो भुम्नेत्रश्च रक्षीयी प्रलापकः । जिह्वकश्च्यत्यभिन्न्यासः सन्निपाताश्चयोदशः ॥ ३ ॥

ग्रन्थान्तर से सन्निपात के नाम—संविक-अन्तक-रुद्गाह-चित्तविभ्रम-शीताङ्ग-तन्दिक-कण्ठ-कुब्ज-कर्णक-भुम्नेत्र-रक्षीयी-प्रलापक-जिह्वक और अभिन्न्यास इस प्रकार तेरह प्रकार के सन्निपात विश्वात हैं ॥ २-३ ॥

तेषां दिनमर्यादामाह—सन्धिके वासराः सप्त चान्तके दश वासराः ।

रुद्गाहै विश्वतिर्ज्ञेया वद्धयष्टौ वित्तविभ्रमे ॥ ४ ॥

पचमेकं तु शीतांगे तन्दिके पञ्चविभ्रमितः । विज्ञेया वासराश्चैव कण्ठकुब्जे अयोदशः ॥ ५ ॥

कर्णके चं द्रयो मासा भुम्नेत्रे दिनाष्टकम् । रक्षीयीविनि दित्यव्याप्तिः प्रलापे सुश्रुतुरुदशः ॥ ६ ॥

जिह्वके खोड़शाहानि पचाउभिन्न्यासलक्षणे । परमायुरिदं ग्रोकं विश्वते तत्त्वणादपि ॥ ७ ॥

सन्निपात के रहने के अलग २ समय (दिन-मर्यादा) का निर्णय—सन्धिक सन्निपात सात दिन रहता है, अन्तक दस दिन, रुद्गाह बीस दिन, चित्तविभ्रम चौविस दिन, शीताङ्ग पन्द्रह दिन, तन्दिक पचास दिन, कण्ठकुब्ज तेरह दिन, कर्णक तीन मास, भुम्नेत्र आठ दिन, रक्षीयी सन्निपात दस दिन, प्रलापक चौदह दिन, जिह्वक सोलह दिन, और अभिन्न्यास सन्निपात पन्द्रह दिन रहता है अर्थात् यह सन्निपात की आयु हैं परन्तु सन्निपात उसी क्षण भी मार डालता है और इतने दिनों के पश्चात् छूट भी जाता है ॥ ४-७ ॥

साध्यासाध्यानाह—संधिकस्तन्दिकश्चैव कर्णकः कण्ठकुब्जः ।

जिह्वकश्चित्तविभ्रमः षट् साध्याः सप्त मारकाः ॥ ८ ॥

सन्निपातों का साध्यासाध्यविचार—सन्धिक-तन्दिक-कर्णक-कण्ठकुब्ज-जिह्वक और चित्तविभ्रम नामक ये छ सन्निपात साध होते हैं शेष सात मारक अर्थात् असाध्य हैं ॥ ८ ॥

तेषां पृथग्लक्षणान्याह—पूर्वरूपकृतशूलसम्बंधो शोषवात्बहुवेदनान्वितम् ।

श्लेष्मतापवलहानिजागरं सन्निपातमिति सन्धिकं वदेत् ॥ ९ ॥

सन्धिक के लक्षण—जिस सन्निपात में शूल, शोष, वायु से अत्यन्त पीड़ा हो, कफ, शरीर में ताप और बल की हानि हो और नींद नहीं लगे उसे 'सन्धिक सन्निपात' कहते हैं ॥ ९ ॥

दाहं करोति परितापनमाततोति, मोहं ददाति विद्वाति विरप्रकरणम् ।

हिक्कां तनोति कसनं च समाजुहोति, जानीहि तं विबुधवर्जितमन्तकाल्यम् ॥ १० ॥

अन्तक सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में दाह तथा शरीर अधिक गर्मी रहे, मोह, सिर में अधिक कम्प, हिक्का, कास हो उसे 'अन्तक सन्निपात' कहते हैं, तुदिमान् वैच इसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ १० ॥

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमान्धश्रमः, परिभ्रमणवेदनाव्यथितकण्ठमन्याहतुः ।

निरन्तरतृष्णाकरः श्वसनकाशहिक्काकुलः, स कष्टसरसाधनो भवति हन्ति स्वदाहकः ॥ ११ ॥

रुद्गाह सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपातमें अधिक प्रलाप और सन्ताप, अत्यन्त प्रबल मोह, मन्दता तथा श्रम हो, अङ्ग धूमे (चक्कर हो), अङ्गों में तथा कण्ठ, मन्द्या और ढुड़ड़ी में पीड़ा हो, निरन्तर तृष्णा, श्वास, कास और हिक्का से व्याकुलता हो तो उसे 'रुद्गाह सन्निपात' कहते हैं । यह कष्टसाध्य तथा ग्राणधातक सन्निपात है ॥ ११ ॥

यदि कथमपि पुंसां जायते कायपीडा, अममदपरितापा मोहैकल्पभावः ।

विकलनयनहासो गीतन्त्यप्रलापोऽभिद्विति तमसाध्यं केऽपि चित्तविभ्रमारुद्धम् ॥ १२ ॥

चित्तविभ्रम सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में पुरुष के शरीर में पीड़ा, भ्रम, मद, सन्ताप, मोह और विकलता हो, भयानक नेत्र और हँसी हो, गीत गावे, नाच करे, प्रलाप हो, उसे 'चित्तविभ्रम' सन्निपात कहते हैं और इसे कोई २ आचार्य असाध्य कहते हैं ॥ १२ ॥

हिमसद्वशशीरो वेपथुषाशहिक्का-शिथिलितमकलाङ्गः भिक्षानादोग्रतापः ।

कुमधुदव्युक्तासच्छर्यंतीसारयुक्त-स्वरितमरणहेतुः शीतगात्रः प्रभावात् ॥ १३ ॥

शीताङ्ग सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में शरीर हिम (बर्फ) के सूक्ष्म शीतल हो, कॅंपकॅंपी, श्वास और हिक्का हो, सम्पूर्ण अङ्ग शिथिल हो गये हों, नाद (स्वर) खिन्न (क्षीण) हो गया हो, ताप अत्यन्त बढ़ गया हो, क्लम, नेत्र आदि में दाह, कास, वमन और अतीसार हो तो उसे शीत्र भरने का कारण वाला शीतगात्र (शीताङ्ग सन्निपात) जानना चाहिये । शीताङ्ग सन्निपात असाध्य है ॥ १३ ॥

प्रभूता तन्द्रा-तिर्ज्ञरकपिपासाकुलतरो, भवेच्छयामा जिह्वा पृथुलकिना कण्ठकवृता ।

अतीसारश्वासकुमथुपरितापशुत्तिरुजो, भृशं कण्ठे जाधयं श्वयनमनिश्चं तन्द्रिकगदे ॥ १४ ॥

तन्द्रिक सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में प्रबल तन्द्रा, ज्वर, कफ और रुक्षण के कारण व्याकुलता हो, जीभ काली, मोटी, कठिन और खरखर (कटैयुक्त) हो जावे, अतीसार, श्वास, क्लम, ताप, कान में पीड़ा, कण्ठ में अत्यन्त जडता और निद्रा निरन्तर हो तो उसे तन्द्रिक सन्निपात कहते हैं ॥ १४ ॥

शिरोर्तिंकण्ठप्रहृष्टाहमोह-कम्पउवरा रक्षसमीरणार्तिः ।
हनुभ्रहस्तापविलापमूर्च्छा: स्यारक्षणकुञ्जः खलु कष्टसाध्यः ॥ १५ ॥

कण्ठकुञ्ज सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में सिर में पीड़ा, कण्ठावरोध, दाह, मोह, कम्प, उवर, रक्त तथा बात की पीड़ा, हनुभ्रह, ताप, विलाप और मूर्च्छा हो उसे कण्ठकुञ्ज सन्निपात कहते हैं, यह कष्टसाध्य है ॥ १५ ॥

प्रलापश्रुतिहासकण्ठप्रहृष्ट-द्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् ।

उवरं तापकर्णन्तयोर्गङ्गपीडा बुधाः कर्णकं कष्टसाध्यं वदन्ति ॥ १६ ॥

कर्णक सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में अधिक प्रलाप, कान की शक्ति (श्रवण शक्ति) का हास, कण्ठावरोध, अङ्ग में पीड़ा, श्वास, कास, मुख से अधिक लार गिरना, उवर, ताप और कानों के अन्त में, गालों में पीड़ा हो उसको कर्णक सन्निपात कहते हैं, यह कष्टसाध्य है ॥ १६ ॥

सश्चिपातज्वरस्थान्ते कर्णमूले बुदाक्षणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रसुच्यते ॥ १७ ॥

सन्निपात उवर के अन्त में कर्ण के मूल में दारण शोथ उत्पन्न होता है जिससे कोई २ व्यक्ति मुक्ति पाते हैं अर्थात् किसी २ का छुटा है नहीं तो यह शोथ मार डालता है ॥ १७ ॥

उवरस्थ पूर्वं उवरमध्यतो वा उवरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः ।

क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ १८ ॥

कर्णशोथ की साध्यासाध्यता—उवर के पूर्व, मध्य और अन्त में जो कर्णमूल में शोथ होता है वह क्रम से असाध्य, कष्ट-साध्य और सुख-साध्य मुनियों ने कहा है अर्थात् पूर्व में होनेवाला असाध्य, मध्य में होने वाला कष्टसाध्य और अन्त में होने वाला सुखसाध्य होता है ॥ १८ ॥

उवरबलापचयो रस्तिशून्यता, असनमुम्भविलोचनमोहिताः ।

प्रलपनभ्रमकष्टपनशोफर्वस्त्यजति जीवितमाशु स भुनक्षः ॥ १९ ॥

मुननेत्र सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में उवर, बल की अधिक हानि, स्मरण शक्ति का नाश, श्वास, नेत्र का टेढ़ा हो जाना, मोह, प्रलाप, भ्रम, कम्पन और शोथ हो उसे ‘मुननेत्र’ सन्निपात कहते हैं और यह शीघ्र प्राणनाशक होता है ॥ १९ ॥

रक्तष्टीवी उवरभ्रित्वामोहशूलातिसारा, हिकाध्मानभ्रमणदवयुश्वाससञ्ज्ञाप्रणाशः ।
श्यामा रक्ता विकृतरसना मण्डलोरथानरूपा, रक्तष्टीवी निगदित इह प्राणहस्ता प्रसिद्धः ॥

रक्तष्टीवी सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में बरावर रक्त मुख से निकले, उवर, वमन, उषा, मोह, शूल, अतीसार, हिकाका, आधमान, भ्रम, नेत्रादि में दाह, श्वास और संश्वा का नाश हो, जिहा अत्यन्त काली और लाल तथा उस में चक्कते पड़े हुए हों तो उसको ‘रक्तष्टीवी’ सन्निपात कहते हैं । यह प्राणनाश के लिए प्रसिद्ध कहा गया है ॥ २० ॥

कठप्रलापपरितापशीर्षपीडा-प्रौढप्रभावपत्रमानपरोऽन्यचिन्ता ।

प्रज्ञाप्रणाशविकलः प्रचुरप्रवादः त्रिप्रयाति पितृपालपदं प्रलापी ॥ २१ ॥

प्रलापक सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में कम्प, प्रलाप, सन्ताप और सिर में पीड़ा हो, अत्यन्त प्रभाव युक्त बात करे, पवित्रता दिखावे, दूसरे की चिन्ता करे, बुद्धि नष्ट हो जावे, व्याकुल रहे, बहुत बात करे उसको ‘प्रलापक’ सन्निपात कहते हैं और यह शीघ्र प्राणनाशक है ॥ २१ ॥

असनकासपरितापविहृलः कठिनकण्ठकवृत्ततिजिह्वः ।

विहृक सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में श्वास, कास तथा ताप हो और उससे

व्याकुलता हो, जिहा कठिन काँदों से युक्त हो जावे, बधिरता, मूकता और बल की हानि हो उसको ‘जिह्वक’ सन्निपात कहते हैं और यह कष्टतरसाध्य है ॥ २२ ॥

दोषत्रयस्तिनवध्मुखविनिद्रावैकस्थनिश्चेतनकष्टवायमी ।

बलप्रणाशः असनादिनिग्रहोऽभिन्नायस उक्तो ननु मृत्युकरणः ॥ २३ ॥

अभिन्नास सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में तीनों दोषों के कारण मुख में स्तिनवध्मा, निदा, व्याकुलता और चेतना का नाश हो, कष्ट से बोला जावे, बल का नाश और श्वास का अवरोध हो उसको ‘अभिन्नास’ सन्निपात कहते हैं यह प्राणनाशक (असाध्य) है ॥ २३ ॥

अथ वातोल्बणादिस्तक्षणानि ।

आसः कासो अमो मूर्च्छा प्रलापो मोहवेपथु । पार्श्वद्योर्वेदना जृम्भा कथायत्वं मुखस्थं च ॥ १ ॥

वातोल्बणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लघ्येत् । एष विस्फारको नाम्ना सन्निपातः सुदाहणः ॥

वातोल्बणादि सन्निपात के लक्षण तथा नाम—(वात आदि की अधिकता के कारण) वातोल्बण ‘विस्फारक’ सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में श्वास, कास, भ्रम, मूर्च्छा, प्रलाप, मोह, कम्प, पार्श्वदेश में पीड़ा और जम्भाई हो, और मुख का स्वाद कथाय रस हो तो अधिक बढ़े हुये बात वाले सन्निपात का लक्षण जाना चाहिये, और इस सन्निपात का नाम ‘विस्फारक’ है । यह अत्यन्त कठिन है ॥ १-२ ॥

अतिसारो अमो मूर्च्छा मुखपाकस्तथैव च । गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाहोऽतीच प्रजायते ॥ ३ ॥
पित्तोल्बणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लघ्येत् । भित्तिभः सन्निपातोऽयमुक्तः कठपनसञ्ज्ञकः ॥

पित्तोल्बण ‘आशुकारी’ सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में अतीसार, भ्रम, मूर्च्छा, मुख में पाक, शरीर में लाल २ बिन्दु और अत्यन्त दाह हो, उसे अधिक बढ़े हुए पित्तोल्बण सन्निपात जानना चाहिये और इस सन्निपात का नाम ‘आशुकारी’ कहा गया है ॥ ३-४ ॥

जडता गद्ददा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि । प्रस्तव्ये नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च ॥ ५ ॥

कफोल्बणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लघ्येत् । मुनिभिः सन्निपातोऽयमुक्तः कठपनसञ्ज्ञकः ॥

कफोल्बण ‘कम्पन’ सन्निपात के लक्षण—जिस सन्निपात में जडता, वाणी में गद्दाद होना, रात्रि में नींद लगना, नेत्र का स्तव्य हो जाना अर्थात् टकटकी बौंध जाना और मुख का स्वाद मधुर रहना ये सब हों तो उसे अधिक बढ़े हुए कफ वाले सन्निपात का लक्षण जानना चाहिये और इस सन्निपात को मुनियों ने ‘कम्पन’ नाम का सन्निपात कहा है ॥ ५-६ ॥

दोषे विवृद्धे नष्टेऽप्यसंवर्षपूर्णलङ्घणः । सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यसततोऽन्यथा ॥

सन्निपात उवर का साध्यासाध्य निर्णय—दोषों के बढ़ जाने, अप्ति के नष्ट हो जाने और सब प्रकार के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त हो जाने से सन्निपात उवर ‘असाध्य’ हो जाता है और इसमें न्यूनता रहने से ‘कष्टसाध्य’ रहता है ॥ ७ ॥

सप्तमे दिवसे प्रासे दशमे द्वादशोऽप्यविनिष्ठा च । पुनर्वैरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥ ८ ॥

सन्निपात की मर्यादा—सन्निपात उवर सात दिन में, दस दिन में अथवा बारह दिन में घोर रूप धारण कर स्वर्य शान्त हो जाता है अथवा उतने दिनों में ही जिसे होता है उसका नाश कर देता है ॥ ८ ॥

सप्तमी द्वितीया यावच्छवम्येकादशी तथा । एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ ९ ॥

और भी—सात दिन—चौदह दिन, नव दिन—अठारह दिन अथवा च्यारह दिन और बाइस दिन यह त्रिदोष उवर की मर्यादा है । इन्हें दिन में छोड़ देवे अथवा प्राण का नाश कर देवे ।

इसे वातादिक के क्रम से जानना चाहिये अर्थात् वह वात की अधिकता में सात या चौदह दिन, पित्त की अधिकता में नवं या अठारह दिन तथा कफ की अधिकता में ग्यारह या बाहस दिन में छोड़ देता है अथवा मार देता है ॥ ९ ॥

पित्तकफानिलवृद्धुया दशदिवसद्वादशाहस्राहात् ।

हनिस विमुच्चति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥

पित्त, कफ और वातु की कमपूर्वक वृद्धि से दस दिन, बारह दिन और सात दिन में धातु और मल के पाक के क्रम से नाश कर देता है अथवा छोड़ देता है अर्थात् पित्त की अधिकता से दस दिन में और कफ की अधिकता से बारह दिन में और वात की अधिकता से सात दिन में धातुओं का पाक होने पर प्राण का नाश कर देता है और यदि मल का पाक हुआ तो छोड़ देता है ॥ १० ॥

मलपाकधातुपाकलक्षणे—दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता उवरदेहयोः ।

इन्द्रियाणां च वैमरुच्यं दोषाणां पाकलक्षणम् ॥ ११ ॥

मलपाक और धातुपाक का लक्षण—सन्त्रिपात ज्वर में जब दोष और प्रकृति विकृत हो जाय ज्वर और शरीर दीनों में लघुता प्रतीत होने लगे, इन्द्रियां विमल हो जाय तो इस लक्षण को दीों (मलों) के पाक होने का लक्षण जानना चाहिये ॥ ११ ॥

नाभेरुच्चं हृदोधस्तात् पीडिते चेद् व्यथा भवेत् ।

धातोः पाकं विजानीयादन्यथा तु मलस्य च ॥ १२ ॥

सन्त्रिपात ज्वर में जब नाभि के और हृदय के नीचे दबाने पर पीड़ा हो तो इस लक्षण को धातु के पाक होने का लक्षण जानना चाहिये इससे भिन्न लक्षणों को मलपाक जानना चाहिये ॥

अन्यद् दोषपाकधातुपाकलक्षणम्—

**शाश्वदीन्द्रियपञ्चकस्य पदुता वदेश्च यत्र क्रमात्
तृष्णादिग्रामो उवरस्य मृदुता तं दोषपाकं वदेत् ।**

हृषाभ्योरतिवेदनातिसरणं तीव्रो उवरस्तु वलमः

श्वासाधिक्यमरोचकोऽरतिरिति स्वाद् धातुपाकाकृतिः ॥ १३ ॥

अन्य मत से दोषपाक और धातुपाक का लक्षण—जिस सन्त्रिपात में पाचों ज्ञानेन्द्रियां निरंतर अपने अपने विषयों को भलीभांति ग्रहण करती हों और अग्नि भी तेज हो तथा तृष्णा आदि क्रम से शमन हो, ज्वर में मुद्रुता अर्थात् न्यूट्रता हो उसे दीों (मल) के पाक होने का लक्षण जानना चाहिये । जिस सन्त्रिपात में हृदय और नाभि में पीड़ा, अतीसार, तीव्र ज्वर, तृष्णा, वलम, श्वास की अधिकता, अरुचि और अरति हो उसे धातु के पाक होने का लक्षण जानना चाहिये ॥ १२ ॥

आगन्तुज्वरः—अभिचाराभिवाताभ्यामभिषङ्गाभिशापतः ।

आगन्तुर्जयते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ १४ ॥

निदान—अभिचार अर्थात् मन्त्र-तन्त्र के प्रयोग से, अभिधात अर्थात् प्रहारादि हो जाने से, अभिषङ्ग अर्थात् भूतादिकों के कारण से और अभिशाप अर्थात् गुरुजनों आदि के शापादिक से आगन्तुक ज्वर उत्पन्न होता है, इसमें उनसे अपने २ लक्षणों को देखकर वातादि दीों का ज्ञान करना चाहिये ॥ १४ ॥

भूतादोषविगन्धाच्च भयाच्छोकाद्विषेण च । कामात् क्रोधाच्च जातो यः सोऽनिष्टिष्ठावहः स्मृतः ॥

अभिषङ्गिक ज्वर का विवरण—भूतादिकों के कारण से, उग्र ओषधियों के गन्धादि का सेवन, सय, शोक, विष और काम एवं क्रोध से जो ज्वर उत्पन्न होता है उसे ‘अभिषङ्गज्वर’ कहते हैं ॥

श्यादावस्थता विषकृते लथाऽतीसार एव च । भक्ताहृचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥

विषजम्ज्वर के लक्षण—विष के कारण जो ज्वर होता है उसमें मुख काला हो जाता है और अतीसार होता है, भोजन में अरुचि, प्यास, शरीर में सूर्य चुमोने की सी पीड़ा और मूर्च्छा होती है ॥ १६ ॥

ओषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुस्तमः । कामजे वित्तविभ्रंशस्तम्भालस्यमरोचकम् ॥

हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुद्धयति ।

ओषधि के गन्ध से जो ज्वर होता है उसका लक्षण—जिस ज्वर में मूर्च्छा, सिर में पीड़ा, वमन और नेत्रों के सामने अन्धेरा हो तो ‘ओषधिनग्नवज्ज’ ज्वर जानना चाहिये । कामज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में चित्र में अम मालूम हो एवं तन्द्रा, आलस्य, अरुचि, हृदय में पीड़ा और शरीर दुर्बल हो उसे ‘कामज्वर’ जानना चाहिये ॥ १७-१७३ ॥

भयात् भ्रातापः शोकाच्च भवेत् कोपाच्च वेष्टुः ॥ १८ ॥

भय, शोक और क्रोध से उत्पन्न ज्वर के लक्षण—भय से होने वाले ज्वर में भ्राताप और शोक तथा क्रोध से होने वाले ज्वर में कम्पन होता है ॥ १८ ॥

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तुणा च जायते । भूताभिषङ्गादुद्देशो हास्यरोदनकृपनम् ॥ १९ ॥

अभिचार और अभिशाप ज्वर के लक्षण—मन्त्र-तन्त्र के प्रयोग तथा शापादिक से जो ज्वर होता है उसमें मोह और रुग्न होती है । भूताभिषङ्ग ज्वर के लक्षण—भूतादिकों के कारण जो ज्वर होता है उसमें लद्देग, हँसी, रोदन और कम्पन होता है ॥ १९ ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधाच्च पित्तं अथो भलात् । भूताभिषङ्गात् कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥

काम, शोक और भय से होने वाले ज्वर में वायु का प्रकोप और क्रोध से होने वाले ज्वर में पित्त का एकोप अधिक रहता है और भूताभिषङ्ग ज्वर में तीनों दोष कुपित रहते हैं अर्थात् भूताभिषङ्ग ज्वर त्रिदोष ज्वर की । मांति होता है अतः तीनों दीों के उपद्रव ही भूती के सामान्य लक्षण हैं ॥ २० ॥

व्रह्मापाचाभिषापातोथश्चेतनाप्रभवस्तु यः । राज्यहोः पट्टु कालेषु प्रेरितेषु चथा पुरा ॥ २१ ॥

शाप ज्वर—जो ज्वर गुरुजनों आदि के अभिशाप से होते हैं वे तथा भूताभिषङ्ग ज्वर ये तीनों प्रकार के ज्वर रात-दिन मिलकर अपने २ पूर्वोक्त छ समयों में रहते हैं ॥ २१ ॥

प्रसद्य विषमोदध्येति मानवं बहुधा ज्वरः । स चापि विषमो देहं न कदाचिद्विमुच्चति ॥ २२ ॥

बहुधा मनुष्यों को विषमज्वर पक्दम हो जाता है और वह विषमज्वर शरीर में से किंतु समय नहीं हटता है अर्थात् निरन्तर रहता है ॥ २२ ॥

यस्माद्वैरवैवैर्यकाशयेभ्यो न विमुच्चति । वेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते ॥ २३ ॥

व्योक्ति विषमज्वर में शरीर का भारी रहना, विवर्णता, कृशता, यह नहीं मिटती है और ज्वर के वेग के समाप्त ही जाने पर यह ज्ञात होता है कि ज्वर अब समाप्त हो गया पर तुनः हो जाता है ॥ २३ ॥

शिरसो गौरवं ग्लानिर्नितिश्रद्धा च भोजने । माधुर्यमतिवरस्य तिक्तस्वमधवा पुनः ॥ २४ ॥

वक्षश्य ज्ञायते यस्मात् प्रवेशो विगते सति । तस्मात् नियतो ज्ञातः शरीरे विषमज्वरः ॥ २५ ॥

विषमज्वर का विशेष लक्षण—सिर में भारीपन, ग्लानि, भोजन में अरुचि, ज्वर के वेग के पश्चात् मुख का स्वाद मधुर वा अति विरस अथवा तिक्त रहना ये लक्षण हों तो इससे विषम ज्वर शरीर में नियत रूप से वर्तमान है ऐसा जानना चाहिये ॥ २४-२५ ॥

धारवन्तरस्थो लीनत्वास्तु अमत्वा कुपलभ्यते । अल्पदोषेन्धनः शीणः शीणेन्धन द्वचानलः ॥२६॥

यह विषमज्वर धातुओं के मध्य में लीन होने से तथा सूक्ष्म-रूप का होने से निरन्तर बना रहता है । दोष जब क्षीण होते हैं तब यह भी क्षीण होता है जिस प्रकार अग्नि में ईंधन (लकड़ी) कम हो जाने से असि भी क्षीण हो जाती है ॥ २६ ॥

विषमज्वरसंप्राप्तिः—दोषोऽशोऽहितसंग्रहतो ज्वरोत्पृष्ठस्थ वा पुनः ।

धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ २७ ॥

विषमज्वर की सम्प्राप्ति—अद्वित कारणों से उत्पन्न वातादिक अल्प दोष-अथवा ज्वर होकर समाप्त होने पर शेष रहा अल्पदोष रस-रक्तादि धातुओं में से किसी एक में प्रवेश कर विषमज्वर उत्पन्न करते हैं ॥ २७ ॥

विषमज्वरलक्षणम्—क्षचिद्गुणेन शीतेन क्षचिद्रात्रौ क्षचिद्विवा ।

प्रशमं याति कोपं च उवरः स विषमः स्मृतः ॥ २८ ॥

विषमज्वर का सामान्य लक्षण—जो ज्वर कभी उष्णता से, कभी शीत से, कभी दिन में और कभी रात्रि में शान्ति को प्राप्त हो अथवा कुपित हो वह 'विषमज्वर' कहा जाता है ॥ २८ ॥

यः स्यादनियतात्कालाङ्गुलीतोष्णाभ्यां तथैव च । वेगश्चापि विषमः स उवरो विषमः स्मृतः ॥

और भी-जिस ज्वर का होने वाला समय नियत न रहे, कभी उष्णता से और कभी शीत से होवे और वेग भी ज्वर का विषम ही रहे अर्थात् कभी कम कभी अधिक ज्वर रहे वह ज्वर 'विषमज्वर' कहा जाता है ॥ २९ ॥

संततः स्ततसाऽन्येयस्तुतीयकच्छुर्थकाः । पञ्चेते विषमाः व्याताः सञ्जिपातोऽव्याता उवराः ॥३०॥

विषमज्वर का भेद—सन्तत, सतत, अन्येयुष्क, तृतीयक और चतुर्थक यह पांच भेद विषम ज्वर का तीनों दोषों के सन्मिपात से उत्पन्न होने वाला है ॥ ३ ॥

संततो रसधातुस्थो रक्तस्थः संततो मतः । उवरः समभवन्नां सोऽन्येयः पिण्डिताश्रितः ॥३१॥

सन्तत ज्वर रसधातु के आश्रय रहता है, सतत ज्वर रक्त धातु के और अन्येयुष्क ज्वर मनुष्यों के मांस के आश्रय रहता है ॥ ३१ ॥

मेदोगतस्तुतीयेऽह्नि त्वरित्यमज्जगतः पुनः । कुर्याद्यतुर्थकं द्वोरमन्तकं रोगसङ्करम् ॥ ३२ ॥

तृतीयक ज्वर मेद के आश्रय रहता है और तीसरे दिन होता है । और चतुर्थक ज्वर अस्थि तथा मज्जा के आश्रय रहता है अर्थात् विषमज्वर धातुगत (धातुओं में होने वाला) ज्वर है । और चतुर्थक ज्वर रोगों का समूह एवं अस्थन्त कठिन और नाशकारक है ॥ ३२ ॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमयापि वा । संतत्या योद्विसर्गी स्थातु संततः स नियथते ॥

सन्तत का लक्षण—जो ज्वर सात दिन, दस दिन अथवा बारह दिन तक निन्तर एक-सा रहकर शान्त हो उसे सन्तत ज्वर कहते हैं इसमें वात की प्रधानता वाला सात दिन, पित्त की प्रधानता वाला दस दिन और कफ की प्रधानता वाला बारह दिन रहकर शान्त होता है ॥ ३३ ॥

अहोरात्रे संततको द्वौ कालावनुवर्तते । अन्येयुष्कस्त्वयहोरात्रादेककालं प्रवर्तते ॥३४॥

संततक ज्वर का लक्षण—दिन और रात्रि में जो ज्वर दो बार आवेद्ये उसे संततक ज्वर कहते हैं । अन्येयुष्क ज्वर के लक्षण—जो ज्वर दिन-रात में एक बार आवेद्ये उसे अन्येयुष्क ज्वर कहते हैं ॥

तृतीयकस्तुतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः । द्वयाद्यस्तु विज्ञेया उवरा नानाविधा बुद्धः ॥३५॥

तृतीयक-चतुर्थक ज्वर के लक्षण—तृतीयक ज्वर तीसरे दिन और चतुर्थक ज्वर चौथे दिन होता है अर्थात् तृतीयक एक दिन बीच में नहीं होता है और चतुर्थक दो दिन बीच में नहीं होता है फिर हो जाता है इस प्रकार से अनेक प्रकार का विषमज्वर बुद्धिमान जाने ॥ ३५ ॥

यथा दोषप्रकोपस्तु तथा भन्येत तं उवरम् । यथा वेगागमे वेलां छादयित्वा महोदयेः ॥३६॥
वेगहानौ तदेवाऽभस्तत्रैवान्तर्विलीयते । दोषवेगोदये तद्वदुद्युग्मेत उवरोऽस्य तु ॥ ३७ ॥

वेगहानौ प्रशान्त्येत तथाऽस्यः सागरे यथा ।

जिस प्रकार का दोष प्रकृपित हो उसी प्रकार का ज्वर मानना चाहिये अर्थात् वात की अधिकता से हो तो वातज्वर, पित्त की अधिकता से हो तो पित्तज्वर और कफ की अधिकता से हो तो कफज्वर जानना चाहिये । जैसे समुद्र में वेग आने पर जल ऊपर तक आच्छादित हो जाता है और वेग के हट जाने पर वही जल सागर के मध्य में विलीन हो जाता है उसी प्रकार दोष का वेग उत्पन्न होने पर उवर भी उदीयमान होता है और वेग की (दोष के वेग की) हानि होने पर उसी समुद्र के जल की भाँति शान्त भी हो जाता है ॥ ३६-३७३ ॥

श्लेष्मप्रायस्तु पूर्वाङ्गे प्रदोषे च प्रवर्तते ॥ ३८ ॥

वातादिक दोषों के कोप के कारण उवर के समय की नियति-कफ की अधिकता के कारण होने वाला उवर प्रायः करके दिन के पूर्व प्रहर अर्थात् प्रातः एक प्रहर के अस्थन्तर तथा प्रदोष अर्थात् रात्रि के प्रथम प्रहर में वेगवान होता है ॥ ३८ ॥

पित्तप्रायस्तु मध्याह्ने त्वर्धनात्रे प्रवर्तते । अपराह्नेऽनिलप्रायः प्रथये च प्रवर्तते ॥ ३९ ॥

पित्त की अधिकता के कारण से होने वाला उवर प्रायः दिन के मध्यमाह (दोपहर) तथा अर्ध रात्रि में वेगवान होता है । वात की अधिकता के कारण से होने वाला उवर प्रायः अपराह्न अर्थात् दिन के अन्तिम समय तथा रात्रि के अन्तिम प्रहर में वेगवान होता है ॥ ३९ ॥

नैत वातातु विषमो उवरः समुपजायते । कौफयिते च निश्चेष्टे चेष्टयन्तिलो यतः ॥ ४० ॥

तस्माच्चर्तेऽनिलाद्रोगाः सम्भवन्ति उवरादयः ।

विषमज्वर में वायु की प्रधानता—वात के कोप नहीं रहने से विषमज्वर नहीं उत्पन्न होता है, क्योंकि कफ और पित्त निश्चेष्ट दोष हैं वायु ही चेष्टा करने वाला है अर्थात् कफ और पित्त शाख में पङ्कु कहे गये हैं, वायु ही संचालन करने वाला दोष है अतः वह विषमज्वर का प्रधान कारण है इससे विना वायु की सहायता के ज्वरादिक रोग नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ ४०-४०३ ॥

श्लेष्मप्रायस्तु विषमः शीतपूर्वः प्रजायते ॥ ४१ ॥

प्रायः करके कफ के आधिक्य से उत्पन्न विषमज्वर शीत लग कर होता है, उसमें प्रथम शीत होता है तब उवर होता है । शीत लग कर होने वाले विषमज्वर में वात और कफ दोनों पिण्डित रहते हैं और समय निश्चित रहता है अर्थात् दिन-रात के प्रथम प्रहर में होता है, वायु की प्रधानता रहते हुए भी कफप्रधान कहा जाता है ॥ ४१ ॥

पित्तप्रायस्तु विषमो दाहपूर्वः प्रजायते । वातप्रायस्तु नियते ॥ ४२ ॥

पित्त के आधिक्य के कारण से हुआ जो विषमज्वर होता है उसमें प्रथम दाह होता है तब उवर होता है, इसमें भी वायु भिन्नित रहता है परन्तु समय की नियति और पित्त के दाह गुण से पित्तप्रधान विषमज्वर कहा जाता है, केवल वात के आधिक्य से ही जो विषमज्वर होता है वह समयानुकूल नहीं होता, वह किसी भी समय में हो जाता है ॥ ४२ ॥

कृत्वा चिराद्विद्वयं विप्रवेष्य मुच्यम । श्लेष्मपित्ते विद्येत इस्तथाने यशाऽनिलः ॥४३॥

तस्मिन्काले भग्नाणां विषमो जायते उवरः ।

जब वायु रस के स्थान में रहता है और कफ तथा पित्त को विद्यय करता है तब उस समय बहुत समय तक शरीर को शीघ्र २ अस्थन्त कैपाता है उस कैंपकैंपी के समय भग्नाणों को विषमज्वर होता है ॥ ४३-४४३ ॥

शासो मूर्छाऽङ्गचिशकुदिस्तृणातीसारविद्युग्रहाः ॥ ४४ ॥
हिङ्गा कासोङ्गमेदध्य उवरस्योपद्रवा वदा ।

ज्वर के उपद्रवों की गणना—शास, मूर्छा, अरुचि, वमन, तृष्णा, अतीसार, मलबद्धता, दिक्का, कास और अङ्गों का दूटना ये दस ज्वर के उपद्रव हैं ॥ ४४-४५३ ॥

तन्द्रालस्याविषयाकास्यवैरस्यं गुरुगाम्रता ॥ ४५ ॥

शुष्माशो बहुमूत्रस्य रस्तथता वलवाऽवरः । आमउवरस्य लिङ्गानि न दयात्त्रभेषजम् ॥ ४६ ॥
भेषजं शामशोषस्य भूयो जनयति उवरम् । शोधनं शामनीयं च करोति विषमउवरम् ॥ ४७ ॥

बलवान् ज्वर के लक्षण—तन्द्रा, आलस्य, भोजन का पाक न होना, मुख का स्वाद विकृत हो जाना, शरीर का भारी होना, शुष्मा शक्ति का नाश हो जाना, मूत्र अधिक होना, अङ्गों का जकड़ होना ये सब लक्षण ज्वर के बलवान् होने के हैं । ये लक्षण सब आम ज्वर के (बलवान् ज्वर के) हैं, ऐसी अवस्था में भेषज अर्थात् कषाय नहीं देना चाहिये । क्योंकि कषाय आम दोष वाले को देने से पुनः ज्वर में वृद्धि होती है और यदि शोधन या संशमन काथ दिया जावे तो उससे 'विषमउवर' हो जाता है ॥ ४५-४७ ॥

उवरवेगोऽधिका तृणा प्रलापः शसनं अमः । मलप्रवृत्तिरुक्तलेशः पृथ्यमानस्य लक्षणम् ॥ ४८ ॥

पृथ्यमान ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में ज्वर का वेग हो, तृष्णा अधिक हो, प्रलाप शास तथा अम हो, मल की प्रवृत्ति अर्थात् मल-मूत्र निकलने लगे, उत्कलेश (उवकाई) हो ये सब लक्षण यदि हों तो उसे 'पृथ्यमान ज्वर' जानना चाहिये ॥ ४८ ॥

शुष्मामता लघुत्यं च गाम्राणां उवरमार्दवम् । दोषप्रवृत्तिरुक्तसाहो निरामयउवरलक्षणम् ॥ ४९ ॥

निराम ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में शुष्मा की न्यूनता, शरीर में लघुता और ज्वर के वेग की कमी हो, दोषों की प्रवृत्ति अर्थात् मलमूत्र का निस्सरण और मन से उत्साह हो उसे 'निराम ज्वर' जानना चाहिये ॥ ४९ ॥

प्रकाङ्का लाघवं गलानिः स्वस्थता सुप्रसक्ता । उपद्रवमिवृत्तिश्च सम्यग्लक्षितलक्षणम् ॥ ५० ॥

ज्वर में भली भाँति लहून किये हुए के लक्षण—जिस उपवास के अन्त में भोजन की प्रबल इच्छा हो, शरीर में लघुता तथा रुक्ति हो, शरीर में स्वस्थता एवं प्रसक्ता मालम हो और उपद्रवों का निवृत्त हो जाना अर्थात् नष्ट हो जाना ऐसा प्रतीत हो तो समझना चाहिये कि यह लहून भली भाँति हुआ है ॥ ५० ॥

निद्रा तन्द्रा झुमो आन्तिस्तृणा शोषो बलवद्यः । उपद्रवाश्च शासाद्यः सम्भवन्यतिलक्षिते ॥

अतिलहून के दोष—अत्यन्त लहून करने से निद्रा, तन्द्रा, रुक्ति, अम, तृष्णा, शोष, बलका नाश और शास आदिक उपद्रव होते हैं ॥ ५१ ॥

स्वेदो लघुत्यं शिरसः कण्ठः पाको मुखस्य च । लक्ष्यशाश्वकाङ्क्षा च उवरसुकस्य लक्षणम् ॥

ज्वरमुक्त का लक्षण—जिस रोगी को स्वेद और सिर में लघुता और खुजलाहट मालम हो, मुँह में पाक हो जाय, छींक का बाना, भोजन की इच्छा होना, ये सब लक्षण हों तो ज्वर से मुक्त हुआ जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

विगतकुमोहं च त्वर्यर्थं विमलेनिद्रयम् । युक्तं प्रकृतिसत्त्वैश्च तं विद्याद्विगतउवरम् ॥ ५३ ॥

तथा जिस रोगी की कलान्ति और मोह नष्ट हो गया हो, इन्द्रियों अत्यन्त शुद्ध हो गयी हों और अपने पूर्व प्रकृति एवं बल को प्राप्त हो गयी हों तो उसे ज्वर से मुक्त जानना चाहिये ॥ ५३ ॥

उवरसुकस्य यस्यापि शिरोहक्नैव मुक्तिः । अभिमुक्तः स विजेयो ज्वरः पुनर्स्मृति तम् ॥

ज्वर से अमुक का लक्षण—जिस रोगी को ज्वर नहीं रहने पर भी सिर में पीड़ा नहीं लहूटे अर्थात् ज्वर उत्तरने पर भी सिर में पीड़ा रहे उसको ज्वर से मुक्त नहीं जानना चाहिये, उसको ज्वर पुनः होगा ऐसा जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

अथ क्रमप्राप्तस्य उवरस्य चिकित्सा ।

उवरादौ लहूनं शस्तं उवरमध्ये तु पाचनम् । उवरान्ते रेचनं प्रोक्तमेतत्ज्वरचिकित्सम् ॥

क्रमपूर्वक ज्वर की चिकित्सा—ज्वर के आदि में लहून (उपवास) तथा ज्वर के मध्य में पाचन (क्वाथादि से आम दोष का पाचन) और ज्वर के अन्त में रेचक ओषधियों द्वारा मल का निस्सरण करना यही ज्वरचिकित्सा की विधि है ॥ १ ॥

उवरे लहूनमेवाऽद्यातुपदिष्टमृते उवरात् । ज्यानिलभयक्रोधकामशोकमोद्द्वात् ॥ २ ॥

ज्वर में प्रथम लहून करना ही कहा गया है परन्तु क्षय, वायु, भय, कोष, काम, शोक और परिश्रम से उत्पन्न ज्वर को छोड़ कर अर्थात् इन ज्वरों में लहून नहीं करना चाहिये इसके अतिरिक्त ज्वरों में लहून करना चाहिये ॥ २ ॥

आमाशयस्थो हृत्वाऽप्ति सामो मार्गान्पिण्डापयन् ।

विधाति ज्वरं दोषस्तशमालुर्धीतं लहूनम् ॥ ३ ॥

लहून की प्रधानता का हेतु—वातादिक आम दोष आमाशय में स्थित हो कर अर्थात् आमाशय में जाकर अग्नि का नाश कर देते हैं और आम रस के साथ मिलकर रस-रक्तादि के बहने के मार्ग का अवरोध कर देते हैं जिससे ज्वर होता है इसकिये ज्वर में प्रथम लहून करना चाहिये ॥ ३ ॥

प्राग्रपेषु उवरादौ वा बलं यत्नेन पालयन् । बलाधिष्ठानमारोग्यमारोग्यार्थः क्रियाक्रमः ॥ ४ ॥

रोग के पूर्वरूपादिकों के समय अथवा ज्वरादिकों के ही जाने पर शरीर के बल की यह पूर्वक रक्षा करनी चाहिये क्योंकि बल के अन्तर्गत ही आरोग्य है और आरोग्य के लिये ही यह क्रिया (चिकित्सा) कर्म है ॥ ४ ॥

अनवस्थितदोषानेहृद्धनं दोषपाचनम् । उवरान्ते दीपनं काङ्क्षारुचिलाघवकारणम् ॥ ५ ॥

लहून का गुण—अनवस्थित अर्थात् अव्यवस्थित दोष (वातादिक) और अग्नि जिसके शरीर में हैं ऐसे मनुष्य को लहून करना दोष पचाने के लिये हितकर है, अर्थात् लहून दोषपाचक और अधिवर्धक है तथा ज्वरनाशक, दीपक, इच्छा, रुचि और शरीर में लघुता करने वाला है ॥ ५ ॥

न लहूयेनमालते ज्वरे च लयोद्धवे च ज्ञिते च जन्तौ ।

न गुर्विणीदुर्बलालहूद्धान् भीतांस्तुषात्तर्नपि सोर्वचातान् ॥ ६ ॥

लहून निवेद—जिस मनुष्य को वायु का ज्वर हो, जिसको क्षय का ज्वर हो, जो क्षुधाहुर हो, जो गर्भिणी हो, जो दुर्बल, बालक, बुज्ज, भयातुर, तृष्णात हो और कर्धव वात से व्याकुल हो उसे लहून नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥

दोषाणामेव सा शक्तिलहूने या सहिष्णुता । नहि दोषवये कविरसहते लहूनं महत् ॥ ७ ॥

दोष में ही वह शक्ति है जो लहून को सहता है, दोष के नाश हो जाने पर किसी में यह शक्ति नहीं है जो लहून सहे अर्थात् लहून से अग्नि की वृद्धि होती है जो दोषों को पचाती है, दोष के नहीं रहने पर रस-रक्तादि धातु एवं शरीर तक को पचाने लगती है अस्तु असद्य है ॥ ७ ॥

सातमः सप्तरात्रेण द्वादशात्रेण पित्तजः । श्लेष्मज्ज्वाराद्यादेव उवरः पाकं प्रपयते ॥ ८ ॥

ज्वर के पाक का काल—वात ज्वर का पाक सात दिन में, पित्त ज्वर का पाक दश दिन में और कफ ज्वर का पाक बारह दिन में हो जाता है ॥ ८ ॥

बाते द्वे पित्रजे चक्रं कफे दिन चतुष्टयम् ।
सप्ताहं बातपिते च कफपिते दश समूता । कफवाते द्वादशाहं त्रिवृषेष चैकविशतिः ॥ ९ ॥

बात ज्वर में दो दिन, पित ज्वर में एक दिन और कफ ज्वर में चार दिन, बात-पित ज्वर में सात दिन, कफ-पित ज्वर में दस दिन, कफ-बात ज्वर में बारह दिन और त्रिवृष ज्वर में इकरास दिन ज्वर के पाक होने में लगता है अर्थात् इतने दिनों में ज्वरों का भेदानुसार पाक होता है ॥ ९ ॥

आसप्राणं तदणं उच्चरमाहुमीषिणः । मध्यं द्वादशारात्रं तु पुराणमत उत्तरम् ॥ १० ॥

ज्वर के तरण, मध्य और पुराण होने का समय—प्रारम्भ से सात दिन तक ज्वर ‘तदण’ कहा जाता है, बारह दिन तक ज्वर ‘मध्यम’ कहा जाता है और इससे अधिक दिन का ज्वर होता है तब ‘पुराण’ कहा जाता है ॥ १० ॥

सप्ताहेन तु पृथ्यन्ते सप्तधातुगता मलाः । निरामधाप्यतः प्रोक्तो उच्चरः प्रायोऽहमेऽहनि ॥ ११ ॥

सात दिन में रसादिक सातो धातुओं में गये हुए मल (दोष) पच जाते हैं अस्तु प्रायः आठवें दिन ज्वर निराम हो जाता है ऐसा कहा गया है ॥ ११ ॥

तथोक्तं बृद्धवाग्भटे—सर्वं उच्चरेषु दात्रायः कथायः सप्तमेऽहनि ।

अथवा छहत्येत्तावायावद्वारोप्यद्वान्म ॥ १२ ॥

बृद्ध वाग्भट के मत से—ज्वरकी चिकित्सा—बृद्ध वाग्भट का कहना है कि—प्रायः सब प्रकार के ज्वरों में सातवें दिन कथाय (क्वाय) देना चाहिये अथवा तब तक लड्डन कराना चाहिये जब तक आरोग्य के लक्षण दिखाई न देवें ॥ १२ ॥

न कथायं प्रश्नसम्बिन्त कदाचित्तरुणे उच्चरे । कथायेणऽकुलीभूता दोषा चेतुं सुदुरुतराः ॥ १३ ॥

कभी भी तदण ज्वर में कथाय नहीं देना चाहिये ऐसा कहा गया है क्योंकि कथाय से व्याकुल हुए दोषों का जीतना दुत्तर हो जाता है ॥ १३ ॥

अब विदेहः—सर्वं उच्चरेषु सप्ताहे मात्रया छहु भोजयेत् ।

वेगापायेऽन्यथा तदि उच्चरवेण विवर्धयेत् ॥ १ ॥

विदेह के मत से—विदेह का कहना है कि सब प्रकार के ज्वर में सात दिन तक मात्रा से अर्थात् अत्यन्त तथा लघु भोजन देना चाहिये किन्तु ज्वर की न्यूनता की अवस्था में ही क्योंकि यदि ज्वर के वेग के समय भोजन दिया जायगा तब ज्वर का वेग अधिक बढ़ जायेगा ॥ १ ॥

सुरसम्भवति पक्षेतु दोषधातुमलेषु च । काले वा यदि वाऽकाले सोऽकालक उदाहृतः ॥ १४ ॥

भोजन के समय की नियति—दोष (वातादिक), धातु (रसादिक) और मलों के परिपक्व होने पर ही कुधा होती है अतः यदि भोजन का समय ही अथवा न हो परन्तु ज्वर कुधा हो जावे वही अन्न का समय कहा गया है ॥ १ ॥

वाग्भटः—उच्चरितं उच्चरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेष्यु ।

खलेष्मच्छयग्रवृद्धोप्यामा बलवाननवलस्तदा ॥ १ ॥

वाग्भट के मत से भोजन के समय की नियति—वाग्भट का कहना है कि जो ज्वर से युक्त अथवा मुक्त हो उन दोनों को दिन के अन्त में ज्वर कफ का नाश हुआ रहता है और उस कारण कथा की वृद्धि रहती है और अन्न बलवान हो जाती है तब लघु भोजन देवे ॥ १ ॥

यथोचितेऽथवा काले देशसाम्यानुरोधतः । प्रागरपद्मद्विरुद्धान्ते न शारीरेन पीड़िते ॥ १५ ॥

कथायानपथ्यान्ते देशाद्वाह इति लक्षिते ।

अथवा उचित समय में देश तथा सात्म्यादि (हितकरादि) का विचार कर उपर्युक्त समय के पूर्व अत्यन्त अग्नि वाला मनुष्य भी यदि भोजन करे तो वह अजीर्ण से पीड़ित नहीं होता है अर्थात् देश-कालादि को विचार कर अत्याग्नि में भी खाया अन्न विकार नहीं उत्पन्न करता है । कथायादि पान करा कर तथा पथ्य अन्नादि देते हुए दस दिन तक लड्डन करावे अर्थात् दस दिन तक लघु आहार ही रखें ॥ २-२५ ॥

ज्वरा पित्राद्यते नाशित उच्चरो नास्त्यूष्मणा विना ॥ ३ ॥

तस्मादिप्ताविरोधीनि त्यजेतिपत्ताचिकेऽधिकम् । खानाभ्यङ्गप्रदेहात्य परिवेकं च लड्डनम् ॥

पित्र के बिना ज्वरा नहीं होती है और ज्वरों के बिना ज्वर नहीं होता है इसलिये पित्र की अधिकता के कारण उत्पन्न ज्वर में पित्र के अविरोधी अर्थात् पित्र बढ़ाने वाले पदार्थों का अधिक त्याग करे । पित्र के अविरोधी पदार्थ-स्नान, अभ्यङ्ग (तैलादि मर्दन), प्रदेह (चन्दनादिक का लेप), परिवेक (जल से सिवन) और लड्डन ये पित्र को बढ़ाने वाले अविरोधी पदार्थ हैं ॥ ३-४ ॥

आम ज्वर में जिसमें तीव्र पीड़ा हो उस अवस्था में भी अजीर्ण रोग की भाँति शूलनाशक ओषधि नहीं देनी चाहिये क्योंकि वह शूलनाशक ओषधि आम को बढ़ा देती है ॥ ५ ॥

तिक्तः पित्रे विशेषेण प्रयोग्यः कटुकः कफे । पित्रस्त्वेष्महरवेऽपि कथायस्तु न शस्यते ॥ ६ ॥

पित्र की वृद्धि में तिक्तरसाहुल्य पदार्थ और कफ की वृद्धि में कटुरसाहुल्य पदार्थ सेवन कराना चाहिये किन्तु पित्र-कफ की संसार्ज बहुलता में कथाय रस पित्रकफनाशक हीने पर भी नहीं देना चाहिये ॥ ६ ॥

मवज्वरे मलस्तमात्कवायो विषमउच्चरम् । कुक्तेऽदचिच्छासहिधमात्मानादिकानपि ॥ ७ ॥

नवीन ज्वर में कथायनिषेध का वचन—नवीन ज्वर में कथाय देने से मल का निरोध होता है, विषमज्वर करता है, अहचि, हृषास, हिका और आध्मान आदि रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ७ ॥

सप्ताहादौषधं केविदाहुरन्ये द शाहातः । केचिच्छृद्धवस्तुक्षय देयमामोश्यने न सु ॥ ८ ॥

ज्वर वाले को ओषधि देने के समय का विचार—किसी आचार्य का मत है कि सात दिन पर ज्वर के रोगी को ओषधि देनी चाहिये, किसी का मत है कि दस दिन पर देनी चाहिये और किसी का मत है कि जिस ज्वर के रोगी को लघु-अन्नादि का भोजन दिया जाता हो उसे उपर्युक्त दिनों के मध्य में भी ओषधि देनी चाहिये किन्तु यदि आम नहीं बढ़ा हो और यदि आम बढ़ा हो तब नहीं देनी चाहिये ॥ ८ ॥

तीव्रज्वरपरीतस्य श्रोवेगोदये यतः । दोषेऽथवाऽतिनिष्ठिते तन्द्रास्तैमित्यकारिणि ॥ ९ ॥

अपचयमानं भैषङ्गं भूयो जनयति उच्चरम् ।

ज्वर में ओषधि देने के दोष—जिस रोगी को ज्वर का वेग तीव्र हो और उसमें वातादिक दोषों के वेग की भी उत्पत्ति हो गयी हो अथवा दोष अधिक मात्रा में एकत्र हो गये हों ऐसी अवस्था में तन्द्रा तथा शरीर पर गीले वस्त्र लपेटे हुए के समान अनुभव होने लगते हैं उस समय दोष ज्वर कुपित रहते हैं ऐसी अवस्था में जो ओषधि दी जाती है वह पचती नहीं है और उसके नहीं पचने से पुनः ज्वर में वृद्धि होती है ।

मृदुज्वरो लघुदेहश्लिताश्च मलाः यदा । अचिरज्वरितस्यापि भेषजं योजयेत्सदा ॥ १० ॥

ज्वर में ओषधि देने का समय—जिस समय ज्वर वाले का ज्वर मन्द हो, शरीर में लघुता मालग हो और मलादि अपने स्थान से चलायमान हो चुके हों तो ऐसा ज्वर यदि नवीन भी हो तो भी ओषधि देना चाहिये ॥ १० ॥

बृद्धवाग्मटः—चल्दशक्षाद्वादशाहेतु व्यतीतेषु क्रमेण वै । वातपित्तकफातक्षेपवस्त्रकाङ्क्षा हमे प्रथः ॥
ज्वरी को अध देने का समय—वाग्मट के मत से—ज्वर वाले रोगी को छ, दस और बारह दिन बीतने पर कम से वात-पित्त और कफ के दोषानुसार अन्न देना चाहिये अर्थात् वातज्वर वाले को छ, दिन में, पित्तज्वर वाले को दस दिन में और कफज्वर वाले को बारह दिन में अन्न देना चाहिये ॥ २ ॥

द्वन्द्वजे सत्त्विपाते च व्याधावारोग्यवर्णने । सति यवागूयूषादि कल्पयेदतिनैपुणात् ॥ २ ॥
द्वन्द्वज और सत्त्विपात ज्वर में जब रोग नष्ट हो जावे तब यवागू और यूष आदि को भली भाँति बना कर देवे ॥ २ ॥

सुद्धान् मसूरीश्चणकान् कुलश्चान् मकुष्ठकान् पाचनयूष्ठेतन् ।
हितात् हितानां विहितोश्च पेयान् दधायावागूमपि पाचनः स्वः ॥ ३ ॥

यूषन्, यवागू जनने के पदार्थ—सुंग—मसूर—चना—कुलीयी और सोठ आदि का यूष पाचन के लिये देवे । इस प्रकार हितकर वस्तुओं की भलीभाँति बनी हुई पेया, यवागू आदि को रोगों के हित के अनुसार पाचन पदार्थों (कायादिकों) के साथ बना कर देवे ॥ ३ ॥

अथ चक्रदत्तः—नवउदरे दिवास्थापस्नानभोजनमेयुलम् ।

कोधप्रवातव्यायामकथायांश्च विवर्जयेत् ॥ १ ॥

निवातभवने वासमुण्डवारिनिषेवणम् । अभूरिजस्यं निष्कोधकामशोकं च रोगिणम् ॥ २ ॥

कुर्याद्वारोग्यसंपन्नं इतीङ्गं वैष्णो विच्छणः ।

चक्रदत्त के मत से ज्वर की चिकित्सा—नवीन ज्वर में दिन में सोना, स्नान करना, भोजन करना, मैसून करना, कोष करना, वायु में रहना, परिश्रम करना और कथाय और वस्त्र सेवन करना वर्जित है और ज्वरी जिस घर में वायु अधिक नहीं जाता हो उस घर में रहे, उषण किया जल पीवे, अधिक न बोले, कोष, काम और शोक को न करे इन सब विधियों को करा कर बुद्धिमान् वैष्ण रोगी को आरोग्य कर देवे ॥ १-२३३ ॥

कफमेद्योऽनिलामधनं दीपनं बस्तिशोषनम् ॥ ३ ॥

कासश्चासवरहरं पथ्यमुखोदकं सदा ।

उषणोदक का गुण—उषणोदक कफ—मेद वायु और आम का नाशक, दीपन, मूत्राशय का शोधक, कास, श्वास और ज्वर का नाशक एवं सदा पथ्य है ॥ ३-३३३ ॥

यस्काप्यमानं निवेंगं निष्केनं निर्मलं भवेत् ॥ ४ ॥

अर्धाविश्वाई भवति तदुष्णीद्वक्षमुद्धयते ।

उषणोदक के लक्षण—जब पानी पकाने से वैग रहित, फेन रहित और निर्मल हो जाय तथा श्वास शोष रह जावे उसे उषणोदक कहते हैं ॥ ४-४३३ ॥

तथापद्महीनं वातनमर्घीनं तु विस्तुतु ॥ ५ ॥

विपाद्महीनं श्लेष्मधनं पाचनं दीपनं लघु । द्वन्द्वजे सत्त्विपाते च उवरे पथ्यं तद्वार्तिजित् ॥ ६ ॥

जल पकाते समय चतुर्वीश कम होने पर उतार लिया जाय तो वातनाशक होता है, आधा कम होने पर पित्तनाशक और तीन भाग जल जाने पर उतारा जाय तो कफनाशक, पाचन, दीपन और लघु होता है तथा द्वन्द्वज और सत्त्विपात ज्वर में पथ्य तथा ज्वर रोग का नाशक होता है ॥ ५-६ ॥

शरदि व्यवधायोनं पाद्महीनं तु हैमने । शिशिरे च दसन्ते च ग्रीष्मे चार्धावशेषितम् ॥ ७ ॥

ऋतु के अनुसार जलपाक की विधि—शरद ऋतु में जल अष्टमांश जलने पर पीवे, हेमन्त ऋतु में चतुर्वीश जलने पर, शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में अर्धावशेष जल पीना चाहिये ॥ ७ ॥

विषरीते ऋतौ तदृप्रावृद्ध्यष्टावशेषितम् । भिनत्ति श्लेष्मसंचातं मात्रतं चापकर्त्ति ॥ ८ ॥

विपरीते ऋतु में अर्थात् ऋतु विपर्यय होने पर तथा वर्षा ऋतु में आठवां भाग शेष रहा जल पीना चाहिये । अष्टमांश शेष रहा जल कफ के समूह तथा वायु का नाश करता है ॥ ८ ॥

अजीर्णे जरयथायु पीतमुष्णोदकं निष्क्रिया । धारापातेन विष्टम्भ दुर्जं रघवनाहतम् ॥ ९ ॥

रात में उषणोदक पीने के गुण—रात में पीया हुआ उषणोदक अजीर्ण को शीश जीर्ण कर देता है । धारापात जल के दोष-धारापात से लिया हुआ जल विष्टम्भकारक, दुर्ज और वायु से युक्त होता है ॥ ९ ॥

शृतशीतं प्रिदोषवनं वायान्तभर्भवशीतलम् । दिवा शृतं तु यत्तोयं रात्रौ तदुपुस्तां ग्रजेत् ॥

रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुस्थमधिगच्छति ।

शृतशीत जल के गुण—पका कर शीतल किया हुआ जल शिदोषनाशक होता है, दिन में पका कर शीतल किया जो जल होता है वह रात्रि में गुरु हो जाता है और रात्रि में पका कर शीतल किया जल दिन को गुरु हो जाता है अर्थात् दिन का औटाया हुआ रात के और रात का पकाया दिन को नहीं काम में लाना चाहिये ॥ १०-१०३३ ॥

तस्मायः पिण्डसंसिक्षं लोष्टनिर्वापितं जलम् ।

सर्वदोषहरं पथ्यं लहा नैरुत्यकारकम् ॥ ११ ॥

लौह-पिण्ड संसिक्ष जल का गुण—लौह पिण्ड को तपा कर अथवा ढेले को तपा कर बुझाया हुआ जल सब प्रकार के दोषों का नाशक, पथ्य तथा आरोग्यकारक होता है ११-११३ ॥

उषणीकृतं जलं पथ्यं दोषतटकासिल्लिष्टु ॥ १२ ॥

शृतशीतं जलं पथ्यं प्रिदोषवशमनं लघु ।

उषणोदक तथा शृत जल के गुण—उषण किया हुआ जल पथ्य, दोष (वातादिक दोष) नाशक, तुषा तथा कास का नाशक और लघु होता है उषणकर शीतल किया हुआ जल पथ्य, प्रिदोष-नाशक और लघु होता है ॥ १२-१२३३ ॥

नवउदरे प्रतिश्वाये पार्श्वशूले गळग्रहे ॥ १३ ॥

सद्यः शुद्धौ तथाऽऽध्माने व्याधौ चातककोद्धवे । अर्धचग्रहणीगुरुमधासकासेषु विद्वच्छौ ॥ १४ ॥

हिक्कायां स्नेहपाते च पिवेदुष्णं जलं नरः ।

किस २ अवस्था में उषणोदक देना चाहिये इसका विधान—नवीन ज्वर, प्रतिश्वाय, पार्श्वशूल और गलब्रह्म में, विरेचनादि लेने पर, आध्मान, वात तथा कफ के रोग, अर्धच, ग्रहणी, गुरु, श्वास, कास, विद्रवि, हिक्का और स्नेहपात (घृत-तैलादि पान) करने में उषणोदक पीना चाहिये अर्थात् इन अवस्थाओं में हिंतकर है ॥ १३-१४३३ ॥

अरोचके प्रतिश्वाये प्रसेके श्वयौ लघे ॥ १५ ॥

मन्दानावद्दुरे कुच्छे उवरे नेत्रामये सथा । व्रमे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ १६ ॥

पानी कम पीने का विधान—जिसको अहचि, प्रतिश्वाय, लालासाव, शोथ, क्षय, मन्दाद्यि, उदर, कुछ, ज्वर, नेत्ररोग, ब्रणरोग और मधुमेह का रोग हो उसे पानी कम पीना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

मूल्छापित्तोषदाहेषु विषमे च मदात्यये । भ्रमकुमपरीतेषु मार्गोत्थे वमयी तथा ॥

अधर्वं रक्षिते च शीतमभः प्रशस्यते ॥ १७ ॥

शीतल जल पीने के योग्य व्यक्ति—जिसको मूर्छा, पित्त, उष्णता, दाह, विषम मदात्यय रोग, भ्रम, क्लान्ति, मार्ग का श्रम, वमन अधर्वं रक्षित ये सब हैं, जैसे शीतल जल पीना चाहिये ॥ १७ ॥

पानीयं पानीयं शरदि वसन्ते च पानीयम् । नादेयं नादेयं शरदि वसन्ते च नाड़देयम् ॥

ऋतु मेद से जलपान विधि—शरद ऋतु में जल भलाभांति पीना चाहिये क्योंकि वह स्वच्छ तथा दोषनाशक रहता है, वसन्त ऋतु में रक्षा करते हुए पीना चाहिये अर्थात् कम पीना चाहिये, शरद ऋतु में नदी का जल (न अदेयम्) नहीं देना चाहिये नहीं किन्तु देना चाहिये परन्तु वसन्त में नदी का जल (न आदेयम्) नहीं लेना (पीना) चाहिये ॥ १८ ॥

तन्वान्तरे—अमर्मोपहते देशे सिरासंख्यस्थिरजिते ।

वर्षावसन्तसमये कौपं वारि प्रक्षस्यते ।

अभः शरदि तादारं नादेयस्तुतु श्रिषु ॥ १ ॥

तन्वान्तर से ऋतु के अनुसार जलपान विधि—जिस भूमि में मर्म आदि का नाश न हुआ हो, सिरा-सन्धि और अस्थि इत्यादि न हों ऐसे स्थान के कूप का वसन्त और वर्षा ऋतु में पीना हितकर होता है, शरद ऋतु में तटाग का जल पीना हितकर होता है तथा शेष तीन (हृमन्त, शिशिर और श्रीष्म) ऋतुओं में नदी का जल पीना हितकर होता है ॥ १ ॥

सत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिरक्षै भ्रमध्यमा । जघन्यस्य पलाधेन स्नेहैषायौषधेषु च ॥ २ ॥

औषधमझूँ की मात्रा—स्नेह (धृत-तैलादि), एवं क्वाथादि औषधि की उत्तम मात्रा अर्थात् पूर्ण वलावान व्यक्ति के लिये एक पल (४ तो ०) की है, मध्यम मात्रा (मध्य बल वाले के लिये) तीन कर्ष की है और जघन्य अर्थात् निकृष्ट मात्रा निर्वल के लिये आधा पल (२ तो ०) की है ॥ २ ॥

कर्षश्वर्णस्य कषकस्य गुटिकानां च सर्वशः । द्रवः शुक्रत्याऽवलेद्वयः पातव्यक्ष चतुर्द्रवः ॥ २ ॥

मात्रामधुधृतादीनां काषे स्नेहैषु चूर्णवत् ।

चूर्ण, कल्क और गुटिकादि की मात्रा एक कर्ष की है परन्तु यह उत्तम मात्रा है वलानुसार न्यूनाधिक किया जा सकता है। इन चूर्णादिकों को चाटने के लिये द्रव पदार्थ अर्थात् मधु आदिक एक शुक्ति (दो कर्ष या चूर्ण के द्विगुण) मिलाना चाहिये और यदि घोल आदि बना कर पीने का विधान हो तो द्रव (जल-दुधादि) चतुर्गुण अर्थात् एक कर्ष के साथ चार कर्ष मिलाकर घोल बनाकर पीना चाहिये। काथ अथवा स्नेहादि (धृत-तैलादि) में मधु या धृत आदि का प्रक्षेप ढालना हो तो उसकी मात्रा भी चूर्ण के समान ही (एक कर्ष) देनी चाहिये ॥ ३-४ ॥

द्वित्वारिंशता माषैरषादशकबद्धकैः ॥ ४ ॥

पलं द्वादशवर्षं स्थाद् गुञ्जाषटकसमनिवतम् ।

वेगालिस ४२ मासा—अठारह १८ बद के समान होता है। एक पल बारह १२ बद और छै गुजा के बराबर होता है ॥ ४-५ ॥

काथद्वयपले वारि द्विरष्टुगुणमध्यते ॥ ५ ॥

चतुर्भागावधेषु तु पेयं पलचतुष्टयम् । दीप्तानलं महाकायं पाययेदसुलिं जलम् ॥ ६ ॥

काथ करने वाली औषधि एक पल (२८ मासा ६ रक्ती) लेकर सोलह गुना अर्थात् सोलह पल जल मिलाकर काथ करे और चतुर्थीश शेष रहने पर चार पल की मात्रा पेय है यह दीप्त अथवा वाले, वृहच्छारधारी मनुष्य को एक अचलि अर्थात् यह (जार पल) की मात्रा पीने को देवे ॥ ५-६ ॥

अन्ये त्वर्धं परिस्थय प्रसूतं तु चिकित्सकः । काथस्यागमनिच्छन्तस्वश्वभागावशेषितम् ॥ ७ ॥

अन्य चिकित्सक का मत है कि आधा भाग छोड़ कर प्रसूत अर्थात् दो ही पल की मात्रा पीने को देनी चाहिये। और जो चिकित्सक काथ के अर्ध भाग को त्यागना नहीं चाहते उनका मत है कि काथ का आठवां भाग शेष रखना चाहिये अर्थात् इस प्रकार बना कर दो पल की मात्रा देनी चाहिये ॥ ७ ॥

पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवद्याः पलद्वयम् । पाययन्यात्यातुरं सामे पाचनं सप्तमेऽहति ॥ ८ ॥

परम्परा के अनुकूल वृद्ध वैष आम ऊर के पाचन के लिये ऊर आने के पश्चात् सातवें दिन रोगी को दो पल की मात्रा से पाचन काथ देते हैं ॥ ८ ॥

अथौषधाद्यजीर्णैन्नस्य प्राह्याप्राह्याविचारः ।

वीर्यादिकं भवति भेषजमधीनं हन्यात्तथाऽमयमसंशयमात्मा चैव ।

सद्वालष्टद्युवतीमृद्वतो निर्विध उलानि परां समुपयानित घलक्षयं च ॥ ९ ॥

औषध आदि का जीर्ण न होने पर ग्रहण करने या न करने का विचार—अन्नहीन अवस्था अर्थात् अन्न के पूर्ण पच जाने पर औषधि भक्षण करने से वह औषधि अधिक प्रभाव वाली होती है और रोग को निश्चित ही शोष नाश करती है। वही औषध यदि अन्नहीन अवस्था में बालक, वृद्ध, युवती जी [जिनका स्वभाव सृदु हो] और सृदुल स्वभाव के पुरुष को दी जावे तो उसे उन्हें अत्यन्त गलानि तथा बल का नाश होता है ॥ ९ ॥

जीर्णैषधलक्षणम्—अनुलोभोऽनिलं स्वास्थ्यं कुचल्ला सुमनस्कता ।

लघुरथमय चोद्वारः शुद्धो जीर्णैषधाकृतिः ॥ १० ॥

जीर्ण औषध के लक्षण—औषध भक्षण के पश्चात् जश वायु का अनुलोमन हो, शरीर में किसी प्रकार का कष न रहे, छुधा और तृष्णा मालम हो, मन प्रसन्न हो, शरीर में लघुता और शुद्ध पचने पर के समान उद्गार आवे तो जानना चाहिये कि औषध पच गया ॥ १० ॥

अजीर्णैषधलक्षणम् ।

हुमो दाहोऽक्षसदनं अमो मूर्छा शिरोरुजः । अरतिवं मनं मोहो श्वजीर्णैषधवैकृतिः ॥ ११ ॥

अजीर्ण औषधि के लक्षण—औषध सेवन के पश्चात् यदि क्लान्ति, दाह, अर्ति में शृन्यता (शिथिलता), भ्रम, मूर्छा, सिर में पीड़ा, अरति, वमन और मोह हो तो समक्षना चाहिये कि औषधि अजीर्ण है अर्थात् नहीं पची है क्योंकि औषधि नहीं पचने के बे सब विकार हैं ॥ ११ ॥

औषधशेषे भुक्तं शेषेऽप्यष्टेत्यैषधेषु पीतम् । न करोति गदोपशमं प्रकोपशमन्यहोगांश्च ॥ १२ ॥

औषध के पूर्ण नहीं पचने पर ही भोजन करने से अथवा भोजन के पूर्ण नहीं पचने पर ही औषध भक्षण कर लेने से वह औषध रोग का शमन नहीं करती है प्रस्तुत अन्यान्य रोगों को उत्पन्न कर देती है ॥ १२ ॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति अलं न हन्यादशावृतं न च पुनर्वदनाचिरेति ।

प्राग्भक्षसेवितमयौषधमेतदेव दशाच्च भीहश्चिद्वृद्धवद्याकृतानाम्यः ॥ १३ ॥

अन्न के साथ औषध भक्षण करने का फल—अन्न के साथ मिश्रित कर भोजन के प्रथम आस में ही जो औषधि भक्षण की जाती है वह शीघ्र पच जाती है, बल का नाश नहीं करती है और अन्न में मिश्रित होने से मुंह से बाहर (वमनादि के द्वारा) नहीं निकलती है इसलिये इस विधि से भीर, बालक, वृद्ध और कोमल शियों को औषधि देनी चाहिये ॥ १३ ॥

निफलाभ्योषगुहयुक् शकंशविवृतार्थकम् । मोदकं भक्षयित्वा तु पित्तपोषणं जलं पुनः ॥

निफलादि मोदक—निफला (अवरा, हरै, बहेरा), व्योष (सौंठी-पीपरि-मरिच) और गुड़ प्रत्येक सम भाग तथा शक्कर और निशोथ आधा आधा आधा भाग लेकर सबको कूट पीस एक में मिला कर मोदक बनावें, इस मोदक को १ कर्ष की मात्रा से भक्षण कर उष्ण जल पीवे तो पार्श्वशूल, अरुचि, कास और वातज्वर का नाश होता है ॥ ६ ॥

पित्तज्वरे—कटफलेन्द्रयवाऽवष्टातिकामुस्तैः श्रुतं जलम् ।

पाचनं दशमेऽङ्गं स्थात् तीव्रे पित्तज्वरे तृणम् ॥ १ ॥

कटफलादि पाचन—कायफर, इन्द्रजौ, पाठा (पुरुषन पढ़ी), कुटकी, नागरमोथा, इन सर्वों का (क्वाथ बनाकर) शीतल किया जल तीव्र-पित्तज्वर में मनुष्यों को दसवें दिन पाचन के लिये देना चाहिये ॥ १ ॥

दुरालभापर्षटकप्रियकूभूनिष्ववासाकटुरोहिणीनाम् ।

क्वाथं पित्तेव्युक्तरयाऽङ्गादं तृणाऽङ्गपित्तज्वरद्वयुक्तः ॥ २ ॥

दुरालभादि—ज्वासा, पित्तपापड़ा, फूलप्रियकू, चिरैता, अरुसा और कुटकी इन द्रव्यों का क्वाथ बनाकर अधिक मात्रा में शक्कर का प्रक्षेप देकर पीने से तृणा, रक्तपित्त और दाह युक्त पित्त ज्वर नष्ट होता है ॥ २ ॥

द्राक्षाऽभ्यापर्षटकाऽदतिक्षाकाथं त्वशऽपाकफलं विदध्यात् ।

प्रलापमूर्छाभ्यमदाहशोषवृषान्विते वित्तभवे उवरे च ॥ ३ ॥

द्राक्षादि—द्राक्षा (मुनक्का), हरे, पित्तपापड़ा, नागरमोथा और कुटकी इन द्रव्यों का क्वाथ बनाकर उसमें अमलतास के फल का गूदा प्रक्षिप्त कर देने से प्रलाप-मूर्छा-भ्रम-दाह-शोष और तृणा सहित पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ३ ॥

एकः पर्षटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशकः । किं पुनर्यदि युजयेत चन्दनोशीरधान्यकैः ॥ ४ ॥

पर्यादि—एक पित्तपापड़ा ही केवल पित्तज्वर का नाशक है यदि उसमें चन्दन (रक्त), खस और धनिया मिलाकर क्वाथ किया जाय तो क्या कहना है अर्थात् इन द्रव्यों के क्वाथ से निर्धित ही पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

ओदुरुबरस्य निर्यासः सितया दाहनाशनः । छिक्षासारः सितायुक्तः पित्तज्वरनिषूदनः ॥ ५ ॥

अन्यान्य पित्तज्वरनाशक योग—उदुम्बर (गूलर) का निर्यास (हुरध) मिश्री के साथ सेवन करने से दाहनाशक होता है (पित्तज्वरनाशक होता है) और गुडूची का सत्त मिश्री से सेवन करने से पित्तज्वरनाशक होता है ॥ ५ ॥

द्राक्षा चैव गुदूची च सुस्ता पर्षटकं तथा । कटुका च समैः काथः पित्तज्वरविनाशकः ॥

मुनक्का, गुरुचि, नागरमोथा, पित्तपापड़ा और कुटकी इन द्रव्यों को सम भाग लेकर क्वाथ कर पीने से पित्तज्वर का नाश होता है ॥ ६ ॥

चन्दनं च सुगन्धं च बालकोशीरपर्षटा । सुस्तागुण्टीसमायुक्तः पित्तज्वरनिषूदनः ॥ ७ ॥

सुगन्धित चन्दन, सुगन्धवाला, खस, पित्तपापड़ा, नागरमोथा और सौंठ इन द्रव्यों का क्वाथ पित्तज्वरनाशक होता है ॥ ७ ॥

अहो किमर्थं बहवः कथायाः पराशराद्यर्मुनिभिः प्रदिष्टाः ।

पित्तज्वरस्यस्तुते न किं स्थात् काथो गुदूच्यामलपर्षटानाम् ॥ ८ ॥

अहो ! पराशर आदि मुनियों ने अनेक प्रकार के काथादि किस काम के लिये कहे ? क्या

पित्तज्वर के नाश करने के लिये गुडूची, आँवला और पित्तपोड़े का काथ नहीं था ? अर्थात् केवल इन्हीं तीनों के काथ से पित्तज्वर नष्ट हो सकता है ॥ ८ ॥

अलजलजलवाहरेणुष्विष्वामुखविशिष्टैः शिशिशीकृतः कथायः ।

ननु खलु हरति उवरं प्रकृष्ट सर्वमिनिद्वाग्नृष्टं निरीयमानः ॥ ९ ॥

जल (सुगन्धवाला), जल (जलवेत की जड़), जलवाह (नागरमोथा), रेणु (सम्माल बीज), सौंठ और (खस) इन सर्वों का क्वाथ बनाने के बाद शीतल करके देने से केवल पित्त ज्वर को ही नष्ट नहीं करता है प्रत्युत वमन, निदाघ (लू, लगना) और तृष्णा का भी नाश करता है ॥ ९ ॥

अशीतवारिणा सिता सितायुता तु रोहिणी । विदाहतुद्भ्रमान्वितं निहन्ति पित्तज्वरम् ॥

अशीतवारिणा अर्थात् इवेत कूज्माण्ड के स्वरस अर्थात् उसे गोद कर निकाले हुए जल अथवा मन्दोण जल में मिश्री मिलाकर पीने से वा कुटकी के साथ मिश्री मिला कर देने से अथवा सिता से आँवला भी ग्रहण किया जाता है उसके साथ मिश्री और कुटकी चूर्ण जल से देने से दाह, तृष्णा तथा भ्रम के सहित पित्तज्वर का नाश होता है ॥ १० ॥

विष्वपञ्चुवसम्भूतरसफेनप्रलेपनात् । तुड्बाहमोहाः प्रशमं यान्वित पित्तसमुद्धावाः ॥ ११ ॥

निष्पत्र के स्वरस को भथकर उसके केन को शरीर पर लेप करने से पित्त से उत्पन्न तृष्णा, दाह, और भोइ आदि उपद्रव शान्त होते हैं ॥ ११ ॥

केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् । जिह्वातालुगलक्षोमशोषमूर्च्छनि वापयेत् ॥ १२ ॥

जिह्वारा नीबू का केसर (जीरा), मधु और सेंधा नमक के साथ सेवन करने से जिह्वा, तालु, गला और कलोम का शोथ तथा सिर के अमादि रोग में लाभ होता है ॥ १२ ॥

कफज्वरे—बीजपूरशिकापथ्यानागरग्रन्थिकैः श्रुतम् । सक्षारं पाचनं श्लेषमध्वरे द्वादशवासरे ॥

बीजपूरादि पाचन—जिह्वारे नीबू का मूल, हरे, सौंठ और पिपरामूल इन द्रव्यों को सम भाग लेकर क्वाथ बनाकर जवाखार का प्रक्षेप देकर कफज्वर में बारहवें दिन पाचन के लिये देवे ॥ १२ ॥

भूनिद्वनिद्वपिष्पस्यः शठी शृण्ठी शतावरी । गुडूची शृहती चेति क्षयो हन्यात् कफज्वरम् ॥

अन्यान्य पाचन योग—चिरैता, नीम, पीपरि, कचूर, सौंठि, सतावर, गुरुचि और बड़ी कटेरी इन द्रव्यों का काथ कफज्वर का नाश करता है ॥ १२ ॥

पटोलशिक्कलातिक्षाशटीवासाऽसृतोद्धवः । काथो मधुयुतः पीतो हन्यात्कफ्कृतं उवरम् ॥ १२ ॥

परोरा, निफला (अवरा-हरै-बहेरा) कुटकी, कचूर, अरुसा और गुरुचि इन द्रव्यों का क्वाथ बनाकर शीतल मधु का प्रक्षेप देकर पीने से कफज्वर का नाश करता है ॥ १२ ॥

निदिग्रधकाञ्छन्नरुहोपकुश्यादिशौपधः साधितमस्तु पीतम् ।

हन्ति उवरश्वासब्लासकासमूलग्रन्थिनिलं जठरानिलं च ॥ १३ ॥

छोटी कटेरी, गुरुचि, पीपरि, सौंठि इन सर्व ओषधियों से पकाया गुआ जल अर्थात् क्वाथ पीने से उवर, श्वास, कफ, शूल, मन्दाग्नि तथा उदर की वायु को नष्ट करता है ॥ १३ ॥

श्रङ्गीकणाकट्टलपौरकराणां ज्वौद्रानिवतानां विहितोऽवलेषः ।

श्वासेन कासेन युतं बलासज्जवरं जयेद्वन् न काऽपि शङ्का ॥ १४ ॥

चातुर्भद्रावलेहिका—काकड़ासिंगी, पीपरि, कायफल और पुष्करमूल इन सर्व ओषधियों को सम भाग में लेकर चूर्ण कर मधु मिला अबलेष बनाकर चाटने से श्वास, कास से युक्त कफज्वर नष्ट होता है इसमें कोई शङ्का नहीं है ॥ १४ ॥

योगरत्नाकरः ।

भार्गीगुहूचीघनदाहसिंहीशुण्ठीकणपुष्करजः कथायः ।

उवरं निहन्ति श्वसनं छिणोति चुर्चं करोति प्रश्चिं तनोति ॥ ३ ॥

मारकी, गुरुचि, नागरमोथा, देवदार, छोटी कटेरी, सोंठि, पीपरि और पुष्करमूल इन सब का काथ पीने से कफजबर और श्वास को नष्ट करता है, क्षुधा तथा रुचि को बढ़ाता है ॥ ६ ॥

सर्वज्वरे—आमलकय भया कृष्णा चित्रकशेष्यं गणः । सवज्वरभयातङ्गी भेदी शीपनशाचनः ॥

सर्वज्वर में पाचन ओषधि—जौवला, हर्दे, पीपरि और चित्र इन चारों वस्तुओं का योग सब प्रकार के ज्वर के भय को नष्ट करता है, और यह भेदी (मलसारक), अशिदीपक और पाचन है ॥ १ ॥

अमृताऽरिष्टकचन्दनपश्चकधान्योद्धवः कथायः । उवरहल्लासच्छुदीस्तुष्णादाहाहृचीहन्तात् ॥ २ ॥

गुरुचि, नीम की छाल, लाल चन्दन, पदुमकाठ और धनियाँ का काथ पीने से ज्वर, हल्लास, वमन, तुषा, दाह और अरुचि का नाश होता है ॥ २ ॥

छिणोज्वामूधरधन्वयवासविश्वैर्दुःस्पर्शपर्षटकमेघकिराततिकैः ।

मुम्ताठुषकमहौषधधन्वयसैः क्षार्थं पित्तेदनिलपित्तकफज्वरेषु ॥ ३ ॥

१—गुरुचि, नागरमोथा, धमासा और सोंठि का काथ वातज्वर में देना चाहिये, २—जवासा, पित्तपापड़ा, नागरमोथा और चिरैता का काथ पित्तज्वर में देना चाहिये, ३—नागरमोथा, अरुसा, सोंठि और धमासा का काथ कफजबर में देना चाहिये ॥ ३ ॥

धान्यविकटुसिन्धूरूपसैन्धवयोजितः । भृष्टुतैलाम्बां स मण्डोऽष्टुणः स्मृतः ॥ ४ ॥

अष्टुण मण्ड की विधि—धनियाँ, चिकु (सोंठि, पीपरि, मरिच), सेंध नमक, मूँग, सैन्धव (समुद्र लवण) ये सब देकर यथाविधि बनाया हुआ तथा हींग को तेल में भून कर बघार दिया हुआ मण्ड ‘अष्टुण मण्ड’ कहा जाता है ॥ ४ ॥

दीपनः प्राणदो अस्तिशोधनो रक्तवर्धनः । उवरजितसर्वदोषहो मण्डोऽष्टुण उत्पत्ते ॥ ५ ॥

अष्टुण मण्ड का युग्म—अष्टुण मण्ड दीपन, बलदायक, मूत्राशय को शुद्ध करने वाला, रक्तवर्धक, ज्वरनाशक और सब प्रकार के दीप (वातादिक) का नाश करता है ॥ ५ ॥

वातपित्तज्वरे—छिणोज्वापर्षटवारिचाहमूनिष्वशुण्ठीजनितः कथायः ।

समोरपित्तउवरजर्जाणां करोति भद्रं भलु पञ्चभद्रः ॥ ६ ॥

वातपित्त ज्वर में पञ्चभद्र काथ—गुरुचि, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरैता, सोंठि इन सब का काथ वात-पित्त ज्वर से जर्जरित शरीर वालों का भद्र करता है अर्थात् उन्हें स्वस्थ कर देता है, इसका नाम पञ्चभद्र काथ है ॥ ६ ॥

पञ्चमूलसृतामुस्ताविशवामूनिष्वशाधितः । कथायः शमयस्याशु वायुमायुमवं उवरम् ॥ २ ॥

पञ्चमूल (शालिपणी, पृष्ठपणी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरु), गुरुचि, नागरमोथा, सोंठि और चिरैता का बनाया हुआ काथ वातपित्त से उत्पन्न होने वाले ज्वर को शीघ्र शान्त करता है ॥

त्रिफलाकाशमरीशानाराजत्रृष्णाठरूपकैः । श्रुतमनु हरेत्तुणं वातपित्तोऽवं उवरम् ॥ ३ ॥

त्रिफला (अवरा-हर्दी-बहेरा), गम्भार, रासना, अमलतास का फल और अरुसा का काथ बना कर शीतल किया हुआ पीने से शीघ्र वात-पित्त ज्वर का नाश करता है ॥ ३ ॥

वातश्लेष्मज्वरे—सिंहीयवानीछिज्ञानां काथश्वपलया युतः ।

कफवातउवरश्वासशूलपीनसकासजितः ॥ ३ ॥

वातकफ ज्वर की ओषधि—छोटी कटेरी, अजवाशन और गुहूची के काथ में पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से कफवात ज्वर, श्वास, शूल, पीनस और कास का नाशक होता है ॥ ३ ॥

२०७

द्रुन्दुजज्वरेपाचनादिकाशाः ।

कुद्रा मृतानागरपुष्कराद्वैः कृतः कथायः कफमारुतोत्तरे ।

सधाम्बकासारुचिपार्श्वशूले उवरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्त्रते ॥ २ ॥

छोटी कटेरी, गुहूची, सोंठ और पुष्करमूल का बनाया हुआ काथ कफवात के ज्वर, श्वास, कास, अरुचि और पाश्वशूल तथा त्रिदोषज्वर में भी लाभदायक कहा गया है ॥ २ ॥

आशवधकणामूलमुस्तातिक्षाऽभयाकृतः । कथायः शमयति चिप्रं उवरं वातकफोद्धवम् ॥ ३ ॥

अमलतास का युहा, पिपरामूल, नागरमोथा, कुटकी और हर्दे का बनाया हुआ काथ शीघ्र वातकफ से उत्पन्न होने वाले ज्वर का शमन करता है ॥ ३ ॥

मुस्ता पर्षटकं शृण्ठी गृहूची च दुरालभा । कफवातासुचिच्छुदिदाहशोषज्वरापहः ॥ ४ ॥

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, सोंठि, गुरुचि और जवासा का काथ कफ-वात ज्वर, अरुचि, वमन, दाह, शोष और ज्वर का नाशक है ॥ ४ ॥

भूनिष्वमुस्ताकुद्रुक्षुगृहूचीदुरालभापर्षटनाशराश्वैः ।

काथं महूच्छलेष्महरं वदनिति सूर्यो यथा नाशयतेऽन्धकारम् ॥ ५ ॥

चिरैता, नागरमोथा, कुटकी, गुरुचि, जवासा, पित्तपापड़ा और सोंठि का काथ वातकफ ज्वर को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को नष्ट करते हैं ऐसा वैद्यो ने कहा है ॥ ५ ॥

पित्तकेष्मज्वरे—अमृताष्टककुटकामुतेन्द्रद्यवनागरैः ।

पटोलचन्दनाभ्यां च पित्तपापूर्णयुक्त शृतः ॥ १ ॥

अमृताष्टकमेतत्त्वं पित्तश्लेष्मउवरापहम् । छुर्चरोचकहल्लासदाहत्त्वानिवारणम् ॥ २ ॥

पित्तक ज्वर की ओषधि—अमृताष्टक काथ—गुरुचि, नीम की छाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठि, परोरा की पत्ती और रक्त चन्दन का काथ बना उसमें पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से पित्तक ज्वर का नाशक होता है तथा वमन, अरुचि, हल्लास, दाह और तुष्णा का भी नाश करता है ॥ १ ॥

पटोलं चन्दनं मूर्वा पाठा तिक्षाऽमृता कणा । पित्तश्लेष्मउवरच्छुदिदाहकपृष्ठविषापहः ॥ ३ ॥

पटोलादि काथ—परोरा की पत्ती, रक्त चन्दन, मूर्वा, पुरेन पाढ़ी, कुटकी, गुरुचि और पीपरि का काथ पित्तक ज्वर, वमन, दाह, कण्ठ और विष दोष का नाश करता है ॥ ३ ॥

पटोलं पित्तमन्दं च त्रिफला भ्रुकं बला । साखितोऽयं कथायः स्यात्पित्तश्लेष्मभवे उवरे ॥ ४ ॥

परोरा की पत्ती, नीम की छाल, त्रिफला (अवरा, हर्दे, बहेरा), मुलहठी और बला (वरिआरा) का पकाया हुआ काथ पित्त-कफ से उत्पन्न होने वाले ज्वर में देना चाहिये ॥ ४ ॥

तिक्षोशीरवलाधान्यपर्षटाम्भोधरैः । कृतः । कथायः पुनः समाचारं उवरं शीघ्रं निवारयेत् ॥ ५ ॥

तिक्षादि काथ—कुटकी, खस, बला, धनियाँ, पित्तपापड़ा और नागरमोथा इन बीज ओषधियों का काथ दुबारा आये हुए ज्वर में देने से शीघ्र मिटाता है ॥ ५ ॥

कण्ठकार्यमृताभार्गी नागरेन्द्रद्यवासकम् । भूनिष्वं चन्दनं मुस्ता पद्मेन्द्रिदाहकं ॥ ६ ॥

कण्ठकार्यमृताभार्गी नागरेन्द्रद्यवासकम् । दाहत्त्वाऽरुचीहिक्षाकासहत्पाशवर्षशूलहृत ॥ ७ ॥

कण्ठकार्यादिकाथ—कण्ठकारी (छोटी कटेरी), गुरुचि, भारंगी, सोंठि, इन्द्रद्यव, जवासा, चिरैता, लाल चन्दन, नागरमोथा, परोरे की पत्ती और कुटकी इन सब द्रव्यों का काथ पीने से पित्तक ज्वर का नाश करता है ॥ ६-७ ॥

लोहितचन्दनपश्चकधान्यचिष्ठशूलहृष्टपित्तमन्दकाशायः ।

पित्तकफज्वरवदाहपित्तपासावानितविनाशहृताशकरः स्यात् ॥ ८ ॥

लोहितचन्दनादि काथ—लालचन्दन, पटुमकाठ, चनियां, गुरुचि और नीम की छाल का काथ पीने से पित्तकफ ज्वर, दाह, तुष्णा, वमन इन सब रोगों का नाश होता है तथा यदि क्वाय अग्नि को प्रज्वलित भी करता है ॥ ८ ॥

लाजैर्वा तण्डुलेभृत्यैर्लाजमण्डः प्रकीर्तिः । श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः ॥ ९ ॥

पित्तकफ ज्वर में पथ्य लाजमण्ड—धान का लावा अथवा चावल भूजकर मण्ड की विधि से पकाया हुआ 'लाजमण्ड' कहलाता है । यह पीने से कफ-पित्त ज्वर का नाश करने वाला है और ग्राही तथा पिपासा ज्वर का नाशक होता है ॥ ९ ॥

जीरकं कारवेश्वारभु शीतपूर्वज्वरे हितम् ॥ १० ॥

जीरा और करैली का स्वरस ठंडा लगकर आने वाले ज्वर में हितकर होता है ॥ १० ॥

सत्त्विपाते—सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामककापहम् ।

पश्चात्तुलेभमिं संक्षीणे शमयेत्पित्तसमाहतौ ॥ १ ॥

सन्निपात ज्वर में प्रथम कर्तव्य उपचार—सान्निपातिक ज्वर में प्रथम आम दोष और कफ के नाश होने की चिकित्सा करनी चाहिये, कफ के क्षीण हो जाने पर पित्त और वायु के शमन होने की किया करे ॥ १ ॥

लङ्घनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा । अवलेहोऽज्जनं चैव प्राप्तप्रयोजयं श्रिदोषजे ॥ २ ॥

विदोपज्वर में प्रथम उपवास, बालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह और अज्जन आदि क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

प्रिरात्रं पश्चरात्रं वा दशरात्रमयापि वा । लङ्घनं सत्त्विपातेतु कुर्यादरोग्यदशनात् ॥ ३ ॥

तीन दिन, पांच दिन तथा दस दिन तक अथवा इससे अधिक दिन तक भी सत्त्विपात ज्वर में उपवास करना चाहिये अर्थात् जब तक आरोग्य नहीं दिखाई दे तब तक उपवास करना चाहिये ॥ ३ ॥

दोषाणामेव सा शक्तिं हुने या सहिष्णुता । न कश्चिदोषरहितो लङ्घनं सहस्रे नहः ॥ ४ ॥

दोनों में ही वह शक्ति है जो लङ्घन को सह सकता है, दोष के नहीं रहने पर कोई मनुष्य उपवास करना नहीं सह सकता ॥ ४ ॥

इसस्ये इससंगुदी इक्षस्ये इक्षमोक्षणम् । मांसस्ये रेचनं शस्त्रं मेदोद्धनं मेदसि स्थिते ॥ ५ ॥

रेचनं वमनं स्वेदश्चारित्यस्ये स्वेदमद्दन्तम् । मञ्जशुक्राशयं दृष्ट्वा तमसाध्यं उवरं वदेत् ॥ ६ ॥

रसादिक के अधिकत ज्वर का प्रतीकार—जब ज्वर रसधातु में स्थित हो तो उस अवस्था में रस की शुद्धि करनी चाहिये, जब रक्तधातु में स्थित हो तो रक्तमोक्षण करना चाहिये, मांस में स्थित हो तो विरेचन करावे, मेदा में स्थित हो तो मेदनाशक क्रिया तया रेचन और वमन तथा स्वेदन करावे, अस्थि में जब स्थित हो तब स्वेदन और मद्दन करावे तथा जब मज्जा और शुक्र में ज्वर प्राप्त हो जाय तब उसे असाध्य समझ त्याग देना चाहिये ॥ ५-६ ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शान्तवेगाणां न क्रियासङ्करो हितः ॥

एक क्रिया के करने से यदि वह क्रिया गुणालाभी नहीं हो तब दूसरी क्रिया करनी चाहिये परन्तु पहली क्रिया की शान्ति हो जाय तब दूसरी क्रिया करनी चाहिये उसीके साथ दूसरी क्रिया करने से दोनों के संयोग में इन्हि होती है अर्थात् यदि एक ओषधि या उपचार क्रिया गया उस समय उसके पाचनादि काल तक दूसरी ओषधि नहीं दे देनी चाहिये क्योंकि दो प्रकार की ओषधियों के मिश्रण से दानि होती है ॥ ७ ॥

तदायोलाङ्गुनं पश्चात्ताक्षवादिषु श्रिदोषजे ।

हृदाभिषेकभूदेवभोजनग्रहजाप्यतः । मन्त्ररक्षादिभिः कार्या सज्जिपाते प्रतिक्रिया ॥ ८ ॥

प्रिदोष ज्वर में लोहे को तपाकर तालु आदिक पांच स्थानों को दाग देना चाहिये तथा रुद्राभिषेक, ब्राह्मण भोजन, ग्रहशान्ति, जप और मन्त्र-रक्षादिसे सन्निपात का प्रतीकार करना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ पाचनम् ।

कण्ठकारीद्वयं शुष्ठी धान्यकं सुरदारु च । एवमिः श्रतं पाचनं स्थात्सर्वज्वरनिवारणम् ॥ ९ ॥

ज्वर में पाचन—छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सौंठि, चनियां, देवदारु इन औषधों से बनाया क्वाय पाचन है और सब प्रकार के ज्वर का नाशक है ॥ ९ ॥

खर्परभूषपस्थितकाज्ञिकसंसिक्षालुकास्वेदः ।

शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गमेदासीन् ॥ १ ॥

बालुका स्वेद—एक मिट्ठी के पात्र में बालू को भलीभाँति तपावे पश्चात् वस्त्र में उसे बाँधकर उस पर काँजी सींचे और इससे जो भाफ निकले उससे रोगी को स्वेदन करे । इस स्वेद से—वात, कफ का रोग शिरःशूल तथा अङ्गमेदादि रोग शान्त होते हैं ॥ १ ॥

अथ नस्यम् ।

मातुलङ्गाद्वकरसं कोणं श्रिलङ्गणनिवातम् । क्षन्यद्वा सिद्धविहितं नस्यं तीक्ष्णं प्रयोजयेत् । तेन प्रभिन्नते इत्येषा प्रभिन्नस्तु प्रसिद्धते । शिरोहृदयकपठास्थयाश्वरुक्षोपशास्यति ॥ २ ॥

नस्यविधि—विजूरा नीबू का रस, अद्रक का रस, दोनों किंविदृ उच्च कर तीनों (सेंधा, विड तथा सोचर) नमक मिलाकर अथवा अन्य सिद्धहस्त वैद्यो द्वारा कथित कोई तीक्ष्ण नस्य देने से कफ का भेदन होता है और भेदित होने पर कफ का स्वाव होता है इससे सिर, हृदय, कण्ठ, मुख और पार्श्व देश की पीड़ा शान्त होती है ॥ १-२ ॥

मधूकसारसिन्धूस्थचोषणकणाः समाः । शुष्ठणं पिङ्गाऽऽभसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥

संज्ञा (चेतना) कारक नस्य—महुये का रस, सेन्धा नमक, वच, मरिच और पीपरि सब समान भाग लेकर जल से भली भाँति पीसकर नस्य देने से अचेत अवस्था में चेत हो जाता है॥ ३ ॥

सैन्धवं रघुतमरिचं सर्वयाः कुष्ठपिण्डली । दस्तमूर्च्छेण पिष्ठानि नस्य तन्द्रानिवारणम् ॥ ४ ॥

तन्द्रानाशक नस्य—सेन्धा नमक, खेत मरिच, ससों, कूठ और पीपरि सबको समान लेकर बकरे के मूत्र में पीस कर नस्य देने से तन्द्रा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

अथ निष्ठीवनम् ।

आद्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकुरुक्रयम् । आकण्ठं धारयेष्वाऽऽस्ये निष्ठीवेष्व युनः युनः ॥ १ ॥

तेनास्य हृदयाख्लेष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलाश् ।

लीनो व्याकृत्यसे शुष्ठको लाघवं चास्य जायते ॥ २ ॥

निष्ठीवन विधि—अद्रक के स्वरस में सेन्धा नमक, कटुत्रय (सौंठि-पीपरि-मरिच) का चूर्ण मिलाकर कण्ठ तक भर कर मुख में रक्खे और बार बार थूके इसे निष्ठीवन कहते हैं और इस निष्ठीवन से हृदय, मन्या, पार्श्व देश, सिर और गले से सूखकर लिप्ता हुआ कफ खिचकर निकल आता है और सैन्धी के शरीर में लहुता होती है ॥ १-२ ॥

अवलेहः—कट्टकं पौष्टकं शुष्ठी कुण्डा च मधुना सह ।

शासकासुउरहरः श्वेषो लेहः कफान्तकः ॥ १ ॥

ज्वरहर अवलेह—कायफर, पुष्परकमूल, काकडासिंगी और पीपरि के चूर्ण को मधु के साथ लेह बनाकर चाटे तो श्वास, कास, ज्वर तथा कफ के नाश करने में यह लेह श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

अष्टाङ्गावलेहिका—कट्फलं पौधकरं शृङ्खी ड्योवं यासश्च कारवी ।

शुच्छणं चूर्णकृतं चेतनमधुना सह लेहयेत् ॥ २ ॥

एषाऽवलेहिका इन्ति संनिपातं सुदुरुणम् ।

हिकवां इवासं च कापं च कण्ठरोधं च शुद्धुरम् ।

पृत्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमाद्रकजै रसैः ॥ ३ ॥

अष्टाङ्गावलेहिका—कायफर, पुष्परकमूल, काकडासिंगी, व्योप (सौंठि-पीपरि-मरिच), जवासा और कृष्ण जीरा को भली भाँति चूर्ण कर मधु मिलाकर अवलेह बनाकर चाटने से दारुण सनिपात, हिक्का, श्वास, कास, कण्ठावरोध और गले की धुरधुराहट नष्ट होती है। इसको कफ के उपद्रव में अद्दक के रस के साथ देना चाहिये ॥ २-३ ॥

अथाङ्गनं यस्य च ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः । अज्ञनं स्थाप्रबोध्य सरसोनशिलावच्चैः ॥ १ ॥

चेतनाकारक अज्ञन तथा नस्य—शिरीष का बीज, गोमूत्र, पीपरि, मरिच, सेन्धा नमक, लहसुन, मैनसिल और वच सब पीस कर आंख में अज्ञन लगाने से अचेत को चेतना होती है। तथा केवल लहसुन, मैनसिल और वच के चूर्ण का अज्ञन करने से भी चेतना होती है ॥ १ ॥

कस्तूरी मरिचं बाजिलाला च भृद्धुनाऽञ्जनम् । तन्द्रां निवारयथाणु घ्योषप्रधमनं तथा ॥ २ ॥

कस्तूरी, मरिच, घोड़े के मुख में का लार पीसकर मधु मिलाकर अज्ञन करने से तन्द्रा शीघ्र नष्ट होती है। तथा व्योप (सौंठि, पीपरि-मरिच) के चूर्ण का नस्य देने से भी तन्द्रा नष्ट होती है ॥

अथाङ्गनोद्धूलने ।

तुरङ्गलालासहिता मनःशिला निहन्ति तन्द्रां सकृदञ्जनेन ।

बद्धवूलप्राणि हरीतकी च संस्वेदिता स्वेदविकारहन्त्री ॥ १ ॥

अज्ञन और उद्धूलन—घोड़े के लार के साथ मैनसिल पीस कर एक ही वार अज्ञन करने से तन्द्रा नष्ट हो जाती है। बबूल की पत्ती और स्वेदन की हुई हरड़ का चूर्ण मर्दन करने से स्वेद (पसीने) के विकार को नष्ट करता है अर्थात् अधिक पसीना आना रुक जाता है ॥ १ ॥

भृद्धुन्दकुद्धुकुट्टि कारवीन्द्रयंशः शर्ती । एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २ ॥

प्रस्वेदे कण्ठरोधे च संधिमर्दनमिष्यते । यत्तदुद्धूलनं श्रेष्ठं संनिपातहरं परम ॥ ३ ॥

चिरैता, कुट्की, कुठ, कृष्ण जीरा, इन्द्रयव और कच्चूर इनको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण, करके सन्धियों पर मर्दन करे तो अधिक पसीना आना तथा कण्ठावरोध में लाभ होता है और यह उद्धूलन सनिपात नाश करने के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ २-३ ॥

स्वेशोद्धमे भृष्टकुलस्थचूर्णेऽद्धूलनं भृस्तमिति ब्रुवन्ति ।

जीर्ण शकुद्धोर्लवणस्थ भाण्डं श्वेदापहं गुण्डनमुत्तमं हि ॥ ४ ॥

अधिक पसीना आने में कुलथी भूज कर चूर्ण बना शरीर पर मर्दन करना उत्तम कहा गया है तथा पुराना गोवर और पुराना नमक रखने वाला पात्र दोनों का इलक्षण चूर्ण कर मर्दन करने से पसीना आना रुक जाता है ॥ ४ ॥

बृद्धवाञ्मटः—यवानिका वचा शुण्डो पिष्पली कारवी तथा ।

एतेऽस्तद्धूलनं शास्तं निद्रोषोत्थे उवरे नृणाम् ॥ ५ ॥

बृद्ध वाञ्मट के मत से—अज्वाइन, वच, सौंठि, पीपरि और कृष्ण जीरा इनके चूर्ण को मर्दन करने से मनुष्यों के निद्रोष उवर नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

किरातं कटुका पथ्या कणा कायफलं वचा । उद्धूलनं निद्रोषे च सदा शैत्ये च शास्यते ॥ ५ ॥

चिरैता, कुट्की, हरें, पीपरि, कायफर, और वच के चूर्ण को मर्दन करने से निद्रोष उवर तथा सदा अझों का शीतल रहना नष्ट होता है ॥ ६ ॥

विषभागो भवेदेको मरिचात्रिगुणो मतः । आरण्योपलजं भस्म षोडशांशसमन्वितम् ॥ ७ ॥

एकत्र मिलितं चूर्ण धूर्तस्वरवभावितम् । आतपे शोषितं तत्त्वं शीतं स्वेदहरं चरम ॥ ८ ॥

शुद्ध विष (वत्सनाम) एक भाग, मरिच का चूर्ण तीन भाग, जड़ली गोडठे की राख सोल-इवां भाग ले सब एकत्र कर धूरूरे के स्वरस की भावना देकर धूप में सुखा ले। यह शीतलता (अझों की) और पसीना (अधिक आना) को नाश करने के लिये उत्तम है ॥ ७-८ ॥

अथवा चणका भृष्टा यवानीचूर्णमिथिताः । वचोषणरजोयुक्ताः स्वेदस्त्रोषणा मताः ॥ ९ ॥

अथवा भूजा हुआ चना और अज्वाइन का चूर्ण कर वच तथा मरिच के चूर्ण में मिलाकर मर्दन करने से पसीना अधिक आना नष्ट होता है ॥ ९ ॥

अथ सन्निपाते जिह्वायां लेपः ।

उद्धूलका स्फुटितो जिह्वां द्राक्ष्या भृषुपिष्या । प्रलेपयेत्सधृतया संनिपातात्मके उवरे ॥ १ ॥

सन्निपात में जिह्वा पर का लेप—सन्निपात उवर में शुकु दुर्र तथा फटी हुई जिह्वा पर भृषु के साथ दाख (मुनक्का) पीसकर धी मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ १ ॥

सुवर्णमुक्कारजतप्रवालैः कस्तूरिकाकुङ्गमरोचनं च ।

वाराटरुदादमधूकविरुवं कुष्ठं च सर्वज्ञपुनर्नवा च ॥ २ ॥

द्राक्षा कणा नायदपुवजीविसारकशृङ्गं कतकश्य वीजम् ।

परण्डमूलं शारसवर्षं च मयूरका श्वेतपुनर्नवा च ॥

स्तन्येन पिष्टवा कुरु संनिपाते लेपं सदा सर्वगदं निहन्ति ॥ २ ॥

सुवर्ण, मोती, चांदी, प्रवाल (मूँगा), कस्तूरी, केशर, गोरोचन, कौड़ी, रुद्राक्ष, मटुआ, वेल, कुठ, खर्जूर, पुनर्नवा (गदहपुरना), मुनक्का, पीपरि, सौंठि, पुत्रजीवक (जिआ पोता), बारह सिंगे की सींग, निमली का बीज, परण्डमूल का त्वक्, शर (सरकण्डा), सर्सों, मयूरिका (अम्बष्टा-पाढ़) और श्वेत पुनर्नवा (श्वेत गदहपुरना) इन सबको समान भाग लेकर धूप में पीस कर लेप करने से सब प्रकार के सन्निपात सदा नष्ट होते हैं ॥ २-३ ॥

पञ्चमुष्टिक्यूषः—यद्वक्लकुलित्थानो मुद्रमूलकयोरपि ।

एककं सुष्टिमादाय पचेद्धूपुणे जले ॥ ४ ॥

पञ्चमुष्टिक दृश्येष वातपित्तकापहः । शास्यते गुणमशूले च शासे कासे द्वये उवरे ॥ ५ ॥

पञ्चमुष्टिक यूष—यव, बैर, कुलथी, मूँग और मूली इन सबको एक एक मुट्ठी के प्रमाण से लेकर अंगुने जल में पकावे और इसके यूष को ‘पञ्चमुष्टिक्यूष’ कहते हैं इससे वात-पित्त और कफ का नाश होता है और गुणमशूल, श्वास, कास, क्षय तथा उवर में लाभ करता है ॥ ४-५ ॥

सप्तमुष्टिक्यूषः—कुलित्थयकोलैश्च मुद्रेमूलकशूलकैः ।

शुष्टीधार्यक्यूषेत्य यूषः रलेमानिलापहः । सप्तमुष्टिक दृश्येष संनिपातज्वराञ्जयेत् ॥ ६ ॥

सप्तमुष्टिक यूष—कुलथी, जौ, बैर, मूँग, मूली, सूखी हुई सौंठि, धनिया, इस सात ओषधियों को एक मुट्ठी के प्रमाण से लेकर अंगुने जल में यूष बनाकर सेवन करने से वात और कफ का नाश होता है और इसी को ‘सप्तमुष्टिक्यूष’ कहते हैं। यह सन्निपातज्वर को नष्ट करता है ॥

सिद्धार्थदिप्रलेपकः—सिद्धार्थको वधा हिङ्गु करज्ञः सुरदाह च ।
मालिष्ठा विकला श्वेता कटभित्यकुट्टयम् ॥ १ ॥

प्रियकुञ्ज शिरीषं च निशा द्वार्धी समांशतः ।

आजामूर्त्रेण संपिण्डे गोमूर्त्रेषांडय चूर्णिता । सर्वज्वरं निहन्याशु सिद्धार्थदिप्रलेपकः ॥ २ ॥
सिद्धार्थदि लेप-श्वेत सरसों, वच, इंगा, करज्ञ, देवदारु, मजीठ, त्रिफला (अवरा-हर्त-बहेरा) श्वेत अपराजिता, कटभी त्वक् (छोटी मालकांगुनी की छाल), त्रिकुणि (सोंठि, पीपरि, मरिच), फूलप्रियंगु, शिरीस, हरदी, दाशहरदी, इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण कर बकरी के भृत्र वधवा गोमूर्त्र से पीसकर लेप करने से यह सिद्धार्थक लेप सब प्रकार के ज्वर का नाश करता है ॥ २ ॥

अथ काथः ।

आङ्गीभूनिग्रन्थवैर्घ्यंकुट्कवचाव्योवदासाविज्ञाला-
रास्नानन्तापटोलीभुरतदरजनीपाटलादुण्डुकेश ।

ब्राह्मीदावर्णीगुहूचित्रिवृद्धिविषिकापुष्करव्यायमाणे ।

द्व्याग्रीसिंहीकलिङ्गश्रिकलशियुतेः क्षिप्तस्तुवयभागैः ॥ ३ ॥

काथो द्वात्रिविशदाख्यस्यधिकदशमहासंनिपाताच्छहन्या-
च्छुलं कासाद्विहिकाक्षसनगुहुरुजाभ्मानविवरंसकाही ।

उरस्तम्भान्तवृद्धिं गलगदमर्हिं सर्वसंचिप्रहार्ति-

मातङ्गं यो निहन्यान्मृगरुपुरिव चेद्विग्यालं तथैव ॥ २ ॥

संक्षिप्तात में द्वात्रिशदक वधार्थ—मारंगी, चिरैता, नीम की छाल, नागरमोथा, कुट्की, वच, सोंठि, पीपरि, मरिच, अरुसा, इन्द्रायण, रास्ना, अनन्तमूल, पटोलपत्र, देवदारु, हस्ती, पाढ़र, सोनापाठा, ब्राह्मी, दाशहरदी, गुहूची, निशेश, अतीस, पुष्करमूल, व्यायमाणा, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, इन्द्रजौ, अवरा, हर्त, बहेरा, कच्चर ये सब ३२ द्रव्य समान भाग लेकर काथ करे, इन बत्तोंसे वस्तुओं के योग को 'द्वात्रिशदक' कहते हैं। इसके सेवन करने से तेरह प्रकार का महासंक्षिप्तात नष्ट होता है तथा शूल, कास, द्विका, श्वसन (शास), अर्श, आध्मान, उरस्तम्भ, अन्तरुद्धि, गले का रोग, अरुचि, सब प्रकार के सन्धि का जकड़ना आदि रोग के समूहों को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सिंह हाथी को नष्ट कर देता है ॥ २ ॥

भूनिग्रवदारुदशमूलमहौषधाद्वित्तेन्द्रधीजधनिकेभकणाक्षयाथः ।

तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहशासादियुक्तमिलिलज्वरमाशु हन्यात् ॥ ३ ॥

अष्टादशाङ्ग काथ—चिरैता, देवदारु, बेल, गम्भार, पाढ़र, गनियार, अरुल, सोनापाठा, सरिवन, पिठिवन, छोटी कटेरी, गोखरू, सोंठि, नागरमोथा, कुट्की, इन्द्रजौ, धनिया और गज-पीपरि का क्वाथ तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह, मोह, श्वासादि से युक्त सब प्रकार के ज्वर को शीघ्र नष्ट करता है, इसे अठारह द्रव्यों के योग होने से 'अष्टादशांग' कहते हैं ॥ ३ ॥

चुद्रापौष्करभूनिग्रवदुचित्रभेषजैः । पञ्चतिक्ककनामाऽयं काथो हन्यष्टुधा ज्वरम् ॥ ४ ॥

पञ्चतिक्क क्वाय—छोटी कटेरी, पुष्करमूल, चिरैता, गुहूची, सोंठि इन पाँच वस्तुओं के एकत्र योग के क्वाथ को 'पञ्चतिक्क' क्वाय कहते हैं, इसके सेवन से आठों प्रकार के ज्वर का नाश होता है ॥ ४ ॥

अन्यच—दार्ढर्यम्बुद्धित्तकफलत्रिकं च चुद्रा पटोली रजनी च निश्चयः ।
वधार्थ विद्युत्याज्ज्वरसंनिपाते निश्चेतने पुंसि विबोधनाथंम् ॥ ५ ॥

दूसरा क्वाय—दाशहरदी, नागरमोथा, कुट्की, अवरा, हर्त, बहेरा, छोटी कटेरी, पटोलपत्र, हरदी और नीम की छाल इन द्रव्यों का काथ सेवन करने से संक्षिप्तात ज्वर दूर हो कर अचेतन पुरुष को चेतनता प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

कफप्रधानसंनिपाते—प्रन्थीन्द्रजामरतस्तुक्षिप्तात्तुभार्ङ्गभृष्टश्रिकट्वनककट्कलपैष्करणाम् ।

शस्नाभयान्तुहतिकाद्यथीप्यभूतकेशीकिरातकवचाचविकावृकीणाम् ॥ ६ ॥

वधाथो हन्यात्संनिपातान्समग्रान् तुद्विभ्रंश स्वेदशैस्थप्रलावान् ।

शूलाध्मानं विद्रविंश्च श्लेष्मवातान्वात्याधीन्सूतिकानां च तद्वृष्टः ॥ ७ ॥

कफप्रधान संक्षिप्तात में क्वाथ—पिपरामूल, इन्द्रजौ, देवदारु, वाभीरज, भारंगी, दालचीनी, सोंठि, पीपरि, मरिच, चित्त, काथफर, पुष्करमूल, रास्ना, हर्त, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अज-वाइन, जटामासी, चिरैता, वच, चाम, बृकी (पाढ़र) इन सब ओषधियों का क्वाथ सब प्रकार के संक्षिप्तात को नष्ट करता है तथा बुद्धिमेश, स्वेद, शीत लगना, प्रलाप, शूल, आध्मान, विद्रवि, कफवात, वात व्याधि तथा सूतिका रोग का नाश करता है ॥ ६-७ ॥

वातप्रधानसंनिपाते—अर्कानन्ताकिरातामरतस्तुक्षिप्तारोग्नचा-

तर्कारीशुभृष्टपैष्कोष्ठयुणद्यितामार्कवाणीं क्षायाः ।

स्थैर्यस्तीर्णच्छिद्धोषानपद्वरति धनुमूर्हतं दन्तवृष्टं

शैर्यं मात्रेषु गाढं श्वसनकसनकं सूतिकावातरोगान् ॥ ८ ॥

वातप्रधान संक्षिप्तात में क्वाथ—मदार, अनन्तमूल, चिरैता, देवदारु, रास्ना, सम्भाल, वच, छोटी अरणी, सहिजन, पिपरामूल, पीपरि, चाम, चित्त, सोंठि, अतीस और भारंगा इन द्रव्यों का क्वाथ सेवन कराने से शीघ्र वढ़े हुए त्रिदोष नष्ट होते हैं तथा धनुर्वात, दन्तवृष्ट (दाँत लगना) शरीर का शीतल रहना, श्वास, कास, सूतिका और वात रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

अन्यच—अर्कंग्रीष्यिकशिग्रुदाहचिकानिर्युणिदकापिष्पली

रास्नाभृष्टपुनर्नवाऽनलवचाभूनिश्यशुण्डीकृतः ।

क्वाथः संहरति श्रिदोषमिलिं स्वापानिलं सूतिका-

नानामारुतशैर्यशान्तिकदप्स्मारस्मश्यवृक्षः ॥ ९ ॥

और भी—मदार, पिपरामूल, सहिजन, देवदारु, चाम, सम्भाल, पीपरि, रास्ना, भारंगा, गदहपुराना, चित्त, वच, चिरैता और सोंठि इन द्रव्यों का क्वाथ सब प्रकार के त्रिदोष, सुन्नवात, सूतिका रोग, नाना प्रकार के बातरोग, शीत लगना आदि को नष्ट करता है और अपस्मार को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार महादेव कामदेव को ॥ ९ ॥

बिलवोडिनमन्थः स्थोनाकः काशमरी पाठला स्थिरा ।

त्रिकण्ठकः प्रशिनपर्णी ब्रुहत्ती कण्ठकारिका ॥ १० ॥

दशमूलमिलं श्वाससंनिपातज्वरापहम् ।

दशमूल क्वाथ—बेल, गनियार, सोनापाठा, गम्भार, पाढ़र, शालिपर्णी, गोखरू, पुश्निपर्णी, बड़ी कटेरी और छोटी कटेरी इन दस द्रव्यों को दशमूल कहते हैं। इसके क्वाथ से श्वास तथा संक्षिप्तात ज्वर नष्ट होता है ॥ १०-१०३ ॥

दशमूली शटी शृङ्गी पौष्करं सद्वृशलभम् ॥ ११ ॥

शुण्डी कुटजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी ।

अष्टादशाङ्ग दयेष संनिपातज्वरापहः । कासहृदप्रहपार्थीर्तिशासिहिकावमीहरः ॥ १२ ॥

दशमूलाच अष्टादशाङ्ग क्वाथ—दशमूल की दसों ओषधियां, कच्चर, काकडार्सिंगी, पुष्करमूल,

जवासा, सौंठि, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इन अठारह द्रव्यों को 'अष्टादशाङ्क' कहते हैं। इसके क्वाथ से सन्निपात ज्वर नष्ट होता है तथा कास, हृदय का जकड़ना, पाश्वर्पीड़ा, श्वास, इक्का और बमन आदि नष्ट होते हैं ॥ ११-१२ ॥

लहूनं तिर्कं काण्डं भार्ही चातिविषा तथा । नरमूत्रेण च काथः संनिपाते सुवार्षणे ॥ १३॥

लशुनादि क्वाथ—लहून, चिरैते की लकड़ी, मारंगी और अतीस इन सब के क्वाथ में मनुष्य के मूत्र का प्रक्षेप देकर पीने से अत्यन्त कठिन सन्निपात नष्ट होता है ॥ १३ ॥

अथ संधिकादीनां चिकित्सा ।

संधिस्थे हितमस्ति लङ्घनविधिस्वेदोपनाहादिकं
रुदं कर्म समग्रमेव विहितं कुर्याद्यागूरसम् ।
मूलीपञ्चकक्षकक्षिपतमिदं सम्मागधीमिश्रितं
कौल्यथेन रेसेन सैन्धवयुतं येण च विश्वैषधम् ॥ १ ॥

सन्धिक आदि १३ सान्निपातिक ज्वरों की चिकित्सा—सन्धिक सन्निपात की चिकित्सा—सन्धिक आदि १३ सान्निपात में लहून, सन्धिक, स्वेद, उपनाह (पुलिंश) से सेक की किया करना तथा सम्पूर्ण रुद्ध कियाओं को करना चाहिये और यवागू तथा रस आदि देना चाहिये। छोटी पञ्चमूली (शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरु) का कल्प बना कर उसमें कुल्थी के रस और पीपरि, सेन्धा नमक तथा सौंठि मिलाकर सन्धिक सन्निपात में पिलावे ॥ १ ॥

रासनागुहूचीशिवृद्धारुसुराहूविश्वाशिफलावरीभिः ।

क्वाथं पिवेद् गुगुलुसम्भुक्तं समस्तसन्धिग्रहसन्निपाते ॥ २ ॥

रासना, गुरुचि, कचूर, विवारा, देवदारु, सौंठि, अंवरा, हर्रा, बहेरा और सतावर इन द्रव्यों का काथ बनाकर गुगुल का प्रक्षेप देकर पीने से सब प्रकार के सन्धिक सन्निपात नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

रासनागुहूचीगुहूचीसह चरजलदामीहृपथ्यासुराहौ-
रितकाकचूरवासाऽनिलशिपुसहितः पञ्चमूलीद्वयेन ।

पमिद्रौङ्ग्यैः कथायस्वरितमपहरेष्यतमान्नः प्रसाते
मन्यास्तम्भान्त्रिद्विद्वरपिटककटीसंधिसर्वङ्गीडाः ॥ ३ ॥

रासना, सौंठि, गुरुचि, विवारा, नागरमोथा, सतावरि, हर्रे, देवदारु, कुटकी, कचूर, अल्पासा, रेड के सीर की छाल और दशमूल इन सब द्रव्यों का काथ बनाकर प्रातःकाल पीने मात्र ही से शीघ्र मन्यास्तम्भ, अन्तर्वृद्धि, ज्वर और पिंडिका, कटि प्रदेश, सन्धि स्थान तथा सम्पूर्ण अङ्गों की पीड़ा का नाश होता है ॥ ३ ॥

अमूतोद्वृक्षिविश्वासुरतरुदान्नाहरीतकीकाथः । सकलसमीरणोगान् प्रातः सथो हरेत् पीतः ॥

गुरुचि, एरण्डमूल की छाल, सौंठि, देवदारु, रासना और हर्रे का काथ प्रातःकाल पिलाने से सब प्रकार के बात रोगों का शीघ्र नाश करता है ॥ ४ ॥

प्रनिक्षकलित्तस्थ्याकृतमालशिवाटरुषकैर्विहितः ।

एरण्डतैलयुक्तः क्वाथो हृन्यान्मरुन्मान्द्यम् ॥ ५ ॥

पिपरामूल, बहेरा, हर्रा, अमलतास, आमला और अल्पास इसके काथ में एरण्डतैल का प्रक्षेप देकर पीने से वायुरोग तथा अविमान्य रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अथान्तकस्यासाध्यत्वादीपर्वं नास्ति ।

अन्तक सन्निपात असाध्य है इससे इसकी ओषधि नहीं लिखते हैं।

अथ रुद्राहस्य चिकित्सा ।

जलधरमलयजनागरसवालकोशीरपर्यटे: इवयितम् ।

यः पिबति पथः शीतं शास्यति रुद्राहस्य ॥ १ ॥

रुद्राह सन्निपात की चिकित्सा—नागरमोथा, चन्दन मलयागिरि, सौंठि सुगन्धवाला, खस, पित्तपापडा इन द्रव्यों को समझाय लेकर काथ बना कर शीतल कर पीने से रुद्राह सन्निपात शान्त होता है ॥ १ ॥

बदरीपञ्चवक्षेपः श्रीख्यपदारिष्टफेनसंयुक्तः । दातव्यः पदतलयो बद्राहकसंनिपातद्वः ॥ २ ॥

बैर के पत्तों को पीसकर लेप बनावे इसमें चन्दन और नीम के पत्तों को पीसकर मध्यने से उत्पन्न फेन को मिलाकर पैस के नलवे में मलने से रुद्राह सन्निपात नष्ट होता है ॥ २ ॥

पर्युषितधान्यसलिलं प्रातः पीतं मशर्करं पुंसाम् । अन्तर्दाहं शमयति प्रवृद्धसपि तरुणादेष्व ॥

रात्रि में धनिर्या को पानी में भिगो देवे दूसरे दिन प्रातः उस जल में शक्ति मिलाकर पीने से अत्यन्त बढ़ा हुआ अन्तर्दाह मी क्षण भर में शान्त हो जाता है ॥ ३ ॥

ब्राह्मोद्वात्साजलधरवच्चोशीरशास्याकतिक्षापथ्याद्यात्रीकलित्तस्थलमित्तकोशातकीभिः ।

भूनिड्वाद्यो भवति सहितः पञ्चमूलीद्वयेन-पीतः क्वाथः सकलपदवनध्याधिरुद्राहहन्ता ॥ ४ ॥

ब्राह्मी, दाख, नागरमोथा, वच, खस, अमलतास, कुटकी, हर्रे, अवरा, बहेरा, बला, नीम की छाल, कड़वी तरोई, चिरैता, दशमूल इन सब द्रव्यों का काथ बनाकर पीने से सब प्रकार के वायुरोग तथा रुद्राह सन्निपात नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

अगुरुधनसारसञ्चकरकहनतनीरचन्दनैर्युक्तः । रुद्राहसंनिपातं निहन्ति मधुमिश्रितो धूपः ॥

अगर, कंपूर, शिलारस, नखी, तगर, सुगन्धवाला और चन्दन इन द्रव्यों को चूर्णकर मधुमिलाकर धूप देने से रुद्राह सन्निपात नष्ट होता है ॥ ५ ॥

निर्गुण्डीपुरसहितः सिद्धार्थकनिर्मलसंयुक्तः । सर्जसेन समेतो धूपो रुद्राहकं हन्ति ॥ ६ ॥

सम्भाल, गुगुल, ससी, नीम और सर्जस (राल) सब को कूट पीसकर धूप देने से रुद्राह सन्निपात नष्ट होता है ॥ ६ ॥

पथोधराभ्यां कुशलां सुरुपां चवयौवनाम् । प्रमदां स्वसुजारक्षेपैर्भंजेद्वृद्धाहमूर्च्छितः ॥ ७ ॥

प्रहादं चास्य विज्ञाय तां श्वीमपनयेत् पुनः । हितं च भोजयेद्वृश्च येनाग्नोति सुखं महत् ॥ ७ ॥

प्रहादं = कामकूतं हर्षम् । हिति भावप्रकाशात् ।

रुद्राह से भूर्चित रोगी, उत्तम स्तनों वाली, कुशल (चतुर), रुपवती, युवती जी को अपनी मुजाओं से आलिङ्गन करे—इससे जब रोगी को कामोद्रेक होने लगे तब ली को हटा देवे और हितकर पदार्थ भोजन करने को देवे इससे रोगी को सुख होता है ॥ ७-८ ॥

अथ चित्तविभ्रमचिकित्सा ।

पथ्यापर्षटकटुकामृद्धीकादरुजलधर्मिन्द्वाः । शस्याकपटोलशिवाकाथवित्तभ्रमं हन्ति ॥ ९ ॥

चित्तविभ्रम सन्निपात की चिकित्सा—हर्रे, पित्तपापडा, कुटकी, सुनका, देवदारु, नागरमोथा, चिरैता, अमलतास, पटोलपत्र और आंवला का काथ चित्तविभ्रम सन्निपात को नष्ट करता है ॥

हरीतकीपर्षटहरूराशमूरुकपुष्पीकटुकापयोदैः ।

शस्याकदेवाध्यभारतीभिश्रितभ्रमं हन्ति कृतः क्वायः ॥ १० ॥

हर्रा, पित्तपापडा, हारहूरा (दाख), शङ्खपुष्पी, कुटकी, नागरमोथा, अमलतास, देवदारु, आंवली इन द्रव्यों का काथ बनाकर पीने से चित्तविभ्रम सन्निपात नष्ट होता है ॥ १० ॥

मरिचदशमूलमगधाफलत्रयनिशामहौषधीतिक्षा: ।

भूनिड्वसैन्धवयुतः कर्णकहन्ता भवेत् व्याथः ॥ ५ ॥

मरिच, दशमूल, पीपरि, अंबरा, हर्टा, बहेरा, इरदो, सौठि, कुटकी, चिरैता और सेन्धा नमक इन द्रव्यों का व्याथ पीने से कर्णक सन्निपात नष्ट होता है ॥ ५ ॥

हिङ्गुड्विनिशाविशालासैन्धवसुरवारुकुष्ठरविदुर्घैः ।

दत्तः क्षमेण लेपो हन्ति महाकर्णकप्रनिधिम् ॥ ६ ॥

हींग, हरदी, दारहरदी, इन्द्रायण, सेन्धा नमक, देवदार, कूठ, मदार का दूध इन सबको पीसकर लेप करने से महाकर्णक सन्निपात की भी ग्रन्थि नष्ट होती है ॥ ६ ॥

दशशब्दकरुच्छारुकरथक्षमेतं दहनगुडनिकुम्भाकुष्ठकासीसयुक्तम् ।

अपनयति वितीर्ण लेपनं सप्तरात्राच्छ्वयथुहरणमुक्तं कर्णकप्रनिधिमेतत् ॥ ७ ॥

मदार का दूध, छिलका युक्त मिलावा, चित्त, गुड, दन्ती, कूठ, कासीस इन सब द्रव्यों को पीसकर लेप करने से सात दिन में सूजन तथा कर्णक की ग्रन्थि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

अशिशिरजलयुक्तं नावनं कर्णकातौ जनयति सुखसिद्धिं ग्राणरन्धप्रवेशात् ।

छब्बणपरमकृष्णाचूर्णयुक्तं प्रभाते सकलमुनिभिरुक्तं द्याघिविश्वंसकारैः ॥ ८ ॥

अशिशिर (थोड़ा गर्म) जल में सेन्धा नमक और पीपरि का चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल कर्णक रोधी यदि नाक के द्वारा नस्य लेवे तो कर्णक रोग नष्ट होकर सुख प्राप्त होता है, इसको मनुष्यों ने रोगनाशक कहा है ॥ ८ ॥

दन्तीचित्रकयोमूलं स्तुव्याकर्यसी गुडः । अस्त्रातकाहियं कासीसं लेपो भवति कर्णके ॥ ९ ॥

दन्तीमूल और चित्त की जड़, सेंडुड और मदार का दूध, गुड, मिलावे की अस्थि (बीज) और कासीस इन द्रव्यों को पीसकर कर्णक सन्निपात में ग्रन्थि पर लेप करना चाहिये ॥ ९ ॥

सनागर देवदारास्तनित्रिकरेषितम् । प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं गलशोथविनाशनम् ॥ १० ॥

सौठि, देवदार, रासना और वित्त की जड़ इन द्रव्यों को पीसकर लेप करना गले के शोथ के लिये श्रेष्ठ है अर्थात् शोथनाशक है ॥ १० ॥

कुलित्थः कट्टलं शुण्ठी कारवी च समांशकैः । सुखोषणं लेपनं कार्यं कर्णमूले सुहुसुहुः ॥ ११ ॥

कुलित्थादि लेप—कुलित्थी, कायफर, सौठि और काला जीरा सब सम भाग लेकर पीसकर किञ्चित् उष्ण कर बार-बार कर्ण की ग्रन्थि पर लेप करने से लाग होता है ॥ ११ ॥

बोजपूरकमूलत्वग्विहमन्धस्तथैव च । शारपुड्विनिशीतुम्बीसकृष्णाविषमुष्टिभिः ॥ १२ ॥

प्रलेपो वा हिंदुमध्यभिः श्वयथै कर्णमूलजे । वज्रमुष्टिभवः कल्पः शोथविश्वंसनश्चमः ॥ १३ ॥

बिजीरे नीबू की जड़ की छाल, गनियार की छाल, सरकोंका, अपामार्ग, कडुकी, तरोई, पीपरि कुचिला इन द्रव्यों को पीसकर हिंदुमध्यी (—) मिलाकर लेप करने से कर्णमूल का शोथ नष्ट होता है तथा वज्रमुष्टि (जंगली सूरन) की जड़ का लेप करने से शोथ नष्ट होता है ॥ १२-१३ ॥

कर्कटस्थ च मासेन स्वेदनं व्यन्धनं तथा । कर्णमूलभवं शोथं नाशयत्यविलक्षितम् ॥ १४ ॥

केकड़े के मास से स्वेदन (उष्ण कर मेंकरे) एवं व्यन्धन (शोथ पर बांधने) से कर्णक ज्वर का शोथ शीघ्र नष्ट होता है ॥ १४ ॥

सिद्धार्थसैन्धववचायगृह्मविश्वैः पिष्टैर्जलेन निशया सहितेष्व सूखमम् ।

लेपो हितो रुधिरनिष्कमणप्रतीतशोकवृणश्य शमनः सहजश्च कर्णे ॥ १५ ॥

सरसों, सेन्धा नमक, वच, वर में धूम से उत्पन्न शोला, सौठि और हरदी इन द्रव्यों को पीस

कर लेप करने से रक्तमोक्षण के पश्चात् के सूजन और ब्रण शान्त होता है तथा कान की पीड़ा भी नष्ट होती है ॥ १५ ॥

अथ भुग्नेत्रचिकित्सा ।

दार्थर्यग्वुदस्तिकफलत्रिकं च चुदा पटोली रजनी सनिद्धा ।

कवाथं विद्युत्यज्वरसन्निपाते निश्चेतने पुंसि विद्योधनार्थम् ॥ ३ ॥

मुझनेत्र सन्निपात की चिकित्सा—दारहरदी, नागरमीथा, कुटकी, त्रिफला, छोटी कटेरी, पटोलपत्री, हरदी और नीम की छाल इन सब द्रव्यों का कवाथ सन्निपात ज्वर में अवैत हुए रोगी को वैतन्य करने के लिए देना चाहिये ॥ १ ॥

भूनिड्वमाल्खिकवासद्वितं च कुर्यात्क्षेहं कणोषणरसोनसुराजिकाभिः ।

नेत्राभ्यन्तं च लवणोत्समपिष्पलिभ्यां नस्यं वाघामरिच्छिह्नुमधूकसारैः ॥ २ ॥

चिरैता, मधु, वच, पीपरि, मरिच, लहसुन और राई इन द्रव्यों को समान भाग में लेकर अद्वेष्ट की विधि से लेह बनाकर देवे, सेन्धा नमक और पीपरि के चूर्ण का आंख में अजन करे और वच, मरिच, हींग और महुए का रस का नस्य बनाकर देवे ॥ २ ॥

मरिचतुरगगन्धामागधीसिन्धुजात-लहसुनमधूकसारैरुग्रगन्धार्दकाभ्याम् ।

छागलकजलपिण्डः संयुतः शास्त्रविद्धिः सपदि भवति नस्यो भुग्नेत्रप्रमाणी ॥ ३ ॥

मरिच, असगन्ध, पीपरि, सेन्धा नमक, लहसुन, महुए का रस, वच, अदरक इन सब द्रव्यों को बकरे के मूत्र से पीसकर नस्य देने से शालज्ञों का कहना है कि भुग्नेत्र सन्निपात नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ रक्तष्ट्रीविचिकित्सा ।

पर्यंधन्वयवासकवासाभूत्युणकैः कटुकीफलिनीभ्याम् ।

शर्करया सहितोऽपि कथायो लोहितसास्यगते विनिहन्ती ॥ १ ॥

रक्तष्ट्रीवी सन्निपात की चिकित्सा—पित्तपापड़ा, धमासा, अलसा, गन्धरुण, कुटकी और मेहदी इन द्रव्यों के कवाथ में शक्त का प्रक्षेप देकर पीने से मुँह से रक्त निकालने वाला अर्थात् रक्तष्ट्रीवी सन्निपात नष्ट होता है ॥ १ ॥

अलहाद्वयपश्चकपर्यंटकं मर्लंयोज्वरात्तिवरीमधुकैः ।

मधुनिग्वजलानलचन्दनकैः कथितं मुखरकहरं सलिलम् ॥ २ ॥

नागरमोथा, पदुम काठ, पित्तपापड़ा, चन्दन इवत, चमेली, सतावरि, मुलहठी, नीम की छाल, सुगन्धबाला, चित्त, रक्तचन्दन, इन द्रव्यों के कवाथ में मधु मिलाकर पीने से मुख से रक्त निकालने वाला सन्निपात नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ प्रलापचिकित्सा ।

तगरतुरगगन्धा पर्पटी शङ्खपुष्पी त्रिदशविटपितिका भारती भूतकेशी ।

जलशरकृतमालश्चेततीरोस्तनश्च तद्द्वयां तद्वति कथायो लहुच्च पानागप्रलापम् ॥

प्रलापक सन्निपात की चिकित्सा—तगर, असगन्ध, पित्तपापड़ा, शङ्खपुष्पी, देवदार, कुटकी, ग्राही, जटामासी, नागरमोथा, अमलतास, चेतकी हरे, मुनका, इन सबों का काथ बनाकर पिलाने से प्रलापक सन्निपात शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

जलधरदशमूलं वारि शुण्ठीसमेतं मलयज्ज्वत्मालं वासकं पर्पटं च ।

समधरणशूतांशः कवाथ पृष्ठ प्रभाते शमयति समुद्रीणं पीतमात्रः प्रलापम् ॥ २ ॥

योगरत्नाकरः ।

नागरमोथा, दशमूल, सुगन्धबाला, सौंठि, सफेद चन्दन, अमलतास, अरुसा, पित्तपापडा, इन सब ओषधियों का काथ बनाकर प्रातः काल पीने मात्र से ही प्रवृद्ध भी प्रलापक सन्निपात तत्काल नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ जिह्वकचिकित्सा ।

सिंहीनागरपुङ्करैः सकटुकैः रासनागृहीयुतैः

भर्जीर्कटश्चक्षिकाशादिसमैर्दुःस्पर्शवासावैतैः ।

पीतं जिह्वकहरि वारि भवति ब्राह्मीवच्चामिश्रितैः

प्रोक्ष वैद्यथरेण वन्धमुनिभिर्भूत्वमित्रं शृतम् ॥ ३ ॥

जिह्वक सन्निपात की चिकित्सा—बड़ी कटेरी, सौंठि, पुष्करमूल, कुटकी, रासना, पित्तपापडा, भारंगी, काकडासिंगी, कन्चू, जवासा, अरुसा, नागरमोथा, ब्राह्मी, वच, चिरैता इनका काथ पिलाने से श्रेष्ठ द्रव्यों ने कहा है कि जिह्वक सन्निपात नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सुरतरुक्तुनिर्वैरवपथ्यापटोरजनियुगलविक्षासिंहिकापुङ्कराह्वैः ।

मलिलवरगृहीयोवासकैः सद्यमेभिः प्रायमयति क्षायो जिह्वक कष्टसाध्यम् ॥ २ ॥

देवदारु, कुटकी, नीम की छाल, बहेरा, हर्दा, पटोलपत्र, हरदी, दारहरदी, सौंठि, बड़ी कटेरी, पुष्करमूल, नागरमोथा, उसन्चि, अरुसा इन सब द्रव्यों का काथ बनाकर पिलाने से कष्टसाध्य भी जिह्वक सन्निपात शान्त होता है ॥ २ ॥

तीक्ष्णद्रव्यैः सलवणैर्मतुलुक्तरसपुत्रैः । जिह्वायां च सक्षेपः कटुतीचणेन संयुतैः ॥ ३ ॥

तीक्ष्ण द्रव्यों में नमक और विजोरा नेकू का रस मिलाकर तथा कटु और तीक्ष्ण द्रव्यों को भी मिलाकर जिह्वा पर एक बार लेप करने से जिह्वक सन्निपात नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथाभिन्यासचिकित्सा ।

रामठनागरसहितं भृङ्गरसाम्लं विलेहयेत् प्रातः ।

अथ कटुतिकोपयुतं भवति सुखप्रवाधनं तस्य ॥ १ ॥

अभिन्यास सन्निपात की चिकित्सा—हींग, सौंठि और भांगेर का रस इनमें अम्ल कटु तथा तिक्करस मिश्रित कर प्रातःकाल चढ़ाने से सुखपूर्वक अभिन्यास का रोगी चेतन्य हो जाता है ॥ १ ॥

मरिचलवणकूण्डाभूतकेशीमधूकैः कटुफलमधु कृत्वा काण्डनीरेण नस्यः ।

प्रकट्यति विकीर्णश्चाष्टभिर्वाचतुर्भिः सकलकरणयोर्धं विन्दुभिर्दीयमानः ॥ २ ॥

मरिच, सेंधा नमक, पीपरि, जटामांसी, मुहुआ और पटोलफल एकत्र कूट पीसकर मधु मिलाकर सबको थोड़े गर्म जल में घोलकर आठ अथवा चार बूद नाक में नस्य देने से सब इन्द्रियों में अभिन्यास के रोगी को चेतनता आ जाती है ॥ २ ॥

लशुनमरिचकूण्डाभाणिभन्धोग्रगन्धाशकतरुकलबीजैविक्षरोभूत्रपिष्टः ।

कफपवनविकारे इक्षपित्तप्रभेदे गदितमगदविद्विन्नेश्चयोरक्षनं स्यात् ॥ ३ ॥

लहसुन, मरिच, पीपरि, सेंधानमक, वच, सिरस का बीज, सौंठ इन सब द्रव्यों को गोमूत्र में पीसकर आँख में अजन लगाने से कफ-बात के विकार और रक्तपित्त के विकार में अत्यन्त लाभदायक है। ऐसा द्रव्यों ने कहा है ॥ ३ ॥

संज्ञा यस्य न जायते चरणयोर्द्वन्द्वं समावृत्ते

भाले लोहशलाकया शशिकृते सर्वक्रियाकर्मणि ।

श्वासन्धनवृत्तवासुष्करजटाभार्जिनशीकिका-

क्वाथः पानविधानतः कफहरोदभिन्यासविध्वंसकः ॥ ४ ॥

संनिपातज्वरचिकित्सा ।

अभिन्यास ज्वर में सब प्रकार की किया करने पर भी जिस रोगी को चेतनता न होती हो उसके दोनों पैर के तलवे में लोहे के सलाके को तपाकर दागे ललाट पर भी चन्द्राकार दाग लगावे। और काकडासिंगी, जामासा, पुष्करमूल, भारंगी, कचूर, बड़ी कटेरी इन द्रव्यों का काथ विधिपूर्वक बनाकर पीने से कफ तथा अभिन्यास सन्निपात का नाश होता है ॥ ४ ॥

त्रायन्तीश्वशमूलपुङ्करजटावातारिभिः कारबी

भार्जी स्थादमृताट्टरुचकशीटीगोमूत्रसंयोजितैः ।

श्वङ्गीव्योष्पुत्रनर्वाभिरचिराद्वुड्णः क्षायो हरेत्

सोडभिन्यासगदं कफउवरहरो निःसंशयं पानतः ॥ ५ ॥

त्रायमाण, दशमूल, पुष्करमूल, एरण्डमूल, कृष्णजीरा, भारंगी, गुरुचि, अरुसा, कचूर, काकडासिंगी, सौंठि, पीपरि, मरिच और गदहपुराना के काथ में गोमूत्र मिलाकर थोड़ा गर्म रहते पीने से निसनदेह अभिन्यास सन्निपात और कफज्वर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

मधिष्ठाणिष्ठिवालविष्वकशीटीशुष्टीकरभानिशा-

त्रायन्तीबृहतीवृषोषणकणाश्वाथस्तु वेपीयते ।

ये: प्रातः प्रणिधाय लक्षितगदैः सङ्कृत्यादसंनिष्ठै

तस्यापि प्रशामं व्रजान्त सहस्रा सर्वाङ्गज्ञा व्याधयः ॥ ६ ॥

मजीठ, अपामार्ग, सुगन्धबाला, बेलफल, कन्चू, सौंठि, करज, हरदी, त्रायमाण, बड़ी कटेरी, अरुसा, मरिच, पीपरि इन द्रव्यों का काथ अच्छे वैद्य के समक्ष रोग को भलीभांति समझकर प्रातःकाल जो पीते हैं उनके सब अङ्गों का रोग एवं अभिन्यास सन्निपात नष्ट होता है ॥ ६ ॥

सुरभिसलिलयुक्तः सिंहिकाश्रीकलभ्यां प्रवरलवणयासाविक्षपायाणभेदैः ।

पवनरियुजटाभिः संयुतः श्वाथ पृथ प्रतिदिनमपि पीतो हस्त्यभिन्यासशूलम् ॥ ७ ॥

बड़ी कटेरी, बेल का फल, अगर, सेन्धानमक, जवासा, सौंठि, पाषाणभेद (परच्चूर), एरण्डमूल इन सब द्रव्यों के काथ में गोमूत्र मिलाकर प्रतिदिन पीने से अभिन्यास के शूल का नाश होता है ॥ ७ ॥

श्वङ्गीभार्जीभयाजाजीकणाभूनिष्वप्तपैटा: । देवदारवचाकुष्ठयासकट्फलनाशैः ॥ ८ ॥

सुस्तधान्यकतिकेन्द्रवयपाठाहरेणुभिः । हस्तिपिष्पस्यासार्गपिष्पलीमूलविक्रकैः ॥ ९ ॥

विशालारम्भारिष्टशीटावैर्यवानीद्वप्तसंयुतैः ॥ १० ॥

समांक्षीविहितः क्षायो हिंगवादकरसान्वितः ।

अभिन्यासं उवरं घोरं हन्ति तन्द्रां च स्त्रणात् ॥ ११ ॥

प्रमेहं कर्णशूलं च सञ्जिपातोङ्गयोदक्षः ।

हिंगो श्वासं च कासं च तथा सर्वानुपद्रवान् ॥ १२ ॥

श्वङ्गयादि काथ—काकडासिंगी, भारंगी, हर्दा, जीरा, पीपरि, चिरैता, पित्तपापडा, देवदार, वच, कूठ, जवासा, कायफर, सौंठि, नागरमोथा, घनियां, कुटकी, इन्द्रजौ, पुरइनपाठी, रेणुका, गजपीपरि, अपामार्ग, पिपरामूल, चित्त, इन्द्रायण, अमलतास, नीम की छाल, कचूर, वाकूची, गिफला, वाशीरज, हरदी, दारहरदी, अजवाशन, अजमोदा, इन सब ओषधियों को समझाग लेकर काथ बनाकर हिंगु तथा आदी का रस प्रक्षिप्त कर पीने से घोर अभिन्यास ज्वर तथा तन्द्रा को उसी समय नष्ट करता है और प्रमेह, कर्णशूल, तेरह प्रकार का सञ्जिपात, हिंग, श्वास और कास तथा सब प्रकार के सञ्जिपातिक उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ ८-१२ ॥

द्वितीयादि काथ—भावप्रकाशात् अथ पूर्वोक्तो भार्जीर्यादि क्वाथः पूर्वोक्तान्योष्पानि च देयानि ।

इस अभिन्यास ज्वर में प्रथम कहा हुआ भाङ्गर्यादि क्वाथ और पहले कही हुई ओषधियां भी देनी चाहिये ।

यावच्च श्वरंते जीवो यावक्षामति भेषजम् । तावकिया प्रकृत्याद्या दैवस्य कुटिला गतिः ॥

जब तक रोगी का शास चले तब तक और जब तक ओषधि मुख में देने पर पेट में चली जाय तब तक किया (चिकित्सा) करते रहना चाहिये क्योंकि दैव की गति कुटिल है । असाध्य से असाध्य रोगी जीवित हो जाते हैं और साध्य भी मर जाते हैं ॥ १३ ॥

अथाऽऽग्नन्तुकज्वरचिकित्सा ।

अभिचारमिशायेत्यौ ज्वरौ होमादिना ज्येत् । दानश्वस्यनातिश्यैरुपातप्रहयीदने ॥ १ ॥

आगन्तुक ज्वर की चिकित्सा—अभिचार (मन्त्रादि के प्रयोग) और अभिशाप द्वारा (गुरु-जनों आदि के शाप से) उत्पन्न ज्वर में इवनादि किया करके शान्ति करनी चाहिये, उत्पात और ग्रहीड़ा आदि से उत्पन्न ज्वर में दान, कल्याणकारी जप-पाठादि तथा अतिथिसत्कार करके शान्ति करनी चाहिये ॥ १ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशमताडनैः । जयेदभूताभिष्क्रोरथं मनःशास्त्या च मानसम् ॥ २ ॥

भूतावाया आदि से उत्पन्न ज्वर में भूतविद्योक्त विधि से रोगी को बोधना, उत्तेजना देना और मारना-पीटना आदि किया करनी चाहिये । मन के दुःख से उत्पन्न ज्वर में मन को शान्त करने का यत्न करना चाहिये ॥ २ ॥

मधुकसारं मरिचं सैन्धवं पिण्डिली बचा । सञ्ज्ञाप्रबोधनं नरथं देयं भूतज्वरे सदा ॥ ३ ॥

भूतज्वर में चेतना उत्पन्न होने के लिये महुए का रस, मरिच, सैन्धवमक, पीपरि और वच के चूर्ण का जो सञ्ज्ञाप्रबोधन नस्य है सदा उसे देना चाहिये ॥ ३ ॥

अभिघातज्वरा कुर्यात्क्रयामुण्डिविवजिताम् । कथायान्मधुरान्दिनश्वान्यथादोषमयापि वा ॥

अभिघात से उत्पन्न ज्वर वाले के लिये उष्ण किया नहीं करना चाहिये उसे मधुर तथा दिनग्र अथवा दोष के अनुकूल क्रवाचादि देना चाहिये ॥ ४ ॥

अभिघातज्वरो नशयेत्पानान्मयग्रेन स्पर्शिः । मेष्ठेद्र्देश्य सारथ्येश्य तथा मांसरसौदनैः ॥ ५ ॥

अभिघात ज्वर वृत के पीने और मर्दन से नष्ट होता है तथा मेष्ठावर्धक एवं सात्स्य (अनुकूल) द्रव्य के सेवन तथा मांसरस और चावल आदि के भात के पश्य से नष्ट होता है ॥ ५ ॥

वधवन्धसामावेशमध्नश्वसमुद्दवान् । उवरानुगाचरेष्टर्यं मदिराज्ञीरभोजनैः ॥ ६ ॥

वध, वन्धन, मन में क्षोभ होने, शरीर के किसी अवयव के टूट जाने या किसी वस्तु के नष्ट होने के कारण जो ज्वर उत्पन्न हो जाता है उसमें सर्वप्रथम मध्य तथा दूध पिलाना चाहिये पश्चात् दूसरी किया करनी चाहिये ॥ ६ ॥

ओषधीगन्धविषज्ञौ विषपित्तप्रसादनः । जयेकवायैर्मतिमानसर्व(१)गन्धकैर्भिषक् ॥ ७ ॥

उग्र ओषधि के गन्ध तथा विष से उत्पन्न दोनों ज्वरों में विषनाशक तथा पित्तनाशक किया करनी चाहिये तथा बुद्धिमान वैद्य को सर्वगन्ध (इलायची, दालचीनी, नागकेशर, तेजपात, कपूर, कंकोल, अगर, केशर, लौंग) का क्रवाच मिलाकर ज्वर नष्ट करना चाहिये ॥ ७ ॥

कोधजे पित्तजित्काम्ये नार्यः सद्ग्रावयमेव च । आशासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ ८ ॥

(१) चातुर्जातिकपूरककृष्णलागुरुकुम्भम् । लवज्ञसहितं वैव सर्वगन्ध विनिदिशेत् ॥

यही सर्वगन्ध की परिमापा है ।

कोध से उत्पन्न ज्वर में पित्तनाशक किया करनी चाहिये और काम से उत्पन्न ज्वर में स्त्री अथवा प्रिय मनुष्य का मधुर वचन सुनाना चाहिये और आशासन (ढाढ़स) देना, इच्छित वस्तु की प्राप्ति करना तथा वायुनाशक किया करना, इन कार्यों से भी ये दोनों प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

हर्षेण च शामं यान्ति कामशोकभयज्वराः । व्याग्रचित्रजघातार्थं स्थापयेज्जलमध्यगम ॥ ९ ॥

अनथा शीतक्रिया भयरोगः प्रशास्यति ।

कामार्थकोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्धवः ।

याति ताभ्यामुभाभ्यां वा भयशोकसमुत्थितः ॥ १० ॥

काम, शोक तथा भय के कारण उत्पन्न हुए ज्वर प्रसन्नता होने से नष्ट होते हैं अतः इन ज्वरों में रोगी को प्रसन्न करने का यत्न करना चाहिये तथा बाव और चिते आदि जीव के भय से जो ज्वर उत्पन्न हुआ हो उसमें रोगी को जल में रखना चाहिये । इस प्रकार शीतल किया से भय ज्वर शान्त हो जाता है । कोध से उत्पन्न ज्वर काम से शान्त हो जाता है अर्थात् कामवेग के उत्पन्न होने से कोध नष्ट हो जाता है और काम से उत्पन्न ज्वर कोध से नष्ट होता है अर्थात् कोध होने से काम नष्ट होता है और भय तथा शोक से उत्पन्न ज्वर दोनों (काम और कोध) होने से नष्ट हो जाते हैं ॥ ९-१० ॥

अथ विषमज्वरः ।

दोषोऽषोऽहितसमूतो ज्वरोऽसृष्ट्य वा पुनः ।

चातुर्मन्यतम् प्राण्यं करोति विषमज्वरम्ै शीतपूर्वः स विज्ञेयो दाहपूर्वो निरन्तरम् ॥ ११ ॥

विषम ज्वर की चिकित्सा—प्रथम लक्षण—अहित आहार-विहार से विकृत अल्पदोष अथवा ज्वर के नष्ट होने पर अहित आहार-विहार से विकृत अल्पदोष किसी भी एक धातु (रस-रक्तादि) में प्राप्त होकर विषमज्वर कर देता है । वह विषमज्वर दो प्रकार का होता है एक वह जिसमें ज्वर होने के पूर्व शीत मालूम होता है और दूसरा वह जिसमें ज्वर होने के पूर्व दाह मालूम होता है ॥ १ ॥

आतद्वासुको कृशताश्रयाणां विमुक्तपथ्याद्युविनिक्रियाणां ।

अल्पोऽपि दोषो विषमं विद्ययाज्जरं प्रवृद्धं प्रतिपद्धत्यन्नम् ॥ २ ॥

रोग से मुक्त होने पर दुर्बलता की अवस्था में ही जो रोगी आहार-विहार आदि में अपथ्य करता है उससे थोड़ा सा भी दोष पुनः प्रवृद्ध होकर विषमज्वर को उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

एकद्वित्रिचतुर्थः न्याद्युषमोऽन्यस्तु जीर्णकः । एते पञ्च ज्वराः पीडां यान्देव यदुवासरम् ॥

एक दिन, दो दिन, तीन दिन और चार दिन में होने वाला ज्वर विषमज्वर करा जाता है और दूसरा एक जीर्ण ज्वर होता है । इस प्रकार ये पांच ज्वर बहुत दिन तक पीड़ित करते हैं ॥ ३ ॥

विषमज्वरनाशाय चिकित्सा विषयतेऽधुना । वातप्रधानं सर्पिमिर्बस्तिभः सालुवासनैः ॥ ४ ॥

स्तिनऽचोष्टैरुपात्पानैश्च शामयेद्युषमज्वरम् ।

विषमज्वर के नष्ट होने के लिये अब चिकित्सा लिखते हैं—वातप्रधान विषमज्वर को वृत्त, अनुवासन वस्तियों, स्तिनय और उष्ण अन्न तथा पान से नष्ट करना चाहिये ॥ ४-४३ ॥

विरेचनेन पथसा स्पृष्टा संस्कृतैर्वच ॥ ५ ॥

विषमं तिक्ष्णीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं ज्येत् ।

पित्तप्रधान विषमज्वर को विरेचन से, दूध तथा औषधियों से बने घृत से तथा तिक्त और शीतल द्रव्यों के सेवन से नष्ट करना चाहिये ॥ ५-५३ ॥

वमनं पाचनं रुक्षमसपानं च लहूनम् ॥ ६ ॥

कथायोषणं च विषमज्वरे शस्तं कक्षोत्तरे ।

कफप्रधान विषमज्वर को वमन तथा पाचन कराकर, रुक्ष अथ तथा पानादि क्रिया से, एवं लहून कराकर और कथाय तथा उषण द्रव्य का सेवन कराकर नष्ट करे ॥ ६-६३ ॥

त्रायन्तीकटुकानन्तासारिवाभिः शृतं जलम् ॥ ७ ॥

सन्तताख्ये उवरे देयं वातादीनां निवृत्यते ।

त्रायमाण, कुटकी, अनन्तमूल और सारिवा इन द्रव्यों से प्रकाया जल अर्थात् क्वाथ पीने से संतत ज्वर (सात दिन तक निरन्तर रहने वाले विषम ज्वर) में वातादिक दोषों का प्रकोप नष्ट होता है ॥ ७-७३ ॥

बोद्धाष्टुभर्यां वातपित्तकार्तिषु ॥ ८ ॥

बौद्रं कथाये दातव्यं विपरीतं तु शक्त्वा ।

क्वाथ में मधु तथा शक्त डालने का प्रमाण—वात की अधिकता में क्वाथ जो दिया जावे उसके सोलहवां भाग उसमें मधु देकर पीना चाहिये, पित्त की अधिकता में कथाय के आठवां भाग तथा कफ की अधिकता में क्वाथ के चौथाई भाग मधु देकर पीना चाहिये । और यदि शक्त देना हो तो इसके विपरीत अर्थात् वात की अधिकता में चौथाई और पित्त की अधिकता में आठवां तथा कफ की अधिकता में सोलहवां भाग शक्त का प्रक्षेप क्वाथ में देना चाहिये ॥ ८-८ ॥

वासापटोलशिफलाद्वाक्षाशास्पाकनिश्चजः ।

समधुः सिसिं चक्षायो हन्यादैकाहिकं ज्वरम् ॥ ९ ॥

ऐकाहिक ज्वर में वासादि क्वाथ—अरुसा, पटोलपत्र, त्रिफला, दाख, अमलतास और नीम की छाल इन द्रव्यों का क्वाथ बनाकर मधु तथा शक्त दोनों का प्रक्षेप देकर पीने से ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ९ ॥

उल्कदक्षिणः पशः सितसूचिण वेष्टिः । वारणाद्वामर्कणे तु हरस्यैकाहिकं ज्वरम् ॥ १० ॥

उल्क पक्षी का दाहिना पंख इवेत सूत में लपेट कर बाये कान पर रखने से ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ १० ॥

द्वावापटोलनिश्चालदशकाद्विषिफलाद्वृताः । जलं जन्तुः पिपेच्छीतमन्येऽद्युज्वरशान्तये ॥ ११ ॥

अन्येऽवृक्ष ज्वर में द्राक्षादि क्वाथ—दाख, पटोलपत्र, नीम की छाल, नागरमोथा, इन्द्रजौ, अंवरा, इर्ण, बहरा और गुरुचिं इन सब द्रव्यों का क्वाथ शीतल करके पीने से मनुष्यों के दूसरे दिन होने वाला ज्वर नष्ट होता है ॥ ११ ॥

सशिशिरः सघनः समहौषधः सनलदः सकणः सपयोधरः ।

समधुशक्तं पश कथायको जयति बालमृगाच्च ! तृतीयकम् ॥ १ ॥

लालचन्दन, नागरमोथा, सौंठि, खस, पीपरि, कसेरू, इन द्रव्यों के क्वाथ में मधु तथा शक्त मिलाकर पिलाने से हे सुगन्यनयनी प्रिये ! तृतीयक ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

जर्जनाभिस्थज्ञालेन कज्जलं प्राहयेत्ततः । अङ्गयेष्वेश्वरुगलं ध्याहिकं तु उवरं जयेत् ॥ २ ॥

मकरी के जाल की जालकर ऊपर से उसकी कज्जल को लेकर रोगी के दोनों और्हों में अलन करने से तृतीयक ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

वासाधात्रीस्थिरादारुधान्यनागरसाधितम् । सितामधुयुतं कुर्याद्वातुर्थिकनिवारणम् ॥ ३ ॥

अरुसा, अंविला, शालिपणी, देवदार, धनिया और सौंठि इनका क्वाथ बनाकर मधु और शक्त का प्रक्षेप देकर पीने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पद्धास्थिरानागरदेवदारुधात्रीद्वैरुक्तथितः क्षायाः ।

सितोपलामार्चिकसम्प्रयुक्तातुर्थिकं हन्त्यस्थिरेण पीतः ॥ ४ ॥

हरी, शालिपणी, सौंठि, देवदार, अंवरा और अरुसा इन द्रव्यों का क्वाथ बना मिश्री और मधु मिलाकर पीने से शीघ्र ही चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

चातुर्थिको गच्छति रामठस्य धृतेन जीर्णेन युतस्य नस्यात् ।

लीलावतीनां नवयौवनानां सुखावलोकादिव साधुभावः ॥ ५ ॥

पुराने घृत में हींग मिलाकर नस्य देने से चातुर्थिक ज्वर इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार शुब्री कियोंके मुख देखने पर साधुता भाव नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

अस्यगिर्दत्तशरकालकालानिधिसमानने । चातुर्थिकहरं नस्यं मुनिन्दुमदलाभ्युना ॥ ६ ॥

हे शरद, ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख वाली श्रिये ! अगस्त के पत्तों के रस का नस्य देने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

ऋकः शिरीषुत्पस्य रजनीद्वैरुक्तसंयुतः । नये सर्विः समायोगान्द्वरं चातुर्थिकं जयेत् ॥ ७ ॥

शिरिस के पूल का कल्प बनाकर उसमें हरदी और दारुहरदी तथा घृत मिलाकर नस्य देने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

विवेषणे धृता देवीमूलिका कर्णवन्धनात् । चातुर्थिकं उवरं हन्ति द्वोणपुष्पीरसाक्षनात् ॥ ८ ॥

वन्ध्याकर्तिंतस्यैरेण त्वप्रामार्गस्य मूलिका । रवी बद्धा उवरं हन्ति तृतीयक्वतुर्थकम् ॥ ९ ॥

कुमारी कन्या के काते हुए सूत से अपामार्ग की जड़ रविवार के दिन रोगी को बाँध देने से तृतीयक तथा चातुर्थिक दोनों ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

काकजड्बा वला श्यामा भृगुराजोऽपमार्गकः । एकैकं पुष्ययोगेन वद्धा चातुर्थिकं हरेत् ॥ १० ॥

काकजड्बा, वला, अनन्तमूल, भांगरा और अपामार्ग इनमें से, पुष्य नक्षत्र में उत्साह कर रखे हुये किसी एक की रोगी के गले आदि में बांधने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है ॥ १० ॥

कृष्णाऽवरे हृष्ण बद्धो गुग्गुललकपुष्पकः । धूपश्चातुर्थिकं इन्यात्तमः सूर्यं इवोदिसः ॥ ११ ॥

काले वल में गुग्गुल और उल्लपक्षी की पूँछ भली भांति वर्धकर धूपित करने से चातुर्थिक ज्वर को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार नस्य उदय होने पर अन्यकार को नष्ट करता है ॥ ११ ॥

कुमारीमूलकर्षेकं पीत्वा कोणजलैर्वेत् । चिषमं तु उवरं हन्ति वसनेन चिह्नतनम् ॥ १२ ॥

कुमारी (धीकुआर) की जड़ एक तोला लेकर पीसकर गर्म जल से पिलाकर वमन करावे इस वमन से पुराना विषमज्वर नष्ट होता है ॥ १२ ॥

भवति विषमहन्त्री चेतकी द्वौद्ययुक्ता भवति विषमहन्त्री पिप्पली वर्धमाना ।

विषमरुजमज्ञाजी हृष्टि युक्ता गुडेन प्रशस्यति तथाऽप्यथा सेव्यमाना गुडेन ॥ १३ ॥

चेतकी हरे मधु के साथ सेवन करने से विषमज्वर का नाश होता है । वर्धमान पिप्पली योग विषमज्वरनाशक है । जीरा और गुड़ विषमज्वरनाशक है तथा त्रिफला और गुड़ सेवन करने से विषमज्वर नष्ट होता है ॥ १३ ॥

शिभिरथ परिवृद्धं पञ्चमिः सप्तमिर्वा दशभिरथ विवृद्धं पिप्पली वर्धमाना ।

१५ यो० पू०

अनुपिवति पथो यस्तस्य न श्वासकासज्जवरलठरगुदार्णीवातस्तक्षयाः स्युः ॥ १४ ॥

प्रतिदिन कमशः तीन, पांच, सात अथवा दस पीपरि यथाशक्ति बड़ा-बड़ा कर सेवन करने से और केवल दूध मात्र ही आहार करने से श्वास, कास, ऊंच, जठर (ऊंच रोग), अर्श, वातरक्त, क्षय आदि रोग नहीं होते हैं इस योग को 'वर्धमान-पिपली योग' कहते हैं ॥ १४ ॥

द्वीरण पिपलीं मुक्त्वा द्वीराञ्चं भुज्यते यतः । दक्षाहं पञ्चवृद्धिः स्यादपकर्षस्तथैव च ॥ १५ ॥

पीपरि को दूध के साथ खावे और दूध और अचं का मोजन करे इस विधि से पांच-पांच पीपरि दस दिन तक बड़ा-बड़ा कर खावे दस दिन के पश्चात् इसी क्रम से पांच २ घटाता जावे यहीं 'वर्धमान-पिपली' योग है ॥ १५ ॥

सर्विः चौद्रं शृतं चौरं पिपलेष्यः सितशर्करा ॥ १६ ॥

पिवेसजेन भृत्यं पञ्चसारमिति शृतवद् । विषमज्जवरहृदयश्वासकासक्षयापहम् ॥ १७ ॥

पञ्चसार योग—धृत, मधु, पका कर शीतल किया त्रिआ दूध, पीपरि और मिश्री इन पांचों द्रव्यों को मथानी से भली भाँति मन्थन कर देने पर 'पञ्चसार' कहलाता है। इसके सेवन से विषमज्जवर, हृद्रोग, श्वास, कास और क्षय का नाश होता है ॥ १६-१७ ॥

निदिविधिकानागरकामृतानां कवाथं पिवेन्मित्रितपिपलीकम् ।

जीर्णउवरारोचककासशूलश्वासाद्यिमान्द्यादितपीनसेषु ॥ १ ॥

छोटी कटेरी, सॉथि, गुरुचि, इनके काथ में पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से जीर्ण ऊंच, अरुचि, कास, शूल, श्वास, मन्दान्मि, अर्दित वात तथा पीनस रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पटोलयष्टीमधुतिकरोहिणीघ्नाभ्याभिर्विषमज्जवरः ।

कृतः कवाथयिकफलामृताकृबैः पृथकपृथग्वा विषमज्जवरापहः ॥ २ ॥

पटोलपञ्चक १—पटोलपत्र, जेठी मधु, कुटीकी, नागरमोथा और हरी तथा २—अवरा, हर्दा, बहेरा, गुरुचि और अरुसा इन दोनों योगों में से किसी एक का काथ बनाकर पीने से विषमज्जवर का नाश होता है ॥ २ ॥

द्रावालवङ्गशुण्ठीस्वरूपनिका-च दरीतकी । मिसी मुस्ताऽमृता चैव कृतमालकथायकः ॥ १ ॥

चातपितज्जवरं हन्ति पाचनो लघुदीपनः । दक्षभिश्रीष्ठैरेतैः सर्वज्जवरविनाशनः ॥ २ ॥

दाख, लंग, सॉथि, दालचीनी, धनिया, हरे, सॉफ, नागरमोथा, गुरुचि और अमलतास का गूदा इन दस ओषधियों का काथ वात-पित्त ऊंच को नष्ट करता है, पाचन, दीपन और लघु है तथा यहीं काथ सब प्रकार के ज्वरों का नाश करने वाला है ॥ २-२ ॥

आङ्गर्द्यपर्यटकधन्वयवातिवशभूनिग्वकुष्टकणिंद्यमृताकथायः ।

जीर्णज्जरं सततसन्ततकौ निहन्याददयेश्यकं सहतृतीयचतुर्थकी च ॥ ३ ॥

माङ्गर्यादि काथ—गारडी, नागरमोथा, पित्तपापडा, धमासा, सॉथि, चिरैता, कूठ, पीपरि, बड़ी कटेरी और गुरुचि इन ओषधियों का काथ—सेवन करने से जीर्णज्जवर, सततज्जवर, संततज्जवर, अन्तेचुरुषकज्जवर, तुतीयकज्जवर और चतुर्थक ऊंच का नाश करता है ॥ ३ ॥

भाङ्गीपर्यटविश्ववासककणाभूनिग्वनिवामृता-

मुस्ताद्यन्वजमेषजैस्तु दक्षभिहन्तोह सर्वज्जवरान् ।

जीर्णच्छातुगतांस्तथा च विषमान्सोपद्वान्द्राहणः-

नक्षायोत्यं यदि युग्मवासरमितं दत्तो यमाद्वृति ॥ २ ॥

दूसरा भाङ्गर्यादि काथ—भारंगी, पित्तपापडा, सॉथि, अरुसा, पीपरि, चिरैता, नीम की छाल, गुरुचि, नागरमोथा, धमासा, इन दस ओषधियों का काथ सब प्रकार के ज्वरों का नाश करता है

और जीर्ण ऊंच, धातुगत (रस-रक्तादिकों में प्राप्त) ऊंच, विषमज्जवर तथा अत्यन्त कठिन उपद्रवों से युक्त ऊंच का नाश करता है। यदि यह काथ दो दिन दिया जावे तो शूल से भी बचाता है अर्थात् अत्यन्त लाभदायक है ॥ २ ॥

बाढ़मामुख्यंजितामृतेऽमृतलता लक्ष्मीशिवामे ! शिवा-

विश्वा विश्ववरे ! बनो बनकुचे ! सिंही च लिंहोदरि ! ।

पूर्वि पञ्चमिरीष्वधैर्मधुकणायुक्तः कथायः कृतः

पीतस्तेद्विष्वमज्जवरः किंतु तदा तन्वङ्गि ! न शीयते ॥ ३ ॥

हे बाणी की मधुरता से अमृत को भी जीतने वाली ! हे लक्ष्मी और पार्वती के समान सुवर्दी ! हे समी जियों में श्रेष्ठ ! हे अच्छे स्तनों वाली ! हे सिंह के समान कटिवाली ! अमृता (उल्लचि), शिवा (हरीतकी), विश्वा (सॉथि), बन (नागरमोथा), सिंही (बड़ी कटेरी) इन पांच ओषधियों के काथ में मधु और पीपरि का प्रक्षेप देकर पीने से क्या विषमज्जवर नष्ट नहीं हो जाता अर्थात् अवश्य विषमज्जवर नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

अबले ! कृतकामधले ! चपले ! चलक्कमले ! खलु रत्नकले !

अमृताऽब्दिविश्वं मधुमद्विष्मे विषमेशुविलासरते ! सुतनु ॥ २॥

हे अबले ! हे काम की इच्छा वाली ! हे चपले ! हे चब्बल नेत्रोवाली ! हे कमले ! हे रत्नमली ! हे काम-विलास में लीन रहने वाली ! हे सुन्दर शरीर वाली ! गुरुचि, नागरमोथा और हरीतकी इनका काथ बना मधु का प्रक्षेप देकर पीने से विषम ऊंच नष्ट होता है ॥ २ ॥

ब्राह्मामृतानागरतोषमुष्मं कृष्णाविषाकं बद्धुरोगनिज्ञम् ।

आसं च शूलं कसनं च माल्यं जीर्णज्जरं चैव जलेन तृष्णाम् ॥ ४ ॥

दाख, गुरुचि, सॉथि इनके उच्च काथ में पीपरि का चूर्ण मिलाकर पीने से बहुत से रोगों का नाश होता है तथा द्वास, शूल, कास, अनिन्मान्य और जीर्ण ऊंच को नष्ट करता है। यदि इन ओषधियों से घड़क जल की विधि से जल बनाकर सेवन किया जावे तो तृष्णा का नाश करता है ॥ ४ ॥

हुःस्पर्शोशीरितिहीचनमधुकशिवाज्ञालिविश्वाटरुच-

पिण्डारेणूकवायः समधुमगधको वापितव्याद्मान्शम् ।

दाहं स्वेदं च शोषं कृमिमध्य रुधिरं शोयसुद्ग्रामत्वचित्तं

रवासं शूलं च सृष्णामहरहरसमं हन्ति चातुर्थिकाशम् ॥ ५ ॥

जवासा, द्वास, बड़ी कटेरी, नागरमोथा, मुलडी, हरी, जीरा, सॉथि, अरुसा, गुरुचि और रेणुका इन द्रव्यों का काथ बना अष्टमांश शेष रहने पर मधु और पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से दाह, स्वेद, शोष, कृमि, रुधिरविकार, शीतलता, चित्त में अग्र रहना, श्वास, शूल, तृष्णा, विषमज्जवर तथा चातुर्थिक आदि को नित्य नष्ट करता है ॥ ५ ॥

सुस्तामलकागुह्यची विश्वाषधकण्टकारिकाश्वायः । पीतः सकणाचूर्णः समधुविषमज्जवरं हन्ति ॥

नागरमोथा, अवरा, गुरुचि, सॉथि, छोटी कटेरी इनके काथ में पीपरि का चूर्ण और मधु का प्रक्षेप देकर पीने से विषमज्जवर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दार्ढीदाढ़कलिङ्गलोहितलताशस्पाकप्राणाशटी

जीणीविश्वकिरातवारणकणाश्रायनितिकापशक्तैः ।

उप्राधान्यकनागराढ़सरकः शिश्रुतगम्भः शिवा-

व्याणीपर्यटद्यमूलकदुकान्मतामृतापौरकैः ॥ ६ ॥

चूर्ण प्रकरण—धनियाँ, लवंग, त्रिफला और सौंठि इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर कुछ उष्ण जल से पीने से तरुण (नवीन) ज्वर नष्ट होता है। और इन्हीं सब ओषधियों को पद्मज जल की भाँति पका कर शीतल कर जल पीने से मन्दाशि, शासादि रोग, अजीर्ण, विषम ज्वर और वात रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गोरोचनं च मरिचं रात्ना कुरुं च पिपली । उष्णोदकेन धींशं च सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २ ॥

गोरोचन, मरिच, रात्ना, कूठ, पीपरि इन सब द्रव्यों के चूर्ण को उष्ण जल से पीने से सब प्रकार के ज्वर का नाश होता है ॥ २ ॥

भार्गीकटशङ्खी च चम्पयं तालीसपत्रकम् । मरिचं मागधीमूलं प्रत्येकं द्विपलं भवेत् ॥ ३ ॥

षट्पलं शङ्खवेरं च द्विपलं पिपलीद्वयम् । चातुर्जातसुशीरं च पलमेकं पृथक् पृथक् ॥ ४ ॥

चातुर्जातसमा वांशी शकरा समयोजिता । ज्वरमष्टविधं हन्ति कासं आसं च दाहणम् ॥ ५ ॥

बोफश्लोदुराध्मानदोषत्रयहरं परम् ।

मारंगी, काकडासिंगी, चाम, तालीसपत्र, मरिच, पिपरामूल, प्रत्येक दो-दो पल (८-८ भर) लेकर और सौंठि छ्व पल (२४ भर) लेवे, पीपरि और गजपीपरि दो-दो पल (८-८ भर), दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर तथा खस इनको एक-एक पल (४-४ तो०) अलग २ लेवे और चातुर्जात के समान वंशलोचन ४ पल (१६ तो०) लेकर चूर्णकर सब चूर्ण के बराबर शकर मिलाकर सेवन करने से आठो प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं तथा कठिन कास, आस, शोथ, श्लू, उदर, आधमान और तीनों प्रकार के (वातादिक) दोष नष्ट होते हैं ॥ ३-५३ ॥

धन्यता बालकं मुस्ता नागरं कदुरोहिणी ॥ ६ ॥

मुखाम्बुना प्रागुदयारिपवेददक्षसं रवेः । एतत्सधो उवरात् हन्ति दीपयथाणु चानलम् ॥ ७ ॥

अनन्तमूल सुगन्धबाला, नागरमोथा, सौंठि, कुटकी, सबको सम भाग लेकर चूर्ण कर एक कर्ष की मात्रा से सूर्योदय के पूर्व खुलोण जल से पीने से शीघ्र ज्वरों का नाश होता है और अग्री तीव्र होती है ॥ ६-७ ॥

द्राक्षाऽमृता शटी शङ्खी मुस्तकं रक्तचन्दनम् । नागरं कदुका पाठा भूनिध्वः संहुरालभः ॥ ८ ॥

उद्धीरं पश्चां धान्यं बालकं कण्टकारिका ।

पुष्करं पिचुमन्दं च दशाष्टाङ्गमिदं समृतम् । जीर्णज्वरारुचिश्चासकासश्वयथुनाशनम् ॥ ९ ॥

द्राक्षादि चूर्ण—मुनका, गुरुचि, कचूर, काकडासिंगी, नागरमोथा, लालचन्दन, सौंठि, कुटकी, पुष्करमूल और नीम की छाल इन अठारह द्रव्यों के चूर्ण को अष्टादशाङ्ग भी कहते हैं। और द्राक्षा आदि में रहने से 'द्राक्षादि चूर्ण' भी कहते हैं इस चूर्ण के सेवन करने से जीर्ण ज्वर, अरुचि, शास, कास और शोथ आदि रोगों का नाश होता है ॥ ८-९ ॥

बात्रीशिवासेन्वचित्रकाणां कणायुतानां समभागचूर्णम् ।

जीर्णज्वरारोचकवह्मान्द्ये विद्विग्रहे शस्तमिति प्रतिज्ञा ॥ १ ॥

आमलक्षयादि चूर्ण—बैंवरा, हर्दा, सेन्वा नमक, चित्तमूल और पीपरि इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्णकर सेवन करने से जीर्णज्वर, अरुचि अद्यमात्र और विषम इन रोगों का नाश होता है। अन्यकार का कहना है कि यह हमारी प्रतिज्ञा है अर्थात् ये सब रोग बाहर छूटते हैं ॥ १ ॥

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिपली वंशोचना । एकद्विप्रिचतुष्टपञ्चकं भैरोगान्प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥

एलात्वचोस्तु कर्षार्चं प्रत्येकं भागमावहेत् । द्वात्रिशत्कर्वतुलिता प्रदेया शकरा बुधैः ॥ २ ॥

तालीसाद्यमिदं चूर्णं दोचनं पाचनं स्मृतम् । कासश्वासज्वरहरं द्वयंतीसारनाशनम् ॥ ३ ॥

कांक्षाधमानहरं पलीहग्राण्ड्यापहृयेत् । पश्चवा वा शार्करां चूर्णं विषेत्सा गुटिका भवेत् ॥

तालीसादि चूर्ण—तालीसपत्र, मरिच, सौंठि, पीपरि, वंशलोचन इनको क्रम से एक, दो, तीन, चार और पांच कर्ष अर्थात् तालीसपत्र १ कर्ष, मरिच २ कर्ष, सौंठि ३ कर्ष पीपरि, ४ कर्ष, और वंशलोचन ५ कर्ष लेवे और इलायची तथा दालचीनी आधा-आधा कर्ष लेकर चूर्णकर ३२ कर्ष शकर मिलाकर रख ले। इसे 'तालीसादि चूर्ण' कहते हैं। इसके सेवन करने से हच्छ बढ़ती है, पाचन होता है तथा कास, आस, ज्वर, वमन, अतीसार, शोथ, आधमान, प्लीहा, ग्रहणी और पांडुरोग नष्ट होता है। यदि शकर को चूर्ण में मिलाने के पूर्व चासनी करके और ओषधियों के चूर्ण को उसमें मिलाकर गोली (वटी) बना लिया जावे तो वह 'तालीसादिगुटिका' कही जावेगी और प्रयोग में आयेगी ॥ १-४ ॥

अथ सितोपलादि चूर्णम्—

सितोपला शोषक स्थावद्वौ स्थाद्वशोचना ।

पिपली स्थावतुपर्क्ष एला च स्थाद्विकर्षिका ॥ १ ॥

एककर्षस्त्वद्वाः कायंश्लूयेत् सद्वमेकतः । सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ॥ २ ॥

इवासकाम्यच्यहरं हस्तपादाङ्गदाहजित् ।

मन्दविन्न सुसज्जिह्वं च पार्वतशूलमरोदकम् । ज्वरमधुर्घवातं रक्तपित्तमाणु व्यपोहति ॥ ३ ॥

सितोपलादि चूर्ण—मिश्री सोलह कर्ष (१६ तो०), वंशलोचन आठ कर्ष (८ तो०), पीपरि चारकर्ष (४ तो०), इलायची छोटी दो कर्ष (२ तो०), दालचीनी एक कर्ष (१ तो०) इन सब ओषधियों का एकत्र चूर्णकर मधु और धी के साथ चाटने से आस, कास, क्षय, हाथ, पैर और शरीर का दाह, मन्दाशि, जिहा की शन्यता, पार्श्वश्लू, अरुचि, ज्वर और जर्वंग रक्तपित्त शौम्र नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

कासश्वासज्वरहरा यिपली विफलायुता । चूर्णिता भ्रान्ता लोढा ऐदनी चाशियोविनी ॥ ३ ॥

विफला पिपली—पीपरि और विफला का चूर्ण मधु से चाटने से कास, आस और ज्वर का नाश होता है तथा सारक और अग्रीवर्धक होता है ॥ १ ॥

कट्पलं मुस्तकं तिक्षा शटी शङ्खी च पौष्करम् । चूर्णमेषां च मधुनाः शङ्खवेरसेन वा ॥ १ ॥

लिहेत्वज्वरहरं कण्ठं कासश्वासारुचिर्जयेत् । वायुं शूलं तथा छूर्दिं द्वयं चैव व्यपोहति ॥ २ ॥

कट्पलादि चूर्ण—कायफल, नागरमोथा, कुटकी, कचूर, काकडासिंगी, पुष्करमूल इन सब ओषधियों को समान भाग में लेकर चूर्ण कर मधु अथवा आदी के रस से चाटने से ज्वर का नाश होता है, यह कण्ठ के लिये हितकर है और कास, आस, अरुचि, वायुश्लू, वमन, क्षय आदि का नाश करता है ॥ १-२ ॥

अथ योगरत्नसमुच्चये लघुसुदर्शनचूर्णम् ।

गुह्यी पिपलीमूलं कणा तिक्षा हरीतकी । नागरं देवकुमुमं निरवस्त्रकं चन्दनं तथा ॥ १ ॥

सर्वचूर्णस्य चार्धांशं कैरातं प्रचिपेत् लुधीः ।

एतत् सुदर्शनं नाम्ना लघु दोषत्रयापहम् । उवरात्म निश्चिलान् हन्याकाशं कार्या विचारणा ॥

लघु सुदर्शन चूर्ण—गुरुचि, पिपरामूल, पीपरि, कुटकी, हरे, सौंठि, लवंग, नीम की छाल, चन्दन इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर मधु अथवा आदी के रस से चाटने से ज्वर का नाम 'लघु सुदर्शन चूर्ण' है इसके सेवन से तीनों दोषों (वातादिक) का नाश होता है

तथा सब प्रकार के ज्वरों का नाश करता है इसमें विचारने की आवश्यकता नहीं अर्थात् यह चूर्ण निस्सन्देह लाभकर है ॥ १-२ ॥

अथ भेडादिप्रणीतं सुदर्शनचूर्णम् ।

तालीसन्निफलाकुटीश्रिकदुकं रवक्ष्रायमाणाश्रिवृ-
न्मूर्वाग्रन्थिनिशायुगं शटिबलाहक्षण्टकारीयुगम् ।
मुस्तापर्णदनिमधुपुष्करजटाभार्ङीयवानीहिमं

चब्धं चित्रकुण्डरीकतगरं सेध्यं विद्धकं वचा ॥ ३ ॥

वासो वसकुण्डलीनद्रथवकं देवद्रुमं वालकं

बीजं शिग्रभवं पटोलकुटकापश्चाह्नपत्रं विषा ।

काकोली मधु कुकुमं च सतवज्जीरी लवक्षं पृथक्-

पर्णीश्वेलज्ज्ञातिपर्णिसहितं शामन्तकीयुपकम ॥ २ ॥

सर्वं समं चूर्णं तदधंभागं कैरातकं श्रेष्ठतमं हि चूर्णं म् ।

सुदर्शनं नाम मरुदलासामयोदान् हन्ति पृथक्कृताव्यवसान् ॥ ३ ॥

संसंगजान् सकलज्ज्ञान् विषमाज्जिहन्मायद्वृत्तस्ववान् विषकृतानभिधातजांश्च ।

सामान् समानसकृतानतिदाहयुक्ताङ्गीतांस्तुतीषकचतुर्थविषययांश्च ॥ ४ ॥

ऐकाहिकान् आहिकसन्निपाताशानाविधान् पाचिकमासवातान् ।

दुड़दाहमोहभ्रमदेव्यरुद्धासशासकासारुचिपापद्मोगान् ॥ ५ ॥

हलीमकं कामलपाद्यशूलं पृष्ठोऽवं जानुभवं तथैव ।

त्रिकग्रहं शात्विकाशातं विनाशयत्येव शिरोग्रहं च ॥ ६ ॥

नानाप्रदेशोऽन्नवारिदोषान् दूषीविषादिप्रभवान् विकारान् ।

खीणो रजोदोषसमुद्द्रवांश्च विनाशयेद्वृण्जलेन पीतम् ॥ ७ ॥

शीतालुना पित्तमध्वान् विकाराशानामुनीन्द्रेश्विसं जगद्वितम् ।

सुदर्शनं दानवनाशनं यथा सुदर्शनं रोगविनाशनं तथा ॥ ८ ॥

भेडादिप्रणीतं सुदर्शनं चूर्ण—तालीसपत्र, त्रिफला, इलायची, सौठि, पीपरि, मरिच, दाल-भीनी, श्रावमाण, निशोथ, मूर्चा, पिपरामूल, इरदी, दारहरदी, कचूर, वला, कूठ, छोटी कटेरी, छड़ी कटेरी, नागरमोथा, पित्तपापडा, नीम की छाल, पुइकर मूल, भारंगी, अजवाइन, खस, चाम, चिप्पमूल, पुण्डरीक (पुण्डरिया), तार, खस, वायभिरंग, चच, जवासा, कुड़े की छाल, गिलोय, (गुरुचि), इन्द्रजी, देवदार, सुगन्धवाला, सदिजन का बीज, पटोलपत्र, कुटकी, पदुमकाठ, तेजपात. अतीस, काकोली, मुलहठी, केसर, वंशलोचन, लवंग, उष्णिपर्णी, छालछरीला, शालिपर्णी, शामन्तकी का फूल, इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर सूर्णीकर सम्पूर्ण चूर्ण का आधा चिरैता का चूर्ण भिलाकर रख ले इस चूर्ण का नाम 'सुदर्शन चूर्ण' है यह सबसे उत्तम चूर्ण है । इसके सेवन से बायु-कफ आदि के रोग तथा अलग-२ वातपित्तादिक ज्वर नष्ट होते हैं । तथा द्वन्द्व ज्वर, सज्जिपात ज्वर, विषम ज्वर, धातुगत ज्वर, विषजन्य ज्वर, अभिधातज ज्वर, साम ज्वर, मानस (कामज, क्रोधज, भयज आदि) ज्वर, अतिदाह युक्त ज्वर, शीत युक्त ज्वर, तृतीयक, चारुर्थिक तथा चतुर्थक विषय ये सब ज्वर नष्ट होते हैं तथा ऐकाहिक, द्वयाहिक, नाना प्रकार के सान्निपातिक ज्वर, पार्श्विक ज्वर, मासिक ज्वर अथवा जो पन्द्रह दिन अथवा मास भर से हुए ज्वर उत्तरे न हों वे ज्वर, तृष्णा, दाह, मोह, भ्रम, दीनता, तन्द्रा, श्वास, कास, अरुचि, पाण्डुरोग, हलीमक, कामला, पार्श्वशूल, पीठ की पीड़ा, जानु की पीड़ा, त्रिकपदेश की पीड़ा, वात से होने

वाली पीड़ा, सिर का जकड़ना आदि नष्ट करता है । अनेक देशों के जल से होने वाले दोषों को, दूषीविष आदि के विकार, लियों के रजेदोष से उत्पन्न विकार ये सब रोग उष्ण जल के साथ इस सुदर्शन चूर्ण के सेवन से नष्ट होते हैं । और पित्त से उत्पन्न होने वाले विकार शीतल जल के साथ पीने से नष्ट होते हैं । अनेक मुनियों ने संसार की हितकामना के लिये इस सुदर्शन चूर्ण को रोगों के नाश होने के लिये इस प्रकार का कहा है जिस प्रकार सुदर्शन चक्र दानवों के नाश के लिये है ॥ १-८ ॥

अथ शार्ङ्गधरात्—

त्रिफला रजनीयुग्मं कटकारीयुगं शटी । त्रिकुट मन्थिंकं मूर्चा गुहची धन्वयासकः ॥ १ ॥

कटुका पर्णटो मुस्ता त्रायमाणा च वालकम् । तिम्बः पुष्करमूलं च मधुयथी च वसकः ॥

यवानीन्द्रयवा भार्ङी शिग्रभीजं सुराष्ट्रजा । वचा रवक्ष्रायकोशीरचन्दनातिविषा बला ॥२॥

शालिपर्णी पृष्ठिनपर्णी विद्धहं तंगरं तथा । चित्रको देवदारुषं चब्धं पत्रं पटोलजम् ॥ ३ ॥

जावकर्षभकी चैव लवक्षं वंशलोचन । पुण्डरीकं च काकोली पत्रजं जातिपत्रकम् ॥ ५ ॥

तालीसपत्रं च सथा समभागानि चूर्णयेत् । सर्वं चूर्णस्य चार्धांशं कैरातं प्रदिपेत्युत्तीः ॥ ६ ॥

पृथक् सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषविषयापहम् । उवरात्रं निविलान् हन्मायाश्र कार्या विद्वारणा ॥

पुरुग्न्धागन्तुजांश्च धातुस्थान् विषमज्वरान् । सज्जिपातोऽव्याधापि मानसानपि नाशयेत् ॥४॥

जीर्णज्वरे काहिकादीन् मोहं तन्द्रां चमं सुधाम् ।

शासं कासं च पाण्डुं च हृदोगं हन्ति कामलाम् ॥ ९ ॥

त्रिकपृष्ठकटीजानुपूर्णशूलनिधारणम् । शीतसञ्ज्ञान् पिवेद्यामान् सर्वज्वरनिवृत्ये ॥ १० ॥

सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् । तद्वृज्जवराणां सर्वेषामिदं चूर्णं प्रणाशनम् ॥ ११ ॥

शार्ङ्गधर से सुदर्शन चूर्ण—त्रिफला, इरदी, दारहरदी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कनूर, त्रिकुट, पिपरामूल, मूर्चामूल, गुरुचि, धमसा, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण, सुगन्धवाला, नीम की छाल, पुण्डरमूल, जेठीमधु, कुड़ेकी छाल, अजवाइन, इन्द्रजी, भारंगी, सदिजन का बीज, सौराष्ट्रस्तिका, चच, दालचीनी, पदुमकाठ, खस, चन्दन, अतीस, वला, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, बायभिरंग, तगर, चित्र की जड़, देवदार, चाव, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभगक, लवंग, वंशलोचन, पुण्डरिया, काकोली, तेजपात, तालीसपत्र, इन सब ओषधियों को समान भाग लेकर चूर्ण कर सब चूर्ण के व्याधि चिरैता का चूर्ण मिलाकर रख लेवे । यह 'सुदर्शन' नामक चूर्ण है । इसके सेवन करने से तीनों दोषों का नाश होता है, यह सम्पूर्ण ज्वरों का निस्सन्देह नाश करता है, पृथक् २ (वातादिक), दृन्दज, आगन्तुज, धातुस्थ (रस-रक्तादिकस्थ) ज्वर, सब प्रकार के विषम ज्वर, सान्निपातिक ज्वर, मानसिक (काम, शोक, मयादिक) ज्वर, जीर्ण उवर, ऐकाहिक आदि ज्वर, तन्द्रा, अम, तृष्णा, श्वास, कास, पाण्डु, हृदोग और कामला का नाश होता है, इस चूर्ण को बुडिमान् सब प्रकार के ज्वरों की शान्ति के लिये शीतल जल से पीवे । जिस प्रकार सुदर्शनचक्र दानवों का नाश करता है उसी प्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सब प्रकार के ज्वरों का नाश करता है ॥ १-११ ॥

अथ लवज्जादिचूर्णम् ।

लवज्जातीफलपिपलीनां भागं प्रकर्ष्याद्यसमानमेषाम् ।

पलाद्धमेंकं मरिचस्थ दृश्यात्पलानि चर्खवारि महौषधस्थ ॥ १ ॥

सितासमं चूर्णमिदं प्रगृह्य रोगांश्च वातप्रभवाश्चिह्नित ।

कासज्वरारोचकमेहगुणमस्यासामिमान्यगृहणीप्रदोषान् ॥ २ ॥

लवद्वादि चूर्ण—लवंग, जायफर, पीपरि, इन औषधों को एक-एक अक्ष (१-१ तो०), मरिच आधा पल (२ तो०), सौंठि चारपल (१६ तो०) लेकर सबको चूर्ण कर सब चूर्ण के बरावर मिश्री मिलाकर रख ले यह ‘लवंगादि चूर्ण’ है, इसके सेवन करने से वात से उत्पन्न होने वाले रोग नष्ट होते हैं, और कास, ज्वर, अरुचि, नेह, गुलम, श्वास, मन्दाग्नि और ग्रहणी आदि दोष नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

अथ शार्ङ्गधरात्—

लवद्वंगं शुद्धकपूरमेला त्वग् नागकेशरम् । जातीफलमुखीरं च नागरं कृष्णजीरकम् ॥१॥
कृष्णगरुदुश्चाचीरी मांसी नीलोत्पलं कणा । चन्दनं तगरं बालं कङ्गोलं चेति चूर्णयेत् ॥२॥
समभागानि सर्वाणि सर्वेभोवधां सिता भवेत् । लवद्वाद्यमिदं चूर्णं राजाहं वह्निदीपनम् ॥
शोचनं तर्पणं वृद्धं श्रिदोषधनं बलप्रदम् । हृद्रोगं कण्ठरोगं च कासं हिक्कां च पीनसम् ॥४॥
यथामाणं तमकरवासमतीसारमुरुःचतम् । प्रमेहाश्वचियुग्मादीन् ग्रहणीमयि नाशयेत् ॥ ५ ॥

शार्ङ्गधर के मत से लवंगादि चूर्ण—लवंग, शुद्धकपूर, इलायची, दालचीनी, नागकेसर, जायफर, खस, सौंठि, कृष्ण जीरा, काली अगर, वशलोचन, जटामांसी, नीलोत्पल (नीलोफर), पीपरि, चन्दन, तगर, सुगन्धवाला, कंकोल, मरिच, इन सब औषधियों को समान लेकर चूर्ण करे और चूर्ण जितने हों उसके आधा मिश्री मिलाकर रखले। यह ‘लवंगादि चूर्ण’ राजाओं के लिये है, अग्निदीपक है, रुचिकारक, तृसिकर्ता, वृद्ध (वीर्यवर्धक), बलदायक, हृद्रोग, कण्ठ के रोग, कास, हिक्का, पीनस, यक्षमा, तमक श्वास, अतिसार, उत्क्षत, प्रमेह, अरुचि, गुलमादिक तथा ग्रहणी को भी नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

अथ कुरण्टकादिनामा लेहः ।

कुरण्टकं समूलं च त्रुणं प्रस्थं समाहरेत् । पानीयमष्टप्रस्थं चाकाथ्यमष्टावशेषकम् ॥१॥
शेषकाथं भाण्डमध्ये पुनस्त्वं वह्निः पञ्चेत् । काथे श्रिभागपचिते चूर्णद्रव्याणि निविषेत् ॥२॥
एला लवद्वंगं त्रिफला चायं पवककेसरम् । द्विर्भार्णी ग्रन्थिकं पाटा मागधीं चित्रुकुषकम् ॥३॥
कोलाञ्जनं चाजमोदा वज्रवङ्गो विद्वद्वकम् । जीरद्वयं चेन्द्रद्वयं सुस्ता दीप्यकसैन्धवम् ॥४॥
कटुकाऽतिविषा मूर्च्छ करञ्जस्त्वरलुप्रकम् । एतद् द्रव्यं सूक्ष्मचूर्णं पूर्वकाथेन संयुतम् ॥५॥
लेहपाकं च विधिवद्वाचीफलसमानकम् । उष्णोदकानुपानेन सेवयेहिनविशिष्टिम् ॥६॥
द्वन्द्वज्वरं पुराणं च ह्यमिमान्धमरोचकम् । त्वगतास्थियतौ रक्तगतं मांसगतं ज्वरम् ॥७॥
सन्धिज्वरं च हारयुग्रं रात्रिज्वरमयो हरेत् । त्रिदोषजं ज्वरं हन्ति श्वासकासंज्वरापहः ॥८॥
गालरोगोपशमनो विषमज्वरनाशनः । कुरण्टकादिनामाऽयं लेहो शोगजयी भ्रतः ॥९॥

कुरण्टकादि लेह—पिभावासा (कटसरैया) को जड़ सहित कूटकर एक प्रस्थ (एक सेर) लेवे और ८ प्रस्थ (८ सेर) जल देकर काथ करे अष्टमांश शेष रहने पर उतार लेवे और छान कर पुनः पात्र में रखकर आगपर पकावे, यह भी जब पकते २ तीन भाग जल कर एक भाग शेष रहे तब निम्नाङ्कित द्रव्यों के चूर्णों को मिलावे । इलायची, लवंग, त्रिफला, चाम, तेजपात, नागकेसर, भारंगी दुणी, पिपरामूल, पुरइनपाढी, पीपरि, चित्त, कूठ, कुलञ्जन, अजमोदा, वज्रवङ्गी (हथजोडी), बायीरंग, कृष्ण जीरा और जीरा, इन्द्रजी, नागरमोथा, अजवाइन, सेन्ध्या नमक, कुटकी, अतीस, मूर्च्छ, सोनापाठा, सहिजन इन सब द्रव्यों को समान लेकर इलक्षण चूर्ण कर मिलावे और अब लेह की विधि से बना कर औंवले के फल समान मात्रा से उष्ण जल के साथ बीस दिन तक सेवन करने से द्वन्द्वज्वर, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, त्वचा, अस्थि, रक्त और मास में ग्रास ज्वर, सन्धिज्वर जो अत्यन्त बढ़ गया हो, रात्रि में होने वाला ज्वर ये सब नष्ट होते हैं

तथा त्रिदोषज्वर, श्वास, कास, ज्वर को नष्ट करता है, गले के रोग को शान्त करता है, विषमज्वर नष्ट करता है । ‘कुरण्टकादि’ नामक यह लेह उक्त रोगों को नाश करने वाला है ॥ १-९ ॥

अथ घृतानि ।

उद्धरा: कथायैर्वंमनैलंहृत्युभोजनैः । रुचस्य ये न शाम्यन्ति तेषां सर्विभिर्विजितम् ॥१॥

ज्वर में घृत—रुक्ष शरीर वाले रोगियों को—जिनके मांस, रक्त, धातु और शरीर आदि सूख गये हों—कवाथ, बमन, लहून, लघुमोजन आदि कियाओं से भी यदि ज्वर नहीं शान्त हुए हीं तो उन्हें वैद्य घृत के प्रयोग से नष्ट करे अर्थात् जिन ज्वर के रोगियों को उपयुक्त औषधोपचार से लाभ नहीं हुआ हो उन्हें घृत के प्रयोग से वैद्य अच्छा करे ॥ १ ॥

सर्विद्वद्याक्षे मन्दे वातपिसोत्तरे ज्वरे । पक्षेषु दोषेवमृतं तिक्ष्णोपममन्यथा ॥ २ ॥

घृत के प्रयोग के योग्य रोगी—घृत का प्रयोग उन्हीं ज्वर के रोगियों पर करना चाहिये जिनका कफ मन्द हो गया हो तथा वात-पित्तप्रधान ज्वर हो गये हों । क्योंकि दोष जब पक जाते हैं तब घृत अमृत के समान गुणकारी होता है और जब नहीं पके रहते हैं तब घृत विष का काम करता है ॥ २ ॥

पञ्चतिकं घृतम्—

वृचनिम्बामृताद्याच्चीपटोलानां श्रतेन च । करकेन पक्षं सर्विस्तु निहन्याद्विषमज्वरान् ॥

पाण्डुं कुष्ठं विसर्पं च कूमीनश्चांसि नाशयेत् ॥ १ ॥

पञ्चतिकं घृत—अरुसा, नीम की छाल, गुरुचि, छोटी करेरी, पटोलपत्र, इनको समान भाग लेकर यात्रिविधि काथ करले और इन्हीं द्रव्यों को पुष्कर २ लेकर कल्क कर कल्क से चौगुना मूर्च्छित (१) किया हुआ गौ का धी लेवे और धी से चौगुना गो दुग्ध देकर पकावे घृत शेष रहने पर उतार कर सेवन करने से विषमज्वर नष्ट होता है । क्योंकि इसके लिये यह प्रधान औषध है तथा क्षय, गुलम, अरुचि और कामलारोग को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

अमृताद्यं घृतम्—अमृताद्यिक्षापटोलयासः सपयस्कं विधिवद् घृतं विषकम् ।

विषमज्वरजाशानप्रधानं चयगुलमारुचिकामलापहारि ॥ १ ॥

अमृतादि घृत—गुरुचि, त्रिफला, पटोलपत्र और जवासा इन द्रव्यों को दूध के साथ घृत की विधि से घृत बनाकर अर्थात् इन द्रव्यों का कल्क एक भाग, धी गौ का मूर्च्छित किया चार भाग, धी से चौगुना गो दुग्ध देकर पकावे घृत शेष रहने पर उतार कर सेवन करने से विषमज्वर नष्ट होता है । क्योंकि इसके लिये यह प्रधान औषध है तथा क्षय, गुलम, अरुचि और कामलारोग को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

षट्पलघृतम्—

पिष्पलीपिष्पलीमूलचद्यविषकनागरैः । सपैन्धवैश्च पलिकैर्घृतप्रस्थं विषाचयेत् ॥ १ ॥

क्षीरं चतुर्गुणं द्वात्तद् घृतं न्तीहनाशनम् । विषमज्वरमन्दाग्निहर्वं हृचिकरं परम ॥ २ ॥

षट्पलघृत—पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्त, सौंठि और सेन्ध्यानमक इन द्रव्यों को एक २ पल (४-४ तो०) लेवे, घृत गाय का मूर्च्छित किया एक प्रस्थ (एक सेर) और दूध गाय का

(१) घृतमूर्च्छित विधि—मूर्च्छित के लिये उत्तम गोघृत १ सेर में कल्कद्रव्य—हरड़, बहेरा, थोंवला, नागरमोथा, हलदी, विजोरा नीदू कारस प्रत्येक एक २ पल लेकर जौ कुट कर डाल दे और पाकार्थ जल भी ४ सेर डालकर लौह पात्र में रख भन्द २ आंच से पकावे, जब थोड़ा सा जल अवशिष्ट रहे तब उतार कर घृत को पृथक् कर ले । इस भाँति से घृत का मूर्च्छित करने से घृत का आम दोष नष्ट होकर घृत अधिक बलदायक, चिरस्थायी और हितकर हो जाता है ।

चौणुना देकर पकावे जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार-छान कर सेवन करने से प्लीहा नष्ट होती है, तथा विषमज्वर, मन्दाग्नि को भी नष्ट करता है तथा अत्यन्त रुचि बढ़ाता है ॥ १-२ ॥

महापट्पलघृतम्—पूतीकामिकपञ्चकोलहचकैः साजाजियुद्भोद्धिदैः

सच्चारैः सखिडैः सहिङ्गुहपुषासिन्धूसूजैः कशिकतैः ।

शुक्नाऽऽद्रेकसम्भवेन च रसेनैसन्महापट्पलं

सर्पिः पक्षमरोचकामिसदन्प्लीहज्वरशासजित् ॥ १ ॥

महापट्पलघृत—पूतीकरज, चित्त, पञ्चकोल (पीपरि, पिपरामूल, चाब, चित्त और सोंठि), रुचक लवण, जीरा और कुण्ण जीरा, उड्डिद लवण, जवाखार, विलवण, हींग, हाजवेर और सेन्धानमक प्रत्येक द्रव्य आधा २ पल (दो-दो तोल) लेकर कल्क करके चौणुना गाय का धी मूर्छित कर डाले और धी से चौणुना अदक का रस देकर और सिरका (या कांजी) भी अदक के रस के समान देकर पकावे, धी मात्र शेष रहने पर उतार कर छान कर सेवन करने से अरुचि, मन्दाग्नि, प्लीहा ज्वर और श्वास का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ तैलानि ।

अश्वगन्धा तैलम्—

अश्वगन्धा बला लाढा प्रस्थं प्रस्थं पृथक्पृथक् । जलद्रोणे विपक्लव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ १ ॥
तैलं त्रिमानिकं दद्याहृषिमस्तु चतुर्गुणम् । अश्वगन्धानिशादारुकैन्तीकुष्ठाबृश्चन्दनैः ॥ २ ॥
निशा तिक्ता शताद्वा च लाढा मूर्वा समूककैः । चुरुदारु च मञ्जिष्ठा मधुकोशीरसारिवाः ॥ ३ ॥
समभागानि कुर्वति कल्ककीकृत्य विपाच्येत् । सर्वज्वरं हरस्याग्नु सर्वधातुविवर्धनम् ॥ ४ ॥

पत्तद्भूजनेनाऽऽशु चयरोगं विमुक्तिः ॥ ५ ॥

ज्वर में तैल—अश्वगन्धादि तैल—असग्न्ध, बला, लाक्षा, इन तीनों को पृथक् २ एक २ प्रस्थ (एक सेर) लेकर एक द्रोण (१६ सेर) जल पकावे चतुर्थीश शेष रहने पर उतार लेवे, इसमें तिल का मूर्छित (१) किया तैल तीन मानिका (डेढ़ सेर), दही का पानी (मट्ठा) बारह मानिका (६ सेर) देकर असग्न्ध, हरदी, दारुहरदी, रेणुका, कूठ, नागरमोथा, चन्दन, हल्दी, कुटकी, सौफ, लाक्षा, मूर्वा, मूली, देवदार, मजीठ, खस, सारिवा सब द्रव्य वरावर-वरावर कुल मिलाकर के चतुर्थीश लेकर कल्क कर उपर्युक्त तैल, दही आदि में डालकर तैलसाधन प्रकरण की विधि से पकाकर तैल मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर को शीघ्र नष्ट करता है, सब धातुओं (रस-रक्तादिक) को बढ़ाता है और इसके मर्दन करने से क्षय रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १-५ ॥

षट्कैलम्—सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाचानिशालोहितयष्टिकाभिः ।

तैलं ज्वरे षट्गुणतक्षिद्भयञ्जनारुद्धीतविदाहनुत्स्थात् ॥ १ ॥

(१) तैलमूर्छित विधि—मूर्छित के लिये तिल तैल १ सेर, कल्कद्रव्य—मंजीठ ५ तो, अन्य द्रव्य प्रत्येक २-२ तो, पाकार्थ जल ४ सेर । विधि—तैल को कलईदार चौड़े मुख वाले बड़े पान में डालकर प्रथम उच्च करे जब तैल केनरहित हो जावे तब उतार ले, जब शीतल हो जावे तब उसमें मंजीठ, हरद, बहरा, आंवला, नागरमोथा, हल्दी, चुरुगन्धाला, लोध, केवड़े का पूल, वट के अंकुर, रत्नजोत सबको पूर्वोक्त मानानुसार लेकर यथाविधि कल्क बनाकर मिला देवे, और जल भी मिलाकर मन्द २ आंच से पकावे, पुनः २ थोड़ा जल शेष रहते ही उतार कर छान ले । इस प्रकार से मूर्छित किया हुआ तैल साधन में प्रयोग करे ।

षट्कैल तैल—सज्जीखार, सोंठि, कूठ, मूर्वा, लाक्षा, हरदी, मंजीठ, इन सबको समान भाग लेकर कल्क कर इसके चौणुना मूर्छित तिल का तैल और तैल से छव उना तक डाल कर पाक करे जब तैल मात्र शेष रहे तो उतार-छानकर सेवन करने से शीत और दाह ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दृष्टिः ससारकस्य स्यारच्छटके तक्षमुत्तमम् ॥ २ ॥

इस षट्कैल तैल में मलाई (साढ़ी) सहित दही का तक (मट्ठा) बनाकर डालना उत्तम है अर्थात् सज्जाव दही का मट्ठा डालना चाहिये ॥ २ ॥

लघुलाक्षादि तैलम्—

लाक्षाहरिद्रामञ्जिष्ठाकैहैत्तैलं विषाच्येत् । षट्गुणेनारानालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ ३ ॥

लघु लाक्षादि तैल—लाक्षा, हरदी, मंजीठ, इन तीनों को समभाग लेकर कल्क करके चतुर्गुण मूर्छित तिल तैल से छव उना कांजी डालकर पाक करे जब तैल मात्र शेष रहे तब उतार-छान कर सेवन करने से दाह और शीत ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

बहुलाक्षादि तैलम्—

तैलं लाक्षारसं छीरं पृथक्प्रस्थं समं पचेत् । चतुर्गुणेहिते काये द्रव्यैरेतैः पलोनिमतैः ॥ ४ ॥

छोप्रकटकलमञ्जिष्ठामुस्तकेसरपश्चकैः । चत्वन्नोपत्यलयस्त्वयैत्तैलं गण्डूषधारणात् ॥ ५ ॥

दन्तरोगाः प्रणश्यनित लेपासरसर्वज्वराश्येत् । पत्तस्त्राक्षादिकं तैलं बलुष्टिप्रदायकम् ॥ ६ ॥

बहुलाक्षादि तैल—तिल का मूर्छित तैल, लाख का रस और दूध तीनों अलग २ एक-एक प्रस्थ (एक सेर) द्रव्य होने के कारण द्विगुण अंथोर्त दो-दो प्रस्थ (दो सेर) लेकर काय करे और लोध, कायफर, मंजीठ, नागरमोथा, नागकेसर, पदुमकाठ, चन्दन, नीलोत्पल (नीलोफर), मुलहठी इन सब को एक-२ पल (चार-चार तो) लेकर कल्क कर तैल में देकर पकावे जब तैल-मात्र शेष रह जावे तो उतार-छानकर मुख में गण्डूष धारण करने से दाँत के सब रोग नष्ट होते हैं तथा मर्दन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं । यह 'लाक्षादि तैल' बल और पुष्टि देने वाला है ॥ १-३ ॥

षट्चरणतैलम्—

लाक्षामधुकमञ्जिष्ठामूर्वाच्यन्दनसारिवाः । तैलं षट्चरणं नाम त्वच्यङ्गाज्ज्वरनाशनम् ॥ १ ॥

षट्चरण तैल—लाख, जेठीमधु, मंजीठ, मूर्वा, चन्दन लाल और सारिवा इनको समान भाग लेकर कल्क कर कल्क के चौणुना मूर्छित तिल तैल और तैल से चौणुना जल पाक के लिये देकर पकावे और तैल मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर मर्दन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अङ्गारकतैलम्—

लाक्षा मूर्वा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा चेन्द्रवारुपी । बृहती सैन्धवं कुष्ठं राक्षा मांसी शतावरी ॥ २ ॥

आरानालादकेनान्न तैलप्रस्थं विपाच्येत् । तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ ३ ॥

अङ्गारक तैल—लाख, मूर्वा, हरदी, दारुहरदी, मंजीठ, इन्द्रायण (माझरि), बड़ी कटेरी, सेन्धा नमक, कूठ, राखा, जटामासी, सतावरि, प्रत्येक द्रव्य समान लेकर कल्क करे । सम्पूर्ण एक कुडव, कल्क के चतुर्गुण मूर्छित तिल तैल एक प्रस्थ (१ सेर) और कांजी एक आदक (४ सेर) देकर पाक करे तैल मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर मर्दन करने से यह 'अङ्गारक' नामक तैल सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है ॥ २-३ ॥

मध्यमलाक्षादितैलम्—तैलं प्रस्थमितं चतुर्गुणजतुकार्थं चतुर्मस्तुरुगः ।

यद्यीदारनिशाड्दभूर्वकदुकामिश्रश्च कौन्तीहिमैः ।

राज्ञाहैः पिन्नुसंमितैः कृतमिदं शस्तं तु जीर्णज्वरे ।

सर्वस्मिन्धिष्मेऽपि यच्चमणि शिशौ वृद्धे सग्रासु च ॥ १ ॥

मध्यम लाक्षादि तैल—तिल का मूर्च्छित तेल एक प्रस्थ (एक सेर), लाख का काथ चतुर्गुण अर्थात् चार प्रस्थ (चार सेर) और दहों का दाना चार प्रस्थ (चार सेर), कूठ, जेठीमधु, दालहरदी, नागरमोथा, मूर्वा, कुट्टी, सौफ, रेणुका, चन्दन लाल, रासा प्रत्येक द्रव्य एक-एक पिन्नु (१ तो ०) प्रमाण लेकर कल्क बनाकर तैल-तक्रादि में देकर तैलपाक की विधि से पाक करे, तैलमात्र शेष रहने पर उतार-छान कर मर्दन करने से जीर्णज्वर, सब प्रकार के विषम-ज्वर, यक्षमा आदि रोग नष्ट होते हैं और यह तैल बालक, वृद्ध और गर्भिणी के लिये भी उपयोगी है ॥ १ ॥

अथ चन्दनबलालाक्षादितैलम् ।

चन्दनं च बलामूलं लाला लामज्जकं तथा ।

पृथक्पृथक्प्रस्थमात्रं द्वोगे च सलिले पचेत् । चतुर्भागावशेषोद्दिमस्तैलं प्रस्थद्वयं लियेत् ॥ २ ॥

चन्दनोद्दीर्घमधुकशाताह्नः कटुरोहिणी । देवदारनिशाकुष्ठमस्तिष्ठागुरुवालकम् ॥ २ ॥

अश्वगन्धा बला बार्वी मूर्वा सुस्ता लमूलकाः ।

एला त्वच्छानागकुसुमं रास्ना लाला सुगन्धिका ॥ ३ ॥

चम्पकं पीतसारं च सारिवा रोचकद्वयम् । कण्ठकरेतैः समायुक्तं शीरादकसमन्वितम् ॥ ४ ॥

तैलमध्यज्ञने श्रेष्ठं सप्तधातुविवर्धनम् । कासरवासस्थपहरं सर्वच्छदिनिवारणम् ॥ ५ ॥

असुगदं रक्तपित्तं इन्ति पित्तकफामयम् । कानितकृष्णाहशमनं कण्ठविस्फोटनाशनम् ॥ ६ ॥

शिरोरोगं नेत्रादाहमकृदाहं च नाशयेत् । वासामयहतानां च ल्लोणानां शीणरेतसाम् ॥ ७ ॥

बालमध्यमवृद्धानां शस्यते शोफकामले । पाण्डुरोगे विशेषणं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ८ ॥

चन्दनबलालाक्षादि तैल—लाल चन्दन, बलामूल (बरियर की जड़), लाख और लामज्जक तृण (गुलाब कण्डा) अलग २ चारों एक-एक प्रस्थ (एक-एक सेर) लेकर एक द्रोण (१६ सेर) जल देकर पकाये चतुर्थीश शेष रहने पर इसे उतार-छान कर दो प्रस्थ (दो सेर) तिल का तैल मिलावे इसके पश्चात् चन्दन लाल, खस, मुलाई, सौफ, कुट्टी, देवदार, हरदी, कूठ, मजीठ, अगर सुगन्धबाला, असगन्ध, बला, दारु हरदी, मूर्वा, नागरमोथा, मूली, इलायची, दालचीनी, नागकेसर, रास्ना, लाल, कालीमेडी, चम्पा, पीतसार (शिलारस) सारिवा कृष्ण, विडलवण और सेम्बा नमक, इन सब द्रव्यों को समान लेकर अर्थात् सब मिलाकर तैल के चतुर्थीश आया प्रस्थ (आधलेर) लेकर कल्क कर तैल में देवे और उसमें गाय का दूध एक आडक (४ सेर)-देकर मन्द-मन्द अक्षि से पकावे जब तैल मात्र शेष रह जावे तब छानकर सेवन करने से यह साती धातुओं (रस-रक्तादिक) को बढ़ाता है, कास, श्वास और क्षय का नाश करता है, सब प्रकार के बमन को नष्ट करता है, प्रदर, रक्तपित्त और पित्त तथा कफ के रोगों का नाश करता है शरीर की कानित को बढ़ाता है, दाइ को शमन करता है, कण्ठ, विस्फोटक रोग, सिर के रोग, नेत्रों तथा शरीर का दाइ नष्ट करता है, वायु रोग से जो पीड़ित होकर क्षीण हो चुका है उहैं युनः शक्तिसम्पन्न करता है, यह तैल बालक, वृद्ध और मध्यम वय (शुवा) सबके लिये हितकर है, शोथ, कामला, पाण्डुरोग और विशेष कर सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है, अत्यन्त उत्तम है ॥ १-८ ॥

अथ पाकाः ।

अथ सेवन्तीपाकः—

श्वेतपुष्पसहस्राणि धृतप्रस्थे विषाच्चयेत् । धृतप्रके कृते तस्मिन्निष्पियेदेतदौषधम् ॥ १ ॥

सितोपला चतुर्भागा चातुर्जातं पलं पलम् । मध्यमीकाष्ठपलं चैव लियेभ्यु पलाशकम् ॥ २ ॥

धारासर्वं ध्वार्षपलं सर्वमेकत्र कारयेत् । कर्वप्रमाणं तत् सेव्यं सततं च गदात्तरैः ॥ ३ ॥

जीर्णज्वरे लाये कासे चामिमान्ये प्रमेहके । प्रदरं रक्षान् रोगान्कुष्ठाशार्णसि विनाशयेत् ॥

नेत्ररोगान् सुदुःसाध्यांस्तथा सर्वान् मुखोस्थितान् ॥ ४ ॥

सेवन्ती पाक—श्वेतपुष्प (सेवन्ती नामक गुलाब) एक सहस्र लेकर एक सेर धृत गौ का लेकर पकावे, जब धृत में भलीभाँति से वह पुष्प परिपक्व हो जाय तब उसमें मिश्री चौथाई भाग अर्थात् धृत के चतुर्थीश (१६ भर), चातुर्जात, तेजपात, दालचीनी, इलायची, का दाना, नागकेसर ये सब (एक-एक पल (चार-चार तो ०) लेकर इलक्षण चूर्ण कर मिलावे, मुनक्का ६ पल (२४ तो ०), मधु आठ पल (३२ तो ०), गुरुचि का सत्त आयापल (२ तो ०) सबको एकत्र मिलाकर उपर्युक्त पुष्पयुत धृत में पाक की विधि में मिलावे और भलीभाँति मिल जाने पर इसको एक कंघ (९ तो ०) की मात्रा से रोगी नित्य सेवन करे इससे जीर्णज्वर, क्षय, कास, अनिमान्य, प्रमेह, प्रदर, रक्त से उत्पन्न होने वाले रोग, कुष्ठ, अर्श, कषसाध्य नेत्र के रोग तथा सब प्रकार के मुख के रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अथ पिष्पलीपाकः—

पिष्पलीप्रस्थमादाय शीरेणवानुपेषयेत् । अष्टादकं धृतं गन्धं शुद्धं खण्डादकं तथा ॥ १ ॥

पचेन्मृदुग्धिना तावद्यावरपाकमुपागतम् । शीतीभूते लियेत्तस्मिन्नातुर्जातं पलव्रयम् ॥ २ ॥

योजयेन्मान्यथा युक्तं द्योषधात्वग्निशाम्यतः । ब्रह्यं वृष्यं तथा हृद्यं तेजोवृद्धिकरं तथा ॥ ३ ॥

जीर्णज्वरे लक्ष्मीणमश्रान्तं चैव लुहयेत् । छर्दिस्तृणाऽसुविश्वासशोषहिङ्का: सकामलाः ॥ ४ ॥

हद्दोगं पाण्डुरोगं च कण्ठरोगं त्रिहोषजम् । वानरकं प्रतिश्यायमवातं चिनाशयेत् ॥

संवरसप्रयोगेण वलीपलितवर्जितः ॥ ५ ॥

पिष्पली पाक—पीपरि एक प्रस्थ (एक सेर अर्थात् ६४ तो ०) लेकर गोदुग्ध के साथ भली भाँति पीस लेवे तत्पश्चात् आधा आडक (दो प्रस्थ अर्थात् १२८ तो ०) गाय का धृत और एक आडक (४ सेर) शुद्ध खाँड़ अर्थात् भूरा, इन सबको एक में मिलाकर पाक की विधि से मन्द २ अनिन पर पकावे जब पाक विधिपूर्वक बन जाय तब उतार कर शीतल होने पर इसमें चातुर्जात (तेजपात, दालचीनी, इलायची के दाने, नागकेसर) समभाग मिश्रित का चूर्ण तांन पल (१२ भर) मिला लेवे, इसको रोगी का दोष और अग्नि और साम्बन्धित देखकर मात्रा निश्चित कर सेवन कराने से बलकारक, वीर्यवर्धक, हृदय को हितकर, तेज को बढ़ाने वाला तथा जीर्णज्वर, क्षतक्षीण जिसमें रोगी श्रम से पीड़ित न हुआ हो अर्थात् जिसे हास न हुआ हो उसे बुद्धण करने वाला और वमन, तृष्णा, अरुचि, श्वास, शोष, हिङ्का, कामला, हृद्रोग, पाण्डुरोग कांडुरोग, त्रिदांषज रोग, वातरक्त, प्रतिश्याय और आमवात को नष्ट करता है, एक वर्ष तक नित्य सेवन कराने से बली-पलितादि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-५ ॥

अथ रसाः ।

नवज्वरेरेमाद्युरो रसराजलश्याः—

सरगन्धाटङ्कं रसभूषणं च विमर्दितं भावय मीनपितैः ।

दिनश्रवं वज्रसुगं प्रदद्यात् वृन्तकान्तकौदनपथ्यमन्त्र ॥ १ ॥
नवज्वरेभाङ्गं शनामधेयः लग्नेन घर्मेद्वयमातनोति ॥ २ ॥

रसराजलस्मी का नवज्वरेभाङ्ग रस—शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद समान भाग लेकर पहले कजली करे पश्चात उसमें शुद्ध टक्कण और मरिच उपर्युक्त ऋषियों के समान ही लेकर चूर्णकर एकत्र करे, इसके पश्चात रोहू मछली के पित्त में तीन दिन तक भावना देकर दो बछ (१) अर्थात् (दो रक्ती आ० मा०) की मात्रा से नवीन ज्वर में देवे और वैगन, तक (मण्डा) और चावल का भात पथ्य देवे तो नवीनज्वर नष्ट हो आता है। यह 'नवज्वरेभाङ्ग' नामक रस एक क्षण में ही स्वेद लाकर ज्वर नष्ट कर देता है ॥ १-२ ॥

नारायणज्वराङ्गुशत्तरणज्वरे—

सोमलं वर्सनाभं च सूतगन्धकतालकम् । कटुन्तर्यं कपर्दीं च विजया कलकस्य च ॥ १ ॥
टक्कणं समभागानि श्रङ्गवेररसैस्यहम् । शीतज्वरे सञ्जिपाते विसृष्ट्यां विषमज्वरे ॥ २ ॥
नाशये दत्तिवेगेन धान्यमात्रं प्रदापयेत् । वज्रमाद्वाहयेत्तेन प्रह्वेद्वेऽयं प्रजायते ॥ ३ ॥

पथ्यं यदीच्छया देयं दधिशीतोदकादिकम् । रसो नारायणो नाम सञ्जिपातज्वराप्रह्वः ॥ ५ ॥

नवीनज्वर में नारायण ज्वराङ्गुश रस—शुद्ध संखिया, शुद्ध वस्तनाभ विष, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, सोंठि, पीपरि, मरिच, कौड़ी की भूम, शुद्ध भाग और शुद्ध भत्ते का बीज, शुद्ध टक्कण सबको बरावर-बरावर लेकर प्रथम पारद और गन्धक कीं कजली कर सब ऋषियों के चूर्ण को एकत्र कर अद्रक के स्वरस में तीन दिन भावना देकर भलीभाँति मर्दन करे पश्चात एक धान्यं (चावल भर की) मात्रा से सेवन करने से शीतज्वर, सञ्जिपात, विसृचिका, विषमज्वर आदि को बलात् नष्ट करता है। इस औषध के सेवन करने से स्वेद अधिक होता है इसलिये रोगी का शरीर वज्र से ढके रहे और स्वेद पोष्टता जावे। और पथ्य में जो रोगी की इच्छा करे सब देवे, दही और शीतल जल आदिक सब देवे। यह 'नारायण' नाम का रस सञ्जिपातिक ज्वर को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

अथ पञ्चामृतरसः—

स्वर्णरौप्यरविषपश्चगलोहं चन्द्रहिंश्चित्तुःशरभागम् ।
मर्दितं तनुतरं दिनमेकं भावितं भकरपित्तरसेन ॥ १ ॥

वज्रयुग्ममस्तिलज्वरशान्त्ये शक्तिराद्रकरसेन ददीत ॥ २ ॥

पञ्चामृत रस—सुवर्णभस्म १ भाग, रौप्यभस्म २ भाग, ताप्रभस्म तीन भाग, सीसा का भस्म चार भाग, लोहभस्म पांच भाग सबको दिनभर भलीभाँति मर्दन कर द्वालक्षण करे तदुपरान्त भगर के पित्त के रस से भावना देकर दो बछ की मात्रा से अद्रक के रस और शक्ति के साथ सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर को शान्त करता है ॥ १-२ ॥

जीर्णज्वराङ्गुशः—

शृतं सूक्ष्मश्रान्तागाकान्तवैकान्तमेव च । हिङ्कुलं टक्कणं गन्धं विषं कुष्ठं समांशकम् ॥ १ ॥
त्रिकटुत्रिफलामुस्ताभृङ्गनिरुणिङ्काद्रवैः । भावयेत्त्विदिनं चैव माप्तमाशाङ्गुपाततः ॥ २ ॥
जीर्णज्वरे चये कासे दोषे मन्दान्तेषु च । पाण्डुं हलीमकं गुणमसुदरं चाहितं जयेत् ॥ ३ ॥
ग्रहणीशुलरोगाश्च त्वरोचकमनेकधा । कार्नित तेजो वज्रं पुष्टे वीर्यसृदि विवर्धयेत् ॥

(१) मात्रा के विषय में निश्चिव मात्रा, देश, धातु और वय आदि देखकर ही करनी चाहिये ॥

साध्यासाध्यं निहन्त्याशु इसो जीर्णज्वराङ्गुशः ॥ ४ ॥

जीर्णज्वराङ्गुश रस—रससिन्दूर, अश्रुभस्म, सीसा का भस्म, ताप्रभस्म, कान्तलौह भस्म, वैकान्तभस्म, हिंगुल, शुद्ध टक्कण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष और कूठ प्रत्येक समान भाग लेकर एकत्र मर्दन कर त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, भांगरा, और निर्युण्डी इन में से प्रत्येक के अलग २ स्वरस या काथ से तीन २ दिन तक भावना देकर एक मासा की मात्रा से उचित अनुपान के साथ सेवन करने से जीर्णज्वर, क्षय, कास, त्रिदोष से उत्पन्न रोग, मन्दाश्चि, पाण्डु, हलीमक, गुल्म, उदर और अद्वित वात नष्ट होते हैं और ग्रहणी तथा ग्रहणी के कारण उत्पन्न होने वाले रोग और अनेक प्रकार की अरुचि ये सब नष्ट होते हैं। तथा कार्नित, तेज, बल, पुष्टि और वीर्य की वृद्धि आदि अधिकाधिक होती है, साथ्य अथवा असाध्य सब प्रकार के जीर्णज्वर को 'शीघ्र ज्वराङ्गुश रस' नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

अथ मुक्तापञ्चामृतरसः ।

मुक्ताप्रवालखुरवङ्गकक्षुद्धिभूतिं चूसूदधिदग्निद्वुष्टुभूमागम् ।

इच्छो रसेन सुरभेः पथसा विद्यारिकन्यावरीसुरसंपदवीरसेत् ॥ १ ॥

संमध्यं यामयुग्मं च बनोपलाभिद्वात्पुटानि च पञ्च पञ्च ।

पञ्चामृतं रसविशुभिषजा प्रयुज्य गुज्जाचतुष्टयमितं चपलारजश्च ॥ २ ॥

पात्रे निधाय विषसूतपथस्विनीना॒ दुर्घेन च प्रपितः चलु चासपभोक्तुः ।

जीर्णज्वरः चयमियाद्वय सर्वरोगाः स्वीयाज्ञुपानकलिताक्षं शामं प्रयान्ति ॥ ३ ॥

मुक्तापञ्चामृत रस—मोती का भस्म ६ भाग, प्रवाल भस्म ४ भाग, खुरा रांग का भस्म १ भाग, शङ्क का भस्म और सीप का भस्म एक-एक भाग भलीभाँति मर्दन कर ईख के रस, गौ के दूध, विदारीकन्द के रस, धीकुआर के रस, सतावरि के रस, तुलसी की पत्ती का रस और हंसराज पत्ते के रस से पृथक् २ दो-दो पहर मर्दन कर पृथक् २ पांच-पांच लघुपुट देवे। इस पञ्चामृत रस को एक रक्ती लेकर चार रक्ती पीपरि के चूर्ण के साथ अधिक दिन की प्रसूता गाय (बकेनी गाय) के दूध को पात्र में रख उसी दूध से सेवन करने और अल्प आश्वार करने से जीर्णज्वर, क्षय आदि नष्ट होते हैं तथा अपने २ अनुपानों के साथ (वथारोग) सेवन करने से सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ त्रिभुवनकीर्तिरसः ।

हिङ्कुलं च विषं व्योषं टक्कणं मारुषीशिकाम् । संचूर्ण्य भावयेत् वेदा सुरसाद्रूपहेमभिः ॥ १ ॥
रसञ्चिभुवनकीर्तिरुञ्जैकाद्रूपसेन वै । विनाशायेऽवरान्सर्वात्मशिपात्माच्योदशः ॥ २ ॥

त्रिभुवनकीर्ति रस—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, सोंठि, पीपरि, मरिच, शुद्ध टक्कण, पिपरामूल, हम सब के चूर्ण को समान लेकर तुलसी के पत्ते के रस, अद्रक के रस और भत्ते के रस से तीन-तीन भावना पृथक् २ देकर रख लेवे। यह 'त्रिभुवनकीर्ति रस' एक रक्ती की मात्रा से अद्रक के रस के साथ सेवन करने से सब प्रकार के ज्वरों का नाश करता है ॥ १-२ ॥

अथ महाज्वराङ्गुशः ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं धूतं वीजं त्रिभिः समम् । चतुर्णां द्विगुणं व्योषं हेमशीरीविभावितम् ॥ १ ॥

चतुर्वारं धर्मशुष्कं चूर्णं गुज्जाङ्गुशोन्मितम् । पक्षजग्मीरकद्रवैर्युक्ताद्रूपस्य द्रवैर्युक्तः ॥ २ ॥

महाज्वराङ्गुशो नाम ज्वराणामन्तको भवेत् ।

बल (६ रत्ती) के प्रमाण की गुटिका बनाकर अद्रक के रस के अनुपान से रोगी को देवे तो नवीन ज्वर शीघ्र नष्ट होता है। इस रस का नाम 'बैलोक्यतापहर' है, इसके सेवन करने पर पथ्य में मूंग के यूधसहित लघु (भासादि) मोजन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

मृत्युञ्जयरसः—

शतसनाभं गन्धकं च मरिचं टक्कणं कणा । पकैकं भागमादाथ शूद्रभागं हिङ्गुलं भवेत् ॥ ३ ॥
आद्रकस्थरसेनैव मुद्रमानां वटी वरेत् । मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २ ॥

अड्डीरस्य रसेनैव जीर्णउवरविनाशनम् ।

अजाजीयुद्दसंमिश्रं विषमज्वरनाशनम् । आद्रकस्य रसेनैव टक्कणं सज्जिपातकम् ॥ ४ ॥
मृत्युञ्जय [१] रस—शुद्र वत्सनाम विष, शुद्र गन्धक, मरिच का चूर्ण, शुद्र टक्कण, पीपरि का चूर्ण सब एक-एक भाग लेवे और शुद्र हिङ्गुल दो भाग लेकर अद्रक के स्वरस से मर्दन कर मूंग के प्रमाण की वटी बना लेवे, इस रस को मधु के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं, जमोरी नीबू के रस से सेवन करने से जीणज्वर, जीरा और युड़ के साथ से विषमज्वर और अद्रक के रस से सेवन करने से कठिन सन्निधात ज्वर नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

अमृतकलानिधिरसः ।

अमृतकलाटकमरिचैर्षिष्ठपञ्चनवरमांशैः । मुद्रप्रमाणवटको उवरपित्तकफालिमान्धारी स्थाद् ॥ १ ॥
अमृतकलानिधि रस—शुद्र विष २ भाग, कौड़ी का भस्म ५ भाग और मरिच का चूर्ण नव भाग लेकर सबको एकत्र जल से मर्दन कर मूंग के प्रमाण की वटी बनाकर सेवन करने से ज्वर, पित्त, कफ के रोग और मन्दाद्यि नष्ट होती है ॥ १ ॥

ज्वरमुरारि ।

रसबलिकगिलोहयोमतामाणिं तुव्यान्यथ रसदलभागं शतसनाभं प्रशुष्टम् ।

भवति गदमुरारिश्चास्य गुजार्द्रवादा ल्पयति विषसेन प्रौढमामज्वराल्प्यम् ॥ १ ॥

ज्वरमुरारि रस—शुद्र पारद, शुद्र, गन्धक सीसा भस्म, लौह भस्म, अब्रम भस्म, ताप्र भस्म, सब बरावर-बरावर लेवे और पारद से आधा शुद्र वत्सनाम विष लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अन्याय औषधियों को उसमें मिलाकर मर्दन कर एक रत्ती की मात्रा से अद्रक के स्वरस के साथ सेवन करने से यह 'गदमुरारि' रस वा 'ज्वरमुरारि रस' एक दिन में तीव्र आमज्वर को नष्ट करता है ॥ १ ॥

चन्द्रशेखररसः ।

शुद्रमूतसमं गन्धं मरिचं टक्कणं तथा । चतुर्स्तुरुद्या लिता योज्या मरस्यपित्तेन भावयेत् ॥ १ ॥
हिंगुज्ञामाद्रकद्वावैर्देव शीतोदकं पुनः । तक्कभक्तं च वृन्तोकं पथ्य तत्र विषापयेत् ॥ २ ॥

त्रिदिनाच्छ्लेष्मपित्तोरथस्तयुर्णानाशयेउवरम् ॥ ३ ॥

चन्द्रशेखर रस—शुद्र पारद, शुद्र गन्धक, मरिच का चूर्ण, शुद्र टक्कण चारों औषध समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर पुनः शेष औषधों को मिला सबके बरावर मिश्री मिला कर मर्दन कर मछली के पित्त की भावना देकर दो रत्ती की मात्रा से अद्रक के रस के साथ देवे

(१) इस योग में कई श्रेष्ठ वैद्य शुण्ठी चूर्ण भी एक भाग मिलाते हैं जो उत्तम है और परीक्षित है।

इसके पश्चात् शीतल जल, तक (मठ्ठा), भात, वैगन आदि पथ्य में देवे। इस प्रकार करने से इस ओषधि से कफ-पित्त से उत्पन्न अत्यन्त उच्छवर तीन दिन में नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

स्वर्णमालिनीवसन्तः ।

स्वर्णं मुक्ताक्षदद्यरिचं भागशूद्या प्रदेवं रुपर्यर्थै प्रथमनवनीतेन निभवत्तुना च ।
यावस्त्वेहो व्रजति विलयं मर्दयेहीयतेऽसौ गुलाङ्गुलं मधुचपलया सर्वरोगे वसन्तः ॥ १ ॥
स्वर्णमालिनीवसन्त—इस रस में एक २ भाग के वृद्धिकस से सुवर्ण मस्म १ भाग, मुला भस्म दो भाग, शुद्र हिङ्गुल तीन भाग और मरिच चूर्ण चार भाग तथा शुद्र खपरिया अठ भाग लेकर सबको एकत्र मर्दन कर प्रथम मक्खन के साथ मर्दन करे पश्चात् नीबू के रस के साथ तब तक मर्दन करे जब तक मक्खन की स्तिनग्धता नष्ट नहीं होते, इसमें नीबू का स्वरस आवश्यकता होने पर कई बार दिया जा सकता है तिनग्धता नष्ट होने पर इस रस को दो रत्ती की मात्रा से मधु और पीपरि चूर्ण के साथ सेवन करने से ज्वरादिक सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लघुमालिनीवसन्तः

रसक्युगलभागं बृजिं भागमेकं द्वितयमथ सुखवेदं मर्दयेन्द्रावदेन ।

भवति धृतिविशुको निभुनीरेण यावज्जवरहरमधुकुलया मालिनीप्रावृत्यसन्तः ॥ ३ ॥

जीर्णज्वरे धातुगतेऽतिसारे रक्तान्विते इक्षभवे शिकारे ।

धोरधये पित्तमधे च दोषे वृद्धद्वयं दुष्यत्युतं च पथ्यम् ॥ २ ॥

प्रदर्श नाशयत्याशु तथा द्वुर्नामशोणितम् । विषमं नेत्ररोगं च गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ३ ॥

वसन्तो मालिनीरूपः सर्वरोगाहरः विशोः । गर्भिण्ये तत्र देयो वै जयत्य्याः पुष्पकैः सह ॥

सर्वज्वरहरः श्रेष्ठो गर्भयोषण उत्तमः ॥ ४ ॥

लघुमालिनीवसन्त—शुद्र खपरिया दो भाग और मरिच का चूर्ण एक भाग दोनों को नवनीत के साथ भल्लीभांति मर्दनकर नीबू के रस को मिला २ कर तब तक खरल में मर्दन करे जब तक नवनीत की स्तिनग्धता नष्ट न हो जावे। स्तिनग्धता नष्ट हो जाने पर दो रत्ती की मात्रा से मधु और पीपरि के चूर्ण के साथ देने से यह 'लघुमालिनीवसन्त' नामक रस सब प्रकार के ज्वर तथा जीणज्वर, धातुगत (रस-रक्तादि धातु में प्राप्त) ज्वर, अतीसार, रक्तातिसार, रक्त से उत्पन्न होने वाले विकार, धोर-पीड़ा, पित्त से उत्पन्न दोष आदि नष्ट होते हैं। इसके सेवन करने पर दुर्घ के साथ लघु (चावल आदि) पथ्य लेना चाहिये। और इसके सेवन करने से ग्रदर रोग शीघ्र नष्ट होता है और यह रक्तार्श, विषमज्वर, नेत्र रोग को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सिंह धारी को नष्ट करता है। यह मालिनीवसन्त बालकों के सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। यह औषध गर्भिणी लोगों के जयन्ती के पूल के साथ सब रोगों में देना चाहिये तथा इससे गर्भिणी का सब प्रकार से उत्पन्न ज्वर नष्ट होता है और गर्भ को मुष्ट करने में उत्तम है ॥ १-४ ॥

अन्यच—नरामध्ये रसकस्य चूर्णं दिनानि सप्त श्रिंगुणानि पूर्वम् ।

धृत्वाऽस्तपे शोषितमेतदेव नृवारि जीर्णं भवतीति यावत् ॥ ३ ॥

पलग्रमाणं मरिचं च निस्तुर्यं पलद्वयं स्याद्रसकस्य तत्प ॥ २ ॥

एकत्र संचूप्यं कृतं तदेव पलार्थकं गोनवनीतिकं च ॥ ३ ॥

निभूत्योदये विमर्दनीयं शतैकमानं निष्पत्ता वरिष्ठम् ।

वृद्धद्वयं चास्य कणामधुम्यो प्रदापयेद्याधिगजस्य केसरी ॥ ३ ॥

नाम्ना प्रसिद्धो रसराज् एष सथो ग्रहण्यामतिसारके च ।
उवरे ल्येऽर्थाः सु तथेव ताप्ये शाळाग्रिमान्त्यानिलज्ञे विकारे ॥ ४ ॥

अन्य विधि से मालिनीवसन्त—शुद्ध खपरिया के चूर्ण को मनुष्य के मूत्र में २१ दिन तक रख कर धूप में तब तक सुखावे जब तक मूत्र सम्पूर्ण न सूख जावे । सूखने पर छिलका रहित मरिच का चूर्ण एक पल [चार तो] और यह मूत्रमावित खपरिया चूर्ण दो पल [८ तो] दोनों एकत्र मर्दन कर आधापल [दो तोला] गौ का नवनीत मिला कर मर्दन करे पुनः नीबू के रस में एक सौ दक बार मर्दन करे इसके पश्चात् २ बल [ह रत्ती आ० मा० दो रत्ती] की मात्रा से मधु और पीपरि के चूर्ण के साथ सेवन करने से यह रोगलूपी गज को सिंह के समान नष्ट करता है । यह अपने नाम से सब रसों में राजा प्रसिद्ध है । और इसके सेवन से अर्हणी अतीसार उच्चर, क्षय, अर्श, ताप, शूल, मन्दाग्नि और वायु के रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अन्यच्च—स्वर्पं सानुषे मूत्रे स्थितं घट्तविससुकम् ।

निश्वक्षद्वर्धमरिचं नवनातेन मर्दयेत् ॥ ५ ॥

शतधा भावयेष्विभृत्यैः स्थाद्रसकेष्वरः । पिष्ठलीमधुयुक्तः सर्वतो वाऽस्य भेषजम् ॥२॥
उच्चरं धातुगतं पित्तं अमं पित्ताच्चजानगदान् । रक्तातिसारं ग्रहणीं दुर्नामासं निवारयेत् ॥

अन्यर्थं द्विवा शुद्धं पथ्यं चास्मिन्प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥

मालिनीवसन्त की दूसरी विधि—शुद्ध खपरिया को मनुष्य के मूत्र में २१ दिन रख कर जितना प्रमाण में वह खपरिया हो उसके आधा भाग छिलका रहित मरिच का चूर्ण मिला कर दोनों को गौ के नवनीत के साथ मर्दन कर नीबू के रस में सौ बार भावना देके इसके पश्चात् सुखाकर यह ‘रक्तकेरर’ मधु और पीपरि के चूर्ण के अनुपान से [दो रत्ती की मात्रा से] सेवन करने से अथवा मिश्री के साथ देने से उच्चर, धातुगत [रस-रक्तादि में प्राप्त] उच्चर, पित्त, दोष, भ्रम, पित्तरक्त से उत्पन्न होने वाले रोग, रक्तातिसार, ग्रहणी, अर्श आदि नष्ट होते हैं । अम्लता रहित [मीठा] दही अथवा दूध इसके सेवन करने में पथ्य देना चाहिये ॥ १-६ ॥

अपूर्वमालिनीवसन्तः ।

वैकान्तमभं रविताऽयरौयं वङ्गं प्रवालं रसभस्म लोहम् ।
सुदृढं कम्बुकभस्म सर्वं समांशकं सेव्यवरी हरिद्रा ॥ १ ॥
द्रवैविभाष्यं सुनिसंखया च मृग्नाङ्गजाशीतकरेण पश्चात् ।
वाल्प्रमाणो मधुपिष्ठलीमिलींउद्धे धातुगते नियोजनीयः ॥
युद्धचिकासत्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु नियोजनीयः ॥ २ ॥

कृष्णशमरी निहन्त्याशु मातुलुङ्गाङ्गिजंद्रवेः । इसो वस्त्रन्तनामाऽथपूर्खो मालिनीपरः ॥
अपूर्वमालिनीवसन्त—वैकान्त, अभ्रक, ताप्र, स्वर्णमालिक, रौप्य, वङ्ग, प्रवाल इनकी भस्में पारद भस्म वा रससिन्दूर, लौहभस्म, शुद्ध टड्कण, शङ्खभस्म, सवको समान भाग लेकर मर्दन कर खस, सतावरि और हरदी इनके द्रव [क्षात्र अथवा स्वरस] से सात २ बार पृथक् २ भावना देकर कस्तूरी और कारूर पृथक् २ उपर्युक्त ओषधियों में से किसी एक के बराबर लेकर मर्दन कर रख लेवे । इस औषध में से २ बल = ३ रत्ती [आ० ३ रत्ती] की मात्रा से मधु और पीपरि के चूर्ण के अनुपान से सेवन करने से जीर्णउच्चर और धातुगतउच्चर नष्ट होते हैं । गुरुचि का सत्त और मिश्री के अनुपान से सब प्रकार के प्रसेह नष्ट होते हैं और विजौरे नीबू के मूल के रस के अनुपान के सेवन करने से यह ‘अपूर्वमालिनीवसन्त’ नामक रस मूत्रकुच्छ और अद्मरी को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

पञ्चवक्त्रः ।

शुद्धसूतं विषंगन्धं मरिचं टड्कणं कजाय । मर्दयेद्धूतजद्वैदिनसेकं च शोषयेत् ॥ १ ॥
पञ्चवक्त्रप्रसो नाम द्विगुज्ञः सन्धिपातजित् । अर्कमूलकषायं तु व्यूषणं चानुपायेत् ॥ २ ॥
शुक्ल दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत् । रसेनानेन शास्यन्ति सत्त्वादेण कफादयः ॥ ३ ॥
मधु त्वर्षकरसं आनु पिवेदग्निविवृद्धये । यथेष्ट शृतमस्याशु दीप्तो भवति पावकः ॥ ४ ॥

पञ्चवक्त्र रस—शुद्ध पारद, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, मरिच का चूर्ण, शुद्ध, पीपरि का चूर्ण इन सवको समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर पुनः सब ओषधियों के चूर्ण को एकत्र घटूर के रस में एक दिन भर मर्दन कर सुखा लेवे इस रस का नाम ‘पञ्चवक्त्र’ है । इसे दो रत्ती की मात्रा से मदार की जड़ के क्षात्र में सौंठि, पीपरि और मरिच का चूर्ण मिला कर इसके अनुपान से देना चाहिये । इससे सन्धिपात का नाश होता है, इसके साने पर दही और भात पथ्य देना चाहिये और शीतल जलादि सेवन करना चाहिये । इसको मधु से देने से कफ आदि नष्ट होते हैं, मधु और मदारों के रस के साथ देने से अग्नि की वृद्धि होती है उसकी पर्याप्त मात्रा में वृतादिक भोजन करने पर भी अग्नि पुनः तीव्र हो जाती है ॥ १-४ ॥

चन्द्रकलारसः ।

गगनदरदयुक्तं शुद्धसूतं च गन्धं प्रहरमधु सुपिण्ठं वशलयुग्मं नरोऽच्यात् ।

उवर्हरसाज्जिविः श्रव्वेदोदकेन प्रथमज्ञनितयाहे तक्रभक्तं च भोजयम् ॥ १ ॥
मुस्ताद्विमद्वैत्येः केतकीस्तनजद्वयेः । सहदेव्याः कुमार्याश्र पर्पटस्यापि चारिणा ॥ २ ॥
रामशीतिलिकातोयैः शतावर्या इसेन च । भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ३ ॥
तिक्ता गुह्यचिकासत्वं पृष्ठोद्वारमाधवी । श्रीगन्धं सारिका चैवां समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥४॥
द्राक्षाफलकषायेण ससधा परिभावयेत् । सतः पोताश्रयं कृत्वा वट्यः कार्याद्योपमाः ॥५॥
अयं चन्द्रकलानाम्ना इसेन्द्रः परिकीर्तिः । सर्वपित्तग्रहधवंसी वातपित्तादापहः ॥ ६ ॥
अन्तर्बायमहादाहिविधिसंनमहाधनः । ग्रीष्मकाले शरस्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥ ७ ॥
कुरुने नागिनमान्यं च महातपज्वरं हरेत् । अमसूक्ष्माहरश्चाऽशु स्त्रीणां रक्तं महाच्चवम् ॥८॥
उक्तव्यो रक्तपित्तं च रक्तवान्ति च रक्तवान्ति चित्तेषतः । मूत्रकृच्छाणि सर्वाणि नाशयेत्तात्र संशयः ॥ ९ ॥

चन्द्रकला रस—अन्नकमस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक इन सब को समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अन्य ओषधियों को एकत्रित कर एक पहर मर्दन करे भलीभाँति मादित हो जाने पर २ बल = ६ रत्ती (आ० दो रत्ती) की मात्रा से अद्रक के रस के साथ से मनुष्य सेवन करे तो यह उच्चर को इस प्रकार नष्ट करता है कि जिस प्रकार सिंह हाथी को नष्ट करता है और यदि सेवन करने से पहले २ दाह हो तो तक के साथ भात पथ्य देना चाहिये । नाशारभीथा, अनारदाना, दूर्वा, केतकी पृष्ठ के रस, दूध और सहदेवी, धृतकुमारी, पित्तपापड़ा, गुणगन्धवाला, रामशीतला (सुगन्धित पत्र शाक) और सतावरि आदि प्रत्येक के रस में एक-एक दिन पृथक् २ उपर्युक्त अस्रक आदिक को भावित करे उसके बाद पृथक् २ भावना कृटकी का चूर्ण, गुरुचि का सत्त, पित्तपापड़ाचूर्ण, खस का चूर्ण, मायबीलता, शेत चन्दन का चूर्ण, सारिवाचूर्ण इन सब ओषधियों में प्रत्येक के सूक्ष्मचूर्ण को अस्रक के बराबर २ लेकर एकत्र कर अन्नकादि के साथ मर्दन कर द्राक्षा (मुनका) के क्षात्र में सात बार भावना देवे इसके पश्चात् (पोताश्रयं कृत्वा) खरल कर चने के समान गोली बनाकर रख लेवे । यह ‘चन्द्रकला’ नामक रस कहा गया है, इसके सेवन से सब प्रकार के पित्त के रोग नष्ट होते हैं । और अन्तर्दृह अथवा बाय

दाह अत्यन्त अधिक हो तो उसे भी नष्ट करने में यह महान् मेघ के तुल्य है और विशेषकर श्रोतुंशु और शरद् ऋतु में लाभकारी होता है । यह औषध अग्नि को भी मन्द नहीं करता है और महाताप वाले ज्वर को भी नष्ट करता है तथा अम-मूच्छा आदि को शीघ्र नष्ट करता है और खियों के अधिक (प्रदरादि के कारण) वहते हुए रक्त को भी नष्ट करता है, ऊर्ध्वर्ग अथवा अथोगामी रक्षित को विशेष कर रक्त वसन को तथा सब प्रकार के मूत्रकूच्छ के रोग को नष्ट करता है इनमें संशय नहीं ॥ १-९ ॥

सप्तधातुगतज्वराणां लक्षणम् ।

गुरुता हृदयोक्त्वेत्वः सदनं वृद्ध्यरोचकौ । रसस्थे च उवरे लिङ्गं दैन्यं चास्योपजायते ॥ १ ॥

सप्तधातु (रस-रक्तादि) में प्राप्त हुए ज्वरों के लक्षण—सप्तधातु में प्राप्त ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर वाले जीर्ण रोगी को शरीर में भारीपन, हृदय में उत्क्षेप (उत्कार्दि) होना, शरीर में गलानि होना (स्फुर्ति आदि का नहीं रहना), वसन, अरुचि और दीनता अथवा छास आदि लक्षण हों तो उसका ज्वर रसधातु के आश्रय है यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तनिष्ठीवर्ण दाहो मोहश्छुर्दनविभ्रमौ । प्रलापः पिटिका तुणा रक्तप्रापे उवरे नृणाम् ॥ २ ॥

रक्तगत ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर वाले जीर्ण रोगी को शूक्र में रक्त आवे और दाह, मोह, वसन, अम, प्रलाप, पिटिकायें और तुषा ये सब लक्षण हों तो उसका ज्वर रक्तधातु के आश्रय है यह जानना चाहिये ॥ २ ॥

पिण्डिकोद्धृत्वन् मूर्च्छा सृष्ट्वृपुरीषता । उद्धमान्तर्दीहविचेपौ ग्लानिः स्यान्मासगे उवरे ॥ ३ ॥

मांस धातु में प्राप्त ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर वाले जीर्ण रोगी के पिण्डिलियों (जानु के अधोमांस के मांसपिण्डों) में दण्डप्रद्वाहर जैसी पीड़ा, मूर्च्छा, मूत्र और पुरीष अधिक होनी, अधिक उद्धरण तथा शरीर में [उदरादिक में] अधिक दाह, हाथ-पैर इधर-उधर पटकना और गलानि ये सब लक्षण हों तो उसका ज्वर-मांस धातु के आश्रय है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३ ॥

मृदृशं स्वेदश्वस्त्रां मूर्च्छा प्रलापश्छुर्दिवेव च । दौर्गान्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदःस्थे चासहिष्णुता ॥ ४ ॥

मेदोगत ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर में अत्यन्त स्वेद, तुणा, मूर्च्छा, प्रलाप, वसन, शरीर से अधिक दुर्बिन्दि आना, अरुचि, ग्लानि और असहिष्णुता [सहनशक्ति की न्यूनता] आदि ये सब लक्षण हों तो उसका ज्वर मेद धातु के आश्रय है ऐसा जानना चाहिये ॥ ४ ॥

भेदोऽस्थनां कूजनं श्वासो विरेकश्छुर्दिवेव च । विचेपणे च गाढाणां विद्यादस्थिगते उवरे ॥ ५ ॥

अस्थिगतज्वर के लक्षण—जिस की हड्डियों में अधिक दूटने जैसी पीड़ा, कण्ठ में कफ के कारण धुर २ शब्द, श्वास, अधिक मल निकलना, वसन, हाथ और पैर अधिक फैकना-पटकना ये सब लक्षण हों तो उसका ज्वर अस्थिधातु के आश्रय है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

तमः प्रवेशनं हिङ्काकासः ज्वरं च विमिश्यता । अन्तर्दीहो महाशासो मर्मस्छुदश मउजगे ॥ ६ ॥

मज्जगत ज्वर के लक्षण—जिस ज्वर के होते ही नेत्रों के सामने अन्धकार दिखाई देवे, और हिचकी, कास, शीतलता की अधिक प्रतीति, वसन, शरीर के अन्तर्भीग [उदरादि] में अधिक दाह, अत्यन्त वेग का श्वास अथवा महाशास नामक शासरोग और मर्मस्थानों में काटने के समान पीड़ा ये सब लक्षण हों तो उसका ज्वर मज्जाधातु के आश्रय है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६ ॥

मरणं प्राप्नुयात्तम शुक्रस्थानगते उवरे । शेफलः स्तवधता मोक्षः शुक्रस्य च विशेषतः ॥ ७ ॥

शुक्रगत ज्वर के लक्षण—जिस के शेफल् [लिङ्ग] में स्तवधता [जडता] और शुक्र का अधिक क्षरण ऐसा लक्षण हो तो उसका ज्वर शुक्रधातु के आश्रय है और शुक्रगत ज्वर होने से मृत्यु हो जाती है ऐसा जानना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ सप्तधातुगतज्वरचिकित्सा ।

रसस्थे च उवरे तस्मिन्कुर्याद्वृमनलक्ष्मे । सेकसंश्वरनालेपरक्मोक्षास्त्वयुगमते ॥ १ ॥

सप्तधातुगत ज्वर की चिकित्सा—रस धातु में स्थित ज्वर में वसन और लहून कराना चाहिये। रक्त स्थित ज्वर में सेक 'क्रिया, संशमन औषधि, ज्वररोगीक्त लेपविधि तथा रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ १ ॥

तीचणान्विरेकात्र तथा कुर्यान्मांसगते उवरे । मेदोये मेदसो नाशमस्थिस्थे वातनाशनम् ॥ २ ॥

श्वसितकर्म प्रयोक्त्यस्थम्यक्त्रूतनं तथा । मज्जाशुक्रे क्रिया नोक्षा मरणं तत्र भावितम् ॥ ३ ॥

मांस धातु में स्थित ज्वर में तीव्र विरेचन देना चाहिये, मेदधातु में स्थित ज्वर में मेदोनाशक क्रिया करनी चाहिये। अस्थिधातु में स्थित ज्वर में वातनाशक क्रिया करनी चाहिये और वसितकर्म, तैलादि ओषधियों से मर्दन और ओषधियों का उबटन आदि करना चाहिये। मज्जा और शुक्र में स्थित ज्वर में कोई चिकित्सा, नहीं कही गयी है इसमें मृत्यु ही कहा गया है, यह असाध्य है ॥ २-३ ॥

कटुका रोहिणी सुस्ता पिपलीमूलमेव च । हरीतकी च तत्त्वोयमामाशयगते उवरे ॥ ४ ॥

आमाशय में स्थित ज्वर में कुट्की, गम्भार की छाल, नागरमोथा, पिपरामूल और हरे इन ओषधियों का जल [काथ] देने से आमाशय स्थित ज्वर का नाश होता है ॥ ४ ॥

मधुरज्वरलक्षणम् ।

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो हातीसारो वभिस्त्वा ।

अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिङ्गा च शाव्यति ॥ १ ॥

श्रीवायां परिष्वयन्ते स्फोटकाः सर्षपोषमाः । एभिस्तु लवृणेविष्यामन्यथारूपं उवरं नृणाम् ॥

मधुरज्वर वा मन्थरज्वर का लक्षण—जिस ज्वर के रोगी को ज्वर, दाह, अम, मोह, अतीसार, वसन, लुप्त, निद्रा न लगना, मुख लाल वर्ण का हो जाना, तालु और जिङ्गा का सूख जाना, गले पर ससौं के समान पीत वर्ण की पिण्डिकाओं का होना ये सब लक्षण हों तो उसे मन्थर [मधुर] ज्वर हुआ जानना चाहिये ॥ १-२ ॥

चिकित्सा—मुस्ता पर्पटको यष्टी गोस्तनी समभागतः ।

अष्टावशेषतः काथो निषीतो मधुना सह ॥ ३ ॥

पित्तश्वमं उवरं दाहं हन्ति अछुर्दिं समन्थराम् । चन्दनोद्धीरधान्यं च बालकं पर्पटं तथा ॥ ४ ॥

मुस्ता श्वाणी समं युक्तं मन्थरज्वरनाशनम् ।

मधिका गुदलंयुक्ता उवरे मन्थरके हिता । भ्रममोहातिसारांश नाशयत्यविलङ्घतः ॥ ५ ॥

मन्थरज्वर की चिकित्सा—नागरमोथा, पित्तपापडा, जैठी मधु, सुनका सब को सम भाग में लेकर यथाविधि काथ बना अष्टावश्म शैष रहने पर शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर पीने से पित्त के विकार, अम, ज्वर, दाह और वसन से युक्त मन्थर ज्वर को नष्ट करता है। चन्दन रक्त, खस, धनियां, सुगन्धवाला, पित्तपापडा, नागरमोथा, सौंठि सबको समान भाग लेकर काथ बना कर पीने से मन्थर ज्वर नष्ट होता है। मधिका [माछी] को गुड में लेपेट कर खाना मन्थरज्वर के लिये हितकर है तथा अम, मोह और अतीसार आदि का शीघ्र नाशक है ॥ ३-५ ॥

चलदलतस्वेता होममन्त्राद्यिनेन्द्रिजगुरुजनपूजा विष्णुनामना सहस्रम् ।

मणिद्वितिरपि दानान्याजिष्ठस्तापस्यान्म सकलमिद्मरिष्टं स्पष्टमष्टज्वराणाम् ॥ ६ ॥

अद्वरथ वृक्ष के निकट निवास तथा पूजन; हवन, मन्त्र जप, शिव-ब्राह्मण और गुरुजनों की पूजा, विष्णुसहस्र नामका पाठ, मणिधारण, दान, तपस्त्रियों से आशीर्वाद लेना ये, सब कार्य सम्पूर्ण उर्वरों (आठों प्रकार के उर्वरों) के अरिष्ट अवस्था में करना चाहिये ॥ १ ॥

समुद्रस्थोत्रे तीरे द्विरक्षा नाम बानरः । तस्य स्मरणमात्रेण उवरा यान्ति दिग्मन्तरम् ॥२॥

समुद्र के उत्तर किनारे पर द्विरक्षा नाम का बानर है उसके स्मरण करने से ही उवर दिग्मन्त्र को चला जाता है (नष्ट हो जाता है) अर्थात् ऐसा स्मरण करना चाहिये ॥ २ ॥

दुर्जलजनितस्य उवरस्य चिकित्सा

हरीतकी निभपत्रं नागरं सैन्धवोऽनलः । एषां चूर्णं सदा खादेद् दुर्जलजवरशान्तये ॥ ३ ॥

दुर्जल (दूषित जल) जनित उवर की चिकित्सा—हरी, नीम की पत्ती, सौंठि सेन्धा नमक, चित्त इन ओषधियों की समान भाग लेकर चूर्ण कर निरन्तर सेवन करने से दुर्जलजनित उवर नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अहश्चिमलमलमन्धं पीनसभासकासानुदरमुदकदोषानाषु दन्त्यादशेषान् ।

जनयति ततुकान्ति चित्तनेनप्रसादं पलपरिमितशृङ्गीष्वद्विसिद्धः कवायः ॥ २ ॥

सौंठि के एक पल (४ तो ०) प्रमाण काथ में भूषु मिलाकर सेवन करने से अरुचि, मन्दाद्धि पीनस, आस, कास, उदर रोग, जल से उत्पन्न दोष, ये सब शीघ्र समूल नष्ट हो जाते हैं और शरीर की कान्ति बढ़ जाती है, चित्त तथा नेत्र प्रसव होते हैं ॥ २ ॥

दुर्जलजेता रसः ।

विष भागद्वयं दग्ध कपदं पञ्चभागम् । मरिचं नवभागं च चूर्णं वस्त्रेण शोधयेत् ॥ ३ ॥

आद्रंकस्य रसेनास्य कुर्यान्मुद्रिनभां वटीम् । वारिणा वटिकायुम् प्रातः सायं च भक्षयेत् ॥

अयं रसो उवरे शोधः सामे दुर्जलजेतपि च । अजीर्णाद्धमानविषउभ्यलेषु आसकासयोः ॥३॥

दुर्जलजेता रस—विष शुद्ध दो भाग, कोड़ी का भस्म पांच भाग, मरिच का चूर्ण नव भाग इन ओषधियों को बख्त से छान कर अद्रक के रस के साथ मर्दन कर भूमि के समान बटी बनाकर जल के साथ दो-दो वटी प्रातः—सायम् सेवन करे। यह रस सामज्वर और दुर्जलजन्य उवर में भी दिया जाता है तथा अजीर्ण, आधमान, विषम्भ, शूल, श्वास और कास में भी देना चाहिये ॥ ३-३ ॥

पटोतादिकाथः ।

पटोलमुस्तामृतविलवासकं सनागरं धात्यकिराततिक्तकम् ।

कथायमेषां मधुना पित्रेष्वरो निवादेद् दुर्जलदोषमुलवणम् ॥ ४ ॥

पटोलादि काथ—पटोलपत्र, नागरमोथा, गुरुचि, अरुसा, सौंठि, धनिया, चिरैता इन सबको समान भाग लेकर काथ बना शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर पीने से दुर्जल से उत्पन्न अत्यन्त बढ़ा दुआ दोष नष्ट होता है ॥ ४ ॥

भोजनाग्रे नैर्मुक्ते शुण्ठीराज्यभयोऽधतम् । कलकं तु सहते निर्यं नजादेशोद्धवं जलम् ॥

भोजन के पूर्व सौंठि राई और हरे इन तीनों को समान भाग लेकर कलक बना कर नित्य सेवन करने से अनेक स्थानों का जल सेवन करना भी सद्य हो जाता है अर्थात् कोई कष्ट नहीं पहुँचाता है ॥ ५ ॥

पथ्यापथ्यविधिमाह

आलोक्य लैद्यतन्नाणि यत्नादेष निवधते । व्याधितानां चिकित्सार्थं पथ्यापथ्यविनिश्चयः ॥

पथ्यापथ्यविधि—अनेक प्रकार के वैद्यक शास्त्रों का निरीक्षण कर यत्नूर्वक रोगियों की चिकित्सा के लिये ये निश्चित पथ्यापथ्य लिखे जाते हैं ॥ १ ॥

निदानोषधपथ्यानि श्रीणि यदेन चिनत्येत् । तेनैव रोगः शीर्यन्ते शुष्के नीर हवाङ्गुराः ॥

निदान औषधि पथ्य इन तीन विधियों को चिकित्सा करने में यत्नूर्वक सोन्चना चाहिये क्योंकि इन्हीं तीनों से रोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार जल नहीं देने से बीज के अनुर नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

रुद्ध सर्वास्वपथ्यानि यथास्वं परिवर्जयेत् । तास्स्वपथ्यर्विवर्धन्ते तोयदैरिव वीरुधः ॥ ३ ॥

रोगों से सब प्रकार के कहे हुए अपथ्य पदार्थों को यथासम्बव त्याग देना चाहिये, क्योंकि रोग में अपथ्य करने से रोग इस प्रकार बढ़ता है जिस प्रकार मेघ के कारण जल प्राप्त कर लता आदि बढ़ती है ॥ ३ ॥

चिनाऽपि भेषजैर्कर्याच्चिः पथ्यादेव विलीयते । न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शातैरपि ॥४॥

पथ्य की प्रधानता—विना औषध सेवन किये भी केवल पथ्य मात्र से रोग नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुपथ्य करने अथवा पथ्य नहीं करने से सौ प्रकार की औषधि भी सेवन करने से रोग नहीं नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

दोषान्दूष्यान्देशकालौ सारथं सत्त्वं बलं वयः । विकृति भेषजं विद्वामाहारं च विशेषतः ॥५॥

निरीक्ष्य मृतिमान्वचश्चिकित्सा कर्तुं मुश्यतः पथ्यानि योजयेन्नित्यं यथास्वं सर्वरोगिषु ॥६॥

सद् वैद्य को प्रथम चाहिये कि दोष [वातादिक], दूष्य [रस-रक्तादिक ७ धातु], देश [अनुपादि], काल [शीतादि], सारथ्यासात्य और रोगी का बल, अवस्था [आयु], विकार [रोग] औषधि, रोगी की जठराग्नि तथा विशेष कर आहार इन सबको देख लेवे तब चिकित्सा करने को तत्पर हो और यथासात्य सब रोगों में पथ्य की योजना करे ॥ ५-६ ॥

अतः सर्वेषु रोगेषु प्रायः श्रेष्ठतमो उवरः । अतस्स्वस्येव प्रथमं पथ्यापथ्यं वदाम्यहम् ॥ ७ ॥

सब शास्त्रों (आयुर्वेद शास्त्री) और वैद्यों के मत से सब रोगों में प्रायः उवर ही श्रेष्ठ माना गया है इस हेतु प्रथम उसी का [उवर का] ही पथ्यापथ्य कहता हूँ ॥ ७ ॥

अथ तरुणाद्वरे पाचनानि ।

वमनं लहूनं कालो यवाग्, स्वेदनानि च । कटुतिक्षरसाश्रव पाचनं तरुणे उवरे ॥ १ ॥

तरुणउवर [नवीनउवर] में पाचक—नवीनउवर में वमन, उपवास समय विताना अर्थात् उवर उत्पन्न होते ही चिकित्सा नहीं करना कुछ दिन के बाद करना, यवाग् देना, स्वेदन करना और कठु तथा तिक्तरस सेवन करना आदि क्रियाओं से नवीनउवर का पाचन होता है ॥ १ ॥

अथ सन्निपाते हितान्याह ।

सञ्जिपाते चिदं सर्वं कुर्याद्भक्तपापहम् । अवलेहोऽज्ञनं नस्यं गण्डूचाश रसक्रियाः ॥ १ ॥

पादथोर्हस्तयोर्मूले काठे कूपे च गण्डयोः । स्वेदो भृष्टकुलथानां चूर्णचर्षणमाचरेत् ॥ २ ॥

सन्निपात में हितकर कार्य—सन्निपात के उवर में सब प्रकार की आम और कफनाशक क्रिया करनी चाहिये और अवलेह, अज्ञन, नस्य विधि, गण्डूच और रसक्रिया करनी चाहिये। तथा किस सन्निपात में स्नेह अधिक होता ही उसमें पैरों के तलवों, हथेलियों, कण्ठ और कपोलों पर भूजे हुए कुलधी के श्लक्षण चूर्ण का मर्दन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अथ तस्मान्ज्वरेऽहितानि ।

स्नानं विरेकं सुरतं कषायं द्यायामभ्यञ्जनमहि निद्राम् ।
दुर्घटं धृतं वैदलमामिषं च तकं सुरां स्वादु गुह द्रवं च ॥

अन्नं प्रवातं अमरणं प्रकोपं द्यजेत्प्रथनात्स्नानं ज्वरातः ॥ १ ॥
तस्मान्ज्वर में अहित कार्य—नवीनज्वर में स्नान, विरेचन, मैयुन, कषाय, द्यायाम तैल-
मर्दन, दिन में सोना, दूध, धृत, दाल, मांस, मट्ठा, मदिरा, सधुर और गुरुपदार्थ, द्रवपदार्थ,
अन्न भोजन, वाशुसेवन, भ्रमण कोष आदि यस्तरपूर्वक द्यायग देना चाहिये अर्थात् ये कर्म नूतन
ज्वर में अहित करने वाले हैं ॥ १ ॥

अथ मध्यमज्वरे हितानि ।

पुरातनाः पृष्ठिकशालयस्थ वार्ताकशोभाज्ञनकाशेष्टम् ।
वैत्राग्रमावादफलं पटोलं कर्कोटकं मूलकपेतिका च ॥ १ ॥
मुद्गौमंसूरैश्चणकैः कुलथैर्मंकुष्ठकैर्वा विहितश्च यूच्यते ॥ २ ॥
पादाभूतावास्तुकत्पृष्ठुलीयजीवन्तिशाकानि च काकमाची ॥ ३ ॥
द्राष्टा कपिश्यानि च दाढिमानि वैककुद्धातान्येव पचेलिमानि ।
लघूनि साक्षयानि च भेषजानि पथ्यानि मध्यमज्वरिणाममूनि ॥ ३ ॥

मध्यमज्वर में हितकर कार्य—मध्यम ज्वर वाले रोगी को अर्थात् जो ज्वर नवीन न हो परन्तु जीर्ण (पुराना) भी न हुआ हो उसमें पुरुने साठी एवं शलिधान के चावल, वैगन, सहिजन, करैली, वेत के अयभाग की कोमल पत्ती, उरिद, अरहर, परोरा, बांशककोड़ा, मूली पोईका साग, मूंग मसूर, चना, कुलथी, मोठ आदि का बना हुआ जूस, पुरुन पाढ़ी गुरुचि के पत्ते, वथुआ का साग, चौराई, जीवन्ती और मकोय आदि का शाक, मुनक्का, कैंथ, अनार और वैककुद्धत आदि के पके फल, लघु और साम्य औषध और पथ्य ये सब देवे अर्थात् ये हितकर हैं ॥ १-३ ॥

अथ पुराणज्वरे हितानि ।

विरेचनं कुर्दनमज्ञनं च नस्यं च खूमोऽप्यनुवासनं च ।
सिराड्यधः संशमनं प्रदेहोऽप्यङ्गोऽवगाहः शिशिरोपचारः ॥ १ ॥

पुराने [जीर्ण] ज्वर में हितकर कार्य—पुराने [जीर्ण] ज्वर वाले रोगी को विरेचन, बमन, अज्ञन, नस्यविधि, औषधटिट खूमपान, अनुवासन किया, सिरामोक्षण, संशमन किया, चन्द्रनादिक का लेप, तैजादिमर्दन, स्नान और शीतल उपचार आदि कार्य हितकर है ॥ १ ॥

अन्यान्यपि पुराणज्वरे हितानि—

एणः कुलिङ्गो हरिणो मयूरो लावः शशस्तितिरुक्कुटी च ।
क्रौञ्चः कुरङ्गः दृष्टतस्थकोरः कपिजङ्गो वर्तककोलपुष्पङ्गो ॥ १ ॥
गायामज्ञायाश्च पयो धृतं च हरीतकी पर्वतनिर्द्वारामः ।
एरुडण्टैलं सितच्वन्दनं च द्रव्याणि सर्वाणि पुरेरितानि ।
उयोर्स्ना प्रियालिङ्गनमध्ययं स्याद्गृहः पुराणज्वरिणां सुखाय ॥ २ ॥
अन्यमत से पुराने [जीर्ण] ज्वर में हितकर कार्य—जीर्णज्वरवाले रोगी के लिये एक [मृग], कुलिङ्ग, हरिण, मोर, लावा, खरदा, तितिर, कुकुट, कौब्रपक्षी, कुरङ्ग, मृग, पृष्ठ भृग, चकोर

कपिजङ्गल [गौर तितिर], बत्तख, काल पुच्छ [काला गौरा] आदि जीवों का कांसरस और गौ तथा बकरी का दूध, धी, इर्दे पूर्वतीय झरनों का जल, एरन्डतैल, द्वेषतचन्दन आदि पूर्वकथित सम्पूर्ण द्रव्य हितकर हैं, तथा चन्द्रमा की चाँदनी एवं प्रिय रमणियों का आलिङ्गन पुराने ज्वर में हितकरक है यहां आलिङ्गन जो लिखा है इसमें केवल आलिङ्गनमात्र ही प्रसन्नता के लिये हितकर है किन्तु रमण नहीं करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अथाऽऽगन्तुकज्वरे हितानि ।

आगन्तुके ज्वरे वैव नरः कुर्बात लङ्घनम् । अभिचाराभिशापोर्ये जपहोमादि भेषजम् ॥ १ ॥

आगन्तुक ज्वर में हितकर कार्य—आगन्तुक ज्वर में मनुष्य को लङ्घन [उपवास] नहीं करना चाहिये, अभिचार [मन्त्रादिक के प्रयोग] और अभिशाप [गुरुजनों के शापादि] से उत्पन्न ज्वर में मन्त्रादि जय और हवन आदि किया तथा औषध करना हितकर है ॥ १ ॥

उत्पातग्रहपीडोर्ये दानश्वस्ययनादिभिः । कामशोकभययोद्भूते सर्वा वातहरी क्रिया ॥ २ ॥
आश्वासनं देष्टलाभो हर्षद्वयीनियानि च । हर्षेण च शामं यान्ति कामशोकभयवर्करः ॥ ३ ॥

उत्पात-ग्रह से उत्पन्न ज्वर में दान, स्वरस्त्वयन [मंगलकारक स्तोत्रादि पाठ] आदि करना हितकर हैं। काम, शोक और भय से उत्पन्न होने वाले ज्वर में वातनाशक क्रिया हितकर है, और आश्वासन [सान्त्वना] देना, इच्छित वस्तु का प्राप्ति होना तथा हर्ष उत्पन्न करने वाली जो जो क्रिया हो वह हितकर है, हर्ष उत्पन्न होने से काम, शोक और भय के ज्वर शान्त हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

क्रोधजे पित्तजिकायं प्रियासद्वाष्टयमेव च । ओषधीयाग्नविषजौ विषपित्तप्रसादजौः ॥ ४ ॥

क्रोध से उत्पन्न होने वाले ज्वर में पित्तनाशक क्रिया हितकर है और प्रिया जी का मधुर वचन हितकर है। उद्ध औषध आदि गन्ध से तथा विष आदि के कारण से उत्पन्न ज्वर में विष तथा पित्त-शमनकारक क्रिया हितकर है ॥ ४ ॥

अध्वशास्त्रेषु चाप्यहं दिवा निद्रां च कारयेत् । मनःदोभस्मुस्पन्ने मनसः सान्त्वनानि च ॥

मार्ग से धक्कित होने से उत्पन्न ज्वर में तैलादि मर्दन तथा दिन में सोना आदि क्रिया हितकर है। मन में शोभ होने से उत्पन्न ज्वर में मन को शान्त करने वाली क्रिया हितकर है ॥ ५ ॥

अभिघातसमुर्थाने पानाभ्यङ्गौ च सर्पिषः । रक्कावसेकमयैश्च तथा मांसरसौदैनौः ॥ ६ ॥

अभिघात अर्थात् लगुडादि से आघात होने से उत्पन्न ज्वर में धी का मर्दन और पीना, रक्तमोक्षण कराना, मध्य पिलाना मांसरस और भात का खाना हितकर है ॥ ६ ॥

ज्वतजे ब्राह्मे चापि ज्वतव्याग्निकिरितम् । आगन्तुकज्वरे पूर्वं भिषणिभः पथ्यमीरितम् ॥ ७ ॥

क्षत से और व्रण के कारण से उत्पन्न ज्वर में क्षत और व्रण की चिकित्सा करनी हितकर है। ये सब कार्य आगन्तुक ज्वर के लिये वैद्यों ने पथ्य कहा है ॥ ७ ॥

अथ विषमज्वरे हितानि ।

चिष्णोनर्मसहस्रस्य पठनं श्रवणं श्रुतेः । देवानां ब्राह्मणानां च गुरुणामपि पूजनम् ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्यं तपो होमः प्रदानं नियमो जपः ।

साधूनां दर्शनं थेषु इत्यैषिकिरितम् । मङ्गलाचरणं चेति वर्णः भर्वज्वराज्ञवेत् ॥ २ ॥

विषमज्वर में हितकर कार्य—विष्णुसहस्र नाम स्तोत्र का पाठ करना, पुराणोपनिषद् का सुनना, देवता, ब्राह्मणों तथा गुरुजनों का पूजन, ब्रह्मचर्य से रहना, तपस्या, हवन और दान करना,

नियम से रहना, जप, साधुओं का दर्शन, श्रेष्ठ मणियों एवं औषध का धारण करना और मंगला-चरण आदि कर्म सब उवरों का नाश करते हैं ॥ १-२ ॥

ध्यायामं च व्यवायं च स्नानं चक्रमणानि च । उवरमुक्तो न सेवेत यावज्ञो बलवानभवेत् ॥

उवरमुक्त का कर्तव्य—जो मनुष्य उवरमुक्त हो चुका हो वह जब तक पूर्ण बलवान न हो जावे तब तक, परिश्रम, मैथुन, स्नान, भ्रमण, आदि कर्म नहीं करे ॥ ३ ॥

अथातिसारनिदानम् ।

क्षीरमस्थादि यद्भुक्तं तद्विद्वद्याध्यशनं मतम् । भुक्तस्योपरि यद्भुक्तं तद्विद्वद्यशनमुख्यते ॥ १ ॥

विरुद्ध भोजन की परिभाषा—दूध और मस्त्य आदि एक साथ भोजन करने को 'विरुद्ध भोजन' कहते हैं । अध्यशन की परिभाषा—भोजन करने पर उसी समय पुनः भोजन करने को 'अध्यशन' कहते हैं ॥ १ ॥

गुर्वैतिस्मधरुद्गोष्टाद्वास्थूलातिशीतलैः । विरुद्वाध्यशनाजीणैविषमेश्वतिभोजनैः ॥ २ ॥

स्नेहाद्यैरतियुक्तैव मिथ्यायुक्तैविषयैः । शोकद्वृष्टाऽनुमध्यातिथैः सात्यविषयैः ॥ ३ ॥

जलाभिरमणैर्वेगविधातैः कृमिदोषतः । नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वश्यते ॥ ४ ॥

निदान—अत्यन्त गुरु, अत्यन्त स्तिर्य, अति रुक्ष, अति उष्ण, अति द्रव, अत्यधिक स्थूल और अति शीतल पदार्थ के सेवन करने से, विरुद्ध भोजन और अध्यशन, अजीर्ण, विषम भोजन, अति भोजन करने से, स्नेह आदि के अधिक प्रयोग और मिथ्या प्रयोग, विष, भय, शोक, दूषित जल और मध्य के अधिक पीने से, सात्यव तथा श्रुतु के विपरीत पदार्थ के सेवन से, जल में अधिक तैरने आदि से, वेगधात (मल-मूत्रादि के वेगों के रोकने) से, कृमि के दोष आदि कारणों से मनुष्यों को अतीसार रोग होता है, उसका लक्षण कहते हैं ॥ २-४ ॥

संशम्यापी भातुरंति प्रवृद्धो वचोमिश्रो वायुनाऽधः प्रणुनः ।

सरत्यतीवातिसारं तमाहृष्ट्याद्विं घोरं घडविधं तं वदन्ति ॥ ५ ॥

अतीसार की सम्प्राप्ति—शरीर के जलसम्बन्धी (रस, रक्त, मूत्र, स्त्रेद, पित्तादिक) जो धातु है वे अधिक बढ़कर (कुपित होकर) आमाशय में प्राप्त हो जठराग्नि को मन्द कर मल से मिल कर वायु के द्वारा प्रेरित हो नीचे की ओर अर्थात गुदा की ओर होकर उसी मार्ग से अत्यन्त गिरते हैं उसे वैद्य अतीसार कहते हैं और यह वोर व्याधि छ प्रकार का कहा गया है ॥ ५ ॥

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठं आमेन चोक्तः ।

केविच्चातुर्नैकं रूपप्रकारं नेत्रेवं तं काशिराजस्ववोचत् ॥ ६ ॥

एक-एक दोषी से अर्थात् पृथक् २ बात, पित्त तथा कफ के कारण से उत्पन्न इस प्रकार तीन अतीसार और चौथा निदोष, पांचवा शोकज और छठवां आमज (आम के कारण से उत्पन्न) अतीसार कहा गया है । कोई २ आचार्य इस अतीसार रोग को अनेक रूप के और अनेक भेदों के मानते हैं किन्तु काशिराज अनेक प्रकार के नहीं मानते हैं ॥ ६ ॥

हाषाभिपायूदरकुचितोदगात्रावसादानिलसञ्चिरोधाः ।

विट्सङ्गमाऽमानमयाविपाको भविष्यतस्यस्य पुरःसराणि ॥ ७ ॥

अतीसार का पूर्वल—जब अतीसार होने को होता है तब उसके पूर्व हृदय, नाभि, गुदा, उदर, कुक्षि इन स्थानों में सुर्द गड़ाने जैसी पीड़ा होती है, अन्न में शिथिलता होती है, अधोवायु और मल रुक जाता है, पेट में आधमान हो जाता है, अन्न का पाक नहीं होता है इत्यादि वे सब लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अहं केनिलं रुद्धमरपमरपं सुहुमुद्धुः । शक्तदामं सरुक्षबन्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ८ ॥

अतिसारनिदानम् ।

वातातिसार के लक्षण—वात दोष से होने वाले अतीसार में मल लोहित वर्ण का, केन्द्रियुक्त, रुक्ष, अल्प अल्प, वार वार, आमशुक्त, पीड़ा होकर और शब्द करता हुआ निकलता है ॥ ८ ॥

पित्तातिसारं नीलमालोहितं वा तुण्डमूद्धर्दिवाहपाकोपपक्षम् ।

शुक्लं सान्द्रं श्लेषमणा श्लेषमज्जुं विश्वं शीतं हृष्टशायः मनुष्यः ॥ ९ ॥

पित्तातिसार के लक्षण—पित्त दोष से होने वाले अतीसार में मल पीत, नील अथवा लोहित वर्ण का निकलता है तथा त्रुषा, मूर्छा, दाह और गुदा में पाक, होना ये सब लक्षण होने हैं । कफातिसार के लक्षण—कफ दोष से होने वाले अतीसार में मल श्वेत वर्ण का, घना (गाढ़), कफयुक्त, दुर्गंध युक्त और शीतल होता है रोगी को रोमाछ होता है ॥ ९ ॥

वराहस्नेहमांसाम्बुद्धशः सर्वरूपिण्यम् । कुरुक्षसाध्यस्तीसारं विद्याद्वाष्ट्रयोऽद्वम् ॥ १० ॥

विदोषज अतीसार के लक्षण—विदोष से होने वाले अतीसार में मल सूबर की चर्वी तथा मांस के धोये हुए जल के सदृश स्थान उपर्युक्त वातादिकों के सब लक्षणों वाला होता है । यह अतीसार कष साध्य होता है ॥ १० ॥

तैस्तैर्भवित्वैः शोक्तोऽहपाशनस्य ब्राह्मोऽमा वै चहिमाविश्य जन्मतोः ।

कोष्ठं रुक्षा लोभयेत्स्य रक्तं तत्त्वाध्यस्ताकाकणन्तीप्रकाशय ॥ ११ ॥

निर्गच्छेद्वै विडिविमिश्रं द्विविद्विं वा निर्गन्धं वा गन्धवद्वाऽतिसिद्धाः ।

शोकोत्पक्षो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैयैः कष्टं एष प्रदिष्टः ॥ १२ ॥

शोकातिसार के लक्षण—मन को कष्ट पहुंचानेवाले कार्यों के हो जानेपर जो निरन्तर डसी की चिन्ता में लौन रहता है जिसके कारण भोजन अल्प हो जाता है और डस अवस्था में चिन्ता के बाधों की जड़ा [चिन्ता आदि में एक प्रकार की जड़ा होती है जिसे मनस्ताप कहते हैं] उसी को चिन्ता के बाधों की जड़ा कहते हैं] कोष्ठ में जाकर भोजन कम करने से दूषित जो अधिक है उसका सहकारी हो रक्त को उद्देजित करती है इस प्रकार से उद्देजित रक्त हुंचों के फल के सदृश रक्त वर्ण का पुरीष मिला हुआ अथवा विना पुरीष का ही, दुर्गंधयुक्त अथवा विना दुर्गंध का ही गुदा के मार्ग से अत्यन्त स्ववित होता है अधिक मात्रा में इसे शोक से उत्पन्न अत्यन्त कष्टसाध्य अतीसार वैयैं ने कहा है ॥ ११-१२ ॥

आमातीसारलक्षणम्—अग्नाजीर्णप्रद्रुताः शोभयन्तः कोष्ठं दोषा धातुमङ्गान्मलांश् ।

नानावर्णं नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं कष्टमेन वदन्ति ॥ १३ ॥

आमातिसार के लक्षण—भोजन किये हुये अन्न के अजीर्ण होने से दूषित जो दोष हैं वे कोष्ठ को धातुओं को (रस-रक्तादिकों को) और मल को क्षोभित कर अनेक वर्ण के बार-बार शूल के साथ अत्यन्त स्वाव करते हैं, इसे आमातिसार जानना चाहिये यह कष्टसाध्य होता है ॥ १३ ॥ है

आमलक्षणम्—संस्तुष्टेभिर्दोषस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।

पुरीषं भृशदुर्गंधिं दिव्यिल्लं चाऽमलसंज्ञितम् ॥ १४ ॥

आमाशयस्थः कायाग्नेदोषवृष्ट्यादविपाचितः । अपकाहारधातुयैः स आम हृति संज्ञितः ॥ १५ ॥

ऊष्मणोऽस्तपबलवेन धातुमाशयाचितम् । दुष्टमामाशयगतं इसमामं प्रचलते ॥ १६ ॥

आम मल के लक्षण—जिस मल में वातादिक दोषों के कहे हुए सब लक्षण मिले हुए दिखाई पड़ें और वह मल में डालने से यदि दूब जाय, अत्यन्त दुर्गंध युक्त हो और पिच्छलता सहित हो तो उस मल को 'आम मल' जानना चाहिये । और भी आमाशय में प्राप्त अन्न यदि शारीरिक अग्नि की दुर्बलता से पचा नहीं हो तो उस अपक्व आहार से उत्पन्न जी रस धातु है उसे 'आम'

कहते हैं । आमरस लक्षण—जठरारित के बल अल्प होने के कारण आद्य धातु जो रस है वह दूषित होकर जब आमाशय में रहता है उसको 'आम' कहते ॥ १४-१६ ॥

पकलक्षणम्—एतान्येव तु लिङ्गानि चिपरीतानि यस्य वै ।

लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥

पक्वातिसार के लक्षण—इन उपर्युक्त लक्षणों के विपरीत लक्षण जल दिखाई पड़े अर्थात्, मल जल में छूटे नहीं, दुर्गन्ध और पिच्छिल न हो, जठरारित तीव्र हो जावे तथा विशेष कर शरीर में लघुता हो जावे तब अतीसार पक्व हो गया ऐसा जानना चाहिये ॥ १७ ॥

असाध्यलक्षणम्—नारयुपद्रवतायुक्तं नातिदुष्टेषु धातुषु ।

वाले वृक्षोऽप्यसाध्योऽयं रूपैरेतेष्पद्रवैः ॥ १८ ॥

असाध्य अतीसार के लक्षण—जिस अतीसार के रोग में अत्यन्त उपद्रव भी नहीं हो, धातुयें भी अधिक दूषित न हो तो भी वालक और वृक्ष का सामान्य उपद्रव का भी अतीसार हो तो असाध्य ही जानना चाहिये ॥ १८ ॥

अपि यूनामसाध्यः स्यादतिदुष्टेषु धातुषु ॥ १९ ॥

युवा पुरुष का अतीसार उपद्रवों से युक्त हो और धातुयें अधिक दूषित हों तो असाध्य जाना चाहिये ॥ १९ ॥

लग्नकुण्डपगन्धं धनं चा पल्लजसमानं पक्वजन्मफलाभम् ।

धृतमधुपयथार्थं तैलशैवालनीलं सुधनदधिसवर्णं वर्जयेषातिसारम् ॥ २० ॥

जिस अतीसार में मल लहसुन अथवा शब (मृतक) के गन्ध के समान गन्ध वाला हो, अत्यन्त, दुर्गन्धसुक्त, अत्यन्त गाढ़ा, मांस के खोये हुए जल के समान अथवा पक्वे हुए जासुन के फल के समान कृष्ण वर्ण का हो, धृत, मधु, दूध अथवा तेल की भाँति हो, शैवाल (सेवार अथवा काई) के वर्ण का नीला हो अथवा गाढ़े दही के समान हो उस अतीसार वाले रोगी को त्याग देना चाहिये अर्थात् यह असाध्य अतीसार का लक्षण है ॥ २० ॥

तस्योपद्रवाः—शोफ शूलं ऊर्ध्वं तुष्णीं शासं कासमरोचकम् ।

छृदिं मूर्छां च हिक्कां च हृद्वातीसारिणं स्पृजेत् ॥ २१ ॥

अतीसार के उपद्रव—जिस अतीसार में शोथ, शूल, ऊर्ध्व, तुष्णी, शास, कास, अरुचि, वमन, मूर्छा और हिक्का हो, तो उस अतीसार वाले रोगी को त्याग देना चाहिये । ये सब अतीसार रोग के उपद्रव हैं ॥ २१ ॥

पित्तकृन्ति यद्यात्यर्थं द्रव्याण्यश्चाति पैतिके । तद्योपज्ञायते लीको रक्तातीसार उल्लबणः ॥

दोषलिङ्गेन मतिमान्संसर्गं तत्र लक्षयेत् ॥ २२ ॥

रक्तातीसार के लक्षण—जो रोगी पैतिक अतीसार में पित्तकारक द्रव्यों का अधिक सेवन करता है उससे अत्यन्त पित्त के बढ़ जाने से तीव्र रक्तातीसार में दोषों की अधिकता के अनुसार संसर्ग जाने अर्थात् उस रक्त के साथ जिस दोष [वातादिक] का लक्षण अधिक दिखाई दे उसी के संसर्ग का समझे ॥ २२ ॥

प्रवाहिकामाह—वायुः प्रवृद्धो निवितं वलासं लुद्यथस्तादहिताशनस्य ।

प्रवाहतोऽहर्यं बहुशो मलाकं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २३ ॥

प्रवाहिका का लक्षण—अहित करने वाले पदार्थों के सेवन करने से बढ़ी हुई जो वायु है वह सञ्चित हुए कफ को नीचे की ओर (गुदा की ओर) ले जाती है और गुदा के द्वारा मल और कफ को बार-बार अल्प-अल्प अथवा अधिक भी निकालती है वैय जन उसे 'प्रवाहिका' कहते हैं ॥ २३ ॥

प्रवाहिका वातकृता सशूला वित्तात्सदाहा सकफा कफात्त ।

सशोणिता शोणितसंभवा च ताः स्नेहरूच्यप्रभवा यत्स्तु ॥

तासामतीसारचदादिशेषं लिङ्गं क्रमं चाऽऽमविप्रक्षतां च ॥ २४ ॥

वातादिक के भेद से प्रवाहिका के लक्षण—वात दोष की अधिकता से जो प्रवाहिका होती है उसमें अधिक शूल होता है । पित्त दोष की अधिकता में दाह होता है । रक्त दोष की अधिकता में कफुक्त मल होता है । रक्त दोष की अधिकता में मल के साथ रक्त निकलता है । इसकी (प्रवाहिका रोग की) उत्पत्ति अधिक रुक्ष और अधिक विशेष पदार्थों के सेवन करने से कही गयी है । इसका लक्षण, कम, आम और परिपक्व आदि भेद अतीसार की भाँति ही जानना चाहिये ॥

अस्योच्चारं विना मूत्रं सम्बन्धवायुक्तं गच्छति । दीप्ताभ्यर्थ्योद्युक्तोष्ट्र्यं स्थितस्तस्योदरामयः ॥

निवृत्तातिसार के लक्षण—जिस अतीसार वाले रोगी को विना मल निकले ही शुद्ध मूत्र निकले अर्थात् अतीसार में मल-मूत्र साथ ही होता है तो जब मूत्र अलग हो होवे तब, और विना मल के मूत्र की ही भाँति अयोवायु निकले- अग्नि तीव्र हो जावे और उदर में लघुता प्रतीत होवे तो उसका उदरामय (अतीसार) स्थित हो गया अर्थात् समाप्त हो गया ऐसा जानना चाहिए ॥ २५ ॥

ज्वरातिसारयोहकं निदानं च पृथक्पृथक् । तस्माज्ज्वरातिसारस्य तेन नाशोदितं पुनः ॥ २६ ॥

ज्वरातिसार निदान—ज्वर और अतीसार का निदान पृथक्-पृथक् कह नुक्ते हैं, इसलिये ज्वरातिसार का लक्षण पुनः कहीं कहते हैं, वैष्ण दोनों निदानों को एकत्र कर ज्वरातिसार-निदान जाने ॥ २६ ॥

स्तम्भो वेष्पथुराध्मानसुष्णगात्रविपर्ययः । यत्तायुषामतीसारे व्यञ्जनान्युपलक्ष्येत् ॥ २७ ॥

गतायुष अतीसार के रोगी का लक्षण—जिस अतीसार के रोगी का शरीर जकड़ जावे, कॅंप-कॅंपी हो, आधमान हो और सम्पूर्ण अङ्ग जिसके शीतल हो जावे तो उस रोगी की आयु नष्ट हो गयी और उसके सृत्यु का लक्षण हो गया ऐसा जानना चाहिये ॥ २७ ॥

तृट्कासशोष्वरद्वरद्वाहमूर्छाहिकाश्चिद्वेषणवान्तिशूलैः ।

युक्तोऽतिसारी स्मरतु प्रसद्य गोविन्दं गोपालं गदाधरेति ॥ २८ ॥

जिस अतीसार रोगी को तृष्णा, कास, शोथ, ज्वर, दाह, मूर्छा, हिक्का, अग्नि में अरुचि, वमन, शूल हो वह रोगी गोविन्द, गोपाल, गदाधर आदि भगवन्नाम का स्मरण करे अर्थात् उसे गतायुष हो गया जानना चाहिये ॥ २८ ॥

अथातीसारपूर्यस्त्वचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

हितं लहसुनमेवाऽऽद्वै पूर्वत्तेन मानवः । षड्ङ्गं वाऽथया यूषं पिष्पत्यादिं प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

अतीसार के पूर्वरूप की चिकित्सा—अतीसार के पूर्वरूप में अर्थात् आदि में रोगी को लहसुन कराना, षड्ङ्गयूष देना अथवा पिष्पत्यादि यूष देना हितकर है अर्थात् पहले यही सब देना चाहिये ॥ २ ॥

षड्ङ्गयूषः—सुदृश्यं रसं तकं धान्यजीरकसंयुतम् ।

षड्ङ्गं यूषमित्याहुः सेन्धवेन समन्वितम् ॥ २ ॥

षड्ङ्गयूष—मूत्र का जूस, मांस का रस, तक (मट्ठा) इनमें धनियां, जीरा और सेन्धा नमक मिलाने से इसे 'षड्ङ्गयूष' कहते हैं ॥ २ ॥

अग्निसन्दीपनं प्रोक्तं ग्रहणीदोषनाशनम् । अरोचके ज्वरे चैष श्रेष्ठं नैव ग्रवाहिके ॥ २ ॥

षडक्षयूष का गुण—षडक्षयूष अरिनदीपक, ग्रहणी के दोष का नाशक, अरुचि और ज्वर में लाभ करने वाला कहा गया है परन्तु प्रवाहिका में नहीं देना चाहिये ॥ ३ ॥

बिलवं च खान्यं च सज्जीरकं च पाठां च शुण्ठीं तिलसंयुतां च ।

पिङ्गा षडङ्गः स हितो नशाणां यूषो शस्तीसारहरः प्रदिष्टः ॥ ४ ॥

षडक्षयूष की अन्यविधि—बेल का गूदा, धनिया, जीरा, पुरेशपाड़ी, सौंठि और तिल इन बस्तुओं को पीस कर यूष की विधि से बनाकर देने से अतीसारनाशक कहा गया है ॥ ४ ॥

तुषणापनथनी लध्वी थीपनी मलशोधिनी । चिरे चैवातिव्यारे च चयागुः सर्वदा हिता ॥ ५ ॥

यवागू का गुण—यवागू तृष्णानाशक, लघु, दीपक, मलशोधक और पुरातन अतीसार में सदा हितकर होती है ॥ ५ ॥

अथाऽमातीसारचिकित्सा

आमयकक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः । अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्षामलहृणम् ॥ १ ॥

आमातिसार की चिकित्सा—आप और पक हन क्रमों को छोड़ कर अतीसार में अन्य क्रिया नहीं है अर्थात् आम और पक अतिसार का ज्ञान ही चिकित्सा का मूल है इसलिये सब अतीसारों में आम तथा पक का लक्षण जानना चाहिये ॥ १ ॥

आमे विलङ्घनं शास्तमादौ पाचनमेव च । कार्यं वाऽनशानस्यान्ते सद्रवं लघु भोजनम् ॥ २ ॥

आम अतीसार रहने पर चिकित्सा के आदि में लड्हन कराना चाहिये और आम को पाचन करने की क्रिया करनी चाहिये तथा लड्हन करने के पश्चात् द्रवयुक्त लघु पादार्थ का भोजन करना चाहिये ॥ २ ॥

लड्हनमें सुखवा स चात्यदस्तीह भेषजं बलिनाम् ।

ममुदीर्णदोषनिचयं शमथति नत्पाचयत्येव ॥ ३ ॥

अतीसार के रोग में बलवान रोगी के लिये लड्हन के समान उपकारी अन्य कोई ओषधि नहीं है । बड़े हुए दोष लड्हन से शान्त होते हैं और पचते हैं ॥ ३ ॥

हीवेरश्वेराभ्यां सुस्तपर्षट्केन वा । मुस्तोदी च्यथृतं तोयं देयं चापि पिपासवे ॥ ४ ॥

१—सुगन्धवाला और सौंठि, वा २—नागरमोथा और पित्तपापड़ा, अथवा ३—नागरमोथा और सुगन्धवाला इनमें से किसी एक योग को जल में पकाकर शीतल कर वह जल अतीसार वाले रोगी को पिपासा की शान्ति के लिये देना चाहिये ॥ ४ ॥

ननु संग्रहणं द्यात्पर्वमातिसारिणम् । दोषो द्यावौ वर्धमानो जनयत्यामयान्वद्वन् ॥ ५ ॥

आमातिसार के रोगी को आदि में ही संग्राही (अवरोधक) औषध नहीं देना चाहिये । बड़े हुए पहले ही अवरुद्ध करने से अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न कर देते हैं ॥ ५ ॥

शोकपाण्डवामयपलीहुषुमोहरउवरान् । दण्डकालसकाध्मानग्रहणयशोंगवदास्तथा ॥ ६ ॥

अतीसार के आम अवस्था में संग्राही औषध देने से शोथ, पाण्डु, प्लीहा, कुष्ठ, गुलम, उदर रोग, ज्वर, दण्डक, अलसक, ग्रहणी और अर्श वे रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ६ ॥

दिग्भस्थः स्थविरस्थो वा वातपित्तारमकथ यः । चीणधातुउर्वरात्में बहुदोषोऽतिविस्तुतः ॥

आमोऽपि स्तुतमनीयः स्यात्पाचनामरणं भवेत् ।

किन किन अवस्थाओं में संग्राही औषध अतीसार वाले रोगी को देना चाहिये, उसकी व्यवस्था—छोटे बालक, बृद्ध, चक्षन्तपित के अतीसार वाले, जिनका धातु क्षीण हो चुका है, जिन्हें ज्वर है, बहुत से दोष जिसमें एकत्रित हैं और जिन्हें अधिक स्नाव (मल निस्सरण) होता है ऐसे

अतीसार वाले रोगी को आम हो तब भी स्तम्भन (संग्राही) औषध देकर मल का अवरोध करना चाहिये क्योंकि ऐसे रोगी का पाचन किया कराने से मृत्यु हो जाती है ॥ ७-८३ ॥

अतिसारे ज्वरे चैव रक्तपित्ते हगामये ॥ ८ ॥

आदौ न प्रतिकुर्वीत व्याधिवेगो हि दुस्तरः ।

किन अवस्थाओं (रोगों) में संग्राही (अवरोधक) औषध नहीं देनी चाहिये—अतीसार, ज्वर, रक्तपित्त, नेत्र रोग इन रोगों में अवरोधक औषधि नहीं देनी चाहिये क्योंकि व्याधि का वेग अत्यन्त बढ़ा रहता है उसके अवरोध से अन्यथा उपद्रव हो जाते हैं ॥ ८-८३ ॥

स्तोकं स्तोकं विवद्यं चा सशूलं योऽतिसार्यते ॥ ९ ॥

अस्यापिष्ठलीकण्ठः सुस्तोषोस्तं विरेचयेत् ।

जिस अतीसार रोग में मल रुक कर थोड़ा-थोड़ा बैंधा हुआ शूल के साथ होता है उसमें इर्दी और पीपरि का कल्क बनाकर थोड़ा उषा कर खिला कर इससे विरेचन करावे ॥ ९-९३ ॥

दीपशिर्वद्योषो यो विवन्धमतिसार्यते ॥ १० ॥

विद्धन्त्रिकालाद्युषाकथायस्तं विरेचयेत् ।

जिस अतीसार के रोग में अद्य दीप हो, दोष बहुत हों और विवन्ध (कम्भियत) के साथ मल निकलता हो उसमें वामीरंग, अवरा, हर्दी, बहेरा, पीपरि इन औषधियों का काथ पिलाकर विरेचन करावे ॥ १०-१०३ ॥

ज्ञेत्यामस्य विरिक्ते तु पेयृ युवज्याद्विचलणः ॥ ११ ॥

भेषजैर्माहृत्वैश्च दीपनीर्यश्च किपताम् ।

उपर्युक्त विरेचन क्रिया के पश्चात् रोगी को यदि क्षुधा लगे तब दैय उसे पेया बनाकर पिलावे । वह पेया वातनाशक और दीपन औषधियों से बनानी चाहिये ॥ ११-११३ ॥

योऽतिविद्यं प्रभूतं च पुरीषमतिसार्यते ॥ १२ ॥

तस्याऽद्यौ वमनं योऽथं पश्चाश्वलनमुद्धते ।

जिस अतीसार में मल बैंधा हुआ और अधिक मात्रा में निकलता हो उसमें प्रथम वमन कराना चाहिये पश्चात् लड्हन कराना चाहिये ॥ १२-१२३ ॥

देवदाहव्रचामुस्तं नागरातिविषाभयम् । मर्वजीर्णप्रशमनं पेयमेतैः श्रुतं पयः ॥ १३ ॥

देवदारु, वन, नागरमोथा, सौंठि, अतीस और हर्दे, इनका पकाकर शीतल क्रिया जल अर्थात् काथ की विधि से बनाकर पीने से सब प्रकार के अजीर्ण (आम) का नाश होता है ॥ १३ ॥

श्यूषणातिविषाहिकुवचासौष्ठलाभयाः । पीत्योषोनामभासा जडादामातीसारसुदूतम् ॥ १४ ॥

सौंठि, पीपरि, मरिच, अतीस, हींग, वच, सौचरनमक और हर्दा इन सबको समान लेकर चूर्ण कर उषा जल के साथ पीने से बढ़ा हुआ आमातिसार नष्ट हो जाता है ॥ १४ ॥

पाठाहिकवज्मोदोग्रापञ्चकोलाद्वद्वं रजः । उषाम्बुपीतं सूरजं अस्यासं सप्तैन्वचम् ॥ १५ ॥

पुरहनपाड़ी, हींग, अजमोदा (जवाइन), वच, पंचकोल (पीपरि, पिपरामूल, चाम, चित्त और सौंठि) और नागरमोथा को समान लेकर चूर्णकर इसमें सौंठनमक का चूर्ण मिला कर उषा जल से पीने से शूल के सहित आमातिसार नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

चित्रकं पिपलीमूलं वचा कुटकोहिणी । पाठाध्यात्मकीजानि हरीसंवयो महोषवम् ॥ १६ ॥

पृथग्मसमुद्धानमतिसारं सवेदनम् । कफात्मकं सपित्तं च सक्षात् हन्ति वै प्रभवम् ॥ १७ ॥

चित्र की जड़, पिपरामूल, वच, कुटकी, पुरहनपाड़ी, इन्द्रजौ, हर्दा और सौंठि इन द्रव्यों का

चूर्णं अथवा काथ आमातिसार—शूलयुक्त, कफज, पित्तज अथवा वातज किसी भी प्रकार का हो-उसे नष्ट करता है यह निश्चित है ॥ २६-२७ ॥

विष्वामयाध्वर्णवातिविष्वासुराहृकाघोर्य विष्वजलधातिविष्वाश्रतो वा ।

आमातिसारशमनः कथितः कथायः शूष्टीघनाप्रतिविष्वाश्रतवृक्षज्ञो वा ॥ १८ ॥

१—सौठि, हर्षा, नागरमोथा, वच, अतीस, देवदारु इनका काथ वा २—सौठि, नागरमोथा, अतीस इनको औटाकर शीतल किया जल अथवा ३—सौठि, नागरमोथा, अतीस, गुरुचि इन ओषधियों का कवात आमातिसार को शान्त करता है ॥ २८ ॥

धान्यदालक्कबिष्वाद्वन्नामैः स्वाधितं जलम् । आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम् ॥ ३१ ॥

धनिया, सुगन्धवाला, वेल, नागरमोथा, सौठि इन ओषधियों से पकाया जल (काथ) आम शूल का नाशक, ग्राही, दीपक तथा अत्यन्त पाचक है ॥ १९ ॥

पित्ते आन्यच्छतुर्कं तु शूष्टीरथ्यागाहृद्वन्ति हि । चूर्णं किञ्चिद्वृत्ताभ्यक्तं शूष्ट्या एवण्डजैर्दैः ॥

उपर्युक्त धनियां आदि पांच ओषधियों में से सौठि को निकाल देने पर इस योग को 'धान्यचतुर्क' कहते हैं इसे पित्तातिसार में सेवन करने से लाग जाता है जैसा कि पूर्व में कहा गया है ॥ २९-३० ॥

वेष्टिं पुटपाकेन विष्वेन्मन्दवद्विना ॥ २० ॥

तत उद्धृत्य सद्वूर्णं ग्राहो प्रातः सितासमयः । तेन यान्ति शम्नं पीडा आमातीसारशमनभवतः ॥

सौठि का चूर्ण कर थोड़े वृत में मिला परण्ड के पत्तों से वेष्टित कर पुटपाक की विधि से मन्दवाति में पकाकर उस चूर्ण को उसमें से निकाल कर चूर्ण के समान भाग मिश्री अथवा खांड भिलाकर प्रातः सेवन करने से आमातिसार से उत्पत्त होने वाली पीडा शान्त होती है ॥ २०-२१ ॥

कुञ्जिशूलामशूलधनं विष्वन्धाधमातिसारजितः । सेवितं संगुडं विष्ववं विष्वतुरुपयोधरे ! ॥ २२ ॥
हे विष्व के समान स्तन वाली (प्रिये) ! बेल की गुही और गुड़ एक साथ मिश्चित कर सेवन करने से कुञ्जिशूल, आमशूल, विवन्ध (मलबद्धता), आधमान और अतीसार का नाश होता है ॥ २२ ॥

शूष्टी जीरं संध्यवं हिङ्गुजातीबीजं तद्वृत्ताहकारं प्रशास्तवम् ।

ज्येष्ठं सङ्खिः साखरूडं सविष्ववं मार्कण्ड्यायैर्योजितं सूचमचूर्णम् ॥ २३ ॥

दृढ़ा च वटिकां कुर्यात्तेनैव सह लेहयेत् । आमातीसारमान्यं च अरुचि हन्ति च द्विष्वात् ॥

सौठि, जीरा, सेन्धानमक, हींग, जायफर, आम की गुठली (पके आम के बीज के मध्य का गूदा वा मज्जा), साखरूड़ (गुजरात में होने वाला), बेल की गुही, मार्कण्ड्यार्य (मुंद खदासा वही) इन सबको समान भाग लेकर इलक्षण चूर्ण कर दही से तरल कर वटी बनाकर दही के ही अनुपान से चाटने से आमातिसार, मन्दवाति और गुरुचि आदि क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं ॥

सत्वाशूष्ट्योषणं भृङ्गी समांशं सूचमचूर्णितम् । यथासामयं सेवनीयं शीततोयानुपानतः ॥

सशूलमामदोषेण च नाशमायाति सत्वरस् । दृढ्योदनं पृथमन्त्रं उचितं रोगशान्तये ॥ २६ ॥

सौठि, मरिच और अतीस इन सब को समान भाग लेकर इलक्षण चूर्णकर यशोचित प्रमाण से शीतल जल के साथ सेवन करने से शूलसहित आमदोष शीघ्र नष्ट हो जाता है । और रोग की शान्ति के लिये दही और भात पथ्य देवे ॥ २५-२६ ॥

जयाखण्डं साखरूडं जीरकं इष्विमिश्चितम् । आमातीसाररक्षं हन्ति वेगेन कौतुकम् ॥ २७ ॥

भांग का चूर्ण, शकर, साखरूड़ (गुजराती द्रव्य), जीरा सबको चूर्ण कर दही में मिलाकर सेवन करने से आमातिसार और रक्तातिसार कौतुक की भौंति शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥

शूष्टीसातिविष्वाहिङ्गुस्ताकुटजचित्रकैः । चूर्णसुष्णाशूना पीतमामातीसारनाशनम् ॥ २८ ॥

सौठि, अतीस, हींग, नागरमोथा, कुटजत्वक्, चित्त की जड़ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर उष्ण जल के साथ सेवन करने से आमातिसार नष्ट होता है ॥ २८ ॥

हरीतकी प्रतिविष्वा सिन्धु सौवर्चलं वचा । हिङ्ग वेति कृतं चूर्णं पिवेद्वृद्धेन वारिणा ॥ २९ ॥
आमातीसारशमनं ग्राहि चामिप्रदीपनम् ।

हरे, अतीस, सेन्धानमक, सोचरनमक, वच, हींग इन सब को समान लेकर चूर्णकर उष्णजल के साथ सेवन करने से आमातिसार शान्त होता है, यह ग्राही है और असि को दीप करता है ॥ २९-२९ ॥

पयस्युक्ताथ्य सुस्तानां विश्वति श्रिगुणाभसि ॥ ३० ॥

चूर्णवशेषं तत्पीतं हन्त्यामं शूलमेव च ।

बीस गांठ नागरमोथा दूध (लगभग १ छटाक) में देकर और दूध से तिगुना जल देकर काथ करे और दूध मात्र शेष रहने पर उतार छान कर पीने से आम और शूल को नाश करता है ॥ ३०-३० ॥

धान्यनागरजः काथः पाचनो दीपनस्तथा ॥ ३१ ॥

एरण्डमूलयुक्तं जयेदामानिलव्यथाम् ।

धनिया और सौठि का काथ पीछन और दीपन है । और वही धनिया और सौठ यदि एरण्ड-मूलत्वक् के साथ मिला काथ बनाकर सेवन किया जावे तो आम तथा बात को नष्ट करता है ॥ ३२-३२ ॥

यवानीमगरोजारजनिकृतिविष्वाधनैः ॥ ३२ ॥

बालविद्वद्विष्वपीर्णीभिर्दीपनं पाचनं भवेत् ।

अजवाइन, सौठि, सेन्ध, धनिया, अतीस, नागरमोथा, छोटा [कच्चा] बेल का गूदा, शालिपणी, इन सब ओषधियों का काथ आमातिसार के रोगी के लिये दीपन और पाचन है ॥ ३२-३२ ॥

कलिङ्गातिविष्वाहिङ्गुष्यथा सौवर्चलं वचा ॥ ३३ ॥

शूलस्तश्विवन्धनं देयं दीपनपाचनम् ।

इन्द्रजौ, अतीस, हींग, हर्षा, सोचरनमक और वच इनका काथ शूल, शरीर की जड़जाह्न, मलबद्धता में देना चाहिये और यह काथ दीपन तथा पाचन है ॥ ३३-३३ ॥

निरामरूपं शूलातं लङ्घनाद्यैश्च कर्तितम् ॥ ३४ ॥

श्वारनगरचाङ्गेरीकोलदृश्यलसाधितम् । सपिरच्छुं पिवेद्वृपि शूलातीसारशान्तये ॥ ३५ ॥

यदि आमरद्वित शूल हो और लहून आदि करने से रोगी क्षीण हो गया हो तो जवाहर, सौठि, चाङ्गेरी, बैर, दही और कांजी आदि सब को देकर पकाया हुआ घृत पीना चाहिये और इस घृत के पीसे से शूल और अतीसार शान्त होता है ॥ ३४-३५ ॥

अथ पक्तातीसारचिकित्सा

सकोद्रं धातकी विष्वं सुस्तान्नास्थिय कलिङ्गकम् । पिवेन्माहिषतक्रेण पक्तातीसारनाशनम् ॥

पक अतीसार की चिकित्सा-लोध, धाय के फूल, बेल का गूदा, नागरमोथा, आम की गुठली, इन्द्रजौ इन सब ओषधियों को समान लेकर चूर्णकर भैंस के तक (मंट्ठे) के साथ सेवन करने से पक अतिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

पद्मं समझा मधुकं विष्वजं तु शालादु च । पिवेत्तद्वृलतोयेन सद्वैद्रमगदं परम् ॥ २ ॥

पदुमकाठ, मजीठ, सुलहठी, कच्चे बेल का गूदा सबके चूर्ण को मधु में मिला करके चाट कर चावल के धोवन के साथ पीना चाहिये, यह पक्तातीसार की उत्तम ओषधि है ॥ २ ॥

कुटज्ञातिविषाचूर्णं मधुना सह लेहितम् । चिरोत्थितमतीसारं पक्षं पित्तास्त्रजं जयेद् ॥ ३ ॥
कुटज्ञवक्, अतीस दोनों को सम भाग लेकर चूर्णकर मधु मिलाकर चाटने से बहुत दिन का पुराना पित्त तथा रक्त से उत्पन्न हुआ पकवातिसार नष्ट होता है ॥ ३ ॥

लघुगङ्गाधरचूर्णम्—मोचरसमुस्तनागरपाठारलुधातकीकुसुमैः ।

चूर्णं मधितसमेतं लग्नद्विगङ्गाप्रवाहमपि ॥ ४ ॥

लघुगङ्गाधर चूर्ण—मोचरस, नागरमोथा, सौंठि, पुरुषनपाढी, सोनापाठा, धाय के फूल, इन सबको समान लेकर चूर्णकर मध्ये हुए दही अर्थात् मट्टा के साथ सेवन करने से गङ्गा के धार के समान बहुत हुआ अतीसार भी नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

बृद्धगङ्गाधरचूर्णम्—मुस्तसोचरसलोधातकीपुष्पविश्वगिरिकौटजैः फलैः ।

चूर्णितैः सगुडतक्सेचितैन्मनगाजलरथोपि रुद्धयते ॥ १ ॥

बृद्ध गङ्गाधर चूर्ण—नागरमोथा, मोचरस, लोध, धाय के फूल, बेल की गुदी, इन्द्रजौ इन सब द्रव्यों का चूर्ण कर दुह और तक (मट्टा) के साथ सेवन करने से नदी के बहुते हुए वेग के समान अतीसार भी नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अङ्गोलमूलकृकः सङ्घीत्रस्तण्डुलामधुना पीतः ।

सेतुरिव व्यरिवेण शृष्टिति निकध्यादतीसारम् ॥ १ ॥

अङ्गोल का मूल लेकर कल्प बना मधु मिला कर चावल के धोअन के साथ पीने से अतीसार के वेग को इस प्रकार अवरुद्ध कर देता है जिस प्रकार जल के वेग को बौध रोक देता है ॥ १ ॥

अजमोदामोचरसं सशङ्खवेरं सशातकीकुसुमम् ।

करमधितसंग्रुक्तं गङ्गामपि वाहिनीं रुद्धयात् ॥ २ ॥

अजमोदा (अजवाहन) मोचरस, सौंठि, धाय के फूल, इन सबके चूर्ण को मध्ये हुई दही (मट्टे) के साथ सेवन करने से गङ्गा के धार के समान बहुत हुआ अतीसार अवरुद्ध होता है ॥

विश्वजीरकसिन्धुरथं हिङ्गुजातिफलानि च । साप्रासिथ शङ्खखण्डं च दण्डाऽम्लेन प्रपेषयेत् ॥

ईषदङ्गारकैभृद्या बटिका कर्षसंमिता ।

पक्षापक्षमतीसारं सशूलं ग्राहणीयदम् । चिरोत्थमचिरोत्थं च नाशयेन्नान्न संशयः ॥ ४ ॥

सौंठि, जीरा, सेन्धानमक, हींग, जायफर, आम की गुडली, शङ्खभस्म शक्कर इन सबको खट्टी दही के साथ पीस कर एक-एक कर्ष की बटी बना कर आग के अङ्गरे पर थोड़ा भूज कर सेवन करने से पक्ष और अपक्ष (आम) अतीसार, शूल, ग्राहणी आदि पुराने अथवा नये सब निस्सन्देह नष्ट होते हैं ॥ ३-४ ॥

बटप्रोहं संपिण्डं शुलं तण्डुलवारिणा । तं पिवेत्क्षसंयुक्तमतीसारप्रशान्तये ॥ ५ ॥

वट के अङ्गुर (वरोह) चावल के धोवन से भलीमाती पीस कर मट्टे के साथ पीने से अतीसार शान्त होता है ॥ ५ ॥

अथ बातातीसारचिकित्सा

कपित्थविश्वचाङ्गेरीतक्षादिमसाधिता । ग्राहणी पाचनी पेया बाते वा पाङ्कमूलिका ॥ १ ॥

बातातीसार चिकित्सा—बाताज अतीसार में कैथ; बेल का गूदा, चाङ्गेरी (अमलोनी), तक (मट्टा) अनारदाना आदि की विधिपूर्वक बनाई हुई पेया ग्राहणी और पाचनी होती है अथवा पञ्चमूल (शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखल) इनसे बनाई हुई पेया इसी प्रकार लाम करने वाली होती है अर्थात् पाचन और ग्राहणी होती है ॥ १ ॥

पञ्चमूलवल्क्यविश्वाधान्यकोत्पलविश्वजा । बातातीसारिणे देया सवतुनाऽन्धतमेन वा ॥ २ ॥

पञ्चमूल (शालिपर्णी आदि), बला, सौंठि, धनियां नीलकमल (नीलोफर) और बेल के गूदा की वनायी पेया वात से उत्पन्न अतीसार वाले को देना चाहिये अथवा सत् के साथ इस पेया को देना नहिये ॥ २ ॥

बचा प्रनिविषा मुस्ता बीजानि कुटजस्य च । श्रेष्ठो बातातीसारे च योगोऽयं वैद्यपूजितः ॥ ३ ॥

बच, अतीस, नागरमोथा, इन्द्रजौ इसका काथ वात से उत्पन्न अतीसार के लिये अत्यन्त उत्तम है तथा यह वैद्यों से प्रत्रसित है ॥ ३ ॥

पूर्तिकं मागधीं शुण्ठीं बला भान्धं हरीतकी । पक्षामधुना पिवेत्सामवातातीसारशान्तये ॥ ४ ॥

पूर्तिकं, पीपरि, सौंठि बला, धनियां हरे इन सबको समान लेकर चूर्ण कर पकाये हुए (उण) जल के साथ पीने से आमयुक्त बातातीसार नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ पित्तातीसारचिकित्सा

आमान्वयमतीसारं पैत्तिकं लङ्घनेजर्येत् । लङ्घनेजर्यं यथासाम्यं यवागूमण्डतर्पणैः ॥ १ ॥

पित्तातीसार की चिकित्सा—आमदसहित पिच से उत्पन्न अतीसार को लङ्घन के द्वारा शमन करना चाहिये और लङ्घन के पश्चात् प्रकृति के अनुकूल यवागू अथवा मण्ड सेवन करा कर तर्पण करना चाहिये ॥ १ ॥

श्रुतां चन्दनमुस्ताम्यां पटोलोदीष्यनारैः । पेयामङ्गलामतक्रां वा पाचनीं ग्राहिणीं पिवेद् ॥

लालचन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र, सुगन्धबाला, सौंठि इन से पेया बनाकर शीतल कर अम्ल सहित बिना तक (मट्टा) के सेवन करने से पैत्तिक अतीसार में पाचन और ग्राहणी होती है ॥ २ ॥

धान्योदीष्यशृतं तोयं तुष्णादाहातिसारवान् । ताम्यामेव सपाठाम्यां सिद्धमाहारमाचरेत् ॥

धनियां और सुगन्धबाला को पका कर शीतल किया जल तुष्णा, दाह और अतीसार के रोग में लाम करने वाला है तथा धनियां, सुगन्धबाला के साथ पुरुषन पाढ़ी से सिद्ध किया हुआ पेया आहार के लिये अतीसार में देना चाहिये ॥ ३ ॥

विश वशकथवामोदवालकातिविषाकृतः । क्षवाथो हन्त्यातीसारं सामं पित्तसुज्जवम् ॥ ४ ॥

बेल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सुगन्धबाला और अतीस इन ओषधियों का बनाया कथाय आम के सहित पैत्तिक अतीसार को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

रसायनं प्रतिविषं कुटजस्य फलत्वचौ । धातकीं शृङ्खवेरं च पाययेत्पङ्कुलामधुना ॥ ५ ॥

माचिकेण युतं हन्यारिपत्तातीसारमुख्यम् । मन्दं सन्दीपयेदग्निं शूलं चाशु निवर्तयेत् ॥ ६ ॥

रसवत, अतीस, इन्द्रजौ, कुटजत्वक, धाय के फूल, सौंठि इन ओषधियों को समान भाग लेकर चूर्ण कर चावल के धोअन के साथ मधु मिला कर पीने से अत्यन्त बढ़ा हुआ पित्तातीसार नष्ट होता है और मन्द अग्नि को तीव्र करता है तथा शूल को शीघ्र नष्ट करता है ॥ ५-६ ॥

मधुकं कट्टफलं लोधं दाहिमस्य फलत्वचम् । पित्तातीसारे मधवकं पाययेत्पङ्कुलामधुना ॥

मुलाठी, कायफर, लोध, अनार के फल की छाल, इन सब को चूर्णकर चावल के धोवन में मधु मिला कर उसके साथ पीने से पित्तातीसार नष्ट होता है ॥ ७ ॥

समङ्गा धातकीपुष्पं विशवं सौवच्चलं विडम् । सङ्घीद्रं वाहिमं चैव पीतं तण्डुलवारिणा ॥ ८ ॥

चूर्णं पित्तातीसारधनं शूलं चाशु च निहरेत् ।

मजीठ, धाय के फूल, विशव, सौंठर नमक, विडम्बन और अनारदाना इनके चूर्ण को चावल के धोअन में मधु मिला कर उसके साथ पीने से पित्तातीसार और शूल को शीघ्र नष्ट करता है ॥ ८-९ ॥

सङ्घीद्रातिविषां पिंडा वस्तकस्य फलं त्वचम् ॥ ९ ॥

तण्डुलोदकसंयुक्तं पेयं पित्तातिसारनुत् ।
अतीस, कुटजत्वक् और इन्द्रजौ को चूर्ण कर चावल के धोअन में मधु मिला कर उसके साथ पीने से पित्तातिसार नष्ट होता है ॥ ९-९३ ॥

कट्टफलातिविषाम्भोदवत्सकं नागरात्मितम् ॥ १० ॥
शृतं पित्तातिसाराधनं पातवयं मधुसंयुतम् ।

कायफर, अतीस, नागरमोथा, कुटजत्वक्, सौंठि इन द्रव्यों को समान भाग लेकर यथा— विधि से काथ बना शीतलकर मधु का प्रक्षेप देकर पीने से पित्तज अतीसार नष्ट होता है ॥ १०-१०३ ॥

अथ घृतम्—पलं वस्त्रकससिद्धं चतुर्गुणजले घृतम् ।

पित्तातिसारे भिषजा देयं दीपनपाचनम् ॥ ११ ॥

कुटज की त्वचा एक पल (चार तो०) लेकर कल्प कर उसे मूर्छित गोघृत चार पल (१६ तो०) और पाकार्थ घृत से चतुर्गुण जल में मिला कर घृत की विधि से पाक कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर रख ले इस घृत का सेवन करने को पित्तज अतीसार में देवे इससे दीपन और पाचन होता है ॥ ११ ॥

अथ रक्तातीसारचिकित्सा

जगन्धवान्नामलकीनां च पक्षुवैश्व इसो जयेत् । मध्वाऽयच्चीरसंयुक्तो रक्तातीसारमुखवणम् ॥ १॥

रक्तातिसार की चिकित्सा—जासुन, आम और आंबला इनके पृथक् या मिलित के पत्तों का भरस मधु, घृत और दूध मिला कर पीने से अत्यन्त बढ़ा हुआ रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुडेन खाद्येद्वित्वं रक्तातीसारनाशनम् । आमशूलविन्धनं कुचिरोगचिनाशनम् ॥ २ ॥

बेल के फल का गूदा गुड़ के साथ सेवन करने से रक्तातिसार नष्ट होता है और आमशूल भलबद्धता और कुक्षिरोग आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

अथ कुटजाष्टक काथः—कुटजातिविषामुस्तं छालकं लोध्रचन्दनम् ।

धातकी धादिमं पाठा धाथं द्वौद्वयुतं पिवेत् ॥ ३ ॥

बुद्धे रक्ते सशूले च आमरोगे च हुस्तरे । कुटजाष्टमिदं ल्यातं सर्वातीसारनाशनम् ॥ ४ ॥

कुटजाष्टक—कुटज (कोरया) की छाल, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धबाला, लोध, लालचन्दन, धाय के फूल, अनारदाना, पुरेहनपाढ़ी इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर काथ की विधि से काथ बना शीतल मधु होने पर मिलाकर दाह, रक्त शूलयुक्त भयक्षर आमरोग में देना चाहिये । यह 'कुटजाष्टक' नाम से प्रसिद्ध काथ सब प्रकार के अतीसार को नष्ट करता है ॥ ३-४ ॥

सवत्सकः सातिविषः सविवदः सोहीच्यमुस्तश्च कृतः काथाः ।

सामे सशूले च सशोणिते च चित्रप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥ ५ ॥

कोरया का छाल, अतीस, बेल के फल का गूदा, सुगन्धबाला और नागरमोथा इन सब द्रव्यों का विधिपूर्वक काथ बनाकर पीने से आमयुक्त, शूलयुक्त और रक्तसहित अतीसार तथा पुराने अतीसार में भी हितकर है ॥ ५ ॥

लघुचेतकजीरके समे मृदुभृष्टे च सुचूर्णितेऽपिते ।

सह तण्डुलवारिणा मतेऽतिसूचिते इति सिद्धं योग एषः ॥ ६ ॥

लघुचेतकी (छोटी हरे), श्वेत जीरा दोनों समान लेकर मृदु भर्जन कर अर्थात् लघुपाक से किञ्चित् भूज कर चूर्ण कर चावल के धोअन के अनुपान से सेवन करने से अतीसार को नष्ट करने वाला है और वैद्यों ने इसे सिद्ध योग कहा है ॥ ६ ॥

अथ कन्दुकनिन्दकस्तनि ! प्रमदारूपमदापहारिणि !

सूधिरातिसूतौ कषायकः समधुर्दीप्तिमवत्सकत्वचः ॥ ७ ॥

हे कन्दुक (गेंद) को अपनी गोलाई या सुन्दरता से लजित कर देने वाले स्तनों वाली ! हे खियों की सुन्दरता के अभिमान को हरण करने वाली ? अनार के फल की त्वचा और कोरया की छाल इनके विधिपूर्वक बने हुए काथ में शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पीने से रक्त अतीसार नष्ट होता है ॥ ७ ॥

चन्दनं विमलतण्डुलाम्बुना संयुतं मधुयुतं सितान्वितम् ।

तृहविल्लणमसुविल्लणदनं स्वपदनं प्रचुरदाहमोहयोः ॥ ८ ॥

चन्दन को उत्तम चावल के धोअन में धिस कर मधु और मिश्री मिलाकर पीने से तुणों का नाश होता है, रक्त (रक्तातिसार) का अत्यन्त बड़े हुए दाह तथा मोह का नाश होता है ॥ ८ ॥

हीविरातिविषामुरतं विहवधान्यक्षयसकम् । समझा धातकी लोध्रं विधिं दीपनपाचनम् ॥ ९ ॥
हन्त्यरोचकपिच्छाम्भिवन्धं चातिवेदनम् । सक्षोणितमतीसारं सज्वरं वाऽथ विजवरम् ॥ १० ॥

सुगन्धबाला, अतीस, नागरमोथा, बेल का गुदा, अनिया, कोरया की छाल, मजीठ, धाय के फूल, लोध, सौंठि इन द्रव्यों का विधिपूर्वक बनाया हुआ काथ सेवन करने से दीपन तथा पाचन होता है । अहंचि, मलं की पिच्छिलता, आमदोष, मलवद्धता, अत्यन्त बड़ा हुआ शूल, रक्त के अतीसार, ऊंचर के सहित हो अथवा ऊंचर रहित हो सबको नष्ट करता है ॥ ९-१० ॥

विश्वं छागपयसिद्धं सितामोचरसान्वितम् । कलिङ्गचूर्णसंयुतं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ११ ॥

बेल का गुदा बकरी के दूध में पकावे और इसमें मिश्री, मोचरस और इन्द्रजौ का चूर्ण मिला कर सेवन करे तो रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ११ ॥

रसाज्ञानं सातिविषं कुटजस्य फलवैचम् । धातकीश्वक्षवेरं च पिवेत्पण्डुलवारिणा ॥ १२ ॥

स्त्रीद्रेण युक्तं तद्वेयं रक्तातीसार उखणे ।

रसवत, अतीस, इन्द्रजौ, कोरया की छाल, धाय के फूल और सौंठि इनको समान भाग ले चूर्ण कर चावल के धोअन में मधु मिलाकर उसके साथ सेवन करने से अत्यन्त बड़ा हुआ रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ १२-१२३ ॥

लग्नमष्टुणं दूद्वा पलं कण्ठितसंपुण्डलान् । धावयित्वा ततो देयं तण्डुलोदकमणि ॥ १३ ॥

तण्डुलोदक अर्थात् चावल के धोअन बनाने की विधि—अरवा (बिना ऊंचाला हुआ या अस्वेदित) धान का कुटा हुआ चावल एक पल (चार तो०) लेकर अठगुने जल में (३२ तो०) देकर धोकर चावल निकाल कर उस जल को छान कर 'तण्डुलोदक' जहाँ कहा हो वहाँ सेवन करावे ॥ १३ ॥

विकितसाकालिकातः कलिङ्गषट्कस्—

सहरीतकीप्रतिविषा सूचकं सप्तवचं सहित्कु सकलिङ्गयुतम् ।

इति तत्कलिङ्गयुतषट्कमिदं क्षधिरातिसारगुदशूलहरम् ॥ १४ ॥

कलिङ्गषट्क—हरे, अतीस, सेन्ध्यानमक, वच, हींग और इन्द्रजौ इन सब द्रव्यों के मिश्रित योग को 'कलिङ्गषट्क' कहते हैं । इसके चूर्ण को सेवन करने से रक्तातिसार और गुदा का शूल नष्ट होता है ॥ १४ ॥

पिच्छावस्ति—अल्पारूपं बहुशो रक्तं सशूलमुपवेश्यते ।

यदा वायुविवर्द्धश्च पिच्छावस्तिरत्वा हितः ॥ १ ॥

पिच्छावस्ति—जब रक्तातिसार में बहुत बार अल्प-अल्प रक्त शूल के साथ आवे और बायु (अपोवायु) रक्तो हुई हो तब पिच्छावस्ति का प्रयोग करना हितकर होता है ॥ १ ॥

शास्त्रमलेराद्रंपुष्पाणि पुटपाकीकृतानि च । संकुटयोल्लख्ये सम्यग्गुहीयात्पथसि श्रुते ॥ २ ॥
गृहीत्वा च पलं तस्य त्रिपलं धृतरैत्यौः । युक्तं मधुकक्षकेन मात्सिकन्निपलेन च ॥ ३ ॥
तेलरक्तव्युषो दृश्याद् वस्ति प्रत्यागते रसे । भोजयत्यथसा वापि पिच्छातीसारपीडितम् ॥४॥

सेमर के हरे पुष्प लेकर पुटपाक की विधि से पकाकर ओखल में कूटकर रस निकाल—औटा कर शीतल किये हुए गौदुग्ध में बरावर-बरावर मिलाकर उसमें से एक पल [४ तो०] लेवे और समान भाग में मिला हुआ धी और तेल दोनों मिलाकर तीन पल [१२ तो०] लेवे तथा मधु मिला हुआ मुलहठी का कल्क तीनपल (१२ तो०) लेकर एकत्र सबको मिलाकर शरीर एवं गुदा आदि में तेल लगाकर पिच्छातिसार से पीडित रोगी को इसकी वस्ति (पिच्कारी द्वारा गुदा के सारे से इस औषध को पेट में ढावे) देवे और इस रस के निकल जाने पर अर्थात् मल के सहित वस्ति में दिये हुए पदार्थ के बाहर आ जाने पर पथ्य में गाय का दूध देवे तो पिच्छातिसार नष्ट होता है ॥ २-४ ॥

उक्तं च वाग्मटे—पञ्चवाञ्जरीकृत्य विशपाकोविद्वारयोः ।

पचेद्यवांश स काथो धृतश्चीरसम्बितः ॥ १ ॥

पिच्छावस्ति: प्रयोक्त्वाः च्छत्स्तीणवलाचहः । पिच्छास्तुतौ गुदभ्रंशे प्रवाहणरुजासु च ॥ २ ॥

वाग्मट में इस प्रकार लिखा है—शीशम और कचनार के पलवों (कोमलपत्र) को लेकर बरावर-बरावर भलीभाँति कुचल कर उसमें एक के बराबर जौ लेकर अर्थात् तीनों समान लेकर काथ कर उस काथ में धृत और दूध मिलाकर वस्ति प्रयोग करने से क्षत और क्षीण हुए पुरुषों को बलदायक है तथा पिच्छासाव, गुदभ्रंश और मलनिकलने के समय में पीड़ा होने गर इसका प्रयोग हितकर है ॥ १-२ ॥

अथ गुदभ्रंश चिकित्सा

गुदो बहुभिर्हथानैर्यस्य पित्तेन पथ्यते । सेव्येत्तं सुशीतेन पटोऽमधुकाग्नुना ॥ १ ॥

गुदभ्रंश—जिस रोगी की गुदा अनेक बार मल त्वाग करने से पित्त के कारण पक जाती है उसमें पटोलपत्र और मुलहठी का विधिवत् काथ बनाकर शीतल कर पाक की सीचना चाहिये इससे पाक शान्त होता है ॥ १ ॥

रक्तातिसारिणामाजं पथः सङ्कीर्णशक्तरम् । गुदभ्रंशालने सेके प्रशस्तं पानभोजने ॥ २ ॥

रक्तातिसार के रोगियों के लिये बकरी के दूध में मधु और शकर मिलाकर इससे गुदा को धोना, सिचन करना तथा इसको पीना और भोजन करना हितकर होता है ॥ २ ॥

स्वेदोदय मूषिकामांसैस्तद्वासान्नद्वयं तथा । गुदनिःसरणे शस्तं चाङ्गेरीधृतमुत्तमम् ॥ ३ ॥

गुदा के बाहर निकल जाने पर चूहे के मांस से स्वेदन करना और चूहे का बसा (चरवी) उस पर मदनं करना लाभकारक है तथा चाङ्गेरी धृत का सेवन करना उत्तम है ॥ ३ ॥

शम्बूकमांसं सुर्विकं सतैललवणान्वितम् ।

ईषवृष्टवेन चाभ्यक्तं स्वेदयैतेन यज्ञतः । गुदभ्रंशभर्मसैपेण नाशयेत्तिप्रसेव च ॥ ४ ॥

शम्बूक (धोवा) के मांस को भलीभाँति पकाकर तेल, सेव्यानमक और कुछ धी मिला कर उस मांस से यज्ञपूर्वक गुदा को स्वेदन करने से गुदभ्रंश रोग शीघ्र नष्ट करता है ॥ ४ ॥

अथ श्लेष्मातीसारचिकित्सा

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लहूनपाचनम् । योजयश्लेष्मातिसाराद्धनो यथोक्तो दोपनो गणः ॥

श्लेष्मातिसार-चिकित्सा—कफ से उत्पन्न अतिसार में प्रथम उपवास और पाचन क्रिया करानी हितकर है तथा पूर्वोक्त अतिसारनाशक दीपनीयगण की ओषधियों का प्रयोग करना, चाहिये ॥ १ ॥

पूतिकाद्योषविलवास्त्रिपाठादाडिमहिङ्गिः । भोजयेत्संस्कृतैर्यैः श्लेष्मातीसारपीडितम् ॥२॥

कफातिसार से पीडित रोगी को पूतिकरज्ज, सोंठि, पीपरि, मरिच, बेलके फल का गुदा, चित्त की जड़, पुराणपादी अनार का छिलका, हींग इन ओषधियों को देकर बनाया गुदा जूस भोजन करने को देना चाहिये ॥ २ ॥

गोकण्ठकगुहाद्याग्रीकथायं सुश्रुतं पिवेत् । आमश्लेष्मातिसारधनं दीपनं पाचनं परम् ॥ ३ ॥

गोखरु, गुहा (कंगुनीधान्य), छोटी कटेरी, इनके विश्विपूर्वक बने हुए काथ के पीने से आम युक्त कफातिसार नष्ट होता है, यह दीपन तथा अत्यन्त पाचन है ॥ ३ ॥

पथ्या सौवर्चदं हिङ्ग सैन्धवातिविषा वचा । आमातिसारं सकरं पीतमुष्णाग्नुना जयेत् ॥४॥

हरे, सोचरनमक, हींग, सेव्यानमक, अतीस, वच, इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर उष्ण जल के साथ पीने से आमातिसार तथा अतीसार नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ सन्निपातातीसारचिकित्सा

समझाऽतिविषा सुम्ता विश्वं हीबेरधातकी । कुटजत्वद्वलैर्बिल्वैः काथः सदातिसारनुतः ॥ १ ॥

सन्निपातातिसार की चिकित्सा—मजीठ, अतीस, नागरमोथा, सोंठि, सुगन्धवाला, धाय के फूल, कीरया की छाल, तेजपात और बेल के फल का गुदा, इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर सेवन करने से सब प्रकार का (सन्निपातज) अतीसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

अभयादि गुटिका—अभया नाशनं सुश्रुतं गुदेन सह योजितम् ।

चतुःसमेयं गुटिका त्रिदोषधनी प्रकीर्तिः ॥ २ ॥

आमातिसारमानाहं सविवन्धं विसूचिकाम् । कृमीनरोचकं हन्यादीपयत्याशु चानलम् ॥ ३ ॥

अभयादि गुटिका-हरीं, सोंठि, नागरमोथा, इनका चूर्ण और गुड चारों समान भाग लेकर गुटिका बनाकर सेवन करने से त्रिदोषज अतीसार तथा आमातिसार, आनाह, मलबद्दता, विसूचिका, कृमि, अरुचि आदि का नाश होता है और अग्नि की शीघ्र तीव्र करने वाली है ॥ २-३ ॥

अवेदनं सुसम्पवं दीपाम्भः सुचिरीस्थितम् । नाशवर्णमतीसारं पुटपाकैस्त्रवाचरेत् ॥ १ ॥

जिस अतीसार में शूल नहीं होता हो, अतीसार परिपक हो गया हो, रोगी की अस्ति तीव्र हो, अतीसार पुराना हो गया हो और अनेक वर्ण का अतिसार हो उसमें पुटपाक की विधि से बनाई हुई ओषधि देनी चाहिये ॥ १ ॥

त्रिगंधं घनं कुटजत्वकमजन्तुजश्चमादाय तरदणमतीव च पेषयित्वा ।

जग्नपूपलाङ्गापुटतप्तहुलोत्यसिकं बद्धं कुशेन च बहिर्घनपङ्गलिसम् ॥ २ ॥

सुस्विक्षपिण्डुपर्णीद्य रसं गृहीत्वा चौद्वेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् ।

कृष्णान्निपुन्नमतपूजित एष योगः सर्वातिसारहरणे स्वयम्भव राजा ॥ ३ ॥

जिस कुटज वृक्ष की त्वचा किंवद् (सम, व्रणरहित, देखने में स्वच्छ), धनी (मोटी) और कृमि आदि जिसमें नहीं प्रवेश किये हों, जली-कटी नहीं हो उसे लाकर उसी समय भलीभाँति चावल के धोवन से सींच-सींच कर पीस कर जासुन और पलास के पत्ते से बेष्टित कर कुश से बांध कर उसके ऊपर गीली मिट्टी का भोटा लेप देकर अग्नि में भलीभाँति, पुटपाक की विधि से

पका कर अस्ति से वाहर निकाल कर रस जिचोड़ कर उस रस में मधु मिला कर अतीसार बाले रोगी को देना चाहिये। इससे सब प्रकार का अतीसार नष्ट होता है। यह योग अनिके पुत्र कृष्ण ऋषि का कहा हुआ है तथा अतीसार के नाश करने में सब योगों का राजा है॥ २-३॥

अथ श्लेष्मपित्तातीसारचिकित्सा

समझा धातकीपुष्पमाग्रास्थि नागकेशरम् । विश्वं मोचरसं लोधं कुटजश्य फलत्वचम् ॥ १ ॥
पित्तेत्पहुलत्वेन क्षवायं कल्कमेष्व वा । श्लेष्मपित्तातीसारधनं इकं वाऽथ नियच्छ्रुतिः ॥ २ ॥

श्लेष्म-पित्तातीसारचिकित्सा—मजीठ, धाय के फूल, आम की गुठली, नागकेशर, विश्व फल का गुदा, मोचरस, लोध, कोरया की छाल, इन्द्रजौ, इन औषधियों का विधिपूर्वक काथ अथवा कल्क बना कर चावल के धोअन से पीने से कफ-पित्त से उत्पन्न अतीसार नष्ट होता है तथा रक्तज अतीसार का अवरोध होता है॥ २-२॥

अथ वातश्लेष्मातीसारचिकित्सा

रसैः स्वादुकटुप्रायैरुभौ वातकफौ नृणाम् । कुरुत्स्तावतीसारं कुद्दी वह्नि निहस्य च ॥ १ ॥

वातश्लेष्मातीसार की चिकित्सा—प्रायः करके मधुर और कटुरसों के अधिक सेवन करने से मनुष्यों के वात और कफ कुपित होकर अस्ति का नाश करके अतीसार को उत्पन्न कर देते हैं॥ १॥
द्रवं सफेनं पुरिषं तन्वामं मदगानिधकम् । सशद्वेदनावन्तं तत्र सम्परिपच्यते ॥ २ ॥

नित्यं गुदगुडाथनं तन्द्रामुर्धाभ्रिमकूमैः । प्रसकं स्विक्षक्त्युरुजानुपृष्ठास्तिथूलिनः ॥ ३ ॥

आन्यपञ्चकसंसिद्धो धान्यविश्वकृतोध्वचा । आहारो भिषजा धोख्यो वातश्लेष्मातीसारिणे ॥

जिस वात-कफातीसार बाले रोगी का मल द्रव, फेनयुक्त, अल्प, आमसहित, मद के समान गन्ध वाला, शब्दसहित, पीड़ासहित निकलता हो और नित्य पेट में जिसके गुदगुडाहट रहती हो और तन्द्रा, मूर्छा, भ्रम, डान्ति आदि होती हो, तथा जिसे नितम्ब, कटिप्रदेश, जंवा, जानु और पीठ की अस्तिथियों में पीड़ा होती हो तो इस रोगी को आन्यपञ्चक से पकाया हुआ अथवा धनिया और सौंठि से बनाया हुआ आहार वैद्य को देना चाहिये॥ २-४॥

वातातीसारे धर्चोक्तं पाचनं ग्राहि भेदज्ञम् । तदत्रापि प्रयुक्तित सञ्चिन्त्य कफमरुतौ ॥ ५ ॥

वातज अतीसार में जो २ पाचन और ग्राही औषध कहा गया उसे विचार कर यहाँ (वात-कफातीसार में) भी देना चाहिये॥ ५ ॥

अथ वातपित्तातीसारचिकित्सा

कटुफलं मधुकं लोधं त्वद्वादिमफलश्य च । वातपित्तातीसारधनं पित्तेत्पहुलवारिणा ॥ १ ॥

वातपित्तातीसारचिकित्सा—कायफर, मुलहटी, लोध, अनार के फल की छाल, इन औषधियों के चूर्णों को चावल के धोअन के साथ पीने से वात-पित्तातीसार नष्ट होता है॥ १ ॥

मुस्तं सातिविषा दार्ढी वचा शूण्ठी च तत्समम् । कषायं लौद्रसंयुक्तं पित्तवातातीसारिणे ॥

नागरमोथा, अतीस, दारुहरदी, वच, सौंठि, इन सब द्रव्यों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर शीतल होने पर मधु मिलाकर वातपित्तातीसार बाले को पिला देना चाहिये इससे वातपित्तातीसार नष्ट होता है॥ २ ॥

पीतदारु वचा लोधं कलिङ्गफलनागरम् । दादिमाम्बुद्युतं दद्यास्तिवातातीसारिणे ॥ ३ ॥

दारुहरदी, वच लोध, इन्द्रजौ, सौंठि इन सबको समान लेकर चूर्ण कर अनार के रस के साथ वात-पित्तातीसार के रोगी को देना चाहिये॥ ३ ॥

अथ छर्घतीसारचिकित्सा

विश्वचूतास्थिनियूहः पीत सचौद्रशक्तेः । तिहस्याच्छ्रुतीसारं वैश्वानर इवाऽऽहुतिम् ॥

छर्घतीसार चिकित्सा—बेल का गुदा, आम की गुठली, इन दोनों का विधिवत काथ बना शीतल कर मधु और शक्त का प्रक्षेप देकर पीने से वमनसहित अतीसार को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार अस्तिवेद आहुति की नष्ट कर डालते हैं॥ १ ॥

पटोल्यवधान्याकक्षायः पीतः सुशीतलः । शक्तरामधुसुंयुक्तरक्षर्घतीसारनाशनः ॥ २ ॥

पटोलपत्र, जौ, धनिया का विधिवत काथ बना शीतल कर शक्त और मधु का प्रक्षेप देकर पीने से वमनसहित अतीसार नष्ट होता है॥ २ ॥

प्रियङ्गवस्त्रमुस्ताल्यं पाययेत्य यथाबलम् । तृष्णातिसारच्छ्रुदिन्दनं सद्धृद्रं तण्डुलाभ्वुना ॥

फूलप्रियङ्गु, रसवत, नागरमोथा इन औषधियों के चूर्ण को बलानुसार चावल के धोअन में मधु मिलाकर उसके साथ पीने से तृष्णा और वमनसहित अतीसार नष्ट होता है॥ ३ ॥

जग्बद्वाच्चपालुवोशीवटश्वङ्गावरोहकैः । इसः कायोऽथवा चूर्णं ष्टैद्रेण सह योजितम् ॥ ४ ॥

कुर्विंउवरमती मृद्धांसारं तुष्णां च दुर्जयाम् । नियच्छ्रुत्यविचारद्रक्षुर्तिं चामेकहेतुभिः ॥ ५ ॥

जामुन और आम के कोमल पत्ते, खस, वटवृक्ष के अद्धर इनके स्वरस, क्वाथ अथवा चूर्ण की मधु के साथ सेवन करने से वमन, ज्वर अतीसार, मूर्छा, भयक्त्र तृष्णा तथा अनेक कारणों से उत्पन्न होने वाले रक्तावाव आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं॥ ४-५ ॥

अथ शोफातीसारचिकित्सा

सदेवदारुः सधिः सपाठः सजन्तुशत्रुः सधनः सतीषणः ।

सदेवत्पकः क्षाय बद्वाहनोऽसौ शोफातिसाराभ्वुधिकुम्भजन्मा ॥ १ ॥

शोफातिसार की चिकित्सा—देवदारु, अतीस, पुरहनपादी, बामीरंग, नागरमोथा, मरिच, कुटजत्वक इन सब द्रव्यों का विधिपूर्वक बनाया हुआ काथ सेवन करने से शोधयुक्त अतीसार इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार कुम्भक (अगस्त्य) ऋषि से सुमुद्र नष्ट हो गया था॥ १ ॥

किराताद्वामृताविष्वचन्द्रोदीश्यवस्तकः । शोफातिसारशमनं विशेषाद्यवरनाशनम् ॥ २ ॥

चिरैता, नागरमोथा, गुरुचि, सौंठि, लालचन्दन, सुगन्धबाला, कोरया की छाल, इन द्रव्यों का विधिपूर्वक बनाया हुआ काथ सेवन करने से शोधयुक्त अतीसार नष्ट होता है तथा विशेष कर इससे ज्वर नष्ट होता है॥ २ ॥

अथ भयशोकातीसारचिकित्सा

भयशोकातीसारौ भयशोकसमुद्दौरै । तयोर्वातिहरी कार्या हर्षणाशासनक्रिया ॥ १ ॥

भयज-शोकजातिसारचिकित्सा—भय और शोक के अधिक होने से भयातिसार और शोकातिसार उत्पन्न होते हैं। इन दोनों अतीसारों में वातनाशक कार्य (चिकित्सा) करना चाहिये तथा हर्द उत्पन्न करने वाले तथा चित्त की आशासन (डाढ़स बँधाने) वाले कार्य को करना चाहिये॥ १ ॥

पृथिनपर्णीवलाविश्वधान्यकोत्पलनागरैः ।

विड्हातिविषामृस्तादाह्याटाकलिङ्गकैः । मरिचेन समायुक्त शोकातीसारनाशनम् ॥ २ ॥

पृथिनपर्णी, वला (विश्वारा), वेल का गुदा, धनिया, नीलोत्पल [नीलोफर], सौंठि, बामीरंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पुरहनपादी, मरिच इन सब द्रव्यों का विधिपूर्वक बना काथ सेवन करने से शोक के उत्पन्न अतीसार नष्ट होता है॥ २ ॥

अथ प्रवाहिका

इवकः स्याद्वालुविवचानां तिलकतकश्च तत्समः ।

हधनः सरोऽप्त्वानेहाद्यः षट् च हन्त्यात्प्रवाहिका ॥ १ ॥

प्रवाहिका चिकित्सा—छोटे कच्चे बेल के गुददे का कल्प विधिवत् बनाकर उसीके वरावर तिल का कल्प बनाकर एकत्र कर उसमें अम्ल दही की सिनरधि मलाई मिलाकर सेवन करने से छ प्रकार की प्रवाहिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

सुदृश्युं रसं तक्षं धान्यजीरकसंयुतम् । षट्क्षमिति सम्प्रोक्तं सैन्धवेन समन्वितम् ॥ २ ॥

अधिसन्धिपनं प्रोक्तं ग्रहणीदोषनाशनम् । अरोचके ऊरे चौचौ श्रेष्ठमेत्यप्रवाहिके ॥ ३ ॥

मूर्ग के जूस का रस, मास का रस, मट्ठा इनमें धनिया, जीरा और सेन्धानमक मिला कर रख लेके इसे 'षट्क्षमिति' कहते हैं। इसके सेवन करने से अग्नि दीप होती है, ग्रहणी के दोष का नाश होता है तथा अरुचि, ऊर और प्रवाहिका रोग में सेवन करना श्रेष्ठ है ॥ २-३ ॥

चालविश्वं गुदं तैलं पिष्पली विषभेषजम् । लिह्याद्वाते प्रतिहते सशङ्क्ले सप्रवाहिके ॥ ४ ॥

कच्चे बेल के फल का गुदा, गुद, तिल का तेल, पौपरि, सौंठि इन द्रव्यों का विधिवत् कल्प बना कर सेवन करने [चाटने] से वात से उत्पन्न शूल सहित प्रवाहिका नष्ट होती है ॥ ४ ॥

पयसा पिष्पलीकलः पीतो वा मरिचोद्धवः । त्यहाजिर्वाहिकां हन्त्याच्चिरकालानुविधिनीम् ॥

पीपर अथवा मरिच का कल्प बना कर गाय के दूध के साथ पीने से तीन दिन में ग्रहत दिन का पुरानी प्रवाहिका भी नष्ट हो जाती है ॥ ५ ॥

तैलं सरिदीर्घि ढीढ़ विषा त्रिश्वं सफाणितम् । सर्वमालोद्ध पातश्चं सद्यो निर्वाहिकां हरेत् ॥

तिल का तेल, धी, दही, मट्ठा, अलीस का चूर्ण, सौंठि का चूर्ण और काणित [राव] इन सब द्रव्यों को एकत्र समान भाग में लेकर पीने से प्रवाहिका शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ ६ ॥

शृश्युं त्रिफला चौचौ चित्रको गजपिष्पली । विश्वकर्कटिकाहिन्दा विष्टकं सनिदिग्धिकम् ॥ ७ ॥

शृतप्रथं पचेदेभिर्गार्भा सूने चतुरुणे । तत्प्रयोगं पिष्पेकाले हन्त्यात्मेन प्रवाहिकाम् ॥ ८ ॥

सौंठि पौपरि, मरिच, अंवरा, हरा, बहेरा, चित्त की जड़, गर्जनपरि, बेल का गुदा, ककरी, बड़ी कट्टरी, बामीरंग, छोटी कट्टरी इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक कल्प कर कल्प से चौगुना एक प्रस्थ [एक सेर] मूर्च्छित गो घृत तथा घृत से चौगुना गोमूत्र मिला कर घृतपाक की विधि से सिद्ध कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर समयानुकूल सेवन करने से प्रवाहिका नष्ट होती है ॥ ७-८ ॥

अथ पुरीषक्षयः

दीप्ताम्बन्यतिपुरीषो यः सार्थते फेनिलं शक्तु । सः पिष्पेक्षाणितं शुण्ठीद्वितैलपयोनिवितम् ॥

पुरीषक्षय की चिकित्सा—जिस अतीस के रोगी की अग्नि तीव्र हो, मल अधिक तथा फेन शुक्त निकले वह राव (काणित), सौंठिका चूर्ण, दही, तिलका तेल और दूध मिलाकर पीके तो पुरीषक्षय में हितकर होता है ॥ १ ॥

इना भसारेण समाहिकेण भुजीत चित्तास्त्रकपीडितस्तु ।

सुतक्षुण्ठीकथितेन वापि लीरेण श्रीतेन मधुप्लुतेन ॥ २ ॥

मलाई (साढ़ी) सहित दही में मधु मिला कर पीने से वा मट्ठे में सौंठि का चूर्ण मिला कर कथित कर पीने से अथवा दूध को औटा कर शीतल होने पर मधु देकर पीने से पुरीषक्षय नष्ट होता है ॥ २ ॥

बलाविषश्वतं ज्ञोरं गुदतैलानुभोजितम् । दीप्ताम्बिं पायथेधातः सुखदं वर्चसः चये ॥ ३ ॥

बला (बरिआरा) और सौंठि इन ओषधियों को देकर औटाये हुए दूध में गुद और तिलका तेल मिलाकर दीप्त अग्नि वाले पुरीषक्षय के रोगी को प्रातःकाल सेवन करने से सुखकर होता है श्वासमांसं रुचिकरं स्वस्त्रं दधि । विप्राच्य खादेसेवेच्च मृदुज्ञं शक्तुः चये ॥ ४ ॥

पुरीषक्षय में पथ्य—स्वचिकारक शशक का मांस बना कर दही में शक्तर और घृत मिला कर और पका कर (सिद्ध कर) मृदु (लघु) अग्नि पुरीषक्षय रोग में भोजन करना चाहिये, यह पथ्य है ॥ ४ ॥

विवद्धवातो विट्गूलपरीतः सप्रवाहिकः । सरक्षिप्तक्षय पथः पिष्पेत्तृणासमन्वितः ॥ ५ ॥

दूध पीने का विधान—जिस रोगी की वायु अवरुद्ध हो गयी हो, मल शूल के साथ अवरुद्ध होकर आये, प्रवाहिका हो और मल में रक्त तथा पिच्छिलता आये तथा रृषा हो तो उस रोगी को दूध पीना चाहिये ॥ ५ ॥

यथामृतं तथा चीरमतिसारेषु पूजितम् । सरक्षोत्थेषु नव्येयमपां भागेषु संस्कृतम् ॥ ६ ॥

अतीसार रोग में दूध अमृत की भाँति लाभदायक है तथा अतीसार में यदि रक्त का कोप हो तो दूध में जल देकर विधि से पाक कर पीने को देना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ ज्वरातीसारः

उवरातिसारयोरुक्तं यथपृथक् पृथक् । न तनिमिलितयोः कार्यमन्योन्वं वर्धयेद्यतः ॥ १ ॥

अतस्तौ प्रतिकुर्वीन विशेषोक्तचिकित्सितैः ॥ २ ॥

ज्वरातिसार—चिकित्सा—ज्वर और अतीसार रोग की औषध पृथक् २ कही गयी है परन्तु ज्वर और अतीसार के निदान की भाँति मिलित कर ज्वर और अतीसार की ओषधि नहीं करनी चाहिये क्योंकि ज्वर और अतीसार की ओषधियां एक दूसरे को बढ़ाने वाली होती हैं अर्थात् ज्वर की ओषधि से अतीसार की बृद्धि होती है और अतीसार की ओषधि से ज्वर में बृद्धि होती है। इसलिये ज्वरातिसार की प्रतिक्रिया (ओषधि) विशेष रूप से पृथक् कही गयी है ॥ १-२ ॥

लहूनसुभयोरुक्त मिलिते कार्यं विशेषतस्तदनु । उत्पलषष्टिकसिद्धं लाजकमण्डादिकं पेयम् ॥

लहून (उपवास) की क्रिया ज्वर तथा अतीसार दोनों रोगों में कही गयी है इसलिये मिलित रोग (ज्वरातिसार) में इसे विशेष रूप से करना चाहिये तथा लहून के पश्चात् नीलोत्पल (नीलोफर) और साठी के चावल का मण्ड (माड) बनाकर अथवा धान के लावा (लाजा) का मण्ड विधिपूर्वक बनाकर पीना चाहिये यह हितकर होता है ॥ ३ ॥

पृश्नपर्णीबलादिस्वनामशोतपलधान्यकैः । उवरातिसारी पेयां वा पिष्पेत्तृणां शृतां नरः ॥ ४ ॥

पृश्नपर्णी, बला, बेल की गुदी, सौंठि, नीलोत्पल (नीलोफर) और धनिया इन ओषधियों से सिद्ध की हुई पेया अम्ल मिलित कर ज्वरातिसार वाले मनुष्य को देनी चाहिये ॥ ४ ॥

धातकीकायसंसिद्धा विशेषज्ञकलित्सा । दाढिमालयुता पेया उवरातिसारशूलिनाम् ॥ ५ ॥

धाय के फूल के काथ और सौंठि के कल्प से सिद्ध की हुई पेयामें खड़ा अनारदाना मिला कर ज्वरातिसार और शूल के रोगी को देना चाहिये ॥ ५ ॥

पाठेन्द्रयवभूनित्वमुस्तपर्णटकाः श्रताः । जयन्त्याममतीसारं ज्वरं च समहीणवाः ॥ ६ ॥

पुरुद्धनपाढ़ी, इन्द्रजौ, चिरतैता, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, सौंठि इनका विधिपूर्वक काथ बना कर सेवन करने से आम, अतीसार तथा ज्वर का नाश होता है ॥ ६ ॥

नागरतिविशामुस्तभूनित्वामृतवासकैः । सर्वज्वरहरः काथः सर्वतीसारनाशनः ॥ ७ ॥

सौंठि, अतीस, नागरमोथा, चिरैता, गुरुचि, कोरया-की छाल, इन ओषधियों को विधिवत् काथ बनाकर सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर तथा अतीसार का नाश होता है ॥ ७ ॥

धान्यकातिविषामूस्तागुहूचीविलवनगरैः । धत्तः कचायः शमयेदतीसारं चिरोरिथितम् ॥८॥

अरोचकमशूलास्त्रज्वरद्धनः पाचनः स्मृतः ।

धनिया, अतीस, नागरमोथा, गुरुचि, बेल की गुही, सौंठि इन सब ओषधियों को लेकर विधिवत् काथ बना कर सेवन करने से बहुत दिन का पुराना अतीसार शमन होता है और अरुचि, आम, शूल, रक्तातिसार और ज्वर नष्ट होता है तथा पाचन कहा गया है ॥ ८-१५ ॥

कलिङ्गातिविषाघुण्ठीकिराताम्बुद्यवासकम् ॥ ९ ॥

ज्वरातीसारसम्नापं नाशयेद्विक्षिक्षृपतः ।

इन्द्रजी, अतीस, सौंठि, चिरैता, सुगन्धवाला, जवासा इन सब ओषधियों का काथ विधिपूर्वक बना कर सेवन करने से ज्वरातिसार के ताप को अवश्य नष्ट कर देता है ॥ ९-१५ ॥

गुहूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीविषवाड्वालकः ॥ १० ॥

पाठाकुटजभूनिष्वच्नद्नोक्षीरपर्पदैः । पिवेकक्षाय सहौद्रं उवरातीसारशान्तये ॥ ११ ॥

हृष्णासारोचकच्छुर्विपिपासादाहनाशनम् ।

गुरुचि, अतीस, धनिया, सौंठि, बेल की गुही, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पुरेनपाढ़ी, कोरया की छाल, चिरैता, लालचन्दन, खस, पिच्चपाढ़ा इन सब द्रव्यों का विधिपूर्वक काथ बनाकर सेवन करने से ज्वरातिसार शान्त होता है तथा हृष्णास, अरुचि, वमन, पिपासा और दाह का नाश होता है ॥ १०-१५ ॥

वस्तकस्य फल दाह रोहिणी गजपिपली ॥ १२ ॥

श्वदंष्ट्रा पिपली धान्यं विश्वपाठायवानिकाः ।

द्वाष्प्युक्ताधिमी योगी श्लोकाधनावभाषितौ ॥ १३ ॥

ज्वरातीसारसम्नौ विशेषादाहनाशनौ ।

१—इन्द्रजी, देवदार, कुटकी और गजपीपरि तथा २—गोखरू, पीपरि, धनिया, बेल की गुही, पुरेनपाढ़ी और अजवाइन, ये दो प्रकार के योग आधे लोक में कहे गये हैं। इन दोनों योगों में से प्रत्येक योग का विधिपूर्वक काथ बनाकर सेवन करने से ज्वरातिसार शान्त होता है तथा विशेष कर ज्वरातिसार का दाह नष्ट होता है ॥ १२-१३ ॥

ध्योपं वस्तकवीजनि निष्वभूनिष्वमार्कम् ॥ १४ ॥

विश्वकं रोहिणी पाठा दार्ढी ध्यतिविषा सम्नम् । श्लशणचूर्णीकृतानेतांस्तत्त्वयां वस्तकस्यचम्द् ॥
सर्वमेकत्र संयोजय विचेत्पृष्ठलवारिणा । सच्चौद्रं वा लिहेदेवं पाचनं ग्राहि भेषजम् ॥ १६ ॥

तृष्णाऽरुचिप्रशमनं उवरातीसारनाशनम् । कामलां ग्रहणीरोगं गुरुमं प्लीहानमेव च ॥ १७ ॥

प्रमेहं पाण्डुरोगं च व्यथयुद्धं च विनाशयेत् ।

सौंठि, पीपरि, मरिच इन्द्रजी, नीम की छाल, चिरैता, मांगरा, चित्त की जड़, कुटकी, पुरेनपाढ़ी, दाहहरदी और अतीस इस सब द्रव्यों को समान भाग लेकर इलक्षण (अत्यन्त सूक्ष्म) चूर्ण कर जितना चूर्ण एकत्र करने पर हो उसके समान कोरया की छाल का उत्तम चूर्ण मिलाकर चावल के धोअन व्यथा मधु के साथ मात्रावृस्तर पीढ़े तो इससे पाचन होता है और यह ग्राही है और तृष्णा तथा अरुचि को शमन करने वाला है, ज्वरातिसार, कामला, ग्रहणी का रोग, गुरु, गुरुम, प्लीहा, प्रमेह पाण्डुरोग शोथ रोग को नष्ट करता है ॥ १४-१७ ॥

उशीरं बालकं सुस्तं धान्यकं विश्वमेव च ॥ १८ ॥

समझा धातकी लोध्रं विश्वं धीपमपाचनम् । हन्त्यरोचकपिष्ठाम् विश्वन्थं सातिवेदमम् ॥ १९ ॥
सशोणितमतीसारं स्वद्वरं वाऽय विजवरम् ।

खस, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनिया, बेल की गुही, मजीठ, धाय के फूल, लोध, सौंठि, इन द्रव्यों का विधिपूर्वक बना हुआ काथ सेवन करने से दीपन तथा पाचन है। तथा अरुचि, मल की रिनधता, आम, मलवद्धता, अत्यन्त शूल तथा रक्त युक्त अतीसार, ज्वर सहित अतीसार अथवा केवल अतीसार आदि रोग को नष्ट करता है ॥ १८-१९ ॥

विश्वबालकभूनिष्वगुहूचीधान्यनाशरैः । कुटजाद्वामूस्ताकाशो उवरातीसारसूलनुव ॥ २० ॥

विश्वबालक के गुही, सुगन्धवाला, चिरैता, गुरुचि, धनिया, सौंठि, कोरया की छाल, नागरमोथा और पुनः गुरुचि इन द्रव्यों को लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर सेवन करने से ज्वरातिसार और शूल का नाश होता है ॥ २० ॥

पञ्चाक्षिरवृक्षयम्बलेन्द्रुषीजात्वक्षसेव्यतिकाशुतविषविश्वैः ।

ज्वरातिसाराम्बस्वमीन्सकासाम्बस्ताशूलमयेत्क्षायः ॥ २१ ॥

एरण्डमूल की त्वचा, पुरेनपाढ़ी, नागरमोथा, बला (बरिआरा), इन्द्रजी, कोरया की छाल, खस, कुटकी, गुरुचि, सौंठि, बेल की गुही, इन द्रव्यों का विधिपूर्वक काथ बनाकर सेवन करने से जी अतीसार बनन-कास-श्वास और शूल के सहित ही वह भी नष्ट होता है ॥ २१ ॥

अरुचतिविषा मुस्ता शुण्ठी विश्वं सदादिमम् । सर्वज्वरहरः धायः सर्वातीसारनाशायः ॥

सोनापाठा, अतीस, नागरमोथा, सौंठि, बेल की गुही, अनारदाना इन द्रव्यों का काथ विधिपूर्वक बनाकर सेवन करने से सब प्रकार के ज्वर तथा अतीसार नष्ट होते हैं ॥ २२ ॥

अथ सर्वातीसारे ।

वथा शृतं भवेद्वारि तथाऽतीसारनाशनम् । अतीसारं निहन्त्येव शतभागशृतं जलम् ॥ १ ॥

सब प्रकार के अतीसार में जल योग—जल क्षिति करने पर जितना कम शेष रहे उतना ही अतीसार को नष्ट करने में समर्थ होता है अत एव जल को रकाते-पकाते शतांश-शेष कर पीने से अतीसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ दाढिमावलेहः ।

वांडमादिफलग्रस्थं चतुःप्रस्थजले पचेत् । चतुर्भागक्षायेऽस्मिन्शकंराप्रस्थमेव च ॥ १ ॥

नागरं पिपलीमूलं कणा धान्यकदीप्यकम् । जातीफलं जातिपतं मरिचं जीरकं तुगा ॥ २ ॥

विजदा निष्वपत्रं च समझा कृटशाश्मली । अरुचतिविषा पाठा लवक्षं च पृथक्पलम् ॥ ३ ॥

घृतस्य मधुनः प्रस्थं सर्वलेहं विपाचयेत् । दाढिम्बलेहकं नाम उवरातीसारनाशनम् ॥ ४ ॥

आमरकं चाऽमृशूलं मान्दाशोफलयापहम् । धातुलीनं धातुगतमसिद्ध्यां निर्मितं पुरा ॥ ५ ॥

दाढिमावलेह—अनार के फल की छाल एक प्रस्थ (एक सेर) और जल चार प्रस्थ (चार-सेर) में मिलाकर काथ करे जब चतुर्थीशा शेष रहे तब उतार-छानकर एक प्रस्थ (एक सेर) शकर मिलावे और सौंठि, पिपरामूल, पीपरि, धनिया, अजवाइन, जायफर, जावित्री, मरिच, जीरा, बंशलोचन, शुद्ध भांग, नीम की पत्ती, मजीठ, कूटशाश्मली (काला सेमल), सोनापाठा, अतीस, पुरेनपाढ़ी, लवक्षं इन सब द्रव्यों को पृथक्-पृथक् चूर्ण कर एक-एक पल (चार-चार तोला), गाय का धी एक प्रस्थ (एक सेर) मिलाकर अबलेह की विधि से पाक कर अन्त में लेह शीतल होने पर मधु एक प्रस्थ मिलाकर रख लेवे। यह ‘दाढिमावलेह’ नाम का लेह सेवन करने से ज्वरातिसार को नष्ट करता है। आमरक, आमशूल, मन्दाशिन, शोथ, क्षय, धातु में लीन

(मिश्रित) एवं धारुगत (रस-रक्तादि गत) उवर और अतीसार को नष्ट करता है। इसको पहले अधिनिकुमारों ने बनाया था ॥ १-५ ॥

अथ कुटजायवलेहः ।

भ्रासकस्यामृतायाथ द्वे पले प्रस्थमभ्यसः । धपयित्वा रसे तस्मिन्पादशेषावतारिते ॥ १ ॥
अष्टौ पलानि शक्तस्य यवाश्चूर्णीकृताश्च ते । पवरदा पाकं विदित्वा तु यथावद्वृच्छ च खादयेत् ॥
आदेस्तर्वातिसारांश्च सर्वाश्च ग्रहणीगदान् । नाशयेद्वीपयेष्वाम्नि कृष्णात्रेयस्य शासनात् ॥ २ ॥

कुटजायवलेह—कोरया की छाल और उरुचि दोनों को दो-दो पल (आठ-आठ तोले) लेकर एक प्रस्थ (एक सेर) जल में पकावे अर्थात् काथ करे। चौथाई शेष रहने पर उतार-छान कर उसमें इंद्रजौ का चूर्ण आठ पल (३२ तोला) देकर अवलेह पाक की विधि से पका करे। पाक सिद्ध हो जाने पर अग्नि के बल के अनुसार सेवन करने से सब प्रकार का अतीसार और सब प्रकार की ग्रहणी का रोग दूर होता है और अग्नि तीव्र होती है। यह कृष्ण नामक अत्रि ऋषि के पुत्र का कहा हुआ योग है ॥ १-३ ॥

अन्यच—शतं कुटजमूलस्य चूर्णं तोशार्मणे पचेत् ।

काथे पादावशेषेऽस्मैलेहं पूतं पुनः पचेत् ॥ ३ ॥

सौवर्षलयवलात्रविहसेन्द्रविष्पली । धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दृश्वा पलद्वयम् ॥ २ ॥
लिङ्गाद्वदरमाश्च तु तद्वितीयं मधुसंयुतम् । पवरापवरमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ।

दुवांरं ग्रहणीरोगं यथेष्वत्प्रवाहिकाम् ॥ ४ ॥

अन्यमत से—कोरया की जड़ कुट कर सौ पल [चार सौ तोला] लेकर एक द्वोण [१६-सेर] जल में काथ करे और चतुर्थीश शेष रहने पर उतार-छान कर पुनः लेह की विधि से पकावे। जब वह पकते-पकते लेह की माँति गाढ़ा होने लगे तब उसमें सौंचर नमक, जवादार, विडनमक, सेन्धा नमक, पीपरि, धाय के फूल, इन्द्रजौ, जीरा इन द्रव्यों का चूर्ण दो-दो पल [आठ-आठ तोला] पृथक्-पृथक् लेकर मिलाकर उतार लेवे, जब शीतल हो जावे तब एक बेर के बराबर अर्थात् [६ मात्र] की मात्रा से मधु मिलाकर सेवन करने से पक अथवा आम अतीसार, अनेक वर्णी वाला तथा शूलसहित अतीसार और दुःसाध्य ग्रहणी तथा प्रवाहिका रोग को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

अन्यच—कुटजस्य पलं ग्राह्णमष्टभागजले श्रुतम् ।

सधैव विपचेद भूयो दाढिमोदकसंयुतम् ॥ ५ ॥

कुटजस्याथतुष्योऽन्न वाडिमस्य रसो मतः । यावच्च इसिकाभासं शतं तसुपकश्येत् ॥ २ ॥
तस्याधिकं तक्रेण पिदेद्वाकातिसारवाचन् । अवश्यं मरणीयोऽपि न मृत्योर्धर्ति गोचरम् ॥६॥

और भी बूसरी विधि—कोरया की छाल आठ पल [३२ तोल] लेकर अठगुने जल में काथ करे इसी प्रकार अनार के फल की छाल आठ पल [३२ तोल] लेकर अठगुने जल में काथ पृथक् करे और दोनों चतुर्थीश शेष रहने पर उतार-छान कर एकत्र कर अवलेह पाक की विधि से पकावे जब अवलेह के समान गाढ़ा हो जावे तब उतार कर रख लेवे इसको आधा कई [आधा तोला] की मात्रा से तक [मट्टा] के साथ पीने से रक्तातिसार का रोगी यदि अवश्य मर जाने वाला हो तो भी वह नहीं मरे अर्थात् इसके सेवन से असाध्य रक्तातिसार का रोगी भी स्वस्थ हो जाता है ऐसा देखा गया है ॥ १-३ ॥

अथ कुटजाष्टकम् ।

पवरवादौ कुटजात्तुलं ललघटेऽष्टाशं पुनः पालिकैः
पाठाशालमिलधातकीघनविषालज्ञालुविषवैः सह ।

तश्चिह्नारकुटजाष्टकं त्वजगवां द्वीरेण मण्डानुपोऽ-
तीसारं प्राहणीमध्याद्वरमधिक्षित्वाद्वाशो ज्येष् ॥ १ ॥

कुटजाष्टक—कोरया की छाल हरी एक तुला प्रमाण [चार सौ तोला वा सौ पल] से लेकर उसमें एक द्वोण [१६ सेर] जल देकर काथ करे जब आठवां भाग शेष रहे तब उसे उतार-छान कर पुनः अवलेह की विधि से पाक करे जब वह गाढ़ा होने लगे तब उसमें पुरशनपादी, सेमर की मूसली, धाय के फूल, नागरमोया, अतीस, लाजवनती [लजाल, वा लजौनी बूटी], बेल का गुदा इन द्रव्यों का चूर्ण पृथक् २ एक-एक पल [चार-तोला] मिला कर रख लेवे। यह 'कुटजाष्टक' योग अथवा लेह है इसको बकरी के दूध के साथ सेवन करे अथवा इसे पीकर बनाया हुआ माहृ [मण्ड] पीवे तो अतीसार, ग्रहणी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त और रक्ताश्च नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ कपित्थाष्टकम् ।

यवानीपिष्पकीमूलचातुर्जातकनागरैः । मरीचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्च्छैः समैः ॥ १ ॥
मूलाश्वलधातकीकृष्णादिविषद्वाद्विमहीन्यकैः । त्रिगुणैः वष्टगुणसितैः कपित्थाष्टगुणीकृतैः ॥२॥
चूर्णोऽतीसारग्रहणीचयगुरुस्यगलामयान् । कासधातारुचिं हिङ्कां कपित्थाष्टमिदं ज्येष् ॥ ३ ॥

कपित्थाष्टक—अजवाइन, पिपरामूल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, सौंठि, मरिच, चित्त की जड़, सुगन्धवाला, जीरा, धनिया, सोचरनमक; ये सब द्रव्य समान अर्थात् एक-एक पल (४-४ तोल) लेकर चूर्ण कर लेवे और छक्षाम्ल (कोकम), धाय के फूल, पीपरि, बेल का गुदा, अनारदाना, अजवाइन इन सब द्रव्यों का चूर्ण त्रिगुण अर्थात् तीन-तीन पल (१२-१२ तोल), शकर छ गुना अर्थात् छ पल (२४ तोल) तथा कैथ के फल का चूर्ण अठगुना अर्थात् आठ पल (३२ तोल) लेकर सबको एकत्र मिला कर उचित प्रमाण से सेवन करने से अतीसार, ग्रहणी, क्षय, गुरम, गले के रोग, कास, श्वास, अरुचि, हिङ्का आदि रोग नष्ट होते हैं इस योग को 'कपित्थाष्टक' कहते हैं ॥ १-३ ॥

अथ दाढिमाष्टकम् ।

कर्णेभिता तुगाजीरी चातुर्जातं तु कार्चिकम् । यवानीधान्यकाजाजीप्रनिध्योचं पलांशकम् ॥
पकानि दाढिमस्यादी सिद्धायाश्चैकतः कुटम् । गुणैः कपित्थाष्टकच्छूर्णोऽपि दाढिमाष्टकः ॥२॥

दाढिमाष्टक—वंशलोचन, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेसर प्रत्येक एक-एक कर्ण, अजवाइन, धनियों जीरा, पिपरामूल, सौंठि, पीपरि, मरिच, प्रत्येक द्रव्य एक-एक पल (चार-चार तोल), अनारदाना आठ पल (३२ तोल) सब द्रव्यों को चूर्ण कर शकर आठ पल (३२ तोल) मिलाकर रख लेवे, इसे 'दाढिमाष्टक' कहते हैं। यह चूर्ण भी कपित्थाष्टक के समान गुणकारक होने से दिया जाता है ॥ १-२ ॥

अथ दाढिमपुटपाकौ ।

पुटपाकेन विपचेद्वृपकं दाढिमीफलम् । तद्रसो मधुसंयुक्तः सदीतीसारवाशनः ॥ १ ॥

दाढिम पुटपाक—भलीमांति पेड़ में पके हुए अनार के फल को पुटपाक की विधि से पका कर रस निकाल कर उसमें मधु मिला कर सेवन करने से सब प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं। जारीफलं सर्पफेनं टर्हु गरधकजीरके । पृतानि समभागानि बालदाढिमीजीजकैः ॥ २ ॥
पेवयेसेन कलकेन पूरयेदाढिमीफलम् । अङ्गारे तत्त्वं गोधूमचूर्णेभासाऽपेवद् इडम् ।
अतीसारे स्तम्भनं स्थापयं द्विपनपात्रनम् ॥ ३ ॥

जायफर, अकीम, शुद्ध टक्कण, शुद्ध गन्धक, जीरा इन सब द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर छोटे अनार के बीज (कच्चे अनार के बीज) को निकाल कर उसके साथ पीस कर कल्क करे और जिस अनार में से बीज निकाला गया हो उसीके छिलके में उस कल्क को भर कर उसके ऊपर गेहूं के आटे को गोला कर मोटा लेप कर बिना धूम के आग के अंगार पर पुटपाक की विधि से पाक कर रस निकाल कर सेवन करने से अतीसार का स्तम्भन होता है और अत्यन्त दीपन तथा पाचन होता है ॥ २-३ ॥

भृत्यात्मादि चूर्णम्—भृत्यात्मानो हिस्पण्डानां हृषे पक्षे भर्जिते चिपेत् ।

शुष्ठ्या पलं तु चेतक्याः पलाधं शुमनाफलम् ॥ १ ॥

कर्षं मेथीवेज्ञजीरसंषयपान् कोलमात्रतः । तसो याबान्धयं पलं पिष्पलीशमटोषणम् ॥ २ ॥

विद्वसेन्ध्यवजीरं च किमाणीसंज्ञकं तथा । कर्षं प्रमाणं विज्ञेयं वैश्यविद्याविज्ञारदेः ॥ ३ ॥

सर्वमेकत्र संचूर्ण्य यथासामयं तु भज्येत् । दध्ना सह तथा खादेत्सर्वतीसारनाशनम् ॥ ४ ॥

भृत्यात्मादि चूर्ण—शुद्ध मिलावौं को लेकर दो-दो टुकड़े कर भूज कर दो पल [आठ तो०] लेवे, सोंठि एक पल (चार तो०), चेतकी हरें आधा पल (२ तो०), जायफर एक कर्षं सबका चूर्ण कर उसमें मैथी, बाभीरंग, जीरा, सरसों सब पृथक-पृथक् एक-एक कोल [आधा २ तो०] अजवाइन आधापल [२ तो०], पीपरि, हींग, मरिच, सेन्धानमक कालाजीरा और किमाणी नाम की अजवाइन प्रत्येक एक-एक कर्ष [१ तो०] लेकर सब का उत्तम चूर्ण बना कर यथायोग्य अंग्रेजी-बलानुसार दही के साथ सेवन करने से सब प्रकार के अतीसार को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

अथ रसाः ।

शङ्कोदररसः—कण्ठुभस्म चतुर्कर्षं कर्षेकमहिकेनकम् ।

जातीफलं टक्कणं च पृथकर्षं विनिविषेत् ॥ १ ॥

अतिसूचमं चिभर्धाथ नवनीतेन गुआकम् । रसः शङ्कोदरो नाम सर्वतीसारनाशनः ॥ २ ॥

रस-प्रकरण—प्रथम शङ्कोदर रस-शुद्ध शङ्क का भस्म चार कर्ष [४ तो०], अकीम एक कर्ष [१ तो०], जायफर, शुद्ध टक्कण, प्रत्येक का चूर्ण एक-एक कर्ष [एक-एक तो०] सब ओषधियों को भलीभाँति मर्दन कर एक रक्ती की मात्रा से नवनीत [मखन] के साथ [अनुपान से] सेवन करने से सब प्रकार के अतीसार को नष्ट करता है । इस रस का नाम ‘शङ्कोदर रस’ है ॥ १-२ ॥

लघुलाई चूर्णम्—सूतं गन्धं त्रिकुंकं दीप्त्यकं जीरकद्वयम् ।

सौवर्चलं सैन्धवं च रामठं विडमेव च ॥ १ ॥

शङ्काद्वयस्य चूर्णं तु चूर्णतुश्यं प्रदापयेत् । संग्रहं शूलमानाहं हन्याशानातिसारजित् ॥ २ ॥

लघुलाई चूर्ण—शुद्ध पारद अथवा हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गन्धक तथा सोंठि, पीपरि, मरिच, अजवाइन दोनों जीरा [जीरा और कृष्ण जीरा], सोचरनमक, सेन्धा नमक, शुद्ध हींग, विडनमक, इन सब द्रव्यों के चूर्ण को समान भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की उत्तम कल्जी बनाकर उसमें सब चूर्ण मिला कर जितना हो उसके समान भाग इन्द्रजौ का चूर्ण भी मिला कर मर्दनकर उचित मात्रा से सेवन करने से यह चूर्ण ग्राही [मल को गढ़ा करनेवाला], शूल, आनाह, आदि को नष्ट करता है तथा अतीसार का नाशक है ॥ १-२ ॥

सृतसज्जीवनो रसः ।

इसगन्धौ विषं सूतात्पादभागं समं च तत् । गशनं भावयेदेभी रसैः सर्वं विचूर्णयेत् ॥ ३ ॥

सर्पाद्धातकीस्वर्णविषाविश्वजयाम्बुदम् । यवानीविषवधान्याकजीरपाठाकणाशिदाः ॥ २ ॥

कुठज्जत्वलपित्तं च दाढिमं सकलिङ्गकम् । हरयेषां गोलकं कूरवा बालुकायन्त्रगं पचेत् ॥ ३ ॥

सृतसज्जीवनो नाम रसः स्याद्वय वशलकः । पटपकारमतीसारं हन्ति वै चानुशीलितः ॥ ४ ॥

विषावधातकीदाढिवश्वजयाम्बुदकणाशिदाः । कुट्जो धान्यकं विषं पाठेन्द्रवशालमली ॥

विश्वाभया समं चैषां चूर्णेन मधुना सह ॥ ५ ॥

सृतसज्जीवन रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक एक-एक भाग लेकर दोनों की विधिपूर्वक कल्जी कर इसमें शुद्ध विष तथा अन्नक भस्म प्रत्येक पारद के चतुर्थांश [चौथाई भाग] मिलाकर भलीभाँति मर्दन करे इसके पश्चात् सर्पाद्धी, धाय के फूल, घूरू, अतीस, सोंठि, शुद्ध भांग, नागरमोथा, अजवाइन, बेल की गुही, धनिया, जीरा, पुरेनपादी, पीपरि, हर्वे, कोरया की छाल, कैथ का फल, अनारदाना और इन्द्रजौ इन सब द्रव्यों के पृथक-पृथक् रस अथवा काथ में पारा आदि उपर्युक्त ओषधियों को भवित कर गोलाकार बनाकर बालुकायन्त्र की विधि से पाक करे पाक शीतल होने पर इसमें से एक वल ३ रक्ती [आ० मा० १ रक्ती] की मात्रा से सेवन करने से छब्बी प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं । इसे ‘सृतसज्जीवन-रस’ कहते हैं तथा सोंठि, नागरमोथा, धाय के फूल, देवदारु, अजवाइन, सुगन्धवाला, पीपरि, वच, कोरया की छाल, धनिया, बेल की गुही, पुरेनपादी, इन्द्रजौ, सेमल की मुसली, सोंठ और हर्वे इन द्रव्यों को समाद भाग लेकर चूर्ण कर उपर्युक्त सृतसज्जीवन रस के साथ मिलाकर मधु से चाटने से छब्बी प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

चन्द्रप्रभावटी—

सूतं सूतं सूतं स्वर्णं सूतं चांच्रं समं समम् । तुश्रं च खादिरं सारं तथा मोचरसं चिपेत् ॥ १ ॥

द्रव्यैः शालमलिमूलोत्थैमर्दयेत्प्रहरद्वयम् । चणमांग्रां वर्दी कृत्वा खादेजीरकसंयुताम् ।

त्रिवोषोधमतीसारं सज्जरं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ २ ॥

चन्द्रप्रभावटी—रससिन्दूर, स्वर्ण भस्म, अन्नक भस्म प्रत्येक वरावर-वरावर लेकर खैर और मोचरस का चूर्ण कर एक-एक भाग इसी में मिलाकर सेमर के मुसली के रस से दो पहर तक मर्दन कर चना के प्रमाण की वटी बनाकर जीरा के चूर्ण के साथ सेवन करने से विदोष से उत्पन्न अतीसार जिसमें ज्वर भी हो उसे भी निश्चित ही यह ‘चन्द्रप्रभावटी’ नष्ट करती है ॥ १-२ ॥

अतीसारे पथ्यानि—

लघुनं वमनं निद्रा पुराणाः शालिषट्किः । विलेपी लाजमण्डश मसरीतुवरीरसाः ॥ १ ॥

शशेणालाशहरिणकविज्ञलभवा रसाः । सर्वे ज्वुदक्षाः शक्ति छिपिडशो मधुरालिका ॥ २ ॥

तैलं छागधृतं चीरं दधि तक्रं गवामणि । दधिजं या पयोजं वा नवनीतं गवाजयोः ॥ ३ ॥

नवं रम्भापुंषपक्लं छीदं ज्वलपलानि च । भध्यं महार्दकं विश्वं शालुकं च विक्क्रतम् ॥ ४ ॥

कपित्थं वकुलं विषं तिन्दुकं दाढिमद्वयम् । शालुकं कण्टकाढ्या च चाङ्गेरी विजयाऽरुणा ॥

जातीफलमफेनं च जीरकं गिरिमस्त्रिका । कुस्तुरुवूर महानिम्बः कथायः सकलो रसः ॥ ६ ॥

अक्षयानानि सर्वाणि दीपनानि लघुनि च ।

नामेष्वर्यंज्वलतोऽधरस्ताष्वस्त्रेणार्घ्यंनुवदहेत् । तथा वंशास्थिमूलेऽपि पथ्यवर्गोऽतिसारिणाम् ॥

अतीसार के रोग में पथ्य—अतीसार के रोग में उपवास करना, वमन करना, निद्रा सेवन करना (सोना), हितकर (पथ्य) है । पुराणे शालिषट्क और साठीयान का वाल, विलेपी, लाजमण्ड, मसूर तथा अरहर के दाल का जूस, खरहा, एणमृग, लावा, हरिण, कपिजल (गौर-तित्तिर) आदि जीवों के मांस का रस, सब प्रकार की छोटी मछलियां, सिंगी, डिपिडश,

मधुरालिका (क्षुद्र मत्स्य विशेष), तैल, बकरी तथा गाय के दूध, घृत, दही, तक (मट्टा) तथा गौ अथवा बकरी के दही से निकाला हुआ मक्खन, केले के कच्चे फल अथवा फूल की तरकारी, मधु, जासुन का फल, भव्य (लिसोडा), महाद्रिक (जंगली अदक), सौंठ, इवेतशालूक (भस्तीड़ी), विकक्षत (बहंची), कैथ का फल, मौलेसरी का फल, बैल का फल, तिन्दुक (तेन्दु), दोनों प्रकार के (मधुर-अम्ल) अनार, काला शालूक, कटहल का फल, चाङ्गेरी (अमलोनी), भांग, मंजीठ, ज्यायफर, अफीम, जीरा, कोराया की छाल, धनियां, बकायन, सब प्रकार के कषाय रस, सब प्रकार के दीपन तथा लघु अन्न आदि वस्तुयें अतीसार रोग में पथ्य हैं तथा नाभि के दो अकुल नीचे लोहे के चन्द्राकार शख को अग्नि में तपाकर उससे दाग देवे और पीठ के मूलस्थान की अस्थि अर्थात् गुदा के समीप जो अस्थि पीठ के मध्य भाग में रहती है उसको भी दाग देना वे अतीसार रोगवाले के लिये हितकर है ॥ १-७ ॥

अतिसारेऽपथ्यानि—

स्वेदोऽनन्द रथिरमोऽणमग्नुपानं स्नानं व्यवायमपि जागरधूमनस्यम् ।
अभ्यञ्जनं स्कलवेगविधारणं च रूपाण्यसाम्यशयनं च विहृदमप्तम् ॥ १ ॥
गोधूममाषयवास्तुककाकमाची निष्पावकं च मधुशिग्रसालपूयम् ।
कूर्माण्डतुग्निवदरं गुरु चाण्डपानं तावृलमिन्दुगुरुगमणमुपोदकी च ॥ २ ॥
द्राढालवेतसपफलं लघुनं च धात्री हुष्टारु मस्तु गृहवारि च नारिकेलम् ।
सस्नेहनं भृगमदाऽख्यलपत्रवशाकं चीरं सराणि सकलानि पुनर्नवा च ॥
उर्वारुकं लवणगम्लमपि प्रकोपिवर्गोऽतिसारगदीदितमानवेषु ॥ ३ ॥

इनानावगाहमस्यगुरुस्त्रिनव्याच्चभोजनम् । व्यायाममनिसन्तापमतीसारी विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

अतीसार के रोग में अपथ्य — अतीसार के रोग में स्वेदन विधि (पसीना निकालना), अजन लगाना, रक्तमोक्षण करना, जल पीना, स्नान करना, मैथुन करना, जागना, धूमपान करना, नस्य लेना, तैलादि का मर्दन करना, सब प्रकार के वेग (मल-मूत्रादिक वेग) को धारण करना, रुक्ष तथा असाम्य पदार्थ का भोजन करना, शयन करना, विरोधी (क्षीर-मत्स्यादि) अन्न सेवन करना, गेहूं, उरिद, जौ, बश्या, मकोय, सेम, लाल संहिजन, आम, कसैली, रेवेत कूर्माण्ड, तुम्बी (लोकी), वैर का फल, गुरु अन्न अथवा पेय पदार्थ, पान, ऊँख का गुड़, मध्य, पोईका साग, द्राक्षा (मुनका), अम्लवेत का फल, लहसुन, ऊँवरा, दूषित जल, दही का पानी, काजी, नारियल, स्नेहनकर्म, करतूरी, सब प्रकार के पत्र वाले साग, दूध, सब प्रकार के सारक पदार्थ, पुनर्नवा, खीरा, लवण तथा अम्ल पदार्थ ये सब अतीसार के रोगी त्याग देवे अर्थात् उसके लिये अपथ्य है । और स्नान करना, अवगाहन (जलसेवा), तैलादि मर्दन, गुरु तथा स्निग्ध अन्न का भोजन, व्यायाम और अस्तिसेवन (आग तापना) ये सब कर्म अतीसार का रोगी त्याग देवे अर्थात् ये सभी उपर्युक्त कार्य अतिसारी के लिये अहितकर हैं ॥ १-४ ॥

अथ ग्रहणीनिदानम् ।

अतीसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः । भूयः सन्दूषितो वह्निमेहणीमिदूषयेत् ॥ ५ ॥

ग्रहणीप्रकरण—ग्रहणी का निदान-सम्प्राप्ति-अतीसार के निवृत्त हो जाने पर भी अथवा नहीं निवृत्त होने पर भी अतीसार के रोगी की अग्नि मन्द रहने पर अहित पदार्थों के सेवन करने से जठराद्धि पुनः दूषित होकर ग्रहणी को कर देता है ॥ १ ॥

ग्रहण्या बलमप्तिर्हि स चापि ग्रहणीबलः । तस्मारसन्दूषिते वह्नौ ग्रहणी सम्प्रदूषयति ॥ २ ॥

ग्रहणी का बल अग्नि ही है और अग्नि ग्रहणी के बल पर (आश्रय पर) स्थित है इसलिये अग्नि के दूषित होने से ग्रहणी दूषित हो जाती है ॥ २ ॥

नामेहृष्टविनवलेनोपस्तवधोपवृहिता । वह्नी कला पित्तधरा या पूर्व समुद्राहता ॥ ३ ॥

एकामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता । अपवर्ण जारयस्यां पवर्ण सूजति पार्थितः ॥ ४ ॥

ग्रहणी की परिभाषा—जमि के ऊपर अग्नि (जठराद्धि) के बल पर स्थित तथा परिवृद्ध छाँटी पित्त को धारण करने वाली जो कला है उसे 'ग्रहणी' कहते हैं और वह पित्तधरा कला पकाशय और आमाशय के मध्य में स्थित अपवर्ण अन्न को धारण (ग्रहण) करती है तथा पक अन्न को पार्श्वों से निकाल देती है इसी को 'ग्रहणी' कहते हैं ॥ ३-४ ॥

एकैकशः सर्वशः दोषेररथ्यमुच्छ्रितः । सा हुष्टा बहुशो भुक्तमामभेद विसुच्छति ॥ ५ ॥

पद्मचं वा सरसं ऐति सुहुर्वदं सुहुर्वदं वस । ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वदविदो जनाः ॥ ६ ॥

संख्यासम्प्राप्तिपूर्वक ग्रहणी का सामान्य लक्षण—वात-पित्तादिक दोषों के पृथक्-पृथक् अथवा घकत्र (विद्रोष) कुपित होने के कारण वह ग्रहणी दूषित होकर अधिकतर अर्थात् प्रायः भोजन किये हुए अन्न को अपक ही [ग्रहण नहीं कर अर्थात्-जैसा कि उसका कार्य है] त्याग देती है अथवा कभी पका हुआ भी पीड़ा के सहित, दोषेन्द्र युक्त ऐसा नहीं करके कभी बैंधा हुआ [गढ़ा] और कभी द्रव मल को बराबर बाहर करती है । उस रोग को आयुर्वेद के विद्वान् 'ग्रहणी रोग' कहते हैं ॥ ५-६ ॥

पूर्वरूपं सु तस्येदं तुष्णाऽस्तलस्य वलन्धयः । विदाहोऽस्त्रय पाकश चिरात्कायस्य गौरवम् ॥

ग्रहणी का पूर्वरूप-मनुष्य को जब तुष्णा, आलस्य, बल की हानि, दाह का होना, बहुत विलम्ब से भोजन किये हुए अन्न का पाक होना और शरीर का भारी होना आदि लक्षण होते हैं अर्थात् ये सब लक्षण हों तो जानना चाहिये कि 'ग्रहणी रोग होगा' [वह ग्रहणी का पूर्वरूप है] ॥ ७ ॥

वातिकग्रहणीलक्षणम्—

कटुतिक्कथायातिरुचसन्दुष्टभोजनः । प्रमितानशनात्यर्थवेगनिग्रहमैथुनः ॥ ८ ॥

मारुतः कुपितो वह्नि संक्षाय कुहते गशन् । तस्यान्वं पश्यते हुः यं शुष्कपाकं खराङ्कता ॥ ९ ॥

कण्ठास्यशोषः चुत्त्रणा तिमिरं कर्णयोः स्वनः । पार्श्वोऽवृद्धुण्णप्रीवास्गभीचणं विसूचिका ॥

हृष्टीदा काश्यदीर्बस्यं वैस्यं परिकतिका । गृद्धिः सर्वसान्नं च मनसः सदनं तथा ॥ १० ॥

जीर्णं जीर्णति चाऽस्तलस्यानं सुको स्वास्यमुपैति च । सवात्तुगुरुमहृद्वेगपूर्वीहाशङ्को च मानवः ॥

चिराद् हुःखं ग्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् । पुनः पुनः सुजेष्वर्षः कासभासार्दितोऽनिलाद् ॥

निदानपूर्वक वातज ग्रहणी के लक्षण—अत्यन्त कटु, तिक्त, कषाय, रुक्ष तथा दूषित पदार्थों के भोजन करने से, आहार से कम अथवा अधिक भोजन करने से, वेगों (मल-मूत्रादि) के रोकने से तथा अधिक मैथुन करने से वायु कुपित होकर अग्नि [जठराद्धि] को अचलादित कर [ढांक कर] रोग उत्पन्न कर देती है उसे वात से उत्पन्न ग्रहणी कहते हैं, इस रोग वाले मनुष्य का अन्न बड़े दुख के साथ पचता है, पाक शुष्क होता है [मल सूखा निकलता है], और अन्न रुक्ष हो जाता है, कण्ठ और मुख सूखने लगता है, क्षुधा और तुषा लगती है, नेत्रों में अन्धकार होता है, कान में शब्द होते हैं, पार्श्वदेश, वक्षःस्थल, वक्षण स्थान [सनिक्षिप्तसन्धि] और गले में पीड़ा होती है और मीषण विसूचिका का रोग होता है [विसूचिका रोग का लक्षण आगे लिखा गया है], हृदय में पीड़ा होती है, कृशता, शरीर की दुर्बलता, मुख का विरस होना, गुदा में कैची से काटने सी पीड़ा होना, सब प्रकार के रसों की भोजन की इच्छा होना, मन में ग्लानि भालूम होना, अन्न के जीर्ण हो चुकने पर आधमान होना और भोजन कर लेने पर आधमान

आदि का नष्ट हो जाना और उस रोगी को वात गुल्म, हृद्रोग, प्लीहा आदि रोग होने की शक्ति होना आदि होता है तथा बहुत विलम्ब से दुःख के साथ कभी द्रव और कभी शुष्क, अर्थ अल्प, आमसहित, शब्दसहित तथा फेनयुक्त मल का होना तथा बार बार मल का होना आदि लक्षण होता है और रोगी कास-शास से पीड़ित होता है । ये सब लक्षण वात के कुपित होने के कारण से होने वाली ग्रहणी के हैं ॥ ८-१६ ॥

पैतिकग्रहणीलक्षणम्—

कट्टजीर्णविदाद्यम्लवारायैः पित्तमुखण्यम् । आल्कावयद्वस्थनलं जलं तस्मिवानलम् ॥१४॥

निदानपूर्वक पित्तज ग्रहणी के लक्षण—अत्यन्त कठु पदार्थ के सेवन करने से, अजीर्ण होने से, विदाही, अम्ल तथा क्षार आदि से युक्त पदार्थों के अधिक सेवन करने से कुपित हुआ (बढ़ा हुआ) पित्त अग्नि को नष्ट करता है जिस प्रकार उष्ण हुआ जल अग्नि को बुझा देता है । उष्ण हुआ जल का उदाहरण यहाँ इसलिये है कि—यह शक्ति वहाँ उत्पन्न होती है कि पित्त अग्निवर्धक है उसके बढ़ने से अग्नि कैसे नष्ट होगी तो वहाँ ऐसा उदाहरण दिया गया कि जल उष्ण होने से भी अग्नि को बुझा देता है उसी प्रकार कुपित पित्त भी जठर की अग्नि को नष्ट कर देता है इससे पित्तज ग्रहणी का रोग होता है ॥ १४ ॥

शोऽजीर्ण जीलपीताभं पीताभः सार्थते द्रवम् । पृथग्लोदारहृकण्ठद्वाहाद्वितुदर्दितः ॥१५॥

पित्तज के रोगी को अजीर्ण (अपक), नीले और पीत वर्ण का द्रव अर्थात् पतला मल अधिक निकलता है, शरीर का वर्ण पीला हो जाता है दुर्बन्धयुक्त और अम्ल रस के स्वाद का डकार आता है, हृदय और कण्ठ में दाह होता है, अरुचि होती है और रोगी तृष्णा से दुःखी रहता है अर्थात् ये लक्षण पित्तज ग्रहणी के हैं ॥ १५ ॥

कफजग्रहणीलक्षणम्—

गुरुतिदिनव्यव्यायामोजनाद्यतिभोजनात् । भुक्तमारस्य च स्वप्नाद्वस्थग्रिं कुपितः कफः ॥

निदानपूर्वक कफज ग्रहणी के लक्षण—अत्यन्त गुरु, स्त्रिघ (वृत्तादियुक्त), शीतल आदि पदार्थों के सेवन करने से, अति भोजन करने से और भोजन करने पर शीत्र ही शयन करने से कुपित हुआ कफ अग्नि को नष्ट कर देता है, इससे कफज ग्रहणी होती है ॥ १६ ॥

तस्याम्बन्धं पञ्चते दुःखं हृष्णासद्युद्योरोचकाः आस्थोपलेपमाधुर्यकासष्टीवनपीनसाः ॥ १७ ॥

हृदयं भन्यते स्थायमुद्दर्दं स्तिमितं गुरु । दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं द्वीपवहर्षणम् ॥ १८ ॥

भित्ताभरलेप्तसंस्थागुरुवर्चःप्रवर्तनम् । अकृष्णस्थापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके ॥ १९ ॥

कफज ग्रहणी के रोगी को बहुत दुःख के साथ अन्य पचता है, हृष्णास होता है, वमन और अरुचि होती है, सुंह में कफ लिपटा सा रहता है और स्वाद मधुर रहता है, कास, शुक-शुकी और धीनस का रोग हो जाता है, हृदय फैला हुआ, उदर भित्ता हुआ सा तथा गुरु मालम होता है, द्रूपित तथा मधुर रस युक्त डकार आता है, अन्न में ग्लानि मालम होना तथा मेथुन की इच्छा न होना, कुटा हुआ अर्थात् पृथक् पृथक् पदार्थ में दिखाई देना और आम तथा कफ सहित गुरु मल का अधिक निकलना आदि होता है, शरीर कृश नहीं होने पर भी निवलता होना और आलस्य होना आदि होता है अर्थात् ये सब लक्षण कफज ग्रहणी के हैं ॥ १७-१९ ॥

साक्रियातिकग्रहणीलक्षणम्—

पृथग्लादिनिर्विद्युतेतुलिङ्गसमायमे । विशेषं निर्विशेषदेवं तेषां वक्ष्यामि कल्पणम् ॥ २० ॥

साक्रियातिक ग्रहणी के लक्षण—वातादिक दोषों के ग्रहणी के पृथक् पृथक् जो निदान और लक्षण कहे गये हैं उन सब के एकत्र हुए लक्षणादिको साक्रियातिक (विदोषज) ग्रहणी कहते हैं ॥ २० ॥

आमग्रहणी—अन्नकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं भवेत् ।

द्रवं धनं सितं स्त्रिग्नं सकटीवेदनं शक्तत् ॥ २१ ॥

आमं बहु सपैचिछुर्वं सशादं मन्दकूजनम् । पश्चान्मासाहशाहाद्वा निष्यं वाऽपि प्रमुच्चति ॥
दिवा प्रकोपमायाति शाश्री शान्तिं वजेच्च सा । दुर्विज्ञेया दुनिवारा चिरकालानुवन्धनी ॥

सा भवेदामवातेन ग्रहणाद् ग्रहणी मता ।

आमग्रहणी के लक्षण—जिस ग्रहणी के रोग में आंतों में युड्युडाहट, आलस्य, दुर्वलता, अङ्ग में ग्लानि, कभी द्रव कभी गाढ़ा इवेतवर्ण का और रिनग्न (पिचिछल) मल निकले और कटि भाग में पीड़ा हो तथा आमयुक्त अधिक मात्रा में पिचिछल और शब्द करता हुआ मल निकले, आंत में मन्द-मन्द युड्युडाहट हो इस प्रकार का मल एक पक्ष (पन्द्रह दिन), एक मास अथवा दस दिन पर या नित्य ही निकले, दिन में रोग प्रकोप अधिक हो अर्थात् दिन में मल अधिक हो और रात्रि में शान्ति रहे इस प्रकार की ग्रहणी से रोग का ज्ञान होना कठिन होता है और यह ग्रहणी बड़ी कठिनाई से नष्ट होती है और बहुत समय तक रहने वाली होती है। यह आमवात के कारण होती है और मलादिक को ग्रहण कर निकालती है इससे इसे ‘ग्रहणी’ कहते हैं अथवा अकादिक के ग्रहण करने वाले अन्त्र (ग्रहणी) से दूषित होने से होती है इसलिये ‘ग्रहणी’ कहते हैं । (ये लक्षण आम ग्रहणी के हैं) ॥ २१-२३ ॥

असाध्यलक्षणम्—संसद्वा द्यावध्यो यस्य प्रतिलोमानुलोभगाः ॥ २४ ॥

आपक्षग्रहणीरोगः सोऽर्धमासं न जीवति ।

असाध्य ग्रहणी के लक्षण—जिस रोगी को प्रतिलोम (वमनादि) और अनुलोम (मल निस्तरणादि) दोनों से भिन्नत व्याधि एक ही वार हो और साथ ही ग्रहणी रोग भी हो वह अर्व मास (पन्द्रह दिन) के बाद नहीं जीवित रहता है अर्थात् असाध्य है ॥ २४-२४ ॥

वटीयन्त्रग्रहणी—स्वपतः पाश्वर्योर्यस्य गलउडजलघटधवनिः ॥ २५ ॥

लक्षणम्—सं ददन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ।

घटीयन्त्रास्य ग्रहणी के लक्षण—जिस ग्रहणी के रोगी को सोने की अवस्था में दोनों पैसलियों में जल भरने के समय धड़े के सुख पर जो जल का शब्द (मुड़-मुड़) होता है इस प्रकार का शब्द हो-ऐसा लक्षण हो तो ग्रहणी को ‘घटीयन्त्रास्य ग्रहणी’ कहते हैं और यह ग्रहणी असाध्य है ॥ २५ ॥

अत्याहारस्य सङ्क्षोभाद्विवर्धाहारमूर्छितात् ॥ २६ ॥

स्थानात्प्रमुच्चते रक्षेष्वा आमभित्यभित्यते ।

अतिसारातिदिव्यानि ग्रहणामपि लक्ष्येत् ॥ २७ ॥

आम की परिभावा—अत्यन्त भोजन करने से भुवित (पीड़ित) हुआ कफ तथा आहार के विद्रव होने से मूर्छित हुआ कफ अपने स्थान से पृथक् हो कर जब आमाशय में रहता है उस पृथक् हुए कफ को (स्थानच्युत कफ को) आम कहते हैं । साध्यासाध्य विचार एवं आम-पक्व विचार, अतीसार रोग में कहे हुए साध्यासाध्य तथा आम-पक्व दिव्यानि ग्रहणी रोग में भी जानना चाहिये ॥ २६-२७ ॥

बालके ग्रहणी साध्या यूनि कुच्छा समीरिता । बृद्धे त्वसाध्या विज्ञेया मतं धन्तन्तरेरिदम्॥

धन्वन्तरिके मत से साध्यासाध्य विचार—बालक को यदि ग्रहणी का रोग हो तो वह साध्य

होता है, युवा को यदि हो तो कष्टसाध्य होता है और वृद्ध को यदि ग्रहणी का रोग हो तो वह असाध्य होता है, यदि घन्वन्तरिजी का मत है ॥ २८ ॥

अथ ग्रहणीचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

वातग्रहणी—ग्रहणीमाधितं होषमजीणवदुपाचरेत् ।

अतिसारोक्तिविभिन्ना तस्याम च विषपाचयेत् ॥ १ ॥

ग्रहणी की चिकित्सा—वातज ग्रहणी की चिकित्सा—ग्रहणी के आश्रय रहने वाले दोष का उपचार (चिकित्सा) अजीर्ण की भाँति करना चाहिये और अतीसार रोग में कही हुई आम पाचन की क्रिया की विधि से ग्रहणी के आम का पाचन करना चाहिये ॥ १ ॥

पेयादि पञ्चलब्धं पञ्चकोलादिर्भूतम् । दीपनानि च तक्तं च ग्रहण्यां सम्प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

पांचो नमक (सेन्धा, विड, कच, सोचर और सामुद्र लवण) और पंचकोल [पीपरि, पिपरा-मूल, चाव, चिक्रकमूल और सौंठि] आदि भित्रित की पेया बना कर देनी चाहिये, अग्नि को तीव्र करने वाले पदार्थ तथा तक [मट्ठा] का प्रयोग [सेवन] ग्रहणी के रोग में करना चाहिये ॥ २ ॥

ज्ञात्वा तु परिपक्वं च वातजं ग्रहणीगदम् । दीपनैर्भवत्त्वैः पक्षैः सर्पिभिः समुपाचयेत् ॥ ३ ॥

वात से उत्पन्न ग्रहणी को परिपक्व हुआ जानने पर दीपन ओषधियों से विशिष्टक पकाये हुए घृत आदि का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

धान्यशिख्यवलाद्युष्टीशालिपण्ठश्वतं जलम् । स्थाद्वात्प्रहणीदोषे सानादेष सपरिग्रहे ॥ ४ ॥

धनियाँ, बेल का गुदा, बला, सौंठि, शालिपणी इन द्रव्यों से पकाया जल [काथ] आनाह एवं उपद्रव सहित वातज ग्रहणी में देना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमूलार्थं घृतम्—

पञ्चमूलयभ्यास्योषपिष्ठलीमूलसैन्धव्यैः । रासनाद्वाराद्वयाजाजीविङ्क्षेपादिभिर्वृतम् ॥ १ ॥

पक्षेन मातुलक्ष्यं स्वरसेनाऽद्रक्षस्य च । शुष्कमूलकोलाद्युष्टुकिकादादिस्य च ॥ २ ॥

तक्मस्तुसुराभद्रसौरीरकतुषोदकेः । कात्तिकेन च तथकेवा पीतमनिकरं परम् ॥

शुलगुणमोदरानाहकार्यानिलगदापदम् ॥ ३ ॥

पञ्चमूलार्थ घृत—पञ्चमूल (शालिपणी, पृष्ठिपणी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरु), इररा, सौंठि, पीपरि, मरिच, पिपरामूल, सेन्धा नमक, रासना, सज्जीखार, जवाखार, जीरा बामीरंग, कच्चूर इन सब द्रव्यों का कल्क बना कल्क से चौहुना भूच्छित गोघृत और घृत के समान विजौरे, नीबू का रस, आदी का रस, सूखी मूली का रस वा काथ, दैर, सुगन्धबाल, चुक (एक प्रकार का बनाया अम्ल), अनार इन सब का रस वा काथ, तक (मट्ठा) दहों का पानी, मध, मांड, सौंठीर, तुषोदक तथा कॉर्जी आदि को मिलाकर घृत की विधि से पका कर सेवन करने से अत्यन्त अग्निकारक, शूल, गुलम, उदर रोग, आनाह, कृशता और वायु के रोग का नाशक है, इसे 'पञ्चमूलार्थ घृत' कहते हैं ॥ ३-४ ॥

शुण्ठीघृतम्—

घृतं नागरकल्केन सिद्धं वातानुलोभनम् । ग्रहणीपाद्वृरोगज्ञं प्लीहकासउवरापहम् ॥ ५ ॥

शुण्ठी घृत—सौंठि के कल्क से चतुर्णुण गोघृत सूच्छित किया हुआ पाकार्थं चतुर्णुण जल देकर घृत की विधि से पका कर सेवन करने से वात का अनुलोभन होता है, ग्रहणी, पाण्डु रोग, प्लीहा, कास और ज्वर को नष्ट करता है इसे 'शुण्ठीघृत' कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ पित्तग्रहणी ।

रसाज्ञनादिचूर्णम्—

रसाज्ञनं प्रतिविषा वस्तकस्थ फलवच्चौ । नागरं धातकी चैव सच्चौद्रं तण्डुलाभ्युना ॥

ग्रहणीपित्तदोषाशोरक्षपित्तातिसारनुष ॥ १ ॥

पित्तज ग्रहणी की चिकित्सा—रसाज्ञनादि चूर्ण—रसवत, धतोस, कोरया की छाल, इन्द्रजौ, सौंठि, धाय के फूल, इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर चावल के धोअन में मधु का प्रक्षेप देकर उसके अनुपान से अथवा मधु में मिलाकर चाट कर चावल के धोअन के अनुपान से सेवन करने से पित्त के दोष से उत्पन्न ग्रहणी और अर्श जो पित्त के दोष से ही तथा रक्तपित्त और अतीसार को नष्ट करता है ॥ १ ॥

श्रीफलशालादुक्षको नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः ।

ग्रहणीगदमरयुग्रं तक्षभुजा शौलितो जयति ॥ १ ॥

कच्चे बेल के गुदटे का कल्क, सौंठि का चूर्ण और गुड़ को समान भाग लेकर तक के साथ सेवन करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ ग्रहणी का रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

नागराधचूर्णम्—नागरातिविषा सुस्तं धातकी सरसाज्ञनम् ।

वस्तकत्वकलं विलवं पाठा तिक्तकरोहिणी ॥ २ ॥

पिक्तेसमादं तच्चूर्णं सच्चौद्रं तण्डुलाभ्युना । पित्तजे ग्रहणीदोषे रक्षयोपवेश्यते ॥ ३ ॥

अर्जास्ति हृद्युदे शूलं जयेष्वयै प्रवाहिकाम् । नागराधचूर्णं चूर्णं कृष्णाग्रेयेण पूजितम् ॥ ४ ॥

नागराध चूर्ण—सौंठि, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, रसवत, कोरया की छाल, इन्द्रजौ, बेल की गुदटी, पुरेशनपाढ़ी और कुटकी इन सब वस्तुओं को समान लेकर चूर्ण कर मधु तथा चावल के धोअन के अनुपान से सेवन करने से पित्त से उत्पन्न ग्रहणी, रक्तदोष, अर्श (रक्तज), हृदय तथा शुदा की पीड़ा और प्रवाहिका रोग नष्ट होता है। इस चूर्ण का नाम 'नागराध चूर्ण' है। इसको अविं के पुत्र-कृष्ण ऋषि ने उत्तम बताया था ॥ २-४ ॥

भूनिष्वादिचूर्णम्—

भूनिष्वादकुटकार्थोषमुस्तानिन्द्रयवान्समान् । हौ चित्रकाद वस्तकत्वग्नामान्तोदश चूर्णयेत् ॥

गुरुषीताभ्युना पीतं ग्रहणीपित्तदोषनुष । कामलाउवरपाद्वृन्मेहतीव्रातिसारनुष ॥ २ ॥

हति वृन्दात् ।

चिरैता, कुटकी, सौंठि, पीपरि, मरिच, नागरमोथा, इन्द्रजौ ये सब द्रव्य समान (७ भाग एकत्र) लेकर चूर्ण कर इस में दो भाग चित्रक मूल का चूर्ण तथा सोलह भाग कोरया की छाल का चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित कर गुड़ के साथ खाकर शौलं जल पीने से पित्त के दोष से उत्पन्न ग्रहणी को नष्ट करता है, कामला, ज्वर, पाण्डुरोग, प्रमेह तथा तीव्र अतीसार को भी नष्ट करता है। यह वृन्द का योग है ॥ १-२ ॥

अथ श्लेष्मग्रहणीचिकित्सा ।

शारीरोषाभ्यं चारौ ग्रन्थिकं बीजप्रकम । लबणाभ्युना पैयं श्लैषिमके ग्रहणीगदे ॥ ५ ॥

कफज ग्रहणी की चिकित्सा—कच्चूर, सौंठि, पीपरि, मरिच, इररा, सज्जीखार, जवाखार, पिपरामूल, इन द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर विजौरा नीबू का रस मिलाकर कफज ग्रहणी में पीने से लाभ होता है ॥ ५ ॥

रासनादिन्तुर्णम्—

रासना पथ्या शटी ध्योषं हौ चारौ लवणानि च ।

प्रथिकं मातुलुक्षस्य रसमेकत्र चूर्णयेत् । विवेदुपेन तोयेन रसैषिमके ग्रहणीगदे ॥ २ ॥
रासनादि चूर्ण—रासना, हर्द, कचूर, सौठि, पीपरि, मरिच, सज्जीखार, जवाखार, पांचो
प्रकार के नमक, पिपरामूल इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर विजौरे नेबू का रस भिलाकर
उष्ण जल के अनुपान के साथ कफज ग्रहणी में देने से लाभ होता है ॥ २ ॥

अथ सर्वग्रहणीचिकित्सा ।

शुण्ठयादिकायः—

शुण्ठी समुस्तातिविषां गुहूर्चीं पिवेजलेन समोक्षाम् ।

मन्दानलर्वे सततामधाते सामानुषन्धे ग्रहणीगदे च ॥ १ ॥

सब प्रकार की ग्रहणी के रोग की चिकित्सा—शुण्ठयादि काथ—सौठि, नागरमोथा, अतीस,
गुरुचि, इन सब को समान भाग लेकर विधिवत् काथ बना कर सेवन करने से मन्दाद्यन, निरन्तर
रहने वाले आमवात, आम तथा ग्रहणी के रोग में देने से लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ चित्रकादिगुटिका ।

चित्रकं पिष्पलीमूलं द्वौ चारौ लवणानि च । ध्योषं हिष्पवज्जमोदा च चच्छमेकत्र चूर्णयेत् ॥
गुटिका मातुलुक्षस्य दाडिमस्य रसेन वा । कृता विषाच्यथामं दीपयथाशु चानलभ् ॥३॥

चित्रकादिगुटिका—चित्रकमूल, पिपरामूल सज्जीखार, पांचोनमक, सौठि, पीपरि, मरिच,
शु० हींग, अजवाइन और चाव सबको समान लेकर चूर्णकर विजौरा नेबू के रस अथवा अनार के
रस से मर्दन कर बटी बना कर सेवन करने से आम को पचाता है और अग्नि को शीघ्र तीव्र
करता है ॥ १-२ ॥

चूर्ण चृद्यकचित्रश्रीविश्वभेदवजनिमित्तम् । तकेण सहितं हमितं ग्रहणी दुःखकारिणीम् ॥१॥

चाव, चित्रकमूल, बेल का गूदा और सौठि इन सब द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर तक के
साथ सेवन करने से दुःखदायी ग्रहणी भी नष्ट होती है ॥ १ ॥

भलातकक्षारः—भलातकक्षिकटुकं फ्रिफला लवणग्रथम् ।

अन्तर्धूमं द्विवलिकं गोपुरीषापिन्ना दहेत् ॥ १ ॥

स चारः सर्विषा पीते भोजये वाऽप्यवचूर्णितः । द्वदोगणपाण्डुग्रहणीगुरुस्मोदावर्तं शूलनुदा ॥२॥

भलातक क्षार—शुद्ध भिलावा, सौठि, पीपरि, मरिच, अवरा, हर्द, वेरा, सेन्धानमक,
सोचर नमक, विडनमक, सबको आठ-आठ तो ० लेकर एक मिट्टी के पात्र में रखकर भस्म कर
लेवे । इस अन्तर्धूम भस्म को ‘भलातकक्षार’ कहते हैं । उस क्षार को घृत में अथवा भोजन के
साथ भिलाकर सेवन करने से हृदयग, पाण्डु, ग्रहणी, गुरु, उदावर्तरोग और शूल नष्ट होते
हैं ॥ १-२ ॥

अथ तकसेवनम्—

सप्ताहं वा दशाहं वा मासं मासाध्यमेव वा । बलकालविभागज्ञो भिषक तकं प्रयोजयेत् ॥१॥

तकसेवन—ग्रहणी के रोगी को वैद बल और काल (समय) के विभाग को जानकर सात
दिन, दस दिन, एक मास अथवा प्रन्दह दिन तक तक (मट्ठा) का प्रयोग करावे ॥ १ ॥

तकप्रशंसा—न तकपानाध्यवन्ति रोगा न तकसेवी ध्यथते कक्षाचित् ।

अथ सुराणामसृतं प्रधानं तथा नशाणां भुवि तकमाहुः ॥ २ ॥

ग्रहणीचिकित्सा

तकप्रशंसा—तक के पान करने से रोग उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् उसे रोग का कष नहीं
होता है । जिस प्रकार देवताओं के लिये अमृत प्रधान वस्तु है उसी प्रकार पृथ्वी पर मनुष्यों के
लिये तक प्रधान कहा गया है ॥ २ ॥

तकं नोरःक्षते द्वाचान्वोजकाले न दुर्बंके । न मूर्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्षपैत्तिके ॥ ३ ॥
हितं वृन्दात् ।

तकनिधेध किन्हें है—जिस मनुष्य को उरःक्षत का रोग हो, जिस समय अधिक उष्ण हो
अर्थात् ग्रीष्मशृतु में, जिसे अधिक दुर्बलता हो तथा जिसे मूर्छा, अम, दाह और रक्षपैत्ति का रोग
हो उसे तक नहीं सेवन करना चाहिये । यह वृन्द से उदधृत है ॥ ३ ॥

ग्रहणीदोषिणा तकं दीपनं प्राहि लाघवात् । पथ्यं मधुरपाकित्वाक्षं च पित्रप्रदूषणम् ॥
कवायोषणविकाशित्वाक्षूद्रवत्वाक्षं कफे हितम् ॥ १ ॥

क्षते द्वाचान्वरुलसान्द्रवत्वाक्षस्यस्यकमविदाहि तत् ।

ओर भी तक सेवन करने का वचन—ग्रहणी के दोष वाले पुरुषों के लिये तक लघु होने के
कारण दीपन तथा ग्राही है, तथा पाक में मधुर होने के कारण पित्र को भी दूषित (कुर्पित) नहीं
करता है और पथ्य है तथा यह कथाय रस युक्त, उष्ण, विकाशी और रुक्ष होने से कफ में भी
हितकर होता है । मधुर, अम्ल और गाढ़ा होने के कारण वातरोग में भी शीघ्र लाभ करता है और
दाहकारक नहीं है अर्थात् उष्णादि गुण रहते हुए भी दाह नहीं करता है । स्पष्ट यह कि तीनों
दोषों में लाभकारक है ॥ १-१२ ॥

अहचौ मातुलुक्षस्य केसरं सातयसैन्धवम् । द्वाचान्वोजमकाले तु प्रातस्तकं च रोगिणाम् ॥२॥

असूचि के रोग में—विजौरे नीबू का केसर, वृत्त और सेन्धानमक के साथ मिला कर भोजन
के समय दें तथा प्रातःकाल रोगी को तक सेवन करावे । इससे लाभ होता है ॥ २ ॥

दहनाजमोद्वसैन्धवनांगरमरिचं पिवालतकण । सप्ताहाद्विन्वलं ग्रहण्यतीसारशूलम् ॥३॥

चित्रकमूल, अजवाइन, सेन्धानमक, सौठि, मरिच इन सब को समान लेकर चूर्ण कर अम्ल
तक के साथ सेवन करने से एक सप्ताह में अग्नि वलवान हो जाती है तथा ग्रहणी, अतीसार और
शूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

तकहीतकी—

त्रिकंसे तकस्य द्विकुडवपदुः पवित्रभवोः । पचेष्वस्यस्य भूतसिलजविभाशिकुडवैः ।

समावायाजाजीमरिचचपलादीष्पकपलैङ्गन्सन्मं वहिं द्रढयति विकारांशं जयति ॥ ४ ॥

तकहीतकी—तीन कंस (३ आडक=१२ सेर) मट्ठा, दो कुडव (३२ तो ०) सेन्धानमक और
साठी की संख्या में हर्द—जिसकी गुठली नहीं हो, गोष्ठ, तिल का तेल, सौठि, चित्रकमूल इनको
एक-एक कुडव (१६ तो ०) लेकर सबको मिलाकर पाक की विधि से पाक करे । जब पाक जावे तब
उसमें जीरा, मरिच, पीपरि, अजवाइन, इन सब के चूर्ण को एक-एक पल (४-४ तो ०) मिलाकर
चाटने से अर्थात् सेवन करने से अग्नि वलवान होती है तथा अन्यान्य बिकार नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

अथ कल्याणकावलेहः ।

पाठाधान्ययथान्यजाजिह्वुषाच्याविनसिन्धूद्वैः

सन्त्रेयस्यज्मोदकीटरिभिः कृष्णजटासंयुतैः ।

सव्योवैः सफलत्रिकैः सतुष्टिभिस्वद्वपत्रकैरौषधैः

रित्यव्यप्रभितैः सतैलकुडवैः सार्धं त्रिवृन्मुष्टिभिः ॥ ५ ॥

पतैरामलकीरसस्य तुलया साधं तुलांचं गुडाव
पत्तब्द्ये मिश्जावलेहवदयं प्राप्योजनाल्पचितः ।

ये केचिद्ग्रहणीगदाः स्मृतुर्ज्ञाः कासाः सशोकामयाः
सक्षासाः अथयुस्वरेवरस्य लक्ष्याणकस्तात्मयेत् ॥ २ ॥

कल्याणकावलेह—पुरेनपादी, धनिया, अजवाइन, जीरा, हालवेट, चाव, चित्रकमूल, सेन्धा-नमक, गजपीपरि, अजमोदा, वाभीरंग, पिपरामूल, सौंठि, पीपरि, मरिच, अवरा, हर्दा, बहेरा, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, सौंठि इन द्रव्यों को पुथक् २ एक-एक अक्ष [१ तो०] लेकर तिल का तैल एक कुडव [२६ तो०] और त्रिशूता [निशेष] एक मुष्ठि [४ तो०], अंडिले का रस एक तुला [४०० तो०], गुड आध तुला [२०१ तो०] इन सब का विधिपूर्वक अवलेह बनाकर भोजन के पूर्व सेवन करने से सब प्रकार की ग्रहणी का रोग, सब प्रकार के अर्द्ध-रोग, कास, शोष के रोग, श्वास, शोष, त्वर और उदर की पीड़ा (उदररोग) को यह 'कल्याणक' अवलेह नष्ट करता है ॥ २-२ ॥

भूमिन्धकौटकतुच्छिकमुस्ततिका कथांशकाः सशिलिमूलपित्तुदूषाद्य ।

रक्तकौटजा पलचतुष्कमिता गुडामः पीतं चूणामिह हरेद् ग्रहणीविकारान् ॥ १ ॥

भूमिन्धादि चूर्ण—चिरैता, इन्द्रजौ, सौंठि, पीपरि, मरिच, नागरमोथा, कुटकी, इनमेंसे प्रत्येक एक-एक कर्ष (२-१ तो), अपामार्ग का मूल दो पित्तु [२ तो०], कोरया की छाल चार पल (१६ तो०) इन सब द्रव्यों को उत्तम चूर्ण कर युड़ के रस के साथ पीने से मनुष्यों के ग्रहणी के रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

विलवादियोगः—

विलयोद्दशक्रयश्वालकमोचसिद्वामाज पथः पिवति नो विवसश्वदं च ।

स्वेऽतिग्रवृद्धविरकृद् ग्रहणीविकारं मांसं शशोणितमसाध्यमपि द्विणोति ॥ २ ॥

विलवादि योग—बेल की गूदा, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला, मोचरस, इन सब द्रव्यों को मिलाकर पकाया हुआ विधिपूर्वक बकरी का दूध जो ग्रहणी का रोगी इ दिन पीता है उसका अत्यन्त बढ़ा हुआ बहुत पुराना भी ग्रहणी का रोग और मांस-रक्त से युक्त भी असाध्य ग्रहणी का रोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

व्योषादि चूर्णम्—द्व्योषं दीप्त्याजमोदाकृमिरितुदहनं रामठं चाशगम्भं

सिष्पूर्थं जीरके द्वे रुद्धकपलयुतं धान्धकं तुल्यभागम् ।

भृक्कीचूर्णं लवक्तं शृतमधुतहितं धाणमात्रं च दृष्टाद्-

दीर्सि पुष्टि च कान्ति बलमपि कुरुते नाशयेसंप्राहृण्याः ॥ ३ ॥

व्योषादि चूर्ण—सौंठि, पीपरि, मरिच, अजवाइन, अजमोदा, वाभीरंग, चित्रकमूल, शुद्धहींग, असगन्ध, सेन्धानमक, जीरा और कुण्डजीरा, रोचक लवक, धनिया, अतीस और लवंग इन सब द्रव्यों को एक-एक पल (४, ५ तो०) लेकर चूर्ण कर गाय के धी मधु के अनुपान से एक शाण (४ मात्रा) की मात्रा से सेवन करने से अग्नि को तीव्र तथा शरीर को पुष्ट करता है, कान्ति बढ़ाता है, बलकारक है और संग्रहणी को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

अथ वृद्धगङ्गाधरचूर्णम् ।

मुस्ताकाकड़ोप्रवरसकृतीविश्वारलुभीमदा-
कड़ामोचरसाक्षकौदजविषाचूर्णसु गङ्गाधरः ।

ग्रहणीचिकित्सा

पीतस्तण्डुलवाहिमालिकयुतः कर्षेनिमतो वाहिका-

सुग्रां च ग्रहणी निहित सहसा सर्वातिसारामयान् ॥ १ ॥

बुद्ध गङ्गाधर चूर्ण—नागरमोथा, नेत्रवाला, लोध, कोरया की छाल, पुरेनपादी, सौंठि, अरलु (सोनापाठा), बेल का गुदी, मदा (धाय के फूल), लज्जावन्ती [लज्जौनी] मोचरस, आम की शुठली, इन्द्रजौ और अतीस इन सब द्रव्यों को समान लेकर उत्तम चूर्ण बनाकर एक कर्ष (१ तो०) प्रमाण की मात्रा से मधु और चावल के साथ लेने से अतीसार के रोग को सहसा नष्ट करता है, इस चूर्ण का नाम 'बुद्ध गङ्गाधर चूर्ण' है ॥ १ ॥

अथ तालीसाद्यं चूर्णं ।

तालीसोग्रन्तुगापद्वृष्णनिजाविष्वाजमोदाकाटी-

चातुर्सात्तलवङ्गाचातकिविष्वा जातीफलं दीप्यकम् ।

पाठा मोचरसालपद्वृष्णवणाजाजीकूर्य वेष्टकं

कृचार्दाळकवरा पलाशतद्जन्म मांस्यसुदं वालकम् ॥ १ ॥

ऐग्नेड्यं ग्रहणीच्छादिकसत्त्वासारुचिप्लीहहद्

दुर्मात्तिविजवरार्तिपवनस्थौक्षयप्रमेहप्रणुत् ॥ २ ॥

तीव्रापरस्तुतिपाण्डुगुक्षमजठरश्लेष्मोत्थपित्तोद्वादो-

म्नादवंसविधायको विजयते सर्वामयध्वंसकः ।

बालानां च विशेषतो हितकरः संस्पष्टवाणीप्रदः

कुष्यायुर्वलकान्तिधीस्मृतिमहामेधाविलासप्रदः ॥ ३ ॥

तालीसादि चूर्ण—तालीसपत्र, धनियां, वंशलोचन, पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्रकमूल, सौंठि, मरिच, हरदी, बेल की गुदी, अजमोदा, कचूर, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागरकेशर, लवंग, धाय के फूल, अतीस, जायफर, अजवाइन, पुरेनपादी, मोचरस, आम की शुठली, पांचो नमक, जीरा और काला जीरा, वाभीरंग, वृक्षाम्ल [कोकम], अम्लवेत, अवरा, हर्दा, बहेरा, पलाश के नवीन पलव, जटामांसी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, माइरि का मूल [इन्द्रायण मूल], ब्रह्मसुवचैला, भुई बैंवरा और कूठ इन सबों को समान भाग लेकर चूर्ण कर सब चूर्ण के बराबर-बला [बरिआदा] का चूर्ण मिलावे और बलामिश्रित चूर्ण के समान शुद्ध मांग का चूर्ण मिलावे और मांग मिश्रित सब चूर्ण के समान मिश्री अथवा शक्कर मिलाकर रख ले । यह चूर्ण सेवन करने से ग्रहणी, क्षय, कास, श्वास, अरुचि, प्लीहा, हृदय, अर्श, अतीसार, ज्वर, वातरोग, स्थूलता, प्रमेह आदि रोग और बड़े हुए अपसार, पाण्डु, गुल्म, जठर, कफ तथा पित्त के कारण होनेवाले उन्माद रोग को नष्ट करता है तथा सब प्रलाप के रोगों को नष्ट करता है । विशेष कर बालकों को हितकर है, बाणी को त्पष्ट करने वाला है, पौष्टिक, आयु, बल, कान्ति, दुष्टि, स्मरण-शक्ति, मेषाशक्ति और आनन्द को देने वाला है ॥ १-३ ॥

अथ जातीफलाद्यं चूर्णम् ।

जातीफललवैलापव्रत्वङ्गनागकेसरैः । कर्पूरचन्दनतिलश्वक्तीरीतगरामलैः ॥ १ ॥

तालीसपिण्पश्चीपद्यारथूलजीरकचित्रकैः । शुण्ठीविद्वक्तमरिचैः समभागैर्विचूर्णितैः ॥ २ ॥

यावस्थेतानि सर्वाणि द्व्याद्वांच तावतीम् । सर्वचूर्णसमा देया शक्करा सुभिषण्वरः ॥३॥

कर्वमात्रं ततः स्वादेनमधुना प्लावितं सुधीः । अस्य प्रभावाद् ग्रहणीकासवासरचिक्षयः ॥
द्वातश्श्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशस्ते यान्ति वेगतः ॥ ४ ॥

जातीफलादि चूर्ण—जायफर, लवंग, हलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेसर, कपूर, लालचन्दन, तिल, तवाखीर, तगर, आँवला, तालीसपत्र, पीपरि, हर्दा, स्थूलजीरक [करजीरी], चिक्रमूल, सौठि, बाभीरंग, मरिच इन सब द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके बराबर शुद्ध भांग का चूर्ण मिलावे और भांग मिश्रित जितना चूर्ण हो उसके समान शकर मिलाकर श्रेष्ठ वैद्य एक कर्ष [१ तोला] के प्रमाण की मात्रा से मधु मिलाकर सेवन करावे तो इसके प्रभाव से ग्रहणी, कास, अरुचि, क्षय, कफ और वात के रोग, प्रतिश्वाय आदि रोग शीघ्र शान्त हो जाते हैं, इस चूर्ण का नाम 'जातीफलादि चूर्ण' है ॥ १-४ ॥

अथ बिल्वाद्यं घृतम् ।

बिश्वार्दिनभृत्याद्रकमृष्टवेरकाथेन करकेन च सिद्धमायम् ।
सच्छागद्यधं ग्रहणीगद्योरथे शोफार्दिनसादारुचिनुद्रुतं तत् ॥ १ ॥

विल्वादि धृत—बेल का गुहा, चित्रकमूल, चाब, आर्द्रक सोंठ अर्थात् हरी आदी, इन द्रवयों को समान लेकर विविषुर्वक काथ कर काथ से चतुर्थांश मूर्छित गोधृत और धृत के चतुर्थांश उपर्युक्त विल्वादि चारों ओषधियों का कल्प देकर धृत के चतुर्गुण बकरी का दूध मिला धृत पाक की विधि से पाक सिद्ध कर धृत मात्र शेष रहने पर उत्तार-छान कर सेवन करने से ग्रहणी के रोग और ग्रहणी में शोथ, मन्दाग्नि और अखचि आदि जो उपद्रव हैं वे सब नष्ट होते हैं। इसे ‘विल्वादि धृत’ कहते हैं ॥ १ ॥

कृष्णेण कठिनत्वेन यः पुरीषं विमुच्चति । सघृतं लवणं तस्य पाययेत् क्लेशशान्तये ॥

विद्वं यत्वानीं विष्टुमे पित्रेदृष्णोन् शारिणा ॥ २ ॥

जिस मनुष्य को कष्ट के साथ किठन (सूखा हुआ) मल निकलता हो उसको धृत के साथ सेत्था नमक भिलाकर पिलाना चाहिये, इससे उसका कष्ट शास्त्र होता है और विष्टम्भ किसी को हो तो उसे विड़ नमक और अंजवाइन का चूर्ण उष्ण जल से पिलाना चाहिये। इससे विष्टम्भ नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ दाक्षासवः ।

सूर्योकाया: पलशातं चतुर्देशेऽभसः पवेत् । द्वोणशेषे तु शीते च पूते तस्मिन्प्रदायेत् ॥१॥
 द्विशते द्वौदस्यन्दाभ्यां ज्ञातक्याः प्रस्थमेव च । कञ्जोलकलवङ्गे च जातीसस्यं तथैव च ॥२॥
 पलांशकानि मरिचं खण्डेलापत्रकेसरम् । पिण्ठली चित्रकं चट्टं पिण्ठलीसूक्लरेणुकम् ॥३॥
 शृतभाष्टविधत्तमिदं चन्दनागुरुधृषितम् । कपूरचासितो ह्येष प्रहणीदीपनः परम् ॥४॥
 अशंसां नाशनः श्रेष्ठ उदाष्टर्ताशुगुरुमनुत् । जठरक्रिमिकुष्ठानि व्रणांश्च विविधास्तथा ॥५॥
 अद्विरोगशिरोरोगगमलरोगविनाशनः । उवरमामं महाश्यामि पाण्डुरोगं सकामलम् ॥६॥

नामना द्राविदसबो श्वेष बृंहणो अलवर्णकृत् ॥ ६ ॥ इति गदनिग्रहाद् ।
द्राक्षासव—द्राक्षा [दाख या सुनकका] सौ पल [चार सौ तोला] और जल चार द्रोण
[६४ सेर] देकर पकावे [काथ करे] जब एक द्रोण (१६ सेर) शेष रहे तब उतार लेवे और
शीतल होने पर छान लेवे फिर इसमें दो सौ पल [८०० तो] समान मिश्रित मधु और शक्कर
मिलावे अर्थात् सौ पल मधु और सौ पल शक्कर मिलावे धाय के फूल एक प्रस्थ [एक सेर], कड़ोल
मरिच, लवंग, जायफर, मरिच, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, पीपरि, चिक्कमूल

चाचा, पिपरामूल, रेणुका, इन सब द्रव्यों का शलश्च चूर्ण एक-एक पल [चार-चार तोला] लेकर उपर्युक्त द्रव्यों में मिलाकर चन्दन और अगर से धूपित घृत भाण्ड में सब ओषधियों को एकत्र रख कर आसव की विधि से सब किया कर १५ से २० दिन तक मुख बन्द कर पृथ्वी में रख देवे, भली भाँति आसव का सन्धान हो जाने पर छान कर कपूर से वासित अर्थात् कपूर से धूपित पात्र में रखकर छ मास के पश्चात् आसव की विधि से सेवन करने से यह 'द्राक्षासव' ग्रहणी के लिये अत्यन्त दीपन और अर्श के नाश करने में श्रेष्ठ है, उडायर्त और रक्तघुस्त को नष्ट करता है, जठर [उदर] के दोष, क्रिमि, कुष्ठ तथा अनेक प्रकार के ब्रण रोग, नेत्र के रोग, सिर के रोग को नष्ट करने वाला है, आमयुक्त ऊंवर, महारोग [राजयक्षमादि], पाण्डुरोग और कामला आदि रोग को नष्ट करता है तथा बृहण [वीरीवर्धक], बलकारक और वर्णकारक होता है। इसका नाम 'द्राक्षासव' है। यह गदनिग्रह से उद्धृत है॥ १-६ ॥

अथ रसाः ।

चतुर्मूर्तिरसः—सूतकं शम्भकं लोहं विषं चित्रकपथकम् ।

बरारी (लं) रेणुका मुस्ता पूला ग्रन्थिरकेशरम् ॥ १ ॥

फलत्रयं त्रिकटुकं शुश्वभस्म तथव च । पृतानि समभागानि सुचमचूर्णानि कारयेत् ॥ २ ॥

ग्रहण्यां पाण्डुरोमे च दातव्यं मधुना सह । अतिसारे लघे कासे प्रमेहे विषमउवरे ॥

नानासुपानैर्दर्तिष्यश्रुतमूर्तीं रसोत्तमः । ३ ॥

चतुर्मूर्ति रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोभभस्म, शुद्ध विष, चिक्रमूल, तेजपाता, लवंग, रेणुका, नागरमोथा, इलायची, पिपरामूल, नारंगेसर, अंचरा, हर्दा, बहेरा, सौंठि, पीपरि, मरिच, ताप्रभस्म इन सब ओषधियों को समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली विधिवत् बना उसमें सब उल्लिखित भस्म एवं ओषधियों के चूर्ण को मिला कर मर्दन कर ग्रहणी तथा पाण्डुरोग में भयु के अनुपान से तथा अतीसार, क्षय, कास, प्रमैह और विषमच्चरादि में अनेक प्रकार के यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से उक्त रोग नष्ट होते हैं। यह 'चतुर्मूर्ति' नामक रस उत्तम रस है ॥ १-३ ॥

अथ संवर्णरसपूर्षदी—

शुद्धसूतं पलमितं तर्याशस्वर्णसंयुतम् । मर्दयेऽनिन्दनीरेण यावदकेष्वमाण्यासु ॥ १ ॥

प्रष्ठाहयोषणाऽनुना पश्चात्पलमात्रे सु गन्धके । द्रुते क्षोहयये पात्रे बद्रानक्योगतः ॥ २ ॥

प्रसिद्धं चालयेष्वोद्यो मन्त्रं लोहशलाकया । ननः पाकं विदित्वा तु रमभापत्रे शनैः क्षिपेत्

गोमयस्थे तदुपरि रथभापत्रेण यन्नव्येत् । शीतं तद्द्वयिलं गुजाक्रमघृदं निषेदयेत् ॥

माषमाशं भवेद्यावस्ततो मात्रां न वर्धयेत् । स वौद्वृणोषणेनैव लेहयेद्विगुप्तमः ॥

प्रहणी हान्त शाप च सुवर्णरसपयटा । मद्या बलकरा शुक्रवधना च

ब्यक्तिसामग्रीमहशूलात्मारपणहुनुत् ॥ ६ ॥

सुवर्णरसपर्पटी—शुद्ध पारद एक पल (चार तो०) लेकर उसमें चतुर्थीश (१ तो०) स्वर्ण भस्म मिलाकर नीबू के रस से तब तक मर्दन करे जब तक दोनों एक में मिल न जायें मिल जाने पर उण्ठ जल से धोकर एक पल (४ तो०) शुद्ध गन्धक मिलाकर मर्दन कर लेवे जब सब मिलकर एक रस हो जायें तब लोहे के पात्र में रख कर वैर की लकड़ी के आंच पर रख द्रवित करे जब सब द्रव्य द्रवमय हो जावे तब एक लोहे के शलाके से चलाकर मिला देवे और पाक हुआ जानकर (एक रस होने पर) केले के पत्ते पर धीरे से ढाल देवे, उस केले के पत्ते को पहले गोबर से लिये हुए स्थान (गडे) पर रखवा रहे इस प्रकार ढाल कर केले के पत्ते से ही ढांक देवे और ढबा देवे ।

१५ यो० प०

शीतल होने पर चूर्ण कर एक रक्ती के प्रमाण की मात्रा से क्रमशः सेवन करता हुआ एक नासा तक बढ़ावे, इसके बाद मात्रा तर्हीं बढ़ावे और इसे मधु तथा मरिच के चूर्ण के अनुपान से श्रेष्ठ वैद्य सेवन करते तो यह पर्षटी ग्रहणी तथा शोष के रोग को नष्ट करती है, शीत्र वल देती है, शुक्रवर्धक, अग्निदीपक, क्षय, कास, श्वास, मैह, शूल, अतीसार और पाण्डुरोग को नष्ट करती है। इसका नाम 'सुवर्णरस पर्षटी है' ॥ २-६ ॥

ग्रहणीकपाटः—

तारमौक्तिकहेमानि सारथ्यकैकभागिकम् । शृङ्खाभागोगन्धकः सूरचित्तमातो मर्दयेदिमान् ॥ १ ॥
कपित्थस्वरसैर्गांठं सृगश्वङ्गे ततः श्विषेत् । पुटेन्मध्यपुटेनव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥ २ ॥
चलारस्यैः सप्तवेलमपामार्गसैखिधा । लोधप्रतिविषासुस्तवात्कैन्द्रव्यवासृताः ॥ ३ ॥
श्रयेऽमेतस्वरसैखिधा । माषमात्रं रमो देयो मधुना मरिचस्तथा ॥ ४ ॥
हन्त्यारसवैर्नीतीसाराम्ब्रहणीं सर्वज्ञामपि । कपाटो ग्रहणीरोगे रमोऽयं वहिशीपनः ॥ ५ ॥

ग्रहणीकपाट रस—चांदी, मोती, सुवर्ण, लोह इनकी भस्में प्रत्येक एक-एक भाग लेवे, दो भाग शुद्ध गन्धक और तीन भाग शुद्ध पारद लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्यान्य भस्मों को मिलाकर मर्दन कर कैथ के स्वरस से सबको भलीभौति मर्दन करे पश्चात् हिरण्य के सौंध में रखकर मध्यमपुट से पुटपाक की विधि से पाक कर पाक हो जाने पर मर्दन कर बला (वरिआरा) के रस से सातवार भावना देवे फिर अपामार्ग के रस से तीन भावना देवे पश्चात् लोध, अतीस, नागरमोथा, धाय के फूल, इन्द्रजी, गुरुचि इनमें से प्रत्येक द्रव्य के स्वरस से पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना देकर इसमें से एक मासा के प्रमाण की मात्रा से मधु तथा मरिच के चूर्ण के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के अतीसार तथा सर प्रकार की ग्रहणी को नष्ट करता है और अग्नि को दीप करता है। इस रस का नाम 'ग्रहणीकपाट' रस है ॥ २-५ ॥

अन्यच—रसेन्द्रगन्धातिविषाभयाद्रं शारद्वयं मोचरसो वचा च ।

जया च जस्तीरसेन पिष्ठं पिण्डीकृतं भ्याद् ग्रहणीकपाटः ॥ १ ॥

अन्य मत से—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अतीस, हुरा, अग्नि भस्म, सज्जोखार, जवाखार, टङ्गणक्षार, मोचरस, वच, भोग इन सबको समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर पुनः अन्यान्य द्रव्यों को मिला कर मर्दन कर जमीरी नेतृ के रस के साथ घोट कर गोलियां बना लेवे। इसे 'ग्रहणीकपाटरस' कहते हैं। उपर्युक्त गुण इसके भी हैं ॥ १ ॥

रसराजलक्ष्मा—शुद्धः कक्षवराटकर्गणनया भवत्तातकांस्तस्मान्

प्रातान् शब्द्वुलकपटकल्पुषुटः पक्तवाहृभायं रमय ।

लेलीनेन समं विचूर्णं जयया सप्तानुभाव्यं शिव-

प्रोक्तोऽयं ग्रहणीकपाटकरसस्येवलककर्त्तव्यपैष्ठः ॥ १ ॥

रसराजलक्ष्मी से उद्धुत-केकड़े और शुद्ध पीली कोडी-दोनों गणना में बरावर (२०-२०) लेकर दोनों के बरावर (४०) की गणना में शुद्ध भिलावा बबूर के कांटों से विधा हुआ लेकर एकत्र कर एक हाँड़ी में बन्द कर पुटपाक की विधि से लघुपुट देकर शीतल हो जाने पर उससे चतुर्थांश पारद और गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली कर उस पुटपाक ओषधि में मिलाकर एकत्र भलीभौति मर्दन करे, मर्दित हो जाने पर भांग के स्वरस अथवा काथ से सात बार भावना देकर तीन बल (१ मासे) के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से ग्रहणी का रोग नष्ट होता है। इसे शिवजी के कहा है इसका नाम 'ग्रहणीकपाटरस' है ॥ १ ॥

ग्रहणीचिकित्सा

ग्रहणीगजकेसरी रसः—गन्धं पारदमध्यकं च दरदं लोहं च जातीफलं—

विषवं मोचरसं विषं प्रतिविषां ध्योवं तथा धातकीम् ।

भङ्गामध्यभयां कपित्थजलदौ दीप्यानलौ द्वादिम्

टङ्गाम्भस्म कलिङ्गकात्कनकजं बीजं च पष्ठेलुणम् ॥ १ ॥

पृतुर्त्थमपेनमेतद्विलिं संमथं संचूर्णयेद्

धन्त्यरूच्छुदजै रसैश्च मतिमान्कुर्यान्मरीचाकृतिम् ।

दत्ता सा ग्रहणीगदं मरविरं सामं सशलं चिरा-

नीसाऽवं विनिहन्ति जूरिसहिता तीव्रां विसूचीमपि ॥ २ ॥

कुःसोष्यामपि विनिविश्विता परिहरेद्वुक्तानुपानरथं । नाना तु ग्रहणीमतङ्गजमदध्वंसीमण्डोरवः॥

ग्रहणीगजकेसरी रस—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, अग्नि भस्म, शुद्धिशुल, लोहमस्म, जायफर का चूर्ण, विलक्षण की गुहा, मोचरस, शुद्ध विष, जटीस का चूर्ण, सोंठि, पीपरि, मरिच, धाय के फूल, शुद्ध भांग, हरा, कैथ, नागरमोथा, अजवाइन, वित्त की जड़, अनारदाना आदि का चूर्ण, शुद्ध टक्कण, इन्द्रजी का चूर्ण, धतूरे का शुद्ध बीज का चूर्ण इन सब द्रव्यों को एक-एक भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्य सब द्रव्यों को मिलाकर एकत्र मर्दन कर जितने प्रमाण में ही उसके चतुर्थांश शुद्ध अफीम मिलाकर मर्दन कर धतूरे के पत्ते के रस से मर्दन कर मरिच के प्रमाण की बटी बनाकर सेवन करने से ग्रहणी का रोग, रक्त-आम-शूल सहित पुराना अथवा नया अतीसार नष्ट होता है और ज्वर, अत्यन्त बढ़ी हुई विसचिका तथा असाध्य प्रवाहिका आदि रोग यथायोग्य अनुपान के साथ सेवन करने से नष्ट होते हैं, जिस प्रकार सिंह हाथी को नष्ट करता है उस प्रकार यह ग्रहणी को नष्ट करता है अतः इसका नाम 'ग्रहणीगजकेसरी' है ॥ १-३ ॥

रसपर्षटी—शुद्धपारदगन्धाभ्यो छृता पर्षटिका नुनाम् ।

निहन्ति ग्रहणीं क्षीद्वयुक्ता पथ्यभुज्ञा भृशम् ॥ १ ॥

रसपर्षटी—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को लेकर कज्जली कर पर्षटी बनाने की विधि से पर्षटी बनाकर मधु के अनुपान से सेवन करने से और पथ्य से रहने से (जो पथ्य पर्षटी-सेवन में कषा गया है उस नियम से रहने से जल, नमक, अम्लादि को नहीं भक्षण करने से) ग्रहणी के रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

पञ्चामृतपर्षटीरसः—लोहाभ्राकरसं समं द्विगुणितं गन्धं पचेत्कोलिका-

काटाग्नीं स्तुलु निधाय सकलं लोहस्य पात्रे भिषक् ।

सर्वं गोमयमण्डले विनिहिते रमभाव्ये विन्यसे-

तत्स्योध्वं कदलीदलं दुततरं वैद्येश्वरो विन्यसत् ॥ १ ॥

स्यात् पञ्चामृतपर्षटी ग्रहणिकायवमातिसारज्वर

स्त्रीहृषकाण्डुग्रामलपित्तानुजान्धिवसिनी ॥ २ ॥

ग्रहण्यामनुपानं हि हिङ्गसैन्धवजीरकम् । जीरकं पाण्डुगरयोरितरेषु स्वयुक्तिः ॥ ३ ॥

पञ्चामृतपर्षटी—लोहमस्म, अग्निभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारद चारो समान भाग [एक-एक भाग] लेकर शुद्ध गन्धक दो भाग लेवे और प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना कर उसमें और ओषधियों को मिला मर्दन कर एक लोहे के पात्र में रख कर बैर की लकड़ी के आँच पर रख गलावे जब गल जावे तब गोबर पर रखवे हुए केले के पत्ते पर ढाल कर शीत्र केले के पत्ते से ढाक देवे शीतल हो जाने पर चूर्णी कर सेवन करने से यह 'पञ्चामृतपर्षटी' जो पांच ओषधियों से बनी है। ग्रहणी, यक्षमा, अतीसार, ज्वर, खीरोग, पाण्डुरोग, विशरोग, अम्लपित्त,

अर्श, अग्निमान्द्य आदि को नष्ट करती है। ग्रहणी के रोग में हींग और सेन्धानमक तथा जीरा के चूर्ण के अनुपान से सेवन करना चाहिये, पाण्डुरोग और विषजरोग में जीरा के चूर्ण के अनुपान से, शेष यश्मा, अम्लविषादि रोगों में वैद्य को अपनी युक्ति के अनुसार यथायोग्य अनुपान से सेवन कराना चाहिये ॥ १-३ ॥

कनकसुन्दररसः—

मरीध्वलिहिङ्कुलैर्गरुणपलीटङ्कौः सुबर्णभवदीजकैः समलवैदिनाधोवधि ।
ज्यायारसधिमितैः कनकसुन्दरः सुन्दरि । इमुतो ग्रहणिकाउवरातिवद्विमान्द्यापहः ॥ १ ॥

कनकसुन्दर रस—मरिच, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, पीपरि, शुद्ध वङ्कण, घटूरे का शुद्ध बीज, इनके चूर्ण को समान भाग में लेकर दोपहर तक भाग के रस अथवा काथ में मर्दन कर बटी बना कर सेवन करने से ग्रहणीज्वर, अतीसार और मन्दाग्नि आदि रोग नष्ट होते हैं, हे सुन्दरि ! इस रस का नाम 'कनकसुन्दररस' है ॥ १ ॥

शङ्खपर्वटी—चिङ्गाक्षारपलं पटुब्रजपलं निग्वूरसे कविकरं

तस्मिन् शङ्खपलं प्रतसमसकृच्छिर्विष्य जीर्णवधि ।

हिङ्कुच्योषपलं रसामृतवलीक्षिच्चिष्प्य निष्कांशकान्

बद्रध्वा शङ्खवटी च्यग्रहणिकास्वपपत्तिशूलादिपु ॥ १ ॥

शङ्खवटी—इमली का क्षार एक पल, पांचों नगक मिलाकर एक पल, लेकर दोनों को नींव के रस से पीस कर कल्प करे, उसमें शुद्ध शंख एक पल लेकर अग्नि में तपा-तपाकर करे बार तुक्काने, इससे शङ्ख चूर्ण होकर जब कल्प के द्रव में मिल जावे तब हींग, सैंठि, पीपरि, मरिच चारों का मिलित चूर्ण एक पल लेकर मिलावे और शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और शुद्ध विष तीनों एक-एक निष्क (इ तो०) लेकर पारद-गन्धक की कज्जली कर सबको एकत्र मर्दन कर बटी बनाकर सेवन करने से क्षय, ग्रहणी और परिणामशूल आदि रोग नष्ट होते हैं। इसका नाम 'शङ्खवटी' है ॥

अग्निसूनुरसः—भागो द्राक्षपद्मकस्य च तथा शङ्खस्य भागद्वयं

भागस्य वित्तयं नियाउय स्कलं निग्वूरसे चूर्णिते

नाशना च्यहिसुतो रसोऽयमचिरान्मान्द्यं जयेहारुणम् ॥ १ ॥

घृतेन खण्डात्सह भवितेन ज्योतिरान्हस्तिसमानकरोति ।

समागधीचूर्णचूर्णेन लीढवा नरः प्रसुब्देव ग्रहणीविकारात् ॥ २ ॥

शोषज्वरारोचकशूलगुरुमान्पाणहृदराशोग्रहणीविकाराच् ।

तक्षानुपानो जयति प्रेमेहान्युवत्या प्रयुक्तोऽग्निसुतो रसेन्द्रः ॥ ३ ॥

अग्निसूनुरस—कौड़ी का भस्म एक भाग, शङ्ख का भस्म दो भाग, शुद्ध गन्धक तथा शुद्ध पारद की सम्मिलित कज्जली एक भाग, मरिच का चूर्ण तीन भाग लेकर एकत्र नींव के रस में मर्दन कर सेवन करने से कठिन मन्दाग्नि को भी नष्ट करता है, घृत और शक्कर के साथ सेवन करने से क्षीण हुआ पुरुष भी हाथी के समान हो जाता है, धीं तथा पीपरि के चूर्ण के साथ सेवन करने से ग्रहणी का रोग नष्ट होता है, तथा शोष, ज्वर, अरुचि, शूल, गुरुम, पाण्डु, उदर, अर्श और ग्रहणी के रोग नष्ट होते हैं तथा मट्ठे के अनुपान से सेवन करने से प्रमेह के रोगों को नष्ट करता है। इसका नाम 'अग्निसूनुरस' है। इसको युक्तिपूर्वक प्रयोग में लाना चाहिये ॥ १-३ ॥

वगस्तिसूतराजो रसः—

रमबलिसमभागं तुश्यहिङ्कुलयुक्तं हिंगुणकनकबीजं नाशफेनेन तुश्यम् ।

सकलविहितचूर्णं भावयद्भृक्षिनीर्व्रेहणिजलधिशोषे सूतराजो द्वागस्तिः ॥ १ ॥

त्रिकटुकमधुयुक्तः सर्ववान्ति च शूलं कफपवनविकारं व्युत्प्रभान्द्यं च निद्राम् ।

घृतमेच्चयुतोऽयं गुञ्जमात्रः प्रदाहीं हरति षडतिसाराञ्चीरजातीफलेन ॥ २ ॥

वगस्तिसूतराजरस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक समान भाग (एक-एक भाग) लेकर कज्जली कर उसमें शुद्ध हिंगुल एक भाग, धूरों का शुद्ध बीज तथा शुद्ध अफीम दो-दो भाग मिलाकर मर्दन कर भाग के रस की भावना देकर सेवन करने से यह ग्रहणीरूपी समुद्र को सुखाने के लिये अगस्त्य के समान है, सौंठि पीपरि-मरिच और मधु के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के वमन, शूल, कफ वात के रोग, मन्दाग्नि और निद्रा रोग नष्ट होता है, घृत और मरिच के चूर्ण के साथ एक रत्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से प्रवाहिका रोग नष्ट होता है और जीरा तथा जायफर के चूर्ण के साथ सेवन करने से दू प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

क्षारतात्ररसः—

शङ्खचाराक्षूर्ति च वराटं लोहभस्मकम् । अयोमलं वचारारं टङ्गक्षारमेव च ॥ १ ॥

त्रिकटु सैन्धवं तुश्यं भृक्षीतोयेन मर्दयेत् । आटरुषरसैर्मर्द्यमार्दकस्वरसेन च ॥ २ ॥

चणमात्रा वटीं कृच्चारा रसोऽयं ज्यात्रात्रकः वासे कामे प्रतिश्याये पुराणवरपीडिते ॥ ३ ॥

मन्दाग्नी ग्रहणीदोषे त्वनुपानं यथोचितस्त्रं सूवयेत्सप्तरात्रेण नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४ ॥

चिरकालानुषन्धे च सेवयेन्मण्डलावधि । तत्तद्वयाधिहरं पथं नियमेन समाचरेत् ॥ ५ ॥

क्षारतात्ररस—शङ्ख भस्म, तात्र भस्म, कौड़ी भस्म, लोहभस्म, मण्डूर भस्म, जवाखार, टङ्गखार, सौंठि, पीपरि, मरिच, सेन्धानमक, सब समान भाग लेकर चूर्ण कर भाग के रस के साथ मर्दन करे, किर अरुसा और आदी के रस के साथ पृथक् २ मर्दन कर अर्थात् इन तीनों के रस की भावना देकर चने के प्रमाण की बटी बना कर यथोचित अनुपान से सेवन करने से 'क्षारतात्र' नामका रस श्वास, कास, प्रतिश्याय, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि और ग्रहणी के रोग को सात दिन में अवश्य नष्ट करता है इसमें संशय नहीं। यदि रोग बहुत दिन के पुराने हो तो ४८ दिन तक रोग के अनुकूल पथ्य और नियम के साथ रहने तथा इस औषध के सेवन करने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-५ ॥

अथ पथ्यम्

मुद्रः चणिकशाली च आढ़की माचिकं तथा । छायाः पयो दधि घृतं नदमीतं कपिश्यकम् ।

विस्तारं दधि गोद्विश्वं रङ्गमात्रः कुमुमं फलम् । दाढिमं लाजकुम्भमः शङ्खाटं लुद्धमस्यकः ।

एण्टित्तिरलालानां शशानो क्रद्यमेव च । ग्रहण्यामाद्ये पथ्यं कथितं सुनिभिर्हितम् ॥ ३ ॥

ग्रहणी के रोग में पथ्य—मूंग के जूस, साठी धान का चावल और शालिधान के चावल का भात, रहर की दाल का जूस, मधु, बकरी का दूध, दही, धीं, मङ्गदान, केथ का फल, मखबन निकाले हुए गाय के दूध की दही, बेल का फल, केला के फूल और फल, अनार धान के लावे का मौँड, सिंगाड़ा, छोटी मछलियाँ, हरिण, तितिर, लाला, शशक, इनके मास (मास का रस), आदि वस्तुओं ग्रहणी के रोगी के लिये मुनियों ने पथ्य कहा है ॥ १-२ ॥

अपथ्यम्—विचिक्कलानि कठोराणि गुरुपथ्यन्ननियानि वानि च ।

आमङ्गनित न सेव्यानि ग्रहणीरोगिभिः कथित् ॥ ४ ॥

अपथ्य—स्त्रिय (वृत्तादि युक्त), कठिन, भारी अन्न तथा आमकारक पदार्थ ग्रहणी का रोगी सेवन न करे, ये हानिकारक हैं ॥ ४ ॥

अथ अशोरोगनिधिकारः

अथाशोरोगनिदानम्

अशोरोगनिरुक्तिः—

अरिवत्प्राणिनो मासकीलका विशासन्ति यथ । अशासित्समादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधतः ॥

अशोरोगनिधिकार—अर्शकी निरुक्ति—गुदा में मास के कील (मरसे) गुदा मार्ग का अवरोध कर शक्ति के समान (अरिवत्) रहते हुए वलेश देते हैं इसालये इस रोग को 'अर्श' कहते हैं ॥ १ ॥

पृथग्दोषः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च । अशासि पटप्रकाराणि विद्याद्गुदगुदलित्रये ॥ ३ ॥

अर्श की संख्या—गुदा की चिनिलि में वातादि पृथक्—पृथक् दोषों से तीन, सान्निपातिक एक, रक्त के दोषों से एक और स्वामाविक (जन्म से ही) एक, इस प्रकार से ६ प्रकार अर्श जानला चाहिये ॥ १ ॥

अथाशोसां स्वरूपमाह—

दोषास्वद्यासभेदासि सन्दृश्य विविष्णाकृतीन् । मांसाहुरानपानाद्यौ कुर्वन्नर्यर्थासि तालगुणः ॥

अर्श का संप्रसिद्धक रूप—वातादिक दोष त्वचा, मांस, मेद आदि को दूषित कर अनेक प्रकार की आकृति के मास के अड्डेर गुदादि स्थानों में उत्पन्न कर देते हैं, उन्हें 'अर्श' कहते हैं ॥ २ ॥

अथाशोसां हेतुमाह—

कषायकटुदिकानि रुचशीतल्घूनि च । प्रमितारूपानानं तीचणं मध्यं मैथुनसेवनम् ॥ १ ॥

लङ्घनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकम् च । शोको वातात्स्पशो हेतुवीताशसां मतः ॥ २ ॥

अर्श का निदान—प्रथम वात से उत्पन्न होने वाले अर्श का निदान—अत्यन्त कथाय रसयुक्त पदार्थ तथा कट्ट, तिर्क, रुक्ष, शीतल, लघु आदि पदार्थों के सेवन करने से, प्रमाण से भी कम आहार करने से, तीक्ष्ण द्रव्यों के सेवन करने से अधिक मध्यपान, मैथुन तथा उपवास अधिक रूप से करने से, शीत प्रदेश और शीतकाल में रहने से, अधिक व्यायाम तथा अधिक चिन्ता करने से, अधिक वायु और अधिक ताप के लगाने से वात कुपित होकर वातज अर्श को उत्पन्न करता है ॥ १-२ ॥

कट्टगल्लवणोषानि व्यायामाभ्यातप्रभाः । देशकाळावक्षिणिरौ क्रोधो मध्यमसूच्यनम् ॥ ३ ॥

विदोहि तीचणमुण्ठां च सर्वं पानाञ्चेष्यजम् । पित्तोद्वणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुर्वर्णसाम् ॥ ४ ॥

पित्तज अर्श का निदान—अत्यन्त कट्ट, अम्ल, लवण रसयुक्त और उष्ण पदार्थों के सेवन करने से, अधिक व्यायाम अधिक अश्वि तथा सूर्य ताप के सेवन से, उष्ण देश और उष्ण—समय में रहने से, क्रोध करने से, मध्य पीने से, वैर्यों करने से, दाढ़ उत्पन्न करने वाले तीक्ष्ण तथा उष्ण पदार्थ के सेवन करने से पित्त कुपित होकर पित्तज अर्श को उत्पन्न करता है ॥ ३-४ ॥

मधुरस्त्रिवक्षीतानि लवणाम्लगुरुणि च । अद्यायामदिवास्वप्नश्चयासनसुखं रतिः ॥ ५ ॥

प्रावातसेवा शीतौ च देशकालावचिन्तनम् । श्लेषिमकाणां समुद्दिष्टमेतरकारणमर्शसाम् ॥ ६ ॥

कफज अर्श का निदान—अत्यन्त मधुर, स्त्रिय, शीतल, लवण, अम्ल और गुरु पदार्थ के सेवन करने से, व्यायाम नहीं करने से, दिन में सोने से, दिन-रात आसन, शय्या—जो सुखकर हो—उसी पर पड़े रहने से, पुरवैया वायु के सेवन करने से, शीत प्रदेश और शीतकाल में रहने

अशोरोगनिदानम्

से, सदा चिन्ता-रहित रहने से इन-इन कारणों से कफ कुपित होकर कफज अर्श को उत्पन्न करता है ॥ ५-६ ॥

हेतुलक्षणसंसार्गाद्विद्याद् इन्द्रियोदयाणि च । सर्वे हेतुनिष्ठोदोषाणि सहजैर्लक्षणैः समम् ॥ ७ ॥

द्रन्दज और सन्निपातज अर्श का निदान—उपर्युक्त मिश्रित कारणों से दोषों के लक्षणों के द्रक्त्र होने से द्रन्दज और सब के एकत्र होने से त्रिदोषज अर्श उत्पन्न होता है और सहज अर्श के लक्षणों से भी त्रिदोषज अर्श होता है ॥ ७ ॥

अथाशोसां पूर्वरूपमाह—

विष्टमोऽङ्गस्य दीर्घयं कुचेरादोषं एव च । कारण्यमुद्ग्रावन्त्य सविशसादोऽवपविट्कता ॥

प्रहणीरोगापाण्डवतिराशङ्का चोद्रस्य च । पूर्वरूपाणि निदिष्टान्यर्थसामभिवृद्धये ॥ २ ॥

अर्श का पूर्वरूप—जब अर्श रोग उत्पन्न होने को होता है तो उसके पहले विष्टम (मलावरोध), शरीर का दुर्बल होना, कुक्षिदेश में गुडगुड़ शब्द होना, श्वसन [हास होना] , अधिक डकार आना, जङ्घा आदि में शिथिलता होना, मल का कम निकलना, ग्रहणी और पाण्डु के समान पीड़ा होना, उदर रोग होने की शङ्का होना आदि लक्षण होते हैं ॥ १-२ ॥

अथ वाताशोसो लक्षणमाह—

गुदाङ्गुरा वहुनिलाः शुष्काश्रिमिचिमान्विताः ।

उलानाः श्यावाहणाः स्तव्या विश्वाः पर्वाः स्वराः ॥ १ ॥

मिथो विस्तद्वा चकाश्वीषणा विश्वुटित्वलनाः । विश्वीकर्कन्तुष्वर्जूकार्पासीफलसच्चिभाः ॥

केचिचक्रकद्वपुष्पाभाः केवित्सिद्धार्थकोपमाः । शिरःपार्श्वसिकटधृवृद्धुणाभ्यधिकव्यथाः ॥ ३ ॥

लवृद्धाराविष्टमहृदग्धारोत्कप्रदाः । कासच्छासाविनवैष्ट्यकण्ठादभ्रमावहाः ॥ ४ ॥

तैरातीं ग्रथितं इतोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् । रथफेनपिच्छानुगतं विष्ट्वासुपवेशयते ॥ ५ ॥

कृष्णांवृद्धनव्यविष्टमनेन्द्रवक्षत्रश्च जायते । गुलमण्डीङ्गोदराङ्गीलासम्भवस्तत एव च ॥ ६ ॥

वातज अर्श के लक्षण—वात दोष के कारण जो अर्श होता है उसमें अर्श के अड्डेर [मस्सा] सुखे हुए, चिम्चाचमाइट उत्तुर्य अर्थात् राई आदि लगाने से एक तरह की जो सूक्ष्म वेदना होती है उस प्रकार की वेदना युक्त, मुर्झाये हुये कृष्ण वर्ण के अथवा रक्त वर्ण के अकड़े हुये, पृथक् २ कर्कश और रुक्ष होते हैं और आकार में भिन्न-भिन्न, टेढ़े, तीक्ष्ण मुख वाले, फटे हुए मुख वाले, विम्बीफल, वैर, रुजूर और कपास के फल के, कोई कदम्ब के पुष्प के सदृश और कोई सरसों के आकार के होते हैं । और वातज अर्श में सिर, पाश्वदेश, कल्पा, कटिभाग, जङ्घा और पेहू में अधिक पीड़ा होती है, ढींक आना, डकार आना, विष्टम [मलावरोध], हृदय का जकड़ना, अरुचि, कास, श्वास, अग्नि की विषमता, कान में शब्द होना और अम आदि होना होता है । तथा उससे पीड़ित रोगी की गाँठयुक्त, अवप-अल्प-शब्द युक्त, प्रवाहिका के मल की भाँति लक्षण सहित, पीड़ा सहित, केन और स्निधता युक्त, बँधा ढुका मल निकलता है । तथा रोगी की त्वचा, नख, मल, मूत्र, और मुख कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं । और गुलमरीग, लीहा, उदर और अष्टोला [नाभिरथ्यान के नीचे एक गाँठ सी होती है] आदि रोग होने की सम्भावना होती है । अर्थात् ये लक्षण वात से उत्पन्न होने वाले अर्श के हैं ॥ १-२ ॥

अथ पित्ताशोलक्षणम्

पित्तोत्तरा नीलमुखा रस्यपीतास्तिग्रामाः । तन्वस्त्रावाणिविष्ट्वत्तन्वो मृदुवः श्लथाः ॥ १ ॥

शुक्रजिह्वायकृत्येष्टजलौकावक्षत्रसन्निभाः । दाहपाकजवरस्वेदसृष्टमृदुर्कृतिमोहद्वाः ॥ २ ॥

सोम्पाणी द्रवनीलोत्पातीतरकामवर्चंसः । यवमध्या हरित्पीतहारिव्रद्धकुन्तादयः ॥ ३ ॥
पित्तज अर्श के लक्षण—पित्त दोष के कारण जो अर्श होता है उसमें अर्श का अड्डर [मत्सा] नील वर्ण के सुखवाला, लाल-पीला तथा इवेत वर्ण का होता है, थोड़ा रक्त उसमें से व्यक्ति होता है, दुर्गन्ध युक्त, पतला, सृदु और स्त्रिनग्ध होता है । उस मत्से का आहार शुक पक्षी के जिहा की भाँति, यकृत के टुकड़े की भाँति, जलौका के मुख की भाँति होता है । और उसमें दाढ़, पाक, ज्वर, स्वेद, तृष्णा, मूर्छा, व्याकुलता और मोह होता है । स्पर्श में उष्ण होता है । उसमें मल द्रव, नील वर्ण का, उष्ण, पीत वर्ण का, लाल और आमसहित होता है । अड्डर का मध्य भाग यव अन्न की भाँति होता है अर्थात् अड्डर मध्य में मूर्छु होता है तथा इस रोग में त्वचा, नख आदि हरे, पीले (गन्धक के रंग के) और द्विदी के वर्ण के हो जाते हैं । अर्थात् ये लक्षण पित्तज अर्श के हैं ॥ १-३ ॥

अथ कफार्शोलक्षणम्

**श्लेष्मोत्पत्ता महामूला घना मन्दरुजः सिताः
उत्सन्नोपचिताः स्तिनग्धाः स्तब्धवृत्त्युरुस्तिराः ॥ १ ॥**
पिच्छुलाः स्तिमिताः शठचणाः कण्ठवात्याः स्पर्शनप्रियाः ।

करीरपनसारथ्याभास्तथा गोस्तनसंशिभाः ॥ २ ॥
चक्षुणानाहिनः पायुबस्तिनाभ्यवक्षिणिः । सकासधासहृलासप्रसेकाहचियीनसाः ॥ ३ ॥
मेहकुच्छिरोजाङ्गिशिरज्वरकारिणः । कलैयाश्मार्दवच्छदिरामप्रायविकारसाः ॥ ४ ॥
वसामः सकफग्राउयपुरीया सप्रवाहिकाः । न स्नवनित न मिथन्ते पाण्डुस्तिनधरवगादयः ॥ ५ ॥

कफज अर्श के लक्षण—कफ दोष के कारण जो अर्श होता है उसमें अर्श का अड्डर (मत्सा) गहरी जड़वाला घना (परस्पर मिला हुआ), मन्द-मन्द पीड़ा वाला, इवेत वर्ण का, ऊपर उठकर विस्तृत, पिच्छल, कठिन, गोलाकार, युक्त और निश्चल, स्त्रिनग्धतायुक्त [चिपचिप], यिजे हुए की भाँति, स्त्रिनग्ध, कण्ठ युक्त, स्पर्श करने पर प्रिय लगने वाला, करीर के समान आकार का, कटहृल के बीज के आकार का अथवा गौ के स्तन के आकार का होता है इसमें वड्स्त्रण [पेहु] स्थान में आनाह, गुदा, मूत्राशय, नभिस्थान इनके खींचने वाला होता है और यह अर्श कास, इवास, हल्लास, लालासाव, अरचि, पीनस रोग, प्रमेह, मूत्रकुच्छ, सिर का जकड़ना, शीतज्वर, नपुंसकता, मन्दाग्नि, वधन और प्रायः करके आम के विकार (अतीसार-प्रवाहिकादि) आदि को फरनेवाला होता है । इसमें मल वसा (च्वरी) के समान, कफ युक्त, प्रवाहिका के लक्षणों से युक्त होता है और अड्डर से न स्नाव होता है न ये अड्डर पूर्ण होते हैं तथा त्वचा, नखादिक पाण्डु वर्ण के और स्त्रिनग्ध होते हैं । अर्थात् ये लक्षण कफज अर्श के हैं ॥ १-५ ॥

अथ त्रिदोषजसहजार्शसोलक्षणम्

सर्वेः सर्वामकान्याहुर्लच्छणैः सहजानि च ॥ १ ॥

त्रिदोषज और सहज अर्श के लक्षण—जिस अर्श में तीनों दोषों के लक्षण मिले उसे त्रिदोषज जानना चाहिये । (दो दोषों के लक्षण एकत्र मिले उसे द्विदोषज जानना चाहिये) और सन्निपातज के भाँति ही सहज का भी लक्षण जानना चाहिये ॥ १ ॥

अथ रक्तार्शोलक्षणम्

रक्तोद्वयः गुदे कीलः पित्ताकृतिप्रसन्निताः । बटप्रोहमदशा गुज्जाविद्युमप्रियाः ॥ १ ॥
सेऽस्यथं दुष्मुखं च गाढवित्कप्रपीडिताः । ऋक्वन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ २ ॥

भेकाभः पीड्यते हुःस्ते शोणितश्यसम्भवैः । हीनवर्णवलोत्साहो हतौज्ञाः कलुषेन्द्रियः ।

विट् श्यार्व कठिनं रुद्धमयो वायुनं गद्धति ॥ ३ ॥

रक्तार्श के लक्षण—रक्त के दोष से उत्पन्न हुए अर्श के अड्डर (मत्से) पित्त से उत्पन्न हुए के समान आकार-प्रकार वाले होते हैं तथा वरोह के अड्डर के समान होते हैं, गुज्जा और मूर्छा के समान होते हैं, और इस अवस्था में यदि मल बैंध कर होता है तब मल के घर्षण से पीड़ित होकर अर्श के अड्डर अत्यन्त दूषित और उष्ण तथा अधिक रक्त बहाने लगते हैं अर्थात् मत्सों से दूषित, उष्ण और अधिक रक्त मल के गाढ़ होने के कारण बहते हैं । और अधिक रक्त के शरीर से निकल जाने के कारण उस मनुष्य का शरीर पीत वर्ण के मैडक के समान हो जाता है और वह रक्तश्य होने के कारण से होने वाले अन्यान्य रोग से पीड़ित हो दुःखी होता है । तथा उसका वर्ण, बल, उत्साह और ओज (पराक्रम) नष्ट हो जाता है, इन्द्रियाँ कलुषित (दुखी वा शक्तिहीन) हो जाती हैं, मल कृष्ण वर्ण का, कठिन और रुक्ष होता है और उस रोगी को अथोवायु निःसृत नहीं होती है ॥ १-३ ॥

अथ रक्तार्शसि वातादीनामनुबन्धमाह

ततु चाहणवर्णं च केनिलं चासुगर्वासाम । कल्पस्तुवशूलं च दौर्बल्यं यदि चाऽधिकम् ॥ १ ॥
तत्रानुबन्धो वातस्य हतुर्यदि च रुक्षणम् ।

रक्तार्श के वातादिक भेद से लक्षण—यदि रक्त अर्श में द्रव, अरुण वर्ण का, फेन युक्त रक्त का स्नाव हो और कटिप्रदेश, जंघा और गुदा में पीड़ा (शूल) हो, अधिक दुर्बलता हो और अर्श का कारण रुक्षाहार-विहार हो तो उस रक्तजे अर्श में वात का अनुबन्ध है [वात अधिक अंश में मिथित है] यह जानना चाहिये ॥ १-१३ ॥

शिथिलं षेतपीतं च विट् स्तिनग्धं गुरु शीतलम् ॥ ३ ॥

यद्यर्शसां धनं चासुक्तन्तुमरपाण्डुपिच्छिलम् । गुरुं सर्वपच्छं स्तिमितं गुरु स्तिनग्धं च कारणम् ॥
श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्त्र रक्तार्शसौ त्रुधः ॥ ३ ॥

यदि रक्तज अर्श में मल शिथिल, इवेत अथवा पीत वर्ण का, स्त्रिनग्ध (पिच्छिल) गुरु और शीतल निकले और अर्शाड्डर से गाढ़, तनुयुक्त अर्थात् रक्त से सम्बन्ध लूटने में तार बैंध जाने, पाण्डु (पीत) वर्ण का और पिच्छिल रक्त निकले, गुदा के सुख पर पिच्छिलता रहे और सदैव आद्रे रहे तथा अर्श का कारण गुरु और स्त्रिनग्ध आहार-विहार हो तो उसमें वुद्धिमान् वैद्य कफ का अनुबन्ध (विशेष मिथित) जाने ॥ १-३ ॥

अथ सर्वदोषकोपित्वमाह

पञ्चाम्या मासृतः पित्त कफो गुदवलित्रये । सर्व एव प्रकृत्यन्ति गुदजानां समुद्धवे ॥ १ ॥
तस्मादशार्णिमि हुःस्तानि बहुव्याधिकरणि च । सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छृतमनि च ॥ २ ॥

सब दोषों के कोप से उत्पन्न अर्श के लक्षण—पञ्चाम्या वायु, पित्त और कफ अर्थात् पांच प्रकार के (प्राण-अपान-समान-उदान और व्यान) वायु, पांच प्रकार के (आलम्बक, क्लेदक, बोधक, तपेक और इलेषक) कफ ये तीनों चक्रों में कुपित हो जाते हैं इस हेतु अर्श अत्यन्त दुःखदायक लौर अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला और सम्पूर्ण शरीर को क्लेशित करने वाला होता है और प्रायः कष्ट-साध्य होता है ॥ १-२ ॥

सुखसाध्यत्वं—बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोऽवलग्नानि च ।

अशांसिसुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ १ ॥

सुखसाध्य अर्श के लक्षण—जो अर्श गुदा के बहिर्वलि (बाह्य चक्र) में उत्पन्न हुआ हो, जिसमें एक दोष के लिए कुपित हो और जीर्ण [पुरातन] नहीं हुआ हो अर्थात् नवीन हो वह सुखसाध्य होता है ॥ १ ॥

अथ कृच्छ्रसाध्यान्याह

इन्द्रजानि द्वितीयायां वलौ जातानि यानि च ।

कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवर्त्मराणि च ॥ ३ ॥

कष्टसाध्य अर्श के लक्षण—जो अर्श दो दोषों के कोप से हुआ हो, और दूसरी वलि के आश्रय हो और एक वर्ष तक का ही पुराना हो उसे कष्टसाध्य कहा गया है ॥ ३ ॥

अथासाध्यान्याह

सहजानि विद्वोधाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम् ।

जायन्तेऽशांसिसंशिरय तान्यसाध्यानि निर्दिष्टेत् ॥ १ ॥

असाध्य अर्श के लक्षण—जो अर्श सहज [जन्म से ही हो], त्रिदोषज हो और जो गुदा के भीतर तीसरी वलि में हुआ हो वह असाध्य है ॥ १ ॥

शेषवादायुप्रस्तानि त्तुप्पादसमन्विते । याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रस्यास्येयान्यतोऽस्यथा ॥ २ ॥

असाध्य अर्श में भी वाप्य और प्रत्याख्येय भेद—सहज, त्रिदोषज और तीसरी अभ्यन्तर की वलि में हुआ भी रोगी की आयु शेष हो उस समय तक अर्थात् जब तक जीता रहे तब तक अर्श यदि चतुर्पाद युक्त हो अर्थात् रोगी, वैद्य, औषध और परिचारक ये उत्तम हों और जठरान्ति दीप्त हो तो वह वाप्य है इससे युक्त न हो तो वह असाध्य है ॥ २ ॥

अथोपद्रवादसाध्यत्वमाह

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृक्षणयोऽस्तथा ।

शोथो हृष्टपार्श्वशूल च यस्यासाध्योऽशांसो हि सः ॥ १ ॥

उपद्रव से असाध्य अर्श के लक्षण—जिस अर्श के रोगी के हाथ—पैर, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोषों में शोथ हो गया हो, हृष्टय और पैसलियों में शूल हो तो इन उपद्रवों से उसे असाध्य जानना चाहिये ॥ १ ॥

हृष्टपार्श्वशूलसंभोद्दृष्टिरङ्गस्थ रुग्गवरः । तृष्णा गुदस्थ पाकश्च निहन्युगुदजातुरम् ॥ २ ॥

जिस अर्श के रोगी को हृष्टय और पैसलियों में शूल, भोह, बमन, अङ्गों में पीड़ा, ज्वर, तृष्णा और गुदा में पाक हो गया हो तो इन उपद्रवों से वह रोगी मर जाता है अर्थात् इन लक्षणों से ही असाध्य अर्श जानना चाहिये ॥ २ ॥

तृष्णारोचकशूलार्तमिप्रस्त्रुतशोणितम् । शोशातीसासंयुक्तमशांसिस्तप्यन्ति हि ॥ ३ ॥

जिस अर्श के रोगी को तृष्णा, अरुचि, शूल तथा अधिक रक्त का आव होता हो, शोथ और अतीसार ये उपद्रव हों तो वह मर जाता है अर्थात् ये लक्षण असाध्य हैं ॥ ३ ॥

अथ स्थानान्तरेऽशांस्याह

मेदादिष्वपि लक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजान्यपि । गण्डूपद्वास्थरूपाणि पिञ्छिलानि मृदूनि च ॥

स्थानान्तर से अर्श के लक्षण—स्थान भेद से अर्थात् गुदा से अन्य शिश्न, नासिका आदि में

भी अर्श के अड्डर उत्पन्न होते हैं और नाभि स्थान में भी होते हैं । वे अड्डर (मस्ते) गण्डूपद (केचुये) के मुख के समान होते हैं तथा पिञ्छिल और कोमल होते हैं ॥ १ ॥

अथ चर्मकीललक्षणमाह

ध्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्थस्वचो बहिः । कीलोपमं स्थिरत्वं चर्मकीलं सु तं विदुः ॥

चर्मकील का लक्षण—व्यान नामक बायु कफ को ग्रहण कर त्वचा के बाहर अर्श का अड्डर उत्पन्न कर देता है वह कील की भाँति, स्थिर और स्थिर होता है, उसे 'चर्मकील' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ तस्यैव वातादिभेदेन लक्षणमाह

वातेन तोदः पारुद्यं पित्ताद्वितरकता । श्लेष्माणं स्थिरधत्ता तस्य ग्रथितव्यं स्वर्णता ॥ १ ॥

चर्मकील के वातादिक भेद से लक्षण—वात की अधिकता से जो चर्मकील होता है उसमें सूर्युमाने की भाँति पीड़ा होती है और कठिन होता है, पित्त की अधिकता से जो होता है उसमें कील का वर्ण कृष्ण और रक्त होता है, और कफ की अधिकता से उत्पन्न चर्मकील स्थिरधत्ता होती है और कील में ग्रन्थि होती है तथा वर्ण के समान ही होता है ॥ १ ॥

अथार्शश्चिकित्सां ठथाख्यास्यामः

स्नेहस्वेदादयो वाते पित्ते स्थू रेचनादयः । कफे वान्यादयोऽशांसु मिश्र मिश्रा प्रतिक्रियाः ॥

पित्तवद्रक्षजे कार्यः प्रतीकारोऽशांसिभ्रवम् ॥ १ ॥

अर्श की चिकित्सा—वात से उत्पन्न हुए अर्श में स्नेहन और स्वेदन किया करनी चाहिये, पित्त से उत्पन्न हुए में रेचन आदि किया, कफ से उत्पन्न हुए अर्श में बमन आदि मिश्रित किया करनी चाहिये और मिश्रित दोषों से उत्पन्न (द्रव्यज) और सन्निपातज अर्श में मिश्रित किया (पृथक् २ कही हुई कियाओं को) दोषानुसार एकत्रित करके करनी चाहिये, और रक्त से उत्पन्न अर्श में पित्तज अर्श के समान प्रतीकार करना चाहिये ॥ १ ॥

अशोरोगतिसारप्रहृणीविकाराः प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः ।

सन्मेदनले सन्ति न, सन्ति द्वै स रक्तदत्तसेषु विशेषतोऽश्रिम् ॥ २ ॥

प्रायः करके अर्श, अतीसार और ग्रहणी के रोग एक दूसरे के निदान होते अर्थात् एक के होने से दूसरे की सम्भावना होती है और ये तीनों रोग प्रायः अग्नि के मन्द हो जाने से उत्पन्न होते हैं और अग्नि के तीव्र होने से नहीं होते हैं इसलिये इन तीनों रोगों में विशेष कर रोगी की अग्नि दीप्त रखनी चाहिये ॥ २ ॥

त्रुमार्गाना साधनोपायश्चतुर्धारपरिकीर्तिः । भेषजज्ञारक्षाग्निसाध्यत्वं याप्यमुप्यते ॥ ३ ॥

अर्श रोग की चिकित्सा चार प्रकार की कही गयी है पहली औषध से, दूसरी क्षार विधि से, तीसरी शूल किया से और चौथी अग्नि से इन चारों प्रकार की क्रियाओं से अर्श रोग साध्य और ग्राप्य कहा गया है ॥ ३ ॥

अथ तिलादिभोदकः

तिलभूषातकं पद्ध्या गुहश्चेति समांशकम् । दुर्जामशासकासद्धं एलीहपाण्डुजवरापाण्डु ॥ १ ॥

तिलादि भोदक—तिल [काला], शुद्ध भिलावा, हर्दी और गुड़ सबको समान भाग लेकर कूट पीस कर बटी बना कर सेवन करने से अर्श, इवास और कास नष्ट होते हैं और एलीहा-पाण्डु तथा ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ मरिचादिमोदकः

मरिचमहीषधचित्रकसूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ।

सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धक्षलः ॥ १ ॥

मरिचादि मोदक—मरिच एक भाग, सोंठ दो भाग, चित्रकमूल चार भाग और सूरणकन्द आठ भाग हस भाँति से उत्तरोत्तर द्विगुण लेकर कूट पोस कर सबके बराबर गुड [पन्द्रह भाग] मिला कर मोदक बना सेवन करने से अर्थ दूर करने में इसका फल प्रसिद्ध है अर्थात् अर्थ में लाभदायक होता है ॥ १ ॥

अथ प्राणदो मोदकः

तालीसउवलनोषणाः सचिकास्तुश्या द्विभागा भवेत्

कूण्डा मूलसमन्विता त्रिपलिका शुण्ठी चतुर्जातकम् ।

स्थान्मुदिप्रमितं गुडत्रिगुणतरेभिः कृता मोदकाः

कासथासगदांश्चिमान्यगुदजप्लीहप्रमेहपद्धाः ॥ १ ॥

प्राणद मोदक—तालीसपत्र, चित्रकमूल, मरिच, चाव सब समान (एक-एक) भाग, पिपरा-मूल दो भाग, सोंठी तीन पल वा तीन भाग, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात चारों मिलित एक पल (४ तो०) अथवा एक भाग हन सब द्रव्यों को चूर्ण कर एकत्र मिला जितने प्रमाण में हो उसके तियुना गुड मिलाकर मोदक बना कर सेवन करने से कास, श्वास, विष, अग्निमान्य रोग, अर्श, प्लोहा और प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ काङ्क्षायनगुटिका

पथ्यादलस्य पलपञ्चकमेकमेकं पलं तु मरिचादिव जीरकस्य ।

कृष्णात्तुभूत्वजटाच्चिकाश्चिभूषण्यः कङ्क्षादिपञ्चकमिदं पलतः प्रचुद्धम् ॥ १ ॥

पलाष्टभूतात्कमप्रयुक्त कन्दस्त्वरुकरकाद् द्विगुणः प्रकल्प्यः

स्थाद्यावश्चकुरुवाधमतः समस्तैर्यांज्यो गुदो द्विगुणितो वटकीकृतश्च ॥ २ ॥

काङ्क्षायनेन मुनिना वटकः किलायसुकः प्रजाहितमेन गुदामयधनः ।

द्वाराभिश्चपतनैरपि ये न सिद्धाः सिद्ध्यन्त्यनेन वटकेन गुदामयास्ते ॥ ३ ॥

काङ्क्षायन गुटिका—हर्दा त्वंक् (छिलके) का चूर्ण पांच पल (२० तो०) मरिच, एक पल (४ तो०), जीरा एक पल (४ तो०), पीपरि एक पल, पिपरामूल दो पल, चाम तीन पल, चित्रकमूल चार पल और सोंठी पांच पल इस भाँति से लेकर एक दूसरे से एक पल अधिक चूर्ण कर, शुद्ध भिलावा आठ पल, सूरणकन्द सोलह पल लेकर चूर्ण कर, जवाखार अर्थ कुडव (दो पल=आठ तोला) लेकर सब एकत्र कर मर्दन कर जितने प्रमाण में हो उसके दूना गुड मिला कर बटी बना कर सेवन करे । इस बटी को 'काङ्क्षायन' मुनि ने प्रजा (जनता) के हित के लिये बताया (कहा) था इसलिए इसका नाम 'काङ्क्षायन बटी' है और यह अर्थ रोग नाशक है और इस बटी के सेवन करने से अर्श के वे अड्डर भी नष्ट हो जाते हैं जो क्षार कर्म, अश्रि कर्म और शस्त्र कर्म से भी नहीं नष्ट होते हैं अथवा नहीं नष्ट हुए हैं ॥ १-३ ॥

अथ सूरणमोदकः

चित्रकस्य पलं त्वेकं द्विपल सूरणस्य च । पलाधं नागरस्यापि मरिचं कोलमात्रकम् ॥ १ ॥

भरलातकं कणामूलं विद्धं त्रिफला कणा । तालीससहितान्सर्वान्नमात्राभ्योजयेत् ॥ २ ॥

द्वे पले वृद्धदारस्य तालमूल्यः पलं भवेत् । स्वगेला मरिचांशा च सर्वानेकत्र चूर्णयेत् ॥ ३ ॥

गुठेन मर्दयित्वा तु द्विगुणेह तुद्विगमन् । मोदकः सूरणो नाम त्वचमावप्रमाणतः ॥ ४ ॥

उपयुक्तो निष्कृत्याशु गुदकीलाश्च संशयः । कम्पित्रुद्विकरः पुंसां सेव्यमानो महागुणः ॥ ५ ॥

सूरण मोदक—चित्रकमूल एक पल, सूरणकन्द दो पल, सोंठ (२ तो०), मरिच एक कोल (आठ तोला), शुद्ध भिलावा, पिपरामूल, बाहीरंग, अवरा, हर्दा, बहेरा, पीपरि, तालीसपत्र, ये सब एक-एक अक्ष [एक-एक तो०], विधारा दो पल, तालमूली [मूसली] एक पल, दालचीनी और इलायची दोनों पूर्वोंक मरिच के बराबर एक-एक कोल लेकर सब ओषधियों को चूर्ण कर जितने प्रमाण में सब एकत्र करने हों उसके द्विगुणा गुड मिला कर एक अक्ष [एक तो०] के प्रमाण की बटी बना कर सेवन करने से अर्श के अड्डर को निश्चय ही नष्ट करता है और अग्निवर्धक तथा अनेक प्रकार के महान् गुणों को करने वाला होता है ॥ १-५ ॥

द्वितीयः—शूलकासूरणकन्दतोड्यमिलितं ध्योंतं तथा चित्रकं

श्रेष्ठाजीरकरामठं समलवं दीप्याजमोदान्वितम् ।

सर्वस्याक्षिग्रिकमिन्युजं परिभवेत्तिम्बुद्ववैर्वासिरं

सिद्धः सूरणमोदको गदहरः श्रेष्ठो भवेत्प्राणिनाम् ॥ १ ॥

शूलं संग्रहणीगदं त्वतिष्ठाति दुष्टां प्रवाहीं जयेष-

द्वीपांग्मि कुरुते वलं वित्तनुते गुलमप्रणाशं तथा ।

अर्शार्थुद्वतमारुतामयहरो बाले च वृद्धे हितो

गर्भिण्यां च न शास्यते न निपुणों रक्तपित्तेऽपि च ॥ २ ॥

द्वितीय सूरणमोदक—सूखे हुए सूरणकन्द का चूर्ण एक भाग, सोंठि, पीपरि, मरिच तीनों का समभाग मिलित चूर्ण आधा भाग, चित्रकमूल, अंवरा, हर्दा, बहेरा, जीरा, हींग, अजवाहन, अजमोदा, प्रत्येक का चूर्ण एक २ भाग, सेंधा नमक सब द्रव्यों के मिलित चूर्णों के चतुर्थांश भाग, चूर्ण कर मिलावे और एकत्र मर्दन कर नीरू के रस की एक दिन भावना देकर बटी बनाकर सेवन करने से रोगों को नष्ट करता है तथा मनुष्यों के लिये उत्तम है तथा शूल, संग्रहणी, अतीसार, दुष्ट प्रवाहिका रोग को नष्ट करता है, अग्नि को दीप्त करता है, बलवर्धक होता है, गुलम का नाश करता है, अर्शरोग तथा बढ़ी हुई वायु के रोग, बालक और वृद्ध के लिये हितकर है । किन्तु निपुण वैद्य गर्भिणी और रक्तपित्त बाले के लिये हितकर नहीं है अतः इन्हें न दें ॥ १-२ ॥

अथ सूरणपुटपाकः

मृद्धिसं सौरणं कन्दं पवस्त्राऽसौ पुटपाकवत् । दशात्सतैलवर्णं दुर्नामिविनिवृत्ये ॥ ३ ॥

सूरण पुटपाक—सूरण कन्द को मिट्टी में लेपें कर पुटपाक की विधि से अग्नि में पाक कर उसमें तेल और नमक मिलाकर सेवन करने से अर्श रोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

सौरणं कन्दमाद्याय पुटपाकेन पाचयेत् । सतैलगुडसंयुक्तो दसश्चाश्चोदिकारनुत् ॥ २ ॥

सूरणकन्द को लाकर पुटपाक की विधि से पाका कर तेल और गुड मिलाकर सेवन करने से अर्श रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ बाहुशालगुडः

हन्द्रवाशणिका सुरता शुण्ठी दृष्टी वृद्धिनि गोज्जुरविक्रस्तथा ॥ १ ॥

तेजोऽहा च द्रिक्षर्णिणि पृथग्द्रव्याणि काशेत् । सूरणस्य पलान्यष्टौ वृद्धदारश्चतुष्पलम् ॥ २ ॥

चतुष्पलं स्थान्मज्जातं काथयेत्सर्वमेकतः । जलद्रोणे चतुर्थांशं गुह्यीयाकायमुत्तमम् ॥ ३ ॥

योगरत्नाकरः

काथ्यद्रव्यात् त्रिगुणितं गुडं विष्टवा पुनः पचेत् ।

सम्यकपकं च तं ज्ञात्वा चूणीयेतानि दापयेत् ॥ ४ ॥

चित्रकच्छिवृता दन्तीते जाह्ना पलिकः पृथक् । पृथक्षित्रपलिकः कार्या व्योषेलामरिच्चवचः ॥
निचिपेन्मधु जीते च तस्मिन्प्रस्थप्रमाणकम् । एवं सिद्धो भवेच्छामान्बाहुशालो गुडः शुभः ॥
जगेदर्शासि सर्वाणि गुणमान्वातोदरं तथा । आमवातं प्रतिश्वयायं ग्रहीच्छयीनसान् ॥

हलीमकं पाण्डुरोगं प्रमेहं च इसायनम् ॥ ५ ॥

बाहुशाल गुड—इन्द्रवारुणी [इन्द्रायण—माहरि], नागरमोथा, सोंठि, दन्तीमूल, हरैं, निशोथ, कन्चुर, वाभीरंग, गोखरू, चित्रकमूल और तेजबल की छाल, इन प्रत्येक द्रव्यों को दो-दो कर्षे लेके, सूराकन्द आठ पल [३२ तो०], विधारा चार पल [१६ तो०], शुद्ध मिलाका चार पल लेकर सबको एकत्र कर एक द्रोण (१६ सेर) जल के साथ काथ की विधि से पाक करे चतुर्थीश जल शैष रहने पर उतार-छान कर इनमें काथ्य द्रव्य से तिगुणा गुड़ (६४३ पल) मिला घोल कर गुडपाक की विधि से पुनः पाक करे जब भली माँति पाक हो जावे तब आगे कहे हुए द्रव्यों के चूर्ण को मिलावे—चित्रकमूल, निशोथ, दन्तीमूल, तेजबल की छाल, ये चारों पृथक् २ एक-एक पल, सोंठि, पीपरि, मरिच तीनों समान मिश्रित ३ पल (प्रत्येक एक-एक पल), इलायची के दाने, मरिच, दालचीनी प्रत्येक ३-४ पल इन सब द्रव्यों के चूर्ण को पाक में मिला कर उतार लेवे और पाक जब शीतल हो जावे तब उसमें मधु एक प्रस्थ (६४ तो०) मिला कर श्रीमान् ‘बाहुशाल गुड़’ नामक गुड़ को सिद्ध कर सेवन करने से सब प्रकार के अर्श, गुल्म, वातरोग, उदररोग, आमवात, प्रतिश्वयाय, ग्रहणी, क्षय, वीनस, हलीमक, पाण्डुरोग और प्रमेह ये सब नष्ट होते हैं और रसायन हैं ॥ ५-७ ॥

अथागस्तिमोदकः

हरीतकीनां विषपलं ग्रीष्माच्छाणि कटुत्रिकम् । रवदपत्रकं चार्थपलं गुडस्थाष्पलं मतम् ॥ १ ॥
अगस्तिमोदकानेतान्कदिपतान् परिभृयेत् । शोफाशांग्रहणीदोषकासोदावर्तनाशनान् ॥ २ ॥

अगस्तिमोदक—हर्दा तीन पल, सोंठि, पीपरि, मरिच तीनों मिलाकर तीन पल, दालचीनी और तेजपात आधा-आधा पल [दो-दो तो०] इन सब द्रव्यों को चूर्ण कर इसमें आठ पल गुड मिला कर मोदक बनाकर विधिवत् सेवन करने से शोथ, अर्श, ग्रहणी के दोष, कास और उदावर्त रोग को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ लघुसूरणमोदकः

कणामरिचविधादिनसूरणैस्तु गुड़ेः क्रमात् । द्विगुणैर्मोदकोऽशोष्णः परं पाचनदीपनः ॥ १ ॥

लघुसूरणमोदक—पीपरि १ भाग, मरिच २ भाग, सोंठ ४ भाग, चित्त ८ भाग, सूरण कन्द १६ भाग इस माँति से चूर्ण कर गुण लेकर ३२ भाग गुड मिलाकर मोदक की विधि से मोदक बनाकर सेवन करने से अर्श रोग नष्ट होता है, और अत्यन्त पाचन तथा दीपन है ॥ १ ॥

अथ बृहद्भलात्कलेहः

सुपक्षभलात्कलानि सम्यग्द्विधा विधायाऽऽदकसमितानि ।

विपाक्य तोयेन चतुर्गुणेन चतुर्थेषै उपयनीय तानि ॥ १ ॥

पुनः पचेत्वैरचतुर्गुणेन वृतांशयुक्तेन वनं यथा स्यात् ।

सितोपला घोड़शभिः पलश्च विमर्शं संस्थयाप्य दिनानि सप्त ॥ २ ॥

तसः प्रयोगपात्रिनवलेन मात्रा जयेद्विकारानस्तिलाम्बुद्धोथान् ।

अर्शोरोगचिकित्सा

कचान्मुनीलास्थनकुञ्जिताग्रान्तुपर्णदृष्टिं च शशाङ्ककान्तिम् ॥ ३ ॥

जब हयानां बलमुत्तमं च स्वरं मयूरस्य हुताशदीसिम् ।

खीबलभृत्वं विविधप्रभावं चीरोगतां हित्रिशतासुप्तं च ॥ ४ ॥

न चाक्षपाने परिहार्यमस्ति न चाऽऽस्तपे नाध्वनि मैथुने च ।

प्रयोगकाले सकलाभयानां राजाधिराजश्च इमायनानाम् ॥ ५ ॥

बृहद्भलात्कलेह—पके हुए उत्तम शुद्ध मिलावा का फल दो-दो भाग अर्थात् दो-दो खंड कर एक आढ़क [चार सेर] लेकर चौमुने जल [चार आढ़क=सोलह सेर] में डालकर काथ विधि से काथ कर चतुर्थीश शैष रहने पर उतार-छान कर पुः उसमें जागुना अर्थात् चार आढ़क [१६ सेर] गाय का दूध मिला कर और काथ के एक अंश [एक प्रस्थ] गाय का धृत मिलाकर तब तक पाक करे जब तक गाढ़ा (खोआ) न हो जावे, खोआ हो जाने पर उसमें मिश्री १६ पल (६४ तो०) चूर्ण मिला कर मर्दन करे भलीमौति मदित हो जाने पर सात दिन तक रख देवे पश्चात् अभिवल के अनुसार मात्रा से सेवन करने से सब प्रकार के अर्श रोग को नष्ट करता है, और बाल अत्यन्त कृष्ण वर्ण, घने और ऊंचाराले होते हैं, गरुड़ के समान दृष्टि होती है, चन्द्रमा के समान शरीर की कानित होती है, घोड़े के समान वेग और बल होता है, मोर के समान स्वर होता है, जठराशि तीव्र होती है, खी की वह प्रिय होता है अर्थात् मैथुन शक्ति की वृद्धि होती है और शरीर पर अनेक प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं, आरोग्य होता है, दो-तीन सौ वर्ष तक की आयु होती है और इसके सेवन करने के समय में अन्न-पानादिका का परिहार नहीं है, न अतंप, न मार्ग, न मैथुन किसी भी कार्य के लिये इसमें त्याग करना नहीं है अर्थात् कुछ निषेध नहीं है इसके प्रभाव से सब रोग नष्ट होते हैं । यह सब रसायनों का राजा है (१) .. १-५ ॥

अथार्शसि शर्करासवः

दुरालभायाः प्रस्थं च विश्रकस्य वृषस्य च । पश्यामलकयोश्चैव पाठाया नागरस्य च ॥ १ ॥

द्वादशद्विपलिकान्भागासुलद्वोणे विषाचयेत् । पादशेषे इसे पूते सुधीते शर्कराशतम् ॥ २ ॥

द्वादश कुर्मे दृष्टे च्याण्यं मासार्थं धृतभाजने । प्रलिसे पिपलीचययपियहुमधुसर्पिष्ठा ॥ ३ ॥

तस्य मात्रां विवेकाले शार्करस्य यथावलम् । अर्जोनिम ग्रहणीरोगमुदावर्तमरोचकम् ॥ ४ ॥

शक्रन्मव्रामिलोद्रावद्विवद्वानिनमाद्रेवम् । हृदयं पाण्डुरोगं स सर्वरोगान्प्रणाशयेत् ॥ ५ ॥

अर्जी रोग में शर्करासव—जवासा एक प्रस्थ (६४ तो०), चित्रकमूल, अरुसा, हरा, अंवरा, पुरहनपाढ़ी, सोंठि ये सब द्रव्य दो-दो पल लेकर एक द्रोण (१६ नेर) जल में काथ की विधि से पाक कर चतुर्थीश शैष रहने पर उतार-छानकर शीतल होने पर उसमें शक्तर (४०० तो०) मिलावे इसके पश्चात् धृत के मिट्टीपात्र को पीपरि, चाव, फूलप्रियहु का चूर्ण, मधु और धृत चूपड़ कर इसके साथ उपर्युक्त मिलित चंचाथ देकर आसव संधान की विधि से सन्धान करे और आसव के विधानानुसार प्रक्षेप द्रव्यों (पिपल्यादि को) को मिश्रित कर द्रव्य के दर्शाश भाग चूर्ण देवे और १५ दिन अथवा एक मास तक मुख बन्द कर रख सिद्ध होनेपर दानकर यथावल मात्रा से सेवन करने से अर्श, ग्रहणी का रोग, उदावर्त, अरुचि, मल-मूत्र का अवरोध, वायु का अवरोध, डकार, मलबद्धता, मन्दाद्यि, हृदय, पाण्डुरोग और सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५॥

(१) इसको (भलात्क को) काथ करने के समय ध्यान रखना चाहिये कि बाध्य या छोटे देह पर न पड़े । और कोई कार्य इसके सेवन में निषिद्ध नहीं है पर यदि पथ्य से रहंकर सेवन किया जाय तो विशेष लाभकारक है ।

अथ द्राक्षासवः

द्राक्षापलशात् दत्ता चतुर्दोषेऽमवां पचेत् । द्वोणशेषे रसे तस्मिन्पूतशेषे प्रदायेत् ॥ १ ॥
शार्करायाऽस्तुर्लोक्य दत्ता तत्त्वयं मधुनस्तथा । पलानि सप्त धातुक्याः स्थापयेद्ब्रह्मभाजने ॥२॥
जातीलवङ्गकङ्गोललवलीफलचन्दनैः । कृष्णाभिग्रन्थमयुक्तेभिर्गैरव्यपलाशाकैः ॥ ३ ॥
श्रिसप्ताहाङ्गवेषया तस्य मात्रा यथाबलम् । नामना द्राक्षासवो शेष नाशयेद् गुदकीलकान् ॥
शोषारोचकद्वपाण्डुरक्षपित्तभगन्दरान् । गुहमोदरकृमिग्रन्थिचतुर्षोषजवरान्तकृत् ॥

वातपित्तप्रशमनः शस्तश्च बलवर्णकृत् ॥ ५ ॥

द्राक्षासव—द्राक्षा (दाख या मुनका) सौ पल लेकर चार द्रोण (६४ सेर) जल के साथ क्वाथ की विधि से पाक करे और चतुर्थीश शेष रहने पर (एक द्रोण = १६ सेर) उत्तराशानकर शीतल कर उसमें एक तुला (सौ पल) शक्रर देवे और मधु सौ पल देवे, सात पल (२८ तो ०) धाय के फूल का चूर्ण देवे इन सबको मिलाकर एक धृत के मिट्टी के पात्र में रख कर उसमें जायफर, लवङ्ग, कंकोल मरिच, लवली फल (हरफारेवडी), लालचन्दन, पीपड़ि, दालचीनी, इलायची, तेजपात, इन प्रत्येक द्रव्यों का इलक्षण चूर्ण आधा-आधा पल (दो-दो तो ०) देकर आसव की विधि से मुख मुद्रा कर तीन सप्ताह तक रख देवे पश्चात् आसव सिद्ध हो जाने पर बलानुसार मात्रा से सेवन करने से यह 'द्राक्षासव' अर्शों के अङ्गुरों (मस्तों) को नष्ट करता है तथा शोषोग, अरुचि, हद्रोग, पाण्डु, रक्तपित्त, भगन्दर, गुलम, उदर, कुमि, रोग, क्षय, शोषजवर आदि को नष्ट करता है, वातपित्त को शान्त करता है और बल तथा वर्ण करने में प्रशस्त है ॥ १-५ ॥

अथ समशक्तरचूर्णम्

शृण्डीकणामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णकृतं क्रमविवितमूर्खमन्त्यात् ।
स्वादेविदं समितिं गुदजाप्तिमान्द्यागुलमोदरस्यथुषपाण्डुगुदोऽप्तेषु ॥ १ ॥

समशक्तरचूर्ण—नीचे से ऊपर को कम से एक २ बड़ाकर इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, मरिच ५ भाग, पीपरि ६ भाग और सौंठि ७ भाग लेकर चूर्ण कर सबके समान शक्रकर मिलाकर सेवन करने से अर्श, मन्दाग्नि, गुलम, उदर, शोथ, पाण्डु और अन्यान्य गुदा से उत्पन्न होनेवाले रोग सभी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ अयोषाद्यं चूर्णम्

अयोषाग्न्यस्वकरविद्वत्तिलाभयानां चूर्णं गुडेन सहितं सप्ततं प्रयोजयम् ।
दुर्गमिशोपगरकुष्ठशक्रहृद्वन्धमनेजंश्यवलतां कृमिपाण्डुतां च ॥ १ ॥

अयोषादि चूर्ण—सौंठि, पीपरि, मरिच, चिक्रमूल, शुद्ध भिलावा, बाभीरंग, तिल, हर्दी, प्रत्येक द्रव्य समान लेकर चूर्णकर चूर्ण के समान गुड मिलाकर निरन्तर इस चूर्ण को सेवन करते से अर्श, शोथ, गरविष विकार, कुष्ठ, मलावरोध, मन्दाग्नि, कुमि और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥ चूर्णं चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणे गुडः । गुडव्योषवरावेष्टिलाकृकरचित्रकैः ॥

अर्शार्सि हन्ति गुटिका त्वं विवकारं च शीलिता ॥ २ ॥

अन्यान्य योग—चूर्ण बनाने में गुड देना हो वहां, गुड अन्य द्रव्यों के चूर्ण के समान देना चाहिये और मोदक (वटी) बनाने में गुड देना हो वहां अन्य द्रव्यों के चूर्ण के दुगुना देना चाहिये । गुड, सौंठि, पीपरि, मरिच, अंवरा, हर्दी, उदरा, बाभीरंग, तिल, शुद्ध भिलावा, चिक्रमूल इन द्रव्यों को लेकर वटी की विधि से वटी बनाकर अर्थात् प्रथम गुड को द्वितीय शेष दस

अर्शरोगचिकित्सा

द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर सब चूर्ण जितना हो उसके दुगुना गुड मिलाकर वटी बनाकर सेवन करने से अर्श तथा त्वचा के विकार नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गुडेन शृण्ठीमथवोपकृत्यां पथ्यं तृतीयामथ दाढिमं च ।
आमेषजीणेषु गुदामयेषु वर्चोविवन्धेषु च नियमशात् ॥ ३ ॥

१—सौंठ का चूर्ण, अथवा २—पीपरि का चूर्ण अथवा ३—हर्दी का चूर्ण अथवा ४—अनार दाने का चूर्ण इन चारों योगों में से किसी एक को गुड के साथ सेवन करने से आमदोष, अजीर्ण, गुदा के रोग [अर्श], भलवद्धता आदि नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

शार्कराया युतसूत्राकन्दः कुञ्जरकेसरमेव तथाऽन्यतः ।

द्वौद्रयुर्सं नवनीतमयो वा सूदनकारणमर्शसं पथ ॥ ४ ॥

शक्रकर के साथ १—सूरणन् [थोल] का चूर्ण अथवा २—नागकेशर का चूर्ण सेवन करने से अथवा ३—मधु भिला दुआ मक्खन सेवन करने से अर्शरोग का नाश होता है ॥ ४ ॥

समूलपत्रकोकर्म्मे पलद्वयमितं शुभम् । अशलातकलमउजायो मरिचस्य पलं पलम् ॥ ५ ॥
एषस्वच्छुर्णकृतं सूचमं भूषयेक्षर्वसग्निमतम् । अशोऽङ्गुराश्चहन्त्याग्न्यसाम्यान्तरामयि ॥५॥

कोकम् [कोकम बर्बई में प्राप्त] का पश्चान्न दो पल [८ तो ०] गुद भिलावे की भागी एक पल [चार तोला] मरिच एक पल इनका सूक्ष्म [श्लक्षण] चूर्ण कर के यह कर्द प्रमाण [१ तो ०] की मात्रा से सेवन करने से अर्श के अङ्गुर को शीघ्र नष्ट करता है, वह अङ्गुर बाहर हो अथवा भीतर हो ॥ ५-६ ॥

हुःपक्षंकेन विश्वेन यवान्या नागरेण वा । एकैनापि संयुक्ता पाठा हन्यर्शसां ऋग्य ॥७॥

१—जवासा के चूर्ण या २—विलफल की गुही वा ३—अजवाइन के चूर्ण अथवा ४—सौंठि के चूर्ण इनमें से किसी एक योग के साथ पुरुहनपाढी का चूर्ण सेवन करने से अर्श की पोड़ा नष्ट होती है ॥ ७ ॥

अपामार्गस्य बीजानां कल्पकं तण्डुलशारिणा । पीतं रकाशसां नाशं कुरुते नाशं संशयः ॥८॥

अपामार्ग [चिचिदा] के बीज का विधिवत् कल्प बनाकर चालक के धोबन के साथ पीते ते रक्तज अर्श का नाश करता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

चन्दनकिराततिक्कधन्वयवासः सनागराः कथिताः ।

रकाशसां प्रशमना द्वार्चित्वगुशीरिनिष्वाम ॥ ९ ॥

१—लालचन्दन, चिरता, जवासा और सौंठि इन द्रव्यों का अथवा २—दालहरदी, दालचीनी, खस, नीम की छाल इन द्रव्यों का विधिवत् काथ बनाकर सेवन करने से रक्तज अर्श शार्कर होता है ॥ ९ ॥

विद्विश्वन्धे हितं तक्तं यवानीविश्वसंयुतम् । च प्ररोहन्ति गुदाः प्रायस्तक्षसमाहाताः ॥१०॥

अर्श रोग में यदि मलावरोध हो तो अजवाइन और सौंठि का चूर्ण भिला दुआ तक [मद्दक] सेवन करना हितकर है अर्थात् मलावरोध संहित अर्श नष्ट होता है और तक से नष्ट होके लाले अङ्गुर प्रायः पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ १० ॥

यो जातो गोरसः द्वीराद्विमूलावचूर्णितात् । पिवैस्तमेव तेनैव भुजानी गुदजात्ययत ॥११॥

चित्रकमूल [के चूर्ण] को गाय के दूध में देकर वही जमा कर तक बनावे इस तक का पात्र से अथवा उसके अलाभीजन करने से अर्श के अङ्गुर जट होते हैं ॥ ११ ॥

२० यो० पू०

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

पिवेद्वद्वद्वस्तकं निरशो वा प्रकाशतः । सताह वा दशाह वा मासाधं मासमेव वा ॥ १२ ॥
बलकालविकारज्ञा विषक तक्ष अयोजयेत् ।

तक्ष योग—रोगी का बल, काल और विकार [रोग] को जान कर वैद्य-दिन प्रतिदिन क्षेवल तक पान करावे और अन्न न देवे इस प्रकार सात दिन, दस दिन, अर्धमास (१५ दिन) अथवा एक मास तक पिलावे ॥ १२-१२३ ॥

हुरीतर्कीं तक्षयुतां विफलां वा प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

१—हरें के चूर्ण अथवा २—विफला के चूर्ण के साथ तक का सेवन करावे ॥ १३ ॥

चित्रकं हुपुषा हिङ्कु दधादा तक्षसंयुतम् । पञ्चकोलकुरुक्त वा तक्षेण्यं प्रदापयेत् ॥ १४ ॥

१—चित्रकमूल, हाऊबेर और हींग के चूर्ण के साथ अथवा २—पञ्चकोल (पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्रकमूल और सौंठि) के चूर्ण के साथ तक सेवन करें ॥ १४ ॥

रवचं चित्रकमूलस्य विष्टुा कुम्भं प्रलेपयेत् । तक वा दधि वा तत्र जातमशोहरं विवेत् ॥

तक्षेणाशास्ति हृन्यते मुसलीकटुकाग्निना ॥ १५ ॥

चित्रकमूल की त्वचा जल के साथ पीस कर एक घड़े में लेप कर उसमें दूध औंटा हुआ देकर दही जमा लेवे वह दही अथवा उस दही का तक सेवन करने से अर्श को नष्ट करता है । और सुली, कुट्टी तथा चित्रकमूल के चूर्ण के साथ तक पीने से अर्श नष्ट होता है ॥ १५ ॥

अरलुत्वचवहिसुरेन्द्रयवाक्षिरविलक्षससेन्धवशुणिठयुतान् ।

मथितेन पिवेद्यहि सप्तदिनं गुदज्ञा निपत्वन्ति समूलबलाः ॥ १६ ॥

सोनापाठा को छाल, चित्र के मूल का छाल, इन्द्रजात, चिरविलव (करज), सेवा नमक, सौंठि इनके चूर्ण के साथ सात दिन यदि तक पिया जावे तो अर्श रोग के अड्डेर समूल नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥

अथ हुपुषादितकारिष्टः

हुपुषा कुक्षिका आन्यमजाजी कारवी जटी । पिपलो मूलं चित्रका गजपिपली ४३ ॥
चित्रानी चाजमोदा च तक्षचूर्णं तक्षसंयुतम् । मन्दिरालकटुकं विद्वान्द्वयापत्रेऽद्वृत्तमाजने ॥ २ ॥
ध्यक्षालकटुकं जातं तक्षारिष्टं कटुप्रियम् । प्रपित्रेन्मत्रया काले त्वचस्य तुवितस्तथा ॥ ३ ॥
दीपनं रोचनं वर्णं कषपाताङ्गुलामनम् । गुरु॒ध्ययुक्तं वातिनाशनं यलवर्धनम् ॥ ४ ॥

हुपुषादितकारिष्ट—हाऊबेर, मेथी, धनियां, जीरा, कालाजीरा, कचूर, पीपरि, पिपरामूल, चित्र के जड़ की लाल, गजपीपरि, अजवाइन, अजमोदा, इन सब द्रव्यों को समान लेकर लक्षण चूर्ण कर तक में उस समय मिलावे जब कि तक में अम्लता और कटुता मन्द ही रहे फिर धृत पात्र में विद्वान् वैद्य अरिष्ट संधान की विधि से रख देवे और जब उसमें अम्लता और कटुता प्रकट हो जावे तब कटुप्रिय रोगी मात्रा से अन्न के समय अथवा तुषा के समय पीवे । इससे अरिष्ट दीप द्वारा होती है, यह रुचिकारक, वर्णकारक, कफ तथा वायु को अनुलोभन करने वाला, हुदा का शीथ, कण्ठ और पीड़ा को नष्ट करने वाला तथा वलवर्धक है ॥ १-४ ॥

अथ धृतानि

चव्यादिधृतम्—

चव्यं चिक्कटुकं पाठा चारं कुस्तुशुरुणि च । यवानि पिपलोमूलसुमे च विद्वैन्यवे ॥ १ ॥
चित्रकं विलक्षमभयां पिष्टुा सर्विंविषाच्चयेत् । शक्तात्मुलोसार्थं जले दिन चतुर्गुणे ॥ २ ॥

प्रवाहिका गुदधृतं दूयहृतं परिस्थम् । गुदनद्वत्तशुलं च धृतमेतद् ज्योहति ॥ ३ ॥

धृत प्रकारण में प्रथम चयादि धृत—चाव, सौंठि, पीपरि, पुरानपादी, जवाखार, धनिया, अजवाइन, पिपरामूल, विलक्षवण, सेवानमक, चित्रकमूल, बेल का गुदा और दूरा इन सब द्रव्यों को समान लेकर जल से पीसकर विषपूर्वक कल्प कर जितना ही उसके चौगुना मूर्च्छित गाय और धृत से चौगुना जल तथा दही मिला कर धृतपाक की विधि से पाक कर धृतमात्र दूषने पर उतार-छान कर सेवन करने से प्रवाहिका रोग, गुदधृत, मूत्रधृत, परिस्थरोग (जली से स्वाव होना), गुदा तथा वृक्षण का शूल आदि सब नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

शुण्ठीधृतम्—

विशत्पलानि शुण्ठीमां जलद्रोणे विपाच्येत् । तेन पादाच्चोषेण कल्पके सासा पचेद् धृतम् ॥
कुर्मामधासकासधनं पलीहपाण्डवामयापहम् । विषमध्वरशास्त्र्यथ तुण्डारोचक्षमाशनम् ॥
शुण्ठीधृतसिद्धं चायातं कृष्णाश्रेण्यं पूजितम् । नागरेण जले पश्चं चस्तिकुण्डिगदापहम् ॥ ४ ॥

शुण्ठी धृत—तीस पल [१२० तो०] सौंठि को लेकर एक द्रोण (१६ सेर) जल में पाक करे जब चतुर्थीश [४ सेर] शेष रहे तब उतार-छान लेवे । काश जितना ही उसका चतुर्थीश मूर्च्छित गाय का ग्रीं और धीं से चतुर्थीश सौंठि का कल्प मिला कर धृत पाक की विधि से पाक कर धृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से अश्व श्वास, कास, प्लीहा और पाण्डुरोग नष्ट होता है, विषमज्वर की शान्त करता है, तुषा, अरुचि को नष्ट करता है । यह 'शुण्ठी धृत' अथ ग्रष्टि के पुत्र कृष्ण ग्रष्टि का कहा है सौंठि के साथ जल में यह धीं पकाया जाता है, इससे यह बस्ति तथा कुक्षि के रोगों को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

लघुचव्यादिधृतम्—

चायपतिकलिङ्गानि शताह्ना लघवानि च । सर्विरशोविकारधनं ग्रहणीशीपनं परम् ॥ १ ॥

लघुचव्यादि धृत—चाव, चिरैता, इन्द्रजी के वृक्ष की छाल, सौंफ और पांचों नमक इन सब द्रव्यों का कल्प बना इसके चौगुना मूर्च्छित गाय का ग्रीं और धीसे चौगुना जल देकर धृत पाक की विधि से पाक कर धृतमात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से अर्श का विकार नष्ट होता है, और ग्रहणी को परम दीपन करता है ॥ १ ॥

हीवरादिधृतम्—

हीवरेसुरपलं लोध्रं समझाच्छ्वयचन्दनम् । पाठा सातिविषा विश्वं धातको देवदाह च ॥ २ ॥
दार्ढी त्वद्वानागरं मासीं सुरस्तं लारो चवाग्रजः । चित्रकश्चेति पेत्याणि चाङ्गेशीस्वरसे धृतम् ॥
प्रकट्र साध्येत्यसं तत्सर्विः परमीष्यम् । अर्णोउतिसारग्रहणीपाण्डुरोगे उदरेऽहम् ॥ २ ॥
मूत्रकृष्टं गुदधृते वस्थानाहप्रवाहिके । पिष्टुात्मवेऽर्णसां शुले योउयमेतत्तिष्ठद् ॥ ४ ॥

हीवरादि धृत—सुगन्धवाला, नीलोत्पल (नीलोफर), लोध, मजीठ, चाव, लाल चन्दन, पुरानपादी, अतीस, बेल की गुदी, धाय के फूल, देवदार, दारुहरदी, दालचीनी सौंठि, जटामासी, नागरमोथा, जवाखार, चित्रकमूल, इन द्रव्यों को समान भाग लेकर विषवृत् कल्प बना कर कल्प के चौगुना मूर्च्छित गाय का ग्रीं वाया धीं से चौगुना चाङ्गेरी (अमलोगी) धीं का रस गिलाकर पृथपाक की विधि से पाक कर धृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करे । अर्श, अतीसार, अहणी, पाण्डुरोग, जवर, अरुचि, मूत्रकृष्ट, गुदधृत, वस्थाना हप्रवाहिका, पिष्टुात्मवेऽर्णसां शुले योउयमेतत्तिष्ठद् ॥ १-४ ॥

अथ लेपः। सचाकाण्डं कटुकाळावपञ्चवात् । करञ्जे बहुमूलेण लेपनं श्रेष्ठमशीसाम् ॥ १ ॥

अर्जे में लेप विधि—मदार का दूध, सेहुड़ का ढंडा, कटुकुम्बी के पत्ते, कटुकरजा इन सबको समाच लेकर बकरे के मूत्र में पीसकर अर्जे पर लेप करना श्रेष्ठ है, इससे अर्जे नष्ट होता है ॥ १ ॥

सिंधुधृतं देवदारयात्र बीजं काञ्जिकप्रेषितम् । गुदाकुराप्रलेपनं पातयत्यध्वलासपि ॥ २ ॥

सेथानमक, बाज्जकोडे का बीज इन कोंजी में पीस कर अर्जे पर लेप करने से अचल अर्जे का अद्वार भी नष्ट होता है ॥ २ ॥

कृष्णाक्षीरीयबीजार्कवीरः । डिरद्वात्रस्तिविहगुज्ञामोमूलैः पिण्डीयुतैः ॥ ३ ॥

एतद्वेषप्रयं योदये शीघ्रमशार्देविनाशनम् ।

१—पीपरि, सिरिस का बीज, मदार का दूध अथवा ३—पीपरि, सिरिस का बीज, मदार का दूध, सेहुड़ का ढंडा, सेथानमक अथवा ३—हरदी, छक्का (भाल), की विश्वा, गुज्ञा (बुधची), गोमूत्र और पीपरि इन तीन योगों में से किसी एक को पीस कर लेप करने से श्रीष्ट अर्जे रोग नष्ट होता है ॥ ३—३३ ॥

उद्योतिष्ठाबीजकलेन लेपो रक्तादासां हितः ॥ ४ ॥

कोशातकं रजोधर्षीष्ठिपतन्तिं गुदोद्धाराः ।

अर्थोतिष्ठमती (भालकागुनी) के बीज के कल्प का लेप रक्त अर्जे के लिये हितकर है । कड्डी तरोदी के चूर्ण की अर्जे के अद्वार पर मदेन करने से अद्वार नष्ट होते हैं ॥ ४—४३ ॥

निशाकाशातकीचूर्णं स्तुवपयः संन्धवान्वत्तम् ॥

गोमूलेण ममायुक्तं लेपो दुर्नामनाशनः ॥ ५ ॥

इरटी, कड्डी तरोदी इनका चूर्ण, सेहुड़ का दूध, सेथानमक इनको गोमूल में मिला कर लेप करने से अर्जे नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ धूपः। अथ धूपं च । अकमूलं शामीद्विमर्शांभ्यो धूपनं हितम् ॥ १ ॥

मृकेशाद्यसर्पिमोक्षो द्वयदर्शस्य चर्मं च । अकमूलं शामीद्विमर्शांभ्यो धूपनं हितम् ॥ १ ॥

अथ सूक्ष्मविधि—मनुष्य का केश, सौप की केचुल, बिल्ली का चर्म, आक का मूल और शमी धूप का पचा इन द्रव्यों के द्वारा अर्जे धूपित करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

राल धूपं च । धूमदणेन युवराजादशोरितस्यावो भित्तिर्ते ॥ २ ॥

राल का चूर्ण सरसों के तेल में मिला कर उत्तिष्ठवक अर्जे को धूपित करने से अर्जे का रोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

प्रेषमपिष्ठं पलमेव हितु शाणार्धमाहुकरमण्डिसंवयम् ॥

गोहं का आटा एक पल, हींग आधा शाण (२ मासा), मिलावा त्वार दाना, इन का धूप देने

से गुदा का शुद्ध नष्ट होता है और अर्जे के अद्वार नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

अथ धूपं च । अथ धूपं च ।

विषविग्रहगतिः सुन्दरं द्वयं समहृतभुग्याऽद्वद कन्वकः सप्तवाप्तम् ।

प्रबलगुदुकजालं हान्ति नित्योदितोऽसावनलहतिष्वचन्धं सुखमात्रः सप्तवाप्तम् ॥ १ ॥

रस प्रकरण—नित्योदित रस-शुद्ध विष, तात्र भस्म, अन्नक भस्म, लोह भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक इन सब को समान भाग लेवे और एक के बराबर वित्त की जड़ का खूप लेकर प्रयम पारद-गन्धक की कल्जली कर अन्य द्रव्यों को भी एकत्रित कर मर्दन कर आदी के रस में सात बार भावना देकर मूंग के प्रमाण की मात्रा में घृत के अनुपान से सेवन करने से यह 'नित्योदित रस' प्रबल अर्जे के अद्वार और मन्दानिन तथा विवर्ण को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अर्जे कुठारो रसः—भागः शुद्धरसस्य भागयुगलं गन्धस्य लोहाश्रयः;

पद्मविष्वाग्निहृलोषणमवरजोदन्ती च भागः पृथक् ।

पद्म स्तु शुद्धटक्कणस्य च यवसारस्य सिंधुद्वा-

यागः पद्म गवां जलं सुविमलं द्वात्रिक्षवेतत्पत्तेत् ।

स्तु शुद्ध च यवां जलाश्विष ज्ञानेः पिण्डीकृतं तत्त्ववेद्

द्वौ मातृ गुषकीलकानमजाटाद्वेदे कुठारो रसः ॥ १ ॥

बशः कुठार रस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग, लेकर कल्जली कर उसमें लोहभस्म तथा अन्नक मस्म तीन-तीन भाग, विक्रमूल चूर्ण, शुद्ध कलिहारी विष, मरिच, हरा, दन्तीमूल इन द्रव्यों का चूर्ण पान-पांच भाग लेवे, शुद्ध टक्कण, जवादार, सेथानमक, पान-पांच भाग लेवे इन सबका पक्कन मर्दन कर छाना हुआ गोमूल ३२ भाग मिला कर पकावे, गोमूल जब जल जावे तब उसी के बराबर (३२ भाग ही) सेहुड़ का दूध देकर पकावे जब पिण्ड वैधने लगे तब उतार कर दो मासा की मात्रा से सेवन करने से अर्जे के अद्वार को कुठार की भाँति नष्ट कर देता है । यह 'अर्जे कुठार रस' प्रथम मात्रा लघु लेनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

कुलिष्य यवगोधमा शालयो रक्तादा हिताः । युनर्नवा सूरणं च सकं धात्री कपिथकम् ॥

नवनीतं तु वास्तुक पटोल मरिच तथा । सूरगमांसमजादुर्घं वृन्ताक काञ्जिक तथा ॥ १ ॥

लक्षोरेण तु पथ्यानि सुनिभिः कथितानि तु । वेगावरोधः श्वीपृष्ठयानसुक्टकासनम् ॥ २ ॥

यथास्वं दोषकं चाक्षमर्शसः परिवर्जयत ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य विधि—कुलीयो, यव, गैंहं, रक्त वर्ण का शालिधान्य, युनर्नवा, सरण्यकन्द, तक्र (मट्टा), अंवरा, कैथ का फल, मक्खन, बथुआ, परोरा, मरिच, सूरा का मास, बकारी का दूध, वैगन, कांजी आदि द्रव्य सुनियों ने अर्जे के रोगी को सेवन करना हितकर [पथ्य] कहा है । वेगावरोध [मल-मूत्रादि के वेग का अवरोध], खोसमर्ग, पाठ पर बेठने वाले [बांडा आदि] यान, उत्कट आसन और दोष को बढ़ाने वाले अन्ने अद्वितीय को रोगी त्वयं द्वयं अर्थात् ये कुपथ्य हैं ॥ १—३ ॥

तत्र सन्निकृष्टनिदानपूर्वकोदराशिविकारानह—

मन्दस्तीषोडथ विषमः समश्रेति चतुर्विषः । कफपित्तानिलाश्विक्यात्स्ताप्याद्यादोऽनुषः ॥

अभिमान्यनिदान—सन्निकृष्ट निदानपूर्वक उदराशिविकार मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम हस्त प्रकार से कम्पपूर्वक कफ-पित्त और वात की अधिकता और समता के होने से उत्पन्न चार प्रकार की होती है अर्थात् कफ की अधिकता से मन्दानिन, विष की अधिकता से तीक्ष्णानिन, वात की अधिकता से विषमानिन तथा तीनों दोषों के समान रहने से समानिन इस प्रकार मनुष्यों के शरीर में भोजन किये हुए पदार्थ को पकाने के लिये चार प्रकार की अभिन होती है ॥ १ ॥

अथ समविषयमायभिलक्षणाद्याह्

समा क्षमान्वेशिता आदा अधर्थिवपश्चेत् । इत्यत्यापि नैव अन्वयमेविषयमालैस्तु देहितः ॥
कदाचित्प्रथमेति सम्बन्धक्षमाचित्प्रथमेवं पश्चयते । आश्राऽस्तिसाश्राऽप्यविता सुखं पश्च विपश्चयते ॥

तीक्ष्णादिरिति सं वित्तावस्थाप्रितिः छेष्ठ उद्यते ॥ २ ॥

विषयमो वासाजात्रोगार्थितः । विषयमित्तावद् ।

करोत्यनिमत्तथा मन्त्रो विकारान्वप्लक्षणाद्याह् ॥ ५ ॥

सम् विषय आदि अविन के लक्षण—जिस मनुष्य की भग्नि सम होती है यदि वह समोजने
और अर्थात् न अधिक न कम उचित भोजन करे और वह भलीभांति वच जाये तो उसे 'समाविन'
आज्ञाना चाहिये । जिस मनुष्य की अविन अन्वय होती है उसको अत्याक्षरा आज्ञा में भी किया तुवा
भोजन नहीं पचता है अतः उसे 'गङ्गाविन' कहते हैं । जिस मनुष्य की अविन विषय होती है उसको
भोजन कभी भलीभांति पचता है और कभी नहीं पचता है उसे 'विषयमाविन' आज्ञाना चाहिये ।
जिस मनुष्य की अविन तीक्ष्ण होती है उसको प्रमाण से किया अथवा आप्रमाण में भी किया भोजन
मुखपूर्वक पक जाता है अतः उसे 'ताक्षणाविन' आज्ञाना चाहिये । विषय आदि अविन के दोष—
विषयमाविन से वासनमन्त्री रोग उत्पन्न होते हैं । तीक्ष्णाविन से पित्तसम्बन्धी और मन्त्राविन से
कफसम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं । इसलिये चारों अविन में 'समाविन' ऐह है ॥ ५-६ ॥

अथेषां चिकित्सामाह

समविषय एतां कार्यं विषयमेवात्मनिष्ठाः । तीक्ष्णो एतत्प्रतिक्रियो मन्त्रे श्वेष्विषयमोहनम् ॥ १ ॥
अविमान्य चिकित्साः—सम अक्षि की रक्षा का युक्त करना चाहिये, विषयम अपि जिसकी हो
उत्पन्ने वातनाशक यत्त्वं, तीक्ष्ण अपि में इति के ग्रन्तीकार का यत्त्वं और मन्त्र अपि में कफ-शोषक
प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ ॥

सममग्निभिषग्नेदन्तपानैर्दृणा हितैः । मन्त्रे संबर्धयेदग्निकटुसिकक्षायकैः ॥ २ ॥

तीक्ष्णमग्निद्विचीरणायसैः समतो नयेत् । रमेहावलवयाण्येत्यविषयमादिसुपाप्त्वेत् ॥ ३ ॥

वैय के मनुष्यों की समाधि की रक्षा द्वितकर अन्वय-पानादि से करनी चाहिये । गन्दविनों को
कट्ट-तिक्त और कषाय रस वाले अन्वय-पानादि से बढ़ावा चाहिये । तीक्ष्णाविनों को दही, खीर और
पायस आदिक प्रतिनाशक पदार्थ से सम करना चाहिये । और विषयमाविनों को स्निग्ध, अम्ल तथा
छवण रस दुक्क पदार्थों से सम करना चाहिये ॥ २-३ ॥

जरणसचकमुण्डीविषयलीकीणवेद्यं सुलक्षणमज्ज्वाहिक्षुपथेति कर्त्तव्य ।

पृथग्यथ पलमात्रं-स्थारित्वच्चूर्णमेषां लननमुद्यवहः पाचनं रेचनं च ॥ ४ ॥

जीरा, रोकक लवण वा सज्जीखार, सोठि, पीपरि मरिच, वामीरंग, सेप्तुनमक, अजमोदा,
हींग हर्दा, इन सब द्रव्यों को एक-एक कर्ष लेकर चूर्ण कर इसमें एक पल (चार तो) निशेष का
चूर्ण भिना कर सेवन करने से जठराविन उत्पन्न (तीव्र) होती है, यह पाचन और रेचन
भी है ॥ ४ ॥

अथ भस्मकरोगलक्षणमाह

कफे लीणे यदा पित्त स्वस्थाने मारुतानुगम् । तीव्रं प्रवर्तयस्थग्निं तदा तं भस्मकं वदेत् ॥ १ ॥

भस्मक रोग का निदान लक्षण—जब आमाशय में कफ क्षीण हो जाता है और पित्त अपि
स्थान में वायु द्वारा तीव्र होकर अविन को बढ़ा देता है तब उस रोग को 'भस्मक' कहते हैं ॥ १ ॥

कद्यादिरुचान्तसुज्जां लक्षणां लीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ ।

भस्मकरोगनिदानचिकित्से

अतिप्रवृत्तः विषयान्वितोऽग्निः व्याघ्रसं शोषयति प्रसद्य ॥ २ ॥

शुक्रं व्याघ्रसं करोति यद्यमात्तरम्याद्य अस्मकसंज्ञकोऽभूत् ।

सुडाहमूर्च्छाभ्रमकासाकोकविट्क्षोषमोहश्रमकर्त्तव्यादीर्थी ॥ ३ ॥

तद्वाहस्यासकालादीन्द्रियवैधात्यप्यित्यमध्यात्मान् ।

पवर्त्याऽन्तर्भाष्टु धार्वादीवस्य विप्रं नाशयैदै भ्रवश्च ॥ ४ ॥

कटु आदिक रस शुक्र तथा रुक्ष अन्न भोजन करने वाले मनुष्यों का कफ क्षीण हो जाता है
और वात तथा पित्त वड़ा जाते हैं इससे वायु के सहित कढ़ी तुर्दे अविन रस धातु को क्षण भर में
भुखा देती हैं इसलिये भोजन किया हुआ पदार्थ क्षण भर में भस्म कर देती है इसी कारण से
इस रोग का नाम 'भस्मक' है । इस रोग में तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, अस, कास, शोथ मध्य का
सूखना, मोह, श्रम तथा अधिक कार्य करना आदि विकार हो जाते हैं । और तृष्णा-दाह-श्वास
तथा कासादिक जो अविन के कारण उत्पन्न होने वाले विकार हैं उनको उत्पन्न करके बढ़ी तुर्दे
अविन अन्न को शीघ्र पचाकर, शरीर के रस-रक्तादिक धातुओं को निश्चय ही शीघ्र नष्ट कर
देती है अर्थात् आमाशय में अन्न नहीं रहने पर वड़ी हुई अविन धातु (रस-रक्त) आदिकों को
पचाकर शरीर नष्ट कर देती है और वह मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥ २-४ ॥

अथ चरकपाठे भस्मकः

जरे शीणक्षेष्टि पित्तं कुपितं मारुतानुगमः । स्वोष्यः चाचकस्थाने व्यलयनैः प्रयव्युत्तिः ॥ १ ॥

अथक छेष्टि से भस्मक रोग—आमेश्वर्य में जब कफ क्षीण हो जाता है तब पित्त वायु का
आनुगमी होकर कुपित हो जाता है और उस पाचक स्थान (आमाशय) में अपनी लज्जा से अविन
को वलवान कर देता है ॥ १ ॥

सदा लक्ष्यत्वात् देहं रुद्ध्येत्यसानिलोऽनकः । असिभूतं पवर्त्यन्ते तैत्यादाह्यु मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥

तथ बल पाया हुआ अविन वायु के सहित देह को लक्ष कर देता है और तीव्रता के साथ
बार-बार शीघ्र अन्न को पचा देता है ॥ २ ॥

यत्वा लक्ष्यत्वात् स तसो धातुक्षोणितादीन्पच्यति । ततो दीर्घयमातद्वं शृण्युं दोपवर्त्येत्परम् ॥ ३ ॥

ब्रह्म को पचा कर वह आविन रस-रक्तादिक धातुओं को पचाता है जिसके कारण दुर्बलता होती
है और मृत्यु का भी भय होता है ॥ ३ ॥

जु सोऽन्तर्भृते लीणं लीणे धार्वादीन्द्रियवैधात्यप्यित्यसंभवाः ॥

भोजन करने पर उस रोगी को शान्ति प्रियती है लौर पच जाने पर दुख पाने लगता है ।
इस रोग में तृष्णा-दाह-कास-मोह तथा अविन दोष से उत्पन्न होने वाले अन्य रोग भी (रक्त दोष
तथा ज्वरादि रोग) हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ भस्मकरोगनिदानचिकित्से

कफे लीणे यदा पित्तं स्वस्थाने मारुतानुगमः । तीव्रं प्रवर्तयेहुँहि तदा तं भस्मकं वदेत् ॥ १ ॥

भस्मक रोग का निदान लक्षण—जब आमाशय में कफ क्षीण हो जाता है और पित्त अपि
स्थान में वायु द्वारा तीव्र होकर अविन को बढ़ा देता है तब उसे 'भस्मकरोग'
कहते हैं ॥ १ ॥

तद्वाहस्यासम्भृतादीन्द्रियवैधात्यप्यित्यसंभवान् ।

पवर्त्याऽन्तर्भाष्टु धार्वादीन्प्रविप्रं नाशयेत्तनुम् ॥ २ ॥

इससे अत्यन्त अविन बढ़ा जाने के कारण होने वाले रोग-तृष्णा, दाह, श्वास, शीघ्रो आदि जी

करके और भोजन किये हुए अश्रुको शीघ्र पचाकर धातु आदि (रस-रक्तादिक) को भी पचाकर शरीर का नाश कर देता है ॥ ३ ॥

तं भस्मकं गुहरिनवधसान्द्रमण्डहिमादिभिः । अन्नपानैनवेष्ट्युच्छान्ति पित्तस्नेहं विरेचने ॥ ३ ॥

इस भस्मकरोग को गुरु, निंगथ, घन (गड़), मण्ड और शीतल आदि अन्न-पान से शान्त करे और पित्तनाशक विरेचन से शान्त करे ॥ ३ ॥

अस्युद्दत्तादिनशास्त्र्ये माहिषविद्विषुधाधर्षयिति । स्वेत वा यवागृं समधृच्छिणां सप्तिष्ठाम् ॥

अत्यन्त उद्दत्त (बढ़ी हुई) अग्नि को शान्त करने के लिये मैस का दही, दूध और धृत-का सेवन करना चाहिये अथवा यवागृ वनाकर उसमें मधु का मोम और धृत मिला कर सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अत्यन्तकृष्णित्वाहरणं पायसं प्रतिभीजने । शथामात्रिवृद्धिपवनं वा पयो दृष्टिरेचनम् ॥ ५ ॥

वार-वार भोजन के साथ प्रायस (हविष्य = खीर) खाया जावे तो पित्त का हरण होता है अर्थात् अग्नि शान्त होती है अथवा श्यामा नाम की लता, निशेष इन से पकाया दूध विरेचन के लिये देने से अग्नि शान्त होती है ॥ ५ ॥

यत्किञ्चिन्मधुरं मेष्ठं श्लेष्मलं गुहु भोजनम् । सर्वं तद्यथिनिहितं भुक्तवा प्रस्वपनं दिवा ॥

जो-जो पदार्थ मधुर, मेष्ठावर्षक, कफाकारक और शुरु हो उन सब का भोजन करना बढ़ी हुई अग्नि के लिये हितकर है और भोजन करके दिन में सोना भी बढ़ी हुई अग्नि वाले के लिये हितकर है ॥ ६ ॥

कफे पूर्वं जिते पित्ते मारके चानलः समः । समधातोऽपत्त्यन्तं पुष्टवायुयं लवर्धनम् ॥ ७ ॥

इस (भस्मक) रोग में पूर्व में कफ को जीतना चाहिये अर्थात् क्षीण कफ को बढ़ा कर वात-पित्त के समान करना चाहिये, वात-पित्त और कफ के समान होने से अग्नि भी समान हो जाती है और सम धातु-वाले के अन्न को सम अग्निं परिपाक करती है और शरीर की पुष्टि, अस्यु और तल को बढ़ाती है ॥ ७ ॥

आहारं पचति शिशी दोषानाहारवर्जितः पचति । दोषवये च धातुं धातुकृष्णं तथा प्राणान् ॥

जलठराग्निं के कर्म—जलठराग्निं अथवा आमाशय की अग्नि आहार को पचाती है, आहार नहीं रहने पर अर्थात् भोजन पच जाने पर नुनः भोजन नहीं करने पर वह अग्नि कफादिक दोषों को पचाने लगती है, जब दोष भी पच जाते हैं तब रस-रक्तादिक सम धातुओं को पचाती है, जब धातु भी नष्ट हो जाते हैं तब प्राण को पचाती है अर्थात् मार डालती है ॥ ८ ॥

सुदृश्युद्दृश्योऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत् । निश्चिन्द्रोऽन्तर्लं लुभवाययैनं न विपादयेत् ॥

इस भस्मक रोग में अजीर्ण हुआ हो तब भी वार-वार भोजन देते रहना चाहिये क्योंकि भोजनलूपी इधन (काष) के नहीं मिलने पर यह अग्नि कहीं प्राण को ही नहीं नहीं कर दे ॥ ९ ॥

कोलास्यमज्जकलकस्तु पीतो द्वायुषु केन वै । अचिराद् विनिहन्येव प्रयोगो भस्मकं न्तनाम् ॥

वर्ण के कल का गुठली की मज्जा (गुहा) का विषधृत कल्प बना कर पीत से अथवा जल के साथ पीस कर पीते से मनुष्यों का भस्मक रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

वारोचरेण सपिष्य पिवेदौषुभरवस्वचम् । ताम्यां चापायसं सिद्धं पिवेद्यग्निनशान्तये ॥ ११ ॥

खी के दूध में उद्धम्बर (गूलर) छाल पीस कर पीते से अथवा खी के दूध में गूलर के छाल का पायस (खीर) सिद्ध कर तेवन् करने से अस्युत बढ़ी हुई अग्नि काष (भस्मक) रोग शान्त होता है ॥ ११ ॥

सिततप्तहुलसितकलमधीरेण च पायसं सिद्धम् । इति अजीर्णदिनिदानम् ॥

सुक्खा धृतेन पुरुषो द्वावश दिवसान्वुभुसितो न भवेत् ॥ १२ ॥

क्षुधानिवारक योग—श्वेत वर्ण के साधारण चावल और श्वेत कलम (जो धान बहुत दित में पकते हैं उनका श्वेत वर्ण का चावल) नामक धान का चावल लेकर दूध के साथ पायस (खीर) पका कर धृत मिलाकर भोजन करने से मनुष्य को बारह दिन तक बुझाश [भूख] नहीं लगती है ॥ १३ ॥

विद्वासीस्वरसे द्वीरे पचेदृष्टुणे धृतम् । माहिषं जीवनीयेन कलकेनास्यग्निनशान्तम् ॥ १४ ॥

विदारीकन्द के स्वरसे और दूध में आठवां भाग भैस का धृत और चौथाई जीवनीय गण (मेदा, महामेदा, जीविक, कृष्णभक, शृङ्गि, वृद्धि, काकोली, श्रीरकाकोली, मुलेठी) की ओषधियों का कल्प देकर धृतपाक की विधि से पाक कर सेवन करने से अत्यन्त अश्वि (भस्मक) रोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

अथाजीर्णदिनिदानम्

अविष्कोऽविनमान्येन यो रसः स निगथते । रोगाणां प्रथमो हेतुः सर्वामासांज्ञया ॥ १ ॥

अजीर्ण का निदान—अग्निं (जटराग्निं) की मन्दता (दबलता) के कारण भीजन का विनां पचा हुआ शेष रस आम (अजीर्ण) कहा जाता है और यही आम सब प्रकार के रोगों का प्रथम कारण है ॥ १ ॥

आजीर्ण विद्वन्धं विष्टुष्टं कफपित्तानिलैचिभिः । अजीर्णो के चिह्निनदोषं विजपाकि च ॥

अजीर्ण पञ्चमं केचिनिनदोषं विजपाकि च ॥ बदनित बष्टु जाजीर्ण प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ ३ ॥

अजीर्ण का भेद—अजीर्ण का प्रकार का होता है जिसमें आम, विद्वन् और विष्टु ये कम से कफ, पित्त और वात दोष के कारण होते हैं अर्थात् कफ से आमजीर्ण, पित्त से विद्वनजीर्ण और वात से विष्टुजाजीर्ण ये तीन होते हैं और चौथा अजीर्ण अग्नि के रस का पाक नहीं होने से होता है उसे 'रसशेवाजीर्ण' कहते हैं । पांचवां अजीर्ण उसे कहते हैं विसमें कोई दोष नहीं होता है परन्तु उसमें दिनभर भी भोजन का प्राकृत होता है इसे 'दिनपाकि अजीर्ण' कहते हैं तथा छठा अजीर्ण स्वामविक होता है जिसमें भीजन नहीं पचता है उसे 'प्राकृत अजीर्ण' कहते हैं ॥ २-३ ॥

अथ तेषां वारणमाह ॥

अथ्यवृन्दानाद्विष्टुमासांज्ञस व्याराणास्वप्नविपर्ययाच ॥

कालेऽपि साम्यं लघु चापि सुक्खमन्नं पाकं भजते नरस्य ॥

अजीर्णो का कारण—अधिक जल पीना, विषम आहार करना, अनियन्त अप्रसारित आहार करना, मल-मूत्रादि के वेगों का अवरोध करना, निद्रा समुचित नहीं होना, इन कारणों से समय पर अनुकूल और लघु भी भोजन किया पदार्थ सुसुचित नहीं पचता है अर्थात् इन कारणों से अजीर्ण का रोग होता है ॥ १ ॥

ईर्ष्याभ्यक्तोषपरिष्टुतेन लुब्धेन शुग्दृच्छिनपीद्वितेन ॥ इति अजीर्णदिनिदानम् ॥

प्रदृष्टयुक्तं च सद्यमानमन्नं न सम्यपचते नरस्य ॥ २ ॥

ओर भी काषाण—इर्ष्या, मय, कोष, लोम, शोक, दरिद्रता और देष इन कारणों से जिस मनुष्य का मन उत्थी होता है उसका भी अन्न भली भाँति नहीं पचता है ॥ ३ ॥

मात्रया चाम्यवहतं पथं चान्तं न जीर्यति । चिन्ताशोकभयकोषदुखशय्याप्रजाग्रतः ॥ ३ ॥

और भी—विना, शोक, गम, क्रोध, हुम्ख, शब्दा-हुत्य (नैठे या सीढ़े रहना) और अधिक चागना इन कारणों से भी मात्रा के सत्य पद्य अक्ष सेवन करने पर भी नहीं पचता है ॥ ६ ॥

अजीर्णसामन्यलक्षण—शानिगौरविद्युभञ्जमाहतमूकताः ।

विद्युभञ्जोऽतिप्रवृत्तिवै सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ ७ ॥

अजीर्ण के सामान्य लक्षण—ग्लानि होना, हाईर भारी रहना, विद्यम [मलावरोध] होना, अग्न होना, अधोवायु का अवरोध होना, मल का रुक जाना अथवा अधिक होना ये सब अजीर्ण रोग के सामान्य लक्षण हैं ॥ ४ ॥

आमाधजीर्णलक्षणाति—तवाऽऽमे गुरुतोऽस्तेषु: शोषो गण्डादिकूटयोः ।

उद्ग्रावश्च थथाभुक्तमविद्युत्यः प्रवर्तते ॥ ५ ॥

आमादिक अजीर्ण के लक्षण—प्रथम आमजीर्ण के लक्षण में शरीर और उद्ग्राव में गुरुता (आलस्य या भारीपन), उवकार्य (उमन करने की इच्छा होना), कपोल और नेत्र के सिरों पर शोष होना और जिस प्रकार का पदार्थ भीजन किया हो उसी प्रकार (विना पचे हुए) का उद्ग्राव (उकार) आजा आदि होते हैं ॥ ५ ॥

विद्युत्ये भ्रमतुप्युच्छुर्णः पितामहविद्यित्वा रुजः । उद्ग्रावश्च अच्छमाऽऽङ्गः रुद्धैर्द्वा द्वाहत्य जायते ॥

विद्युभजीर्ण के लक्षण—विद्युभजीर्ण में अग्न, तुपा, मूर्छा और पित्त से होने वाली अनेक तरह की पीड़ाओं का होना, धूये के समान तथा अम्ल रस युक्त उद्ग्राव [उकार] आजा, स्वेद और दाह होना आदि लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

विद्युत्ये शूलमाध्यानं विद्यित्वा चात्मेदनः । अल्पात्मविद्युतिक्ष्य घोरः रुद्धैऽङ्गस्तीलनमात्मा ॥

विद्युभजीर्ण के लक्षण—विद्युभजीर्ण में शूल, आध्यान तथा अनेक प्रकार की वात से होने वाली पीड़ाओं का होना, अल तथा अधोवायु का नहीं निकलना, भौह, शरीर का जकड़ जाना और पीड़ा होना आदि लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

अथ रसशेषलक्षणमाह

उद्ग्रावशुद्धाच्च भ्रमकाङ्क्षा च जायते हृदगुरुता च यस्य ।

इत्यावदेषां चतुर्थमेतत्क्विचक्वजीर्णं प्रवद्यन्ति तज्ज्ञाः ॥ १ ॥

रसशेषेऽस्त्विद्वेषो हृदयशुद्धयरोधकौ ॥

रसशेषजीर्ण के लक्षण—जिस अजीर्ण में शुद्ध उकार आजे पर भी भोजन करने की इच्छा न हो, हृदय में गुरुता हो, तो समझना चाहिये कि इसका भग्न अभी शेष रह गया है इसलिये कोर २ देव चौथा अजीर्ण—रस के शेष रहने से होने वाला 'रसशेषजीर्ण' कहते हैं । इसमें भोजन से द्रव्य होना (भोजन करने की इच्छा न होना), हृदय में अशुद्धता [भारीपन आदि]—रहना और अखंचि होना आदि लक्षण होते हैं ॥ १-२ ॥

अजीर्णपद्वानाह—भूच्छ्रुं प्रकापो वम्पुः श्वेषकः स्वदनं अमः ।

उपद्रवा भवन्त्येते मरणं ज्ञात्यजीर्णतः ॥ २ ॥

अजीर्ण के उपद्रव—मूर्छा, प्रलाप [अकबक बकना], वमन, सूख से लालासाव, अझों में ग्लानि और अम होना, आदि उपद्रव अजीर्ण से होते हैं और मृत्यु भी हो जाती है ॥ २ ॥

यावधन्तिष्ठते तस्य तुष्टोऽप्यव्यवरसौ हृदि । तावन्मर्माणि नियन्ते विषं पीतवतो यथा ॥३॥

जब तक दूषित अवरस रोगी के हृदय [आमाशयादि] में स्थित रहता है तब तक विष पीये हुए व्यक्ति के समान वह दूषित रस विष की भाँति उसके मर्मस्थानों को पीड़ित करता रहता है ॥ ३ ॥

अमारमहान् पशुधृ भुजते वेत्प्रसागतः । शोगालीकर्त्य ते भूषमलीर्ण प्राप्यवृत्तिं हिता ॥

अजीर्ण भी विप्राः—जो गतुष वपने भग के वक्ष में नहीं रखते हुए पशु की भाँति विद्या प्रयोग के [अथवाधिक] भोजन करते हैं वे इस रोग समृद्ध के मूल अजीर्ण को प्राप्त होते हैं अर्थात् ऐसे अजितेन्द्रिय, अज्ञानोऽप्तु को तब रोगों का मूल व्याध अजीर्ण रोग होता है ॥ ४ ॥

अजीर्णसामन्यलक्षण—विद्युत्ये विद्युत्ये विद्युत्ये । विद्युत्ये विद्युत्ये विद्युत्ये ॥

अजीर्ण से विद्युचिका आदिक रोगों की सम्भावना—आमाजीर्ण, विद्युवाजीर्ण और विद्युत्योर्जीर्ण जो कहे हैं इनसे विद्युचिका, बलसक और विद्युत्यिका रोग हो जाते हैं ॥ ५ ॥

पिसूचीगाह—सूचीगिरिव गाव्याणि तुष्टस्तिष्ठेऽप्यतिक्षिणः ।

वश्वाजीर्णस ला द्वैतिविद्युत्ये विद्युत्ये ॥ १ ॥

विद्युत्यी वी गिरिव—जिस अजीर्ण में वायु शरीर में रित रह कर सूर्य चुम्बने के समान अझों में पीड़ा करता है उसको वैष्विद्युतिकारोग कहते हैं ॥ २ ॥

अ ती विद्युत्याहाशा लभते विद्युत्यामः । शूकाशताभवित्याशामो लभत्येऽशामलोलुप्तः ॥

इस रोग को आमुवेद शास्त्र के जावने वाले, प्रयोग से आदार करने वाले मधुव्य नहीं प्राप्त करते हैं अर्थात् इर्द्देह यह रोग नहीं होता है और जो अजितेन्द्रिय और भोजन के लिमी हैं उर्द्देह यह रोग होता है ॥ २ ॥

मृदुर्भूतिसारौ वम्पुः पितामहोऽप्तुमज्जुर्वदाहाः ।

विद्युत्यांकणौ हृदये इत्याच्च शब्दिति सर्वां विद्युत्यां भेदः ॥ ६ ॥

विद्युचिका के लक्षण—विद्युचिकारोग में मूर्छा, अतिसार, वमन, तुपा, शूल, अम, पिण्डलियों में द्रव्या मारने की जांति पीड़ा होना, जम्हाई, दाह, वर्ण का विदर्थ होना, कम्पन, हृदय में पीड़ा और हिर में कुटने के समान पीड़ा होना आदि लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

अलसमाद—कुचिराजान्तेऽप्यर्थं प्रताप्येषु विद्युत्याति ।

निष्ठू आहत्येव कुचिरुपि व्यावति ॥ १ ॥

आत्मव्याधिरोध्य विद्युत्यां विद्युत्यां विद्युत्यां विद्युत्यां विद्युत्यां ॥ २ ॥

अलसक के लक्षण—अलसक रोग में कुचिराज अत्यन्त फूल जाता है, व्याकुलता होती है, पेट में शब्द होता है, अधोवायु का अवरोध हो जाता है और कुक्षि के कपर के स्थान में चला जाता है, वायु और मल का अत्यन्त अवरोध हो जाता है, तुपा होती है और उद्ग्राव जाता है, वे सब लक्षण होते हैं ॥ १-२ ॥

विलम्बिकामाह—

दुष्ट तु भुक्तं कफमाहताप्यो व्रवर्तते नौर्व्यसंख्य यस्य ।

विलम्बिका तो शूश्रुत्यिकिर्त्यामाच्छते विद्युत्याः पुराणाः ॥ १ ॥

विलम्बिका के लक्षण—जिस मृत्यु का भोजन कफ और वायु के द्वारा दूषित होकर नहीं पचे और वमन द्वारा भी नहीं आये न मलमार्ग से लीने ही जाये, आपाशय में ही विकृत होकर रहे, उस दुष्यकित्य (असाध्य) रोग को शास्त्र के जावने वाले वैष्य 'विलम्बिका' कहते हैं ॥ १ ॥

अजीर्णजन्यामस्य कार्यान्तरमाह—

यश्चरन्थमामं विद्युत्येत्तमेव देवां विद्येषेण विकारजाते ।

दोषेण येनावत्तं शरीरं तक्षणौरामसमुद्धृत्य ॥ १ ॥

अजीर्णवन्यां आम् का कार्यान्तर—जिस स्थान में आम दोष रिष्ट रहता है उसी स्थान में विशेष कर अन्य विकारों के सहित उनसे उत्पन्न होने वाले पीड़िओं को करता है जिस रूप कफादि दोष से शरीर ल्यास होता है उसी रूप के लक्षण तथा आम के लक्षण उस-उस अजीर्ण में होता है अर्थात् आम जहाँ रहता है वही दोष भी समिलित हो कठ पुरुचते हैं आम का निवित स्थान नहीं होता ॥ १ ॥

यः स्थावदन्तौष्ठन्सोऽल्पसज्जो वस्त्रदितोऽध्यन्तरयातनेत्रः । इति च एव विषुचिकाः

आमस्वरः सर्वविमुक्तसविचर्याक्षरोऽसौ पुनरगमय ॥ २ ॥

विसूचिका के असाध्य लक्षण—जिस विसूचिका के रोगी के दौति, आठ और नख (श्याम-भूत) वर्ण के हो गये हों, चेतना धूलप हो गयी हो, वमन की पीड़ि से नेत्र भूतिर को धूस गये हों, स्वर क्षीण हो गया हो, सब सन्धियां अपना कार्य त्याग नुकी हों वह रोगी मनुष्य सूखु की प्राप्त होगा अर्थात् ये लक्षण असाध्य विसूचिका के हैं ॥ १ ॥

निद्रानाशोऽहितः कथ्यो गृत्राधातो विवंजता । अमी द्युपद्रव घोरा विसूचियः पञ्च द्वाहणम् ॥ ३ ॥

विसूचिका के दारण उपद्रव—विसूचिका रोग में निद्रा नहीं आते, अरति (जड़ास), कम्पन, मूत्र का अवरोध और चेतना नष्ट हो तो वे पांच विसूचिका के दारण उपद्रव हैं ॥ ३ ॥

अथ जीर्णहारलक्षणमाह—

उद्धरशुद्धिसाहो वेगोऽसर्वो यथाचित् । लघुता हुषिष्यात्स च जोराहारदृश्य स्वरगम् ॥ १ ॥

जीर्णहार के लक्षण—गुद्ध डकार आना, मन प्रसन्न होना, उचित मल-मूत्रादि होना, शरीर में लघुता होना, क्षुधा और पिण्डास लगना ये पचे हुए आहार के लक्षण हैं ॥ १ ॥

अथ जीर्णचिकित्सितं द्वयस्यास्यामः

प्रायंणाऽहारवैष्याद जीर्ण जायते नृणाम् । तन्मूलो रोगसंवातस्तद्विनाशाद्विनश्यात् ॥ १ ॥

अजीर्ण की चिकित्सा—मनुष्यों को प्रायः करके आहार की विषमता (असमानता) से ही अजीर्ण की रोग उत्पन्न होता है और यह अजीर्ण ही रोगसमूहों का मूल है इसी (अजीर्ण) के चष्ट ही जाने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

तथाऽस्मे वमनं कार्यं विद्युते लहूनं हितम् । विष्टुष्ट द्वेदनं शस्तं रसज्ञेव शीत च ॥ २ ॥

आमजीर्ण में वमन और विद्युताजीर्ण में लहून (उपवास) कराना दितकर होता है, विष्टुष्ट जीर्ण में स्वेदन किया करनी चाहिये और रसशेषाजीर्ण में शयन करना चाहिये ॥ २ ॥

वचालवगतोयेन वन्नितामे प्रश्नस्यते ।

धात्वनागरसिद्धं च तोयं द्वयाद्विवरणः । आमजीर्णप्रश्नमन शूलधनं वस्तित्वाच्चनम् ॥ ३ ॥

आमजीर्ण में वच का चूर्ण और सेवनमक जल में पिलाकर और पिलाकर वमन कराना दितकर होता है अथवा वैद्य धनिया और सौठ जल में पकाकर उस जल की पिलाकर वमन कराके इससे आमजीर्ण शान्त होता है, शूल नष्ट होता है और मूत्राशय शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

अनन्त विद्युतु नरस्य शीघ्रं शीतामृतना वै परिपाकमेति ।

नक्षाद्वय शौयेन निहित विष्प्राप्त्वोऽभावाच नयत्यवस्तात् ॥ ४ ॥

मनुष्य का विद्युत हुआ अन्त अर्थात् जिन विष्टुष्टजीर्ण हुआ हो उसे शीतल जल पिलाने से शीघ्र विद्युत अन्त का परिपाक हो जाता है, इस जल की शीतलता पिच्छ को नष्ट कर देती है

और उसका व्येदित (द्रवित) भाग नीचे की ओर ले जाता है जिससे पचा हुआ रस धौत आदि में चला जाता है ॥ ४ ॥

विष्टुष्टधे द्वेदनं कार्यं पेत्य च लवणोदकम् । रसज्ञेव विष्ट व्याप्तं लहूनं शातवर्जनम् ॥ ५ ॥

विष्टुष्टजीर्ण में स्वेदन किया करनी चाहिये और सेवनमक जल में मिलाकर पीना चाहिये । रसशेषाजीर्ण में दिन में शयन कराना, लहून कराना और वायु का त्याग करना चाहिये अर्थात् निवात स्थान में रहना चाहिये ॥ ५ ॥

परपूर्वैले प्रविपाच्य पथ्यां स्वादेत्तदेवानु पिवेष्ट तैलम् ।

सशुल्विष्टभक्तान्विकारान्सर्वात्म्येपित्तकानिलोत्थान् ॥ ६ ॥

परण्ड के तैल में हरी को पका कर परण्डतैल के ही अनुपान से भक्षण करने से शूल, विष्टम तथा इनसे उत्पन्न होने वाले विकार के सहित पिच्छ-कफ और वात से होने वाले विकार नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

आलिष्य जठरं प्राङ्गो हिङ्गूयूषणसैन्धवैः । दिवा द्वापं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रणाशनम् ॥ ७ ॥

बुद्धिमान् वैथ अजीर्ण वाले रोगी के पेट पर हींग, सोठि, पीपरि, मरिच और सेवनमक पानी में पीसकर लेप करावे और दिन में शयन करावे । इससे सब प्रकार के अजीर्ण नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

स्यायामप्रमदाद्वयाहनरतान्वलान्तीसारिणः ।

शूलश्वासवतस्तुषापरिगतान्विकारामस्तपीदितान् ।

चीणान्विषिकफाविष्टशूलमहत्वाद्वारस्तथाऽजीर्णिनो

रात्री जागरिताक्षराद्विरक्षनान्कामं दिवा द्वापयेत् ॥ ८ ॥

दिन में शयन करने योग्य व्यक्ति—व्यायाम करने वाले, खी प्रसंग करने वाले, मार्ग चलने वाले, सवारी पर चढ़ने वाले, बलान्त शरीर वाले, अन्तीसार वाले, शूल, शास, रुधि, हिका तथा वातरोग से पीड़ित मनुष्य, क्षीण तथा जिनका कफ क्षीण हो गया हो, बाल्क, मदमत्ता, धूद तथा अजीर्णरोग वाले, रात में जागने वाले और उपवास करने वाले मनुष्य को दिन में शयन कराना चाहिये अर्थात् इन लोगों को दिन में सोना हितकर है ॥ ८ ॥

अथ चूर्णानि

पथ्याद चूर्णम्—पद्मापिण्डलिसयुक्तं चूर्णं सौकर्च्छं पिवेत् ।

मस्तुनोण्डोदकेनाथ शात्वा द्वौषणति निष्क ॥ ९ ॥

चतुर्विधमजीर्णं च मन्दान्तलमथारुचिम् । आध्मानं शातगुहमं च शूलं चाऽग्न्य विनाशयेत् ॥

चूर्णं प्रकरण-पथ्याद चूर्णं—हरी, पीपरि, सौचरनमक इनको समान लेकर चूर्ण कर वैष्ट की गति के अनुसार अर्थात् चात-पिच्छादिक के अनुसार दही के पानी अथवा उच्च जल के साथ (अनुपान से) पीव अर्थात् पिच्छाधिक (विद्युताजीर्ण) में दही के पानी तथा कफ-वात की अधिकता (आमजीर्ण और विष्टाजीर्ण) में उधोदक के अनुपान से सेवन करे । इस चूर्ण के सेवने करने से चारों प्रकार के (आमजीर्ण, विद्युताजीर्ण, विष्टाजीर्ण और रसशेषाजीर्ण) अजीर्ण, मन्दाशि, अरुचि, आध्मान, वारुणम, शूल ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ९-१ ॥

लघुवैश्वानरचूर्णरूपं

सिन्धूस्थपथ्यमण्डोद्वयहिङ्गूषुणमधुना पिष्टात् युक्तं नष्टवहि ॥

तथाऽस्मिष्येण सप्ततेन सहाययानं भृत्यभवत्यपित्तमाप्तिष्येत् ॥ ९ ॥

लघु वैश्वानर चूर्ण—सेधानमक, हर्ट, पीपरि, चित्रकमूल इन द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर जिसकी अन्नि नष्ट हो गयी हो अर्थात् मन्दाद्धि वाला मनुष्य उड़ जल से सेवन करे तो उसका धृतयुक्त मांस, अन्न तथा पान जो भी वह भक्षण करे सब छुण भर में भस्म हो (पच) जाते हैं अर्थात् उसकी अन्नि अत्यन्त तीव्र हो जाती है ॥ २ ॥

हिङ्गवद्यक्त्यन्नम्—

त्रिकटुकमज्जोदा सैन्धवं जीरके द्वे समधरणधत्वानामष्टमो हिङ्गभागः ।

प्रथमकवल्लभुर्ण सर्पिष्ठा चूर्णमेतज्जनयति जठराद्धि वातगुणम निहन्ति ॥ १ ॥

हिङ्गवद्यक्त्यन्न—सौठि, पीपरि, मरिच, अजमोदा, सेधानमक, जीरा और काला जीरा और शुद्ध हींग इन आठों द्रव्यों को समान लेकर उत्तम चूर्ण बना धृत में मिला कर भोजन के प्रथम ग्रास में भक्षण किया जावे तो इससे जठराद्धि तीव्र होती है और गुदम नष्ट होता है ॥ १ ॥

अन्यच्च हिङ्गवादिचूर्णम्—

कर्व हिङ्ग द्विकर्व विलम्ब मरिचं सैन्धवं विषकृष्णा-

दीप्त्यजीराज्जोदासितज्जरणविभीताभया वेदकर्षः ।

अष्टौ मार्किंदधाऽयोरथ वदशकपियोऽङ्गवाः षोडशा रुदु-

सवं लुक्षोदकाद्वं हरति रुचिवधाध्मानवन्धाद्धिसादात् ॥ १ ॥

हिङ्गवादि चूर्ण—शुद्ध हींग एक कर्व, विडलवण दो कर्व, मरिच, सेधानमक, सौठि, पीपरि, अजवाइन, जीरा, अजमोदा, कालाजीरा, बड़ेरा, हरो ये सब द्रव्य प्रत्येक चार-चार कर्व, मार्किंद [मुखसक्सा], ओवला प्रत्येक आठ कर्व, वैर तथा केय का फल सोलह २ कर्व इन सब द्रव्यों को चूर्ण कर मातुलंग [विजीरे] नीबू के रस में मिलाकर सेवन करने से अरुचि, आधमान, मलबद्धता तथा मन्दाद्धि नष्ट होती है ॥ १ ॥

आस्करलवणचूर्णम्—पिष्पली पिष्पलीमूल घान्यकं कृष्णजीरकम् ।

सैन्धवं च विडं और पञ्चतालीसकेसरात् ॥ १ ॥

एषां द्विपलिकान्मारान् पञ्च सौवर्चलस्य च । मरिचाजाजिशुण्णीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ २ ॥

स्वगेला चार्धमाना स्यात्सामुद्रं कुडवृद्धयम् । दाढ़िमं कुडवं चैव द्विपलं चाम्लवेत्ससम् ॥ ३ ॥

एतच्चूर्णकृतं भुवणं गन्धाद्यममृतोपमम् । लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥ ४ ॥

श्लेषमधातं वातगुणम शूलं मन्दान्यरोचकम् । अन्यानपि निहन्त्याशु रोगाँवृवणभास्करः ॥

भास्करलवण चूर्ण (लवणभास्कर चूर्ण)—पीपरि, पिष्पलीमूल, धनिया, कालाजीरा, सेधा-

नमक, विडलमक, तेजपात, तालीसपत, नागकेसर प्रत्येक दो-दो पल (८-८ तो०), सोचर-

नमक ५ पल [२० तो०], मरिच, जीरा, सौठि, प्रत्येक एक-एक पल (४-४ तो०), दाल-

चीनी, इलायची का बीज आधा २ पल (हां-दो तो०), समुद्र नमक दो कुडव (१२ तो०),

अनारदाना एक कुडव (१६ तो०), अम्लवेत दो पल (आठ तो०) लेकर इनको लक्षण चूर्ण कर एकत्र कर सेवन करे । यह चूर्ण सुगन्धित एवं अमृत के समान गुणकारी होता है इसका नाम

‘भास्करलवण’ चूर्ण है, इसे भास्कर वैद्य ने बनाया था । इसके सेवन करने से कफवात, वातगुल्म,

शूल, मन्दाद्धि, अरुचि और अन्यान्य रोग भी शीघ्र नष्ट होता है ॥ १-५ ॥

अथग्निमुखचूर्णम्—

हिङ्गभागो भवेदेको व ना च द्विगुणा भवेत् । पिष्पली त्रिगुणा ज्येष्ठा शङ्खवेत् चतुर्गुणम् ॥ १ ॥

यवानिका पश्चात्तु वद्गुणा च हरीतकी । चित्रकः सप्तगुणितः कुष्ठं चाष्टुगुणं भवेत् ॥ २ ॥

एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसङ्गया । पिवेद्ध्रामस्तुमा वा धुरया कोष्णवारिणा ॥ ५ ॥

सोदावर्तमज्जीर्णं च द्विहानमुदरं तथा । अज्जानि यस्य शीर्थन्ते विषं वा येन अचित्तम् ॥ ६ ॥

अज्जोहरो दीपनश्च शूलग्ने गुदमनाशनः । कासं श्वास निहन्त्याशु स्थैव अयनाशनः ॥ ५ ॥

चूर्णो द्विग्निमुखो नाशा न कश्चित्प्रतिहन्त्यते ॥ ६ ॥

अग्निमुख चूर्ण—शुद्ध हींग एक भाग, वचं दो भाग, पीपरि तीन भाग, सौठि चार भाग, अजवाइन पांच भाग, हरें छ भाग, चित्रकमूल सात भाग, कूठ आठ भाग लेकर चूर्ण कर प्रसवा [मध्य का अर्धांश भाग] के साथ सेवन करने से वात को नष्ट करता है, तथा इसे द्विवृक्षे साथ, दही के पानी के साथ, सुरा के साथ या किञ्चिद्दुष्प्रज्ञ जल के साथ पीना चाहिये । इसे उदावर्तरोग, अजीर्ण, लीहा, उदर तथा जिसके अङ्ग सड़ते हीं अथवा जो विष खाया हो उसे देना चाहिये । यह चूर्ण अशनाशक, दीपन, शूलनाशक, गुदमनाशक और कास, श्वास आदि की शीघ्र नष्ट करता है । इसी प्रकार क्षय को भी नष्ट करता है । इसका नाम ‘अग्निमुख’ चूर्ण है । इससे कोई रोग नष्ट हुए निना नहीं रहता अर्थात् सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

सामुद्राद्य चूर्णम्—

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि च्चारो यवानीमज्जोदकं च ।

हर्तातकीपिष्पलिश्वादेवं हिङ्गं विडङ्गं च समानि दद्यात् ॥ १ ॥

संचूर्णं चत्तानि धृतप्लुतानि भुज्यते चाऽऽदौ कवलानि पञ्च ।

अजीर्णवातं गुदगुक्षमवातं वातप्रमेहं विषमं च वातम् ।

चिसुचिकाकामलपाण्डुरोगाऽऽसूलं च कासं च जयेद्वशयम् ॥ २ ॥

सामुद्रादि चूर्ण—समुद्रीनमक, सोचरनमक, सेधानमक, जवाखार, अजमोदा, हर्ट, पीपरि, सौठि, शुद्ध हींग, बांधीरंग इन सब द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर धृत में मिला कर भोजन के आदि में प्राच लेकर तक सेवन करने से अजीर्ण से उत्पन्न वातरोग, गुदवात, (गुदा में उत्पन्न वातरोग), वातजग्नुल, वातजप्रमेह, विषमशत, विसूचिका, कामला, पांडुरोग, श्वास और कासरोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

ब्योषाद्य चूर्णम्—

ब्योषेला हिङ्गभार्णीविडलवणयवज्जारपाठायवानी

विञ्चात्वग्नेश्वरम् च्यवं दहनकरिकणात्वकपद्मप्रन्थ्यजाजी ।

पत्तचूर्णं धृतप्लुतं विद्विसमशनाद्वन्ध्यते रोगाज्ञातं

विशवं वैष्णवाराऽसौ यहति सरभसं किं पुनर्सुक्मशम् ॥ १ ॥

ब्योषादि चूर्ण—सौठि, पीपरि, मरिच, शुद्ध हींग, ब्रह्मदण्डी, विडलमक जवाखार, पुरइन-पांडी, अजवाइन, इमली के छाल की भस्म, चाव, चित्रकमूल, गजपीपरि, दालचीनी, सेधानमक, पिष्परामूल, जीरा, इन सब द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर धृत में मिलाकर तीन दिन तक सेवन करने से यह ‘वैष्णवार’ चूर्ण सब रोगों को नष्ट करता है जैसे अग्नि विश को नष्ट करने में समर्थ है तो मोजन किये अन्न को कौन कहे अर्थात् इससे भोजन किया अन्न शीघ्र पच जाता है ॥ १ ॥

अथ गुटिका:

सज्जीवनी गुटिका—विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्या वद्विर्भितीतकः ।

वचा गुदूची भस्मातं विषं चात्र प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

पत्तानि समभागानि गोमूत्रेणीव पेत्यवेत् । गुजारा गुटिका: कार्यं दद्याद्रक्षजै रसैः ॥ २ ॥

योगरत्नाकरः

विद्युते यस्य तु भुक्तमात्रं दद्यन्ति हस्तोषगता मलाश्च ।

द्वाचां सितामाद्विकसभ्युक्तां लीढवाऽभयां वा स सुखं लभेत् ॥ १ ॥

जिस मनुष्य को भोजन करते ही दाह उत्पन्न हो जावे और हृदय और कोष में स्थित मल दाह उत्पन्न कर देते हीं अर्थात् जिसे गले से उदर तक दाह हो जाता हो वह मनुष्य द्राशा (मुनका) को शकर और मधु के साथ अबलेह बनाकर सेवन करे अथवा हर्ष को शकर और मधु के साथ अबलेह बनाकर सेवन करे तो उसे सुख प्राप्त होता है अर्थात् दाह नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ यवाग्:

चित्रकादियवाग्—

चित्रकचिकानागरमागधिकोग्रादिभिर्यवाग्: स्यात् ।

गुरुमानिलशूलहरी चित्राद्या वह्निजननी च ॥ १ ॥

अजीर्ण में चित्रकादि यवाग्—चित्रकपूल, चाव, सौंठि, पीपरि, अजवाइन आदि की बनी हुई विधिवत् यवाग् सेवन करने से गुरुम और वातजशूल नष्ट करती है तथा अग्नि उत्पन्न करती है। इसे 'चित्रकादि यवाग्' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ काथः:

लब्धपद्ययोः काथः सैम्भवेनावधूतिः । पीतः प्रशमयथाशु त्वजीर्ण रेचयथपि ॥ १ ॥

अजीर्ण में काथ—लब्धा और हर्षा इन दोनों का विधिवत् काथ बनाकर सेवा नमक का प्रक्षेप देकर पीते से अजीर्ण शीत्र नष्ट होता है और विरेचन भी होता है ॥ १ ॥

धान्यजागरादिसिद्धं च तोयं दद्याद्विचक्षणः । आमाजीर्णप्रशमनं शूलधनं वह्निदीपनम् ॥ २ ॥

धनियाँ और सौंठि इनका विधिवत् काथ बनाकर सेवन करने से आमाजीर्ण का शमन होता है, शूल नष्ट होता है और अग्नि दीप होती है ॥ २ ॥

अथ घृतानि

अग्निकरं घृतम्—

पञ्चमूलयम्याद्योषपिष्ठलीमूलसैन्धवयैः । रासनाद्यारद्याजाजीविद्युतश्चिर्भृतम् ॥ ३ ॥

युक्तेन मातुलुक्ष्यं स्वरसेनाऽद्वक्ष्य च । तक्षसंसुरामण्डसौवीरकतुषेषकैः ॥ २ ॥

काञ्जिकेन च व्यथकं पीतमग्निकरं स्मृतम् । शूलगुरुमोदरक्षासकासानिलककापहम् ॥ ३ ॥

अजीर्ण के घृत प्रकरण में प्रथम अग्निकर घृत—शालिपर्णी, उष्णपर्णी, छोटीकटेरी, बड़ी कटेरी, गोदरू, हर्षा, सौंठि, पीपरि, मरिच, पिपरामूल, सैन्धवनमक, रासना, जवाखार, सज्जीखार, जीरा, बाभीरंग, कच्चूर इन सब द्रव्यों को समान लेकर कल्प कर जितना हो उसके चौहुना मूर्च्छित गोघृत और घृत के समान पाकार्थ जमीरी नीबू का रस और उसीके समान अद्रक का स्वरस, तक (मट्ठा), दही का पानी, सुरामण्ड, सौवीर, तुष्णेदक और कांसी आदि मिला कर घृत की विधि से पाककर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से अत्यन्त अग्निकारक होता है और शूल, गुरुम, उदर, इवास, कास, वात और कफ को नष्ट करता है ॥ २-३ ॥

दशमूलघृतम्—

मरिचं पिष्ठलीमूलं नागरं पिष्ठली तथा । भाषातकं यवानी च विद्युतं गवपिष्ठली ॥ १ ॥

अजीर्णचिकित्सा

हिङ्ग सौवर्चलं चैव त्वजाजी विद्युत्यकम् । सामुद्रं सैन्धवं चारं चित्रकं व्यव्यासह ॥ २ ॥
पश्चिमध्यपलैभारोगैर्घृतप्रथमं विषाचयेत् । दशमूलसे सिद्धं पवसाऽष्टगुणेन वा ॥ ३ ॥
मन्दाधनेश्व हितं सिद्धं ग्रहणीदोषवनाशनम् । विष्णुभमामं दौवर्ष्यमं लीहानमपकर्षयेत् ॥ ४ ॥
कासं शासं चयं वाऽपि हुर्नाम सभगम्भरम् । कफजान्हन्ति रोगांश्च वायुजान्कृमिसम्भवान् ॥
तान्सर्वाज्ञायाशयराशु शुक्रं दावैनलो यथा ॥ ५ ॥

दशमूलाद्य घृत—मरिच, पिपरामूल, सौंठि, पीपरि, शुद्ध भिलावा, अजवाइन, वायमिरंग, गजपीपरि, शुद्ध हींग, सोचरनमक, जीरा, विडनमक, धनियाँ, सामुद्र नमक, सैन्धवनमक, जवाखार, चित्रकमूल, यव इन द्रव्यों में प्रत्येक को आधा २ पल (दो-दो तोला) लेकर कल्प कर मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्त्र (एक सेर=६४ तोला) के और घृत से चौहुना दशमूल का रस और अठगुना गाय का दूध मिला कर घृत की विधि से पाक कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से मन्दाधन वालों को हितकर होता है और ग्रहणी दोष, विषम्भ (मलाव-रोग), आम, दुर्बलता, प्लीहा, कास, श्वास, क्षय, अर्ज, भगन्दर, कफ, वायु तथा क्रिमिजन्य रोगों को 'दशमूलादि घृत' इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है जिस प्रकार सूखी हुई लकड़ी को अपिन नष्ट कर डालता है ॥ ५ ॥

अथाजीर्णकुलकण्डनगणः:

नारीकेलफलेषु तण्डुलमयं द्वीरं रसाले हितं
जमीरीश्वथरसो घृते समुच्चितः सर्पिश्तु मोचाकले ।
गोधूमेषु च कर्कटी हिततमा मांसाशने काञ्जिकं
नारङ्गे गुदभच्छनं प्रकथितं पिण्डालुकं कोद्रवे ॥ १ ॥

अजीर्णकुलकण्डन गण—नारियल के फल खाने से उत्पन्न अजीर्ण में चावल हितकर होता है, आम खाने पर दूध, घृत खाने पर जमीरी नीबू का रस, केला खाने पर घृत हितकर होता है, गेहूं पर ककड़ी, मांस पर कांजी, नारंगी पर गुड़, कोदो पर पिण्डालु (सुथनी), ये सब हितकर-अर्थात् इन-इन कारणों से उत्पन्न अजीर्ण को नष्ट करने वाले होते हैं ॥ १ ॥

पनसे कदलं कदले च घृतं घृतपाकविधावपि जन्मभरसः ।

तदुपद्रवशान्तिकरं लघवं लघणेषु च तण्डुलवारि परम् ॥ २ ॥

कटहल के अजीर्ण में केला, केला के अजीर्ण में घृत, घृत के अजीर्ण में जमीरी नीबू का रस, जमीरी नीबू के अजीर्ण में नमक, नमक के अजीर्ण में चावल का धोअन ये सब हितकर (अजीर्ण नाशक) होते हैं ॥ २ ॥

गोधूमे कर्कटिका माषे तकं च मूलकं चणके ।

आमलकं किल मुदुगे दीप्त्यः पक्षा तु यावनाले स्यात् ॥ ३ ॥

गेहूं के अजीर्ण में ककड़ी, उरद में तक [मट्ठा], चने में मूली, मूंग में औवला और मकई में अजवाइन खाने से इन सबों के अजीर्ण नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

खण्डं च खण्डयति माषभवं अजीर्ण तैलं कुलशजमिति प्रवदन्ति केचिद् ।

द्राशा मुकुलकनिकोषकसेवितं चा वातामवृन्तफलपाककरं लघव्यम् ॥ ४ ॥

उरद के खाने से उत्पन्न अजीर्ण को शकर और कुलधी से उत्पन्न अजीर्ण को तेल नष्ट करता है, मुकुलक (मौलसरी का फल), निकोषक (पिस्ता), सेवित (सेव) इन सब के खाने से उत्पन्न अजीर्ण द्राशा (मुनका) से नष्ट होता है, वादाम और तरबूजा से उत्पन्न अजीर्ण को लवंग नष्ट करता है ॥ ४ ॥

कहु रथमाकनीधारकोरदूषमकुषकः। इथना जलेन जीर्यन्ति काञ्जिकं रथाहर्कीं पचेत् ॥५॥
पिण्डान्ने शोतुलं धारि कृष्णराज्ञे तु सैन्धवदम्। माधेष्ठर्थ्यं निदभूलं मुद्रशूलस्तु पायसे ॥६॥

कक्षु [दंगुनी], सौंवा, नीवार, कोदो, सोठ, इन सबों के कारण से उत्पन्न अजीर्ण दही के जल से नष्ट होता है। अरहर के दाल के अजीर्ण को कांजी नष्ट करती है, पिसे हुए अन्न के अजीर्ण को शीतल जल, खिंचड़ी के अजीर्ण को सेन्धानमक, माधेष्ठरी [वर्द की पिटटी के बने पदार्थ] के अजीर्ण को नीम की जड़, खीर के अजीर्ण को मूंग का जूस नष्ट करता है ॥ ५-६ ॥

मरस्य आज्ञाकलाश्चूर्मीं यवज्ञाराद्विषयते। क्षाशमूलाशीलकण्ठपाराचत्कपिञ्जलाः ॥ ७ ॥

मछली से उत्पन्न अजीर्ण को आम का फल पचाता है। कछुआ—मांस से उत्पन्न अजीर्ण को जवाखार पचाता है। नीलकण्ठ, कवूतर और इवेत तितिर के मांस से उत्पन्न अजीर्ण को काश [राढ़ा] के मूल का काथ नष्ट करता है ॥ ७ ॥

पटोलंवंशाङ्करारवेष्टीफलानि निरुक्तितानि जग्धवा ।

खारोदकं ब्रह्मतरोनिपीय भोक्तुं पुनर्वाच्छ्रुति तावदेव ॥ ८ ॥

परोरा, बौंस का अंकुर और करैली का फल इनको नीवू के रस में काथ कर सेवन करे और पलास के विधिवत क्षार को जल में धोल कर सेवन करे तो इससे सब प्रकार के अजीर्ण नष्ट हो जाते हैं और पुनः भोजन की इच्छा होती है ॥ ८ ॥

विपद्यते चूरणको गुडेन तथाऽलुकं तण्डुलकोदकेन ।

पिण्डालुकं जीर्यति कोरदूषात्कसेहपाकः खलु नाशरेण ॥ ९ ॥

सूरणकन्द [ओल] का अजीर्ण गुड़ से पचता है, आलूका अजीर्ण चावल के धोअन से, पिण्डालु [मुथनी] कोदो से तथा कसेल सोंठि से पचता है ॥ ९ ॥

खारो जीर्यति तक्रेण तदूषयं कोष्णमण्डतः। माधिषं मणिमन्थेन शङ्खचूर्णेन तद्धिः ॥ १० ॥

क्षार पदार्थ तक [मट्ठे] से पचते हैं, गाय का तक उष्ण मण्ड से, भैंस का तक सेन्धानमक से और भैंस का दही शङ्ख के चूर्ण से पचता है ॥ १० ॥

रसाला जीर्यति व्योषात्प्रसंद नागरमेषणात्। गुडो नागरसुस्ताभर्या तथेत्तुश्वास्त्रद्वेकाशानात् ॥

रसाला (दुधादिक से बना पेय), सोठ, पीपरि और मरिच से पचती है, शक्कर सोठ से पचती है, गुड़ का अजीर्ण सोठ और नागरमोथा से पचता है और ईख का रस अद्रक के खाने से पचता है ॥ ११ ॥

अथ रसाः

अजीर्णहरी वटी—दन्तीबीजमकरमधं सदहनं शृण्डीं लघङ्गं समं

गन्धं पारदट्टकं च मरिचं श्रीवृद्धदारो विषम् ।

खल्वे यामयुगं विमर्थं विधिना कन्तीद्रवैर्भवना

देया: पञ्चदशानु निरुक्तजलेष्वेदा त्रिधा विधकः ॥ १ ॥

त्रिधा शाऽद्वर्दकजै रसैः शभिद्या सहैव चावेदिना

पश्चाष्टुष्ककलायसेमितवटी कार्या भिषक्षसंमसा ।

कुद्रोधप्रकरी त्रिशूलशमनी जीर्णद्वरध्वंयिनी

कासारोच्चपण्डुतोदरगदाल्पामामद्वाशिनी ॥ २ ॥

वस्थादोपहलीमकामयहरी मन्दाप्तिसम्भीपनी

सिद्धेयं तु महोद्विष्रकटिता सर्वामिथणी सदा ॥ ३ ॥

अजीर्णचिकित्सा

अजीर्ण के रस प्रकरण में प्रथम अजीर्णहरी वटी—शुद्ध दन्तीबीज, चित्रकमूल, सोंठ, लवंग, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध टक्कण, मरिच, विधारा, शुद्ध विष सबको समान भाग लेकर प्रथम पारद—गन्धक की कजली कर पुनः अन्य द्रव्यों के चूर्ण को मिला कर दो पहर तक खल में मर्दन करे, फिर दन्ती के काथ अथवा स्वरस से पन्द्रह भावना देवे, फिर नीवू के रस, चित्रक के काथ तथा अद्रक के रस से सात भावना देकर सूखे हुए कलाय (केराव) के समान वटी बना ले। सेवन करने से यह शुधा को बढ़ाने वाली तीनों दोषों से उत्पन्न शूल, जीर्ण ऊवर को नष्ट करने वाली, कास, अहस्ति, पाण्डु, उदररोग, पामा, वायुरोग, मूत्राशय के आदोप और हलीमक को नष्ट करती है, मन्दाप्तिन को दीप करती है। और यह 'महोद्विष' ग्रन्थ से उद्धृत वटी सिद्ध है और सब रोगों को नष्ट करती है ॥ १-३ ॥

रसेन्द्रचिन्तामणेरग्निकुमारः—

पारदं च विषं गन्धं टक्कणं समभागतः। मरिचादृष्टभागः श्युद्धैँ द्वौ शङ्खद्वारादयोः ॥ १ ॥

पक्षजम्बवीरज्ञेगांडं इसैः सप्त विभावयेत्। गुज्जाद्यमितो देयो रसो द्विनिकुमारकः ॥ २ ॥

समीरणसमुद्भूतमजीर्णं च विसूचिकाम्। चूर्णेन व्यपथस्येष कफरोगनिकृन्तनः ॥ ३ ॥

रसेन्द्रचिन्तामणि का अग्निकुमार रस—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, शुद्धविष, शुद्धटक्कण, श्रेयेक समान (एक-एक भाग), मरिच का चूर्ण आठ भाग, शङ्खभस्म और कौड़ी भर्म सदो-दो भाग लेकर प्रथम पारद—गन्धक की कजलीकर अन्यान्य द्रव्यों को भी 'एकत्र कर घोटकर पके हुए जमीरी नीवू के रस में सात भाव भावना देकर दो रक्षी के प्रमाण की मात्रा से यह 'अग्निकुमार रस' सेवन करने से वायु से उत्पन्न होनेवाले अजीर्ण (विष्टव्याजीर्ण) तथा विसूचिका रोग और कफ के रोग को क्षण भर में नष्ट कर देता है ॥ १-३ ॥

द्वितीयोग्निकुमारः—रसेन गन्धं सह टक्कणे रसमं विषं योग्यमतविभागम् ।

कपदंशङ्खावपि नेत्रभागी मरीचकं चाष्टुर्णां चिमर्थं ॥ १ ॥

सुपक्षजम्बवीरसेन खल्वे सिद्धो भवत्यग्निकुमारकोऽयम् ।

अजीर्णवातं गुडगुडमधातं विसूचिकां चिनिहन्ति स्वतः ॥ २ ॥

द्वितीय अग्निकुमार रस—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, शुद्धटक्कण तीनों समान (एक-एक भाग) और शुद्ध विष तीन भाग, कौड़ी का भर्म और शङ्ख का भर्म दो-दो भाग और मरिच का चूर्ण आठ भाग लेकर प्रथम पारद—गन्धक की कजली कर अन्यान्य द्रव्यों को भी मिला एकत्र भर्मन कर पके हुए जमीरी नीवू के रस के साथ मर्दन करने से सिद्ध यह 'अग्निकुमार रस' सेवन करने से अजीर्णवात, गुदवात, वातगुलम रोग और विसूचिका आदि को शीघ्र नष्ट करता है ॥

लघुकव्यादः—

पारदाद द्विगुणं गन्धं गन्धांशं भृतलोहकम्। पिपली पिपलीमूलमग्निषुष्टीलक्षकम् ॥

लोहसाध्यं पृथक्कुर्याद्रससाध्यं सुवर्चलम्। टक्कणं मरिचं चापि गन्धतुस्थं प्रदापयेत् ॥ २ ॥

एतद्विचूर्यं अत्यनेन भावयेत्सप्ताद्गलकैः। एतद्वस्तव्यनं श्वेषं भावमात्रं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥

तक्षणं केवलं वाऽपि द्वच्छोजनपात्तेऽन्तः। चित्रं तज्जीर्णते शुर्कं द्वीपमं अवति ध्रुवम् ॥

सर्वजीर्णप्रवासनं लघुकव्यादसंज्ञितम् ॥ ४ ॥

लघुकव्याद रस—शुद्धपारद एक भाग, शुद्धगन्धक, लोहमस्म, पीपरि, पिपरामूल, चित्रकमूल, सोंठ, लवंग, सोंठि, लवंग इन सब का चूर्ण पृथक् २ दो-दो भाग, सोंठर नमक [पारद के तुल्य एक भाग], शुद्धटक्कण और मरिच का चूर्ण गन्धक के समान दो-दो भाग) लेकर प्रथम पारद—गन्धक की

कज्जली कर अन्यान्य द्रव्यों को मिला मर्दन कर नीबू के रस की सात भावना देवे। यह रसायन है, ऐष्ट है, इसकी २ मात्रा के प्रमाण की मात्रा से केवल तक [मट्ठा] के अनुपान से सेवन करने से भोजन पचाता है, भोजन किया अन्न शीघ्र पचकर अग्नि दीप हो जाती है और यह 'लघु-क्रव्याद' नामक रस सब प्रकार के अजीर्णों को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

बृहत्क्रव्यादो मन्थानभैरवात्—

द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्रावित्वा विनिविषेत् । पारदं पलमानं तु मृतशुश्वायसी पृथक् ॥ १ ॥
पलाध्माने संमिश्रय पञ्चाङ्गुलदले चिपेत् । ततो विचूर्ण्य यरनेन लोहपात्रे विचृणः ॥ २ ॥
निधापयेद्दसं तत्र लग्नीरस्य पलं शतम् । वस्त्रपृतं ततः कृत्वा लोहपात्रे विनिविषेत् ॥ ३ ॥

मुद्दिग्निना पचेत्तत्र दर्वर्या सञ्जालयेभ्युद्धुः ॥ ४ ॥

संचूर्ण्यं पञ्चकोलोरथैः कथायैः सास्त्रवेत्सैः । भावनाः किल दातव्यः पञ्चाङ्गाप्रमिताः पृथक् ॥
भृष्टदृष्टण्चूर्णेन तुश्येन खण्ड भेलयेत् । तदधं कृत्वालवर्णं मरिचं सर्वतुरस्यकम् ॥ ५ ॥
ससधा भावयेत्पञ्चाङ्गक्षाराद्वाराद्विणा । ततः संशोध्य संपिण्य कूप्याक्षं जठरे विषेत् ॥ ६ ॥
अत्यर्थं गुरुमोत्तानि गुरुमोत्तान्यनेकक्षाः । भुक्त्वा चाऽऽकण्ठपयन्तं चतुर्वृद्धिमितो रसः ॥ ७ ॥
कटवद्वलतक्षसहितः पीतमात्रो हि पाचयेत् । पुनर्भोजयति च्छ्रिं का पुनर्मन्दृष्टिहता ॥ ८ ॥
रसः क्रव्यादनामाऽर्थं प्रोक्तो मन्थानभैरवः । सिंहलङ्घिणिपालस्य भूरिमांसग्रियस्य च ॥

पुनर्भोजनकामस्य भैरवानन्दयोगिनः ॥ ९ ॥

कुर्यादीपनमूर्धवलत्रुग्राद्वहृष्टामसंशोधनं—स्तुन्दस्थौयनिवर्णो मदहाः शूलातिमूलापहः
वातग्रन्थिमहोद्धरापहरणः क्रव्यादनामा रसः ॥ ११ ॥

मन्थानभैरव का बृहत्क्रव्याद रस-शुद्ध गन्धक दो पल (८ तो ०) अग्नि पर द्रावित कर पात्र [खल अथवा कड़ीही] में रख उसमें शुद्ध पारद एक पल [४ तो ०] मिलाकर कज्जली कर उसमें तात्रभस्म और लौहमस्म आधा २ पल भिलाकर मर्दन कर अग्निपर द्रावित कर परण्ड के पत्र पर पर्पटी की विधि से रखकर पर्पटी बना लोहे के पात्र में यथनपूर्वक चूर्ण करे पुनः इसमें जमीरी नीबू का रस एक सौ पल लेकर वस्त्र में छान कर मिलावे और पुनः शुद्ध अग्नि पर रख कर पकावे और लोहे की कलछी से बार-बार चलाता रहे जब सब रस-सूख जावे तब चूर्णकर पंचकोल [पीपरि, पिपरामल, चाव, चित्त, सौंठि] और अम्लवेत के क्वाथ से पृथक्-पृथक् पचास-पचास भावना देकर सुखा लेवे। फिर इस चूर्ण के समान (वरावर=४ पल) शुद्धदृष्टण का चूर्ण मिलाकर उसमें काला नमक दो पल [दृष्टण के आधा] और सब के बराबर अर्धात् दस पल मरिच का चूर्ण मिलाकर मर्दन कर चने के क्षार के जल से सात बार भावना देकर सुखा-पीस कर शीशी में रख लेवे। अत्यन्त गुरु बनाया हुआ मांस तथा अनेक प्रकार का अत्यन्त गुरु अन्न खाने पर और कण्ठ तक भी अत्यधिक भोजन करने पर इसको चार बल [१२ रुपी] के प्रमाण की मात्रा से कड़ (त्रिकटु) और अम्ल तक के अनुपान से पीते से पीते मात्र ही सब प्रकार का भोजन पच जाता है और पुनः भोजन की इच्छा हो जाती है। फिर मन्दाग्नि रोग कैदे रह सकता है। 'क्रव्याद' नामक इस रस को 'मन्थानभैरव' ने सिंहल दीप (लङ्घा) के राजा के लिये जो अत्यन्त मांसग्रिय था और बार-बार भोजन करने की इच्छा रखता था 'भैरवानन्द योगी' से कहा था और यह रस अग्नि को दीप करता है, कर्वजंतु के रोगों को नष्ट करता है, दूषित आम को शुद्ध करता है, तुन्द (तोंद वा पेटकी स्थूलता) और शारीरिक स्थूलता तथा मद को नष्ट करता है, शूलरोग को समूल नष्ट करता है, गुरुम, ग्लीदा, अनेक प्रकार की पीड़ा, वातरोग, वात की ग्रन्थि और महोदर (उदर के अत्यन्त बढ़ जाना) को नष्ट करता है ॥ १-११ ॥

अजीर्ण योगः—शूद्रौ चारौ टक्कणं सूतं लब्धं लवणश्रयम् ।

पिण्डली गन्धकं शूष्टी मरिचं पलसंस्मितम् ॥ १ ॥

कर्षमेकं विषं द्रव्या सूथमचूर्णानि कारयेत् । अर्कहुंधरस्य दातव्या भावना संस्थासरम् ॥ २ ॥

अन्तर्धूमं गजपुटे पक्षवा शीतं समुद्धरेत् । ततो लवङ्गमरिचफटिकीना पलं पलम् ॥ ३ ॥

सर्वं समर्थं द्रव्यद् वृद्धभाष्वे निधापयंत । सायं गुजाराद्यं खादेद् भुक्तं द्रावयति खणात् ॥

पुनर्भोजनवाङ्मुखो च जनयेत्प्रहरोपरि । आममांस द्रावयति श्लेष्मरोगनिकृत्वनम् ॥ ४ ॥

अजीर्ण रोग पर क्षारादिक योग—सज्जीखार, जवाखार, शुद्धटक्कण, शुद्धपारद, लवङ्ग, सेंधानमक, सोचरनमक, विडनमक, पीपरि, शुद्ध गन्धक, सौंठि, मरिच प्रत्येक एक-एक पल लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर पश्चात् सबके चूर्ण को मिलाकर शुद्ध विष का चूर्ण एक कर्ष मिलावे और भलीभौति मर्दन करे उसके पश्चात् मदार के दूध की सात दिन सात भावना देवे फिर सम्मुट में रख-अन्तर्धूम की विधि से 'गजपुट' में पका शीतल होने पर निकाल कर उसमें लवङ्ग, मरिच और फटिकीरी एक-एक पल ले चूर्ण कर मिलावे और भलीभौति मर्दन कर एक वृद्ध काच के पात्र में रख कर सायंकाल दो रत्ती की मात्रा से खावे तो भोजन किया पदार्थ क्षण भर में द्रवित (रस) हो जाता है (पच जाता है) और एक पहर के अनन्तर पुनः भोजन की हच्छा करा देता है, आम (कचा) मांस भी इसके सेवन से पच जाता है और कफ का रोग इससे नष्ट हो जाता है ॥ १-५ ॥

अग्निसुखो रसः—सूतं गन्धं विषं तुष्टं मर्दयेद्वादंकद्वयैः ।

अश्वरथविज्ञापामार्गादारः श्वारौ च टक्कणम् ॥ १ ॥

जातीफलं लवङ्गं च त्रिकटु त्रिकला समय । शाङ्कुचारं पञ्चपलं हिङ्गुजीरं हिंभागिकम् ॥ २ ॥

मर्दयेद्वल्ययोगेन गुजारामात्रा वटी शुभा । पाचनी दीपनी सधोऽजीर्णशूलविसूचिका ॥ ३ ॥

हिंकां गुरुमं चोदरं च नाशयेनान्नासंशयः । रसेन्द्रसंहितार्थां च नाशना वहिसुखो रसः ॥

अग्निसुख रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष तीनों पदार्थ समान भाग (एक-एक भाग वा एक-एक पल) के पारद-गन्धक की कज्जली कर विषमिला अद्रक के रस के साथ मर्दन कर उसमें अश्वथ वृक्ष, इमली, अपामार्ग इनका क्षार, सज्जीखार, जवाखार, शुद्धटक्कण, जायफर, लवङ्ग, सौंठि, पीपरि, मरिच, अंवरा, हर्दा, वहरा सब समान एक-एक भाग वा एक-एक पल, शहू का क्षार (अर्थात् भस्म) पांच पल, हींग और जीरा दो-दो भाग (दो-दो पल) लेकर चूर्ण कर एकत्र मर्दन कर अम्ल (नीबू) के रस के साथ मर्दन कर एक रत्ती के प्रमाण की बड़ी बना कर सेवन करने से पाचन, दीपन और अजीर्ण, शूल, विसूचिका, हिंका, गुरुम और उदररोग को शीघ्र नष्ट करती है, इसमें संशय नहीं। 'रसेन्द्रसंहिता' नामक ग्रन्थ में इसे 'वहि (अग्नि) सुख रस' कहा गया है ॥ १-४ ॥

अजीर्णरिसः—शुद्धं सूतं गन्धं च पलमानं पृथक्पृथक् ।

हीरीतकी च द्विपला नागर त्रिपलं स्मृतम् ॥ १ ॥

कुण्डा च मरिचं तद्विस्मृथ्यं त्रिपलं पृथक् । चतुष्पला च विजया मर्दयेनिश्चुकद्रवः ॥ २ ॥

पुदानि सस देयानि धर्ममध्ये पुनः पुनः । अजीर्णरिसं प्रोक्तः स्थौदीदीपनपाचनः ।

भृष्येद् द्विगुणं भवयं पाचयेद्वयेदपि ॥ ३ ॥

अजीर्णरिस रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक एक-एक पल ले कज्जली कर उसमें हर्दा का चूर्ण दो पल, सौंठि, पीपरि, मरिच और सेन्धानमक प्रत्येक तीन-तीन पल, शुद्ध भाग का चूर्ण चार पल लेकर एकत्र कर नीबू के रस से मर्दन कर प्रूप में नीबू के रस की सात भावना

देवे । यह रस 'अजीर्णारि' कहा जाता है । शीघ्र दीपन और पाचन है, इसके सेवन से मनुष्य भोजन दुगुना कर सकता है और इससे पाचन तथा रेचन भी होता है ॥ १-३ ॥

अजीर्णारिः रसः—

सूतं गन्धकतालकं विषयुतं टक्कं यवज्ञारकं, भार्णी वहिपुनर्नवाग्निकटुकं लोहाभ्रकं त्रैफलम् ॥ १ ॥
चूर्णं भृङ्गरसेन मर्दितमयो निर्गुणिदकाद्वावके—पश्चादाद्वैक्वीलपूरकरसेन्द्रेया पुनर्भाविता ॥ २ ॥

भुक्तं जीर्यति भोज गुरुतरं मासादिकं पिष्टकं ।

गुजारपञ्चकसंग्रहस्थ वटिका श्रीभैरवाच्छिक्षिता ॥ ३ ॥

एकीहं गुप्तमजलोदरं कटिभवं शुलं पुनर्जाठरं-शोकं हन्ति तथामर्जं बहुरुजं तुरुधीदनं भक्षणे ॥

अजीर्णहर रस-शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध इरताल, शुद्ध विष, शुद्ध टक्कण, जवाखार, वभनेठी, चित्रकम्बल, पुनर्नवा (गदहपुरना), सौठि, पीपरि, मरिच, लोहभस्म, अब्रकभस्म, बैंवरा, हर्दा, वहेरा, इन सब को समान भाग ले चूर्ण कर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर सबको एकत्र पिला भांगरा, निर्गुण्डी (मैलडी), अद्रक और विजौरे नीबू के रस की पृथक् २ भावना देकर पांच रक्ती के प्रमाण की बटी बना सेवन करने से युग्र पदार्थ मांसादिक तथा पिठ्ठी आदि के बने भोजन भी शीघ्र पच जाते हैं और इससे प्लोहा, गुलम, जलीदर, कटिशल, उदरश्ल, शोथ, आम से उत्पन्न होने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं । इसके सेवन करने में धू-भात का पथ्य लेना चाहिये, इसको 'भैरवजी' ने कहा था ॥ १-४ ॥

पशुपतो रसो धन्वन्तरीयमतात् ।

कर्वं सूतं द्वित्ता गन्धं त्रिभागं भरम तीवणकम् । त्रिभिः समं विषं योउवं विक्रक्षवभावितम् ॥
द्वित्ता विक्रटुकं योउवं लवक्ष्मै तु तत्समे । जातीकफलं जातिपत्रं चार्षभागमितं मत्तम् ॥ २ ॥
तथाऽर्वं पञ्चलवणं स्तुत्ताकौ चाऽपि तिनित्तदी । अपामार्गोऽधर्थं एवां लवणं च पलाधर्कम् ॥
टक्कणं यावक्त्वां रस्त्रिका हिङ्गु जीरकम् । हरीतकी सूततुलया मर्दयेद्वलयोगतः ॥ ३ ॥
धूतंसीजस्थं वै भरम सर्वः सप्तमभागतः । रसः पाशुपतो नाम प्रोक्तः प्रथयकारकः ॥ ५ ॥
गुजारामात्रा वटी कार्या सर्वजीर्णविनाशिनी । तालमूलीतक्षयोगादुदरामयनाशिनी ॥ ६ ॥
मोचारसेनातिसारं ग्रहणीं तकसैन्धवैः । शूले नागरकं शर्तं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥ ७ ॥
अशःसु तक्षेण हिता पिष्पली राजयसमणि । वातरोगं निहन्त्याद्य शुण्ठीसौवर्चलान्विता ॥ ८ ॥

गुहुची शकंरायोगादिपत्तरोगविनाशिनी ।

पिष्पलीचौद्रयोगेन श्लेष्मरोगादिकृन्तति । अतः परतरा नास्ति धन्वन्तरिमते वटी ॥ ९ ॥

पशुपतं रस (धन्वन्तरि के मत से)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सोहागा प्रत्येक एक-एक भाग, कौड़ी का भस्म, शङ्ख का भस्म, शुद्ध विष, घर में का धूआँ (शोला) प्रत्येक तीन-तीन भाग, मरिच का चूर्ण आठ भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर फिर अन्यथान्य द्रव्यों के चूर्णों की मिला जमीरी नीबू के रस में भलीभांति भर्दन कर मूँग के बराबर वटी बना सेवन करने से गुलम, अरुचि, शूल, मन्दाद्य, अजीर्ण, विसूचिका, कफ के रोग, सिर की जड़ता (गुरुता) और कासरोग को यह रस नष्ट करता है । इसे अद्रक के रस के अनुपान से चाटना चाहिये । ब्रह्माजी ने सैकड़ों प्रकार के यत्न से इस रस का निर्माण किया था । इसका नाम 'हुताशन रस' है ॥

सोचरत्नमक, अर्ण में तक (मट्ठे), राजयसमा में पीपरि के चूर्ण के अनुपान से सेवन करना चाहिये और सौठि तथा सोचर नमक के साथ सेवन करने से वातरोग को शीघ्र नष्ट करता है, गुरुचि और शकर के अनुपान से पिचरोग, पीपरि और मधु से कफ के रोग को नष्ट करता है । इस 'पाशुपत रस' नामक वटी से बढ़कर अजीर्ण रोग के लिये धन्वन्तरि के मत से दूसरी वटी नहीं है ॥ १-२ ॥

रससिन्धोः—आदित्यरसः—इवं च विषं गन्धं विक्रटुकं लिप्तम् ।

जातीकफलं लवक्ष्मै च लवणानि च पञ्च वै ॥ १ ॥

सर्वमेतत्कृतं चूर्णमध्लयोगेन स्पष्टा । भावयित्वा वटी कार्या गुजार्वप्रसिता सुधैः ॥ २ ॥

रसो श्लादित्यसञ्ज्ञोदयमजीर्णव्यकारकः । भुखमात्रं पाचयति उठरानलव्यपनः ॥ ३ ॥

आदित्य रस—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, त्रिकटु, त्रिफला, जायफर, लवंग और पांचों नमक इन सबको समझाग में लेकर चूर्ण कर नीबू के रस की सात भावना देकर आधी गुला (रक्ती) के प्रमाण की वटी बना ले । 'आदित्य' नामक यह रस अजीर्ण को नष्ट करने वाला है और भोजन करते ही अन्न को पचा देता है । तथा अग्नि को दीप करता है ॥ १-३ ॥

हुताशनः—एकं च विश्वाषक्षमागमानं योजयं विषं टक्कणमूर्च्छणं च ।

हुताशनो नाम हुताशनस्थ करति वृद्धि कफवातहन्ता ॥ १ ॥

हुताशन रस—शदध विष एक भाग, शुद्ध टक्कण चार भाग, मरिच का चूर्ण बारह भाग लेकर मर्दन कर सेवन करने से यह 'हुताशन' नामक रस अग्नि को बढ़ाता है और कफ-वात को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अन्यच—एकांशकाः पारदगन्धटकाः कपरदशङ्खमूतगेहधूमाः ।

अयं ग्रा हमेश्यो मरिचं त्विभांशं सम्प्रदितं जग्मरसेन गाढम् ॥ १ ॥

गुलमारोचकशुलवहिसदनाजीर्णविसूचीकफः

आद्यं शार्षंसमुद्धवं च कसनं सुद्रप्रमाणा वटी ।

लीडास्त्रंस्थं रसेन हन्ति कथितानेतान्दान्त्रहृष्णा ।

पूर्वं निमित्तं पृष्ठं यत्वात्तकैर्नाम्ना हुताशो रसः ॥ २ ॥

अन्य मत से हुताशन रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सोहागा प्रत्येक एक-एक भाग, कौड़ी का भस्म, शङ्ख का भस्म, शुद्ध विष, घर में का धूआँ (शोला) प्रत्येक तीन-तीन भाग, मरिच का चूर्ण आठ भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर फिर अन्यथान्य द्रव्यों के चूर्णों की मिला जमीरी नीबू के रस में भलीभांति भर्दन कर मूँग के बराबर वटी बना सेवन करने से गुलम, अरुचि, शूल, मन्दाद्य, अजीर्ण, विसूचिका, कफ के रोग, सिर की जड़ता (गुरुता) और कासरोग को यह रस नष्ट करता है । इसे अद्रक के रस के अनुपान से चाटना चाहिये । ब्रह्माजी ने सैकड़ों प्रकार के यत्न से इस रस का निर्माण किया था । इसका नाम 'हुताशन रस' है ॥

अजीर्णकण्ठो रसः—

शुद्धसूतं विषं गन्धं प्रत्येकं च समं सम्भम् । मरिचं लर्वतुलयांशं कण्ठकारीफलद्वयैः ॥ १ ॥

मर्दयेद्वायवेद्यनादेकविशिष्टवारकम् । गुजारामविद्यवादेत्सवाजीर्णप्रसान्तये ॥

सर्वोपद्रवसंयुक्तां विसूचीमपि नाशयेत् ॥ २ ॥

अजीर्णकण्ठक रस—शुद्ध पारद, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक समान (एक-एक भाग) लेवे और सबके समान भाग (तीन भाग) मरिच लेकर छोटी कट्टी के फल के रस के साथ

मर्दन कर कटेरी के ही रस की २१ मावना देकर तीन गुआ (रक्ती) के प्रमाण में सेवन करने से सब प्रकार का अजीर्ण नष्ट होता है और सब प्रकार के उपद्रवों से युक्त विसूचिका रोग भी नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

अथ विसूच्यादिचिकित्सा

सूचीभिरिव गात्राणि तु दन्तनिष्ठिष्ठते इनिलः । यस्याजीर्णं सा वैश्विसूचीति निगच्छते ॥ १ ॥
विसूचिका आदि की चिकित्सा—जिस अजीर्ण में सुई नुभाने के समान शरीर में पीड़ा करता हुआ वायु स्थित ही उसे वैद्य 'विसूचिका' रोग कहते हैं ॥ १ ॥

विसूच्यामतिवृद्धायां पाण्योर्धाहः प्रशास्यते । गन्धकं कुङ्कुमं वाऽपि दृश्यादिशृजलेन वा ॥ २ ॥
अत्यन्त बढ़े हुए विसूचिका रोग में पैर की एडियों में दाह करना अर्थात् लोहे अथवा इट आदि को तपा कर दाह कर देना हितकर होता है और शुद्ध गन्धक अथवा केसर नीबू के रस से देने से लाभ होता है ॥ २ ॥

ध्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रानिम्बुकद्रवैः । नस्याख्ने प्रयोक्तव्ये कुर्यात् अलसेचनम् ॥ ३ ॥
सौंठि, मरिच, पीपरि, करञ्ज का फल और दही सब समान ले चूर्ण कर नीबू के रस के साथ मर्दन कर नस्य देने अथवा अज्जन करने से और जल का सेवन (पान) करने से विसूचिका में लाभ होता है ॥ ३ ॥

ध्योषं करञ्जस्य फलं इरिद्रा मूलं समावाप्य च मातुलुक्याः ।

छायाचित्युष्टा गुटिका: कृतास्ता हन्युविसूचीं नयनाख्नेन ॥ ४ ॥

सौंठि, पीपरि, मरिच, करञ्ज का फल, हरदी और जमीरी नीबू की जड़ इन सब को समान पीसकर जल के सहारे वटी बना छाया में सुखा कर नेत्र में अज्जन करने से विसूचिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

करञ्जनिम्बशिखरीगुह्यच्यर्जुमवसङ्कैः । पीतः कधायो चमनाद घोरा हन्यादिसूचिकाम् ॥ ५ ॥

करञ्ज, नीम की छाल, अपामार्ग, गुह्यचि, अर्जुन की छाल, कोरया की छाल इन सबका विधिपूर्वक काथ बनाकर पीने से वमन होकर अत्यन्त बढ़ी हुई 'विसूचिका' भी नष्ट होती है ॥ ५ ॥

निम्बूरसश्चित्पिणिकासमेतो विसूचिकाप्रोष्टहः प्रदिष्टः ।

दुधेन पीतो यदि टक्कोऽसौ प्रशास्येद्वयमनं निरुच्यात् ॥ ६ ॥

नीबू के रस में इमली घोलकर पीने से विसूचिका का शोष नष्ट हो जाता है। और दूध के साथ यदि शुद्ध सोडागा पिलाया जाने तो विसूचिका शान्त होती है और वमन का अवरोध होता है ॥ ६ ॥

पिपासायां तथोत्क्लेशे लवण्यस्याम्बु शाश्यते । जातीफलस्य वा शीतं शृतं अद्वधनस्य वा ॥ ७ ॥

विसूचिका रोग में पिपासा होने पर योग—विसूचिका रोग में रुपा हो अथवा उबकाई हो तो उसमें लवण का जल अथवा जायफर वा नागरमोथा को जल के साथ पकाकर शीतल कर देने से लाभ होता है ॥ ७ ॥

त्वक्पत्ररात्र्यगुक्षिग्रकृष्टरम्लप्रवृष्टैः सवचाशतःहौः ।

उद्धर्णं खल्लिष्विसूचिकाध्यं तेलं चिपकं च तद्धर्थकारि ॥ ८ ॥

दालचीनी, तेजपात, रासना, अगर, सहिजन, कूठ, वच, सौफ इनको समझान लेकर अम्ल-पदार्थ कोजी आदि में पीस कर उबटन करे तो खल्लीरोग और विसूचिका रोग नष्ट होता है और इन्हीं ओषधियों को तैलपाक विधि से तेल पका कर लगावे तो वह भी उबटन ही के भाँति खल्ली तथा विसूचिका का नाशक होता है ॥ ८ ॥

अथ चुक्राद्यं तैलम्

पलं चुक्रं कुष्ठं पित्तुयुगमितं सैन्धवकणे, तदधं प्रथेकं करतलमितं जातिफलकम् ॥ १ ॥

कटोरतैलं किञ्चिकुडवमितमप्नावधिश्वतं, तदेतच्चुक्राद्यं शामयति विसूचीं च सवादाम् ॥ २ ॥
चुक्रादि तैल—चुक्र (चुक्र) एक पल, कूठ दो कर्ष, सेंधानमक, पीपरि, जायफर प्रत्येक एक-एक कर्ष लेकर कलक करे और सूर्चित कुडुआ तेल (ससों का तेल) एक कुडव (१६ तो १८) लेकर यथाविधि तेल पकाकर लगाने से यह तेल उपद्रवों सहित विसूचिका को नष्ट करता है ॥ २ ॥

कुष्ठसेन्धवयोः: कवकं चुक्रं तैलसमिक्षतम् । विसूचीं मर्दनं कोषणं खल्लीशूलनिवारणम् ॥ ३ ॥

विसूचिकानाशक योग—कूठ और सेंधानमक समान लेकर कलक कर उसमें चुक्र और तैल मिलाकर कुष्ठ उष्ण कर मर्दन करने से खल्ली शूल नष्ट होता है ॥ ३ ॥

विलम्बिकालसक्योरुप्त्वाः शोधनं हितम् । नालेन फलवर्त्या च तथा शोधनमेषजैः ॥
दृष्टाण्डेत्तुलसकेऽप्यचैरयमेव क्रियाकमः ॥ २ ॥

विलम्बिका और अलसक रोग में ऊर्ध्वं शोधन (वमन) और अधःशोधन (विरेचन) कराना हितकर है। शोधनक्रिया नाल (एरण्डपत्र के दण्ड की नाल), फलवर्ती और शोधन की अन्य ओषधियों से करनी चाहिये। दण्डालसक आदि में भी यही चिकित्सा-क्रम कराना चाहिये ॥ २ ॥

उद्धारशुद्धिरसाहो वेशोत्सर्गो यथोचितः । लघुता/कृष्णपिण्यासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ ४ ॥

जीर्णाहार के लक्षण—भोजन करने के पश्चात् जब डकार शुद्ध आये, मन में उत्साह, मलमूत्र आदि का उचित त्याग, शरीर में लघुता, शुधा और पिण्यासा की प्रेरणा हो अर्थात् भोजन करने तथा जल पीने की इच्छा ही ये सब लक्षण हों तो भोजन पच गया जानना चाहिये ॥ ४ ॥

विरुद्धासाध्यपानां चिष्टमेनि गुरुणि च । अग्निमन्देऽप्यज्जीर्णं च सर्वाणि परिवर्जयेत् ॥

मन्दाग्निं तथा अजीर्ण में त्याज्य वस्तु—विरुद्ध और असाध्य भोजन तथा पान, सब प्रकार के विष्टम्भी (मलावरोधक) तथा गुरु पदार्थ भोजन अजीर्ण तथा मन्दाग्नि वाला रोगी त्याग देवे (अजीर्ण मन्दाग्निं में यह कुपथ्य है) ॥ ४ ॥

फलवर्ति वर्त्ति स्वेदं लहूनं चापर्षणम् । विशेषादलसे कुर्याद्वृसूच्यामतिसारवत् ॥ ५ ॥

अजीर्णादि में पथ्य—फलवर्ति, वर्त्ति, स्वेदनक्रिया, लहून, अपतर्पण (अल्प भोजन) ये सब विशेषतः अलसक रोग में करना चाहिये और विसूचिका में अतीसार की सौंति पथ्य की क्रिया करनी चाहिये ॥ ५ ॥

इत्यजीर्ण-चिकित्सा ।

अथ क्रिमिनिदानम्

तत्र क्रिमिभेदानाह—

क्रिमयस्तु द्विधा प्रोक्ता वाल्लाभ्यन्तरमेदसः । अहिमलकापाद्यविद्यन्मभेदाचतुर्विधाः ॥ १ ॥

क्रिमिनिदान-चिकित्सादि—क्रिमि के भेद—क्रिमि वाल्ला (शरीर के वाहर) और आभ्यन्तर (शरीर के भीतर पेट में के) भेद से दो प्रकार की होती हैं तथा इन दोनों प्रकार की क्रिमियों की उत्पत्ति के अनुसार चार भेद हैं—एक वाहर के मल (स्वेदादि) से उत्पन्न होने वाली, दूसरी कफ से उत्पन्न होने वाली, तीसरी रक्त से उत्पन्न होने वाली और चौथी विद्या में जन्मने होने वाली ॥ १ ॥

नामतो विश्वतिविधा ब्राह्मास्तथ मलोद्धावः । तिलप्रमाणसंस्थानव्याप्तिः केशाभ्वराक्षयाः ॥२॥

फिर नाम के कारण इनके बीस भेद हैं। उनमें बाय किमि के निदान लक्षण और भेद—बाहर के मल (स्वेदादि) के दृष्टिं होने से उत्पन्न होने वाली किमि तिळ के प्रमाण की और तिळ के ही बीं तीं स्वेत या कुण्ड दोनों प्रकार की होती हैं तथा केश (रोमादिक) तथा बखादिक के अश्रव रहती हैं ॥ २ ॥

बहुपादाश्च सूचमाश्च यूका लिङ्गाश्च नामतः । द्विधा से कोठपिटिकाकण्ठगण्डान्प्रकुर्वते ॥३॥

इनके भी दो भेद हैं—एक बहुत पैरों वाली होती है दूसरी सूक्ष्म होती है और इनका नाम यूका (जूँड़ा) और लिङ्गा (लींब आदि) है। ये दोनों शरीर पर कोष्ठ रोग (चर्म के ऊपर चक्करों का होना), छोटी २ पिटिका, कण्ठ और गण्ड (गाठ) का रोग उत्पन्न कर देती हैं ॥ ३ ॥

किमीणा निदानमाह—अजीर्णभोजी मधुराम्लसेवी द्रवप्रियः पिण्डगुदोपमोक्ता ।

ब्राह्मामवर्जी च द्विवाशायी च विरुद्धभोक्ता लभते क्रिमीश्च ॥ ४ ॥

अन्यान्य किमियों के निदान—जो मसुष्य अजीर्ण में भी भोजन करने वाला, मधुर और अम्ल रस युक्त तथा द्रव पदार्थ का अधिक सेवन करने वाला, पिसे हुए पदार्थ (पिट्ठी आदि) और गुड़ को अधिक भक्षण करने वाला, ब्राह्माम नहीं करने वाला, दिन में अधिक सेवने वाला और विरुद्ध (दूध-मछली आदि) भोजन करने वाला है, ऐसा मसुष्य किमिरोग को प्राप्त होता है (ये किमि होने के निदान (कारण) हैं) ॥ ४ ॥

माषपिण्डाचलबणगुणेदधिश्चैः कफोद्धावः ॥

विरुद्धाजीर्णशाकाण्डौ शोणितोथा भवन्ति हि ॥ ५ ॥

कफादिक से उत्पन्न होने वाले किमियों के पृथक् २ निदान—उरद के बने पदार्थ इट्ठी आदि अन्न, नमक, गुड और पचों के शाकादिक का अधिक सेवन करने से पुरीष में किमि उत्पन्न हो जाती है अर्थात् ये पुरीष में किमि होने के निदान (कारण) हैं। मास, उरद, गुड, दूध, दही और सिरका आदि के अधिक सेवन करने से कफ में किमि उत्पन्न होती है विरुद्ध भोजन (दूध के साथ-मत्स्यादिक), अजीर्ण में भोजन और शाकादिक (पन्न शाक) के अधिक सेवन करने से रक्त में किमि उत्पन्न होती हैं ॥ ५ ॥

सज्जातकिमिलक्षणमाह—

उवरो विवर्णता शूलं हृदोगश्चर्कर्दनं अमः । भक्षद्वेषोऽतिसारथ सज्जातकिमिलक्षणम् ॥ ६ ॥

आभ्यन्तर किमि के उत्पन्न होने के लक्षण—ज्वर, शरीर की विवर्णता, शूल, हृदोग, वमन, भ्रम, भोजन में अस्वस्ति और अतीसार होना ये सब लक्षण उदार में किमि उत्पन्न होने के हैं ॥ ६ ॥

कफजाना स्वरूपमाह—

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः । पुष्टुभ्यन्निभाः केचिरकेचिद्वृण्डपदोपमाः ॥ ७ ॥

रुद्धधान्याङ्गुराकारास्तनुहीर्घास्तथाऽन्यः । श्वेतास्तात्रावभासाश्च नामतः सप्तष्ठा तु ते ॥ ८ ॥

अन्त्रादश्चोदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः । चुर्वो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्त्रे च कुचरे ॥ ९ ॥

कफज किमि का स्वरूप—कफ से होने वाली किमि आमाशय में उत्पन्न होती है और वे जब बढ़ जाती हैं तो सब स्थानों (मुख की ओर, आंत की ओर, गुदा की ओर आदि २) में फैलती हैं इसमें से कोई चमरंजु की भाँति, कोई गण्डपद (केन्चुरे) की भाँति, कोई जमते हुए धान के अङ्गुर की भाँति, कोई पतली, कोई बड़ी, कोई छोटी, कोई खेत वर्ण की, कोई रक्तवर्ण की होती हैं। वे नाम के भेद से सात प्रकार की हैं। जैसे अन्त्राद (आंत में रहकर आंत आदि को खाने वाली), उदारवेष्ट

(सम्पूर्ण उदार में रहने वाली), हृदयाद (हृदय में रहती हुई वहाँ के सारभागादि को खानेवाली), महागुह (बहुत लम्बी), चुरु (छोटे २ बालकों को होती है), दर्भकुसुम (कुश के पुष्प की भाँति इवेत तथा सूक्ष्म) और सुगन्धा (अच्छी गन्धवाली) इस प्रकार सात भेद की होती हैं ॥ ७-९ ॥

हृष्णासमास्यच्च वणमधिपाकमरोचकम् । मूर्खर्ण्ड्विज्वरानाहकाश्यस्वयुपीनसान् ॥ १० ॥

कफजकिमि होने के लक्षण इन किमियों के होने से उत्कार्ष आना, मुख से लाला ज्ञाव, अन्न का परिपाक न होना, सूच्छा, वमन, ज्वर, आनाद, कृष्णता, छीक और पीनस रोग आदि का होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ १० ॥

रक्तजानां स्वरूपमाह—

रक्ताहिसिरास्थाना रक्तास्त्रोऽग्नः । आपादा वृत्ततात्राश्च सौप्रथारेचिददर्शनाः ॥ ११ ॥

केशादा छोमविध्वंसा रोममृद्धीपा उदुम्बराः । घट्से कुष्ठेकमर्णः सहसौरसमातरः ॥ १२ ॥

रक्तज किमिका स्वरूप—रक्त के दूषित होने के कारण से होने वाली किमि रक्त को बहन करने वाली अर्थात् जिसमें रक्त बहता है उस नाड़ी में उत्पन्न होती है और वे किमि अत्यन्त सूक्ष्म होने से कहाँयों का दर्शन भी नहीं होता अर्थात् कोई दिखाई देती और कोई नहीं दिखाई देती। इनके नाम केशाद, लोमविध्वंस, रोमदीप, उदुम्बर, सौरस और मातृ इस प्रकार छ हैं और वे छोटे प्रकार की किमि ही सब प्रकार के कुष्ठरोग को करने वाली होती हैं ॥ ११-१२ ॥

पुरीषजानां लक्षणमाह—

पक्षाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसिपिणः । वृद्धास्ते स्युभैयेयुष्म से यदाऽस्त्राशयोन्मुखाः ॥

तवाऽस्त्वयोद्ग्रानिःशासा विद्यग्न्यानुविधायनः ।

पुरीषज किमि के लक्षण—पुरीष के कारण से होने वाली किमि पक्षाशय में उत्पन्न होती हैं वे नीचे की ओर (उदा की ओर) चलने वाली होती हैं जब वे बहुत बढ़ जाती हैं तब आमाशय के निकट चली आती हैं और तब जो सुंह से ढकार तथा श्वास निकलते हैं वे विष्टा के गन्ध के समान गन्ध वाले निकलते हैं ॥ १३-१२३ ॥

तेषां स्वरूपमाह—पृथुवृत्ततनुस्थूलः श्यावपीतसितसिताः ॥ १४ ॥

ते पञ्च नामना कृमयः कक्षेकमकेरुकाः । सौखुरादः सल्लनाख्या लेलिहा जनयन्ति च ॥ १५ ॥

पुरीषज किमि के स्वरूप—पुरीष के कारण से होने वाली किमि बड़ी २, शृत्त (गोल), पतली, स्थूल, श्याववर्ण, पीतवर्ण, इवेत और इण्ड वर्ण की होती हैं। वे नाम से पांच प्रकार की होती हैं। कक्षेकम, मकेरुक, सौखुराद, सल्लन और लेलिह ॥ १४-१५ ॥

विष्टमेव शूलविष्टभक्षण्यादर्थपाद्युक्ताः । रोमहर्ण्डप्रिसदनगुणकण्ठविमर्णगाः ॥ १६ ॥

किमि के उपद्रव—किमि के होने से विष्टमेव अर्थात् अधिक गल निकलना, शूल, मलावरोध, कृष्णता, रुक्षता, पाण्डुता, रोमाङ्ग, मन्दविन और उदा में कण्डु होना आदि उपद्रव होते हैं। इस प्रकार अठारह किमि (सात कफज, छ रक्तज और पांच पुरीषज) आभ्यन्तर किमि होती हैं, इनमें से कितनी किमि नामानुसार काये करने वाली हैं अर्थात् अर्थुक्त नाम वाली हैं और कितनी का नाम साधारणतः है और दो वाय किमि (जूँड़ा और लिङ्गा) हैं इस तरह बीस प्रकार की किमियों का वर्णन है ॥ १६ ॥

अथातः क्रिमिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः

काणा:- सुस्तासुकर्णीफलदाहशिग्रुकाथः सकृष्णाकृमिशत्रुक्लकः ।

मार्गदृष्टयेनापि चिरप्रवृत्तान्कूमीज्जिहनित क्रिमिजांश्च रोगान् ॥ १ ॥

क्रिमिचिकित्सा में प्रथम काथ प्रकरण—नागरमोथा, मूसाकर्णी, विफला (अंवरा-हर्रा-बहेरा), देवदारु, सहिजन, इन द्रव्यों को समान (दो-दो कर्ष) लेकर काथ की विधि से काथ बना पीपरि और वामीरंग के कल्क का प्रक्षेप देकर सेवन करने से दोनों मार्गों (आमाशय और पक्वाशय अथोरं कफज और पुरीघज) में हुई क्रिमि नूतन अथवा पुरातन सभी नष्ट होती हैं और क्रिमि से होने वाले रोग भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दाहिमत्वकृतकाथस्तिलत्तेलेन संयुक्तः । त्रिदिनार्थात्यथेव कोष्ठतः कृमिजालकम् ॥ २ ॥

अनार की छाल का विधिवत् काथ बना तिल के तेल का प्रक्षेप देकर तीन दिन पीने से कोष्ठ में उत्पन्न हुई क्रिमियों के समूह नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

खदिरः कुटजः पिञ्चमन्वचाच-त्रिकृष्णिकलात्रिवृत्तासहितम् ।

पश्यमूलयुतं पिव सप्तदिनं कृमिकोटिशतान्प्रयिहन्त्यचिरात् ॥ ३ ॥

खेर, कोरैया की छाल, नीम की छाल, वच, सौंठि, पीपरि, मरिच, अंवरा, हर्रा, बहेरा, निशोथ इनका विधिपूर्वक काथ बना गोमूत्र का प्रक्षेप देकर सात दिन पीने से करोड़ों प्रकार की क्रिमि भी शीघ्र नष्ट होती है ॥ ३ ॥

चूर्णनि—निष्ववस्तकविद्धसैन्धवं रामठेन सह जन्मतुनाशनम् ।

निष्ववस्तकमजमोदकान्वितं चूर्णमेव मधुना प्रक्षस्यते ॥ ४ ॥

चूर्ण प्रकरण—नीम की छाल, कोरैया की छाल, वायभिरंग, सेन्यानमक और शुद्ध हींग को समान लेकर विधिवत् चूर्ण बनाकर सेवन करने से क्रिमि नष्ट होती है । इस चूर्ण में अजमोदा का भी चूर्ण मिला दे तो इसको 'निष्ववस्तकचूर्ण' कहते हैं । इसको भी मधु में मिला कर चाटने से क्रिमि नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

अःखुकर्णद्विलैः पिष्टे: पिष्टेन च पूरकान् । शुक्रवा सौवीरकं चातु पिष्टेकृमिहरं परम् ॥ ५ ॥

आःखुकर्णी (मूसकर्णी) के पत्तों को पीसकर वेसन के साथ मिलाकर पूप पकाले । इसको भक्षण कर सौवीर नाम की काजी पीवि, इससे क्रिमि अत्यन्त नष्ट होती है ॥ ५ ॥

शुबर्चिकारामठपत्रिकाङ्गा विद्धशत्रुहीककणामिविष्णः ।

यवानिकाग्निक्यकभद्रसुस्तास्तकेन चूर्णं कृमिकोटिहारि ॥ ६ ॥

सउजीखार, शुद्ध हींग, तेजपात, वायभिरंग, नागकेसर, पीपरि, चित्रकमूल, सौंठि, अजवाइन, पिपरमूल, नागरमोथा इन सबको समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर तक (मट्ठा) के अनुपान से सेवन करने से करोड़ों क्रिमि नष्ट होती है ॥ ६ ॥

भज्जातको वा दध्ना वा चिञ्चाम्लेन हरेकृमीन् । विद्धं पारिभद्राऽम्ब्रह्मवीजं पृथविपवेत् ॥ ७ ॥

शुद्ध मिलावा का चूर्ण दही के साथ अथवा इमली के अन्दर रस के साथ सेवन करने से क्रिमि नष्ट होती है । अथवा वायभिरंग वा नीम की कोमल पत्ती, वा पलास के बीज का चूर्ण पृथक्-पृथक् मधु के साथ सेवन करने से क्रिमि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

मधुना कृमिनाशय निष्वं वा हिङ्गुमा युतम् । निष्वाजमोदजन्मुद्धं ब्रह्मवीजं सचोरकम् ॥

तहिङ्गुकं समगुडं सथो जन्मतुविनाशनम् ॥ ८ ॥

१—नीम की छाल का चूर्ण और हींग मधु के साथ सेवन करने से क्रिमि नष्ट होती है अथवा २—नीम की छाल, अजमोदा, वायभिरंग, पलास का बीज, चोरक (चौरा), हींग और शुद्ध समान लेकर चूर्ण कर सेवन करने से शीघ्र क्रिमि नष्ट होती है ॥ ८ ॥

हरीतकी चैव तथा हरिद्रा सौवर्चिलं चैव सम्ब विचूर्णितम् ।

हन्द्रवाहिजलेन आवितं कटिटलहिनिवारणं परम ॥ ९ ॥

हरा, हरदी, सोचरनमक, तीनों को समान ले चूर्ण कर हन्द्रायण (माहरि) के स्वरस से भावना दे सेवन करने से क्रिमियों का समूह नष्ट होता है ॥ ९ ॥

धूपः—काकुभक्तुमविडङ्गं लाङ्गलिभिलातकं तथोद्धीरम् ।

श्रीवेष्टकसर्जरसं चन्दनमथ कुष्मण्डमध्यात् ॥ १० ॥

एष सुगन्धो धूपः सङ्घकृमीणां विनाशकः प्रोक्तः ।

शश्यामु मरुणानां विरसि च गात्रेषु यूकानाम् ॥ ११ ॥

क्रिमिनाशक धूप—अजुन चूक्ष का फूल, वायभिरंग, शुद्ध करियारी विष, शुद्ध भिलावा, खस, लोहबान, राल, श्वेतचन्दन, कूठ इन आठ द्रव्यों को चूर्ण कर बनाया हुआ सुगन्धित धूप एक ही बार में क्रिमियों को नष्ट कर देता है । चारपाई के नीचे इस धूप को देने से इसके धूम से खटमल नष्ट हो जाते हैं और सिर तथा अङ्गों में धूम लगे तो यूका और लीख आदि नष्ट हो जाती है ॥ १०-११ ॥

विशालाया: फलं पक्षं तस्मोहे परिचिपूरेत् । तदध्मो दन्तलझश्चेकीटानां पातनः परः ॥ १२ ॥

विशाला धूप—पके हुये हन्द्रायण के फल को तपे हुये लाल २ लोहे के ऊपर डाले उसका धूम अगर दाँतों के ऊपर दिया जावे तो दाँतों में लगते ही वह धूम कीड़ों को नष्ट कर देता है ॥ १२ ॥

विडङ्गादितैलम्—सविलङ्गं च हि शिल्या सिंदुं सुरभीजलेन कटुतंलम् ।

निखिला नयति विनाशं लिच्छासहिता दिनैर्यूका ॥ १ ॥

विडङ्गादै तैल—वायभिरंग, मैनशिल, इन दोनों को समान ले कल्क कर चतुर्णुण मूर्च्छित कटुतैल और तैल से चतुर्णुण गोमूत्र पाकार्थ मिला तैलपाक की विधि से तैल पका कर लगाने से थोड़े दिनों में सम्पूर्ण यूका और लीख नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

यूकापातनयोगः—

पारदं मद्येष्टिकं कृष्णधन्त्रकद्रवैः । नागवल्लीद्वैवैर्वैश्च वृद्धस्पदं प्रलेपयेत् ॥ १ ॥

तदूर्धं भस्तके बद्धवा धार्यं यामव्रयं ततः । यूका: पतन्ति निशेषाः सलिला नाशं संशयः ॥

पारदादि यूकापातन योग—एक निष्ठ (४ माशे) पारद को काले धन्तैरे के रस से अथवा पान के पत्ते के रस से मर्दन करे और मर्दन कर एक वज्र पर लेप कर दें फिर उस वज्र को सिर पर बांधकर तीन वर्ष हर तक रहने दे । इससे विना चेष्टा किये ही यूका और लीख सिरचय ही गिर जाती है ॥ १-२ ॥

चित्रकं द्वितीयीमूलं कोशातकीसमन्वितम् । कलशं पिष्टवा पचेत्तैलं केशश्चत्रविनाशनम् ॥ ३ ॥

चित्रकी जड़, दन्ती की जड़ और कोशातकी (तरोई) इनको समान ले कल्क चतुर्णुण कटुतैल और तैल के चतुर्णुण जल देकर तैलपाक की विधि से तैल पका कर लगाने से यूका, लीख आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

रसादिलेपः—

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः । ताम्बूलपत्रजो वाऽपि लेपमाण्यूकनाशनः ॥ १ ॥

रसादि लेप—पारद की धूतरे के पत्ते के रस अथवा पान के पत्ते के रस के साथ मर्दन कर लेप करने से युक्त नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अथ क्रिमिसुद्गरो रसः

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाजमोहविद्वं विषसुटिकाच ।

पलाशबीजं च विचूर्णमस्य निष्क्रप्तमाणं मधुमाऽवलीठम् ॥ १ ॥

पित्रेकथायं घनं तदृशं रसायमुक्तः क्रिमिसुद्गराद्यथः ।

क्रिमिसुद्गरन्ति क्रिमिकाञ्च दीपांसम्भौपयस्यक्षिमयं जिराग्राम् ॥ २ ॥

क्रिमिसुद्गर रस—शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, अजमोदा, वायभिसंग, शुद्ध कुचिला और पलास के बोज का चूर्ण क्रमपूर्वक बढ़ाकर अथोत पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, अजमोदा ३ भाग, वायभिरंग ४ भाग, कुचिला ५ भाग; पलास बीज द्वारा लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कञ्जली कर उसमें अन्यान्य चूर्णों को मिला मर्दन कर एक निष्क (४ माशे) प्रमाण की मात्रा से मधु से चाटकर नागरमोथे का विधिवत बनाया क्वाग पीने से तीन दिन में यह क्रिमियों को नष्ट कर देता है और क्रिमि से होने वाले रोगों को भी नष्ट कर देता है तथा अग्नि को दीप करता है। इसे 'क्रिमिसुद्गर रस' कहते हैं ॥ १-२ ॥

अथ क्रिमिकुठारः

विषं रामठसैव्यवाद्यमरिचं पद्या वचा गुणुलुब्दौलं रात्रिविदंगकुष्ठलशुनं गन्धः कुवेराचकः।
इन्द्रोद्भूतपलाशबीजखिराजाजीकणादीप्यकं सौवैचं मधुना गुदी क्रिमिकुठाराह्वोद्वाजन्तुनुशु ॥

क्रिमिकुठार—सोंठि, हींग, सेंधानमक, चित्त की जड़, मरिच हरी, वच, शुद्धगन्धक, अर्जुन का फल, पलास का बीज, वैर, जीरा, पीपरि, अजवाइन, सोचरनमक इन सब को समान ले चूर्णकर मधु मिला वटी बनाकर सेवन करने से यह 'क्रिमिकुठार' नाम की वटी क्रिमि रोग को नष्ट करती है ॥ १ ॥

क्रिमिसु वज्यान्याह—क्षीराणि भास्यानि धृतानि चैव दधीनि शाकानि च पत्रवन्ति ।

समासतोऽल्लं मधुरात् रसायं क्रिमिक्षिवांसुः परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

क्रिमिरोग में त्याज्य वस्तु—क्रिमि रोग वाला मनुष्य दूध, मांस, घृत, दही, पत्रवाले शाक, अम्लरस युक्त पदार्थ, मधुर पदार्थ आदि क्रिमि को नष्ट करने की इच्छा से त्याग देते ॥ २ ॥

शीताम्बु मधुरं चारं दधित्तीरशृतादिकम् । सौचीरं पत्रशाकांश्च वर्जयेक्रिमिमात्रः ॥ ३ ॥

शीतल जल, मधुर पदार्थ, कार पदार्थ, दही, दूध, धी, सौचीर (कांजी), पत्रशाक यह सब क्रिमि का रोगी त्याग देते ॥ ३ ॥

अथ पाण्डुरोगनिदानम् ।

पाण्डुरोगः स्मृतः पद्य वातपित्तकफैष्यः । चतुर्थं सविषातेन पञ्चमो भच्छान्मूदः ॥ १ ॥

वयवायमस्तु लवणानि मध्यं सुदं दिवा व्यप्तमतीव तीण्यम् ।

मिष्ठेमाणस्य विदृश्य रक्तं द्वोषास्वर्वचं पाण्डुरता नयन्ति ॥ २ ॥

पाण्डु रोग का निदान—पाण्डु रोग पांच प्रकार का होता है—तीन वात, पित्त और कफ से, चौथा सविषात (विदोष) से और पांचवा मिट्ठी के भक्षण करने से, अधिक मैथुन तथा अधिक अम्ल तथा लवण रस युक्त पदार्थ सेवन करने से, अधिक मध्य पीने से, मिट्ठी खाने से, दिन में अधिक सोने से और अत्यन्त तीण्य द्रव्य का सेवन करने से वातादिक दोष कुपित होकर रक्त को दूषित करके त्वचा में पाण्डुता कर देते हैं ॥ १-२ ॥

पाण्डुरोगनिदानम्

पूर्वरूपमाह—रक्षस्फोटनिष्ठीवनग्रात्रिसादमृद्धशृणप्रेत्याकृष्टोद्याः ।

विष्मूत्रपीतव्यस्याविषाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

पाण्डुरोग का पूर्वरूप—पाण्डुरोग होने के पूर्व त्वचा फट जाती है, थुक्युको होती है, अङ्ग में शिथिलता होती है, मिट्ठी खाना है, आँख पर शोथ होता है, विष्ठा और मूत्र पीतवर्ष के हो जाते हैं, भोजन नहीं पचता है ये सब लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

वातिकमाह—

त्वक्मूत्रनयनादीनां रुचकृष्णाशुणभता । वातपाण्डवामये कृपतोद्वदाहभ्रमाद्यः ॥ १ ॥

दोषमेद में पाण्डुरोग के रूप—वातिक पाण्डु के रूप—वात से होने वाले पाण्डुरोग में त्वचा-मत्र और नेत्रादि रुक्ष, कृष्ण अथवा रक्तवर्ण के होते हैं, तथा शरीर में कम्पन, तोद (सूई चुमाने जैसी पीड़ा), आनाह और भ्रम आदिक होते हैं ॥ १ ॥

पैत्तिकमाह—

पीतमूत्रशक्तनेत्रो दाहतृणाउवरातिवितः । भिष्मविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्डवामयी नशः ॥

पैत्तिक पाण्डु के रूप—पैत्ति से होने वाले पाण्डुरोग में मूत्र, पुरीष और नेत्र पीतवर्ष के हो जाते हैं, दाह, तृणा, उवर, मल दूटा हुआ पतला और त्वचा का वर्ण अत्यन्त पीत हो जाता है ॥ १ ॥

इलैषिकमाह—

कफप्रमेकधयथुनन्द्रालस्यानिरौरवैः । पाण्डुरोगी कफाद्युक्तस्त्वक्मूत्रनयनाक्षनैः ॥ १ ॥

कफज पाण्डु के रूप—कफ से होने वाले पाण्डुरोग में सुख से कफयुक्त लालासाव होता है, शोथ, तन्द्रा, आलस्य और शरीर मारी रहता है, त्वचा, मूत्र, नेत्र और सुख शेत वर्ण के हो जाते हैं ॥ १ ॥

त्रिदोषजमाह—

सर्वान्नसेविनः सर्वं दुष्टा द्वोषाच्चिदोषजम् । त्रिदाष्टिलिङ्गं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहमः ॥ १ ॥

त्रिदोषज पाण्डु के रूप—सब प्रकार के अन्न सेवन करने वाले मनुष्यों के तीनों प्रकार के दोष कुपित होकर त्रिदोषज पाण्डु रोग उत्पन्न करते हैं। इसमें तीनों दोषों वाले पृथक् २ लक्षण एकत्र हो जाते हैं, यह त्रिदोषज पाण्डु रोग कष्टसाध्य होता है ॥ १ ॥

उवरातेचकहृष्णामच्छ्वित्तुण्डकुमानिवितः । पाण्डुरोगी त्रिभिर्द्वेषस्याद्यः शीणो हतेन्द्रियः ॥

असाध्य लक्षण—तीनों दोषों के कत्रक लक्षण होने से अर्थात् त्रिदोषज पाण्डुरोग में यदि रोगी उवर, अरुचि, हलास, वमन, तृष्णा और क्लान्ति युक्त हो और शीण हो गया हो, उसकी हन्दिया शिथिल हो गयी हों तो उसको त्याग देना चाहिये अर्थात् वह असाध्य है ॥ १ ॥

मृतिकाजन्यमाह—

मृतिकाजन्यमयत्मो मलः । कषाया माहन्तं पित्तमूषसा मधुरा कफम् ॥ १ ॥

मृतिकाजन्य पाण्डु रोग की सम्प्राप्तिपूर्वक लक्षण—मिट्ठी खाने वाले मनुष्य का वातादिक दोष कुपित हो पाण्डुरोग उत्पन्न कर देता है। कषाय रस वाली मिट्ठी खाने से वायु, उसर की मिट्ठी खाने से पित्त, मधुररस वाली मिट्ठी खाने से कफ कुपित होता है ॥ १ ॥

कोपवेनमूद्रसादीश्वरैच्याद् भुर्खं च रुचयेत् । धूरयत्यविषपवेच द्वोतांसि निरुणद्यापि ॥२॥

हृष्णिद्याणां बलं हृष्टा तेजोवैर्यैज्ञसी तथा । पाण्डुरोग करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥३॥

और इससे (मिट्ठी खाने से) रस-रक्तादिक धातु भी कुपित हो जाते हैं। तथा मिट्ठी के रुक्ष युग्म होने से भोजन किया पदार्थ भी रुक्ष हो जाता है। मिट्ठी का पाक नहीं होने से वह

रस, रक्त को बहन करने वाली नाड़ियों को भर कर उनके गति का अवरोध कर देती है। जिससे इन्द्रियों की शक्ति, तेज, वीर्य और ओज नष्ट होकर पाण्डु रोग उत्पन्न कर देती है। इससे बल, वर्ण और अङ्ग का नाश हो जाता है ॥ २-३ ॥

विशेषलक्षणमाह—

शूनाचिकृटगण्डभ्रुः शूनपञ्चामिमेहनः । क्रिमिकोषोऽतिसार्थं मलं चासुक्फानिवतम् ॥ १ ॥

विशेष लक्षण—पाण्डु रोग में अक्षिकूट (गोलक), गाल, भौं, पैर, नाभि और लिङ्ग में शोथ हो जाता है, कोष में क्रिमि हो जाती है, अतीसार हो जाता है और कफ या रक्त से युक्त मल निकलता है ॥ १ ॥

अथासाध्यलक्षणमाह—

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः स्वरीभूतो न सिद्ध्यति । कालप्रकर्षाच्छूनाङ्गो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १ ॥

पाण्डुरोग के असाध्य लक्षण—पाण्डुरोग बहुत पुराना हो जाने से साध्य होता है। अथवा बहुत पुराना हो, शोथ युक्त हो और उस रोगी को सब वस्तु पीतवर्ण की दिखाई दे तो वह भी असाध्य है ॥ १ ॥

बद्रारथविट् सहरितं सकफे योऽतिसार्थते । दीनः योतोऽतिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्ढ्धानुपानिवतः ॥

स नाश्यसुकृत्याथस्तु पाण्डुः अत्यर्थमानुयात ॥ २ ॥

जिसे दैंधा हुआ, अरप मात्रा में, हरित वर्ण का कफ से युक्त बहुत बार मल निकले, दुःख हो, वर्ण श्वेत हो जाय तथा शरीर जल-जल हो जाय, वमन, मूर्छा, और रुषा लगे, शरीर रक्त के शय होने से श्वेत वर्ण का हो जाय तो वह पाण्डुरोगी निश्चित मृत्यु को प्राप्त होगा अर्थात् असाध्य है ॥ २ ॥

अन्यत्र—पाण्डुदन्तनसो वस्तु पाण्डुनेत्रश्च यो भवेत् ।

पाण्डुसङ्कातदर्शी च पाण्डुरोगी विश्यति ॥ १ ॥

और भी असाध्य लक्षण—जिस पाण्डुरोगी के दौंत, नख और नेत्र पीतवर्ण के ही जाँय तथा जो पाण्डु का समूह ही देखे अर्थात् सब वस्तु पीतवर्ण ही जिसको दिखाई देवे वह रोगी नष्ट हो जाता है अर्थात् असाध्य है ॥ १ ॥

अन्तर्दु शूनं परिहीनमध्यं ग्लानं तथाऽन्तेषु च मध्यशूनम् ।

गुदे च शेफस्यथ मु॒ष्कयोश्च शूनं प्रताम्यन्तमसंक्षक्षयम् ।

विवर्जयत्यपाण्डुकिं यशोऽर्थं तथाऽतिसारजवरपीडितं च ॥ २ ॥

जिस रोगी का अन्त अङ्ग (हाथ, पैंव, सिर आदि) शोथयुक्त हो जाय और मध्य अङ्ग (उदरादि) शोथहीन रहे अथवा अन्त अङ्ग शोथहीन रहे और उदरादि ही शोथयुक्त हो जावे। गुदा, लिङ्ग और अण्डकोष में शोथ हो जावे, अत्यन्त पीडित रहे और संक्षाहीन (अवैत) हो जावे, तथा अतीसार-ज्वर आदि से पीडित रहे उस पाण्डु के रोगी को यथा की इच्छा रखने वाला वैद्य त्याग देवे (चिकित्सा नहीं करे अर्थात् वह असाध्य है) ॥ १-२ ॥

कामलाकारणमाह—

पाण्डुरोगी च योऽरथं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसुक्ष्मांसं दग्धाव रोगाय करपते ॥

कामलारोग (यह रोग पाण्डुरोग का ही अवस्थान्तर है) का निदान—जो पाण्डु का रोगी पित्तकारक पदार्थों का अत्यन्त सेवन करता है उसका बढ़ा हुआ पित्त रक्त और मांस को दग्ध करके जो रोग उत्पन्न करता है वह कामला रोग है अर्थात् इस उपर्युक्त कारण से कामला रोग होता है ॥ १ ॥

कामलालक्षणमाह—

हारिद्रनेत्रः स शूनं हारिद्रत्वङ्गलनस्वाननः । रक्षपीतशङ्कृमूत्रो भेकवर्णो इतेन्द्रियः ॥ १ ॥

वाहाविष्याकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः । कामला बहुपित्तेषा कोष्ठशास्त्राशया मता ॥ २ ॥

कामला रोग का लक्षण—पाण्डुरोग के अन्तर्गत जब रोगी का नेत्र हरदी के वर्ण का (पीत वर्ण) हो जावे, त्वचा, नख और मुख भी उसी प्रकार (पीतवर्ण) का हो जावे, मल और मूत्र रक्तवर्ण तथा पीतवर्ण का हो जावे, शरीर का वर्ण मेड़क की भाँति, इन्द्रियों सामर्थ्यहीन (शिथिला) हो जावे। दाह हो, अक्ष का पाक नहीं हुआ हो, दुर्बलता, अक्षसाद (ग्लानि वा हास) , अरुचि हो और शरीर कृश हो जाय तो उसे 'कामला रोग' जानना चाहिये। कामला रोग में पित्ताविक्षय होता है तथा वह कोष (आमाशय) और शाखा (इस्त-पादादि) के आशय रखने वाला होता है ॥ १-२ ॥

कालान्तरालशरीभूता कृष्णां स्याकुम्भकामला । कृष्णपीतशङ्कृमेष्ट्रो शूनं कानक्ष मानवः ॥ ३ ॥
सरकाचिमुखच्छ्रद्धिविष्टुमूत्रो यश्च तापयति । दाहाचित्वुदानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ॥

नष्टाग्निसंज्ञः द्विग्रं हि कामलावाचिवप्यते ॥ ४ ॥

कुम्भकामला—यही कामला रोग जब कालान्तर में अर्थात् बहुत दिन का हो जाने पर शरीर (त्वचा आदि) को रुक्ष कर देता है तब उसे 'कुम्भकामला' कहते हैं और यह कष्टसाध्य होता है। कामला का असाध्य लक्षण—जिस कामला रोग में कृष्ण वर्ण का अथवा पीतवर्ण का मल और नेत्र हो जावे और उस मनुष्य को अत्यन्त शून्य और नेत्र तथा मुख रक्त वर्ण के हो जावे, वमन और मल-मूत्र रक्त वर्ण का हो, शरीर शक्तिहीन हो जावे, दाह, अरुचि, उदर में आनाह, रुषा, तन्द्रा, मोह हो, अङ्ग और चेतनाशक्ति नष्ट हो जावे ऐसा कामला का रोगी शीघ्र नष्ट हो जाता है (ये लक्षण असाध्य कामला रोग के हैं) ॥ ३-४ ॥

च्छर्द्योचकहस्तासउवरकृमनिषीडितः । नश्यति शासकामासो विद्युभेदी कुम्भकामली ॥ ५ ॥

कुम्भकामला का असाध्य लक्षण—जिस कुम्भकामलारोग में वमन, अरुचि, हृष्टास (वमन करने की इच्छा की भाँति मन होना), ज्वर, क्लन्ति आदि से रोगी पीडित हो, श्वास, कास तथा अतीसार हो—ऐसा कुम्भकामला का रोगी नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ पाण्डुरोगावस्थायां हलीमकमाह—

थदा तु पाण्डोवर्णः स्याद्विरितश्यावपीतकः । बलोऽसाहस्र्यस्तद्रामः मन्दिनित्वं शूदुउवरः ॥

स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश सादस्तृष्णाऽङ्गचित्रम् ॥ १ ॥

हलीमक तदा तस्य विद्यावनिलिपित्ततः ।

हलीमक रोग का लक्षण—यदि पाण्डुरोग में रोगी का वर्ण पाण्डुवर्ण से हरा, श्वास (मट्टैला) शयवा पीतवर्ण का हो जावे, और उत्साह नष्ट हो जावे, तन्द्रा हो, अरिन मन्द हो जावे, मन्द-मन्द उवर हो, कामशक्ति नष्ट हो जावे, अङ्गमर्द, अङ्ग में ग्लानि, रुषा, अरुचि और भ्रम हो, तो उसको 'हलीमकरोग' जानना चाहिये और यह रोग वायु और पित्त के कोष से होता है ॥

पानकीलक्षणमाह—

सामापो भित्तवर्चस्वं बहिरन्तश्च पीतसा । पाण्डुसा नेत्रयोर्यस्य पानकीलक्षणं भवेत् ॥ २ ॥

पानकी रोग के लक्षण—पाण्डुरोग में जब शरीर में अधिक सन्ताप तथा अतीसार हो, वायु और आम्यन्तर अङ्ग पीतवर्ण के हो जावे और नेत्रों में पाण्डुता हो जावे तो उसे 'पानकी रोग' कहते हैं ॥ २ ॥

यावश्येतानि चूर्णानि मण्डूरं प्रिणुणं ततः । पवस्वाऽष्टगुणिते मूत्रे तद्वनीभूतमुद्दरेत् ॥ २ ॥
ततोऽहमाश्रान्वटकान्पिवेत्तक्रेण सक्षमुक्त । पाण्डुरोगं जयेत्तद्वन्मन्दामित्यमरोचकम् ॥ ३ ॥
मण्डूरवज्रवटको रोगानीकप्रभेदनः । अशांसि ग्रहणीं शोफमृदस्तम्भं हलीमकम् ॥

कृमीन्प्लीहानमुदरं गलरोगं च नाशयेत् ॥ ४ ॥

बृन्दोक्त मण्डूरवज्रवटक—पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्त, सोठि, मरिच, देवदारु, त्रिफला, (अंवरा, हर्दा, बहेरा), बाभीरंग, नागरमोथा, प्रत्येक द्रव्यों का चूर्ण तीन-तीन पल लेवे । सब चूर्ण जितना हो उसके तिएना शुद्ध मण्डूर का चूर्ण लेवे और मण्डूर के अठगुना गोमूत्र लेकर प्रथम मण्डूर को गोमूत्र में पकावे जब गाढ़ा होने लगे तब उतारकर उसमें उपर्युक्त चूर्णों को मिलाकर एक तो० के प्रमाण की बड़ी बनाकर तक के अनुपान से सेवन करें और भोजन भी तक का ही करें । इस प्रकार करने से यह पाण्डुरोग, मन्दामि और अरुचि को नष्ट करता है और यह 'मण्डूरवज्रवटक' रोगसमूहों को नष्ट करने वाला तथा अर्श, ग्रहणी, शोथ, ऊरस्तम्भ, हलीमक, कृमि, प्लीहा, उदररोग तथा गले के रोगों को नष्ट करता है ॥ २-४ ॥

अथ मण्डूरलवणम्

योगतरक्षिण्याः—कृत्वाऽशिवर्णं मलमायसं तु मूत्रे निषिद्धेद्वहुशो गवां च ।
तत्रैव सिन्धूरथसमं विपाच्यं निरुद्धूमं च विभीतकामौ ॥ १ ॥
तक्रेण पीतं मधुनाऽयवापि विभीतकाख्यं लब्धां प्रयुक्तम् ।
पाण्डुवामयिभ्यो हितमेतद्स्माप्ताण्डवामयनं चाहि किञ्चिदन्यत् ॥ २ ॥
योगतरक्षिणी का मण्डूरलवण—मण्डूर को लेकर अश्वि में तपावे, जब अङ्गार के समान लाल हो जावे तब उसे गोमूत्र में बहुत वार (कई वार) छुआवे, जब मण्डूर शुद्ध हो जावे तब उसके बराबर सेंधानमक लेकर मण्डूर, सेंधानमक और पूर्वोक्त मण्डूर बुशाया हुआ गोमूत्र तीनों को एक हाँड़ी में बन्द कर बहेरे की लकड़ी के अग्नि पर रख कर अन्तर्भूमि विधि से पका कर भस्म कर लेवे । इसको मात्रा से मट्ठा अथवा मधु के अनुपान से सेवन करने से यह विभीतक लब्धण (मण्डूरलवण) पाण्डु के रोगियों के लिये हितकर है । इससे बढ़कर पाण्डुरोग नाशक और कोई योग नहीं है ॥ १-२ ॥

अथ मधुमण्डूरः

गृहीत्वा भिषक्षप्रस्थमण्डूरभागं श्रुते वैफले मर्दयित्वा च यामम् ।
पुटे पाचयेद्यामयुम्भं कृशानौ पुटानीहृ देयानि चन्द्राचिद्वारम् ॥ १ ॥
तथा धेनुमूत्रे कुमारीरसे च विधेयश्च पञ्चामृते योगराजः ।
भवेत्सिन्धुनामौ: पुटैः सिद्धिषोऽयमस्त्वयप्रभावश्च मण्डूर एषः ॥ २ ॥
मधुमण्डूर एव कणामधुना चिरपाण्डुगदं ननु हेमितः ।
जनको द्विष्टस्य निहन्ति परं विविधातित्वरस्वनुपानबलैः ॥ ३ ॥

मधुमण्डूर—एक प्रथम (६४ तो०) शुद्ध मण्डूर लेकर त्रिफला के काथ में एक पहर तक मर्दन करे पश्चात् पुष्टपाक की विधि से, दो पहुर तक अग्नि पर पकाने, फिर त्रिफला का काथ, गोमूत्र, धूतकुमारी के रस(१) पंचामृत (गुरुचि, गोखल, मुसली, मुण्डी और शतावरि)^१ के विधि पूर्वक बने काथ में पृथक् पृथक् २२ पुट देवे इस प्रकार ८४ पुट देने से यह मण्डूर अत्यन्त सिद्धि-

(१) 'गुह्यवी गोदूरश्चैव मुशली मुषिका तथा ।

शतावरीति पञ्चानां योगः पञ्चामृतमित्यः ॥ इति । (वै० श० सि०)

दायक (लाभदायक) तथा अचिन्त्य प्रभाव वाला हो जाता है । यह 'मधुमण्डूर' पीपरि के चूर्ण और मधु के अनुपान से एक मासा की मात्रा से सेवन करने से पुराने पाण्डुरोग को भी नष्ट कर द्याता है और रक्त को उत्पन्न करता है तथा रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ मण्डूराद्योऽरिष्टः

गदनिग्रहात्—

मण्डूरस्य तु शुद्धस्य तुलाधर्घं परिकीर्तितम् । तद्वज्ञोहस्य पत्राणि तिलोत्सेवप्रमाणातः ॥ १ ॥
पुराणगुद्यवज्ञाशत्कोलप्रस्थत्रयं तथा । निकुञ्जभित्रकास्यां च पले द्वै द्वै सुचूर्णिते ॥ २ ॥
विष्पलीनां विडज्ञानां कुद्वं कुद्वं पृथक् । ओश्चापि त्रिफलाप्रस्थाजलद्वारेण समावपेत् ॥ ३ ॥
अर्धमासस्थितो धान्ये पेयोऽरिष्टः प्रमाणातः । दोषानुभयतः स्नायुं पाण्डुरोगं नियच्छति ॥
कृमीनर्णांसि कुष्ठं च कासशासकामयान् । पेयोऽरिष्टस्तु मण्डूरः सर्वपाण्डवामयापहानाप्ता

गदनिग्रहोक्त-मण्डूराद्यरिष्ट—शुद्ध मण्डूर, शुद्ध किया हुआ तिल के प्रमाण का लौहपत्र, पुराना शुद्ध प्रत्येक ५० पल (२०० तो०), वैर के मूल की छाल का चूर्ण तीन प्रस्थ (तीन सेर), दन्ती और चिक्रकमल का चूर्ण दो-दो पल, पीपरि और वायभिरंग का चूर्ण एक-एक कुडव, त्रिफला (अंवरा, हर्दा, बहेरा) का चूर्ण मिलित तीन प्रस्थ (तीन सेर) और जल एक द्रोण (६४ सेर) लेकर सबको एकत्र धोल कर अरिष्ट की विधि से एक मिट्ठी के पात्र में रख सुख बन्द कर पान्यराशि में अर्धमास (१५ दिन तक रख कर अरिष्ट तैयार हो जाने पर निकाल-छान कर प्रमाण से सेवन करने से दोनों मार्ग से दोषों का स्वाव कर पाण्डुरोग को नष्ट करता है और कृमि, अर्श, कुष्ठ, कास, श्वास और कफ के रोग और सब प्रकार के पाण्डुरोग को नष्ट करता है इसका नाम 'मण्डूराद्यरिष्ट' है ॥ १-५ ॥

रेचनं कामलात्स्यं चित्रघस्ताऽद्वै ग्रयोऽप्येत् । ततः प्रश्नमनी कार्या क्रिया वैशेन जानता ॥

कामलादिं चिकित्सा—(रेचनादि अन्यान्य योग)-विज्ञ वैष्य प्रथम कामलारोग के रोगी को स्निग्ध ओषधियों (स्नेह-प्रानादि) से स्निग्ध कर विरेचन करावे पश्चात् शमन करने वाली क्रिया (प्रयोग) करे ॥ १ ॥

पाण्डुरोगिक्यां सद्यो योजयेत्वा हलीमके । मलानुसरणं द्वाहा सापि कार्या क्रियावरैः ॥ २ ॥

हलीमकरीग में विज्ञ वैष्य शीत्रं पाण्डुरोग की क्रिया करे और मलादि निस्सरण (विरेचनादि) भी आवश्यकतानुसार करावे ॥ २ ॥

हरिद्राप्रिफलानिम्बवलामधुकसाधितम् । सच्चीरं मधिष्ठं सप्तिः कामलापहसुत्तमम् ॥ ३ ॥

हरदी, त्रिफला (अंवरा, हर्दा, बहेरा), नीम की छाल, वरिआरा, मुलहटी, इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर कल्क कर, कल्क से चतुर्युण मूर्चिक्षत धी मैसूर का और धी से चतुर्युण मैसूर का दूध (कहीं २ धी के बराबर भी दूध लेते हैं पर धृतपाकार्थं द्रव चतुर्युण होना चाहिये इससे दूध चौहुना धी लेना चाहिये) लेकर धृत पाक की विधि से धृत बनाकर मात्रा से सेवन करना चाहिये । कामला रोग के नाश करने का यह उत्तम योग है ॥ ३ ॥

त्रिफलाया गुह्यया वा दात्या निष्पत्य वा रसम् ।

प्रातर्मधुयुतं वैद्यः कामलात्तर्य योजयेत् ॥ ४ ॥

कामलारोग के रोगी के लिये वैद्य त्रिफला (अंवरा-हर्दा-बहेरा) का काथ, गुरुचि का स्वरस, दारहरदी का काथ अथवा नीम का स्वरस इनमें से किसी एक योग की मधु के प्रस्तेप से शुक्त कर प्रातःकाल पिलावे । इससे कामलारोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

दार्ढीसिंकलाद्योषविहङ्गानयसो इजः । मधुसर्पिंयुंतं लिङ्गात्कामलापाणहुरोगवान् ॥ ५ ॥

दारुहरदी, त्रिकला (अवरा-हर्ष-वहेरा), व्योष (सौंठि-पीपरि-मरिच), बामीरंग, इन सबके चूर्ण और लौहभस्म सबको समान भाग लेकर एकत्र मिलित कर मात्रा से मधु और धृत के अनुपान से कामला और पाण्डु का रोगी चाहे, इससे कामला और पाण्डु का रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अयोरजो द्योषविहङ्गचूर्णं लिङ्गाद्युरिद्रां त्रिकलानिवातां वा ।

सशर्करां कामलिनां त्रिभण्डी हिता गवाळी सुगुडा च शुण्ठी ॥ ६ ॥

१—लौहभस्म, सौंठि, पीपरि, मरिच और बामीरंग का चूर्ण, समान भाग लेकर मात्रा से मधु के अनुपान से चाटे २—अथवा हरदी और अवरा, हर्ष, वहेरा इन सब के चूर्ण को शक्त के साथ खावे । ३—अथवा निशोथ का चूर्ण शक्त के साथ खावे । ४—अथवा इन्द्रायण की जड़ के चूर्ण की शक्त के साथ खावे । ५—अथवा सौंठि के चूर्ण को गुड़ के साथ खावे तो कामलारोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

धात्रीलोहरजो द्योषविनिश्चाष्टौद्रं सशर्करम् । ऊहं निवारयत्याशु कामलामुद्रतामपि ॥ ७ ॥

आँखें का चूर्ण, लौह भस्म, सौंठि, पीपरि, मरिच और हरदी के चूर्ण को मधु और शक्त के साथ मिला कर मात्रा से चाटने से बढ़ा हुआ कामलारोग भी शीघ्र नष्ट होता है ॥ ७ ॥

लौहचूर्णं निशायुधमं त्रिकलां कुटुरोहिणीम् । प्रलिङ्गं मधुसर्पिभ्यां कामलातः सुखी भवेत् ॥

लौह भस्म, हरदी, दारुहरदी, त्रिकला (अवरा, हर्ष, वहेरा), कुटुकी के चूर्ण इन सब को समान लेकर मधु और धृत के साथ मिला कर चाटने से कामलारोग का रोगी सुखी होता है ॥ ८ ॥

द्योषाद्यन्तेष्वत्रिकलासुस्तेस्तुत्यमयोरजः । चूर्णितं तक्षमध्वायकोषणतोयोपयोजितम् ॥ ९ ॥

कामलापाणहुद्वेगकुडाशोमेहनाशनम् । तुष्टयं वाऽयोरजः पथ्यां हुरिद्रां चौद्रसर्पिष्या ॥ १० ॥

१—सौंठि, पीपरि, मरिच, चित्त की जड़, बामीरंग, अवरा, हर्ष, वहेरा, नागरमोथा, इन सब द्रव्यों के चूर्ण को समान लेकर एकत्र कर जितना हो उसके बराबर लौह-भस्म लेकर एकत्र मिलित कर मात्रा से मट्टा, मधु, धी और थोड़ा लड्डोदक इनके अनुपान से सेवन करने से कामला, पाण्डु, हृद्रोग, कुष्ठ, अर्श और प्रमेह रोगों का नाश होता है । २—अथवा लौहभस्म, हर्षका चूर्ण, हरदी का चूर्ण इन तीनों को समान लेकर मधु और धृत के अनुपान से सेवन करने से उल्लिखित रोग नष्ट होते हैं ॥ ९-१० ॥

चूर्णितां कामली लिङ्गाद् गुहुडौद्रेण वाऽभयाम् । पलाजीरकमधुसिंकलानश्चेत्त अत्ययेत् ॥

प्रातः संसेवनं कुर्यात्कामलानाशनं परम् । निशाचूर्णं कर्षमितं दृष्टः पलामिलं तथा ॥ १२ ॥

प्रातः संसेवनं कुर्यात्कामलानाशनं परम् । अर्कमूलं हरेचालयाकामलां लृण्डुलोदकः ॥ १३ ॥

१—गुड़ और मधु के साथ हरे का चूर्ण मात्रा से कामला के रोगी को चटाना चाहिये इससे कामला रोग नष्ट होता है । २—इलायची, जीरा, मुख अवरा, हन्को सयान लेकर चूर्णकर शक्त और गाय के धी में लेह के समान बनाकर प्रातःकाल सेवन करने से यह अत्यन्त कामलानाशक है । ३—हरदी का चूर्ण १ तो ० और दही ४ तो ० मिलाकर प्रातःकाल नित्य सेवन करने से कामला रोग नष्ट होता है । ४—मदार की जड़ को तण्डुलोदक से पीसकर नस्य लेने से कामला रोग नष्ट होता है ॥ ११-१३ ॥

अज्जन कामलातंस्य द्वौष्पुष्पीश्वेन तु । निशायेश्वकाश्रीणां चूर्णं चोपरि लेपयेत् ॥ १४ ॥

द्रोणपुष्पी (गुम्मा) स्वरस का अज्जन करने से और हरदी, मेरु मिठी और आँखें का चूर्ण पीसकर आँख पर लेप करने से कामला रोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

गोदुग्धेन विशालाया मुनिसंख्याद्वालिन तु । जीरकेण युतं पेण्यं रसमेकं पलं पिवेत् ॥ १५ ॥

स्थवा तज्जटाद्वाचं क्षीरधं दुधधमितितम् । पाययेत् प्रतिदिनमेवमेतिहनश्यम् ॥ १६ ॥

१—गाय के दूध के साथ इन्द्रायण (माहारि) के सात पत्ते और उसीके समान जीरा मिलाकर इस रस को एक पल (४ तो ०) की मात्रा से पीवे । २—अथवा इन्द्रायण की जड़ की पीसकर स्वरस अथवा क्षीर बनाकर आधा कर्ष (३ तो ०) की मात्रा से दूध में मिलाकर प्रतिदिन पीवे । इस प्रकार तीन दिन तक पीने से कामला रोग नष्ट हो जाता है ॥ १५-१६ ॥

धृतदुग्धीदनं पथ्यं कुर्याद्वृत्वं चिना । कामलां नाशयत्याशु वायुरञ्ज्ञ हरेद्यथा ॥ १७ ॥

कामला रोग में पथ्यविधि—धी, दूध, भात और बिना नमक का भोजन वही पथ्य है । इस प्रकार का पथ्य सेवन करने से यह पथ्य भी कामला रोग को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार वायु मेघ को नष्ट कर देता है ॥ १७ ॥

अथ घृतानि

गुहूचीघृतम्—

उहूचीस्वरसे चिद्वं सच्चारं माहिषं घृतम् । चतुर्गुणेन पयसा पाययेत्तद्वलीमके ॥ १ ॥

घृतप्रकरण—प्रथम गुहूचीघृत—गुहूची का स्वरस, दूध और मैस का मूर्च्छित धी समान भाग लेकर उसमें चौमुना जल देकर घृतपाक की विधि से घृत बनाकर सेवन करने से यह ‘गुहूचीघृत’ हलीमक रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

द्योषं विश्व द्विरजनी त्रिकला द्विपुननवम् । मुस्ता चायोरजः पाठा विद्धं देवदाह च ॥ १ ॥

घृत्यकाली च भार्जी च सवारेस्तेवृत्य शुभम् । सर्वान्प्रशमयत्याशु विकारान्मृत्तिकाकृतान् ॥

व्योषादि घृत—सौंठि, पीपरि, मरिच, बेल की गुड़ी, हरदी, दारुहरदी, अवरा, हर्ष, वहेरा, दीनों प्रकार की (रक्त, थेत) पुनर्नवा (गदहपुरना), नागरमोथा, लौहभस्म, पुरहनपादी, बामीरंग, देवदाह, वृश्काली (विच्छूबूदी), बम्भेठी आदि को समान लेकर कल्ककर कल्क के चतुर्गुण मूर्च्छित घृत और घृत के समान दूध मिलाकर घृत-पाक की विधि से घृत बनाकर सेवन करने से मिठी आदि के खाने से उत्पन्न तथा अन्य संभी प्रकार के पाण्डुरोग के विकार नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

अथाऽमलक्यवलेहः

रसमामलकानां तु संगृद्धं यन्त्रपीडितम् । द्रोणं पचेच मृद्धनी तत्र चेमानि दापयेत् ॥ १ ॥

चूर्णितं पिपलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा । प्रस्थं गोस्तानिकायाश्व द्विश्यायाः किंल पेषितम् ॥ २ ॥

मङ्गवेरपले द्वं तु तुगार्चीर्थाः पलद्वयम् । तुलाधं शार्करायाश्व धनीभूतं समुद्दरेत् ॥ ३ ॥

मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत्पत्तसमितम् । हलीमकं कामलां च पाण्डुत्वं चापकर्षति ॥ ४ ॥

आमलक्यवलेह—आँखें का स्वरस विधिपूर्वक निकाला हुआ एक द्रोण (१६ सेर) लेकर मन्द-मन्द अचि पर पकावे और उसमें पीपरि का चूर्ण एक प्रस्थ (एक सेर), मुलहठी का चूर्ण दो पल (८ तो ०), मुनका पीसकर एक प्रस्थ (एक सेर), आदी पीसा हुआ दो पल (८ तो ०), बंशलोचन का चूर्ण दो पल, शक्त आधी तुला (२०० तो ०) सब मिलाकर अवलेह की विधि से पाक करे जब गाढ़ा हो जावे तब उतार कर शीतल होने पर मधु एक प्रस्थ (एक सेर) मिलाकर एक पल की मात्रा से सेवन करने से यह अवलेह हलीमक, कामला और पाण्डुरोग को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

अथ त्रिकलाद्यवलेहः

त्रिकलायाश्वयो भागाश्वयन्त्रिकदुक्श्य च । भागाश्वयन्त्रिकमूलस्य विद्धानां तथैव च ॥ १ ॥

पश्चात्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च । मात्रिकस्य च शुद्धस्य लोहस्य रजस्स्तथा ॥२॥
अष्टी भागः सितायास्तु तरसर्वं मधुसंयुतम् । शुद्धचूर्णं सुसंस्थाप्यमायसे भाजने शुभे ॥२॥
उद्धुव्यरसमां माश्रो ततः स्खादेयथाशिना । दिने दिने प्रयोक्तव्यं जीवें अोडयं यथेष्टिसत् म् ॥३॥
वजेयित्वा कुलत्थांस्तु काकमाचीकपोतकान् । पाण्डुरोगं विषं कासं यथमाणं विषमज्वरम् ॥
कुष्ठान्यजरकं मंहं श्वासं शोफमरोचकम् । विशेषाद्यन्यप्रसादं कामलां गुहजानि च ॥४॥

त्रिफलाद्यवलेह—त्रिफला का समभाग मिलित चूर्ण, त्रिकुटचूर्ण समभाग मिलित प्रत्येक तीन भाग, चित्त की जड़ का चूर्ण, बाभीरंग, का चूर्ण प्रत्येक एक च भाग, शिलाजीत शुद्ध, रौप्यमास्त्रिक भस्म, स्वर्णमास्त्रिक भस्म, लौहस्म प्रत्येक पांच भाग, शकर (चीनी) आठभाग, इन सबको मधु में मिलाकर लेह की विधि से लेह बनाकर लोहे के अच्छे पात्र में रख लेवे । इसको एक उद्घ्वर (एक तो०) मात्रा से अथवा अद्वितीय के अनुसार की मात्रा से प्रतिदिन सेवन करे और औषध पच जाने पर नित्य इच्छानुकूल भोजन करे और इसके सेवन के समय कुलथी, काकमासी (मकोय), कवूतर पक्षी का मांस आदि नहीं खावे । इस अवलेह के सेवन करने से पाण्डुरोग, विषरोग, कास, यक्षमा, विषमज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, श्वास, शोथ, अरुचि, ये सब रोग नष्ट होते हैं । विशेषकर यह अवलेह अपस्मार, कामला और अर्श को नष्ट करता है ॥५-६॥

इंसमण्डूरः—

मण्डूरं चूर्णयेच्छुलचणं गोमूत्रेऽष्टुगुणं पचेत् । पञ्चकोलं देवदाह सुस्ता व्योषं फलश्रयम् ॥१॥
विडङ्गं स्यात्प्रतिपलं पाकान्ते चूर्णितं चित्तेत् । भक्षयेत्कर्षमात्रं च तक्तं तक्तं च भोजने ॥२॥
पाण्डुशोषं हलीमं च ऊरस्तम्भं च कामलाम् । अशार्दिसि हिन्ति नो चित्रं हंसमण्डूरको श्वयम् ॥

इंसमण्डूर—मण्डूर का दलक्षण चूर्णकर अठगुने गोमूत्र में पकावे जब घना (गाढ़ा) होने लगे तब उसमें पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्त की जड़, सौंठ, देवदाह, नागरमोथा, सौंठि, पीपरि, मरिच, हरा, वहरा, आवरा, बाभीरंग, प्रत्येक द्रव्यों के चूर्ण को एक-एक पल लेकर मिलाकर उतार लेवे, इसमें से एक कर्ष की मात्रा से तक के अनुपान से सेवन करे और तक ही भोजन करे तो पाण्डु, शोथ, हलीमक, ऊरस्तम्भ, कामला, अर्श आदि रोगों को यह 'इंसमण्डूर' नष्ट कर देता है ॥२-३॥

अथ भद्रभसिंहसूतो रसः

काश्यपग्रन्थे—रसगन्धवरादातान्नशंखं विषवंगीन्नककान्तीचणसुण्डम् ।

अहिहुलकृतकृतं समांशं सकलं: स्यात्क्षिणुणः पुराणकिद्म ॥ १ ॥
पशुमत्रविशोषितं सुभृष्टां त्रिफलाभृंगरसाऽऽद्रेकोर्थनीरैः ।
सुविशोष्यवराद्यतालिङ्गासास्वरसेऽरथगुणैः पुनर्ज्ञवोर्थैः ॥ २ ॥
पृथग्मिकृतं धनं विषाद्य गुलिका गुज्जमिता निजानुपानैः ।
उवरं पाण्डुतृष्णां त्रिपत्तिगुज्जमज्यकासस्वरमग्निसादमृद्धीयम् ॥ ३ ॥
पवनादिषु दुरुतराद्यरोगान्सकलं पित्तहरं मदावृतं च ।

चहुता किमसी यथार्थनामा सकलव्याधिहरो भद्रभसिंहः ॥ ४ ॥

भद्रभसिंहसूत रस—काश्यप ग्रन्थ से—शुद्धपारद, शुद्धगन्ध, कीड़ी की भस्म, ताप्रभस्म, शङ्खभस्म, शुद्धविष, वंगभस्म, अत्रक भस्म, कान्तलौह भस्म, तीक्ष्ण लौह भस्म, मुण्ड लौह भस्म, नाग भस्म, शुद्ध सिगरिक, शुद्ध टक्का, इन सब द्रव्यों को समान (प्रत्येक एक-एक भाग) लेवे और सब मिलाकर जितना हो उसके तिशुना शुद्ध पुराना मण्डूर (गोमूत्र द्वारा शोधित) लेकर

प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर ले पश्चात शुद्ध मण्डूर को गोमूत्र में पकाकर अंग पर भूज लेवे तुनः त्रिफला के काथ, भांगरे के स्वरस, अद्रक के स्वरस में पृथक् २ मण्डूर को पकावे । स्वरस मण्डूर के अठगुने हो और सुखाता जावे, पुनः त्रिफला, गुरुचि, पाढ़र, अरुसा और पुनर्नवा के अठगुने स्वरस में पृथक् २ पकावे, पकते-पकाते जब गाढ़ा हो जावे तब उसमें उपर्युक्त सब औषधियों को मिलाकर एक रत्ती के प्रमाण की बटी बनाकर रोगानुसार अनुपानों के साथ सेवन करने से ज्वर, पाण्डु, तुषा, रक्तपित्त, गुलम, क्षय, कास, स्वरभंग, मन्दाशि, मृच्छारीग, वातादि के आठ भयंकर रोग, सब प्रकार के पित्त के रोगों का नाश होता है और मद रोग को नष्ट करता है । यह औषध नाम के अनुरूप यथार्थ में इन सब रोगों तथा अन्य रोगों को नष्ट करता है । इसका नाम 'भद्रभसिंह रस' है ॥ १-४ ॥

अथ त्रैलोक्यनाथ रसः

पलानि चत्वारि रसस्य पञ्च गन्धस्य सरवस्य गुद्धचिकायाः ।

वयोरस्य चूर्णस्य च तालमूल्याः सशालमलस्यह पलन्त्रयं स्यात् ॥ १ ॥

पृथक्पृथक्वधृ गगनस्य चाष्टी लाहस्य सर्वं त्रिफलाजलेन ।

घृष्टं चतुर्षष्ठिदिनं तदध्याः स्युभावना मार्कवजद्वद्वस्य ॥ २ ॥

क्षिग्रथनीरेण च धोदशाष्टी तथा नलात्थाद् गृहकन्यकायाः ।

आद्रद्वद्वस्यति रसोऽयमुक्तः पाण्डुद्वयसासगदादिहर्ता ॥

चौदेण वा शक्रवर्या चुतेन कृष्णमेतत्स्य भजेत्प्रयत्नात् ॥ ३ ॥

त्रैलोक्यनाथ रस—शुद्ध पारद चार पल (१६ तो०), शुद्ध गन्धक पांच पल (२० तो०) लेकर कजली विधिपूर्वक बना । इसमें गुरुचि का सत्ता, सौंठि, पीपरि, मरिच, तालमूली (मुसली), शालमूली अर्थात् सेमर की जड़, इन सब द्रव्यों के चूर्ण को पृथक् २ तीन-तीन पल (१२-१२ तो०) लेकर एकत्र कर लेवे, अत्रक भस्म ६ पल (२४ तो०), लोह भस्म आठ पल (३२ तो०) लेकर सबको एकत्र ६४ दिन तक मर्दन कर त्रिफला के जल की ६४ भावना देवे पश्चात् ३२ दिन तक मर्दन कर मार्गरा के स्वरस की १६ भावना देवे पुनः नल (नरकट) के जड़ का काथ, धृतकुमारी के स्वरस, अद्रक के स्वरस की पृथक् २ आठ दिन तक आठ २ भावना देकर सुखा कर मर्दन कर आधा कर्ष की अथवा बलानुसार मात्रा से मधु अथवा शक्रवर्या के अनुपान से यत्पूर्वक सेवन करने से पाण्डु, क्षय, श्वास आदि रोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ पश्यापथ्यम्

यवगोधूमशाल्यस्य रसैर्जाङ्गलजैः शुभैः । सुद्गाढ़कीमसूरादौः पाण्डौ भोजनमिष्यते ॥ १ ॥

पश्यापथ्य—पाण्डुरोग का रोगी—जौ, गेहूं, शाली धान का चावल, जाङ्गल पशुओं के मांस का रस, मूँग, रहर, मसूर आदि का जूस भोजन करे । यह पथ्य है ॥ १ ॥

वह्नितपत्प्रमायासमज्जपानं च पित्तलब्ध । मैथुनं कोधमध्वानं पाण्डुरोगी सदा त्यजेत् ॥ २ ॥

पाण्डुरोग के रोगी को अंगि का ताप, धूप, परिश्रम, पित्तकारक अव्ययन, मैथुन, क्रीष, मार्गमन आदि को त्वयग देना चाहिये, यह अपथ्य है ॥ २ ॥

अथ रक्तपित्तनिदानम्

धम्बयायामशोकाध्वस्यवायरतिसेविते । तीचोण्डायालरुचैरस्तेविते ॥ १ ॥

कोद्रवोद्धालकैश्चास्तथुकैरतिसेविते । पित्तं विद्युतं इव विद्युतं विद्युतं शोणितम् ॥ २ ॥

ततः प्रवर्तते रक्षमूर्धं चाद्यो द्विधापि वा । आमाशयाद् वज्रेऽर्थमधः पकाशयाद् वज्रेत् ॥
विदधयोद्भ्योधापि द्विधाभागं प्रवर्तते । ऊर्ध्वं नासा चिकणास्यर्मद्योनिगुदेशः ॥ ४ ॥

कुपितं रोमकूपेष्टु समस्तेष्टत्प्रवर्तते । क्षेत्रं यकृतः पलीहः प्रवदन्त्यसूजो मतिम् ॥ ५ ॥

निदान-अधिक धाम में रहने से, अधिक परिश्रम करने से, अधिक शोक करने से, अधिक मार्ग चलने से, अधिक मैथुन करने से, अत्यन्त तीक्ष्ण, उण, क्षार, लवण, अम्ल, कटु आदि पदार्थों के सेवन करने से और कोदी, जंगली कोदी (बनकोदी) आदि अन्नों और इनसे युक्त अन्नों के अधिक सेवन करने से विकृत होकर पित्त अपने ही युरों से विदधय होकर रक्त को शीघ्र विदधय करता है इस कारण रक्त विदधय होकर ऊपर मुखादि अथवा नीचे गुदादि के मार्ग से अथवा दोनों मार्गों से निकलने लगता है । इसमें जब ऊर्ध्वमार्ग से रक्त निकलता है तब आमाशय से और जब अधोमार्ग से निकलता है तब पकाशय से रक्त निकलता है तथा जब दोनों स्थानों में विदधय होता है तब दोनों मार्गों से रक्त निकलने लगता है । ऊर्ध्व मार्ग से जो रक्त निकलता है वह नाक, आँख, कान और मुँह से निकलता है और अधोमार्ग से जो रक्त निकलता है वह शिश, योनि और गुदा से निकलता है और जब सम्पूर्ण शरीर में विदधय होता है तब रोमकूपों से भी अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में जितने छिद्र हैं उन सबों से रक्त निकलने लगता है । किसी र आचार्य का मत है कि यकृत और प्लोहा से भी कोप (विदधय) होने पर रक्त निकलता है ॥ १-५ ॥

पूर्वरूपम्—

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं चमिः । लोहगन्धिश्च निःशासो भवन्त्यद्विमन्मविद्यति ॥६॥

पूर्वरूप-रक्तपित्त होने के पहले मनुष्य को अङ्ग में रलानि (शिखिलता), शीतल पदार्थ की इच्छा, कण्ठ में धूआँ के समान ज्ञात होना और वमन होना तथा श्वास में लोहे के गन्ध के समान गन्ध होना यह सब होता है ॥ ६ ॥

श्लैषिकमाह—सानन्दं सपाण्डु स्सनेहं पिञ्जिकुलं च कफात्मकम् ।

कफज रक्तपित्त के लक्षण—जिस रक्तपित्त में रक्त गढ़ा, पाण्डुर्वर्ण का, लेह युक्त (रिनग्व) और फेन युक्त निकले उसे कफ के कोप का रक्तपित्त जानना चाहिये ।

वातिकमाह—श्यावारुणं सक्षेन च तनु रुचं च वातिकम् ॥ ७ ॥

वातज रक्तपित्त के लक्षण—जिस रक्तपित्त में रक्त श्यावर्ण, अरुणवर्ण, फेनयुक्त, पतला और रुक्ष निकले उसे वात के कोप का रक्तपित्त जानना चाहिये ॥ ७ ॥

पैतिकमाह—

रक्तपित्तं कवायाभं कृष्णं गोमूत्रतंनिभम् । मेचकागारधूमाभमञ्जनाभं च पैतिकम् ॥ ८ ॥

पैतिक रक्तपित्त के लक्षण—जिस रक्तपित्त में रक्त गेहू के वर्ण का, कृष्णवर्ण का, गोमूत्र के वर्ण का वा गोमूत्र सरीखा, मैवक वर्णों का अर्थात् काला, पीला, लाल मिले हुए कई वर्णों का, गृह्वधूम (श्वीला) के वर्ण का और अजन के वर्ण का निकले उसे पित्त के कोप का रक्तपित्त जानना चाहिये ॥ ८ ॥

संसर्गजसात्रिपातिकमाह—

संसृष्टिलिङ्गं संसर्गात्रिलिङ्गं सात्रिपातिकम् । ऊर्ध्वं कफसंसृष्टमधोगं मादतानुगम् ॥९॥

द्विमार्गं कफवात्मयामुभाभ्यामनुवर्तते ॥

संसर्गज और सानिन्पातिक रक्तपित्त के लक्षण—जिस रक्तपित्त में मिले हुए दो-दोषों के लक्षण दिखाई दें उसे संसर्गज अर्थात् द्विदोषज (द्वन्द्वज) और जिसमें तीनों दोषों के लक्षण

दिखाई दें उसे सानिन्पातिक (द्विदोषज) रक्तपित्त जानना चाहिये अर्थात् ये द्वन्द्वज और द्विदोषज रक्तपित्त के लक्षण हैं । कफज तथा वातज का विशेष लक्षण—कफ कुपित होने से जो रक्तपित्त होता है वह लक्षणमामी अर्थात् मुखादि से रक्त निकालने वाला होता है और वात कुपित होने से जो रक्तपित्त होता है वह अधोगामी अर्थात् गुदादि से रक्त निकालने वाला होता है तथा कफ और वात दोनों के कुपित होने से दोनों मार्गों से रक्त निकलता है ॥ ९-१३ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

ऊर्ध्वं साध्यमधोगं याप्यमसाध्यं युगपद्वतम् ॥ १० ॥

साध्यासाध्य लक्षण—ऊर्ध्वं साध्यमधोगं साध्यं होता है, अधोमार्ग से होने वाला रक्तपित्त साध्य होता है (यह करने पर सुधरने वाला अर्थात् कष्टसाध्य) और दोनों मार्गों से होने वाला रक्तपित्त असाध्य होता है ॥ १० ॥

एकमार्गं बलवनो नातिकेगं नवोरिततम् ॥ ११ ॥

रक्तपित्तं खुले काले साध्येष्टुरुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ॥ १२ ॥

त्रिवोष्टमसाध्यं स्यान्मन्दावनेत्रिवेगवतः । त्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानक्षतश्च यत् ॥

और भी साध्य लक्षण—एक मार्ग से रक्त निकलता हो, रक्त निकलने वाले का शरीर बलवान हो, वेग रक्तपित्त का कम हो, रक्तपित्त का रोग नवीन हो, सुखकर समय में (शीतादि काल में) हुआ हो, और उपद्रवों से (जो रक्तपित्त के उपद्रव आगे कहा जावेगा उससे) रहित हो तो रक्तपित्त साध्य होता है उसका चिकित्सा करनी चाहिये । और भी साध्यासाध्य लक्षण—एक दोष से उत्पन्न होने वाला रक्तपित्त साध्य, दो दोषों से होने वाला रक्तपित्त याप्य और तीनों दोषों से उत्पन्न होने वाला तथा मन्दावनिवाले का रक्तपित्त, जो रक्तपित्त अत्यन्त वेगवाला हो वह, जिसका शरीर रोग से क्षीण हो गया हो उसका रक्तपित्त, वृद्ध मनुष्य का रक्तपित्त और जो भोजनादि त्याग दिया हो उसका रक्तपित्त असाध्य होता है ॥ ११-१३ ॥

रक्तपित्तोपद्रवानाह—दौर्बल्यश्चासकामउवश्चमधुमदाः पाण्डुताद्वाहमूर्ढाः

भुक्ते घोरो विद्याहस्त्वद्युतिरिपि लदा हृद्यतुल्यं च पीडा ।

तुला कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनर्वं

भक्तद्वेषाचिपाकौ विकृतिरिपि भवेद्वक्तपित्तोपसर्वा ॥ १४ ॥

रक्तपित्त के उपद्रव—दुर्बलता, श्वास, कास, ज्वर, वमन, मद, पाण्डुता, दाह, मूर्ढा, भोजन करने पर अत्यन्त दाह होना, अधीरता, हृदय में सदा अतुल्य (विषम) वेग का कष्ट, तृष्णा, कोष्ठभेद (अतीसार की भाँति मल निकलना), सिर में ताप होना, शूक में दुर्गैव होना, भोजन में अरुचि, अन्न का पाक नहीं होना और अन्न नहीं पचने के अन्यान्य विकार भी रक्तपित्त के उपसर्व कहे गये हैं—अर्थात् इन सर्वों का रक्तपित्त में होना उपद्रव (अरिष्ट) कहा गया है ॥ १४ ॥

मांसप्रज्ञानाभं क्षयित्विष्वं च यक्षर्दम्भमभीनभेदं वा

मेदःपृथग्यक्षकल्पं यक्षदिव यदि वा पक्षजम्बुफलाभम् ।

यक्षकूराणं यज्ञ नीलं वृक्षमतिकूरणं यज्ञ प्लोक्ता विकाराः

श्वद्वृद्धयं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यज्ञ सुलयं विभाति ॥ १५ ॥

विकाररूप से असाध्य लक्षण—जिस रक्तपित्त में रक्त मास धोये हुए जल के समान हो, काघ के समान हो, कर्दम (कीचड़) के जल के समान हो, मेद, पृथग् और रक्त के समान हो, यक्षर्दम्भ के वर्ण के समान हो अथवा पक्षे हुए जामुन के फल के समान का हो, जो कृष्णवर्ण का हो, भीलवर्ण का हो, शब्द के गन्ध के समान गन्ध वाला हो, इस प्रकार विकार युक्त और जिसमें रक्त

इन्द्रधनुष के वर्ण का कई वर्णों वाला हो उसे त्याग देना चाहिये अर्थात् ये लक्षण असाध्य रक्षपित्त के हैं इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १५ ॥

थेन चोपहतो रक्त रक्षपित्तेन मानवः । पश्येद् दृश्यं वियज्ञापि तस्यासाध्यमसंशयम् ॥ १६ ॥

जिस रक्षपित्त से पीड़ित मनुष्य को सम्पूर्ण दृश्य (सब पदार्थ या जगत्) और आकाश भी रक्षण का ही दिखाई देवे उसे निस्सन्देह असाध्य जानना चाहिये ॥ १६ ॥

लोहितं छृदयेष्यथु मततं लोहितेत्तमः । लोहितोद्गारदर्ढी च नियसे रक्षपैतिकः ॥ १७ ॥

जो रक्षपित्त का रोगी निरन्तर रक्त का ही वमन करे तथा जिसके नेत्र निरन्तर लाल वर्ण के हों और वमन किये पदार्थ को वह लाल ही देखे अथवा जिसे सब पदार्थ लाल ही दिखाई देवे वह भर जाता है अर्थात् ये लक्षण असाध्य रक्षपित्त के हैं ॥ १७ ॥

अथातो रक्षपित्तचिकित्सां व्याख्यास्यामः

पित्ताच्च स्तम्भयेष्टाऽदौ प्रदृत्तं बलिनश्युतम् । हृष्टपृष्ठुग्रहणीरोगपर्ण्डीहुगुह्मोदरादिकृत् ॥

रक्षपित्त की चिकित्सा—अनेकानेक उपचार—रक्षपित्त रोग के होने पर प्रारम्भ में ही यदि रोगी सबल हो तो गिरते हुए रक्त को नहीं रोकना चाहिये क्योंकि विकृत रक्त को रोकने से हृदयरोग, पाण्डु, ग्रहणी, प्लीहा, गुह्म और उदर रोगादि हो जाते हैं । किन्तु क्षीण मनुष्य का रक्त रोक देना चाहिये क्योंकि रक्षाकाव से प्राण जाने का भय है यदि उक्त रोग ही जावेंगे तो पुनः औपचारि दे उनकी शान्ति हो सकती है ॥ १ ॥

क्षीणमांसबलं बालं वृद्धं शोषात्प्रवृत्तिनिधनम् । अवाऽग्न्यमविरेचयं च शामनीयैहृष्पाचरेत् ॥ २ ॥

जिस रक्षपित्त वाले मनुष्य का मांस और बल क्षीण हो गया हो, जो बालक हो, वृद्ध हो, शोष रोग से पीड़ित हो और जो वमन तथा विरेचन से शुद्ध करने योग्य नहीं हो उसकी शामनीय औपचार्य तथा उपचारों से चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

अतिपश्चात्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः । अदीणवलमांसानेः कर्तव्यमप्तपैणम् ॥ ३ ॥

जिस रक्षपित्त वाले रोगी के दोष बहुत बढ़ गये हों (रक्षपित्त का देव भी अधिक हो) और उसका बल, मांस और अग्नि क्षीण नहीं हुआ हो उसकी चिकित्सा में पहले अपतर्ण अर्थात् लङ्घन अथवा मात्रा से कम भोजन करना चाहिये ॥ ३ ॥

लङ्घनं रेचनं पूर्वमधोगे वमनं हितम् । आश्वदेन धात्या वा त्रिवृता पथ्याऽयत्वा ॥ ४ ॥

विरेचनं प्रयोक्तव्यं शक्तरामाद्यिकोत्तम् । मुस्तेन्द्रियवृष्ट्याद्वाह्मदनाहं पथो मधु ॥ ५ ॥

शिशिरं वमनं योजयं रक्षपित्तहरं परम् ।

जर्द्धमार्ता से होने वाले रक्षपित्त में प्रथम विरेचन का प्रयोग करना चाहिये और अधोमार्ता से होने वाले रक्षपित्त में प्रथम वमन का प्रयोग करना हितकर होता है । विरेचक योग—अमलतास, आँवला, निशेश अथवा हरड़ इनमें से किसी एक के चूर्ण में शकर और मधु मिलाकर विरेचन के लिये देना चाहिये । वामक योग—नागरमोथा, इन्द्रजौ, मुलहठी, मयनफल आदि के चूर्ण में जल तथा मधु मिलाकर इसको वमन के लिये शीतल ही पीने को रक्षपित्त में देना अत्यन्त हितकारक होता है ॥ ४-५२ ॥

द्राक्षा मधुककाशमर्यसितायुकं विरेचनम् ॥ ६ ॥

द्राक्षादि अन्यान्य योग—द्राक्षा (मुनका), जेठी मधु और गम्भार के फल का चूर्ण शकर के साथ रक्षपित्त वाले को देने से उत्तम विरेचन होता है ॥ ६ ॥

शटीमधुकसंयुक्तं सचौद्रं वमनं हितम् । शालिपृष्ठादिना सिद्धा देया पूर्वमधोगमे ॥

रक्षातिसारहम्ता च योउयो विधिरशेषः ॥ ७ ॥

जेठी मधु के चूर्ण को मधु के साथ रक्षपित्त वाले को देने से उत्तम वमन होता है । अयोगामी रक्षपित्त में शालिपृष्ठी आदि ओषधियों से सिद्ध किया पेया पहले देना चाहिये और रक्षातिसार-वाशक जितने भी योग हैं उनका प्रयोग करना चाहिये, इससे अयोगामी रक्षपित्त नह होता है ॥ ७ ॥

पर्यामि शीतानि रसाश्च जांगलाः सतीनयूचाश्च सशालिषष्टिकाः ।

हितानि चेतानि च रक्षपित्ते चान्यान्यपि स्युः किल पित्तजानि ॥ ८ ॥

रक्षपित्त वाले का पथ्य—शीतल दूध और जल आदि, जाङ्गल जीवों का मांसरस, मटर का जूस, शालिधान तथा साठी धान का चावल, ये पदार्थ तथा पित्त को नष्ट करने वाले पदार्थ रक्षपित्त में हितकर हैं ॥ ८ ॥

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रसाधिताः । श्यामाकाशं प्रियकृशं भोजनं रक्षपित्तिनाम् ॥ ९ ॥

शालिधान, साठी धान और तीनी धान वा तीनों धान आदि का चावल, कोदो धान का चावल, लाल तीना का चावल, साँवा का चावल, प्रियकृश धान या कांगुनी धान का चावल आदि सभी रक्षपित्त के रोगी को देना चाहिये ॥ ९ ॥

मसूरमुद्रचणकाः समकृष्टादीकलाः । प्रशस्ताः सूरयूषार्थं कलिपता रक्षपित्तिनाम् ॥ १० ॥

मसूर, मूंग, चना, मोठ, रहर, इन सब दालों का यूस रक्षपित्त वाले रोगियों को देना हितकर है ॥ १० ॥

दाढिमामलकं विद्वानश्लार्थं चापि दापवेत् । पटोलिनिवेद्वाग्राम्लकवेत्सपञ्चवाः ॥ ११ ॥

शाकार्थं शाकसारम्यानां तण्डुलीयाद्यो हिताः । पारावतकपोतीश्च लावान्मक्षावर्तकान् ॥

शाशान्कपिलभ्लावेणान्हिणियान्कालपुच्छकान् । रक्षपित्तहरान्विवादाद्रस्म तेषां प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

अनार, आँवला और बेल आदि अमल की इच्छा होने पर रक्षपित्त के रोगी को देना चाहिये । और पटोलपत्र, निम्बपत्र, बेत के अग्रभाग का साग, पाकारि के पत्ते का साग और बेत के पत्ते का साग तथा चौराई का साग जिन रक्षपित्त के रोगियों को साग रुचिकर हो उन्हें देना चाहिये । ये हितकर हैं । पारावत और कपोत दोनों प्रकार के कवृतरों का मांसरस, लावा, चकोर और बक्षक पक्षी का मांसरस, शशक, चातक, एण मुग (कृष्ण मुग), हरिन साधारण और कालपुच्छ-मुग का मांसरस आदि रक्षपित्तनाशक होने से रक्षपित्त वाले रोगी को देना चाहिये ॥ १२-१३ ॥

ईषदश्लाननश्लार्थं घृतशूष्टान्मसैन्धवान् । कफानुगे यूषशाकं दृश्याद्वातानुगे रसम् ॥ १४ ॥

रक्षपित्ती को थोड़ा अम्लपदार्थ मिलाकर अथवा बिना अम्ल मिलाये ही घृत में भजा हुआ और सेंधानमक मिलाया हुआ पूर्व कथित मांसरसों को देना चाहिये । कफ के कोप वाले रक्षपित्त में मांसरस और कथित शाक देना चाहिये और वात के कोप वाले रक्षपित्त में कैवल कथित मांसरस ही देना चाहिये ॥ १४ ॥

पृथ्यं सतीनयूषेण ससितैर्लजसस्तम्भिः । जलं खर्जूरमूदीकामधुकैः सपरूपकैः ॥ १५ ॥

शृतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणाय सशक्तरम् । तर्पणं सघृतं दौद्रं लाजचूर्णः प्रदापयेत् ॥ १६ ॥

“पथ्य में मटर का जूस, शकर मिला हुआ लावा (धान के खोल) का सत्तू, खजूर, मुनक्का, मुलहठी और फाल्से का जल अर्थात् काथ वनाकर शीतल करें शकर मिलाकर देना चाहिये । इससे संतरण (तुमि) होता है और लावा के चूर्ण को घृत और मधु में मिलाकर तर्पण के लिये देना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

पृथ्यं रक्षपित्तं सत्काले पीतं व्यपोहस्ति । होवेरचन्दनोशीरमुस्तर्पषटकैः शृतम् ॥

कैवलं शृतशीतं वा दृश्यात्तोयं विपासवे ॥ १७ ॥

हालवेर (सुगन्धबाला), लालचन्दन, खस, नागरमोथा, पित्तपापडा इनका विधिपूर्वक काथ बनाकर पीने से ऊर्ध्वं रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है अथवा इन ओषधियों से पकाकर शीतल किया हुआ जल ही रक्तपित्त वाले रोगी को पिपासा शान्ति के लिये देने से लाभ होता है ॥ १७ ॥

पथः वित्ताङ्गं शृतशीतमाजं गदयं पयो वा प्रममीक्ष्य वहिम् ।

शृष्टीमधुकार्जुनभावनीर्थं द्वाचाश्वलागोम्हुरकैः श्रुतं चा ॥ १८ ॥

द्वाच्या फलिनीभिर्भावलया नागरेण वा । शृदंदृश्या शातावर्या रक्तजित्तमाधितं पथः ॥ १९ ॥

दुर्वादि शोग—ओटाकर शीतल किया हुआ और मिश्री या शकर मिलाया हुआ बकरी अथवा गौ का दूध रोगी की अद्वि को देखकर अर्थात् अद्वि के अनुसार पिलाने से रक्तपित्त नष्ट होता है अथवा जेठीमधु और अर्जुन की छाल मिलाकर पकाया हुआ दूध, अथवा दाख, खिरेटी, गोखरू इनसे पकाया हुआ दूध, अथवा दाख और प्रियहु मिलाकर पकाया दूध वा बला और सॉथि मिलाकर पकाया हुआ दूध अथवा गोखरू और शतावरि मिलाकर पकाया हुआ दूध सेवन करने से रक्तपित्त का बहता हुआ रक्त बन्द हो जाता है ॥ १८-१९ ॥

श्रुतेनाऽऽजेन पथमा मस्तिष्ठं कुङ्कुमं पित्तेत् । ऊर्ध्वंरक्तविनाशाय तेनैवाऽऽजेन भोजनम् ॥ २० ॥

बकरी का दूध पकाकर उसमें केसर पीसकर पीने से और बकरी के दूध का ही पथ्य लेने से ऊर्ध्वं रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ २० ॥

शृष्टीमधुसमायुक्तं चीरं संक्षाध्य शीतलम् । शर्करामधुसमित्रं रक्तपित्तापहं पित्तेत् ॥ २१ ॥

जेठीमधु मिलाकर पकाकर शीतल किये दूध में शकर और मधु मिलाकर रक्तपित्त नष्ट होने के लिये सेवन करना चाहिये अर्थात् इससे रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ २१ ॥

चीरेण लाचारं मधुमिथितेन प्रपीय जीर्णे पथसांक्षमध्यात् ।

सथो निहन्याद्विरुद्धं चतोरथं कान्तार्जुनानामथवापि कल्पः ॥ २२ ॥

लाक्षा चूर्ण (लाहौ) और मधु को एक में मिलाकर दूध के साथ पीने से और उसके पच जाने पर दूध ही के साथ अज्ञ का पथ्य लेने से उरःक्षत के कारण से निकलने वाला रक्त शीघ्र बन्द हो जाता है अथवा ये त दूर्वा और अर्जुन वृक्ष की छाल का कल्प विधिपूर्वक बनाकर सेवन करने से उरःक्षत के कारण का रक्त शीघ्र बन्द हो जाता है ॥ २२ ॥

कल्पं मधूकत्रिकलार्जुनःनां निशि स्थितं लोहमये सुपात्रे ।

साउयं विलिङ्गात् पिवेत्सुशीतं सशक्तं छागपयः च्छतारातः ॥ २३ ॥

महुआ, त्रिफला (अवरा-हर्दा-बडेरा), अर्जुन के छाल का विधिपूर्वक कल्प बनाकर रातभर लोहे के पात्र में रख प्रातः उसमें घृत मिलाकर चाटकर औटाकर शीतल किया हुआ बकरी का दूध क्षय से पीड़ित रोगी को पीना चाहिये अर्थात् इसके सेवन से उरःक्षत रोग नष्ट होता है ॥ २३ ॥

दृष्टपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् । अर्नेन प्रशमनं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ २४ ॥

अर्लसा के पत्तों का विधिपूर्वक स्वरस निकालकर उसमें मधु और शकर मिलाकर सेवन करने से कठिन रक्तपित्त भी शान्त होता है ॥ २४ ॥

राजमार्चण्डात्—मध्वाटरुचकरसौ यदि तुरुच्यभागौ कृत्वा नः पिबति पुण्यतरः प्रभावे ।

तद्रक्तपित्तमतिवारुणमध्यवस्थमाशु प्रशास्यति जलैरित्वं वहिपुञ्जः ॥ २५ ॥

राजमार्चण्डोक्त वासादि शोग—मधु और अर्लसा का स्वरस यदि समान भाग लेकर जो पुण्यात्मा रोगी प्रातःकाल पीता है उसका अतिकठिन भी रक्तपित्त शीघ्र इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार जल से अथिपुञ्ज नष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥

वासापुटपाकः—

आटसूखकनिर्यूहः प्रियहुमृतिकाञ्जने । विनीय लोध्रं सचौद्रं रक्तपित्तहरं पित्तेत् ॥ २६ ॥

अन्य वासादि शोग—अर्लसा का काथ, प्रियहु, मृतिका (सौराष्ट्र मृतिका वा कृष्ण वर्ण की मिट्टी का उपरी भाग) अथवा सौराष्ट्र मृतिका का प्रतिनिधि किटकिरी देना चाहिये । सौवीराजन शुद्ध और लोध इनको समान लेकर पीस कर मधु मिलाकर रक्तपित्त नष्ट होने के लिये पीना चाहिये ॥ २६ ॥

पिष्टानां द्रुष्पत्राणां पुटपाको इसो हिमः । मधुयुक्तो जयेद्रक्तपित्तकासउवरद्धयान् ॥ २७ ॥

वासापुटपाक—अर्लसा के पत्तों को पीसकर पुटपाक की विधि से पकाकर रस लिकाल कर शीतलकर उसमें मधु मिलाकर पीने से रक्तपित्त, कास, ज्वर और क्षय को नष्ट करता है ॥ २७ ॥

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च । रक्तपित्ती च्छी काली किमर्थमवसीदति ॥ २८ ॥

अर्लसा के विद्यमान (उपस्थित) रहते और रोगी के जीवित रहने की आशा रहते अर्थात् शोग साध्य रहते रक्तपित्त, क्षय और कास का रोगी क्योंकर कष पाता है अर्थात् इन रोगों की साध्य अवस्था में केवल वासा के प्रयोग से ही रोगी रोगमुक्त हो सकता ॥ २८ ॥

वासाकथायोद्यामृतप्रयुक्तगुलोद्वाजनाभोरुहकेशराणि ।

पीथा सितावौद्वयुतानि जद्वारिपत्तासूजो वेगवृद्धीर्णमाशु ॥ २९ ॥

अर्लसा का काथ, नीलोत्पल (नीलोफर), सौराष्ट्र मृतिका, प्रियहु, लोध, शुद्ध सौवीराजन, कमलकेसर सब समान लेकर पीसकर मधु और शकर मिलाकर पीने से यह अत्यन्त बड़े हुए वेगयुक्त रक्त-पित्त को भी शीघ्र नष्ट करता है ॥ २९ ॥

आटसूखकमृद्धीकापथ्यकाथः सशर्करः । चौद्राढ्यः कसनश्चासरक्तपित्तनिर्वर्णः ॥ ३० ॥

अर्लसा, सुनका और हर्मे का विधिपूर्वक काथ बनाकर शीतल कर उसमें शकर और मधु का प्रक्षेप देकर पीने से कास, श्वास और रक्त-पित्त नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

सुद्राः स्लाजाः सयवाः सङ्कृष्णाः सोशीरसुस्ता सह चन्दनेने ।

बलाजले पर्युषितः कथायः स रक्तपित्तं शमयत्युदीर्णम् ॥ ३१ ॥

मूंग, धान का लावा (खील), जौ, पीपरि, खस, नागरमोथा, लालचन्दन और बरिआरा इनका विधिपूर्वक काथ बनाकर पर्युषित (वासी) कर पीने के अत्यन्त बड़ा हुआ रक्तपित्त भी शान्त हो जाता है ॥ ३१ ॥

होबेरं चान्यकं शृण्ठी चन्दनं मधुयषिका । द्रुचोशीरयुतः काथः शर्करामधुयोजितः ॥ ३२ ॥

रक्तपित्तं जयत्युप्रत्युषां दाहं उवर तथा ।

सुगन्धबाला, धनियाँ, सौंठ, लालचन्दन, जेठीमधु, अर्लसा, खस इन सब द्रव्यों का विधिपूर्वक काथ बनाकर शीतलकर मधु और शकर का प्रक्षेप देकर पीने से अत्यन्त उद्य अर्थात् बड़ा हुआ रक्तपित्त, तुष्णा, दाह तथा ज्वर ये सब नष्ट होते हैं ॥ ३२-३२२ ॥

उशीरं चन्दनं पाठा द्राष्टा मधुकपिण्ठली ॥ ३३ ॥

सचौद्रं पाययेक्षायं रक्तपित्तं हरेद ध्रुवम् ।

खस, लालचन्दन, पुरइनपाढ़ी, दाख, जेठीमधु, पीपरि इन सब द्रव्यों का विधिपूर्वक काथ बनाकर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पीने से रक्तपित्त निश्चय हो जाता होता है ॥ ३३-३३२ ॥

अमृता मधुकं चव सर्जं रगजपिण्ठली ॥ ३४ ॥

काथः चौद्रयुतो द्वेष रक्तपित्तविकाशनुत् । चन्दनेन्द्रयवौ पाठा कटुका सदुराकभा ॥ ३५ ॥

गुह्यी बालकं लोअं पिप्पलीक्षौद्रमंयुतम् । कफानिवतं जयेद्रकं तुष्णाकामजवरापहम् ॥३६॥

१—गुरुचि, जेठीमधु, खजूर वा छुहारा और गजपीपरि इनका विधिवत् काथ बनाकर शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर पीने से रक्तपित्त का रोग नष्ट होता है । २—लालचन्दन, इन्द्रजौ, पुरइनपाढ़ी, कुटकी, जवासा, गुरुचि, सुगन्धबाला, लोध, पीपरि इनका विधिपूर्वक काथ कर शीतल हीने पर मधु मिलाकर अथवा इनके कल्प में मधु मिलाकर सेवन करने से कफयुक्त रक्त, तृष्णा, कास और ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३५-३६ ॥

शतावरी बला राज्ञा काशमर्य सपरुषकग । पाययेद्रकपित्तदनं सथ्यः शूलहरं परम् ॥ ३७ ॥

सतावरि, वरिच्चारा, रासन, गम्भार का फल, फालसा इनका विधिवत् काथ बनाकर सेवन करने से रक्तपित्त तथा इससे होने वाले शूल को शीघ्र नष्ट करता है । यह योग उत्तम है ॥ ३७ ॥

त्रिफलाकृतमालभवं कथनं सितया मधुना मिलितं दृशति ।

ननु शोणित-पित्तहज्जं विधिधां धनदाहकपित्तजशूलहरम् ॥ ३८ ॥

त्रिफला (अवरा-हरा-बहेरा), अमलतास का गूदा इन दोनों का विधिवत् काथ बनाकर शीतल कर मधु और शकर का प्रक्षेप देकर पीने से रक्तपित्त तथा अनेक प्रकार की रक्तपित्त की धौड़ाओं एवं उपद्रव को नष्ट करता है, कठिन दाह और उदर के पित्तजशूल को नष्ट करता है ॥ ३९ ॥

अतसीकुसुभलमङ्गावटप्ररोहाश्चनाभ्यसा पीताः । साधयति रक्तपित्तं यदि भुडकं मुद्रयूचेण ॥

तीसी का फूल, मजीठ, बटवृक्ष के अड्डर, इन सबको पीस कर तुषोदक के अनुपान से सेवन करने से रक्तपित्त नष्ट होता है यदि इसके सेवन करते समय इसके साथ मूंग के जूस का पथ्य भी लिया जावे । अर्थात्—इसके सेवन के साथ पथ्य में मूंग का जूस भी लेना चाहिये ॥ ३९ ॥

पकोदुभवरकाशमर्यपथ्याश्चर्जूरोस्तनीः । मधुना ब्रन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक्पृथक् ॥ ४० ॥

पका हुआ गुलर का फल, गम्भार का फल, हरा, खजूर, मुनक्का इनमें से किसी भी एक को चूंपकर मधु के साथ चाटने से रक्तपित्त नष्ट होता है अर्थात् प्रत्येक रक्तपित्तनाशक है किसी एक का सेवन करना चाहिये ॥ ४० ॥

वासकस्वरसैः पथ्या सप्तधा परिभाविता । कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं हठं जयेत् ॥ ४१ ॥

अहसा के स्वरस में सात बार भावित कर हरें को (हरें के चूंपों को) सेवन करने से अथवा पीपरि के चूंपों को मधु से चाटने से रक्तपित्त अवदय नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥

द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूताऽद्वतां व्रजेत् । तावप्रमाणं निर्दिष्टं निषिद्धिभर्वावनाविधौ ॥ ४२ ॥

भावना देने की विधि—जितने द्रव पदार्थ में भावना देने वाला चूंप एक में मिलाकर आद्रै हो जावे उसे भावना कहते हैं अर्थात् जिस वस्तु को जिस द्रव में भावित करना हो वह द्रव इतने परिमाण का हो कि उस वस्तु को एक बार में पूर्ण आद्रै कर देवे । इसको वैद्य लोग एक भावना कहते हैं ॥ ४२ ॥

अभया मधुकसंयुक्ता पाचनी दीपनी भता । इलेघ्याणं रक्तपित्तं च हन्ति शूलातिसाहजित् ॥

हर्री कों चूंप कर मधु के अनुपान से सेवन करने से पाचन और दीपन करता है कफ तथा रक्तपित्त को नष्ट करता है तथा शूल और अतीसार को नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

लोहगन्धनिभः शास उद्गारे रक्तगन्धनिनि । मृद्घीकोषणमात्रा तु खादद् द्विगुणशक्ताम् ॥ ४४ ॥

जिस रक्तपित्त के रोगी का शास लोहे के गन्ध के समान गन्ध वाला आव और डकार रक्त के गन्ध के समान गन्ध वाला आवे तब उस रोगी को मुनक्का और मरिच समान लेकर उसमें दुगुना शकर मिलाकर मात्रा से सेवन करना चाहिये, इससे लाभ होता है ॥ ४४ ॥

उत्तीरकालीयकरोप्रपाकं प्रियकृशुका कटफलशङ्कुगैरिकाः ।

पृथक्पृथक्खन्दनतुष्यभागिकाः सशक्तरात्तद्वृक्षावान्पत्तुताः ॥ ४५ ॥

रक्तं च पित्तं तमकं पिपासां वाहं च पीताः शामयन्ति सथाः ॥ ४६ ॥

खस, पीला चन्दन, लोध, पड़ुमकाठ, प्रियकृश, कायफर, शङ्कभस्म, शुद्ध गेह, इनमें से किसी एक को चूंप कर उसके बराबर चन्दन चूंप मिलावे और इसको शकर और चावल के धोअन के साथ सेवन करे तो यह रक्तपित्त, तमक शास, पिपासा, दाह आदि को शीघ्र शमन करता है ॥ ४५-४६ ॥

पकाशाकलः क्षाथो वा सुशीतः शक्तरान्वितः । पिवेद्वा मधुसर्पिर्भ्यं गवाक्षशङ्कुतो रक्तम् ॥

पलाश के त्वचा का कल्प अथवा काथ बनाकर शीतल कर शकर का प्रक्षेप देकर पीवे अथवा गौ अथवा धोड़े के बीट के रस (गोबर और धोड़े की लीद के रस) में मधु और धी मिला कर पीवे तो रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ४७ ॥

सद्बौद्धं ग्रथिते रक्ते लिङ्गारपारावधतं शक्तु । अतिनिःस्तररक्तो वा द्वौद्रेण रुधिरं पिवेत् ॥ ४८ ॥

यदि रक्तपित्त के रोगी को गांठ युक्त रक्त निकलता हो तो उसे कबूतर के बीट को मधु के अनुपान से चाटाना चाहिये अथवा जिसका रक्त शरीर से अधिक निकल गया हो उस रोगी को मधु का प्रक्षेप देकर रुधिर पिलाना चाहिये । (रुधिर बकरा आदि जीवों का जो रक्तपित्त में विहित है, उनका सथः निस्सारित होना चाहिये) ॥ ४८ ॥

खदिरस्य प्रियकृश्याणां कोविदारपारस्य शास्मलेः । उपचूर्णानि मधुना लिङ्गाद्वा रक्तपित्तनुव् ॥

सैर के फूल, प्रियकृश के फूल, कचनार के फूल, सेमर के फूल इनमें से किसी एक के फूलों का चूंप कर मधु के अनुपान से सेवन करने से (चाटने से) रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ४९ ॥

अथवापत्राग्रसात्तदंशो बोलोऽयं तस्माद् द्विगुणं मधु द्वायत् ।

रक्तप्रवाहां हृदयस्थितं वा वातो यथाऽन्नं हरते तथेव ॥ ५० ॥

हृदय से निकलने वाले रक्तपित्त के रक्त पर योग—अथवा वृक्ष के पत्तों के अग्रभाग (दूसा वा नव पलव) का स्वरस छ माग, बोल (खूनखरावा) एक भाग और दोनों से दुगुना (१४ भाग) मधु मिलाकर सेवन करने से हृदय से निकलते हुए रक्त के वेग को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार वायु मेघ को नष्ट करता है ॥ ५० ॥

मूलानि पुष्पाणि च मातुलुक्याः समं पिवेत्पद्मुलशास्मनेन ।

ग्राणप्रवृत्ते जलमाणु देयं सशक्तं नासिकयोः पयो वा ॥

द्रावादरसं चीरघृतं पिवेद्वा सशक्तं विचुरासं हितं वा ॥ ५१ ॥

नासिका से निकलने वाले रक्तपित्त के रक्त पर योग—मातुलुक्य (विजौरा नीबू) का मूल और पुष्प समान लेकर पीसकर चावल के धोअन के साथ पीने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है और नासिका से गिरते हुए रक्तपर शीघ्र शीतल जल अथवा शकर मिला दुबा दूध नासिका में नस्य देना चाहिये अथवा दाख का रस पिलाना चाहिये अथवा दूध में धी और शकर मिलाकर पिलाना चाहिये अथवा इक्षुरस (ऊंख का रस) पिलाना चाहिये ॥ ५१ ॥

उदुभवराणि पकानि गुडेन मधुनापि वा । उपयुक्तानि निन्दन्ति नासारकं नृणां ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

उदुभवर के पके हुए फल को गुड के साथ अथवा मधु के साथ सेवन करने से मधुब्यों के नाक से बहने वाले रक्त निश्चय ही बन्द हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

नस्य वादिमधुब्योत्थो इसो दूर्वाभिवोदयवा । आसास्थितः पकाण्डोवा नासिकास्तुतरक्तजित् ॥

अनार के फूलों के स्वरस के नस्य लेने से अथवा दूध के स्वरस के नस्य लेने से अथवा आम

की गुठली के रस का नस्य लेने से अथवा प्याज के स्वरस का नस्य लेने से नासिका से गिरता हुआ रक्त बन्द हो जाता है ॥ ५३ ॥

दूरीतकीदाढिमपुष्पदूर्वा लालारसो नस्यविधानयोगात् ।

निवारयथेव विव्रप्रवृत्तमप्याशु नासान्तरशोणितीघ्रम् ॥ ५४ ॥

हर्ष का रस, अनार के फूल का रस, दूध का स्वरस, लाही का रस इनमें से किसी का रस नस्य की विधि से नाक में देने से पुराना भी नासिका द्वारा रक्त गिरने वाला रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

नासाग्रवृत्तहृष्टिरं घृतभृतं श्लचणपिष्ठमामलकम् । सेतुरिव हृष्टिरेण रुणद्वि भूमिं प्रलेपेन ॥

नाक से रक्त गिरने वाले रक्तपित्त में आँखों को धी में भूजकर श्लचण पीसकर सिर पर प्रलेप करने से रक्त के बहाव को (गिरने को) इस प्रकार बन्द करता है जिस प्रकार बाँध बाँधने से जल का बहना बन्द हो जाता है ॥ ५५ ॥

प्रियकुर्मचिका लोध्रमञ्जनं चेति चूर्णयेत् । तच्चूर्णं योजयेत्तत्र नस्ये हौद्रसमन्वितम् ॥ ५६ ॥
नासिकासुखपायुभ्यो चोनिमेदाक्षं वेगितम् । रक्तपित्तस्य वृत्तिं सिद्धं यथ योगरात् ॥ ५७ ॥

सर्वाङ्ग से निकलते हुए रक्तपित्त के रक्त पर योग—प्रियकुर्म (फूलप्रियकुर्म), सौराश्रमचिका अभाव में इसका प्रतिनिधि फिटकिरी, लोध, शुद्ध कृष्णज्ञन इनके चूर्णों को मधु में मिलाकर नस्य की विधि से नस्य देने से नासिका, मुख गुदा, योनि, शिश आदि से वेग से बहते हुए रक्त को भी यह प्रयोगों का राजा (योग) बन्द करता है यह सिद्ध है अर्थात् इस योग से सब प्रकार के रक्तपित्त के रक्त बन्द हो जाते हैं ॥ ५६-५७ ॥

यथ शक्तवते नैव रक्तं तिष्ठति वेगितम् । तदप्यनेन चूर्णेन तिष्ठत्येवाचचूर्णितम् ॥

मेदूतोऽस्तिप्रवृत्तेऽस्ते वस्तिस्तरं द्वृथ्यते ॥ ५८ ॥

जहाँ पर शक्तादिक से कट जाने पर रक्त वेग से बहता हो रुकता नहीं हो वहाँ भी इस चूर्ण को लगाने से रक्त बन्द हो जाता है । और यदि लिङ्गेन्द्रिय से रक्त अधिक निकलता हो तो उत्तर वस्ति की विधि करनी चाहिये अर्थात् यिचकारी द्वारा औषध पहुँचाना चाहिये ॥ ५८ ॥

अथ दूर्वाद्यं घृतम्

दुर्वासुपलकिञ्जिरं मज्जिद्वा सैलबालुकाम् । शिवां लोधमुशीरं च मुस्तां चन्दनपश्चके ॥ १ ॥

विपञ्चेत्काविकेः कल्पकेषु त्रुतप्रस्थं सुखामिना । तण्डुलाग्नु हाजाहीरं दद्वा चैव चतुरुणम् ॥ २ ॥

तत्पानाद्वामतो रक्तं नावनाज्ञासिकागतम् । कणिर्णां यस्य गच्छेत्वं तस्य कणां प्रपूरयेत् ॥ ३ ॥

चचुःस्त्राविगि रक्ते च पूर्येत्तेन चतुर्थी । मेदूपायुप्रवृत्तेषु वस्तिकर्म प्रकारयेत् ॥

रोमकूपप्रवृत्ते च तदभ्यङ्गं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

दूर्वादि घृत—दूध, नीलोपल (नीलोफर) का केसर, मंडीठ, एलवा, हर्ष, लोध, खस, नामरमोथा, लालचन्दन, पदुमकाठ, इनमें से प्रत्येक एक २ कर्ष लेकर कल्प करे, गाय का भूचिंचत घृत एक प्रस्थ (एक सेर) लेकर उसमें यह कल्प किलावे और घृतपाक की विधि से मन्द-मन्द अग्नि पर पकावे इसमें पाकार्थी चावल का धोयन ४ प्रस्थ, बकरी का दूध ४ प्रस्थ (४ सेर) भी दे देवे विषिपूर्वक पका कर घृत जब प्रसुत हो जावे तब उत्तर-छान कर पीने से मुख से गिरता हुआ रक्तपित्त का रक्त बन्द होता है और नस्य लेने से नाक से गिरता हुआ रक्त बन्द होता है । जिसके कान से रक्त गिरता हो तो इसके कणपूरण करने से रक्त बन्द होता है । यदि नेत्र से रक्त गिरता हो तो नेत्र में देने से रक्त बन्द होता है, शिश, योनि और गुदा से यदि रक्त गिरता हो तो इस घृत से वस्तिकर्म (पिचकारी देने) से रक्त बन्द होता है तथा यदि

समस्त रोमकूप से ही रक्त निकलता हो तो इसके अभ्यङ्ग करने से वह भी बन्द हो जाता है । यह 'दूर्वादिघृत' अत्यन्त गुणकारी है ॥ १-४ ॥

अथ वासादिघृतम्

वासां सशास्त्रां सदलां समूलां कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्थ्याः ।

प्रदाय कल्पं विपच्छेदं घृतं च खल्द्वैष्माशवेषं निहन्ति इक्षम् ॥ १ ॥

वासादिघृत—अरुसा को शाखा, पत्र, मूल और पुष्प सहित लेकर काथ करे और इन्हीं सब वस्तुओं का कल्प भी बनावे और घृतपाक की विधि से कल्प एक भाग, गौ अथवा बकरी का मूच्छित घृत चार भाग, उपर्युक्त क्षाय सोलह भाग लेकर मन्दामिं से घृत पाक करे और घृत मात्र शेष रहने पर उत्तर-छान कर रख लेवे । इस घृत को मधु के साथ सेवन करने से रक्तपित्त का रक्त शीघ्र बन्द हो जाता है । इसको नाक, कान, आँख आदि से रक्त निकलने पर भी व्यवहार में लाना चाहिये ॥ १ ॥

वृन्दात्—

शाणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्थ च । कल्पाल्पत्रात्पुष्पकल्पं प्रस्थे पलच्छतुष्टयम् ॥ २ ॥

वृन्द के मत से घृत में देने का कल्प विधान—शश (सनर्व), कचनार, अरुसा और अर्जन वृक्ष इन सबका कल्प बनाने पर अधिक हो जाता है इसलिये इनके पुष्पों का कल्प बनाना चाहिये और एक प्रस्थ (एक सेर) घृत में चतुर्थीश चार पल (१६ तो ०) इसका कल्प देकर जहाँ इन सबों से घृत बनाने का विधान हो वहाँ घृत पाक करना चाहिये ॥ २ ॥

योगतरङ्गिण्याः—

कोविदारस्यासनस्य वृषस्य कुमुसस्य च । कल्पाल्पत्रात्प्रशंसनित उष्मपकल्पं चतुरुष्मलम् ॥ ३ ॥

योगतरङ्गिणी के मत से घृत में का कल्प विधान—कचनार, असन, अरुसा और अन्य किसी पुष्प वृक्ष का कल्प जो कल्प करने पर अधिक हो जाता है उसके पुष्प का ही कल्प करना चाहिये और एक प्रस्थ (एक सेर) धी में चार पल (१६ तो ०) कल्प देकर जिस स्थान पर इन वृक्षों का घृत बनाने का विधान हो वहाँ पाक करना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ शतावरीघृतम्

शतावरी दाढिमतिचिदीकं काकोलिकन्दं मधुकं विद्वारी ।

पिष्ठा च भूलं कल्पपूरकस्य पचेदं घृतं चीरचतुरुणं तत् ॥

कासजवरोभादिविवन्धशूलं तद्रक्षिपित्तं विविधं निहन्ति ॥ १ ॥

शतावरी घृत—शतावरी, अनार, इमली, क्षीरकाकोली का कल्प, जेठीमधु, विद्वारीकन्द और विजौरा नीबू की जड़, इन सब को समान ले कल्प कर इसे चतुरुण मूच्छित गोघृत और घृत से चतुरुण दूध में मिलाकर घृतपाक विधि से घृतपाक कर सेवन करने से कास, ऊर, उन्माद, विवन्ध, शूल और विविध प्रकार के रक्तपित्त नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ चन्दनादिचूर्णम्

चन्दनं ललदं लोधमुशीरं पद्मकेशरम् । नागपुष्पं च विशवं च भद्रमुस्तं सशकरम् ॥ १ ॥

हीवेरं चैव पाठा च कुटजोत्पलमेव च । श्वलवेदं सातिविषा धातकीं सरसाज्जनम् ॥ २ ॥

आग्रास्थिं जग्मुसारास्थिं तथा मोचरसोऽपि च ।

नीलात्पलं समक्षा च सूचमैला दाढिमत्वच्चः ॥ ३ ॥

वत्तमितिरेतानि समभागानि कारयेत् । तपदुलोदकसंयुक्त मधुना सह बोजयेत् ॥ ४ ॥
योगं कोहितपिचानामर्हासां गरिणां तथा । मूर्खांमदोपश्चानां तृष्णातीनां प्रदायेत् ॥ ५ ॥
असिसारं तथा छृदि छृणां चापि इजोग्रहे । प्रश्चुतानां च गर्भाणां स्थापनं परमिष्वते ॥

अधिनोः संमतो घोगो रक्तपित्तनिवृहणः ॥ ६ ॥

बद्धनादि चूर्ण—लालचन्दन, नलद (खस पीला), लोथ, खस, पश्चेशर (कमल केशर), नागकेशर, बेल की गुही, नागरमोथा, शक्कर, सुगन्धवाला, पुरशनपादी, कोरया की छाल, कमल, सौठ, अतीस, धाय के फूल, रसवत, आम की गुठली, जामुन की गुठली, मोच-रस, नीलोफर, मजीठ, छोटी इलायची की बीच, अनार की छाल, ये चौबीस द्रव्य समान लेकर चूर्णकर मधु में मिलाकर माझा से चावल के घोवन के साथ सेवन करने से यह योग रक्तपित्त, अर्थ, विष, मूर्छा, मद और तुषा वाले रोगियों को देना चाहिये और अतीसार, वमन तथा छियों के रजोग्रह रोग (वापक प्रदर), गिरने वाले गर्भ में (गर्भस्त्राव रोग में) गर्भ स्थिर करने के लिये अत्यन्त हितकारक है तथा रक्तपित्तनाशक है । यह अधिवनीकुमार के सम्मति से सिद्ध है ॥ १-६ ॥

अथैलादिगुटिका

एलादिग्रावचोऽर्चाचाः पिण्डप्रथम्यर्थपलं सिता । शिवामधुक्खरस्त्रावीकाशं पलोनिमताः ॥ १ ॥
संचूर्ण्यं मधुना युक्तं गुटिकां सम्प्रकल्पयेत् । अस्त्रमात्रां तत्त्वश्चो भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ २ ॥
कासं शासं ज्वरं हिंको छृदि मूर्छा मदं अमम् । रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्थशूलमरोचकम् ॥ ३ ॥
शोषं छोडीहोर्घवातं च स्वरभेदं तत्तं व्ययम् । गुटिका तपणी वृद्ध्या रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ ४ ॥

एलादिगुटिका—बड़ी इलायची का दाना, तेजपात, दालचीनी, ग्रत्येक आधा ई तोला, पीपरि आधा पल (२ तो ०), शक्कर, हर्रा मुलहठी, खजूर (छुड़ारा), मुनक्का ये सब एक-एक पल (चार २ तो ०) लेकर चूर्ण कर मधु के साथ मिलाकर बटी बनाकर एक २ बटी प्रतिदिन भक्षण करने से कास, शास, ज्वर, हिंका, वमन, मूर्छा, मद, भ्रम, थूक में रक्त निकलना, तुषा, पार्थशूल, अस्त्र, शोष, प्लीहा, ऊर्धववात, स्वरभेद, श्वत, क्षय और रक्तपित्त को यह गुटिका नष्ट करती है तथा वृद्ध्य और तुषि करने वाली है ॥ १-४ ॥

अथ कूष्माण्डावलेहः

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्थिवनं निष्कुलीकृतम् । पचेत्तदे वृत्तप्रथये वाते तात्रमये दृढे ॥ १ ॥
यदा मुनिभः पाकस्तदा स्पष्टप्रशतं न्यसेत् । पिण्डपली शृङ्गयेत् च द्वे पले जीरकस्य च ॥ २ ॥
त्रयोलापत्रमस्तिव्यान्यकाना पलार्धकम् । न्यसेच्चृणीकृतं तथा दक्षयां संघटयेत्ततः ॥ ३ ॥

लेहीभूते तुशीते च दद्यात्कौदं वृत्तार्धकम् ।

क्षौद्रार्धकां सितां केचिद्द्वाजां केचित्सितार्धकम् ॥ ४ ॥

प्राञ्छार्धानि लवङ्गानि कर्पं कपूर्कं चिपेत् । तद्यथामित्रलं खादेहक्षपित्ती चतुश्चयी ॥ ५ ॥
कासश्चासत्तमश्छुदितृष्णां उत्तरपिणीहितः । वृद्ध्यं पुनर्लंबकरं बलवर्णप्रसादनम् ॥ ६ ॥

उत्तरस्सन्धानकरणं वृहणं स्वरबोधनम् । अधिभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्माण्डकरसायनम् ॥ ७ ॥

कूष्माण्डावलेह—इवेत कूष्माण्ड (भुज्वा) को छील कर उसका गूदा निर्वैज १०० सो पल (४०० तोला) लेकर मलीभूति स्वेदित कर एक प्रस्थ (एक सेर) तपे हुए घृत में तौबे के अच्छे पात्र में पकाके जब मधु के समान पाक हो जाय तब उसमें सौ तल (४०० तो ०) शक्कर ढाल देवे पश्चात पीपरि, सौठि और जीरा दो २ पल (८-८ तो ०) दालचीनी, इलायची, तेजपात, मरिच, धनिया का आधा २ पल (२-२ तो ०) चूर्ण मिलाके । मलीभूति

बलाकर अवलेहपाक विधि से बनाकर शीतल होने पर मधु आधा प्रस्थ (आधा सेर=३२ तो ०) और शक्कर चौथाई प्रस्थ (एक पाव=६ तो ०) और सिता के आधा अर्थात् आधा पाव द्राक्षा, और द्राक्षा के आधा लौग का चूर्ण (५-८ तो ०) और एक कर्ष (एक तो ०) कर्पूर मिलाके । इस 'कूष्माण्डावलेह' को अग्निबल के अनुसार सेवन करने से रक्तपित्त, क्षत, क्षय, कास, शास, तमक, वमन, तुषा और ज्वरादि की पीड़ा नष्ट होती है, यह वृद्ध्य है, शरीर को नूतन करने वाला है, बल-वर्णकारक है, उत्तरक्षत आदि को जुटाने वाला है, वृद्धण है और स्वर को बनाने वाला है । इस ऐष रसायन को अधिवनीकुमारों ने बनाया था ॥ १-७ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डः

खण्डकामलकाद् ग्राहो इसः प्रस्थद्वयोनिमतः ।

खण्डकूष्माण्डके कंसः शिवकूष्माण्डकद्रवात् ॥ १ ॥

अन्यत्र खण्डकूष्माण्डात्समतः स्कलो इसः । पञ्चाशत्र वलं स्विकूष्माण्डमाण्डकद्रवात् ॥ २ ॥
एकं पलक्षतं स्वण्डं वामाकायादके पचेत् । शिवा धात्री-धनं भार्की विसुगन्धेष्व कायिकैः ॥ ३ ॥
तालीसविक्षधान्याकमरिचैषं पलाशकैः । पिण्डलीकुदर्वं चैव मधुना सह दापयेत् ॥ ४ ॥
कासं शासं ज्वरं हिंका रक्तपित्तं हलीमकम् । हलोदीमल्लपित्तं च पीनसं च व्यपोहति ॥ ५ ॥

खण्डकूष्माण्ड—खण्डामलक में आंवले का स्वरस दो प्रस्थ ग्रहण करना चाहिये, खण्ड-कूष्माण्ड में स्वेदित पेठे का इस एक कंस (चार प्रस्थ वा ४ सेर) लेकर पृथक् रखकर स्वेदित कूष्माण्ड के टुकड़ों को ५० पल (२०० तो ०) लेकर एक प्रस्थ (एक सेर) घृत में पकाके जब मलीभूति पक जावे तब शक्कर सौ पल (४०० तो ०) और अरुसा का काथ एक आढक (चार सेर) मिला कर और उपर्युक्त रस मिला कर पकाके जब अवलेहपाक की विधि से पक जावे तब उसमें हर्रा, अंवरा, नागरमोथा, बम्भेठी, दालचीनी, तेजपात का चूर्ण कर एक २ कर्ष (१-१ तो ०), तालीसपत्र, सौठि, धनिया, मरिच आदि का चूर्ण एक २ पल (४-४ तो ०), पीपरि का चूर्ण एक कुदव (१६ तो ०) मिलाकर रख ले और इसे मधु के अनुपान से सेवन करावें तो इससे कास, श्वास, ज्वर, हिंका, रक्तपित्त, हलीमक, हलोदी, अम्लपित्त और पीनस आदि-रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

अख वासाखण्डः

तुलामादाय वायायः पचेद्वयुणे जले । तेन पादावशेषेण पाचयेदादकं भिषक् ॥ १ ॥

चूर्णानामभावानां च खण्डं जातपलं तथा । शीतीभूते विद्ध्यात् शौद्रस्याईं पालानि च ॥ २ ॥

वंशोद्वायाश्वत्वारिपिण्डी द्विपलं तथा । चातुर्जातपलं त्वेकं चूर्णितं तत्र दापयेत् ॥ ३ ॥

रक्तपित्तं निहन्याशु कासं शासं तथा श्वयम् । विद्धिं ज्वरं गुरुमें तृष्णाहद्रोगपीनसान् ॥

पलार्धं मल्लणं चाल्यं यथेष्टं तत्र भोजनश्च ॥ ४ ॥

वासाखण्ड—वासा (अस्त्रसा) का पञ्चाङ्ग १ तुला (१०० पल वा ४०० तो ०) लेकर अठुने अर्थात् आठतुला (८०० पल वा ३२०० तो ०) जल में देकर काथ विधि से पकाके जब चतुर्थांश (२०० पल वा ८०० तो ०) शेष रहे तो उतार-छान कर इसमें हरें का चूर्ण एक आढक (चार सेर), शक्कर १०० पल (४०० तो ०) देकर अवलेहपाक विधि से पाक करे जब अवलेह पाक हो जावे तब उतार कर ठंडा होने पर उसमें मधु आठ पल (३२ तो ०), वंशलोचन चूर्ण चार पल (१६ तो ०), पीपरि का चूर्ण २ पल (८ तो ०) और चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा) का समान मिलित चूर्ण एक पल (४ तो ०) मिला देवे । इसके सेवन करने से

यह रक्तपित्त रोग को शीघ्र नष्ट करता है तथा कास, श्वास, क्षय, विद्रुषि, जठर (उदर) रोग, गुल्म, तुषा, हृद्रोग और पीनस रोग को नष्ट करता है। इसकी पूर्ण मात्रा आधा पल सेवन करने की है। इसके सेवन में यथोचित भोजन करना चाहिये ॥ १-४ ॥

अथ खण्डकाद्यवलेहः

शतावरीमुण्डितिकाबलामृताकलरवचः पुष्करमूलभार्णी ।
बृंहो बृंहत्यौ खदिरस्य मूलं पृथक्पृथक्पञ्च पलानि चात्र ॥ १ ॥
एकं जलद्रोणमितेऽस्मांशं यावञ्चेच्छेषमयैव पूतम् ।
विमूर्च्छितस्यापि निधाय खीमानपलानि च द्वादश मात्रिकस्य ॥ २ ॥
पलं सुवर्णस्य च लोहजस्य विद्याद्वितं खण्डवृत्तं च तुलयम् ।
देयं पलं खोडशकं चिविज्ञो विपाच्येज्ञोहमये कटाहे ॥ ३ ॥
गुडेन तुलयं च यदा भवेत्तदा तुगा विडङ्गं मगधा च शुण्ठी ।
द्व जीरके कर्कटं फलित्रिकं धार्यं मरीचं सकर्णं सकेसरम् ॥ ४ ॥
फलप्रमाणं विद्धीत तथृथक्पञ्चमुष्ठितं चूर्णमिदं धृतेन ।
जिर्धे कटाहे प्रणिधाय युव्याकर्षप्रमाणं चिह्नितावलेहम् ॥ ५ ॥
प्रभातकाले खनुदुधपाने गुरुणिं चाक्षानि च भोजनानि ।
रक्तं सपित्तं सहसा निहन्ति रक्तप्रवाहं च सरकशूलम् ॥ ६ ॥
इक्षतिसारं रुधिरप्रमेहं तथैव बस्तौ चिह्नितं नराणाम् ।
भगवद्वाराः शय्युं निहन्ति तथृद्वलपित्तं किल राजरोगम् ॥ ७ ॥
विशेषतः कुष्ठरुजस्य गुल्मान् बलप्रदं वृत्यतमं प्रदिष्टम् ॥ ८ ॥

खण्डकाद्यवलेह—शतावरि, मुण्डी (गोरखमुण्डी), बला (वरिआरा), गुरुचि, अवरा, द्वर्हा, बहेरा, दालचीनी, पोहकरमूल, बमेठी, अरुसा, छोटी कटेठी, बड़ी कटेठी, खेर की जड़ प्रत्येक पृथक् २ पांच २ पल (२०-२० तो०) लेकर जौकुट कर काथ की विधि से एक द्रोण (१६ सेर) जल देकर पाक करे जब आठवाँ अंश अर्थात् दो सेर जल शेष रहे तब उत्तार-छान कर इसमें मिलाने के लिये शुद्ध मधु १२ पल (४८ तो०) रख लेवे और सुवर्ण भस्म और लोह भस्म एक २ पल (४-४ तो०) मिला देवे तथा इसमें शकर १६ पल, घृत १६ पल (६४ तो०) मिलाकर लोहे को कड़ाही में अवलेहपाक की विधि से पाक करे जब पाक गुड़ के समान हो जावे तब उत्तार कर वंशलोचन, बाभीरंग, पीपरि, सौंठि, दोनों जीरा (थेत-कृष्ण), काकड़ासिंगी, त्रिफला (अंवरा, द्वर्हा, बहेरा), धनियां, मरिच, पीपरि और नागकेसर का चूर्ण पृथक्-पृथक् एक-एक पल (चार-चार तो०) लेकर मिलावे जब शीतल हो जावे तब उपर्युक्त मधु मिलाकर घृत से चिकने किये हुए कड़ाही में रख कर एक कर्ष की मात्रा से (१ तो०) प्रातःकाल दूध के अनुपान से सेवन करे और गुरु अक्ष तथा गुरु भोजन करे तो इस अवलेह से रक्तपित्त का एकाएक अर्थात् बलपूर्वक नाश होता है तथा रक्त के बहाव और रक्त निकलते समय के शूल का, रक्तातिसार का, रुधिर के प्रमेह का, मूत्राशय से बहते हुए रक्त का नाश होता है, और भग्नदर, अर्द, शोथ, अम्लपित्त, राजयक्षमा आदि का निश्चित नाश होता है विशेषकर कुष्ठ की पीड़ा और गुल्म रोग का नाश होता है तथा बलदायक और वृद्ध है ॥ १-८ ॥

अथ रसाः

रक्तपित्तकुलकुठारः—शुद्धपारद्यलिप्रवालकं हेममार्णिकभुजङ्गरङ्गकम् ।
मारितं सकलमेतदुत्तमं भावयेदथ पृथक्पृथक्द्वैष्मिकः ॥ १ ॥

चन्दनस्य कमलस्य मालतीकोरकस्य वृषपञ्चवस्य च ।
धात्यवारणकणाशतावरीशारमलीवटजटाष्टरस्य च ॥ २ ॥
रक्तपित्तकुलकणहनामिष्ठो जायते रसवरोऽस्त्रपित्तिनाम् ।
प्राणदो मधुवृषद्वैरयं देवितस्तु चमुक्षुणलैर्मितः ॥
नाशयनेन समस्मानं भूतले भेषजं किमपि रक्तपित्तिनाम् ॥ ३ ॥

रसप्रकरण—रक्तपित्तकुलकुठार रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, प्रवाल भस्म, सुवर्ण भस्म, सुवर्णमार्णिक भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म इन सब को समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अन्यान्य द्रव्यों को मिला मर्दन कर लिखित द्रव्यों के द्रव्यों से अलग २ भावनां तीन २ बार देवे अर्थात् चन्दन, कमल, मालती की कली, अरुसा के पत्ते, धनियां, गजपीपरि, शतावरि, सेमर और वट की जड़ा और गुरुचि के स्वरस की अलग २ तीन २ भावना देकर सेवन करने से यह 'रक्तपित्तकुलकणह' नाम का रस रक्तपित्त वालों के लिये उत्तम है, प्राणप्रद है, यदि यह रस ८ रसों की मात्रा से मधु और अरुसा के स्वरस के साथ (अनुपान से) सेवन किया जाये तो इसके समान रक्तपित्तनाशक कोई औषध संसार में नहीं है ॥ १-३ ॥

अथ वासासूतः

आटरुषनवपञ्चवद्रवे पालिके सरसभस्मवस्त्रकम् ।
कर्षसमित्तमधुप्रयोजितं प्राश्य नाशयति रक्तपित्तकम् ॥ १ ॥
वासासूत योग—अरुसा के नये २ पत्तों का स्वरस एक पल, रससिन्दूर एक बल (आ० मा० १ से दो रत्ती तक) और मधु एक कर्ष लेकर मिलाकर सेवन करने से रक्तपित्त रोग को यह योग नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ बोलपर्पटीरसः

सूतमध्यक्षुकजलिकाया: पर्पटी समयुता समभागम् ।
शोलचूर्णविहसं प्रतिवास्यं स्याद्वस्त्रोऽयमस्माशुरामयहारी ॥ १ ॥
वश्युमयुगलं प्रतिदेवं शर्करामधुयुतः किल दत्तः ।
रक्तपित्तगुद्वलसुतियोनिश्चावमाशु विनिवारथतीशः ॥ २ ॥

बोलपर्पटी रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक समभाग लेकर विधिवत् कजली कर पर्पटी की विधि से पाक कर जिस प्रमाण का हो उसके समान बोल का चूर्ण मिला सेवन करने से रक्तपित्त नष्ट होता है। इसको दो बल (६ रत्ती) के प्रमाण से शकर और मधु के अनुपान से सेवन करने से रक्तपित्त, अर्शाङ्कुर के रक्तातिसार और योनिसार (योनि से रक्त निकलना) वे सब शीघ्र निवृत्त होते हैं ॥ २ ॥

अथ मुधानिधिरसः

गन्धं सूतं मारिकं लोहचूर्णं सर्वं घृष्टं त्रैफलेनोदकेन ।
लौहे पांचे गोपयःस्थं च वृत्त्वा शारी दद्याद्वक्तिप्रशान्तये ॥ १ ॥
मुधानिधि रस—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, स्वर्णमार्णिक भस्म, लौह भस्म इनको समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर फिर सबको एकत्र कर त्रिफला के काथ में लोहे के पत्ते में मर्दन कर मात्रा से गोदुध के अनुपान से रात्रि में सेवन करने से रक्तपित्त शान्त होता है ॥ १ ॥
यस्य पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरन्तस्य भेषजम् । रक्तपित्ते हितं तच्च चतुर्विंशते हितं च गत् ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य अन्य योग—पित्तज्वर की जो ओषधि वाहा वा आभ्यन्तर की कही गयी है अर्थात् खाने वा लगाने की वह सब और क्षत-क्षीण की जो ओषधि है वह सब रक्तपित्त रोग में हितकर है ॥ २ ॥

अथ राजयद्धमनिदानम्

अनेकरोगानुगते बहुरोगपुरोगमः । राजयक्षमा चयः शोषो रोगशाहिति च स्मृतः ॥ १ ॥
यक्षमा के नाम—अनेक रोगों के द्वारा उत्पन्न होने वाला तथा बहुत से रोगों को उत्पन्न करने वाला यह रोग राजयक्षमा, क्षय, शोष और रोगराट् के नाम से पुकारा जाता है ॥ १ ॥

नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा । यच्च राजा च यक्षमा च राजयक्षमा ततो मतः ॥
यक्षमा की निरुक्ति—यहले यह रोग नक्षत्रों और द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के राजा (चन्द्रमा) को दुआ था और रोगों का राजा है ही अस्तु इसको 'राजयक्षमा' कहा जाता है ॥ २ ॥

यह रोग पहले राजा चन्द्रदेव को दुआ इसलिये विदान् लोग इसे 'राजयक्षमा' कहते हैं ॥ २ ॥
देहोषध्यव्यक्तते: क्षयस्तस्तम्भवादच सः । इसादिशोषणाच्छोषो रोगराट् तेषु राजनात् ॥ ३ ॥

शरीर और औषध दोनों का क्षय करने वाला यह रोग होता है अस्तु इसे 'क्षय' कहा जाता है और क्षय होने से रस-रक्तादि धातुओं तथा शरीर का शोषण होता है इससे इसे 'शोष' भी कहते हैं और सब रोगों के मध्य में विराजमान रहने से 'रोगराट्' भी कहा जाता है ॥ ४ ॥

अथ तत्र कारणचतुष्टयमाह—

वेगरोधारच्याच्वैव साहसाद्विषमाशनात् । श्रिदोषो जायते यक्षमा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥
कारणचतुष्टय अर्थात् निदान—मल-मूत्रादिक दोषों के अवरोध से, रस से शुक्र पर्यन्त धातुओं के क्षय होने से, साहस करने से अर्थात् शक्ति से अधिक कार्य करने से और विषम भोजन करने से इन चार कारणों से श्रिदोषों से उत्पन्न होने वाला 'यक्षमा' रोग होता है, अर्थात्—आरम्भ के चार निदान हैं ॥ १ ॥

यावदोषा रसस्थानं नाऽप्यनुवन्ति विशेषतः ॥ २ ॥
न भजेष्व उवरस्तावद्वेषे प्राप्तं प्रवर्तते ।

सम्प्राप्ति—जब तक वातादिक दोष रस स्थान को विशेष करके नहीं प्राप्त होते हैं तब तक ज्वर नहीं होता है और जब प्राप्त हो जाते हैं तब ज्वर हो जाता है ॥ २-२५ ॥

कफप्रधानैर्दोषेस्तु रुदेषु रसवर्मसु ॥ ३ ॥

कफ की प्रधानता से युक्त कुपित तीनों दोष रसवहन करने वाले स्रोतों का अवरोध कर देते हैं जिससे रसादिक धातुओं का बनना रुक जाता है और शरीर सूखने लगता है ॥ ३ ॥

अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनम्भतराः । क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुद्धिति मानवः ॥ ४ ॥
अथवा अत्यन्त मैथुन करने वाले का वीर्य जब क्षीण हो जाता है तब इसके अनन्तर प्रतिलोम कम से अन्यान्य धातु (मलादिक) क्षीण होने लगते हैं अर्थात् (मला से अस्ति, अस्ति से मेदा, इत्यादि कम से) सब धातु क्षीण हो जाते हैं इससे मनुष्य का शरीर सूख जाता है ॥ ४ ॥

पूर्वरूपमाह—

सासाद्विषमसंचवतालुशोषवस्त्रमित्सादमदयीनसकासनिद्राः ।

शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्मुः शुद्धिलेच्छो भवति मासपरो रिरंसुः ॥ १ ॥

पूर्वरूप—यक्षमा होने के पहले मनुष्य को निष्प्रियत लक्षण जब दिखाई देवे तो समझना

चाहिये कि यक्षमा होगा अर्थात् शास, अङ्गों में शिथिलता, कफ का अधिक निकलना, तालु का सूखना, बमन, मन्दाद्य, मद होना, पीनस रोग, कास तथा अधिक निद्रा आना, आदि लक्षण और उस मनुष्य के नेत्र श्वेत वर्ण के हो जाते हैं, उसे मांस खाने की और मैथुन की अधिक इच्छा होती है अर्थात् वे सब लक्षण यक्षमा जब होने को होता है तब उसके पूर्व में होते हैं ॥ १ ॥

स्वप्नेषु काकश्चृंकशङ्किनीलकण्ठगृध्रस्तरैवं कथयः कृक्कासकाश ।

तं वाहयन्ति स नदीविजलाश्च पश्येच्छुष्कस्तस्त्रन्पवनधूमद्वादितांश्च ॥ २ ॥

और भी—वह मनुष्य (जिसे यक्षमा होने को होता है वह) स्वप्न में काक, शुक्र, साही, नीलकण्ठ, गिर, बन्दर, गिरगिट इनको देखता है और इन पर अपने को आँख़ देखता है, और जलहीन नदी देखता है, सूखे हुए वृक्षों को देखता है, और पवन (आँधी), धूम्र राशि तथा दावानिं को देखता है ॥ २ ॥

त्रिरूपं दर्शयत्नाह—

अंसपार्श्वभितापश्च सन्तापः करपादयोः । उद्धरः सक्षिप्तग्रहेति लक्षणं राजयक्षमणः ॥ ३ ॥

त्रिरूप यक्षमा के लक्षण—धंस देश (कंधों में) में पीड़ा रहना और पाथे (पैसलियों) में पीड़ा रहना, हाथ और पांवों में तपन (जलन) होना और सम्पूर्ण अङ्गों में ज्वर का व्याप्त रहना ये तीन लक्षण एक साथ हों तो यक्षमारोग हुआ समझना चाहिये ॥ ३ ॥

अग्निमान्द्यं उवरः शैर्यं वानितः शोणितपूर्ययोः । सर्वहानिश्च दौर्बल्यं रोगराजस्य लक्षणम् ॥

और भी (धूरूप यक्षमा के) लक्षण—जिसकी अग्नि मन्द हो जावे, उवर निरन्तर रहे, शीत मालम हो, रक्तपूर्य मिश्रित बमन हो, शारीरिक बल नष्ट हो जावे, और दुर्बलता हो ये छ लक्षण एक साथ हों तो राजयक्षमा हुआ समझना चाहिये ॥ २ ॥

एकादश रूपाण्याह—

स्वरभेदोऽनिलाच्छुलं सङ्कोचश्चांसपार्श्वयोः । उवरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्षस्य वाऽप्यगमः ॥
शिरसः परिपूर्णत्वमभक्षन्द एव च । कासः कण्ठस्य चोद्धर्वसं विज्ञेयः कफकोपसः ॥ ४ ॥

एकादश रूप वाले यक्षमा का लक्षण—बढ़े हुए यक्षमा जिनमें तीनों दोषों के लक्षण स्पष्ट होते हैं उसका लक्षण कहते हैं—वात विकार से स्वरभेद, शुक्र और स्कन्ध तथा पसलियों में संकोच (सिकुड़न) हो जाना ये लक्षण होते हैं । पित्त विकार से उवर रहना, दाह होना, अतीसार होना और मुखादिक से रक्त निकलना ये लक्षण होते हैं । और कफ के विकार से स्त्रि में भारीपन, भोजन में अरुचि, कास, गले का बैठ आना ये लक्षण होते हैं । ये सब लक्षण एक साथ जिस हों तो उसे तीनों दोषों से कुपित यक्षमा हुआ समझना चाहिये ॥ ३-४ ॥

क्षयस्य षड्गुणाण्याह—

मरुकूपो उवरः कासः शासः शोणितदर्क्षनम् । स्वरभेदश्च आयन्ते षड्गुणे राजयक्षमणि ॥ ५ ॥

पुनः छव रूप वाले यक्षमा के लक्षण—भोजन में अरुचि, उवर, कास, शास, मुखादिक से रक्त निकलना और स्वरभेद होना ये छ लक्षण एकत्र हों तो राजयक्षमा हुआ समझना चाहिये ॥ ५ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

एकादशभिरेतर्वा षड्गुणाण्वि समन्वितम् । कासातिसारपार्श्वांतिस्वरभेदाद्विषयरैः ॥ ६ ॥

गुणिवार्षी पीडितं लिङ्गेऽर्द्धरकासासुगामयैः । जाह्नाश्चोषादितं अनुमित्तशुभेदपूर्विषुलं यक्षः ॥ ७ ॥

यक्षमा के साध्यासाध्य लक्षण—उल्लिखित एकादश (स्वरभेदादि) लक्षणों से युक्त, अथवा पूर्वोक्त षड्गुण (मक्तदेवादि) लक्षणों से युक्त, अथवा कास-अतीसार-पार्श्वीडा-स्वरभेद-

वरुचि और ज्वर से युक्त अथवा त्रिरूप (अंसपार्थीभितापादि) लक्षणों से युक्त अथवा ज्वर-कास और रक्त निःस्तरण इन्हीं तीन लक्षणों से युक्त शोष वाले रोगी की सुवेश को चाहने वाला वैद्य चिकित्सा नहीं करे अर्थात् ये यक्षमारोग के असाध्य लक्षण हैं ॥ ६-७ ॥

सर्वर्धेचिर्मिरांपि लिङ्गमांसबलश्वये । युक्तो वर्यंश्चिरित्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥८॥

तब प्रकार के लक्षणों से युक्त अर्थात् ग्यारहो लक्षणों वाला अथवा आधे लक्षणों से युक्त अर्थात् छ लक्षणों वाला अथवा तीन लक्षणों से युक्त अर्थात् त्रिरूप लक्षणों वाला रोगी हो और उसका मांस तथा बल नष्ट हो गया हो ऐसी अवस्था में चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । अन्यथा अर्थात् मांस-बल क्षीण न हुआ हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये सब प्रकार के लक्षणों से युक्त होने पर भी । अर्थात् ग्यारह, छ और तीन लक्षणों वाले यक्षमा के रोगी की भी चिकित्सा मांस-बल रहने पर करनी चाहिये ॥ ८ ॥

महाशानं श्वीथमाणमतिसारनिपीडितम् । शूनमुष्कोदरं चैव यचिमणं परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥

उपक्रमेदारमवन्तं दीपाग्निमङ्गलानवम् ।

जो यक्षमा का रोगी बहुत भोजन करे तिसपर भी क्षीण होता जावे अर्थात् बलहीन होता जावे और अतीसार से पीड़ित हो अर्थात् मल अधिक हो तथा उसके अण्डकोष और उदर में शोष हो गया हो तो उस रोगी को छोड़ देवे अर्थात् वह असाध्य अवस्था है वैद्य उसकी चिकित्सा न करे यक्षमा का रोगी जितेन्द्रिय हो (पथ पर इदं रहने वाला हो), अग्नि जिसकी दीप हो, शरीर क्षीण नहीं हुआ हो और रोग नवीन हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९-१० ॥

शुक्रांश्चमङ्गलाद्यामूर्खचासनिपीडितम् ॥ १० ॥

कृच्छ्रण बहु मेहन्तं यथमा हन्तीह मानवम् ।

जिस यक्षमा के रोगी का नेत्र वेत वर्ण का हो गया हो, भोजन में अनिच्छा हो, ऊर्ध्व श्वास से पीड़ित हो, बहुत कष से मूत्र हो अर्थात् मूत्रकृच्छ्र हों और अधिक मूत्र हो (बार २ मूत्र हो) तो उस रोगी को यक्षमा मार डालता है अर्थात् यह असाध्य अवस्था है ॥ १०-१०२ ॥

अन्यक्षयानाह—व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाद्यप्रशोचितान् ॥ ११ ॥

प्रणोदःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लघ्नौः श्रणु ।

उपर्युक्त यक्षमा के कारणों से अतिरिक्त कारणों से होने वाले क्षय के लक्षण—मैथुन, शोक, वृद्धपना, व्यायाम, मार्ग चलना, ब्रण और उरःक्षत से होने वाले व्यवायशोष, शोकशोष, वार्धक्यशोष, व्यायामशोष, अधवशोष, ब्रणशोष और उरःक्षतशोष लक्षणों को कहते हैं उनो ॥ ११-११२ ॥

व्यवायशोषी शुक्रस्य च्यतिलिङ्गेषुपद्रुतः ॥ १२ ॥

पाण्डुदेहो यथाएवं क्षीयन्ते चास्य धातवः ।

व्यवायशोषी के लक्षण—मैथुन से क्षीण होने वाले को वीर्य क्षय के जो लक्षण हैं (मैथुन में अशक्ति, लिङ्ग और अण्डकोष में पीड़ा, वीर्य अधिक समय पर निकलना और वीर्यपात के पश्चात् वीर्य वा रक्त निकलना आदि) वे होते हैं और देह पाण्डु वर्ण का हो जाता है और इसके उपरान्त यथापूर्व काम से धातुयें क्षीण हो जाती हैं अर्थात् वीर्य के क्षीण होने पर मज्जा, मज्जा से अस्थि, अस्थि से मेद, मेद से मांस, मांस से रक्त और रक्त से रस धातु क्षीण हो जाती है ॥ १२-१२२ ॥

शोकशोषिलक्षणमाह—प्रद्यानशीलः चर्सताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः ॥ १३ ॥

चिन्ताशुक्रव्यकृतविकारैरुपलचितः ॥ १४ ॥

शोकशोषी के लक्षण—शोक से यक्षमा होने पर वह मनुष्य निरन्तर चिन्ता में लीन, शिथिलाङ्ग तथा वीर्यक्षय के बिना पूर्वोक्त व्यवायशोषी के लक्षणों से युक्त होता है अर्थात् उसका भी लक्षण व्यवायशोषी के लक्षणों के समान ही होता है परं उसमें वीर्यक्षय नहीं होता है अन्य सभी विकार रहते हैं ॥ १३-१४ ॥

जराशोषिलक्षणमाह—

जराशोषी छुक्षो मन्दवीर्युद्धिव्यलेन्द्रियः । कम्पनोऽहर्चिमानिभ्रकांस्यपाश्रहतस्वनः ॥ १५ ॥
ष्ट्रीवत्ति श्लेषणा हीनं गौवारातिपीडितः । सम्प्रस्तुताङ्गिनासास्यः शुष्करूपमलच्छ्रविः ॥ १६ ॥

जराशोषी के लक्षण—वृद्धावस्था के कारण जो शोष होता है उसमें वह मनुष्य दुर्बल तथा उसके वीर्य, दुष्टि, वल और इन्द्रियां से सब मन्द अर्थात् न्यून शक्ति की हो जाती है (न्यून वीर्य, न्यून दुष्टि, न्यून वल और न्यून इन्द्रियशक्ति हो जाती है), शरीर में कम्पन, अरुचि, फूटे हुए कांस्य पात्र के स्वर के समान फटा हुआ स्वर हो जाता है, कफरहित थूकता है शरीर गुरु रहता है और पीड़ा से पीड़ित रहता है, आँख, नाक और मुँह से जलसाव होता रहता है तथा मल सूखा-रुखा निकलता है और वह कान्तिहीन हो जाता है ॥ १५-१६ ॥

अध्वशोषिलक्षणमाह—

अध्वश्रज्ञोऽपि चर्स्ताङ्गः सम्भृष्टप्रस्त्रच्छ्रविः । श्रुत्सुग्रामावायवः शुष्ककृतेभगलाननः ॥ १७ ॥

अध्वशोषी के लक्षण—अधिक मार्ग चलने से जिसको यक्षमा होता है है उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, शरीर का वर्ण (कान्ति) सुनाये हुए कठोर पदार्थ के समान रुक्ष हो जाता है, उसके अवयव तथा अन्य शरीर शूद्र (स्पर्शी ज्ञान हीन) हो जाते हैं और उसका छोम (पिपासा स्थान) गला तथा मुख निरन्तर सूखा हुआ रहता है ॥ १७ ॥

व्यायामशोषिलक्षणमाह—

व्यायामशोषी भूयिष्टमेभिरेव समन्वितः । लिङ्गाद्वात्कृतैः संयुक्तचक्ताङ्गाना ॥ १८ ॥

व्यायामशोषी के लक्षण—अधिक परिश्रम के कारण जिसको यक्षमा होता है है उसे उपर्युक्त अध्वशोष के लक्षणों से युक्त लक्षण तथा आगे कहे जाने वाले उरःक्षत के लक्षणों से युक्त लक्षण होते हैं किन्तु विना क्षत के अर्थात् दोनों लक्षणों से युक्त लक्षण होता है परन्तु हृदय के क्षत के विना ॥ १८ ॥

ब्रणशोषिलक्षणमाह—

ब्रणच्छयाद्वात्नाभिस्तथैदाऽहरयन्त्रणात् । ब्रणिनश्च भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥ १९ ॥

ब्रणशोषी के लक्षण—ब्रण रोग के कारण जिसको यक्षमा होता है है उसको ब्रण से अधिक रक्त निकलने से (रक्तक्षय से), पीड़ा से तथा आहार कम करने के कारण रसादि धातुओं के क्षय होने से यक्षमारोग हो जाता है । यह ब्रणशोष असाध्य कहा गया है ॥ १९ ॥

परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः । सुभिष्टिभिरुपक्रान्तस्तस्त्रः शोषिणीडितः ॥ २० ॥

यक्षमा की आयु—यदि युवा रोगी उत्तम वैद्य से चिकित्सा करकर हजार दिन तक जीवित रह जावे तो उसे जीवित जानना चाहिये अर्थात् उसके बाद (तीन वर्ष के बाद) उचित चिकित्सा से वह जी जाता है ॥ २० ॥

मलाधनं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम् । तस्माद्यनेन संरक्षयचिमणो मलरेतसी ॥ २१ ॥

यक्षमा के रोगी के मल और शुक्र की रक्षा पर वचन—मनुष्य का बल मल के आश्रय रहता है तथा जीवन शुक्र के आश्रय रहता है अस्तु यक्षमा रोगी के मल और शुक्र की रक्षा वैद्य को यत्नपूर्वक करनी चाहिये ॥ २१ ॥

अथातो राजयद्मचिकित्सां धयाख्यास्यामः

किञ्चिल्लिङ्गयुतं दीपपावकं त्वकृशं नरम् । उपाचरेदामवन्तं यथिमणं साध्यलक्षणम् ॥३॥

राजयक्षमा की चिकित्सा—यक्षमा के रोगी में यदि रोग के अत्यल्प लक्षण हों, अग्री तीव्र (दीप) हो शरीर अधिक दुर्बल नहीं हुआ हो, जितेन्द्रिय हो और साध्य लक्षणों वाला हो तब वैय उसकी चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

अर्धलिङ्गैः कृष्णसाध्यं वर्वलिङ्गैः परित्यजेत् । यथिमणं शुकुनयनं तथा भक्तिवृष्टिं कृशम् ॥२॥
तथोर्धर्वश्वासिनं कृष्णं मेहन्तं परित्यजेत् ।

आधे लक्षण जिसमें हो उसे कष्टसाध्य जानकर चिकित्सा करनी चाहिये किन्तु सम्मूल लक्षणों से युक्त रोगी को त्याग देना चाहिये और जिस यक्षमा के रोगी के नेत्र इवेत हो गये हों (रक्त रहित), भोजन से असुन्नि हो गयी हो, अत्यन्त दुर्बल हो गया हो, अर्ध शास हो गया हो तथा कष्ट से मूत्र त्याग करता हो, उस रोगी को त्याग देना चाहिये अर्थात् यह असाध्य लक्षण है ॥ २-२३ ॥

अत्यवायवायिनो वापि लीणे रेतस्थनन्तशः । लीयन्ते धातवः सर्वे ततः शूल्यति मानवः ॥३॥
ध्यवायशोषिणं लीरव्यवमालाउथभोजनैः । मुकुलैमंधुरैर्गन्धैर्जीवनीयैर्हपाचरेत् ॥४॥

अत्यन्त मैथुन करने वाले के लीये के नष्ट हो जाने पर शैव अन्य भजनादि धातुयें भी नष्ट हो जाती है जिससे वह सूखने लगता है । उसे 'ध्यवायशोषी' कहते हैं । इस रोगी को दूध, रस, मांस, घृत आदि के भोजन, मधुर गन्ध वाले मुष्ठों और कलियों का गन्ध और जीवनीय गण में कही गयी ओषधियों का प्रयोग कराना चाहिये । (जीवनीयगण-अष्टवर्गी, लेठी मधु, जीवनी, मुदगपर्णी, माषपर्णी आदि हैं) ॥ ३-४ ॥

व्यणशोषं जयेद्विनर्वैर्दीपनैः स्वाकुशीतकैः । दीपनैर्लंघुरभिक्षान्तैः शोकशोषमुपाचरेत् ॥५॥
हर्षणाश्वासनैः लीरैः स्त्रिगर्भमधुरशीतकैः ।

व्यण शोष के रोगी को स्त्रिगर्भ, दीपन, स्वादु (मधुर) और शीतल द्रव्यों का सेवन करा कर स्वस्थ करे । और शोकशोष वाले को दीपन तथा लघु अक्षादिकों के सेवन से स्वस्थ करे एवं हर्षण करने वाले तथा धैर्य वैधाने वाले वचनों से, दूध से, स्त्रिगर्भ, मधुर तथा शीतल पदार्थों के सेवन से स्वस्थ करे ॥ ५-२४ ॥

आस्थायुक्तैर्द्विवास्वप्नशीतैर्मधुरवृद्धौः ॥६॥

तथा मांसरसाद्वारेऽप्यशोषिणमाचरेत् । इव्यहूलैरनलैर्वै यूत्यमासरसादिभिः ॥७॥

सुखपूर्वक शश्या पर रख कर, दिन में शयन करा कर, शीतल-मधुर तथा वृद्धण पदार्थों का सेवन करा कर और मांसरस का आहार कराकर अध्वशोषी को स्वस्थ करे । तथा कुछ अम्ल वा विना अम्ल के ही जूस और मांसरस आदि का सेवन कराकर अध्वशोषी को स्वस्थ करे ॥ ६-७ ॥

ध्यायामशोषिणं स्त्रिगर्भैः चतुर्वयहितैर्हिमैः । उपचारैर्जीवनीयैर्विभिना श्लैषिमकेण तु ॥८॥

ध्यायामशोषी को स्त्रिगर्भ पदार्थों के सेवन से और क्षत से हुए क्षय में हितकारक तथा शीतल पदार्थों के सेवन से और जीवनीय गण तथा कफकारक पदार्थों का सेवन करा कर स्वस्थ करे ॥ ८ ॥

बलिनो बहुदोषस्थ व्रमनं रेचनं तथा । वातश्लेष्महरं कार्थं दद्याद् दोषापहं पुरा ॥९॥

रोग यदि बलवान हो और दोष अधिक वढ़े हुए हों तो उसे व्रमन करावे और दोषों को हरण करने के लिये वात-कफ नाशक क्वात्र पिलावे ॥ ९ ॥

यथिमणः लीणदेहस्य यकृतं स्यात्क्षिप्तम् ।

परन्तु यदि रोगी लीण शरीर वाला (निर्बल) हो तो उसे व्रमन-विरेचन नहीं करावे क्योंकि निर्बल के लिये यह कर्म विष के समान है ॥ ९३ ॥

मैथुनं च दिवा निद्रां लीणी कोदं च वर्जयेत् ।

यक्षमा के रोगी के लिये अपथ्य—यक्षमा का रोगी वैगन, करैली, तेल, बेल का फल, राई, मैथुन, दिन में शयन कराना और क्रोध करना यह त्याग देवे अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ १०-१०३ ॥

शालिषष्टिकांश्वमयवसुदादयः शुभाः ॥११॥

मर्यानि जाङ्गलः पक्षिमृगाः शस्त्रा विशुष्यतः । मूलकानां कुलरथानां यूषैर्वा सूपसंस्कृतैः ॥
पथ्य—शाली धान का चावल, साठी धान का चावल, गेहूं, यव तथा भूंग आदि शुभ (अच्छे) अज्ञ, मदिरा, जांगल जीवों का मास, पक्षी और मृग का मांस शोषवाले रोगी के लिये प्रशस्त है अर्थात् पथ्य है तथा मूली तथा कुलधी के दाल का बना हुआ जूम हितकर (पथ्य) है ॥ ११-१२ ॥

सपिष्पलीकं सयवं सकुलारथं सनागरम् । वादिमामलकोपेतं सिंधमाजरसं पिवेत् ॥१२॥

तेन षड् विनिचर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ।

यक्षमा वाला रोगी—पीपरि, यव, कुलधी, सौंठ, अनार तथा औवला के साथ वृत में सिद्ध किया हुआ 'छागमांस' का रस पीवे इसके पीने से छब प्रकार के पीनस आदि विकार नष्ट होते हैं ॥ १२-१२३ ॥

सधान्यव्यवगोष्मसुदाश्वापि सदा हिताः ॥१३॥

चावल, यव, गेहूं और भूंग आदि का सेवन भी यक्षमा के रोगी के लिये सदा हितकारक (पथ्य) है ॥ १४ ॥

स्नियश्वतुष्पदे श्रेष्ठाः पुमांसो विहगा मसाः ।

यक्षमा के रोगी के सेवन के लिये मांस में किस पशु और किस पक्षी का मांस ग्रहण करना चाहिये उसका विचार—चौपाये जीवों में ली जाति का मांस उत्तम है, पक्षियों में पुरुष जाति का मांस उत्तम है ॥ १४३ ॥

हरिणश्वामांसं तु श्लैषणचूर्णीकृतं शुभम् ॥१५॥

अजास्तो रेण पासाध्यं लयव्याप्तिनिवारणम् ।

हरिण तथा छाग के मांस का उत्तम चूर्ण बनाकर छाग दुग्ध के साथ प्रमाण से पीने से क्षय रोग नष्ट हो जाता है ॥ १५-१५३ ॥

छागमांसं पश्यश्वागं सर्विंश्चागं सर्वाकरम् । छागोपसेवा सततं छागमध्ये तु यथमनुकृतः ॥१६॥

छाग की यक्षमा में विशेषता—छाग का मांस, छाग का बूथ, छाग का घृत शकर के साथ सेवन करने से, छाग की सेवा (पास रखकर छिलाने पिलाने से) और छाग के मध्य में निरन्तर निवास करने से यक्षमा रोग नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

अथ षड्जन्यूषः

द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतोऽष्टुगुणं ललम् । पादस्थं संस्कृतं चाऽऽस्ये षड्जो यूष उच्यते ॥

षड्जन्यूष—पहले लिखी हुई पिष्पली आदि मिलित द्रव (पीपरि, यव, कुलधी, सौंठ, अनार और औवला) एक भाग, मांस दो भाग अर्थात् सब के दुगुना और जल दोनों के अंगुना देकर पाक कर चतुर्थीश शैव रहने पर उत्तार-छान कर घृत में पका लेने से 'षड्जन्यूष' बनता है ॥ १६ ॥

धार्म्यकं पिप्पलीविशदशमुखोजलं पिवेत् । पार्श्वशूलजवरथासयीनसादिनिवृत्ये ॥ १ ॥

धनियां, पीपरि, सौंठि और दशमूल का विधिपूर्वक काथ पका कर सेवन करने से पार्श्वशूल, जवर, शास और पीनस आदि यक्षमा के उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दशमूलचलालास्तापुष्करसुव्वरात्माग्राहैः क्षयितम् ।

पैथं पार्श्वसिंहरोहक छतकासादिकाण्तये सलिलम् ॥ २ ॥

दशमूलादि काथ—दशमूल (शालपण्डित), वरियारा, रासन, पुहकर मूल, देवदारु, सौंठि, इन द्रव्यों का विधिपूर्वक काथ बनाकर पीने से पार्श्व, स्कन्ध और सिर की पीड़ा, क्षत तथा कास आदि की शान्ति होती है ॥ २ ॥

कुभावद्यागबला चातारिवीजन्मितं च पथसा ।

पङ्क मधुषुष्वतयुक्तं ससिंतं यथमादिकापहरम् ॥ ३ ॥

अर्जुन की छाल, नागबला (ककड़ी) और एरण्ड के बीज का चूर्ण करके मात्रा से दूध में पाक करके मधु, घृत तथा शब्दकर का प्रक्षेप देकर सेवन करने से यक्षमा और कास आदि नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

अश्वगन्धामृताभीरुदशमूलीबलावृष्टम् । पुष्कराऽतिबला न्निति क्षयं द्वीरसाद्यिनः ॥ २ ॥

असग्न्ध, गुरुचि, सतावरि, दशमूल के द्रव्य, वरियारा, अरुसा, पुष्करमूल, गंगेन, इन सब द्रव्यों को समान लेकर काथ वी विधि से काथ कर पीने से तथा दूध और मांसरस का पथ्य लेने से क्षय रोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

अथ तालीसाद्यं चूर्णम्

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली तुग्गा । यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वयोले चार्धभागिके ॥ १ ॥

पिप्पलयगृगुणा चात्र प्रदेया सितशकरा ।

कासशासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् । पाण्डुहृदग्रहणीदोषपलीहशोषउवरापहम् ॥ २ ॥

तालीसपत्र चूर्ण—तालीसपत्र आदि ५ द्रव्य उत्तरोत्तर १-१ भाग अधिक लेकर अर्थात् तालीसपत्र एक भाग, मरिच दो भाग, सौंठि तीन भाग, पीपरि चार भाग और वंशलोचन पाँच भाग, और दालचीनी, इलायची के दाने जाथा २ भाग लेकर उत्तम चूर्ण बनावे और इसमें पीपरि जितना पड़ा है उसके अठगुणा मिश्री का चूर्ण अर्थात् ३२ भाग मिश्री का चूर्ण भिलाकर मात्रा से सेवन करने से कास, शास, अरुचि ये नष्ट होते हैं, अग्नि दीप होती है तथा पाण्डु, हृद्रोग, ग्रहणी का दोष, प्लीहा, शोष और ज्वररोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

सितोपलाद्यं चूर्णम्—

सितोपला घोटश स्याददैष्टै स्याद्वृंशरोचना ।

पिप्पली स्यादचतुर्कर्षा पुला स्याद्व द्विकार्चिकी ॥ १ ॥

एककर्षस्वचः कार्यश्चूर्णवेत्सर्वमेकतः । सितोपलादिकं चूर्णं मधुसपियुतं लिहेत् ॥ २ ॥

कासशासच्यहरं हस्तपादाङ्गाहितु ।

मन्दादिनं सुसज्जिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम् । उद्धरमूर्धगतं रक्तपित्तमाशु व्यपोहति ॥ ३ ॥

सितोपलादिचूर्ण—मिश्री का चूर्ण १६ तो०, वंशलोचन ८ तो०, पीपरि ४ तो०, छोटी इलायची के दाने २ तो०, दालचीनी १ तो० सबों का उत्तम चूर्ण कर एक में भिला लेवे । यह (सितोपलादि चूर्ण) है, इसके मधु और घृत के अनुपान से सेवन करने से कास, शास, क्षय, हाथ-पैर और अङ्गों का दाह, मन्दादिन और जिह्वा की शूलशता नष्ट होती है और पार्श्वशूल-अरुचि-ज्वर तथा उद्धरग रक्तपित्त भी शीघ्र नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

लवज्ञादिचूर्णम्—लवज्ञाक्षोलमुक्तीरचन्दनं नतं सलीलोत्पलकृष्णजीरकम् ।

एषा सकृष्णाऽग्नेभृङ्गकेसं कणा सविश्वा नलदं सहाग्नुना ॥ १ ॥

कर्पूरजातीफलवृशोचनं सिताध्वंभार्गं समसूचमचूर्णितम् ।

मंरोचनं तर्पणमधिदीपनं खलप्रदं वृद्यतमं त्रिदोषपुत्र ॥ २ ॥

उरोविवन्धं तमकं गलग्रहं सकासहितमाहृत्यचमपीनसम् ।

ग्रहण्यतीसारमयासुजः स्वयं प्रमेहगृहत्यांश्च निहन्ति सत्वरम् ॥ ३ ॥

लवज्ञादि चूर्ण—लवंग, कंकोल (शीतलचीनी), खस, लालचन्दन, तगर, नीलोफर, कृष्णजीरक (स्याह जीरा), इलायची के दाने, पीपरि, अगर, दालचीनी, नागकेसर, पीपरि, सौंठि, खस, सुगन्धबाला, कपेरू, जायफर, वंशलोचन इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर लक्षण चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके आधा भाग शक्तकर भिला कर मात्रा से सेवन करने से रुचिकारक, तृप्ति करने वाला, अग्निदीपक, बलकारक, अत्यन्त वीर्यवर्धक तथा त्रिदोषनाशक होता है और उरोग्रह, तमक शास, गलग्रह, कास, हिक्का, अरुचि, यक्षमा, पीनस, ग्रहणी, अतीसार, रक्तक्षय, प्रमेह और गुरम रोग की शीघ्र नष्ट करता है । इसका नाम लवज्ञादि चूर्ण है ॥ १-३ ॥

कर्पूराद्यं चूर्णं हृदयदाहे—

कर्पूरचोचक्क्षोलजातीफलदलाः समाः । लवज्ञामासीमरिचकृष्णाशुण्डो विवरिताः ॥ १ ॥

चूर्णं वितासं ग्राह्यं सद्वाहचयकासिति ।

चैस्वयंपीनसशास्त्रद्विक्षिणादिमयापहम् । प्रयुक्तं चालपानवैर्वज्ञद्वेषिणां हित्रम् ॥ २ ॥

कर्पूरादि चूर्ण—कर्पूर, दालचीनी, कंकोल, जायफर, तेजपात प्रत्येक समान अर्थात् एक २ भाग, लवंग वी भाग, जालमांसी तीन भाग, मरिच चार भाग, पीपरि पाँच भाग, सौंठि छव भाग लेकर सब का चूर्ण कर जितना हो सब के बराबर भिला कर मात्रा से सेवन करने से दाह, क्षय, कास, स्वरविकार, पीनस, श्वास, वमन और कण्ठ के रोग नष्ट होते हैं । तथा जिन्हें औषध से वृणा मालम होती हो उन ल्लोगों को अग्र अथवा पान के साथ सेवन करने से भी लाभदायक है । इसे अच्छ वा जल के साथ में सेवन करने से भी लाभ होता है अन्य ओषधियाँ अन्न-जल के साथ २ नहीं सेवित होती हैं ॥ १-२ ॥

अथैलादिचूर्णम्

एला पञ्चं नागपुष्पं लवङ्गं भागस्वेषां हौ च स्वजूरकस्य ।

द्राश्चायष्टीशकरपिप्पलीनो चात्यारम्भत्वैव्रुक्तं स्वये इयात् ॥ १ ॥

एलादिचूर्ण—इलायची के दाने, तेजपात, नागकेसर, लवंग, प्रत्येक एक-एक भाग, खंजूर दो भाग, द्राक्षा, जेठी मधु, शकर और पीपरि प्रत्येक चार-चार भाग लेकर उत्तम रीति से चूर्ण कर मधु के अनुपान से क्षय रोग में सेवन करने से क्षय रोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथाश्वगन्धादिचूर्णम्

अश्वगन्धा दशायलं तदधं नागरादित्यत् । तदधंकणया युक्तं मरिचं च तदधंकम् ॥ १ ॥

चातुर्भाते वांशं च भाङ्गी तालीसपत्रकम् । कचोराजाजिकेवर्यमासीक्षोलमुस्तकम् ॥ २ ॥

दाशनाकटुकोहिष्ठौ जीवन्ती कुष्ठकं तथा । पृथक् कर्वमितं चूर्णं चूर्णेन समसाकंरा ॥ ३ ॥

प्रातःकाले विद्वं चूर्णं जलेनोष्मेन सेवयेत् । वातस्ये पित्तसोषे वज्रागोद्युतसंयुतम् ॥ ४ ॥

श्लेष्मस्ये छौद्रवुतं जवनीतेन मेहजित् । गिरोभ्रसे च वित्ताते गोस्तीरेण समाशुतम् ॥ ५ ॥

जलशीणे च देहे च विशेषवलवर्धनम् ।

मेदोहरं च मन्दाभिकुञ्जिश्लोदरापहम् । अनुपानविशेषेण सर्वरोगहरं परम् ॥ ६ ॥

अश्वगन्धादि चूर्ण—असगन्ध ४० तो०, उसका आधा (२० तो०) सौठि, उसका आधा (१० तो०) पीपरि और उसका आधा (५ तो०) मरिच, और इलायची, तेजपात, दालचीनी और नागकेसर, लवंग; बम्बेठी, तालीसपत्र, कचूर, जोरा, महानीम (बकाइन), जटामांसी, कङ्गोल (कजावचीनी), नागरमोथा, रासन, कुटीकी, जीवनी और कूट सबको पृथक्-पृथक् (१-२ तो०) लेकर उत्तम रीति से चूर्ण कर जितना हो उस के बराबर शकर मिलाकर प्रातःकाल मात्रानुसार वातिक क्षय रोग में उड़न जल से, पित्तज क्षयरोग में अजा अथवा गौ के घृत से, कफज क्षयरोग में मधु से और प्रेमैह रोग में नवनीत (मखबन) से सेवन करने से ये रोग नष्ट होते हैं । और शिरोभ्रम तथा पित्तरोग में गोदुग्ध से सेवन करे तो शिरोभ्रम तथा पित्तरोग नष्ट होते हैं तथा यह चूर्ण क्षतक्षीण वाले को विशेष बल देता है, मेद को हरण करता है, मन्दाद्यि, कुञ्जिश्लू, उदररोग आदि को नष्ट करता है और अनुपान विशेष से सब रोगों का हरण करता है ॥ १-६ ॥

अथ द्राक्षादिचूर्णम्

द्राक्षालाजसितोपलं समयुक्त खर्जरयोपीतुगा हीवेशामलकाबद्वचननतं कङ्गोलजातीफलम् । आतुर्जातकणासधान्यकमिदंचूर्णसमांशकर्माप्रातर्भितमामध्येव विधिना पित्तं सदाहं जयेत् ॥ मूर्च्छाकुर्दिमरोचकं च शमयेकायस्थ कान्तिप्रद पाण्डुकामलरक्षपित्तमुदरं दाहउवरारोचकम् ॥ यच्चमाणं कथितप्रमेहहरणं तथोनिदोषायहं दक्षाशोमदवृद्धिविद्विहरण्द्राक्षादिचूर्णोत्तमम् ॥ २ ॥

द्राक्षादि चूर्ण—द्राक्षा, धान का लावा, मिश्री, नीलोफर, जेठीमधु, खर्जूर, काली अनन्तमूल, चंशलीचन, दाऊवेर (सुगन्धवाला), आँवला, नागरमोथा, चन्दन, तगर, कङ्गोल, जायफर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नांगकेसर, पीपरि और धनिया सब द्रव्यों को समान अर्थात् एक-एक भाग लेकर उत्तम रीति से चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके बराबर शकर मिलाकर मात्रा से प्रातःकाल विधिपूर्वक सेवन करने से दाहसहित पित्त को नष्ट करता है । मूर्च्छा, बमन, अरुचि, इनको शान्त करता है । शरीर की कानिंत को बढ़ाता है । तथा पाण्डु, कामला, रक्तपित्त, उदररोग, दाह, ज्वर, अरुचि, यक्षमा, रुधिर प्रेमैह, इन रोगों को नष्ट करता है । योनिशोष को नष्ट करता है । रक्तार्श, मट, वृद्धिरोग और विद्रविधि रोग को यह द्राक्षादि चूर्ण नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

यवगोदूमचूर्णं वा शीरसिद्धं धृतपलुतम् । शक्तुन्वा सर्पिषा हौद्रसिताक्षान्द्यशान्तये ॥ ३ ॥

अन्य क्षयनाशक योग—यव अथवा गेहूं के चूर्ण (आटा) दूध में पकाकर घृत मिलाकर अथवा यव आदि के सक्तुक को घृत, मधु और शकर मिलाकर क्षयरोग की शान्ति के लिये देना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्दशाङ्गलोहम्

रासनाकर्पूरताकीसं भेकपर्णी शिलाजतु । श्रिकटु विफला मुस्ता विडङ्गदहनाः समाः ॥ ४ ॥

चतुर्दशायशो भागास्तचूर्णं मधुसर्पिषा ।

लीढं कासं ज्वरं श्वासं राजथामाणमेव च । बलवणीपुष्टीनां वर्धनं दोषनाशनम् ॥ ५ ॥

चतुर्दशाङ्ग लौह—रासन, कर्पूर, तालीसपत्र, मण्डूकपर्णी, शिलाजीत, सौठि, पीपरि, मरिच, आँवला, हर्दा, बहेरा, नागरमोथा, वायभिरंग, चित्त की जड़ इन चौदोहों द्रव्यों को समान (१-१ भाग) लेकर इलक्षण चूर्ण कर सबके बराबर अर्थात् चौदह भाग लौह भस्म लेकर एकत्र मर्दन कर मधु और घृत के अनुपान से उचित मात्रा से सेवन करने से कास, ज्वर, श्वास और राजयक्षमा के दोष को नष्ट करता है तथा बल-वर्ण, अद्यि और पुष्टि को बढ़ाता है ॥ १-२ ॥

अथ बृहत्त्रयवायसम्

श्रिकटुष्ट्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगं चैः । नवभागोन्मित्तैरैतैः समं तीर्थं घृतं भवेत् ॥ १ ॥ मंचूर्णाऽल्लोदयेकौद्रेनित्यं यः सेवते न रः ।

कासं श्वासं व्ययं मेहं पाण्डुरोगं भगद्वरम् । उत्तरं मन्दानलं घोथं संमोहं ग्रहणीं जयेत् ॥ २ ॥

बृहत् नवायस—सौठि, पीपरि, मरिच, आँवला, हर्दा, बहेरा, इलायची, जायफर और लवंग इन नवों को समान अर्थात् एक-एक भाग लेकर सबके बराबर अर्थात् ९ भाग तीक्ष्ण नामक हौह लेकर पहले उपर्युक्त ९ द्रव्यों का इलक्षण चूर्ण कर लौह भस्म मिला मर्दन कर मात्रा से मधु के साथ नित्य सेवन करे तो कास, श्वास, क्षय, मेह, पाण्डुरोग, भगद्वर, ज्वर, मन्दाभ्रम, शोथ, मोह और ग्रहणी को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ शिलाजतुयोगः

फलघिककाथविशुद्धमादौ शीघ्रं गुदूच्या शशमूलसिद्धम् ।

स्थिरादिकाकोलियुगादिविद्वं शिलाजतु श्यारक्षथिषु ग्रहशतम् ॥ १ ॥

शिलाजतु योग—प्रथम शिलाजीत को शुद्ध कर त्रिफला के काथ, गुरुचि के स्वरस, दशमूल के काथ, स्थिरादि लघु पञ्चमूल के काथ, तथा काकोल्यादि गण (काकोली-क्षीरकाकोली-जीवक-ऋषभक-सुदगरणी-माषपर्णी-मेदा-महामेदा-गिलोय (गुरुचि), काकडासिंगी, वंशलोचन, पदुकाठ, पुण्डरिया-ऋद्धि-वृद्धि, किसमिस, जीवन्ती, जेठीमधु) के स्वरस में पृथक् २ भावना देकर शिलाजीत का सेवन कराना क्षय के रोगियों के लिये हितकर है ॥ १ ॥

शाहास्त्रजूरसर्विभिः पित्तपश्या च समन्वितम् । वृजीद्रं उवक्तासद्वन्द्वं स्वर्यं चैत्तप्रयोजयेत् ॥

इसी उपर्युक्त शिलाजीत में द्राक्षा, खर्जूर, घृत, पीपरि का चूर्ण और मधु मिलाकर सेवन करने से ज्वर तथा कास को नष्ट करता है और स्वर को मधुर बनाता है ॥ २ ॥

मधुसाप्तविद्वङ्गाशमजतुलोहघृताभयम् । हन्ति यथमाणमध्युद्धं सेव्यमानं हिताशिना ॥ ३ ॥

मधु, स्वर्णमास्त्रिक भस्म, बांधीरंग, शुद्ध शिलाजीत, लौहभस्म, घृत (गोघृत वा अजा घृत) और हरीतकी चूर्ण को समान ले एकत्र मिलाकर सेवन करने से और हितकारक पदार्थ (पथ्य) भोजन करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ भी राजयक्षमा रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

शिलाजतुमधुयोजताप्यलोहर्जासि च । शीरयुग्मेहिनश्वाऽऽशु लयः च्यमध्यपन्थायात् ॥ ४ ॥

शुद्ध शिलाजीत, मधु, सौठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण, स्वर्णमास्त्रिक भस्म, और लौह भस्म समान लेकर एकत्र मिला कर सेवन करने से और दूध ही का पथ्य लेने से क्षय रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

कुण्डाशास्त्रितालेहः लये वा शौद्रतैलवान् । मधुसर्पियुतो शाऽश्वगन्धाकृष्णासितोऽन्वः ॥ ५ ॥

पीपरि चूर्ण, द्राक्षा और शक्कर अथवा इसमें मधु और तिल का तेल मिलाकर सेवन करने से अथवा असगन्ध और पीपरि के चूर्ण, शक्कर मधु और घृत मिला कर सेवन करने से क्षय नष्ट होता है ॥ ५ ॥

कृष्णाश्रास्त्रितालेहः लये वा शौद्रतैलवान् । लाञ्छाकर्षद्वयं पीश्वा जयेद्वक्षद्वयं तथा ॥ ६ ॥

श्वेत कृष्णण्ड (पेठा वा भुतुआ) के रस में (२ तो०) प्रमाण से लाख (लाञ्छा) को पीस कर पीने से रक्तक्षय नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शतपुष्पा समधुकं कुष्ठं तगरचन्दनम् । आळेपनं स्यासधुतं शिरःपाश्वर्णसशुलगुत् ॥ ७ ॥

सौफ, जेठी मधु, कूठ, तगर और लालचन्दन पीसकर इसमें धूत मिला कर लेप करने से यक्षमा के कारण उत्पन्न पार्श्व और अंस (वन्धा) देश की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ७ ॥

अश्वत्थबलकलं चैव त्रिकटु लोहकटुकम् । गुडेन सह द्वातश्यं क्षयरोगविनाशनम् ॥ ८ ॥

पीपर के वृक्ष की छाल, सौंठि-पीपरि और मरिच इनका चूर्ण मण्डूर भस्म और पुराना गुड़ समान (१-१ भाग) सबको लेकर एकत्र कर मात्रा से सेवन करने से क्षय रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

अथ दशमूलघृतादि—द्विपञ्चमूलीजलसिद्धमाऊयं बासाधृतं बाष्यथं पट्पलं च ।

पैथं हि यच्छुगलग्नाद्यतोऽथ प्रयुक्ते नागबलाभिधानम् ॥ ९ ॥

दशमूलघृतादि—दशमूल के काथ में विधिपूर्वक सिद्ध किया धृत, अर्थात् दशमूलादि धृत, बासाधृत अथवा पट्पल धृत को बकरी अथवा गाय के दूध के साथ पीने से अथवा नागबला को गौ अथवा बकरी के दूध के साथ पीने से क्षय रोग में लाभ होता है ॥ ९ ॥

अथ चिकित्साकलिकातश्चयवनप्राश्यावलेहः—

श्रीनीतामलकीफलशिकबलाच्छुक्षाविदारीमटी—जीवन्तीदशमूलचन्दनघनैर्नलित्पलैलावृष्टैः।
भृद्धीकाष्ठकवर्गपौर्वकरयुतैःसार्धं पृथक्यपालिकै—रणोनानिशतानिपञ्च विपचेद्वात्रीफलानामपः॥

उद्धर्याऽमलकानि तैलधृतयोः षड्मिश्च षड्भिः पलैः-

भृद्धान्यर्धतुलां निधाय विधिवन्मत्त्वयिद्विकाशः पवेत् ।

शीते षष्ठमूलः पलानि कुडवे वाँश्याश्वतुतोत्तोते

सुष्ठिमर्गाधिकारपलद्वयमयं प्राश्यः स्मृतश्चयावनः ॥ ३ ॥

न शोषः साफल्यं ब्रजति वपुषि शीतमनसो

न मूर्ढानो छुदित्तदपि च न च श्वासकसनम् ।

न चालादमीविद्वः क्वचिदपि च न इथापदभयं

प्रयोगादेत्तमान्मनसिजिधियो विश्रिति मनः ॥ ४ ॥

चिकित्साकलिका से च्यवनप्राश्यावलेह—काकडासिंगो, मुंह आमला, हर्दी, बहेरा, आँवला, बरियारा, गुरुचि, विदारीकन्द, कच्चूर, जीवन्ती, शालिपर्णी, युद्धिनपर्णी, छोटी केरी, गोखरू, बेल, गम्भार, गनियार, पादर, सोनापाठा, लाल चन्दन, नागरमोथा, नीलोफर, इलायची, अरुसा, मुनका, जीवक, अष्टभक, मैदा, महामेदा, कांकोली, क्षीरकाकोली, अट्टि, बुद्धि, पुइकरमूल इन प्रत्येक द्रव्योंको पृथक् पृथक् ४-४ तो० लेवे, तथा ४९२ आँवला लेकर पोटली में सबको एकत्र कर उसमें ६४ शराव अर्थात् ५१२ पल (२०४८ तो०) जल डाल कर काथ की विधि से पाक करे जब चतुर्थीश (१६ शराव अर्थात् १२८ पल वा ५१२ तो०) शेष रहे तो उतार कर पोटली के आँवले को अलग कर काथ छानकर रख लेवे और आँवलों को भली भाँति मसल कर खायेरे कपड़े में उसके गूदे को छान कर उठली और सिराओं को पृथक् कर दे। पश्चात् आँवले के छाने हुए गूदे को तिल का तेल २४ तो० और गाय का धूत ४ तो० में भली भाँति भर्जन कर लेवे अर्थात् तब तक भने जब तक की उसमें लाली आ जावे। पश्चात् उसमें अवलेह पाक की विधि के प्रमाण के अनुसार २०० तो० मिश्री का चूर्ण और वही उपर्कुच बचा हुआ काथ १६ शराव देकर पाक करे जब पाक सिद्ध हो कर लेह के समान हो जावे तब उतार लेवे और शीतल होने पर मधु ६ पल (२४ तो०), वंशलोचन एक कुडव (१६ तो०), इलायची, दालचीनी, तेजपात और नागकेसर का चूर्ण एक-एक मुष्ठि (चार-चार तो०), पीपरि का चूर्ण दो पल (८ तो०) मिला कर रख लेवे। इसको 'च्यवनप्राश्य' कहते हैं। इसके सेवन से शोषरोग नहीं होता है,

क्षीण मन रोगी को मुच्छी नहीं होती है, न वमन होता है, न श्वास होता है, न कास होता है, न अलक्ष्मी होती है अर्थात् सौभाग्यदायक है, आयु में विवन्नस्वरूप मृत्यु तथा रोग का भय नहीं होता है तथा इसके प्रयोग से मनुष्य में कामदेव की उत्पत्ति होती है ॥ १-४ ॥

अथ खण्डपित्पत्यवलेहः—कुण्डाप्रस्थं पचेच्चाऽङ्गकपथस्मि धृतस्याञ्जिलिखण्डपात्रं
दश्वा लेहोऽयमस्मिम्युक्तुकुमुसवतुजातिविश्वाषणादीन् ।

ग्रन्थश्रीखण्डयद्वीमधुमसूजनजलं जातिकोशं च कर्व

प्रथंकं चूर्णयित्वा मधुकुडवयुतः स्याद्वच कृष्णाधलेहः ॥ १ ॥

खण्डपित्पली अवलेह—पीपरि का चूर्ण एक प्रस्थ (एक सेर), गाय का दूध एक आढक (चार सेर) लेकर अवलेह वी विधि से पाक करे, पाक प्रस्तुत हो जाने पर उतार कर उसे एक कुडव (१६ तो०) धृत (गोधृत) के साथ विधिपूर्वक भून लेवे, पश्चात् शक्कर (खाड़) एक आढक (चार सेर) मिला देवे तथा लंबंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, नागकेसर, सौंठि, मरिच, पिपरामूल, चन्दन, जेठी मधु, अतीस, सुगन्धबाला, जावित्री ये प्रत्येक एक-एक कर्व (१-१ तो०) लेकर उत्तम चूर्ण बना मिला देवे तथा शीतल होने पर मधु एक कुडव (१६ तो०) मिला कर रख लेवे। यह 'पिपली अवलेह' कहलाता है ॥ १ ॥

आदौ मन्दापिनिकाश्यं हरति स च शिशुस्त्रीजरन्मानुषेषु

प्रायो वृद्ध्यः द्यायो विपुलबलकरो दीपनः पाचनश्च ।

कासरंवासांश्च मेहज्यरुगतितुषाकामलापाण्डुकण्ठः

स्त्रीहार्जीवंजवरांश्चनिलकर्षकृतिं रक्तपित्तं च हन्त्यात् ॥ २ ॥

इसको सेवन करने से आदि में यह मन्दापिनि और दुर्बलता को नष्ट करता है और शिशु, खी, वृद्ध इनके लिये वृद्ध्य है, क्षयरोग के प्रथम अवस्था में सेवन से अत्यन्त बलदायक है, दीपन तथा पाचन है, कास, श्वास, प्रमेह, क्षय, अत्यन्त वढ़ी हुई रुपा, कामला, पाण्डु, कण्डुरोग, ल्लीहा, जीर्णज्वर, वात तथा कफ के विकार और रक्तपित्त रोग को नष्ट करता है ॥ २ ॥

अथ वासावलेहः—

तुलामाद्य वासायाः पचेद्वृगुणे जले । तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ १ ॥

चूर्णानामभयानां तु स्पष्टाप्लशतं तथा । द्वे पले पिपलीचूर्णातिसद्वे शीते च माचिकात् ॥ २ ॥

कुडवं पलमानं तु चातुर्जातं सुचूर्णितम् ।

लिप्वाऽवलोहितं खादेदक्षपित्पत्यवलेही । कासरंवासगृहीतश्च यचमणा च विशेषतः ॥ ३ ॥

वासावलेह—वासा (अहसा) का ढाल, पत्ता आदि एक तुला (सौ पल वा ४०० तो०) लाकर अठगुने जल में काथ की विधि से पाक करे जब चतुर्थीश (दो सौ पल) शेष रहे तब उतार-छान कर उसमें हर्दी का चूर्ण एक आढक (चार सेर), शक्कर सौ पल (४०० तो०) मिलाकर अवलेह की विधि से पाक करे, पाक सिद्ध हो जाने पर दो पल (८ तो०) पीपरि का चूर्ण मिलावे तथा शीतल हो जाने पर मधु एक कुडव (१६ तो०) मिलावे और एक पल (४ तो०) चातुर्जाति (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर) का मिलित चूर्ण इसमें डाल कर मिला कर रख लेवे। यह 'वासावलेह' रक्तपित्त, क्षत और क्षय का रोगी खावे, इससे वे सब रोग नष्ट होते हैं और विशेष कर के यह कास-श्वास और यक्षमा से पीड़ित रोगियों के लिये लाभदायक है ॥ १-३ ॥

शार्ङ्गधरादगस्त्यवलेहः—

शरीकतशतं भद्रं यवानशमाढकं तथा । पलानां दशमूलस्य विश्वितं च नियोजयेत् ॥ ३ ॥

चित्रकः पिष्पलीभूलमपामार्गः सदी तथा । कविकच्छुः शङ्खपुष्पी भाद्री च गजपिष्पली॥२॥
बाला पुष्करमूलं च पृथग्दिपलमात्रया । पचेत्पञ्चादके नीरे यस्तः स्थनैः शृतं नयेत् ॥ ३ ॥
तथाभयाशातं द्वयात्काये तस्मिन्वच्चक्षणः । सपिस्तैङ्गपृथिलिं चिपेद् गुडतुलं तथा ॥ ४ ॥
पवर्वा लेहत्वमानीय सिद्धशीति पृथक्पृथक् । शौद्रं च पिष्पलीचूर्णं दद्याकुदृष्टमात्रया ॥५॥
हरीतकीदूर्घयं स्वादेसेन लेहेन नित्यशः । तथं कासं उवर्णं आसां हिकाऽशोहचिपीनसान् ॥ ६ ॥
प्रहृणीं नाशयत्येव बल्लीपलितमाशनः । बल्लीपर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनम् ॥ ७ ॥
विहितोऽगस्त्यमुनिना सर्वेषाग्रणाशनः ।

शार्ङ्गधर से अगस्त्यवलेह—उत्तम हर्दा एक सौ तथा यव एक आढक (चार सेर), दशमूल की मिलित ओवधि २० पल (८० तो०), चित्त की जड़, पिपरामूल, अपामार्ग, कन्तुर, केवाच की जड़, शङ्खपुष्पी, बमनेठी, गजपीपरि, बरियारा, पुष्करमूल इन सब द्रव्यों को पृथक् २ दो-दो पल (८०-८० तो०) लेकर द्रवदैगुण्यात् दस आढक (४० सेर) जल में डालकर काथ की विधि से पाक करे (हर्दा और यव को पोटली में बाँध कर पाक करना चाहिये) चतुर्थीश २। आढक (१० सेर) शेष रहने पर उतार कर शीतल कर हर्दा तथा यव निकाल लेवे और काथ छान लेवे । पश्चात् उलिखित हर्दों की तिल के तेल चार पल वो गोघृत चार पल में भली भाँति भून लेवे और पुराना गुड़ एक तुला (१०० पल) लेकर उस काथ में घोल लेवे तथा उसमें यव और भूने हुए हर्दों की ढाल कर अवलेह—पाक की विधि से पाक करे । पाक सिद्ध हो जाने पर शीतल कर मधु एक कुडव (मधु के लिये १२ तो०), पीपरि का चूर्ण १ कुडव (१६ तो०) मिलाकर रख देवे । इसमें से दो अथवा गुडादि की मात्रा से एक ही हरड़ दो तोले लेह के साथ नित्य सेवन करने से क्षय, कास, ऊर, श्वास, हिक्का, अर्द्ध, अरुचि, पीनस और ग्रहणी का नाश होता है, और बली—पलित रोग का नाशक होता है, पुरुषों के बल और शरीर के वर्ण को बढ़ाता है एवं रसायन है और सब रोगों को नष्ट करता है । इसे ‘अगस्त्यमुनि’ ने बनाया था । इससे इसका नाम ‘अगस्त्य हरीतकी’ हुआ ॥ १-७३ ॥

नवनीतयोगः—

शक्तरामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन्द्ययी । ज्ञाराजी लभते पुष्टिमतुल्ये चाऽऽज्ञयमाद्यिके ॥ ८ ॥

नवनीत योग—शक्तकर और मधु मिलाकर नवनीत (मक्खन) के चाटने से और दूध का आदाहर करने से क्षय रोग बाला बल प्राप्त करता है (पुष्ट होता है) अथवा घृत और मधु न्यूनाधिक प्रमाण में मिला कर चाटने से और दूध का आदाहर करने से क्षय में लाभ करता है । यह परीक्षित है ॥ ८ ॥

अथ शिवगुटिका

श्रीन्दारान्प्रथमं-शिलाजीतु जले भाद्र्यं भवेत्त्रैकले
निःकाये दशमूलजेऽथ तदनु चिक्षोऽन्नवाया रसे ।
बाट्यालकथने पटोलसलिले यष्टीकषाये पुनः
गोमुत्रेऽथ पश्यस्थापि च गवामेषां कषाये ततः ॥ १ ॥
द्राघाभीरविदारिकाद्यपृथक्पर्णीस्थिरापौदकैः—
पाठाकौटजकर्दास्यकटुकारास्नाम्बुदा लम्बुष्टे ।
दन्तीचित्रकवचधयवारणकणाधीराष्ट्रवर्णीष्टे—
रङ्गोणे चरणस्थिते पलमित्तैरेभिः पृथक्भाषयेत् ॥ २ ॥

धात्रीमेषविद्वाणिकात्रिकटुकैरेभिः पृथक्पञ्चकै—
द्रव्येष्व द्विपलोनिमतैरपि पलं चूर्णं विदारीभवत् ।
तालीसाराकुडवं चतुर्थपलमिह प्रविष्यते सपिच्च—
स्तैलस्य द्विपलं पलाक्षकमथ चौद्राद्विषयोजयेत् ॥ ३ ॥
तुलयं पलैः वोडशमिः सितायास्वक्चीरिकापत्रकेसरैष्व ।
विश्वांशकैस्वक्त्रुटिसंप्रयुक्तैरित्यज्ञमात्रा गुटिकाः प्रकद्यप्याः ॥ ४ ॥
तासामेकतमां प्रयोज्य विधिवप्रातः पुमान्मोजानात्
प्रायका मुद्रदलाघुजाङ्गलरसं शीतं शृतं वा जलम् ।
मावीकं मदिरामगुरुवशनभुक्पीत्वा पयो वा गवां
प्राप्नोत्यझमनङ्गवस्तुभयतो संपश्चमानन्दकृत् ॥ ५ ॥
शोफप्रनिधिविमन्थवेपथुवमीपाण्डवामयशलीपद—
षलीहार्षःप्रदरप्रमेहपिटिकामेहाशमरीशकराः ।
हृदोगादुद्वृद्विविधिविकृष्णोन्न्यामयान् सानिला
नूस्तम्भभगमन्दरं उवरहस्तूर्नीं प्रतूर्नीं तुषाम् ॥ ६ ॥
वातास्थुकप्रबलं प्रवद्वस्तुरं कुष्टं किलासं कृगीन्
कासधामसुरःसत्त्वायमसूक्षिपत्तं सपानात्ययम् ।
उत्तमादं मदमण्यपस्मृतिमतिस्थौर्यं कृषात्वं ततोः
सालस्यं च हलीमकं च ज्ञामयेन्मूराणि कृद्वृणि च ॥ ७ ॥
भवति जरया सर्वशेतैरकालजराकुत्तैरुत्त-
मलिकुलाकरैरेभिः शिरश शिरोरुहैः ।
प्रसरति बलं धवस्तात्तद्वं बपुश्च समुद्धान्
प्रभवति शतं च्छीणां गन्तुं जनो जनवस्त्रभः ॥ ८ ॥
स्तिमितमतिरथ्यज्ञानान्धः सदस्यपद्मः पुमान्
सकृदपि यथा ज्ञानोपेतः श्रुतिस्मृतिमान् भवेत् ।
वज्रति च यथा युक्तो योगी शिवस्य समीपतां
शिवगुटिका कस्तामेतों करोति न मानुषः ॥ ९ ॥

शिवगुटिका—प्रथम शुद्ध शिलाजीत को तीन बार त्रिफल के जल से भावित करे, फिर दशमूल के काथ से भावित करे फिर गुरुचि के रस, फिर बरियारा का काथ, पटोलपत्र का स्वरस, तेठी मधु का काथ, गोमूत्र और गो दुर्घ से कम से भावित करे, फिर द्राघा—शतावरि—विदारीकन्द—बाराहीकन्द—शालिपांगी—पृष्ठिपर्णी—पुरुषकरमूल—पुरुहन पाढी—इन्द्रजौ—काकडासिंगी—कुटकी—रासन—नागरमोथा—लज्जावन्तो—दन्ती—चित्त की जड़—चाव—गंजीपरि—मूसली—जीवक—ऋषभक—मैदा—महामेदा—काकोली—क्षीरकाकोली—ऋद्धि—वृद्धि—इन सब द्रव्यों को पृथक्—पृथक् एक—एक लेकर एक द्वोण (१६ सेर) जल में काथ की विधि से पाक कर चतुर्थीश (४ सेर) शेष रहने पर इसी काथ में उपर्युक्त भावित शिलाजीत की भावना देवे । पश्चात्—आँवला, मेडासिंगी, सोंठि, पीपरि, मरिच, इन पांचों में से प्रत्येक द्रव्य पृथक् २ दो-दो पल लेकर चूर्ण कर ले और विदारीकन्द का चूर्ण—एक पल, तालीस पत्र का चूर्ण एक कुडव (१६ तो०), गोघृत चार पल, तिल का तेल दो पल, मधु आठ पल, लेकर एकत्र शिलाजीत के साथ मर्दन करले और उस में शक्तकर १६ पल, वंशलोचन, तेजपात, नागकेसर, इलायची का दाना प्रत्येक क

चूर्ण एक-एक विल्व (४-४ तो०) मिला कर वटी बनाने की विधि से एक २ अक्ष (१ तो०) के प्रमाण की वटी बना कर प्रातः काल अथवा भोजन के पूर्व पुरुष सेवन करे और सूंग की दाल का जूस, अथवा जाङ्गल जीवों का मांसरस, अथवा औटा कर शीतल किया जल अथवा मधु वा मदिरा को पीवे आम (कच्चा) अथवा गुरु पदार्थ का सेवन न करे अथवा गौ का दूध पीवे तो मनुष्य का शरीर कामदेव के समान सुन्दर-बलिष्ठ एवं आनन्ददायक हो जावे और शोथ, यन्थि, मन्थर ऊर, कम्पन, वमन, पाण्डुरोग, श्लीपद, अर्श, प्रदर, प्रमेहपिटिका, प्रमेह, अझरी, शर्करा, हृद्रोग, अर्दुद, वृद्धि, विद्रधि, यकृत, योनिरोग, वातरोग, ऊस्तन्म, भगन्दर, ऊररोग, तूनी, प्रत्नी, तृष्णा, प्रबल वातरक्त, बढ़ा हुआ उदररोग, कुष्ठरोग, किलास, कुमि, शास, कास, ऊरःक्षत, क्षय, रक्तपित्त, पानास्थय, उन्माद, मद, अपस्मार, अतिस्थूलता, कृशता, आलस्य, हलीमक और मूत्रकृच्छ्र ये रोग नष्ट होते हैं और बृद्धता के कारण सिर के सम्पूर्ण केश दबेत हो गये हों तो इसके सेवन से भौंरे के समान कृष्ण हो जाते हैं, शरीर में बल बढ़ता है, रोग का भय नष्ट हो जाता है और सौ खियों को भोगते की शक्ति हो जाती है तथा बुद्धि की मनदत्ता, अज्ञान के कारण की अन्धता (मूर्खता), भली भाँति नहीं बोल सकने वाला भी इसके सेवन से ज्ञानवान और श्रुति-स्मृति का जानने वाला हो जाता है और इसके सेवन से ज्ञानी योगी हो सकता है शिव भगवान के समीप जा सकता है। ऐसी कल्याणदायिती शिवगुटिका को कौन मनुष्य सेवन करना नहीं चाहता अर्थात् सभी चाहता है ॥ १-९ ॥

अथ लघुशिवगुटिका

कौटुम्बिकलानिवृपटोलघननाग्रहैः । भावितानि दशाहीनि इसैद्वित्रिगुणानि च ॥ १ ॥
शिलाजतुपलान्वयै तावती वितशकरा । त्वक्लीरीपिपलीधात्रीकंटास्यान्पलोन्मितान् ॥ २ ॥
निदिष्ठकलमूलाभ्यो पलं युक्त्यात् त्रिजातकात् । मधुशिक्लसंयुक्तान्कुर्यादित्तसमान्दान् ॥ ३ ॥
क्षादिमाऽलपयः दीरशस्यूष्पसुरासवान् । तं भक्षयित्वाऽनुपिवेक्षिरसो हितभृच्युमुक् ॥ ४ ॥
पाण्डुकुष्ठउवरालीहतमकाशोभगन्दरम् । नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राण्म सूत्रस्थानविवर्धनात् ॥ ५ ॥
यथार्थ योजितं देन कान्तलोहं तथाऽन्धकम् । पलं पलं च मिलिते तदा स्थात् किमतः परम् ॥
तीव्रदुःखप्रदं पाण्डुं प्रमेहं सपरिग्रहम् । राजरोगं च व्याधीश्च जयेदिति किमद्भुतम् ॥ ६ ॥

लघुशिवगुटिका—कोरैया की छाल, विफला, नीम की छाल, पटोलपत्र, नागरमोथा और सौंठ इन ओषधियों के पृथक् २ दुगुने वा तिगुने काथ में शुद्ध शिलाजीत आठ-पल लेकर दस २ दिन तक भावित करे। शुद्ध शिलाजीत प्रत्येक द्रव्यों के सोलह वा चौबीस पल काथ में पृथक् २ दस २ दिन तक भिगोवे। पश्चात् शकर ८ पल, वंशलोचन, पीपरि, आँवला, काकडासिंगी, प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल, छोटी कटेरी का फल और उसकी जड़, दालचीनी, हलायची, तेजपात, नागकेसर, इनमें से प्रत्येक का चूर्ण एक-एक पल लेकर सबको एकत्र कर, त्रिफला का चूर्ण और मधु के साथ (अनुपान से) सेवन कर अक्ष प्रमाण की वटी बना ऊपर से अनार का स्वरस, खटाई का रस, पानी, दूध, मास का रस, मसुरादिकों का बूष, सुरा, आसेव आदि कोई एक पान करे, अन्न न भक्षण करे दूसरा हितकारक पथ्य भोजन करे तो पाण्डु, कुष्ठ, ऊर, प्लीहा, तमक श्वास, अर्श, भगन्दर और मूत्रकृच्छ्र जो मूत्रस्थान के विवर्ध के कारण का हुआ हो सब का नाश करता है। यदि इस योग में कान्त लौह भस्म १ पल तथा अन्धक भर्म एक पल मिला दिया जावे तब इसके गुणों को क्या कहना है अर्थात् अत्यधिक गुणकारी हो जाता है। तथा अत्यन्त दुःखदायक पाण्डुरोग, उपद्रवों संहित प्रमेह रोग और राजयक्षमारोग को तथा अन्यान्य व्याधियों को दूरण करता है ॥ १-७ ॥

अथ सूर्यप्रभागुटिका

दार्दी ल्योच्चिह्निचित्रकन्चापोताकरञ्जामृता-
देवाह्नातिविषा त्रिवृत्सकट्का कुस्तुशुरुः कारवी ।
हौ लारौ लवणश्रयं गजकणा चवर्यं तथा पुष्करं
तालीसं कणमूलपुष्करजटाभूनिष्वसज्ज्युतम् ॥ १ ॥
भाङ्गी पश्चकजीरकोशकुटजा दन्ती वचा भद्रकं
सर्वं कर्षसमांशकं सुमिषज्जा सूचमं च संचुर्जितम् ।
तद्वपञ्चपलं वर्णंगिरिजतु स्थापञ्चमुष्टिः पुरो
लोहस्य द्विपलं पलदृशमयो ताप्यस्य समिक्षितम् ॥ २ ॥
क्षिप्तवा पञ्च पलानि शुभ्रसिकता वांशीपलं याजित-
मेकैकं त्रिसुगान्धि वस्तु पलिकं हौदैधृतैलेहवय ।
एकीकृत्य समांशमेव गुटिका कार्या सुवर्णोन्मिता-
सा च ब्रह्मामुखाम्बुजप्रकटिता सूर्यप्रभा नामतः ॥ ३ ॥
छोरं कासमुरः चतं सतमकं पाण्डवामयं कामलां
गुरुमेव विद्रधिपाश्वर्यशूलमुदरं स्त्रीषु लयं च क्रिमीन् ।
कुष्ठाशोविषमउवरप्रहणिकामूत्रप्रहृं नाशयेद्-
भुक्त्यैको गुटिका प्रहृष्टमनसा योजयं यथेष्टाशनम् ॥ ४ ॥
नाशयेतत्समाप्तैषधं विजग्नीचक्रे हिनं प्राणिना-
मुदामप्रमदामद्विपदशारटसिही तु सूर्यप्रभा ॥ ५ ॥

सूर्यप्रभा गुटिका—दारहरदी, सौंठि, पिपरि, मरिच, बामीरंग, चित्त की जड़, वच, हरदी, करंज, शुरुचि, देवदार (धूप), अतीस, त्रिवृता, कुटकी, धनिया, कृष्णजीरक, जवाहार, सज्जी-खार, सेंधानमक, सौंचरनमक, विडनमक, गजपीपरि, चाव, कंमल, तालीसपत्र, पिपरामूल, पुहकरमूल, चिरैता, बम्भेठी, पदुमकाठ, जीरा, जावित्री, कोरया की छाल, दन्ती, वच, नागर-मोथा, इन सब द्रव्यों को एक २ कर्ष लेकर उत्तम चूर्ण बना लेवे फिर इसमें शुद्ध शिलाजीत ५ पल (२० तो०), शुद्ध गुणुल ५ पल, लौहभस्म दो पल, स्वर्णमाक्षिक भस्म दो पल, दबेत शक्तर (चीनी) पांच पल, वंशलोचन, इलायची के दाने, दालचीनी, तेजपात एक २ पल इन सब का चूर्ण बना एकत्र मिला देवे तथा मधु और गोधृत प्रमाण से मिलाकर इसी के सहारे गुटिका विधान से एक २ कर्ष की वटी बना लेवे। यह वटी ब्रह्माजी के सुखारविन्द से प्रकट हुई है अर्थात् इसे ब्रह्माजी ने कहा है इसका नाम 'सूर्यप्रभा' वटी है। इसके सेवन से शोष, कास, ऊरःक्षत, तमक श्वास, पाण्डुरोग, कामला, गुरुम, विद्रधि, पाश्वर्यशूल, उदर रोग, खियों की क्षीणता, कृमि, कुष्ठ, अर्श, विषमज्वर, ग्रहणी तथा मूत्रकृच्छ्र रोग का नाश होता है। इस वटी में से एक वटी भक्षण कर प्रसन्न मन से यथेष्ट भोजन करना चाहिये। इसके समान जीवों के लिये हितकारक त्रिलोक में अन्य कोई औषधि नहीं है। यह सूर्यप्रभावटी खियों के कामरूपी मद को मर्दन करने में सिंह के समान है ॥ १-५ ॥

अथ घृतानि

अथ वलाच्य घृतम्—
बला श्वदद्वा ब्रह्मतो कलशो धावनी स्थिरा । निःष्टः पर्पटं मुस्तं ग्राथमाणं दुरालभा ॥ १ ॥

कृत्वा कथायं पेत्याथं दशात्तामलकीं सटीम् । द्वाच्चां पुष्करमूलं च मेद्वामामलकानि च ॥२॥
धृतं पयश्च तरितदं सपिञ्ज्वरहरं परम् । द्वयकासप्रशमनं शिरापाश्वरजापहम् ॥ ३ ॥

धृत प्रकरण (क्षय रोग में) बलादि धृत—वरियारा, गोखरू, बड़ी कटेरी, पुष्टपर्णी, छोटी कटेरी, शालिपर्णी, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाणा, जवासा, इन सबको समान ले विधिपूर्वक अठगुने जल में काथ कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार कर धृतपाक विधि के अनुसार इसमें चतुर्थीश मूर्छित गोधृत तथा चतुर्थीश भुइ औंचला, कचूर, द्राक्षा, पुष्करमूल, मेदा, औंचला, इनका मिलित कल्प दे और धृत के चतुर्गुण पाकार्थं गोहुध देकर धृतपाक की विधि से पाक करे । इस धृत के सेवन करने से यह अत्यन्त ज्वरनाशक, क्षय, कास, शिरःशूल तथा पार्श्वशूल नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ कोलाधं धृतम्—

कोलाद्वारसे तद्वाच्चीराष्ट्रगुणसाधितम् । कर्षकैविडङ्गदार्चित्वद्वाचाऽसोटकलानिवैः ॥ १ ॥
धृतं खर्जंत्मद्वीकामधुकैः सपरूपकैः । सपिष्ठलीक वैश्वर्यकादश्वासउवरापहम् ॥ २ ॥

कोलादि धृत—मूर्छित गोधृत जितना हो (जिस प्रमाण से धृत बनाना हो) उसके चतुर्गुण वैर का काथ (छाल का काथ) और चतुर्गुण ही (काथ के बराबर ही) लाक्षा का रस तथा अठगुना गाय का दूध देकर धृत सहित धृतपाक की विधि से पाक करे और उसमें धृत से चतुर्थीश बाभीरंग, दारुहरदी, दारुचीनी, द्राक्षा, अखरोट, खजूर, मुनक्का, जेठी मधु, फालसा और पीपरि का कल्प देने । सिद्ध हो जाने पर इसके सेवन से खरविकार, कास, श्वास और ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १-२॥

अथ गोक्षुराधं धृतम्—

गुरालभ्यं अदंद्रौं च चनसः परिणीर्बलाम् । भागान्पलोमिमितान्कृत्वा पलं पर्पदकर्त्य च ॥१॥
पचेहशुगुणे तोये दशमागावशेषिते । रसे पूते तु द्रवयाणामेषां करकान्वसमावयेत् ॥ २ ॥
सटीपुष्करमूलानां पिष्ठलीत्रयमाणयोः । आमलक्याः किरातानां तिक्तरस्य कटुकरस्य च ॥३॥
फलानां सारित्रयाश्रं सुपिष्ठा कर्षसंमितान् । तैः साधयेद् धृतप्रस्थं चोरं द्विगुणितं विषक् ॥
उवरं दाहं तमः आसं कासं पार्श्वशिरोरुजम् । तुष्णां छुर्दिमतीसारमेतत्सविध्यपोहति ॥ ४ ॥

गोक्षुरादि धृत—गोखरू, यवासा, शालिपर्णी, पुष्टपर्णी, माषपर्णी, मुद्रपर्णी, वरियारा, प्रत्येक एक-एक पल और पित्तपापड़ा एक पल लेकर सबके दसगुने जल में काथ करे जब दशांश शेष रहे तो उतार कर काथ छान लेवे फिर इसमें कचूर, पुष्करमूल, पीपरि, त्रायमाण, औंचला, चिरैता, पटोलपत्र, कुटकी, जैवरा, झरा, बहेरा और कुण सारिचा (काला अनन्तमूल) इन प्रत्येक द्रव्यों को एक-एक कर्ष लेकर पीस कर कल्प बना एक प्रस्थ मूर्छित गोधृत में मिला (काथ से धृत पर्यन्त तक के द्रव्य मिला कर) उसमें धृत से द्विगुण दूध मिलाकर धृतपाक विधि से पाक कर सेवन करने से ज्वर, दाह, तम, श्वास, कास, पार्श्वशूल, शिरःशूल, तुष्णा, वमन, अतीसार ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

अथ जीवन्त्यादिधृतम्—

जीवन्ती मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च । मर्टी पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरक बलाम् ॥ १ ॥
नीलोरपलं चाऽमलकीं त्रायमाणो दुरालभाम् । पिष्ठलीं च समां पिष्ठा धृतं वैष्णो विषाच्येत् ॥
पुतद्वधाधिसमूहस्य रोगसजस्य दुर्ज्यम् । रूपमेकादशविधं सपिरप्रयं व्यपोहति ॥ ३ ॥

जीवन्त्यादि धृत—जीवन्ती, मुलहठी, द्राक्षा, इन्द्रजल, कचूर, पुष्करमूल, छोटी कटेरी, खगोल,

वरियारा, नीलोफर, औंमला, त्रायमाणा, यवासा, पीपरि इन सब द्रव्यों को समान लेकर कल्प करे और सब मिला कर कल्प जितना हो उसके चौहुमे मूर्छित गोधृत और पाकार्थं धृत से चौगुना जल देकर धृतपाक विधि से पाक कर धृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से यह सम्पूर्ण व्याधियों तथा एकादश रूपों सहित भयद्वार राजयक्षमारोग को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ तैलानि

अथ चन्दनादितैलम्—

चन्दनाभुनखं रत्रियर्षीं शैलेयपद्मम् । मञ्जिष्ठा सरलं दारु शट्टयेला जातिकेसम् ॥ १ ॥
पत्रं विलवमुशीरं च कंकोलं चन्दनाभुद्वस् । हरिद्रे सारिवे तिक्का लवङ्गागुरुकुमसम् ॥ २ ॥
त्वयेणुनलिका चैभिस्तेलं भरतुचतुर्गुणम् । लाहारससमं सिद्धं ग्रहद्वं बलवर्णकृत् ॥ ३ ॥
अपस्मारउवरोन्मादकृत्यालयमीविनाशनम् । आयुःपुष्टिकरं च वशीकरणमुच्चसम् ।

विशेषात् चयरोगद्वन्द्वपित्तहरं परम् ॥ ४ ॥

तैल प्रकरण—क्षय में—चन्दनादि तैल—लालचन्दन, सुगन्धवाला, नस्वी, हरदी, जेठीमधु, शिलारस, पदुसकाठ, मजीठ, सरलकाठ (चीड़), देवदारु, कचूर, इलायची, चमेली के फूल, नागकेसर, तेजपात, वेल, खस, शीतलचीनी, इवेतचन्दन, नागरमोथा, हरदी, दारुहरदी, काली अनन्तमूल, गौरीसर, कुटकी, लवंग, अगर, कुहुम (केसर), दारुचीनी, रेणुका, नलिका लता (नारीवेल), प्रत्येक को समान लेकर कल्प कर कल्प से चौगुना मूर्छित तिल का तैल और तैल से चौगुना दही का पानी तथा तैल के बराबर लाक्षा का रस लेकर सबको एकत्र तैलपाक की विधि से पाक कर तैल सिद्ध हो जाने पर उतार-द्वान कर सेवन करने (लगाने) से ग्रहदोष का नाश करने वाला, बल तथा वर्ण करने वाला, अपस्मार, ज्वर, उमाद, कृत्या दोष, दरिद्रता आदि को नष्ट करता है और आयु तथा पुष्टिका करने वाला है, उत्तम वशीकरण है, और विशेष करके क्षयरोग का नाश करने वाला तथा रक्तपित्त का नाश करने वाला है ॥ १-४ ॥

अथ लाक्षादितैलम्—

तैलं प्रस्थमितं चतुर्गुणजतुकाथं चतुर्मस्तुरुग्—
यष्टीदारुनिशाद्वमूर्चकदुकामिश्यश कौन्तीहिमैः ।
रासनायैः पिचुसंभितैः कृतमिदं शास्तं तु जीणज्वरे
सर्वस्मिन्विषमेऽपि यज्ञशी द्वृद्धे सगर्भासु च ॥ ५ ॥

लाक्षादि तैल—मूर्छित तिल तैल एक प्रस्थ (एक सेर), लाक्षा का काथ ४ प्रस्थ, दही का पानी ४ प्रस्थ और इसमें कूठ, जेठी मधु, दारुहरदी, नागरमोथा, मूर्चालता, कुटकी, सौफ, रेणुका, लालचन्दन और रासन प्रत्येक को एक-एक कर्ष ले कल्प कर सबको मिला तैलपाकविधि से पाक कर सिद्ध होने पर छान कर सेवन करने से (लगाने से) यह लाक्षादि तैल जीणज्वर, सव प्रकार के विषमज्वर, वशमा आदि रोगों को नष्ट करता है और शिशु, वृद्ध तथा गर्भिणी ली इन सबके लिये लामदायक है ॥ ५ ॥

अथ चन्दनयलालाशादितैलम्

चन्दनं च लालमूलं लाला लामज्जकं तथा । पृथकपृथकप्रस्थवितं जलद्वोणे विषाधयेत् ॥ १ ॥
चतुर्मार्गावशेषेऽस्मिस्तैलं प्रस्थद्वयं चिपेत् । चन्दनोशीरमधुकलताह्वा कदुरोहिणी ॥ २ ॥
वदारु निशा कुष्ठं मञ्जिष्ठागुरुवालकम् । अप्यगन्धा वला दार्ढी मूर्चा मुस्ता समुलिका ॥ ३ ॥

एला वेग्रागकुसुमं रासना लादा सुगन्धिका । चर्षण्कं पीतसारं च सारिवा चोरकद्यम् ॥४॥
कश्चैरैतः समायुक्तं दीराठकसमन्वितम् । तैलमध्यज्ञने श्रेष्ठं सप्तधातुविवर्धनम् ॥५॥
श्वासकासच्चयद्दरं सर्वच्छुदिनिवारणम् । अस्यगदरं रक्षित्तं हन्ति पित्तकफामयम् ॥६॥
कान्तिकृदाहशमनं कण्डुविष्फोटनाशनम् । शिरोरोगं नेत्रदाहमहदाहं च नाशयेत् ॥७॥

बालमध्यमवृद्धानां च शीणानां शीणरेतसाम् ।

बालमध्यमवृद्धानां शश्यते शोफकामले । पाण्डुरोगे विशेषेण सर्वज्वरविनाशनम् ॥८॥
चन्दनबलालाक्षादि तैल—लल चन्दन, वरियारा की जड़, लाही, लामजक, खस प्रत्येक
की पृथक् २ एक २ प्रस्थ (एक २ सेर) लेकर एक द्रोण (१६ सेर) जल में पृथक् २ क्षय
की विधि से पाक कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार-छानकर इसमें मूर्च्छित तिल का
तैल दो प्रस्थ मिलावे और चन्दन, खस, जेठीमधु, सौंफ, कुटकी, देवदारु, हरदी, कूठ,
मजीठ, अगर, सुगन्धबाला, असगन्ध, वरियारा, दारुहरदी, मूर्वा, नागरमोथा, मूली, इलायची,
दारुचीनी, नागकेसर, रासन, लाही, काली मेडुडी, चम्पा, पीला चन्दन, सारिवा लता, चोरक
(चौरा), गठिवन इनमें से प्रत्येक द्रव्य समान मिल कर तैल से चौथाई (कुल मिलकर आधा
सेर) लेकर कल्क कर मिलाकर तैलपाकविधि से इसमें एक आढक अर्धात् तैल से दुगुना (चार
सेर) गोदुध मिला कर सबका पाक करे । पाक सिंह हो जाने पर छान कर इसके अस्यज्ञ से
सातो धातुयें (रस-रक्तादिक) बढ़ती हैं और यह सब अस्यज्ञों में श्रेष्ठ है । तथा श्वास, कास,
क्षय को हरण करने वाला है, सब प्रकार के वसन को नष्ट करता है, रक्तप्रदर, रक्तपित्त और पित्त
कफ के रोगों को नष्ट करता है । तथा कान्तिकारक और दाहनाशक है, कण्डु रोग तथा विष्फोटक
रोग को नाश करता है, शिरोरोग, नेत्रदाह, अङ्गदाह आदि को नाश करता है, बात रोग
से पीड़ित, क्षीण (क्षयी) तथा क्षीण वार्य वालों के लिये तथा वालक, युवा, वृद्ध सबके
लिये लाभदायक है, शोथ, कामला और पाण्डुरोग विशेष कर सब प्रकार के ज्वर रोग को नष्ट
करता है ॥ १-८ ॥

अथाश्वगन्धादि तैलम्

अस्यगन्धा बला लादा प्रस्थं प्रस्थं पृथक्पृथक् । जलद्रोगे विपक्षव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥१॥
तत्त्वं त्रिमानिकं दद्याद्विमस्तु चतुर्गुणम् । अस्यगन्धा-निशादारु कौन्ती-कृष्णाद्वच्छन्नैः ॥२॥

निशा तिक्ता शताह्वा च लादा मूर्चा समूलका ।

सुरदारु च मञ्जिष्ठा भयुकोशीरसारिवा ॥३॥

समभागानि सर्वाणि कल्कीकृत्य विपाच्येत् । सर्वज्वरं हरत्याशु शोफक्षन लघु वृद्धणम् ॥४॥
कासश्वासहरं चैव सर्वधातुविवर्धनम् । एतदभ्यज्ञने नाशु चयरोगो विमुक्तिः ॥५॥

अस्यगन्धादि तैल—असगन्ध, वरियारा और लाही प्रत्येक पृथक् २ एक-एक प्रस्थ (१-१ सेर)
लेकर पृथक् २ एक द्रोण (१६ सेर) जल में काथ कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार कर
छान लेवे, मूर्च्छित तिल का तैल तीन मानिक (२४ पल वा १६ भर) और दहो का पानी तैल
से चौंगुना (९६ पल) लेवे और असगन्ध, दारुहरदी, रेणुका, कूठ, नागरमोथा, चन्दन, हरदी,
कुटकी, सौंफ, लाही, मूर्वा, मूली, देवदारु, मजीठ, जेठीमधु, खस, सारिवा, इनमें से प्रत्येक को
समान तैल से चौथाई (कुल मिला कर ६ पल) लेकर कल्क कर तैलपाकविधि से सबको एकत्र
पाक कर छान कर सेवन करने से (लगाने से) सब प्रकार के ज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं, यह शोथ
का नाश करता है, लघु तथा वृद्धण है, कास-श्वासको हरण करने वाला है, सब धातुओं को
बढ़ाने वाला है, और इसके अस्यज्ञ से क्षयरोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १-५ ॥

अथ लक्ष्मीविलासतैलम्

लक्ष्मीखण्डरास्नाजतुनस्तशिनिः कोलकं चाय सुस्ता-
बालत्वदास्तुकृष्णागुरुतगरजटाकुष्ठमेतरमांशम् ।

वैगुण्यं कालरालं सुहृदमस्तुक्यन्वतः मिष्ठमेत-
स्तलं पुष्पेश्व भाव्यं पश्मिलितिं नामतो गन्धतैलम् ॥ १ ॥

एतद्वलचमीविलासं प्रज्ञयति जगतीनायकैः संप्रयुक्तं
युक्त्या नामा च रोगाजिखिलगदहरं ब्रातसंचातहन्तु ।
पीतं ताम्बूलवल्लीदलयुतममलं जाठरं वह्निमिदु

कुर्याद् दुन्नमद्वुष्यमपि नितरामङ्गसंमर्दनेन ॥ २ ॥

लक्ष्मीविलास तैल—इलायची, चन्दन, रासना, लाह, नखी, कर्पूर, शीतलचीनी, नागरमोथा,
सुगन्धबाला, ढालचीनी, देवदारु, पीपरि, अगर, तगर, जटामांसी, कूट, सब की समान लेकर^१
एक भाग से अर्धात् एक द्रव्य से तिगुना राल मिलाकर विधिपूर्वक डमरु यन्त्र से पाक कर तैल
निकाल लेवे और इस तैल को चम्पा, चमेली आदि पुष्पों से सुवासित करे । यह सुगन्धि से
सुकृत 'गन्धतैल' लक्ष्मीविलास कहा जाता है । यह सब का राजा है । इस को युक्तिपूर्क सेवन
करने से (लगाने से) सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है और वात के समूह (सम्पूर्ण ८० वातरोगों)
को नष्ट करता है । इसको पान के पत्ते में रख कर खाने से जठराग्नि को तीव्र करता है,
अन्ति बढ़ाता है, तथा अर्द्धरोग, दहु और क्षयरोग को भी निरन्तर मर्दन करने से नष्ट
करता है ॥ १-२ ॥

अथ द्राक्षासवः

वीरसिंहावलोकतः—

मद्वीकायास्तुलार्घं तु द्विद्रोगेऽपां विपाच्येत् । पादशेषे कण्याये च एतशीते प्रदापयेत् ॥३॥
गुद्धय द्वितुलां मार्नो धातव्या चृतभाजने । विद्वङ्गं कलिनीकृष्णात्वगोलापश्चेतरम् ॥ २ ॥
मरिचं च भिष्मच्यूर्ण सद्यगदत्वा विचक्षणः । चिपेष्व पलिक्भर्गैः स्थापयेष्वैत्व तहिने ॥ ३ ॥
ततो यथावलं पीत्वा कासधायगलामयान् । हन्ति यथामानमस्युग्रमुरःसंधानकारकम् ॥४॥
चतुर्थधारां द्राक्षाया धातकीमत्र केचन । प्रथच्छन्ति ततो वीर्यमेतत्योच्चैः प्रजायते ॥५॥

आसवारिष्ट प्रकरण (क्षयमें)—द्राक्षासव—मुनश्वका आधा तुला (५० पल) लेकर दो द्रोण
(३२ सेर) जल में विधिवत् पाक करे, चतुर्थीश शेष रहने पर उतार कर शीतल होने पर भली-
मांति मुनश्वका को मर्दन कर काथ छान कर रख ले और दो तुला (२०० पल) पुराना गुड़
और एक मानी (३२ तोला) धाय के फूल को लेकर सब को एकत्र एक धूत से स्तिन्ध बड़े
मिट्टी के पात्र में रख उस में वामीरंग, पिण्डगु, पीपरि, ढालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर,
मरिच इनमें से प्रत्येक का इलक्षण चूर्ण एक २ पल (चार २ तो ०) लेकर डाल दे और आसव
सिद्धि की विधि से पात्र का विपाच्येत् । एतद्वलं तक उसे मिट्टी में गाढ़ दे, आसव
सिद्ध हो जाने पर निकाल-छान कर मात्रा से बलानुसार विधिपूर्वक सेवन करने (आसव
की विधि से अर्धात् भोजनोपरान्त पीने) से कास-श्वास और गले के रोगों को नष्ट करता है
और अत्यन्त बड़ा यक्षमा इससे नष्ट होता है तथा उत्तराकृत जुटता है । कोई २ इसमें धाय के
फूल को द्राक्षा से चतुर्थीश अर्धात् ३२ तो ० के स्थान पर ५० तोला देते हैं जिससे इसका वीर्य
(प्रभाव) अधिक बढ़ जाता है और अधिक लाभदायक हो जाता है (पर यह किञ्चित् ग्राही
हो जाता है) ॥ १-५ ॥

अथ विष्पल्यरिष्टः

पिष्पलीलोभ मरिच शाठाभाषेलवालुकैः । अध्यचित्रकजन्तुष्टकमुकोशीरचन्दनैः ॥ १ ॥
मुस्ताप्रियद्वृक्त ठीहरिद्वामिषपुच्छैः । पश्चत्वक्तुष्टतगरैर्नार्यकेसरवंयुतैः ॥ २ ॥
भागैः स्थावृद्धैलिकैद्रिकां वष्टिपलां विषेत् । पलानि दश शातक्या गुडस्य च शतत्रयम् ॥
नोर्यार्मणद्वये सिद्धं भवत्येत्सुखवाहम् ।

ग्रहणीपाण्डुरोगार्शः काश्यर्थगुलमोदरापहः । पिष्पस्यादिरिष्टोऽयं क्षयचयकरः परम् ॥ ३ ॥

पिष्पल्यरिष्ट—पीपरि, लोध, मरिच, पाठा (पुरश्नपाठी), आँवला, एलुवा, चाव, चित्तकीजड़, वाभीरंग, सुपारी, खस, चटन, नागरमोथा, फूलप्रियद्वृ, हरफौड़ी, हरदी, सौंफके पत्ते, तेजपात, दालचीनी, कूठ, तगर और नागकेसर प्रत्येकको आधा २ पल लेकर उत्तम चूर्ण कर लेवे और द्राक्षा ६० पल (२४० तो ०), धायका फूल दस पल (४० तो ०), पुराना गुड़ तीन सौ पल (१२० तो ०), जल दो द्रोण (३२ सेर) लेकर सबको एकत्र धोलकर विषिद्ध हो जाने पर सेवन करने से यह सुखकारक होता है, ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, दुर्बलता, गुलम, उदररोग, इन सब को नष्ट करता है, तथा यह 'पिष्पल्यादि अरिष्ट' क्षयरोग का अत्यन्त क्षय करता है ॥ १-४ ॥

अथ खर्जूरासवः

गदनिग्रहात्—

पञ्चप्रस्थं समादाय खर्जूरस्य विचक्षणः । द्वोणाभमि पचेसम्यगुत्तार्थं गालयेत्ततः ॥ १ ॥
कुम्भीं सुधूपितां कृत्वा प्रेद्विषेत्तं रसं शुभम् । हुपुषां ताम्रपुर्णीं च कपाये तत्र निषिद्धेत् ॥ २ ॥
द्वारं निहृत्य सुदृढं निषिद्धेत्सधात्तले । सप्तकद्वयागेन सिद्धोऽयं त्वासाहो रसः ॥ ३ ॥
रोगराजं तथा शोथं प्रमेहं पाण्डुकामलाम् । ग्रहणीं पञ्चगुरुमार्शो नाशयत्यतिवेगतः ॥ ४ ॥

खर्जूरासव—खजूर उत्तम (बीजरहित) ५ प्रस्थ (५ सेर) लेकर एक द्रोण (१६ सेर) जल में विषिद्धक पाक कर चुप्तीश शेष रहने पर उतार मर्दन करने के बाद छानकर द्विनग्ध मिट्टी के पात्र को धूपित कर उसमें रस देवे पश्चात् उसमें हाङ्केवर और धाय का फूल प्रमाण से (दस २ पल) लेकर सुख बन्दकर आसव की विषि से पृथ्वी में गाढ़ देवे, दो सप्ताह के बाद आसव सिद्ध हो जाने पर निकाल-छानकर सेवन करने से यक्षमा, शोथ, प्रमेह, पाण्डु, कामला, ग्रहणी, पांचो प्रकार के गुलम, अर्श इन रोगों को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

अथ गुड्हच्यादिमोदकः

गुड्हच्यां स्पष्टः कृत्वा कुट्टित्वा सुमर्दयेत् । वस्त्रेण विघ्नं तोयं ज्वावपेत्सद्धूनैः शनैः ॥ १ ॥
शुद्धशङ्कुनिभं चूर्णमेते समिक्षयेद्विषक् । उक्षीरं बालकं पत्रं कुष्ठं धात्रीं च मौसलीम् ॥ २ ॥
एलां हरेणुकां द्वाचां कुमुमं नागकेसरम् । पश्चकन्दं च कर्पूरं चन्दनद्वयमिश्रितम् ॥ ३ ॥
व्योषं च मधुलाजांश्च अथरामधीं ज्वातवरीम् । गोद्धुरं मक्कटालयं च जातीकद्वौलचोशकम् ॥ ४ ॥
इसाभवङ्गलोहैश्च समिक्षं कारयेद् तुधः । एतानि समभागानि द्विगुणामृतशकरा ॥ ५ ॥
मर्दयण्ड्याऽयमवैतं भक्षयेत्तात्तदित्थितः । चथं च रक्षित्तं च पादशाहमस्तुवरम् ॥ ६ ॥
मूत्रावातं मूत्रकुच्छं वातकुण्डलिका तथा । निहृत्याच्च प्रमेहांश्च सोमरोगं च दारणम् ॥ ७ ॥
रसायनमिवर्णाममृतं वाऽमृतान्वसाम् ॥ ८ ॥

गुड्हच्यादि मोदक—गुरुचि हरी २ लेकर-छोटे २ छुकड़े करके कूट कर पानी में भिगो मर्दन कर उस जल को छान कर पात्र में भर रिथर स्थान में रख देवे, कुछ समय के पश्चात धीरे २ लंपर का पानी नियार देवे । अब इसमें से शङ्ख के समान श्वेतवर्ण का चूर्ण (सत्त) जो निकले उसे रख लेवे अर्थात् विषिद्धक गुरुचि का सत्त निकाले और खस, सुगन्धवाला, तेजपात, कूट, आँवला, मुसली, इलायची, पित्तपापड़ा, दाख, उत्तम केसर, नागकेसर, कमल का कन्द, कर्पूर, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, सौंठि, पीपरि, मरिच, मुलहठी, धान का लावा, असगन्ध, शतावरि, गोखरू, केवाच का बीज, जायफर, शीतलचीनी, चोरक (चौरा) का चूर्ण और पारद भस्म वा रससिन्दूर, अब्रकमस्म, वंगभस्म, लौह-भस्म प्रत्येक द्रव्य एक भाग लेवे और इसमें दुगुना उपर्युक्त गुरुचि का सत्त ले तथा इसे मिश्री, धृत और मधु में मिला विषिद्धक भोदक बना । प्रातःकाल सेवन करने से क्षय, रस्तपित्त, पाद-दाह, रक्तप्रदर, मूत्रावात, मूत्रकुच्छ, वातकुण्डलिका, प्रमेह रोग, सब प्रकार के भयक्कर सोमरोग आदि को नष्ट करता है । इसे व्यषियों का रसायन अथवा देवताओं का अमृत जानना चाहिये ॥ १-८ ॥

अथ रसाः

अथ चतुर्सुखरसः—

सूतायोऽध्रकगन्धकं समलवं सूताक्षितुश्यं मृतं
स्वर्णं सर्वमिदं निधाय विमले खस्वे दिनं मद्येत् ।

कन्धाद्योषवरापुनर्नवस्यैः कृष्णलवङ्गैः पुनः

भौद्धं चित्रकपश्चकैर्घनतरं सेव्येष्टधान्यान्तगम् ॥ १ ॥

कुर्याद् ब्रह्मविनिमितं इसवरं चयमापहं पुष्टिं, वज्ञं छौद्रफलत्रयेण सहितं मेहामिमान्धप्रणुत् ॥

क्षयरोग में रस प्रकरण—चतुर्सुखरस—शुद्धपारद, लोहभस्म, अब्रकमस्म, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक एक २ तो ०, स्वर्णभस्म चौथाई तो ० लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को मिला उत्तम खरल में भलीभौति मर्दन कर—धृतकुमारी के रस, त्रिकुट, त्रिफला, पुनर्नवा, केवाच, लवंग, चित्रकमूल और पुदमकाठ इन द्रव्यों के रस अथवा कवाथ में पृथक् २ एक २ दिन भावना देवे, फिर एरण्ड के पत्तों में लेपेट कर धान्यराशि में तीन दिन रख पुनः भलीभौति मर्दन कर रख लेवे । इस श्रेष्ठ रस को ब्रह्मा जी ने बनाया था । यह यक्षमा को नष्ट करने वाला तथा पुष्टिदायक है । इसे एक बछ (१। रत्ती) के प्रमाण से त्रिफला और मधु के अनुपान से सेवन करने से यह प्रमेह और मन्दाद्विष को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ रत्नगर्भपेट्टलीरसः

रसं वज्रं हेम तारं नागं लोहं तथाऽभ्रकम् । तुरथांशं मारितं योजयं मुक्तामात्तिकविद्वम् ॥ १ ॥

राजावर्तं च वैकान्तं गोमेदं पुष्परागमस्म । शंखं च तुल्यतुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवः ॥ २ ॥

मर्दयित्वा विद्युर्यायं सेनाऽपूर्यं वराटकाद् । टङ्गं रविहृष्णेन पिष्टा तन्मुद्रणं चरेत् ॥ ३ ॥

मृद्गाण्डे ताम्सुस्थन्द्यं सम्यग्गजपुटे पचेत् । आदाय चूर्णयेत्सम्यग्गिर्णुण्डयः सप्त भावनाः ॥

आद्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविश्वतिः । द्रव्येर्भावं ततः शुष्कं देयं गुज्जाचतुर्ष्यम् ॥ ४ ॥

ज्वररोगं निहृत्याशु सर्वं शिव हवान्वक्षम् ।

योजयेत्पिष्पलीहृद्रैः पृष्ठतेर्मरिचेत्त्वा । पोट्टली रसगम्भेयं सर्वरोगहरा मता ॥ ५ ॥

रत्नगर्भपेट्टलीरस—शुद्धपारद भस्म अथवा रससिन्दूर, वज्रभस्म, स्वर्णभस्म, चौदीभस्म, शीशकभस्म, लोहभस्म, अब्रकमस्म, मुक्तामात्तिकमस्म, प्रवालभस्म, लाजवर्द (रेवटी)

भस्म, वैकान्तभस्म, गोमेदभस्म, पुष्पराग (पुखराज) भस्म, शङ्खभस्म, सब को समान (एक २ भाग) लेकर खरल कर चित्रकमूल के स्वरस वा कवाय में सात दिन तक भावित कर सूखने पर पुनः मर्दन कर इस चूर्ण को कौड़ियों में भर देवे और टक्कण (सोहागा) को आकके दूध में पीसकर उन कौड़ियों के मुख पर देकर बन्द कर देवे । पश्चात् भिट्ठी के बड़े शकोरे में रखकर शराव-सम्पुट की विधि से उसे ढक्कर पुट की सन्धियों को बन्दकर (कपरमिट्टी कर) सुखाकर गजपुट की विधि से पुटपाक करे सम्यक् पाक के पश्चात् शीतल होने पर निकाल-मर्दन कर निर्गुण्डी के स्वरस में सातवार भावित करे, फिर अदक के रस में सात बार तथा चित्त के क्षात्र में २१ बार भावित कर सुखा लेवे । इस रस को ४ गुज्जा (४ रत्ती) की मात्रा से सेवन करने से क्षयरोग शीघ्र नष्ट होता है । इसे पीपरि चूर्ण और मधु अथवा मरिच का चूर्ण और गोघृत के अनुपान से सेवन करना चाहिये । क्षयरोग का नाश करना इस औषध के लिये इतना सत्य है जैसे अन्यकामुर वा शिवजी का मारना सत्य है अर्थात् यह क्षय को अवश्य नष्ट करती है और यह रत्नगम्भीरदूली रस सब प्रकार के रोगों को नष्ट करती है ॥ १-६ ॥

अथ राजमृगाङ्कः

रसभस्म त्रिभागं च भागैकं हेमभस्मकम् । मृतताप्रस्थ भागैकं शिलागन्धकताळकम् ॥ १ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णिनम् । वराटान् पूरयेत्तेन अजासीरेण टक्कणम् ॥ २ ॥
पिष्ठा तेन सुखं रुद्ध्वा सूक्ष्मांडे संनिधापयेत् । शुद्धं गजपुटे पापयं चूर्णयेत्तवाङ्क्षीतलम् ॥
रसो राजमृगाङ्कोऽयं चतुर्युभ्यः क्षयापाप्तः । एकोनविषान्यरिच्छृंखेन सह भक्षयेत् ॥ ४ ॥
दशानां पिपलीनां च चूर्ण दश्वा प्रदापयेत् । क्षये कासे उवरे पाण्डौ ग्रहणवामतिसारके ॥ ५ ॥

राजमृगाङ्करस—पारदभस्म वा रससिन्दूर ३ भाग, स्वर्णभस्म एक भाग, ताप्रभस्म एक भाग, शुद्ध मैनशिल, शुद्धगन्धक, शुद्ध हरताल प्रत्येक दो २ भाग लेकर खरल में एकत्र मर्दन कर कौड़ियों में भर कर बकरी के दूधमें टक्कण को पीस कर उससे कौड़ियों का सुख बन्दकर देवे, पश्चात् भिट्ठी के शकोरे में रखकर शराव-सम्पुट की विधि से ढक्कर शकोरे के सुख की सन्धियों को बन्द कर (कपरमिट्टी कर) सुखा कर गजपुट की विधि से पुटपाक करे । पुटपाक सिद्ध हो जाने पर शीतल होने के बाद निकाल-मर्दन कर रख लेवे । यह 'राजमृगाङ्करस' है । इसे ४ रत्ती की मात्रा से सेवन करने से क्षय का नाश करता है, इसे १९ मरिचों के चूर्ण और गोघृत के साथ सेवन करना चाहिये और दश पीपरि का चूर्ण भी इसमें (अनुपान में) मिला लेना चाहिये । इससे क्षय, कास, ज्वर, पाण्डुरोग, ग्रहणी और अतीसाररोग नष्ट होता है ॥ १-५ ॥

अथ रसरत्नप्रदीपान्मृगाङ्कः

रसेन तुष्यं कनकं तयोस्तु साम्येन युज्याशवमौक्तिकानि ।
रसप्रमाणो च लिरक्षिमागः चारश्च सर्वं तुष्पवारिणा तु ॥ १ ॥
संगम्य घञ्च तु विक्षाय गोलं दिनं पचेत्त लवणेन पूर्णे ।
भाषण्डे मृगाङ्कोऽयमतिप्रयोग्यः च्याग्निमान्यग्रहणीशदेवु ॥ २ ॥
सायुज्योधाणाभिसंधुपिपलीभिवल्लोऽस्य देयो न ततोऽधिकस्तु ।
पथं हितं शीतलमेव चोडयं त्याजयं सदा पित्तकरं विद्वाहो ॥ ३ ॥

रसरत्नप्रदीप से मृगाङ्करस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध स्वर्णभस्म एक भाग, समुद्र से नूतन निकाली हुई मौती का शुद्धभस्म दो भाग, पारद के प्रमाण का बलि अर्थात् शुद्ध गन्धक एक भाग और चौथाई भाग क्षार (यवाखार) लेकर खरल में रख प्रथम पारद-गन्धक की कजली

विधिपूर्वक कर अन्य द्रव्यों को उसमें मिला-भलीभाँति मर्दन कर दिन भर तुषोदक में धोए पश्चात् गोलाकार बना-एक हाँड़ी में नमक भर कर उस नमक के मध्य में उस गोले को रख-सुख मुद्रण कर एक दिन भर आँच पर हाँड़ी रख कर पकावे पश्चात् उतार कर शीतल होने पर सेवन करने से यह 'मृगाङ्करस' क्षय, मन्दाद्यि और ग्रहणी रोगों में अधिक लाभदायक होता है । इसको धृत-मरिच चूर्ण-मधु और पीपरि के चूर्ण के साथ एक बल्ल (आ० मात्रा १ । रत्ती) के प्रमाण से अधिक नहीं सेवन करना चाहिये । तथा हितकारक और शीतल पदार्थ भोजन करने को देना चाहिये । पित्तकारक और विद्वाही पदार्थ त्याग देना चाहिये ॥ १-३ ॥

अन्यत्र वैचिलासात्

रसबलितपनीयं योजयेत्तव्यभागं, तदनु शुगलभागं मौक्तिकान्नं शुभानाम् ।

यचज्जचरणयुक्तं मर्दयेत्तव्यमेतद्-दिनर्मापि तुषवारा गोलकं लध्वमन्ते ॥ १ ॥

विधाय सुद्रां विदधीत भाप्ते चुलश्यां समुद्रे लवणेन पूर्णे ।

दिनं पचेच्चारुं मृगाङ्कनामा त्याग्निमान्यग्रहणीविकारे ॥ २ ॥

योजयः सदा विश्वासांप्रिणा वा कृष्णामधुभ्यां सततं श्रिगुजः ।

वर्जयं सदा पित्तकरं हि वस्तु लोकेशवत्पथ्यविधिनिरुक्तः ॥ ३ ॥

वैधविलास से मृगाङ्क रस—शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, स्वर्णमालिक भस्म समान अर्थात् एक २ भाग लेकर इहले पारद-गन्धक की कजली कर अन्य द्रव्यों को मिला शुद्ध मौती का उत्तम भस्म दो भाग और जवाखार चौथाई भाग लेकर धोए पश्चात् तुषोदक से एक दिन भर धोट कर गोलाकार बना लेवे फिर एक पात्रमें इसे शराव-सम्पुट में रख एक हाँड़ी में समुद्र नमक भर कर उसके मध्य में रख-सुख बन्द कर एक दिन भर चूहे पर रख कर पाक करे । पश्चात् निकाल-मर्दन कर रख लेवे । इसका नाम 'मृगाङ्क रस' है । इसके सेवन से क्षय, मन्दाद्यि और ग्रहणी का विकार नष्ट होता है । इसे तीन गुज्जा के प्रमाण से धृत-मरिच चूर्ण अथवा पीपरि के चूर्ण और मधु से निरन्तर सेवन करावे । पित्तकारक पदार्थ को त्याग देवे । तथा पारद सेवन में कहे हुए पथ्य के समान पथ्य का सेवन करावे ॥ १-३ ॥

अथ नवरत्नराजमृगाङ्कः

सूतं गन्धकहेमतारसकं वैकान्तकान्तायासं,

वङ्गं नागपित्रप्रवालविमलामाणिग्यगाहमतम् ।

ताप्यं मौक्तिकपुष्परागमलजं वैद्यर्यं शुल्वकं,

शुक्लिस्तालकमध्रहिङ्गुलशिला गोमेदनीलं समम् ॥

गोक्कूरैः फणिवस्त्रिसिंहवदनामुण्डीकणिचित्रकै-

रिच्छुच्छिद्धरुद्धाहप्रियजयाद्वाहावीजद्रवैः ।

शोफङ्गीशतपत्रिकामधुलङ्घे: सद्धावमलीधातकी-

जासीस्त्यवलावत्तुष्यजलावदेवप्रद्रवैः ॥

कङ्गोलेमदनाशकेसरजलेभाईयं पृथक्षसप्तधा-

भाषण्डे सिंहुभृते सृगाङ्कवद्यं याद्यः क्रमाञ्जौ दिनम् ।

भूयः प्राक्षसमुदाहत्तेव्वच्चयेत्तं भावयेष्युर्द्वयत्

पश्चात्तुष्यविभागशीतलरजः करतुरिका भावना ॥ ३ ॥

गोप्याद् गोप्यतरं रसायनमिदं श्रावकरेणोदितं

गुज्जासिन्धुयुतं कणामधुयुतं शोके सप्ताङ्गवामये ।

वातव्याधिमुपद्रवैश्च सहितं मेहांस्तथा विश्वाति
संयोजयं च हरीतकी गुडयुतं वाताद्वके दुर्जये ॥ ४ ॥
गुणमीरे च गुद्धनिसरवचपलात्तीद्वैस्तु भयोजित-
स्तथाधमानाश्चिशूलमान्यकपनापसमारवातोदरान् ।
श्वासान्संप्रहणीं हलोमकमथो सर्वदवराज्ञाशये-
द्वात्मपोषयति चयं चपयति श्यामाशतं योवनम् ॥ ५ ॥
प्रौढाटोपयुतं करोति सहसा तारण्यगव्येऽिक्षतं
सिद्धो राजमृगाङ्क एष जयति स्वस्वानुपानेगदान् ॥ ६ ॥

नवरत्नराजमृगाङ्क—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, स्वर्ण, चाँदी, शुद्ध खपरिया, वैकान्त, कान्तलौह, बंग नाग, हीरक, प्रवाल, रौप्यमाक्षिक, मानिक, मरकतमणि, सुवर्णमाक्षिक, मुक्ता, पुखराज, शहू, वैदूर्यगणि, ताम्र, सीप, हरताल, अभ्रक इन सर्वों की भर्तमें, शुद्ध शिंगरिक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध गोमेह, नीलमभस्म, इन प्रत्येक द्रव्यों को समान (एक २) भाग लेकर प्रथम पारद-गव्यक की कजली बना अन्यान्य द्रव्यों को मिला मर्दन कर गोखरू, पान के पचे, अरुसा, मुण्डी, पीपरि, चित्रकमूल, ऊँख, गुरुचि, धूतूर, भांग, दाख, शतावरि, गदहुपुरना, सौफ, जेठोमधु इन सब के काथ वा स्वरस, सेमल, धाय के फूल, जायफर, बला, अतिवला, नागवला, महावला, सुगन्धवला, दालचीनी, लवंग, इन द्रव्यों के काथ से, शीतलचीनी, कस्तूरी, नागकेसर, इन उपर्युक्त द्रव्यों के काथ अथवा स्वरस इन सब पूर्वोक्त (उपर्युक्त) रसों को सात २ बार भावना देकर शराब-सम्पुट में विधिपूर्वक रखकर एक नमक की बड़ी हाँड़ी में नमक के मध्य में रख कर उल्लिखित मृगाङ्करस की भाँति चुह्वे पर रख कर दिन भर मन्द-मध्यम, तक्षण अविन के अनुपान पाक कर परिपक्व हो जाने पर निकाल कर उपर्युक्त कथित द्रव्यों के स्वरस अथवा काथ से उसी भाँति सात २ बार भावना देकर तुल्य भाग अर्थात् एक भाग कर्पूर के साथ भावित करे और एक भाग करतूरी के साथ भावित कर ले । यह रसायन अत्यन्त गोपनीय है इसे शङ्कर भगवान ने कहा है । इसको चार मृगा (४ रस्ती) के प्रमाण से लेकर पीपरि के चूर्ण और मधु के अनुपान से सेवन करने से शोथ, पाण्डुरोग, उपद्रव से युक्त चात-व्याधि, वीर्सों प्रकार के प्रमेह आदि नष्ट होते हैं और हरीतकी चूर्ण और गुड़ के अनुपान से देने से दुर्जय वातरक्त रोग नष्ट होता है । गुरुचि और पीपरि चूर्ण तथा मधु के अनुपान से सेवन करने से गम्भीर वातरक्त नष्ट होता है तथा अधमान, अरुचि, शूल, मन्दाद्यि, कास, अपस्मार, वातरोग, शास, ग्रहणी, हलीमक तथा सब प्रकार के ज्वर रोग को भी यह नष्ट करता है, सब धातुओं को पुष्ट करता है, क्षय का नाश करता है और सौ खियों को भोगने की शक्ति रखने वाली युवावस्था को उत्पन्न कर देता है, प्रौढ़ा खियों को भी युवती बना देता है । यह 'राजमृगाङ्क रस' अपने २ अनुपान के योग से सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

अथ महाकनकसिन्दूररसः:

योगतरक्षिण्याः—

रसगन्धकनागाश्च रसको मालिकाभके । कान्तविदुमसुकादां वङ्गभस्य च तारकम् ॥ १ ॥
भस्म कृत्वा प्रयत्नेन प्रत्येकं कर्षसंमितम् । सर्वतुश्यं शुद्धहेमभस्म कृत्वा प्रयोजयेत् ॥ २ ॥
मर्दयेऽधिदिनं सर्वं हंसपादीरसेभिष्मम् । ततो वै गोलकान् कृत्वा काच्कृप्यां विनिषितेत् ॥
शुद्धवा तत्काच्कृपीं च सप्तवस्त्रेण वेष्टिताम् । ततो वै सिकतायत्रे विदिनं चोक्तवह्निना ॥
पथ्यात्तं स्वक्षीतं च पूर्वोक्तरसमर्दितम् । विनिषिप्य करण्डेऽथ संपूज्य रसराजकम् ॥ ५ ॥

महाकनकसिन्दूररस—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, नागमस्म, शुद्ध खपरिया, स्वर्णमाक्षिकभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, वंगभस्म, रौप्यभस्म, प्रत्येक को एक २ कर्ष लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अन्यान्य द्रव्यों के साथ सब के बराबर (११ तो०) शु० स्वर्ण भस्म मिलाकर एकत्र खरल में विधिपूर्वक मर्दनकरके हंसपादी (हंसराजबूटी) के रस में तीन दिन तक घोट ले फिर गोली बनाकर शीशी में रख उसका मुख बन्द कर कपरमिट्टी बनाकर सात बार बेष्टिकरे और सुखावे फिर 'बालुकायन्त्र' में रख कर विधिपूर्वक तीन दिन तक कमसे मन्द-मध्यादि आंच के नियम से पाक कर स्वांगशीत होने पर खरल कर पूर्वकथित रस (हंसपादी के रस) में मर्दन कर सुखा ले । इस रसराज की पूजाकर शीशी में रख लेवे ॥ १-५ ॥
महाकनकसिन्दूरो राजयद्धमहरः परः । पाण्डुरोगं श्वासकासं कामलाप्रहणीगदान् ॥ ६ ॥
किमिशोपोदरावर्तगुडमेहगुदाङ्कुरान् । मन्दामिं छादिमस्त्रिमामशूलहलीमकान् ॥ ७ ॥
उवरान्दृग्धादिकान्सर्वान्संनिपातांख्योदश । पैरयं रोगपमस्मारं वातरोगान् विशेषतः ॥ ८ ॥
रक्षपित्रप्रमेहांश्च खीणां रक्षस्यांस्तथा । विंशतिश्लेषमरोगांश्च मूत्ररोगांश्चिह्नस्यांश्च ॥ ९ ॥

यह 'महाकनकसिन्दूर रस' राजयद्धमा नष्ट करने में अत्यन्त उपयुक्त है तथा इसके सेवन से पाण्डुरोग, श्वास, कास, कामला, ग्रहणीरोग, क्रिमि, शोथ, उदरावर्त, उल्म, मेह, गुदा में अर्ण के अड्डो (मस्ते), मन्दामिन, वमन, अरुचि, आम, शूल, हलीमक सब प्रकार के द्वद्वादि (आठों प्रकार के) ज्वर, तेरहो प्रकार के सन्त्रिपात, पित्त के रोग, अपस्मार, विशेषतः वातरोग, रक्तपित्त, प्रमेह, खियों का रक्तस्राव रोग (रक्त प्रदर) आदि, बीस प्रकार के कफ के रोग और मूत्र-सम्बन्धी रोगों की यह रस नष्ट करता है ॥ ६-९ ॥

हेमचण्ड्यस्य बृश्यश्च आयुः शुक्रविवर्धनः । महाकनकसिन्दूरः काशयपेन विनिर्मितः ॥ १० ॥
इस महाकनक सिन्दूररसको काशय प्रभृति ले बनाया था । इस रस के सेवन से शरीर स्वर्ण के समान दीप होता है, यह बलकार है और आयु तथा वीर्य को बढ़ाने वाला है ॥ १० ॥

अथ कनकसिन्दूररसः:

योगतत्वे—

रसः कनकमधिकः कनकमालिकस्तालकः, शिलारसकगन्धका रससमाः सतुरथा इमे ।
विमर्श्य पद्यसा रवेः सकलमेतद्यस्योपरि, द्रवैः प्रतिदिनं पृथक्कदिति भावयेद्वृद्धिमान् ॥ १ ॥
जयामुनिकलिप्रियाद्वन्दशङ्कवासोऽन्नवै-विभाव्य च रसेस्ततः सुद्धदगोलकं स्वेदयेत् ।
मृगाङ्कवदथाऽर्दकद्रवभरेण तं सप्तधा, विमर्श्य च कुट्रव्याम्बुद्धिरथं च्यस्यान्तकृत् ॥ २ ॥
रसः कनकसुन्दरो भवति सन्त्रिपातेऽप्यथं सदाऽर्दकस्यैस्तथा पवनगुह्मशूलप्रणुत् ।
स विश्वघृतयोजितः सकलमत्र पद्यं हितं, मृगाङ्कवदथापरं किमपि नैव योजयं क्वचित् ॥ ३ ॥

कनकसुन्दर रस (योगतत्व से)—शुद्ध पारद एक भाग (एक कर्ष) स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्धमैनसिल, शुद्धगन्धक, शुद्ध तूतिया (नीला थोथा) सब पारद के समान एक-एक कर्ष लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली विधिपूर्वक बनावे और अन्यान्य औषधियों को एकत्रित कर मदार के दूध में मर्दन करे, पश्चात् निम्नलिखित औषधियों के रस में पृथक् २ एक २ दिन भावना देवे । भांग, अगस्त, बहेरा, चित्त, भूंगराज, अहूसा आदि के स्वरस से भावित करे । फिर गोला बनाकर मृगाङ्क के समान 'लवण यन्त्र' में अथवा 'वालुका यन्त्र' में स्वेदन करे । पुनः सात बार आर्दक के रस में और त्रिकुट के काथ में भावित कर सेवन करने से यह रस क्षय का अन्त कर देता है । यह 'कनकसुन्दररस' भी आर्दक के रस के अनुपान से सेवन करने से सन्त्रिपातको नष्ट कर देता है । और धृत तथा सौठ के चूर्ण के अनुपान से देने से वायुरोग, गुल्म

और शूल को भी नष्ट कर देता है। इसके सेवन में पहुँचे कहे हुए 'मृगाङ्क रस' के समान सब प्रकार का पथ्य सेवन हितकर है। इसके विपरीत कोई अपथ्य सेवन नहीं करे। १-३॥

अथ सुवर्णभूपतिः

शुद्धसूतसमं गन्धं मृतशुशुलं तथोः समम् । अश्रुलोहकयोर्भस्म कान्तभस्म सुवर्णजम् ॥१॥
रजतं च विषं सम्यक्पृथक्सूतसमं भवेत् । हंसपादारसैसमर्थं दिनमेकं वटीकृतस्य ॥२॥
काच्चूर्प्यां विनिलिप्य मृदा संलेपयेहृषिः । शुष्का सा बालुकायन्त्रे शानमृद्दिनिना पचेत् ॥
चतुर्गुजमितं देयमाद्रकद्वपिष्ठपली । उच्यं त्रिदोषजं हन्ति सञ्चिपातोन्नयोदश ॥४॥
आमवातं धनुर्वातं शूद्धलावातमेव च । आद्यवातं पक्षुवातं कफवातातिग्रिमान्दनुत् ॥५॥
कटिवातं सर्वशूलं नाशयेत्तात्र संशयः । गुरुमशूलमुदावतं ग्रहणीमतिहृस्तरम् ॥६॥
प्रमेहसुदरं सर्वामिशर्मीं मूत्रविडग्रहम् । भगन्दरं सर्वकुष्ठं विद्रधिं महतीं तथा ॥७॥
कासकासमनीर्ण च उवरमधिविधं तथा । कामलां पाणुरोगं च शिरोरोगं च नाशयेत् ॥८॥

अनुपानविशेषणं सर्वरोगान्विनाशयेत् ।

यथा सूर्योदये नश्येत्तमः सर्वगतं तथा । सर्वरोगविनाशाय सर्वेषां स्वर्णभूपतिः ॥९॥

सुवर्णभूपति रस—शुद्ध पारद १ कर्ष और उसी के समान शुद्ध गन्धक लेकर विधिपूर्वक कजली बनावे। उसमें तात्र भस्म दो कर्ष, अश्रुभस्म, लौहभस्म, कान्तभस्म, सुवर्णभस्म, रौप्य भस्म तथा शुद्ध मीठा विष प्रत्येक पृथक् २ पारद के समान अर्थात् एक २ कर्ष मिला कर देसपादी। (हंसपादवटी) के रस में दिन भर (१२ घण्टा) मर्दन कर वटी बनाकर शीशी में रखे। विधिपूर्वक सात कपरमिठी कर सूखे हुए उसे 'बालुकायन्त्र' में रख कर धीरे थोरे शूद्ध आँच पर पकावे। स्वांग-शीत होने पर चार गुज्जा के प्रमाण की मात्रा में अद्रक के रस और पीपरि के चूर्ण के साथ सेवन करने से त्रिदोषजनित क्षय, १३ प्रकार का सन्त्रिपात, आमवात, धनुर्वात, शूद्धलावात, आद्यवात, पंगुवात, कफवात, मन्दारिन, कटिवात तथा सब प्रकार के शूल को निश्चय ही नष्ट करता है इसमें संशय नहीं। गुरुमशूल, उदावर्त, अतिकठिन ग्रहणी, प्रमेह, उदररोग, सब प्रकार की अद्यमरी, मूत्रकृच्छ्र, विषभूम, भगन्दर, सब प्रकार के कुष्ठ रोग, महाविद्रुणि, श्वास, कास, अर्जीर्ण आठों प्रकार के ऊर, कामला, पाणुरोग तथा शिरोरोग को नष्ट करता है। अनुपान विशेष से यह रस सब रोगों को नष्ट करता है। जिस प्रकार सूर्योदय होने से सब स्थानों का अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस रस के सेवन करने से सब प्रकार के रोगों का नाश हो जाता है। इसका नाम 'सुवर्णभूपति रस' है। १-९॥

अथ लक्ष्मीविलासः

सुवर्णताराभ्रकसाम्बवङ्ग-त्रिलोहनाग्रामृतमौकिकानि ।
पत्रस्मं योजय रसस्य भस्म-खलवे कृतं स्थाकृतकजलीकम् ॥१॥
सुमर्दयेन्मालिकसंप्रयुक्तं-तच्छोषयेद् द्वित्रिदिनं च धर्मे ।
तत्कलक्यूचोदरमध्यगामिन्यरनारकृतं ताच्यंपुटेन पक्षम् ॥२॥
यामाष्टकं पावकमर्दितं च-लभ्मीविलासो रसराज पृष्ठः ।
क्षये त्रिदोषप्रभवे च पाण्डौ-सकामलासर्वसमीरणेषु ॥३॥
शोकप्रतिशयायविनष्टवीर्य-मूलामयं चैव सशूलकुष्ठम् ।
हत्वाऽग्रिमान्द्यं च्यसंनिपात-श्वासं च कासं च हरेप्रयुक्तम् ॥४॥
तारुण्यलक्ष्मीप्रतिश्वोधनाय-श्रीमद्विलासो रसराज पृष्ठः ॥५॥

लक्ष्मीविलासरस—स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, अश्रुभस्म तात्रभस्म, वंगभस्म, त्रिलौह भस्म अर्थात् तीक्ष्णलौह, कान्तलौह और मुण्डलौहभस्म (यथापि त्रिलौह से स्वर्ण, रौप्य और तात्र का बोध होता है तथापि यहाँ क्षय में लौह विशेष उपयोगी होने से तीनों प्रकार के लौह का ही ग्रहण किया गया है और इस योग में स्वर्णादि प्रथम में है और व्यावहारिक योग भी ऐसा ही है), नांगभस्म, शुद्ध मीठा विष, मोतीभस्म, इन सब को समान भांग लेकर जितना होवे उसके बराबर रससिन्दूर लेकर एकत्र खरल में सलीभाँति मर्दन कर पुनः मधु से मर्दन कर धूप में दो-तीन दिन सुखावे पश्चात् इस कल्प को सम्पुट में रख गजपुट में पकाकर आठ पहर तक चित्त के काथ में मर्दन कर लेवे। यह 'लक्ष्मीविलास' रस कहलाता है। यह सब रसों का राजा है। इसके सेवन से त्रिदोषज-क्षय, पाण्डुरोग, कामला, सब प्रकार के वातरोग, शोष प्रतिशयाय, वीर्यक्षय, अर्श, शूल, कुष्ठ, मन्दारिन, क्षय, सक्रियात, शास और कास इन सब रोगों को यह नष्ट करता है और इसके सेवन से तारुण्य प्राप्त होता है। १-५॥

अथ त्रैलोक्यचिन्तामणिः

रसं वज्रं हेम तारं तात्रं तीचणाऽक्रमं सृतम् । गन्धकं मौसिकं शङ्खं प्रवालं तालकं शिला ॥१॥
शोधितं च समं सर्वं सप्ताहं भावयेद् द्वदश । चित्रमूलकषायेण भानुदुर्घैर्दिनश्यम् ॥२॥
निरुण्डीमूरणदावैज्ञिदुर्घैर्दिनश्यम् । अनेन पूर्येत्सम्यक्पीतवर्णान् वराटकान् ॥३॥
टङ्कणं इविदुर्घेन पिङ्गा तेषां सुमं लिपेत् । रुदध्वा भाण्डे पुटेपश्चात्स्वाक्षीतं चिर्यूण्येत् ॥४॥
चूर्णतुर्यं सृतं सूतं चैकान्तं सूतपादकम् । शिग्मूलद्रवैः सर्वं सप्तवारं विभावयेत् ॥५॥

चित्रमूलकषायेण भावनाश्रीकविशिष्टातिः ।

आद्रंकस्य रसेनैव भावनाः सप्त पद च । जम्बीरैर्मातुलुङ्गैर्वा सप्तवारं विभावयेत् ॥६॥
सूथमचूर्णं ततः कृत्वा चूर्णपादांशटङ्कणम् । टङ्कणांशं वसनाभं तस्मां मरिचं चिपेत् ॥७॥
लब्धं चागरं पद्याय कणाजातीक्ष्णं पृथक् । प्रत्येकं वसनाभस्य पादांशं चूर्णितं चिपेत् ॥८॥
मातुलुङ्गया आद्रकस्थ रसेनैतत्तिलोडयेत् । चतुर्गुजामितं खादेकणांकौदं लिहेवनु ॥९॥
चौदैवै चाद्रकद्रवैः शुण्ड्या वाऽथ गुदेर्युत्स्य । अनुपानैः समायोजयः सर्वरोगोपशान्तये ॥१०॥
वहिं दीपयते वलं च कुरुते लेजा महद्वधते-वीर्यं वर्धयते विषं च इहते दार्ढ्यं विषते तनोः ।

अस्यासेन निहन्ति सृथ्युपलितं पुष्टिं प्रदत्ते नृणां

कासं सूदयते च्यं च्यपयते श्वासं च निर्नाशयेत् ॥११॥

वातं विद्रधिपाण्डुगूलप्रहणीरकादिसारं जयेद्-
मेहप्लीहजलोदराशमरितुषाशोफं हलीमोदरम् ।

लृताकृष्णभगवदरं उवरगणं चार्शासि कुष्ठं जयेन-

तवाध्यासाध्यरुजो निहन्ति च इस्त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥१२॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस—शुद्धपारद, हीरकभस्म, स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, तात्रभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, अश्रुभस्म, शुद्धगन्धक, सुक्ताभस्म, शङ्खभस्म, प्रवालभस्म, तालभस्म, शुद्धमैनसिलउत्तम शोधित मारित इन सबों को लेकर प्रथम पारद, गन्धक की कजली कर अन्यान्य द्रव्यों के साथ एकत्र मर्दन कर चित्रक मूल के काथ में सात दिन तक भावित करें, पुनः कमसे आक के दूध, निरुण्डी के रस, सूरनकन्द के रस और सेंहुड (थूहर) के दूध में पृथक् २ तीन २ दिन भावित करे। पश्चात् सुखाकर पीले रंग की कौड़ियों में भर कर टङ्कण और आक के दूध को भिलाकर इसी से उसके सुंह को बन्द कर विधिपूर्वक सम्पुट में रखकर गजपुट में पूक देवे। यह स्वांगशीत हो जावे तब निकाल कर खरल में धोटे और जितना चूर्ण हो उसके बराबर

रससिन्दूर और पारद के चतुर्थीश वैकान्तभस्म मिलाकर सहिजन के जड़ के स्वरस से सात बार भावित करे। पुनः चित्रकमल के काथ में २५ बार भावित करे। पुनः अद्रक के स्वरस में सात बार भावित करे। पुनः जमीरीनीबू अथवा विजौरे नीबू के रस में सात बार भावित करे पश्चात् सुखाकर इलक्षण चूर्णकर जितना हो उसके चतुर्थीश शुद्ध टक्कण का चूर्ण, टक्कण के समान ही शुद्ध मीठा विष, और उसीके समान मरिच का चूर्ण, लंग, सॉठि, हर्दा, पीपरि और जायफर का अलग २ चूर्ण प्रत्येक को चतुर्थीश लेकर मिलाकर विजौरे नीबू और अद्रक के रस के साथ मर्दन कर रख लेवे। इसको चार रत्ती के प्रमाण की मात्रा से पीपरि चूर्ण और मधु के अनुपान से सेवन करे और सेवन के पश्चात् मधु-अद्रक का रस, सॉठि का चूर्ण और गुड़ इनमें से किसी एक अनुपान का प्रयोग करने से सब रोग शान्त हो जाते हैं। तथा इसके सेवन से अग्नि दीप्त होती है, बल बढ़ता है, महान् तेज होता है, वीर्य की वृद्धि होती है, विष नष्ट होता है, शरीर दृढ़ होता है, नित्य सेवन करनेसे असमय की मृत्यु तथा बली-पलित रोग नष्ट होता है और पुष्टि होती है, कासरोग, क्षय और द्वास को नष्ट करता है और वातरोग, विद्रधि, पाण्डु, शूल, ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, अद्यमरी, तृणा, शोथ, हलीमक, उदररोग, लूतारोग, मूत्रकुच्छ भग्दर, सब प्रकार के उवर, अर्श, कुष्ठ आदि रोगों को चाहे साध्य हीं अथवा असाध्य सबको यह 'त्रैलोक्यचिन्तामणिरस' नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ द्वितीयस्त्रैलोक्यचिन्तामणिः

योगतरङ्गिण्याः—सूताभ्रस्वर्णताराहुणभित्तुरशिलाताप्यगन्धप्रवालाऽ-

योमुक्ताशङ्खुतालं वरमिदमनलकाथसः सप्त भावयम् ।
निर्गुण्डीसूरणाभ्यःपविरविषयसा त्रिः पृथक्वाच पीता-
नापूर्यतेर्वराटानथ मिहरपत्रश्वकणालिसवकत्रान् ॥ १ ॥
कृत्वा भाष्टे च रुद्धवा गजपुटजठरे युक्तिस्ततु पक्षवोद-
धृयैतन्मर्दयित्वा तदचिलतुलितं सूतभस्म प्रदद्यत् ।
वैकान्तं सूततुर्यशकमय मिलितं सततः त्रिप्रमुख-
त्वरभाव्य तेन तुश्यं विषमनलवरं टक्कण चोषणं च ॥ २ ॥
पथ्याजातीफलं चामरकुसुमकणानागरं वत्सनाभा-
न्त्यां चेलयित्वा पृथगथ दिवसं मद्देहद् भृक्ततोयैः ।
एष त्रैलोक्यचिन्तामणिरितिलगद्वान्तविष्वसहं-
स्तत्तद्वेगानुपानादुषसि कर्वलतः सार्धवल्पप्रमाणः ॥ ३ ॥
वाताद्याद्यामवातउवरजठरकृमिशासशूलात्त्वात-
सुविपन्त्वैर्थ्याकासहयकफजगदोरःक्षताजीर्णमेहे ।
कुष्ठातीसारपाण्डुग्रहणिषु तमकेऽथ वर्णाद्वैःप्रकृष्टे
स्वान्तये सखाल्लवात्तश्चिभगजगदे सद्वश्वैरप्रशस्तः ॥ ४ ॥

द्वितीय त्रैलोक्यचिन्तामणिरस योगतरङ्गिणी से—शुद्ध पारद, अन्नकमस्म, स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, शुद्धहिंगुल, हीरकभस्म, शुद्धमैनसिल, स्वर्णमाश्चिकभस्म-शुद्धगन्धक, प्रबालभस्म, लौहभस्म, मुक्ताभस्म, शङ्खभस्म, तालभस्म, इन सब को बोरावर लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अन्यान्य द्रव्यों को एकत्र मिलाकर मर्दन कर चित्त की जड़ के काथ में सात भावना देवे पुनः निर्गुण्डी का स्वरस, सूरन कन्द का स्वरस, सेंदुक का दूध और मदार का दूध इनसे पृथक् २ तीन तीन भावना दे—सुखा कर इसको पीली कौड़ियों में भरकर आक के दूध और

टक्कण के मिश्रित योग से मुख बन्दकर संपुट में रखकर पुटपाक की विधि से गजपुट में फूंक देवें। स्वांगशीत होने पर निकाल कर मर्दन कर जितना हो उसके समान पारद भस्म (रससिन्दूर) मिलावे और उसमें सिन्दूर के चतुर्थीश वैकान्त भस्म मिलाकर मर्दनकर सहिजन के जड़ की छाल के काथ में सात बार भावना देवे पश्चात् सब के समान शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण और चित्त मूल, शुद्ध टक्कण, मरिच, हर्दा, जायफर, लौग, पीपरि, सॉठि इनमें से प्रत्येक के चूर्ण को वत्सनाभ के चतुर्थीश मिलाकर सब को एकत्र मर्दनकर भांगरा के रस में दिनभर घोटे पश्चात् शुक्त हो जाने पर सेवन करे। यह त्रैलोक्यचिन्तामणि रस सब प्रकार के रोगरूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाला सूर्य के समान है। इसको प्रातःकाल रोगानुसार अनुपान के साथ आधे वड (१ रत्ती) के प्रमाण से सेवन करने से वातव्याधि, आमवात, ज्वर, उदररोग, कृमि, श्वास, शूल, वातरक्त, रक्तपित्त, क्षीणता, कास, क्षय, कफ के रोग, उरक्षत, अजीर्ण, प्रमेह, कुष्ठ, अतीसार, पाण्डुरोग, ग्रहणी, तमक श्वास, व्रण, अर्श, खजरोग, खजवात, आळवात, कर्ण रोग, योनि रोग आदि सब शान्त होते हैं ॥ १-४ ॥

अथ योगसाराचिन्तामणिरसः—

रसेन्द्रवैकान्तकरौप्यताञ्च-सलोहसुकाफलगन्धेयम् ।

त्रिर्भवितं चार्दर्कभृकवृह्नि-सैरजागोपयसा तथैव ॥ १ ॥

अश्वः च्युं कासमरोचकं च-जीर्णज्वरं पाण्डुमणि प्रमेहान् ।

गुज्जाप्रमाणं मधुमाघाधीभ्यां-लींदं निहन्याद्विषमं च वातम् ॥ २ ॥

चिन्तामणिरिति रुयातः पार्वत्या निर्मितः स्वयम् ॥ ३ ॥

योगसार से चिन्तामणि रस—शुद्ध पारद, वैकान्तभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म मुक्ताभस्म, शुद्धगन्धक, स्वर्णभस्म, सबको समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अन्यान्य द्रव्यों को मिला मर्दन कर अद्रक का रस, भागरे का रस, चित्रकमल का काथ, बकरी का दूध और गाय का दूध इनकी पृथक् २ तीन २ भावना देकर सुखाकर रख लेवे। इसको एक रत्ती के प्रमाण से अनुकूल अनुपान के साथ सेवन करने से अर्श, क्षय, कास, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, प्रमेह, आदि नष्ट होते हैं यदि एक रत्ती ओषधि मधु और पीपरि के चूर्ण के अनुपान से सेवन करे तो विषमवात नष्ट होता है। यह रस 'चिन्तामणि' के नाम से प्रसिद्ध है। इसे पार्वतीजी ने स्वयं बनाया था ॥ १-३ ॥

अथ वसन्तकुसुमाकरः

योगतरङ्गिण्याः—

प्रवालरसमैकिकाभकमिदं चतुर्मागभाक-पृथगवृथगतः स्मृते रजतहेमनी द्वयंशके ।

अयोमुजगरङ्गकं त्रिलवक विमर्शाद्विल-शुभेऽहनि विभावेन्द्रियिदं धिया सप्तशः ॥ १ ॥

द्रवैर्वृथानिशेष्वृजैः कमलमालतीपुष्पजैः-पयः कद्वलिकन्दजैमलयचन्दनादुम्बैः ।

वसन्तकुसुमाकरो रसपतिर्द्विष्वोऽशितः-समस्तगदहृद्वेदिकल निजानुपानैरयम् ॥ २ ॥

क्षिणोर्थनु मधुयूषैः क्षयगदेषु सर्वेष्वपि-प्रमेहरुजि रात्रिमि समधुशकराभिः सह ।

सितामलयजद्वैर्महति रक्तपित्तेऽथवा-लितामधुसमन्वितैवृथभप्लवाना द्रवैः ॥ ३ ॥

त्रिजातागुहचन्दनैरैप च तृष्णिषुप्रदो-मनोभवकरः परो बमिषु शङ्खपुष्पीरसैः ।

अभीरुहसशकरामधुभिरग्न्यपित्तमये-परेषु च यथोचितं ननु गदेषु संसेवयेत् ॥ ४ ॥

वसन्तकुसुमाकर रस—प्रवालभस्म, रससिन्दूर, सुक्ताभस्म, अन्नकमस्म, प्रत्येक चार-चार तो० लेवे, पुनः रौप्यभस्म २ तो०, स्वर्णभस्म २ तो०, लेवे और लौहभस्म, नागभस्म, वंगभस्म,

प्रत्येक ३-३ तोले शुभ दिन में लेकर एकत्र सब को मर्दन करे पश्चात् आगे लिखे द्रव्यों के स्वरस या काथ में सात-सात बार पृथक् २ भावित करे। अरुसा, हल्दी, ईंध, कमल के फूल, मालती के फूल, दूध, केले की जड़, मलयगिरि चन्दन, इन द्रव्यों से भावित कर सुखा कर रख लेवे। यह 'वसन्तकुसुमाकर रस' है, इसको दो बल (चार-पसी) के प्रमाण की मात्रा से रोगों के अनुसार अनुपान विशेष से सेवन करने से सभी रोगों को नष्ट करता है। यदि मधु और मरिच के चूर्ण के अनुपान से सेवन किया जावे तो सब प्रकार के क्षय रोग को नष्ट करता है, और हल्दी के चूर्ण शर्करा और मधु के अनुपान से सब प्रकार के प्रमौह को नष्ट करता है, भिन्नों और मलयगिरि चन्दन के विसं दुए रस से सेवन करे तो प्रश्नद रक्तपित्त नष्ट होता है अथवा शर्करा मधु और अरुसा के पत्तों के स्वरस के अनुपान से सेवन करे तो रक्तपित्त नष्ट होता है। इलायची, दाल-चीनी, तेजपत्ता, अगर और चन्दन के चूर्ण के साथ सेवन करे तो तुष्टि (तुष्टि) पुष्टि और काम को बढ़ाता है, शङ्खपुष्पी के स्वरस से सेवन करे तो वमन नष्ट होता है। शतावरि का रस, शर्करा और मधु के अनुपान से अम्लपित्त नष्ट होता है। और २ रोगों में भी उचित अनुपान से सेवन करने से सब को नष्ट करता है॥ १-४ ॥

अथ लोकेश्वरः

पलं कपरद्यूर्णस्य पलं पारदग्नश्योः। माषषट्कणकस्थैको जस्वीराद्विर्मद्येत् ॥ १ ॥
पुदेष्वाकेश्वरो नाम्ना लोकनाथोऽयमुत्तमः। ऋते कुष्ठं रक्तपित्तमन्यरोगान्ध्यं नयेत् ॥ २ ॥
पुष्टिवीर्यप्रसादौजःकान्तिलावण्यदः परः। कोऽस्ति लोकेश्वरावन्यो नुणां शाश्वत्सुखोद्गतात् ॥

लोकेश्वरस—शुद्ध कीड़ी का चूर्ण एक पल (चार तो०), शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की समान मिश्रित कजली एक पल, शुद्ध टक्कण एक मासा, सब को एकत्र कर जमीरी नीबू के रस में मर्दन करे पुनः शराब संपुट में रख कर पुटपाक की विधि से गजपुट में पूँक देवे। स्वांगशीत होने पर निकाल—मर्दन कर इस 'लोकनाथ' नामक उत्तम रस का सेवन करने से कुष्ठ और रक्तपित्तरोग को छोड़ कर अन्य सभी रोगों को यह नष्ट करता है। अर्थात् कुष्ठ और रक्तपित्त में नहीं सेवन करना चाहिये। यह रस पुष्टि, वीर्य, प्रसन्नता' ओज, कान्ति और लावण्य को देता है। इस 'लोकेश्वर रस' के सिवा और कौन रस शिव के सुख से निकला हुआ मनुष्यों के लाभ के लिये है ? अर्थात् मनुष्यों के लाभ के लिये शिवजी ने अपने सुख से प्रकाशित किया है॥ १-३ ॥

अथलोकेश्वरपोद्गतीरसः

इसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकृत्येत्। द्विगुणं गन्धकं दत्त्वा मर्दयेज्जित्रकाश्वना ॥ १ ॥
चराटकांशं संपूर्यं टंकणेन निरुद्धय च। भाष्टे चूर्णप्रलिसेऽय शीत्रं रुद्धयात् मृन्मये ॥ २ ॥
शोषयित्वा पुटपूर्त्तिरश्रिमात्रेऽपशाहुके। श्वाङ्गशीतलसुद्धृत्यं चूर्णयित्वाऽथ दिन्यसेव ॥ ३ ॥
पृष्ठ लोकेश्वरो नाम्ना वीर्यपुष्टिविवर्धनः। गुज्जाचतुर्थ्य स्वादेषिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ ४ ॥
मध्येत्परया भक्षया लोकेशः सवानाशनः। अङ्गकाशयेऽग्निमान्धे च कासे पित्त रसस्वयम् ॥
मरिचवृत्तसंयुक्तः प्रदा तद्यो दिनवृत्तम्। लवणं वर्जयेत्तत्र साज्यं द्विष्ट च योजयेत् ॥ ५ ॥
एकविश्वरथ्यहानीरथं मरिचं सघृतं पिवेत्। पृथं शृगांकवज्ञेयं शायीतोत्तानपादतः ॥ ६ ॥

ये शुष्का विषमाशनैः श्वयस्त्वा श्वयाश्व ये कुष्ठिनो

ये पाण्डुवृत्ताः कुवैष्विधिमा ये शोषिणो दुर्भगाः।

ये तस्म विषधिर्वर्त्त रेभ्रमसदोन्मादैः प्रमादं गता-

स्ते सर्वं विगतामया हि परया स्युः पोद्गतीसेवया ॥ ८ ॥

लोकेश्वरपोद्गतीरस—पारद भस्म अथवा रससिन्दूर १ भाग, स्वर्णभस्म चतुर्थीश और शुद्ध गन्धक दो भाग लेकर चित्रकम्ल के स्वरस के साथ मर्दन करे, भली भाँति घुट जाने पर कौदियों में भर कर टक्कण से सुंह बन्द कर एक मिट्टी के पात्र में भीतर दो अंगुल मोटा चूना का लेप कर उसमें उपर्युक्त कौदियों को भर कर उस मिट्टी के पात्र का सुंह शीत्र बन्द कर मिट्टी लगा सुखा कर अरतिन मात्र (निसुठ हाथ) गहरे गढ़े में रख कर पुटपाक की विधि से प्रातः पुट देकर अपराज में जब स्वाङ्गशीत हो जावे तब निकाल कर उसमें से औषध निकाल कर चूर्ण (इलक्षण बारितर) कर रख लेवे। इस रस का नाम 'लोकेश्वर रस' है, यह वीर्य तथा पुष्टि को बढ़ाने वाला है, इसकी ४ रत्ती के प्रमाण से मधु तथा पीपरि चूर्ण के अनुपान से सेवन करना चाहिये। इस लोकेश्वर को अत्यन्त भक्ति से सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है और अङ्गों की दुर्बलता, अग्निमान्ध, कास और पित्त रोग में यह रस लाभ करता है। इसे मरिच चूर्ण और धूत के अनुपान से तीन दिन सेवन करे और नमक नहीं खावे, धीं और दही का पथ्य लेवे। यदि २१ दिन तक मरिच के चूर्ण और धूत के अनुपान से सेवन करे और मृगाङ्क सेवन के समान पथ्य करे और उत्तान ही सोबे तो जो सूख गये हों, जिन्हें विषम भोजन के द्वारा क्षयरोग हुआ हो, जिन्हें कुष्ठ हो, जो पाण्डुरोगी हों, कुवैष्व के कारण जिन्हें शोष रोग हो, जो मलिन हो गये हों, जो अनेक प्रकार के ज्वरों से संतप्त रहते हों, भ्रम-मद और उन्माद के रोगी हों वे सब इस पोद्गती के सेवन से रोगमुक्त हो जाते हैं॥ १-८ ॥

अथ प्राणदा पर्षटी

सूताम्रायोऽहिवक्षोषणविषं भस्मिलाशेन गन्धेन लोहां-
कोलाग्नौ विद्वतेन च्छममथ मिलितं दालितं गोमयस्ये ।
रम्भापत्रेऽमुनाऽन्येन च दृष्टिप्रिहितं प्राणदा पर्षटी स्या-
स्पाण्डां रेके ग्राण्ड्यां उवरक्षिति कसने यथममेहाग्नि स्मद्द्वे ॥ १ ॥

प्राणदा पर्षटी—शुद्ध पारद, अश्रुकम्लस्म, लोहभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, मरिच चूर्ण और शुद्ध मीठा विष सब समान भाग लेकर सबके तुल्य शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम कजली कर सब औषधियों को एकत्र कर मर्दन कर एक लौह पात्र में रख कर वैर की लकड़ी के अथवा कोयले की अग्नि पर रख कर तपावे जब तपु कर सब एक में शुलभिल जावे तब सबको लौह सलाई से चला कर एक जी करके भूमि पर गोवर विलाक्ष कर उसपर एक केले के पत्ते रख कर उस पत्ते पर ढाल दे और ऊपर से भी एक पत्ता देकर (गोवर जिसके पीठ पर लगा हो) भली प्रकार पर्षटी विधि से दवा देवे इससे दवा पपरी ऐसी बैठ जावेगी। इसे 'प्राणदा पर्षटी' कहते हैं, इसे पाण्डु, अतीसार, यग्नी, ज्वर, अरुचि, कास, व्यक्षमा, मेह और मन्दिविन में रोगानुसार अनुपान से देने से उक्त सब रोगों को नष्ट करती है और अनुपान विशेष से सेवन करने से सभी रोगों को नष्ट करती है॥ १-२ ॥

अथ कुमुदेश्वरो रसः

रसार्णवात्—

पारदं शोषितं गन्धमभ्रकं च समं समस् । तदर्धं दरदं दद्यासदधं च मनःशिलाम् ॥ १ ॥
सम्बाधं सुतलोहं च लक्ष्मव्यध्ये विनिच्छिपेत्। द्विःसप्तभावना देवाः शतावर्या रमेन च ॥ २ ॥
ततः सिद्धो भवत्येषु कुमुदेश्वरसंज्ञकः। सित्तथा मरिचेनाथ गुज्जाऽद्विग्रिप्रमाणतः ॥ ३ ॥
भ्रमयेत्प्रातसूत्याय पूज्यित्वेष्टवेत्ताम् । यथमाणसुग्रं हस्तयेषु वातपित्तकामयान् ॥ ४ ॥

ज्वरादीनखिलान् रोगान् यथा दैत्याज्जनार्दनः । सततम्यासयोगेन वलीपलितनाशनः ॥५॥
रसार्थं से कुमुदेश्वरस—शुद्ध पारद गन्धक और अब्रक भस्म सब समान अर्थात्
एक २ भाग ले, शुद्ध हिंगुल आधा भाग और शुद्ध मैनसिल चौथाई भाग ले और सब मिलकर
जितना हो उससे आधा लोहभस्म लेकर प्रथम पारद—गन्धक की कज्जली कर सब को एकत्र
मर्दन कर शतावरि के रस की १४ भावना देकर सुखाकर रख लेवे, यह ‘कुमुदेश्वर’ नाम का रस
है। इसको दो तीन रक्ती के प्रमाण की मात्रा से शकरा और मरिच के अनुपान से इष्टदेव का
पूजन कर सेवन करने से अत्यन्त बड़ा यक्षमारोग- वात-पित्त और कफ के रोग, सब प्रकार के
ज्वर तथा अन्य सब रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार दैत्यों को जनार्दन नष्ट करते
हैं और निरन्तर सेवन करने से वलीपलित रोग नष्ट होता है ॥ १-५ ॥

अथ पञ्चामृताख्यो रसः

सारसंग्रहात्—भस्मीभूतसुवर्णतारविनकृतसूताभ्रसत्त्वे क्रमात्
संचुदेश्वितयं त्रिभिः—कृमिहराम्भोद्युत्तः कट्टकलः ।

निर्गुण्डीदशमूलवह्निरज्ञीरथोपाद्वंक्षेभावितो ।

गोलीकृत्य विशेषितो निगदित पञ्चामृताख्यो रसः ॥ १ ॥

नामेन सहशः कोउपि रसोऽस्ति भ्रुवनश्रये । निहनित सकलान्नोगान् भवरोगमित्याच्युतः ॥ २ ॥
सर्वरोगाहरः सूतस्तत्त्वद्वागानुपानतः । अथं पञ्चामृतो नृणां त्रिदशानामित्यामृतम् ॥ ३ ॥

सारसंग्रह से पञ्चामृताख्य रस स्वर्ण भस्म १ भाग, रौप्य भस्म २ भाग, तात्र भस्म
३ भाग, पारद भस्म वा रससिन्दूर ४ भाग और अब्रक भस्म ५ भाग इस प्रकार क्रम से बृद्धि-
पूर्वक सब को लेकर एकत्र मर्दन कर विडङ्ग, नागरमोथा, कायफर, सम्भाल, दशमूल, चित्त,
हृतिदा, त्रिकुट और अब्रक के स्वरस वा काथ से पुथक-पुथक ९ दिन तक एक २ भावना देकर वटी
बना कर सुखा लेवे । इसको ‘पञ्चामृत रस’ कहते हैं । इस रस के समान तीनों लोक में कोई रस
नहीं है । इसको उचित अनुपान से सेवन करने से सम्पूर्ण रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है
जिस प्रकार भगवान का चिन्तन सासारिक रोगों को नष्ट करता है । और यह ‘पञ्चामृत रस’
मनुष्यों के रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार अन्त देवताओं के दुःख को नष्ट करता
है अर्थात् यह असृत के समान है ॥ १-३ ॥

अथ योगसारात् हेमाभ्रकरससिन्दूरः

अब्रक रससिन्दूरभित्तिं हेमभ्रमना । समभागं प्रकुर्वति रसेनाऽद्वंक्षेभ्योजितम् ॥ १ ॥
चयं च क्षयपाण्डु च क्षयकासं च कुष्ठकम् । जयेन्मण्डलपर्यन्तं पूर्वकर्मविपाकहृष्टः ॥ २ ॥

योगसार से हेमाभ्रक रस—अब्रक भस्म, रससिन्दूर और स्वर्ण भस्म सब समान लेकर
मर्दन कर अब्रक के रस के अनुपान से सेवन करने से क्षय, क्षयज पाण्डु, क्षयज कास, कुष्ठ और
मण्डल कुष्ठ तथा पूर्व कर्मों के विपाक से होने वाले अर्थात् पूर्व जन्म के पाप से होने वाले रोगों
को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ शिलाजत्वादिलोहम्

शिलाजत्वादिलोह—विधिपूर्वक शोधित-मारित लौह भस्म और शिलाजीत दोनों समान
मिलित बल (२ रक्ती) प्रमाण की मात्रा से सेवन करे और पथ्य से रहे तो यक्षमा रोग नष्ट
होता है ॥ १ ॥

अथ सुवर्णपर्पटीरसः

शुद्धं सुवर्णबलमषुगेन शुद्ध-सूतेन विषिद्धतमयो वसुभागभाजि ।

गन्धे द्रुते बद्रवह्निषु लोहपात्रे दशवाऽवलोक्य लघुलोहशालाकथा तम् ॥ १ ॥

मन्दं निरस्य सुरभीमलमण्डमस्ये रम्भादके तदुपरि प्रणिधाय चान्यत् ।

रम्भादलं लघु नियन्त्य तदाददीति शीतं सुवर्णरसपर्पटिकाभिधानम् ॥ २ ॥

वित्तस्वप्ने ससितया त्रुगायाऽथ वातस्त्वेष्मोहवप्ने किल त्रुगामधुपिष्पलीभिः ।

शीणे विरेकिणि च शोधिणि मन्दवह्नीपाण्डु प्रमेहिणि विरजवरिणि ग्रहणयाम् ।

वृद्धे शिशौ सुविनि रात्रि तथैव नार्था भैषज्यमेतदुदितं हितमामयम् ॥ ३ ॥

सुवर्णपर्पटी रस—शुद्ध स्वर्ण पत्र (वर्क) एक भाग, शुद्ध पारद ८ भाग और शुद्ध गन्धक

८ भाग लेकर कज्जली कर एकत्र मर्दन कर लौहे के पात्र में रख कर वैर के लकड़ी की अशि

पर तपावे जब सब छुलमिल जावे तब लौहे के सलाके से चलाकर गोबर पर रखते हुए केले के

पते पर पर्पटी की विधि से गिरा कर केले के पते से दबा देवे जब शीतल हो जावे तब इस

‘सुवर्णपर्पटी’ को उठा कर रख लेवे । इसको पित्तोत्पत्त यक्षमा में शकरा और वंशलोचन के

अनुपान से, बात कफोत्पत्त में वंशलोचन, मधु और पीपरि के चूर्ण के अनुपान से देवे तो यक्षमा

(त्रिदोषज) नष्ट होता है । क्षीणिता, अतीसार, शोष, मन्दाग्नि, पाण्डु, प्रमेह, पुराना ज्वर और
ग्रहणी के रोगी, वृद्ध, बालक, सुकुमार, राजा और क्रियों के लिये यह औषधि हितकारी तथा रोग-

नाशक कहा गया है ॥ १-३ ॥

अथ सर्वसेवेषु मृत्युज्जयरसः

त्रिकुटि त्रिकुटा सूतगन्धकी टङ्कणं विषम् । यद्यु निशा कुवेराची दन्तीबीजमयापि च ॥ १ ॥

पृतानि समभागानि खस्वमस्ये विनिचिपेत् । भृङ्गाजरसेनैव मद्येत्रिदिनं भिषक् ॥ २ ॥

गुटिका माषमात्रास्तु छ्यायाशुक्षाश्च कारयेत् । अनुपानविशेषेण सर्वरोगेषु योजयेत् ॥

मृत्युज्जयरसो नाम सर्वरोगविद्वाणः ॥ ३ ॥

मृत्युज्जय रस—(सब रोगों में)—सौंठि, पीपरि, मरिच, अवरा, हर्दी, बहेरा, शुद्ध पारद,
शुद्ध गन्धक, शुद्ध टङ्कण, शुद्ध विष, मुलदृढ़ी का चूर्ण, हल्दीचूर्ण, कुवेराची (करंजवा), शुद्ध दन्ती
बीज सबको समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्यान्य औषधियों के उत्तम चूर्ण
को एकत्र कर भांगरे के रस के साथ तीन दिन तक मर्दन कर उरद के समान बटी बना कर
छाया में सुखा, लेवे, इसको रोगानुसार अनुपान से सब रोगों में सेवन करे । यह ‘मृत्युज्जय’ नाम
का रस सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

रक्तवर्णहेमगर्भरसः—

हिङ्गुलं कर्यमात्रं तु मद्येत्खस्वमध्यगम । सुवर्णं माषमेकं च तस्ममं पारदं विषेत् ॥ १ ॥

मद्येत्रित्वा विषेत्प्र गन्धकं द्याघ्माषकम् । मद्येत्रिकज्ञीर्बैन्धवेष्टमध्यगम ॥ २ ॥

भूधरे पाचयेद्यान्ते कुकुटीतुष्टिते च । पुनर्वस्त्रण संवेष्टय तस्योपरि च गन्धकम् ॥ ३ ॥

वस्त्रमेकत्र वधनीयात् पुनर्यन्त्रेण पूर्ववत् । हेमगर्भस्तो नाम अहणाहणसज्जिभः ॥ ४ ॥

सर्वरोगेषु दातव्य एकके हिंद्रियोषजे । त्रिदोषे आद्वकरसैमधुकुरुः प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

* रक्तवर्ण हेमगर्भ रस—शुद्ध हिंगुल १ कर्ष लेकर खरल में बोट कर उसमें स्वर्ण भस्म
१ मासा और पारद १ मासा देकर थोट कर शुद्ध गन्धक २ मासा देकर थोट कर आक का दूध
देकर धोटे । पश्चात् एक वस्त्र में बांधकर ‘भूधर यन्त्र’ में पुष्टपाक विधि से त्रुक्कट पुष्ट देवे, पुष्ट
सिङ्ग होने पर निकाल कर पुनः थोटकर वस्त्र में बांधकर थोड़ा शुद्ध गन्धक ऊपर से दे पुनः दूसरे

वक्ष से वांधकर पूर्ववर्त 'भूधर यन्त्र' में कुकुट पुटदेकर निकाल कर पीस ले । लाल रंग का यह 'हेमगर्भ रस' नामक रस है । इसको सब रोगों में एवं एक दोष वाले, दो दोष वाले और तीन दोष वाले सन्निपात में देना चाहिये । त्रिदोष में अद्रक के रस और मधु के अनुपान से देना चाहिये ॥ १-५ ॥

उच्चरणः शमनीयो यः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः । यचिमणां उच्चरदाहेषु स सर्पिलु प्रशस्यते ॥ १ ॥
पथ्यापथ्य—ज्वरों को शान्त करने की जो क्रिया तथा विधि पहले पहले कह आये हैं तथा जो यक्षमा रोगियों के ऊर-दाहादि में धृतादिक प्रशस्त (हितकर) कहे गये हैं वे योग भी यहां पर हितकर हैं ॥ १ ॥

नित्यं स्वदेवपूजाभक्तिभैरव्यदेवतापुरुषु । छागलमासपयोऽश्वलीचित्यशमीचिरंघृतिमान् ॥
नित्य इष्टदेव की पूजा देवता और गुरु में भक्ति, ओषधि सेवन, नित्य बकरी के मास और दूध का सेवन और धैर्य रखना यह सब कर्म यक्षमा के रोगी को अधिक दिन तक जीवित रखता है अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ २ ॥

उपद्रवाश्च स्वरवैकृतादी-अयेदथास्वं प्रसमीयथ शास्त्रम् ।

त्वंतेकुवैद्यप्रतिपादितानि बुद्धो विशदानि च भेषजानि ॥ ३ ॥

शास्त्र देखकर उसके अनुकूल क्रिया से स्वरंगादि उपद्रवों को शान्त करे, कुवैद्य की कही छुई औषध तथा रोग और प्रकृति के विरुद्ध कर्म को बुद्धिमान रोगी त्याग देवे ॥ ३ ॥

गीतावादिव्यशश्वदेश्य प्रियस्तुतिभिरेव च । हर्षणश्वासनैनिन्यं गुरुणां समुपासनैः ॥ ४ ॥

श्वाचर्येण दानेन तपसा देवतार्चनैः । सत्येनाऽच्चारयोगेन रविमण्डलसेवया ॥

बैद्यविप्राचीनाच्चैव रोगराजो निर्वर्तते ॥ ५ ॥

मधु गीत, मधुर बाजा, प्रिय शब्द, प्रिय स्तोत्र, हर्ष तथा आशासन (सान्त्वना) दायक वचन इन सर्वों के सुनने से तथा गुरुजनों के समीप बैठने और सेवा करने से, ब्रह्मचर्य, दान, तप, देवपूजन, सत्य तथा सदाचार के पालन से, सूर्य मण्डल के सेवन से अर्थात् धूप-वायु वाले खुले स्थान में रहने से, दैव, ब्राह्मण आदि की सेवा करने से योगराज यक्षमा नष्ट होता है ॥ ४-५ ॥

अथोरःक्षतनिदानम्

धनुराकर्पतोऽस्यर्थं भारसुद्धहतो गुरुम् । युद्धमानस्य बलिभिः पततो विषमोक्षतः ॥ १ ॥
धृष्णं हयं वा धावन्तं दृश्यं चान्यं निगृहतः । शिलाकाष्ठाश्वमनिर्भातानिक्षपतो निघ्नतः परान् ॥
अधीयानस्य वाऽस्युच्चैर्दृश्यं वा बजतो हुतम् । महानर्दीं वा तत्तो हयैर्वा सह धावतः ॥ २ ॥

सहस्रोक्षततो दूरं तूरं चाव्यतिनृत्यतः । तथाऽन्यैः कर्मभिः क्रैर्भुशमन्या हतस्य च ॥ ३ ॥

स्त्रीषु चातिग्रसकस्य रुचावप्रसिताशिनः । विद्धते वक्षसि व्याचिक्वलवान्समुदीर्यते ॥ ५ ॥

उरःक्षत का निदान—अत्यन्त धनुष को खींचने अर्थात् चलाने में अधिक परिश्रम करने से, अपनी शक्ति से अधिक भार (बोझ) ढोने से, अपने से अधिक बलवान से युद्ध करने से, विषम तथा ऊंचे स्थान से गिर जाने से, बैल-घोड़े आदि दौड़ते हुए पशुओं को शक्ति से अधिक बलपूर्वक रोकते से चट्टान या लकड़ी फेक कर दूसरे को मारने से, अधिक उच्चस्वर से, बलपूर्वक पढ़ने से, शक्ति से अधिक दूर तक तीव्र गति से चलने वा दौड़ने से, बड़ी नदी को शक्ति से अधिक बलपूर्वक तैरने से, घोड़े के साथ अधिक दौड़ने से, लम्ही २ छलांगें लगाने से, शीघ्र २ अधिक नाच करने से, तथा अन्यान्य कठिन कामों को करने से जब अधिक आशात वक्षःस्थल में होता है तब उससे और अधिक ली प्रसंग से, रुक्ष-धोड़ा और परिमित भोजने करने

से वक्षःस्थल में आघ्रात होकर वक्षःस्थल विदीर्ण हो जाता है और उरःक्षत नाम की बलवान व्याधि उत्पन्न हो जाती है ॥ १-५ ॥

तस्य लक्षणम्—

उरो विरुद्धतेऽस्यर्थं भिष्यतेऽथ चिद्द्वाते । परीच्यते ततः पार्श्वे शुच्यस्यकं प्रवेपते ॥ ६ ॥

क्रमाद्वीर्यं बलं चर्णो रुचिरप्रियं हीयते । उरो व्यथा मनोदैन्यं विड्मेदोऽस्मिवधस्तथा ॥ ७ ॥

दृष्टः इवावः सुदुर्गम्भिः पीतो विग्रथितो बहुः ।

कासमानस्य चाभीष्मां कफः मासुकं प्रवर्तते ॥ ८ ॥

स द्वितीयत्वेऽस्यर्थं तथा शुक्रोजसोः इवात् ।

लक्षण—उरःक्षतरोग में वक्ष में अत्यन्त पीड़ा होती है, वक्ष विदीर्ण हो रहा है ऐसा मालम होता है, वक्ष में दाह होता है। पार्श्व देशों में पीड़ा होती है, अङ्ग सूखने लगता है, शरीर में कम्पन होता है और क्रम से अर्थात् एक के बाद दूसरा इस प्रकार वीर्य, बल, वर्ण, रुचि और अश्व नष्ट हो जाती है और ऊर होता है, शरीर में पीड़ा तथा मन में गलानि होती है, मल पतला और अधिक निकलने लगता है, अश्व नष्ट हो जाती है, तथा दूषित, श्यामर्वण का, दुर्बल्युता, पीतवर्ण का, गांठ की तंरह (मास के टुकड़े के समान), अधिक प्रमाण में, रक्त सहित, कफ कास के साथ निकलता है इन सब कारणों से तथा वीर्य और ओज के क्षीण होने से क्षत का रोगी अत्यन्त क्षीण हो जाता है अर्थात् ये सब उपर्युक्त लक्षण जिसमें हों उसे उरःक्षत हुआ जानना चाहिये ॥ ६-८ ॥

तस्य पूर्वरूपम्—अद्यत्वं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ ९ ॥

उरोकष्टकोणितश्विदिं कासो वैशेषिकः ज्ञते । द्विषो सरक्षमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ १० ॥

पूर्वरूप—और जब तक ये लक्षण प्रकट नहीं हों उसे पूर्वरूप जानना चाहिये अर्थात् यह रोग एकाक्षर होता है पूर्वरूप इसका नहीं होता है । फिर भी विशेष करके वक्ष में पीड़ा, रक्तमन और कास ये उरःक्षत में होते हैं । क्षीण के लक्षण (रूप)—रोगी जब अधिक क्षीण हो जाता है तब रक्त मिश्रित मूत्र होता है, पार्श्व देश, पृष्ठ और कटि भाग जकड़ जाता है । यह क्षीण होने के लक्षण हैं ॥ ९-१० ॥

अल्पलिङ्गस्य दीप्तामोः सास्थ्यो बलवतो नवः ।

परिसंवासरो वाप्यः सर्वलिङ्गं विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

साध्यासाध्य लक्षण—यदि रोग के लक्षण कम हों, अङ्ग दीप्त हो, रोगी बलवान हो और रोग नया हो तब 'साध्य' जानना चाहिये । यदि रोग एक वर्ष तक का हो तो 'याप्त' जानना चाहिये । और सर्व लक्षणों वाला त्याग देना चाहिये अर्थात् उसे असाध्य जानना चाहिये ॥ ११ ॥

अथ उरःक्षतचिकित्सा

उरोमन्थी द्वितीयाजान्प्रयसा मधुसंयुतान् । सर्व पूत्र पिबेत्तीर्णे पर्यसाऽच्यासकरम् ॥ १२ ॥

उरःक्षत की चिकित्सा—उरःक्षत वाला रोगी धान की खील लेकर उसमें मधु और गोदुग्ध मिला कर शीघ्र ही पी लेवे और उसके पत्र जाने पर दूध और शर्करा के साथ पुनः धान की खील का पथ्य लेवे ॥ १ ॥

पार्श्वबस्तितस्तजि एवपित्तामिस्तान्सुरायुतान् ।

बलाश्वगन्धाश्रीपर्णीबुपुश्रीपुनर्वातः ॥ २ ॥

पर्यसा नित्यमध्यस्ता: शमयन्ति उरःक्षतम् । शर्करामधुसंयुक्तं जीवकर्षमकौ मधु ॥ ३ ॥

लिङ्गारक्षीरानुपानानि रक्तद्वीणासरः कृषः । नीलिकातिविषाग्रविषयकेसरचम्दनैः ।

श्रुतं पयो मधुयुतं संधानार्थं पिबेत्स्वती ॥ ४ ॥

यदि पार्श्वदेश और ब्रह्मित स्थान में पीड़ा हो तथा रोगी को पित्त और अग्नि अध्य हो तो खीलों को मुरा के साथ सेवन करावे । बला (बरिथारा), असगन्ध, श्रीपर्णी (गंभारी के फल), शतावरि और पुनर्नवा इनको गोदुख्य के साथ नित्य सेवन करने से उत्तरक्षत शमन होता है । शक्कर और मधु के अनुपान से जीवक और ऋषभक के चूर्ण को चाट कर गोदुख्य पान करने से रक्त निकलने से क्षीण हुआ मनुष्य तथा अन्य कारणों से दुर्बल मनुष्य पुनः पुष्ट हो जाता है । नीलिका (नील), अतीस, नागरमोथा, कमलकेसर, लालचन्दन इन औषधियों से पकाये दूध में मधु का प्रक्षेप देकर पाने से उत्तरक्षत वाले रोगी का विदीर्ण वक्षःस्थल जुट जाता है ॥ २-४ ॥

लालाचूर्णं सुष्टु कृतं चौद्राजयेन। निवतं सीरम् ।

शमयति शोषोद्भूतं धमनं रक्षस्य सिद्धमिव ॥ ५ ॥

लाख के इक्षण चूर्ण में मधु, गोदृत तथा गोदृष्ट मिलाकर पीने से शोष से उत्पन्न रक्त-बमन अवश्य शमन हो जाता है। यह सिद्ध है॥ ५॥

अथैलादिग्रटिका

पुलापत्रवचोदधाच्चाः पिप्पलयर्थपलं तथा । सिवामधुकखर्जरसूक्ष्मीकाशं पलोनिमताः ॥ १ ॥
सम्बन्ध्युर्यं मधुना युक्ता गुटिकाः संग्रकल्पयेत् । अष्टमाचास्ततश्चकां भस्येष्व दिने दिने ॥ २ ॥
कासं श्वासं उवरं हिङ्का छुर्दिं मूळ्हर्णं मदं अमम । रक्तनिष्ठीवनं तुष्णीं पाशवंशूलमरोचकम् ॥
शोषप्लीहाद्यवातांश्च स्वरस्मेदेव चन्द्रयम् । गुटिका तपेणी वृद्ध्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥ ३ ॥

एलादि गुटिका—इलायची के दाने का चूर्ण तेजपात का चूर्ण और दालचीनी का चूर्ण प्रत्येक आधे २ अक्ष (आधा २ तोला), पीपरि का चूर्ण आधा पल (दो तो०), मिश्री, मुलहठी का चूर्ण, खजूर का फल (छुहारा) बीज रहित और मुनक्का प्रत्येक एक २ पल लेकर पीस कूट कर मधु के सहारे बटी बना कर एक दिन में एक कर्ष के प्रमाण से इस बटी का सेवन करने से कास, श्वास, ऊंचार, हिक्का, वमन, मूच्छा, मद, भ्रम, रक्तवमन, तृष्णा, पाश्वशूल, अरुचि शोष, प्लीड़ा, आठ्यवात, स्वरभेद, क्षत और क्षयरोग नष्ट होता है । तथा यह गुटिका त्रुसिकारक और बृद्धि है तथा रक्तपित्तरोग को नष्ट करती है ॥ १-४ ॥

अथ यष्टुयाद्यं घृतम्

यष्ट्याद्वनागवलयोः क्षाथे श्रीसमं धृतम् । पथसा पिपलीवांशीकलकसिद्धं वर्ते हितम् ॥१॥
 यष्ट्यादि धृत—मुलहठी और नागवला (ककड़ी) को समान लेकर अष्टगुण जल के साथ विधिपूर्वक काथ करे चतुर्भौश शेष रहने पर इस काथ में काथ से चतुर्भौश मूर्छित गोधृत और धृत की समान मात्रा में गोदुध और दूध से चतुर्भौश पीपरि-वशलोचन समान मिलित का कलक मिला कर धृतपाक विधि से धृत पका लेवे । इस धृत का दूध के अनुपान से सेवन करने से उरःक्षतरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ बुद्धाद्यं घटम्

घृतं बलानाशबलार्जनाम्बु-सिद्धं सयष्टीमधुकलकपादम् ।

हृदोगशूलस्तरक्षपित्त-कासानिलान्संशयत्युदीर्णन् ॥ १ ॥

वलादिधृत—बला, नागबला और अर्जुन की छाल समान लेकर अष्टगुण जल के साथ विधि-पूर्वक क्षाय करे चतुर्थीशं शेष रहने पर उतार कर जितना हो उसके चतुर्थीशं मूर्च्छित गोधृत और धृत के चतुर्थीशं जेठी मधु का कल्प मिलाकर धृतपाक विधि से धृत सिद्ध कर सेवन करने से हृदयं, शरू, उत्तरःक्षत, रत्तपित्त, कास तथा अत्यन्त बढ़े हुये वात का शमन होता है ॥ १ ॥

अथ शबदंष्ट्राद्यं घृतम्

भद्रद्वैशीरमसिष्ठावलाकाशमर्थकत्तणम् । दर्भमूलं पृथक्पर्णीं वला सर्वपिका स्थिरा ॥ १ ॥
पलिकान्माधवेत्तेषां रसे लीरे चतुर्गुणे । कल्पकैः स्वगुणावधार्मेदाजीवनितजीवकैः ॥ २ ॥
शतावर्षादिमृद्धीकाशकर्त्तराश्रावणीवृष्टैः । प्रस्थः सिद्धो वृत्ताद्वात्पित्तहद्वैगगुणमनुत् ॥ ३ ॥
मूत्रकृद्वप्तमेहाहास्याकासशोषष्वयापद्धः । धनुस्तद्भाष्माधभाराधवक्षीणाना वलमासदः ॥ ४ ॥

इवद्वयादि धृत—गोखरु, खस, मंजीठ, बला, गम्मारि, रोहिस-तुण, कृशमूल, पृष्ठपर्णी, बला, ससौ, शालिपर्णी-प्रत्येक को एक २ पल. लेकर अठगुने जल के साथ विधिपूर्वक काथ कर चतुर्थीशंश शैष रहने पर उतार-छान कर उसमें मूर्च्छित गोधृत एक प्रस्थ (एक सेर), दूध गाय का चार प्रस्थ और केवाच का बीज, पुनर्नवा, मेदा, जीजन्ती, जीवक, शतावरि, मुनक्का, शकर, मुण्डी तथा अहसा इनका समान मिलित कल्प धृत के चतुर्थीश मिलाकर धृतपाक विधि से धृत सिद्ध कर सेवन करने से वात, पित्त, हृद्रोग, गुलम, मूत्रकुच्छू, प्रमेह, अर्श, कास, शोष और क्षय रोग नष्ट होता है तथा धनु-स्तम्भ से, मार दोने के कारण से और अधिक मार्ग-चलने के कारण से क्षीण हुए रोगियों के बल तथा मांस को बढ़ाता है ॥ १-४ ॥

अथ द्राक्षाचं घृतम्

द्राव्याः समितं प्रस्थं मधुकस्य पलाष्टकम् । पचेत्तोयाढके सिद्धे पादशेषेण तेन तु ॥ १ ॥

पलिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णापलद्वयम् । प्रदाय सर्पिषः प्रस्थं पचेत्कीरे चतुरुणे ॥ २ ॥

सिद्धं श्रीतं पलान्यष्टौ शक्रशयाः प्रदायत् । एतद् द्रवाञ्जाघृतं सिद्धं क्षणक्षत्त्वात् हृतं परम् ॥३॥

द्राक्षा धृत—मुनका उत्तम एक प्रस्थ (एक सेर) और जेठी मधु आठ पल (३२ तो०) लेकर सुकूट्टित कर दोनों को एक आङ्क (चार सेर) जल के साथ विधिपूर्वक काथ करे चतुर्थीशंश शेष रहने पर उतार-छानकर उसमें मुलहठी तथा मुनका प्रत्येक १ पल (४ तो०) और पीपरि दो पल इनका कल्क मिलावे और मूर्छित गोधृत एक प्रस्थ (एक सेर), गो दुग्ध चार प्रस्थ मिलाकर धृतपाक की विधि से पाककर धृतमात्र शेष रहने पर उतार लेवे और जब शीतल हो जावे तब इसमें शर्करा (भिन्नी) आठ पल मिला लेवे। इस प्रकार निर्मित यह ‘द्राक्षाधृत क्षीण तथा क्षत के रोगियों के लिये परम हितकर है और बात-पित्त-ज्वर-श्वास-विस्फोटक-हलीमक-प्रदर-रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करता है और मास तथा बल की बढाता है ॥१-४॥

अथामृतप्राश्यावलेह

श्वीरधाश्रीविद्वारीकुक्षीरिणां च तथा इसे । पचेत्समे धृतप्रस्थं मधुकैरिक्षुरसंयुतैः ॥ १ ॥

द्राक्षाद्विचन्द्रनोशीरशक्तरोत्पलपद्मके । मधूककुमुमाजन्मताकाशमरीतुणसंज्ञके ॥ २ ॥

प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करायास्तुलां तथा । पलार्धकांशं संचूर्यं त्वगेलापश्चेसरान् ॥ ६ ॥

विनाय तस्य सालिह्यान्मात्रा नित्यं सुयाद्यतः । अभृतप्राश्यामत्यतदाश्रम्या निरामत पुरा ॥

वृत्तमासाद्विना हन्ति इकापत्रहत्यम्

तुण्डिकाच्छवासकासच्छदाहकप्रमदनम् । मूरशकृच्छुजवरहन च बलय क्षारातवधनम् ॥५॥

जन्मत्राय अवलोक—गौमुख, जावल का रस, नियरामय का रस, रस पान रस, हार वृक्षों के त्वचा का काथ—(वट-पीपल (अश्वथ), गूलर, पाकड़ तथा पारसपीपल ये पांच वृक्ष क्षीरी वृक्ष कहे जाते हैं) इन प्रत्येक को एक २ प्रस्थ लेके और गोधृत मूर्च्छित एक प्रस्थ लेके और गोधृत मूर्च्छित एक प्रस्थ मिलावे । इसमें मुलहठी-ईख-मुनक्का-दवेतचन्दन-रक्तचन्दन-खस-शकरा-नीलोफर-पदाख-मुड्डे का फूल-अनन्तमूल-गम्भार-रोहित तुण इन सब का मिलित

कल्प चौथाई प्रस्थ (१। पाव) मिलाकर अवलेह पाक विधि से सिद्ध कर शीतल होने पर मधु आधा प्रस्थ (१॥ सेर) शर्करा १ तुला (१०० पल) दालचीनी, इलायची के दाने, तेजपात, नागकेसर इन चारों का उत्तम चूर्ण आधा २ पल (२-२ तो०) मिला कर रोग-बलानुसार मात्रा से नियम के साथ इस 'अमृतप्राशय' अवलेह का सेवन करे तथा दूध और मासरस आदि का पथ्य लेवे तो इससे रक्तपित्त, उरःक्षत और क्षयरोग का नाश होता है और तृष्णा-अरुचि-श्वास-कास, बमन-हिङ्का-मूत्रकृच्छ्र और जवर को यह नष्ट करता है, बलदायक है और रतिशक्ति को बढ़ाने वाला है। यह 'अमृतप्राशय' अवलेह प्रथम अधिनीकुमारों ने बनाया था। कहीं २ इस योग में क्षीर के स्थान में 'क्षीर' ऐसा पाठ है जिसमें इसमें काकोली तथा क्षीरकाकोली का भी व्यवहार पाया जाता है ॥ १-५ ॥

अथ रसराजः

मुक्तप्रवालरसहेममिनाभ्रकान्त-वज्ञं सृतं समलमेतदहो विभाष्यम् ।
क्षिणारसेन च बरीसलिलेन सप्त-वारं ततो मधुहविमर्शिचेन साकम् ।

लिङ्गादुरःस्वतहर्व रसराजकार्यं-माषप्रमाणमतनुज्ञवेतुमेनम् ॥ १ ॥

अन्यथा तर्पणं शीतमविदाहि द्वितीयं तु उत्तर्वीणैः सुखार्थिभिः ॥ २ ॥
ओकं क्षिणं क्रोधमसूर्यनं च-त्यजेदुद्वारान्विवशयानभजेत् ।
तथा ह्रिजार्तीन्दिदानगुरुंश्च-कथाश्च पुण्याः शृणुयाद् द्विजेभ्यः ॥ ३ ॥

रसराजरस—मोतीभस्म-प्रवालभस्म-पारदभस्म-स्वर्णभस्म-वैताभ्रभस्म-कान्तलौहभस्म-वंगभस्म सब समान मात्रा लेकर एकत्र मर्दन कर युद्धची के स्वरस में सात वार और शतावरि के रस में सात वार भावित करे पश्चात इसे रोग-बलानुसार मात्रा से मधु-घृत और मरिच के चूर्ण के अनुपान से सेवन करे तो उरःक्षतरोग नष्ट होता है। इसकी मात्रा पूर्ण वयस्क के लिये १ मासा है परन्तु इस समय हीनसत्त्व मनुष्यों के लिये बल का ज्ञान कर रही (१ रक्ती के प्रमाण से ही) और वेष सेवन करना चाहिये। और भी तुमिकारक पदार्थ-शीतल-अविदाही-द्वितीय कर और लघु अन्नपान सेवन के साथ इसके सेवन से उरःक्षत और क्षीणरोग वाले भी आरोग्य होते हैं। इनके सेवन के समय शोक खींप्रसंग-क्रोध और निन्दा आदि वर्जित कर्म कहे गये हैं। उदार तथा प्रसव मन करने वाले विषयों (नियमों) को करना चाहिये तथा ह्रिजवर्ग, देवता और गुरु वृन्द की सेवा में मन लगाना चाहिये और ह्रिजों द्वारा पुण्य कथाओं को सुनना चाहिये ॥ १-३ ॥

अथ कासनिदानम्

भूमोपवाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूपाद्विषेवणात् ।

विमार्गंगत्वादपि भोजनस्य वेगादरोधात्मवथोस्तथैव ॥ १ ॥

कास रोग का निदान—धूआ और धूल आदि का मुख-नासिका आदि के द्वारा भीतर प्रवेश करने से, अधिक व्यायाम, रुक्ष अन्नादि पदार्थ के सेवन तथा भोजन के विमार्ग हो जाने से अर्थात् भोजन के समय शीघ्रता, हंसी आदि असावधानी के कारण भोजन अत्र की नाली में न जाकर इवास की नाली में प्रवेश कर जाने से मलादिक के वेग को रोकने से और छींक आदि के अवरोध से कास रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तस्य संप्राप्तिमाह

प्राणो द्वुदानानुगतः प्रदुषः संभिष्ठकांस्वस्वनुत्यवोषः ।

निरेति ब्रह्मासहस्रा सद्योषो मनीविभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

सम्भासि—दूषित हुआ प्राण वायु उदान वायु से मिलकर फूटे हुए कासे के पात्र के ध्वनि की भाँति शब्द करता हुआ बलपूर्वक जब सुख्ते निकलता है तब उसे मनीषी लोग (वैद्य लोग) कास रोग कहते हैं ॥ २ ॥

अथ तस्य संख्यामाह

पञ्च कासः द्वयात्तावासिपित्तश्लेष्मज्जत्वयैः । क्षयार्थोर्येक्षताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ १ ॥

कास संख्या—कास रोग पांच प्रकार का कहा गया है वातज कास, पित्तज कास, कफज कास, क्षत के कारण हुआ कास (क्षतज) और क्षयज (क्षय के कारण हुआ) कास इस प्रकार से ये पांचों कास एक दूसरे से बलवान होते हैं अर्थात् वातज से पित्तज, पित्तज से कफज, कफज से क्षतज और क्षतज से क्षयज कास बलवान होता है। यदि प्रथम ही कास रोग की चिकित्सा न की जावे तो वह क्षय को प्राप्त हो जाता है अर्थात् उससे क्षय रोग हो जाता है ॥ १ ॥

पूर्वरूपं भवेत्त्वयां शृक्षुर्पूर्णं गृह्णायता । कण्ठे कण्ठहृष्ट भोज्यानामधोधश्च जायते ॥ २ ॥

पूर्वरूप—कास रोग की प्रथम अवरधा अर्थात् जब कास होने को होता है तब पहले कौन सा लक्षण प्रतीत होता है उसे कहते हैं—कास होने के पूर्व गले और सुंद में कौंडा भरा हुआ है ऐसा प्रतीत होता है, सुंद के लार (लाला) आदि भीतर निरन्तर हुआ करता है, स्वर फट जाता है, तथा केवल सूखी खांसी अर्थात् विना कफ निकले कास होता है ॥ २ ॥

अथ वातिकमाह

हृष्टहृष्टमधींदरपांशुश्लौक्यामाननः क्षीणबलश्वरौजाः ।

प्रसक्तेवेगस्तु समीरणेन भिक्षश्वरः कासात्त शुष्कमेव ॥ १ ॥

वातज कास के लक्षण—वात से उत्पन्न कास में हृदय, शङ्ख देश, ललाट, उदर, पाथ्येश इनमें पीड़ा होती है, मुख मलिन हो जाता है, बल, स्वर तथा ओज (तेज) क्षीण हो जाते हैं। तथा कास का वेग निरन्तर हुआ करता है, स्वर फट जाता है, तथा केवल सूखी खांसी अर्थात् विना कफ निकले कास होता है ॥ १ ॥

अथ पैत्तिकमाह

उरोविदाहस्त्रवरक्षश्वरोषोषै-रम्यदित्तस्त्वित्तसुखश्वरातां ।

पित्तेन पीतानि वमेष्टटूनि कासेत्प्राप्तुः परिद्वामानः ॥ १ ॥

पैत्तिक कास के लक्षण—पित्त से उत्पन्न होनेवाले कास में छाती में दाह होता है, ज्वर होता है, मुख सूखता रहता है इससे मनुष्य पीड़ित रहता है, सुंद का स्वाद तीता हो जाता है, तृष्णा के कारण पीड़ा होती है, पीत वर्ण का तथा कटु वमन होता है, कास के समय पाण्डुता हो जाती है और दाह होता है ॥ १ ॥

अथ कफजमाह

प्रलिप्यमानेत्त सुखेन स्त्रीदविशरोहगातः कफपूर्णदेहः ।

अभक्षस्त्रयोद्यक्षक्षुरुक्षः कामेद भृशा सान्द्रकफः कफेन ॥ १ ॥

कफज कास के लक्षण—कफ से उत्पन्न होने वाले कास में सुख में कफ लिप्या हुआ रहता है। इससे ध्याकुलता रहती है, मनुष्य सिर की पीड़ा से पीड़ित रहता है, सम्पूर्ण शरीर कफ से जकड़ा हुआ रहता है, भोजन में अनिच्छा होती रहती है, शरीर में पीड़ा तथा गुरता रहती है, कण्ठ होता है और कास के साथ घना कफ निकलता है ॥ १ ॥

अथ क्षतकासमाद्

जनित्यद्वायभाद्वसुद्वशेषव्यविग्रहैः । रूचस्योरङ्गतं बायुर्गुहीत्या कासमावदेत् ॥ १ ॥
स पर्वं कासते शुष्कं ततः धीवेत्स्याशोणितम् । कण्ठेन इत्ताऽत्यर्थं विभिन्नेनेव चोरसा ॥ २ ॥
सूचीभिरित्वं तीचाणाभिस्तुद्यमानेन शुलिना । हुःखस्पर्शेन शूकेन येदपीडाभित्तापिना ॥ ३ ॥
पर्वमेदुवरथासतुष्णावै स्वर्यपीडितः । पारावत इच्छाऽङ्गजेकासवेगार्द्धतेऽङ्गदात् ॥ ४ ॥

क्षतज कास के निदान और लक्षण—अतिमैथुन, अतिभावहन, अतिमार्गित्वन (अधिक रास्ता चलने), अति युद्ध, घोड़े तथा हाथी को बल्यूर्वक रोकने से रूक्ष पुरुष की छाती में क्षत हो जाता है और उसमें बायु का समावेश होकर कास हो जाता है । उस कास में पहले शुष्क कास ही होता है पश्चात् रक्तघीवन होता है अर्थात् कास के वेग के साथ मुख से रक्त निकलता है । और कण्ठ में अत्यन्त पीड़ा होती है और फटी हुई जान पड़ती है । तीक्ष्ण सूई से चुम्बने के समान पीड़ा होती है, स्पर्श से बड़ी पीड़ा होती है, छाती में टूटने के समान पीड़ा या सन्ताप होता है, सब जोड़ों में टूटने के समान पीड़ा होती है, ऊर, आस, तृणा, तथा स्वमेद आदि के कारण क्षेत्र होता है, तथा इस क्षतज कास के वेग के समय रोयी के गले में कबूतर के कुजने के समान शब्द होता है ॥ १-४ ॥

अथ क्षयजमाद्

विषमासाध्यभोजयातिद्यवायाहेष्वनिग्रहात् ।

शुणिनां शोचतां नृणां द्व्यापनेऽप्नी न्रयो मर्ताः । कुपिताः क्षयजं कासं कुरुदेद्व क्षयप्रदम् ॥
क्षयज कास के निदान और लक्षण—प्रथम निदान—विषम भोजन, असारम्ब (प्रतिकूल वा उत्पद्य) भोजन, अतिमैथुन, मल-मूत्रादि वेग का अवरोध, इन कारणों से तथा वरावर वृणा करने वाले और शोक करने वाले मनुष्यों को, असि मन्द होने से तीनों दोष कुषित हो कर शरीर को क्षय कर देनेवाला क्षयज कास उत्पन्न कर देते हैं ॥ १ ॥

सगामृशूलउवरद्वाहमोहान् प्राणश्वयं चोपलभेत कासी ।

शुष्कं एव निष्ठीवति दुर्बलस्तु प्रद्विष्णमांसो हविरं सपूयम् ।

तं स्वलिङ्गं शृणुश्चिकित्सयं चिकित्सितश्चाः क्षयजं वदन्ति ॥ २ ॥

जिस कास में शरीर में पीड़ा, ऊर, दाह मोह और अन्त में प्राणशक्ति का हास होता है और शरीर दुर्बल हो जाता है तथा सूखने लगता है, पहले कास कफहीन होता है, जब मास क्षीण हो जाता है तब कास के साथ रक्त-पूय भी निकलता है । इन सब लक्षणों से युक्त अत्यन्त कठिन दुःसाध्य कास को चिकित्सक 'क्षयज कास' कहते हैं ॥ २ ॥

दृष्ट्येष्व क्षयजः कासः चोणानां देहनाशः । साध्यो बलवतां वा स्याद्यस्वेवं क्षतारित्यतः ॥

साध्यासाध्य विचार—यद्य क्षयज कास क्षीण मनुष्यों के शरीर को नष्ट कर देता है, यदि बलवाल पुरुष को हो तो वह साध्य है परन्तु यदि क्षत भी इसके साथ हो तो याप्त जानना चाहिये ॥ ३ ॥

साध्यासाध्यत्वमाद्

नवी कदाचित्स्थितेतामपि पादगुणान्वितौ ।

स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्त्यः प्रकीर्तिः ॥ १ ॥

युनः साध्यासाध्यविचार—इन दोनों में भी यदि कास नया उत्पन्न हुआ हो, और रोगी चतुर्पाद (रोगी, वैद्य, औषध, परिचारक) युक्त हो तो सम्भवतः साध्य हो जाता है । परन्तु युद्ध मनुष्यों के लिये प्रायः सभी कास याप्त हैं । ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥ १ ॥

अथ चिकित्साद्वारेण साध्याप्यत्वमाद्

शीकृ पूर्वान् साध्येत् साध्यान् पृथ्यैर्थ्यास्तु यापेत् ।

पृथ्याभमर्हणं श्यावं हरितं पीतनीलकम् ॥ १ ॥

निष्ठीवन् श्यासकासातो न जीवति हृतस्वरः । कासाच्छासास्यव्यर्थद्विस्वरसादाक्षयो गदाः ।

अष्वन्त्युपेष्यत्या यस्मात्तस्मात्तं त्वरथा यायेत् ॥ २ ॥

चिकित्सक के लिये साध्य-याप्यादि—पहले के तीन (बात-पित्त-कफ-जनित) साध्य हैं इनकी चिकित्सा करनो चाहिये और दो (क्षतज-क्षयज) याप्त हैं इनको पथ्यत्वनादि करना चाहिये और जिस कास में कास-वेग के साथ पूय के बर्ण का, लाल, श्यामवर्ण, हरा, पीला, नीला, शूक निकले, स्वरमंग हो गया हो, श्यास तथा कास से पीड़ित हो । वह रोगी नहीं जीवित होता है । कास रोग की उपेक्षा करने से ही वे श्वास-क्षय-स्वरमंग, वमन आदि उपद्रव होते हैं इसलिये इस कास रोग के उत्पन्न होते ही इनकी चिकित्सा करनो चाहिये ॥ १-२ ॥

अथ कासचिकित्सा

तत्र वातकासचिकित्सा—

रूचस्थानिलं जासमादौ द्वैहैरुपाचरेत् । सर्विभिर्वित्तिः पेयार्ढीर्युचरसादिभिः ॥ ३ ॥
आग्नानूपौदकैः लालियवगोधूमविकान् । रक्तमार्षात्मगुहानां यूषैर्वा भोजयेद्व ताम् ॥ ३ ॥
दशमूली शृता श्यासकासहिकाकुजापहा । यथागूर्वीपनी वृष्या वातरोगविनाशिनी ॥ ३ ॥

कास रोग की चिकित्सा—वातज कास रोग यदि स्वप्न प्रकृति के मनुष्य को हो तो प्रथम उसे स्त्रिय चिकित्सा (स्नेह-पानादि) करावे । धृत पान करावे, स्नेहन बरित देवे, स्त्रिय येया पिलावे, क्षीर पान करावे, यूष तथा मांसरसादि पान करावे और आग्न्य, आनुप तथा जलीय जीवों का मांसरस सेवन करावे तथा शालियान्य, यव, गेहू, साठीधान, इनके चावल तथा आटे का पथ्य देवे, उड्ड और केवांच के वीजों का जूस देवे तथा दशमूल से सिद्ध यवागू आदि का पथ्य देवे । यह श्यास, कास और हिंका की पीड़ा को शान्त (हरण) करती है, दीपक है, वातरोग का नाश करती है और वृथ है ॥ १-३ ॥

रसः ककोंटकानी च धृतभृष्टः सनाशरः । वातकासप्रशमनः शङ्खीमत्स्यस्य वा पुनः ॥ ४ ॥

बांककोडे का रस वी के साथ भूकर, सोठि के चूर्ण के साथ सेवन करने से वातकास को नष्ट करता है अथवा शंगी मछली का रस (यूष) वी तथा सोठि के चूर्ण के साथ सेवन कराका जाय तो वातकास को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

अथापराजितलेहः

शटीश्वङ्गीकणा भार्ङीगुडविद्यालङ्कः । संतेलवृत्तिराम्बो लेहोऽयमपराजितः ॥ १ ॥

अपराजित लेह—कचूर, काकडासिंगी, पीपरि, ब्रह्मदण्डी (बमनेडी), गुड, नागरमेथा, जवासा और तिल का तेल इनको समान लेकर चूर्ण कर एकत्र कर अवलेह-पाकविधि से लेह बना कर सेवन करने से यह 'अपराजित लेह' वातज कास को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ भाङ्गीदिलेहः

भाङ्गीदाचाशटीश्वङ्गीपिण्डीविश्वभेषजम् । मुडसैलयुनो लेहो हितो मारुतकासिनाम् ॥ १ ॥

भाङ्गीदिलेह—ब्रह्मदण्डी, दाल, कचूर, काकडासिंगी, पीपरि, सोठि, गुड, तिलतेल, इनको समान लेकर चूर्ण कर अवलेह-पाकविधि से लेह बनाकर सेवन करने से वातज कास नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ विश्वादितेहः

विश्वाभाङ्गीकणासोमवस्थकं द्राक्षा शटी सिद्धा । लिद्धात्मेन बातोर कासं जयति दुस्तरम् ॥
विश्वदिलेह—सौंठि, ब्रह्मदण्डी, पीपरि, कायफ़र की त्वचा, दाख, कचूर, इनको समान लेकर चूर्ण कर इसमें शकर (चीनी) और तिल-तेल-मिला कर अवस्थानुसार योग्य मात्रा से चाटने से कठिन बातज कास नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ कण्टकार्यवलोहः

चिक्रकं पिष्पलीमूलं द्वोर्ण मुखं दुरालमा । शटी पुष्करमूलं च श्रेयसी सुरसा वचा ॥ १ ॥
भाङ्गी छिप्पहा रासना कर्कटालया च कार्विकान् । कर्कटालिपिष्पलीकृतुलाकषाये पलवशितम् ॥
मत्स्येणिङ्काया दत्त्वा तु सर्पिषः कुडवं पचेत् । सिद्धशीते पृथग्वच्छौदैपिष्पलीकुडवान्वितम् ॥
चतुर्थप्लं तुंगासीर्यवृणुं तत्र प्रवापेत् । मेहवेत्कालहद्वेग्यासगुरुमनिवारणम् ॥ ४ ॥

कण्टकारी अवलेह—चित्त की जड़, पिपरामूल, सौंठि, पीपरि, मरिच, नागरमोथा, जवासा, कचूर, पुष्करमूल, गजपीपरि, तुलसी, वच, ब्रह्मदण्डी, गुरुचि, रासना और काकड़ासिंगी सब एक २ कर्ण (१-२ तो०) लेकर कल्क करे और छोटी कटेरी का काथ २ तुला (२०० पल) मत्स्येणिङ्का (मिश्री) २० पल (१ सेर), धी एक कुडव (४ पल) लेकर अवलेहपाक की विधि से पकावे । सिद्ध होने पर उतार कर शीतल हो जाने पर इसमें मधु तथा पीपरि का चूर्ण प्रत्येक १ कुडव (४ पल), वंशलोचन ४ पल (१६ तो०) लेकर उत्तम-चूर्ण कर मिलाकर इस अवलेह के सेवन करने से कास, हृदय, शास, गुरुम, आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

चूर्णिता विश्वहुः पश्चार्शक्तीद्वाक्षाशटीसिता । लिद्धात्मेन बाताळ्वं कासं जयति दुस्तरम् ॥ ५ ॥
पञ्चमूतकृतः फ्राथः पिष्पलीचूर्णसंयुतः । रसः समशनतो निर्यं बातकासमुद्दस्यति ॥ ६ ॥

अन्योग—सौंठि, जवासा, काकड़ासिंगी, दाख, कचूर और शकर इनको समान ले चूर्णकर तिल के तेल में मिला कर लेहविधि से लेह बना कर सेवन करने से दुस्तर बातज कास नष्ट होता है । और पञ्चमूल (लघु) काथ में पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करे और मांसरस आदि का पथ्य लेवे तो बातजनित कास नष्ट होता है ॥ ५-६ ॥

अथ पित्तकासे बलादिकाथः

बलाद्विवृहतीद्वाक्षावासाभः फ्रथितं जलम् । पित्तकासापहं पेत्य शक्तामधुयोजितम् ॥ १ ॥
१. बलादि काथ—बरिआरा, दोनों बृहती (छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी), अहुसा इन द्रव्यों का विधिपूर्वक काथ बनाकर शीतल होने पर मधु और शकरा का प्रक्षेप देकर सेवन करने से पित्तज कास नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ शट्यादिकाथः

शटीहीवेवृहतीशकराद्विषभेषजम् । एषां काथं पिवेत् पूतं सधृतं पित्तकासनुत् ॥ १ ॥
१. शट्यादि काथ—कचूर, हाल्कवेर, बड़ी कटेरी, शकरा, सौंठि इन सब को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर धृत के प्रक्षेप के स्राव पीने से पित्तज कास शान्त होता है ॥ १ ॥

शटीद्विषमूलस्य पिष्पलीद्वाक्षयोस्तथा । कथायेण श्रतं श्वीरं पिवेत् समधुशकरम् ॥ २ ॥
द्वितीय—कचूर, दोनों पञ्चमूल अर्थात् दशमूल की ओक्रियाँ, पीपरि और दाख समान लेकर विधिपूर्वक काथ बना शीतल कर उसमें सिद्ध दूध अर्थात् क्षीरपाक विधि से बनाया दूध, मधु और शकरा का प्रक्षेप देकर पीने से पित्तज कास नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ खर्जूरादिलेहः

खर्जूरपिष्पलीद्वाक्षसितालाजा: समांशकाः । मधुसर्पियुतो लेहः पित्तकासहरः परः ॥ १ ॥

खर्जूरादि लेह—खजूर वा छुहाड़ा, पीपरि का चूर्ण, दाख, मिश्री, धान की खील प्रत्येक को समान लेकर पीस कर मधु तथा धृत से युक्त कर विधिपूर्वक लेह बना कर सेवन करने से पित्तज कास नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ क्षीरामलकधृतम्

महिष्यजाविगोहीरधारीकलरसैः समैः । सर्पिः प्रस्थं पचेद् युक्तया पित्तकासनिष्ठहर्षणम् ॥ १ ॥

क्षीरामलक धृत—मैस, बकरी भेड़ और गौ का दूध, आँवले के फलों का स्वरस प्रत्येक एक २ प्रस्थ और मूर्छित धृत एक प्रस्थ सब ले कर एकत्र कर धृतपाक विधि से पाक कर सेवन करने से पित्तज कास नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ बङ्गसेनात्

काकोलीबृहती मेदायुग्मैः सचृष्टनागरैः । पित्तकासे रम्भीरयुषांश्चायुपकर्षयेत् ॥ १ ॥

बङ्गसेन से पित्तज कास की चिकित्सा—काकोली, क्षीरकाकोली, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, मेदा, महोमेदा, अहुसा और सौंठि इन सब द्रव्यों का विधिपूर्वक बनाया स्वरस, काथ, दूध या जूस सेवन करने से भी पित्तज कास नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ षट्प्रस्थं धृतम्

आपोद्य श्वीरिणां शङ्कान् पवेत्क्षीरचतुर्गुणेण द्राक्षाकले के धृतं सिद्धं लिद्धात्तिपत्तकासनुत् ॥ १ ॥

षट्प्रस्थ धृत—क्षीरवृक्षों (वट, पीपर, पाकर, गूलर, पारस पीपल) का कोपल समान भाग लेकर विधिवत् काथ कर इसमें चतुर्थांश मूर्छित गोधृत और काथ के समान दूध और धृत से चतुर्थांश द्राक्षा का कल्क सब विधिपूर्वक धृतपाक विधिसे पाककर धृतमात्र शेष रहने पर उतार छान ले । इस धृत का सेवन करने से पित्तज कास शान्त हो जाता है ॥ १ ॥

अथ क्षीरधृतम् (बङ्गसेनात्)

क्षीरवृक्षाङ्कुरकथे पवेत्क्षीरसमं धृतम् । पायेत् पित्तकासधनं मधुनां वाऽवलेहयेत् ॥ १ ॥

क्षीरधृत बङ्गसेन से—क्षीर-बृक्षों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर काथ के चतुर्थांश मूर्छित गोधृत और धृत के समान ही दूध मिला कर विधिपूर्वक पाक कर धृतमात्र शेष रहने पर उतार-छान कर शीतल होने पर मधु के अनुपान से सेवन करने से पित्तज कास नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ द्राक्षामलकादिलेहः

द्राक्षामलकसर्जूरं पिष्पलीमरिचान्वितम् । पित्तकासहरं द्वेत्तिलिङ्गान्मरिचिकर्षिषा ॥ १ ॥

द्राक्षामलकादि लेह—दाख, आँवला, खजूर वा छुहाड़ा, पीपुल, मरिच इन सब को समान लेकर विधिवत् चूर्ण कर मधु तथा धृत के योग से लेह बनाकर चाटने से पित्तज कास नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ कफकासः

कफजे वमनं कार्यं कासे लहूनमेव च । शस्ता यावासत्प्रकृतियुवाक्य कदुतिककः ॥ १ ॥

कफज कास चिकित्सा—कफज कास में पहले वमन तथा लवन कराना चाहिये । जो तथा जी के सदृश पदार्थों का यूष तथा जो कछु और तिक रस वाले हों उनका यूष देना चाहिये ॥ १ ॥

नवाङ्गयूषः—सुद्रामलाभ्यां यवदाहिमार्यां कर्कन्तुना शुक्लमूलकेन ।

शृण्टीकणाभ्यां सकुलात्थकेन यूषो नवाङ्गः कफकासहन्ता ॥ २ ॥

नवाङ्ग यूष—मूंग, आंवला, यव, अनार, बेर, सूखी मूली, सौंठि, पीपरि और कुलधी इन नव पदार्थों का यूष विधिवत् बनाकर सेवन करने से कफज कास नष्ट होता है। इसे 'नवाङ्गयूष' कहते हैं ॥ २ ॥

शट्याचवलेहः—

शटी सातिविषा मुस्ता श्वङ्गी कर्कटकश्य च । अभया श्रुडवेऽच समं शट्याच्चिद् पेषथेत् ॥ १ ॥
हिङ्कौमैः धृवसंयुक्तं तक्षोदकपरिष्कृतम् । श्लेष्मकासी लिहेदेवनमवलेहं सुहुर्षुद्दुः ॥ २ ॥

शट्याचिदलेह—कचूर, अतीस, नागरमोथा, काकडासिंगी, हर्दा, सौंठि, इन सब द्रव्यों को समान लेकर और पीसकर (चूर्णकर) भूजी हुई हींग और सेन्धा नमक आवश्यकतानुसार मिलाकर तक के जल से चुक्त कर अबलेह बनाकर बार २ चाटे तो श्लेष्मज कास नष्ट होता है ॥ १-२ ॥
च्योषायं धृतम्—द्वयोषाजसो द्विचित्रकष्ठलग्रन्थाच्चित्यकलिकं स्पिषि ।

कफकासहासहरं वासकरससाधितं समधु ॥ ३ ॥

व्योषादिधृत—सौंठि, पीपरि, मरिच, अजमोदा, चिक्रमूल, पिपरामूल और चव्य इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिवत् कल्प कर, कल्प के चतुर्थं मूर्च्छित धृत और धृत से चतुर्थं अरुसा स्वरस मिलाकर विधिपूर्वक धृत पाक कर लेवे, इस धृत को मधु के अनुपान से सेवन करने से कफज-कास तथा श्वासरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ द्वन्द्वजकासचिकित्सा

अथ कटफलादिः

कट्फलं कर्त्त्वं भार्हीं मुस्ता चाण्यं वच्याभया । शृण्टी पर्पटकं श्वङ्गी सुशाह्वं च जले श्वतम् ॥
मधुषिङ्गयुतं पेयं कासे वातकफलादिते । कण्ठरोगे मुखे शूले द्विकाशासद्वरेषु च ॥ २ ॥

द्वन्द्वज कास चिकित्सा—कटफलादि काथ—काथफल, रोहिष्टुरु, बंभनेठी, नागरमोथा, धनिया, वच, हर्दा, सौंठि, पित्तपापडा, काकडासिंगी और देवदारु इनका विधिपूर्वक काथ बनाकर शीतल कर भुनी हींग और मधु के प्रक्षेप के साथ सेवन करने से वात-कफज कास, कण्ठरोग, सुखरोग, शूल, हिका, श्वास और ज्वर ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

सिंहास्यामृतसिहीनां काथं मधुयुतं पुमान् । पित्तश्लेष्मकज्ञे कासे श्वासे च्युये उबरे ॥ १ ॥

अन्यान्य योग—अरुसा, गुरुचि और वडी केरेणी का विधिवत् काथ बना कर शीतल कर मधु के प्रक्षेप के साथ पीने से पित्त-कफज कास, श्वास, क्षय तथा ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वासकस्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिताशिना । पित्तश्लेष्मकज्ञे कासे तालीसाद्यं च योजयेत् ॥ २ ॥

अरुसा के स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर पीने तथा हितकर पदार्थों के भोजन करने से पित्त-कफज कास नष्ट होता है। पित्तश्लेष्मकज्ञे कास में तालीसादि-चूर्ण के प्रयोग से भी लाभ होता है ॥ २ ॥

अथ क्षतकासः

कासे तु चतुर्जे चक्षये पाचनैर्वृहणैरपि । शमनैः पित्तकासधनैरन्यैश्च मधुशैषधैः ॥ १ ॥

यवाग्नं चा पित्तश्लेष्मद्वात्स्तोरक्षः सुशीतलाभ् ।

क्षतज कास चिकित्सा—क्षतज कास यदि बलवान को हो तो पाचन, वृहण, संशमन और पित्त-कफ-नाशक अन्याय मधुर ओषधियों की विधिपूर्वक यवाग्न सिद्ध कर शीतल कर उरक्षत का दोणी पीवे ॥ १-२ ॥

इक्षवाचलेहः—इक्षवाचलालिकापश्चमूणालोपलचन्दनैः ॥ २ ॥

मधुकं पिपल्ली द्राशा श्वङ्गी चैषं शतावरी ।

द्विगुणा च तुगाहीरी सिता सर्वेश्वर्युग्मणे । छिङ्गात्मं मधुसर्विभ्यां व्यालकसनिवृत्यज्ञे ॥ ३ ॥

अशुवा ईख, सरकंडा, कमल, मृणाल, बीलोत्पल और लालचन्दन इन द्रव्यों को वा मुलहटी, पीपरि, द्राशा, काकडासिंगी, सतावरी प्रथेक को समान लेकर उसमें तवासीर (वंशलोचन) और चौगुनी मिश्री लेकर चूर्ण कर मधु तथा धृत के अनुपान से चाटने से क्षतज कास नष्ट होता है ॥ २-३ ॥

मञ्जिष्ठमूर्वानितव्यहिपाठा-कृष्णाहित्रिं तु चूर्णम् ।

चौद्रेष्ट्रं कालेऽवालंहन् चतोऽस्य विवेद् धृतं चेद्वृत्से विपक्षम् ॥ १ ॥

मज्जीठ, मूर्वा, तगर, चिक्रमूल, पुरेनपादी, पीपरि और हल्दी इन सब द्रव्यों को समान लेकर चूर्ण कर मधु मिला कर चाटने से क्षतजक तस नष्ट होता है। तथा ईख के रस में धृत विधिपूर्वक पाक कर पीने से क्षतजकास नष्ट होता है ॥ १ ॥

इक्षिव्याहीरालिकापश्चमूणालोपलचन्दनैः । शृतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं पिवेत् चती ॥ २ ॥

ईख, सरकंडा, कमल, मृणाल, नीलोत्पल और लालचन्दन इन द्रव्यों को समान लेकर विधिपूर्वक वाथ या दुख पाक कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पीने से उरक्षत रोगी के उरक्षत का संधान होता है अर्थात् उरक्षत नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ क्षयकासः

पित्तश्लेष्मदिधृतम्—

पित्तपलीगुड्यं लिहं छामीचीर्युतं धृतज्ञ । पतदशिविवृद्धवर्यं सर्विष्ठ धृयकासिनाम् ॥ १ ॥

क्षयजकास चिकित्सा-पित्तश्लेष्मदिधृत—पीपरि और गुड़ का कल्प तथा बकरी का दूध मिला कर विधिपूर्वक सिद्ध किया धृत सेवन करने से अग्नि की दृद्धि होती है तथा क्षयजकास नष्ट होता है ॥ १ ॥

ककुभचूर्णम्—चूर्णं काकुभमिष्ठं वासारसभावितं चहूव्यं वाहान् ।

मधुघृतसितोपलाभिलेहं ल्यकासिक्षपित्तहरम् ॥ १ ॥

ककुभ चूर्ण—अर्जुनवृक्ष की छाल का चूर्ण अरुसा के स्वरस में अनेक बार भावित कर इस चूर्ण में मधु-धृत और मिश्री मिला कर चाटने से क्षयजकास तथा रक्पित्त दोनों रोग नष्ट होते हैं ॥

अथ पित्तश्लेष्मद्वात्स्तोः

पिपली मधुकं पिष्ठं कर्षकं ससितोपलम् । ग्रस्थैकं गव्यमाड्यं च लीरमिहुत्सस्तथा ॥ १ ॥

बचगोधूमस्थूलीकाचूर्णमामलकीदसम् । तैलं च प्रसूतीशानि तत्स्वच्छृद्वह्निना ॥ २ ॥

पचेलेहं चृतस्त्वैद्रयुक्तं सध्यकासिक्षितम् । च्यहृद्वोगकासम्भो हितो वृद्धालपरेत्साम् ॥ ३ ॥

पित्तश्लेष्मदिधृत—अवलेह—पीपरि, जेठीमधु और मिश्री इनका चूर्ण एक २ कर्ष (१-२ तो ०), गोधृत, गाय का दूध तथा ईख का रस प्रत्येक एक-एक प्रस्थ, यव, गेहूं और सुनका का चूर्ण, आमले का स्वरस, तिल का तेल इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक २ प्रसुति (दो २ पल) लेकर एकत्र कर अवलेह की विधि से मन्द २ अग्नि पर पाक कर सिद्ध हो जाने पर उतार लेवे। इस लेह को धृत और मधु के अनुपान से सेवन करने से कास, श्वास, क्षयरोग, हृदोग और कासरोग नष्ट होता है तथा यह वृद्ध और अल्पवीर्य मनुष्यों के लिये हितकारी है ॥ १-३ ॥

अन्यच्च—पिपली मधुकं द्राशा सुपक्षं लीरतीर्फलम् ।

धृतस्त्वैद्रयुतो लेहः क्षयकासिनिर्वर्णम् ॥ १ ॥

और भी—पीपरि, मुलठी, द्राक्षा और बड़ी कटेरी का पका हुआ फल इन सब ओषधियों को समान लेकर चूर्ण कर मधु और धूत के अनुपान से चाटने से क्षयज कास नष्ट होता है ॥ १ ॥ सन्त्रिपातभवो द्वेष च्यकासः सुद्धारुणः । सन्त्रिपातहितं तस्मात्कार्यमन्न चिकित्सितम् ॥ २ ॥

यह क्षयजकास सन्त्रिपातोद्ग्रव (तीनों दोषों से युक्त) होता है इसलिये यह मर्यादकर होता है, अस्तु वैद्य को सन्त्रिपातकास की भाँति चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

अथ कासश्वासौ

अनुतादिकाथः—

अमृतानागरकञ्जीयाग्रोपर्णीसुसावितः काथः । पीतः सकणाचूर्णः कासश्वासौ जयत्याशु ॥

अमृतादि काथ—गुरुचि, सौठि, वभनेठी, छोटी कटेरी, शालिपर्णी, वृष्टपर्णी इन ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से शोष्र कास-श्वास नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

भाङ्गर्यादिकाथः—

भाङ्गर्य सनागरा सिंहो कुलार्थं मूलकं तथा । पिवेत् पिप्पलिचूर्णन कासश्वासौ व्यपोहति ॥ १ ॥

भाङ्गर्यादि काथ—वभनेठी, सौठि, छोटी कटेरी, कुलधी, मूली इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीवे तो कास-श्वास नष्ट होता है ॥ १ ॥

स्वरसं शङ्खवेदस्य मालिकेण समन्वितम् । पाययेऽङ्गवासकासद्धनं प्रतिश्वायकफापहम् ॥ १ ॥

अद्रक के स्वरस को प्रमुख से युक्त कर पीने से श्वास-कास तथा प्रतिश्वाय और कफ को नष्ट करता है ॥ १ ॥

○ सेवितं मधुखण्डाभ्यां चूर्णं मरिचं यदि । किमर्थं कियते चिन्ता कासश्वासपराजितः ॥ २ ॥

यदि मधु और मिश्री से युक्त (मधु-मिश्री के अनुपान से) मरिच का चूर्ण सेवन करते हों तो कास-श्वास से पीड़ित किसलिये चिन्ता करते हैं ? अर्थात् इससे कास-श्वास रोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

कुलित्यः कण्टकारी च तथा ग्राह्यग्रथिका । शुण्ठीसुरभिमयुक्तः कासश्वासउत्तरापहः ॥ ३ ॥

कुलधी, कटेरी छोटी, वभनेठी, सौठि और तुलसी इन ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर सेवन करने से कास-श्वास और ज्वर नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पीषकरं कटफलं भाङ्गर्यविश्वपिप्पलिचूर्णाधितम् । पिवेत् कार्यांककोद्रेके कासे श्वासे च हृदग्रहे ॥

पुष्करमूल, कायफर, वभनेठी, सौठि, पीपरि इन ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ बना कर सेवन करने से कफजकास, श्वास तथा हृदयरुग्ण नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

कुनटादिलेहः—

कुनटीसैन्धवयोषविद्वामरहितुमिः । लेहः सायमद्वः कासहिकाशासनिवारणः ॥ ५ ॥

कुनटादिलेह—शुद्ध मैनशिल, सेन्धानमक, सौठि, पीपरि, मरिच, बामीरंग, देवदार और भूजी हुई हींग इन सब ओषधियों को समान ले विधिपूर्वक चूर्णकर मधु और धूत के अनुपान से चाट तो कास, हिक्क और श्वास नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

श्वासकासहरां वर्हिपादां च शौद्रसर्पिषा । लिद्यान्मिच्चूर्णं वा सघृतचौदशरम् ॥ १ ॥

मोर के पावों का चूर्ण मधु और धूत के अनुपान से अथवा मरिच का चूर्ण धूत, मधु और शर्करा के अनुपान से सेवन करने से कास-श्वास नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भाङ्गेशुण्ठीकणाचूर्णं गुडेन श्वासकासनुत् । पथ्याशुण्ठीगुडयुत्ता गुटिकां चारयेन्मुखे ॥ २ ॥

वभनेठी, सौठि, पीपरि इनको समान लेकर चूर्णकर गुड के अनुपान से सेवन करने से श्वास-

कास नष्ट होते हैं । अथवा हर्दा और सौठि के चूर्ण में गुड मिलाकर वटी बनाकर मुख में धारण करने से श्वास-कास नष्ट होता है ॥ २ ॥

सर्वेषु कासश्वासेषु वेवलं वा विभीतकम् । नागरेणाभया तद्वकासमाशु व्यपोहति ॥ ३ ॥

अथवा सब प्रकार के कास-श्वास में केवल वहेरे को मुख में धारण करने अर्थात् चूसने से अथवा सौठि और हर्दे का चूर्ण सेवन करने से कासरोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

अथ सर्वकासः

पिप्पल्यादि गुटिका—सपिप्पलीपुष्करमूलपश्याशुण्ठीमूलकसूक्ष्मचूर्णम् ।

गुडेन युक्ता गुटिका प्रयोज्या कासेषु नासाज्ज्ञवेद्वरे च ॥ १ ॥

पिप्पल्यादि गुटिका—पीपरि, पुष्करमूल, हर्दा, सौठि, कन्चूर, मूली इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर विधिपूर्वक गुड मिलाकर वटी बना कर सेवन करे तो कास, नासाज्ञाव (नाक से निरन्तर जल आदि का स्राव होता रहना) और स्वर का विकार (स्वर भंगादि) नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

स्ववर्थो गन्धनाशे च धूमपानं द्रयोज्यते । अर्कमूलकिले सुख्ये ततोऽधेन कट्टन्त्रिकम् ॥ २ ॥

चूर्णितं वह्निनिष्ठसं पिबेद् धूमं तु योगवित् । भृष्येद्य ताम्बूलं पिनेद् गुडमध्याम्बु वा ॥ ३ ॥

कासः पञ्चत्रिधा यन्त्रित शान्तिमाशु न व्याश्यः ।

छिकारोग और गन्धनाश (नासासे गन्ध का ज्ञान न होना) रोग में धूत्रपान का प्रयोग करना चाहिये । मदार की जड़, शुद्ध मैनसिल दांतों को समान भाग लेवे और इनके आधा भाग सौठि-पीपरि-मरिच मिलाते लेकर चूर्णकर धूत्रपान विधि से इस चूर्ण को चिलम पर रख दें और पीवे पश्चात् ताम्बूल भक्षण करें अथवा दूध वा जल पीवे तो इससे पांचों प्रकार के कास शान्त हो जाते हैं । इसमें सन्देह नहीं है ॥ २-३३३ ॥

मनःशिलालमहिचमांसीमुस्तेहुदेः पिवेत् ॥ ४ ॥

धूमं तस्यानु च पथः सुखाण्णं सगुडं पिवेत् । एष कासान् पृथग्दून्दूसन्त्रिपातसमुद्धवान् ॥ ५ ॥

तातैरपि प्रवृत्ताणां साध्येदप्रसाधितान् ।

शुद्ध मैनशिल, शुद्ध हरताल, मरिच, जटामासी, नागरमोथा, जिआपोता (पतञ्जलि) इन ओषधियों के समान चूर्ण की आग पर रख कर विधिपूर्वक धूत्रपान करे पश्चात् गुड मिला सुखाण्ण दूध का पथ्य ले तो पृथक् २ दोषों वाला, दन्दज और सन्त्रिपातज कास तथा सैकड़ों प्रशोगों से भी नहीं अच्छा हुआ कास इस धूत्रपान से नष्ट होता है ॥ ४-५३३ ॥

मनःशिलालिसदलं वश्यस्तापशोधितम् ॥ ६ ॥

मत्तीरं धूमपानं च महाकाशनिवहंसम् ।

वैर के पत्तों पर शुद्ध मैनशिल की जल में पीस कर लेप कर धूप में सुखाकर चिलम के आग पर रख कर विधिपूर्वक धूत्रपान करने से और दूध का पथ्य लेने से महाकाश नष्ट होता है ॥ ६-६३३ ॥

पिप्पा त्रिपुटधन्मूलव्योमनःगिलाः ॥ ७ ॥

तेज प्रलिप्य वसनं धूमवतिं प्रकल्पयेत् । धूमं तस्याः पिवेद्यस्तु त्रिद्विनात् कसनं हरेत् ॥ ८ ॥

शुद्ध हरताल, धूतूर की जड़, सौठि, पीपरि, मरिच और मैनसिल इनको समान लेकर जल से पीसकर अथवा सबके चूर्ण को जल में मिला कर कपड़े पर लेपकर सुखाकर वसी बनाकर विधिपूर्वक तीन दिन तक उसका धूत्रपान करने से कासरोग नष्ट हो जाता है ॥ ७-८ ॥

अथ जात्यादिधूमः

जातीपथशिलारालैजियेद् गुगुलुं समद् । अजामूलैण सल्पिष्ठो धूमः कासहरः परः ॥ १ ॥

जात्यादि धूम—जावित्री, शुद्ध मैनसिल, राल इनको समान (एक २) भाग ले और सबके समान गुगुल लेकर चूर्णकर बकरी के मूत्र में पीसकर सुखा कर विधिपूर्वक धूम्रपान करे तो कास रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

जात्यादिधूमवर्तिः—

जातीजटाकिसल्लयैचंद्रीदलैश्च जाता मसूरकफलैः समनःशिलैश्च ।

स्थाद् धूमवर्तिरिह गुगुलुना समेतैः कासाङ्कुदे बहरिकामिविद्वामानैः ॥ २ ॥

जावित्री, शुद्ध अंवरा के पचे, वैर के पचे, मसूर, त्रिफला, शुद्ध मैनसिल, गुगुल, इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण करनाकर वैर की लकड़ी के अंद्रि पर रख कर धूम्रपान करने से कासरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

○ रात्रिद्वयशिलाधूमपानात् कासश्रुतिः कुत्सः । जलपानाद्यपि तथा ल्लगेन ल्लगदात्यये ॥ ३ ॥

हरदी, दारुहरदी, शुद्ध मैनसिल, इनके चूर्ण को अंद्रि पर रखकर विधिपूर्वक धूम्रपान किया जावे तो कासरोग नष्ट हो जाता है । और रात्रिके अन्त समय में जल पीने से भी कासरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

हरीतकयादिमोदकः—

हरीतकीकणाशुण्ठीमरीचगुडसंयुतः । कासहो मोदकः प्रोक्तः परं चानलदीपनः ॥ १ ॥

हरीतकयादि मोदक—हर्दा, पीपरि, सौंठि, मरिच इनको समान लेकर चूर्णकर गुड मिलाकर विधिपूर्वक चूटी बनाकर सेवन करने से कास नष्ट होता है और यह अयि को प्रदीप करता है ॥ १ ॥

समशक्तरचूर्णम्—

शुण्ठीकणामरिचनागवच्छगेण चूर्णकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्यात् ।

ज्ञादेदिदं समशिलं गुडजामिग्राम्यगुडमाच्चिक्षसनकण्ठहदामयेषु ॥ १ ॥

समशक्तरचूर्ण—सौंठि आदि को अन्त के क्रम से बढ़ाकर अर्थात् इलायची १ भाग, दाल-चीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेसर ४ भाग, मरिच ५ भाग, पीपरि ६ भाग और सौंठि ७ भाग लेकर विधिवत् चूर्ण बना कर सब के समान शर्करा मिला कर इस चूर्ण को सेवन करने से अशं, मन्दाग्नि, गुलम, अरुचि, श्वास, कण्ठ और हृदय के रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

कर्पूराचं चूर्णम्—

कर्पूरबालकझोलजातीकलदलं समद् । ल्लवक्कनागमरिचकृष्णाशुण्ठयो विवर्धिताः ॥ १ ॥

चूर्ण सितासमं प्राह्मं रोचनं ल्लयकासजित् ।

वैस्वर्यकासशासं छुर्दिं चत्र चयं जयेत् । प्रयुक्तं चासपानेषु भैषजयं ल्लिगुणं द्वितम् ॥ २ ॥

कर्पूरादि चूर्ण—कर्पूर, शुगन्धबाला, कंकोल, मरिच, जायफर, तेजपात, प्रत्येक ओषधि समान अर्थात् एक २ भाग, और लवंग १ भाग, नागकेसर २ भाग, मरिच ३ भाग, पीपरि ४ भाग और सौंठि ५ भाग इस क्रमसे विवर्धित लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर इस मिलित चूर्ण के समान शर्करा मिला कर इस चूर्ण का सेवन करना रुचि में वृद्धि करनेवाला, क्षय-कास को नष्ट बाला तथा स्वरभंग, कास, श्वास, वमन और क्षयरोग को दूर करने वाला है । इस चूर्ण को यदि अन्न (भोज्य पदार्थ) और वेद पदार्थों के साथ सेवन करे अर्थात् भोजन और जल में देकर उच्चवाहार करे तो यह ओषधि द्विगुण लाभकारी है ॥ १-२ ॥

कर्षः कर्षाशपलं पलद्वयं स्यत्तोऽधेकर्षेत् । मरिचस्य पिप्पलीनां दादिमगुडयादशुकानाम् ॥

सर्वैषधैरसाम्या ये कासाः सर्वैष्यनिरुक्ताः । अपि पूर्यं छुर्देशतो तेषामिद्दौषधं पदमम् ॥ २ ॥

मरिचादि चूर्ण—मरिच १ कर्ष (१ तो०), पीपरि दो कर्ष, अनारदाना २ पल (४ तो०), गुड दो पल (८ तो०), यवाखार आधा कर्ष (३ तो०) इन सब ओषधियों को लेकर विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर सेवन करने से जो कास सब ओषधियों के प्रयोग से भी नहीं अचला होनेवाला हो और जिसे सब वैद्य तथा जिस में कास के समय पूर्य का वमन होता हो अर्थात् कास में पूर्य आता हो ऐसे कठिन से कठिन कास को भी यह ‘मरिचादि चूर्ण’ नष्ट करता है । यहाँ पर कर्षोश का अर्थ कर्ष का दूना समझना चाहिये ॥ १-२ ॥ इति मरिचादि चूर्णम् ।

देवदारुरुचलाराज्ञाप्रिफलायोषपदाकः । सविडङ्गः सितातुरुद्यैस्तत्त्वां चूर्णं सर्वकासनुत् ॥ ३ ॥

देवदारु, बला (वरिआरा), रासन, अंवरा, हर्दा, बहेरा, सौंठि, पीपरि, मरिच, पदुमकाठ, बामीरंग सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके समान शर्करा मिला दे । इस चूर्ण को सेवन करने से सब प्रकार के कास नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

बृहरीपत्रकलकं वा वृतभृष्टं ससैन्धवम् । स्वरोपघाते कासे च लेहमेतं प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

बैर के पत्तों का विधिपूर्वक कलक बनाकर घृत में भूज कर सेन्धा नमक मिलाकर लेह की आंति टाटने से स्वरभंग और कास नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

दूष्टांशौ पञ्चमूलानि पञ्चैव लवणानि च ।

सज्जीखार, यवाखार, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, शालिपर्णी, पुष्पपर्णी, गोखरू, पात्रो प्रकार के लवण (पृथक् २), कन्चुर, सौंठि, सुगन्धबाला इन सब ओषधियों को समझाग लेकर (इनमें पांचो नमक ५ भाग रहेंगे) विधिवत् चूर्ण कर जल के साथ कलक बनाकर वस्त्र से छान कर अर्थात् उसका रस निकाल कर धी मिलाकर पिलाने से सब प्रकार के कास नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ त्रिजातगुटिका

त्रिजातमधंकर्षं च पिप्पलाद्यधंपलं सिता । द्राक्षामधुक्षज्यूरं पलांशुं ल्लचणकर्तितम् ॥ ३ ॥

मधुजा गुटिका धनित ता दृश्याः पित्तशोणितम् ।

कासशासासचिच्छिदिमृच्छाहिष्मामदभ्रामान् ॥ २ ॥

कृतस्यस्वरञ्जाप्तीहशोषाद्यमाहतान् । रक्तनिष्ठीष्विष्वापाशर्वरुक्षिपपासाज्वशरानपि ॥ ३ ॥

त्रिजातगुटिका—दालचीनी, इलायची, तेजपात प्रत्येक ओषधि-आधा २ कर्ष (३ तो०), पीपरि आधापल (२ तो०), शर्करा, द्राक्षा, मुलहठो, खजूर वा छुद्वाहा प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लेकर विधिपूर्वक उत्तम कलक बनाकर मधु मिला वटी बनाकर सेवन करने से कास को नष्ट करती है । यह वृद्धि है और रक्तपित्त, कास, दवास, अरुचि, वमन, मूर्छा, हिका, मद, भ्रमरोग, क्षत, क्षय, स्वरभंग, प्लीहा, शीष, आद्यवात, रक्तनिष्ठीवन (मुख से थूक के साथ रक्त का आना), हृदय तथा पार्श्वदेश की पीड़ा, पिपासा और जबर को भी यह गुटिका नष्ट करती है ॥ १-३ ॥

अथ मटिचादिगुटिका

शार्ङ्गधरात्

मरिचं कर्षमात्रं च पिप्पली कर्षसमिता । अर्धकर्षे यवाखारः कर्षयुग्मं च दाहिमात् ॥ १ ॥

एतचूर्णोऽहृतं युज्यादृष्टकर्षगुदेन हि ।

शाणप्रमाणां गुटिका कृत्वा वक्त्रे च धारयेत् ।

अद्यतः प्रभावात् सर्वेऽपि कासा यान्तर्येव संस्थयम् ॥ २ ॥

मरिचादिगुटिका शारीर से—मरिच १ कर्ष (१ तो०), पीपरि १ कर्ष, बवाबार आधा कर्ष (३ तो०), अनारदाना २ कर्ष इन ओषधियों को लेकर चूर्ण कर इनमें पुराना—गुड़ ८ कर्ष मिलाकर विधिपूर्वक एक शाण (४ मासा) के प्रमाण की वटी बनाकर सुख में धारण करने अर्थात् चूसने से इस वटी के प्रभाव से सब प्रकार के कास रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

अथ लवङ्गादिवटी

तुलया लवङ्गमरिचादात्तवचः स्युः, सर्वैः सभो निगदितः खदिरस्य सारः ।

बध्वूलवलकलकाषाययुज्ज्ञां चतुर्णां, कासाङ्गिहितवटिका घटिकाष्टकान्ते ॥ १ ॥

लवंगादि वटी—लवंग, मरिच, बहेरे के फल की त्वचा प्रत्येक समान अर्थात् एक २ भाग और सबके समान अर्थात् ३ भाग खैरसार लेकर विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर बवूर की छाल के काथ में भलीभांति सर्दन कर विधिवत् वटी बनाकर सेवन करने से यह वटी आठ घड़ी के अन्दर ही कास रोगों को नष्ट कर देती है ॥ १ ॥

धनञ्जयत्रिजात्तकं कागजदाक्षुत्रिकम् । रमाद्रेकेण भावितं जगेच्च कासमातत्तम् ॥ २ ॥

अर्जुन वृक्ष की त्वचा, इलाही छोटी, तेजपात, दालचीनी, पिपरामूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, इन सब ओषधियों को सभान लेकर चूर्णकर अद्रक के स्वरस में भावित कर सेवन करने से कासरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

कटुश्चिकं छिङ्गलताकृशाङ्गु-फलश्चिकं वेश्वभवं शरासनम् ।

सर्वशर्करं चूर्णमितुं सुसेव्यं कासादवीदाहवदानलास्यम् ॥ ३ ॥

सोंठि, पीपरि, मरिच, गुरुचि, चिक्रमूल, अवरा, हर्दा, बहेरा, मरिच, रासना प्रत्येक द्रव्य समान लेकर चूर्णकर सब के बराबर शर्करा मिलाकर सेवन करने से कासरूपी वन को दावानल के समान नष्ट करता है अर्थात् इससे कासरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ खदिरादिगुटिका

खदिरं पौष्टकं शृङ्गी कटफलं द्विजयटिका । इहरीतकी लवङ्गी च व्योवं चातिविवं तथा ॥ १ ॥

कारवी यासमसूता वृहंतीद्युम्पञ्चकम् + पृथक्कृद्यं द्याण्य सूचमचूर्णं तु कारयेत् ॥ २ ॥

सर्वैः समं खदिरं च मेलयित्वा विभावयेत् । द्विदिमस्वकृत्या त्रिदाखदिराम्भोभिराद्रंकेऽथ ॥ ३ ॥

बध्वूलवलद्लक्षीयैराट्टव्यं जलेनस्तथा ।

सप्तश्च भावयेद् वदध्वा गुटिका खदिरी यता । कासश्वासी निहन्त्याशु दुस्तरौ चिरजावपि ॥

* खदिरादि गुटिका—खैरसार, * पुहकरमूल, काकडासिंगी, कायफर, बहादृण्डी, हर्दा, लवंग, सोंठि, पीपरि, मरिच, अतीस, कुण्ठजीरक, जवासा, गुरुचि, छोटी, कटेरी, बड़ी कटेरी और बहेरा प्रत्येक द्रव्य पृथक् २ दो २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक उत्तम चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके बराबर खैर का चूर्ण मिला कर अनार के छिटके का काथ, छोटी कटेरी का काथ, खैर का रस, अद्रक का रस, बवूर के पत्ते का काथ, बवूर की त्वचा का काथ और अस्ता के स्वरस से पृथक् २ सात और बार भावित कर विधिपूर्वक वटी बना ले । इस 'खदिरादि वटी' को सेवन करने से भयहर तथा पुरातन कास-श्वास भी शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अथाऽद्रकावलेहः ।

दैद्यजीवनात्—आद्रकदर्थतुला गुडादपि तथा द्वयाम्र च दुस्तुम्बरी

दीप्यायोजरणश्चिजानदकादेतत् पचेच्यक्षितः ।

लेहो रसनकले ! सर्वैव कथितः प्राणप्रियाया मया

कासश्चोदवरपीनसश्वयथुरुगुह्यमच्यव्यध्वनः ॥ १ ॥

कासचिकित्सा

आद्रकावलेह—अद्रक का स्वरस आधा तुला (५० पल) और पुराना गुड आधा तुला (५० पल), धनिया २ पल (८ तो०), अजवायन, लौहभस्म, जीरा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा इन सब द्रव्यों को भी दो २ पल लेकर अवलेहपाक की विधि से इन द्रव्यों का अवलेह सिद्ध करे । योग लिखने वाले का कहना है कि हे रत्नकले ! प्राणप्रिये ! यह तुलसे कहता हूँ कि इस अवलेह के सेवन करने से कास, अर्श, ज्वर, पीनस, शोथ, पीड़ा (शूल), गुरम तथा श्वयरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ व्याघ्रीहरीतकीलेहः

समूलपुष्पपञ्चकष्टकार्यव्युतुला जलद्रोणपरिण्ठुला च ।

हरीतकीनां च शांतं निदध्याद् ग्राह्यं तु पक्षवा चरणावशेषम् ॥ १ ॥

गुडस्य मत्वा शतमेतद्द्वां विषपक्षुत्तर्य ततः सुक्षीते ।

कटुश्चिकं च प्रिपलप्रसाणं पलानि षट् पुष्परसस्य चापि ॥ २ ॥

द्विपेच्छतुर्जातपलं यथारिन् प्रगुडयमानो विधिनाऽवलेहः ।

वातात्मकं पित्तकषोद्धवं च द्विदोषकासानपि संनियातान् ॥ ३ ॥

कासं चतोर्थं ल्यजं च हन्तात् सर्पीनसक्षासमुत्तुलं च ।

यचमानमेकादशरूपमुग्रं भृगूपदिष्टं हि न्मायनं स्यात् ॥ ४ ॥

व्याघ्रीहरीतकी लेह—सूल—पुष्प और दल सहित कण्टकारी १ तुला (१०० पल) और जल एक द्रोण (१६ सेर) के साथ काथ करे और इसी में एक सौ उत्तम सुपक हर्दा भी मिला लेवे और काथ का चतुर्थीश जल शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । और इसी काथ में सौ पल पुराना गुड मिला कर अवलेह पाक की विधि से पाक कर गाढ़ा होने पर उतार ले जब शीतल हो जावे तब इसमें सोंठि-पीपरि और मरिच का चूर्ण ३-३, पल, मधु ६ पल, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, तेजपात का चूर्ण एक २ पल लेकर एकत्र विधिपूर्वक मिलाकर इस अवलेह का सेवन करने से बातजकास, पित्तजकास, कफज कास, दन्दज कास, सत्रियातजकास, क्षतजकास और श्वयज कास तथा पीनस, श्वास, उरक्षत और एकादश रूपों से युक्त अत्युग्र यक्षमा भी नष्ट होता है । यह 'व्याघ्रीहरीतकी लेह' परम रसायन है । इसे भृगुजी ने कहा है ॥ १-४ ॥

अथ कासकण्ठनावलेहः

अज्ञामूत्रं शतपलं मन्द्यापनौ गुडपाकवत् । पक्षवा वैभीतकं चूर्णं पलद्वयमितं क्षिपेत् ॥ १ ॥

पिपली पिपलीमूलं पलमात्रं सृतायसम् । कण्टकारीफलरजो निषिपेष्व पलद्वयम् ॥ २ ॥

ततो मावद्वयं खदेष्टुलं कर्वमथापि वा । छोड़ेणोषणाभुला वापि सर्वकासात् प्रसुच्यते ॥ ३ ॥

असाध्या भिषजा रथकाश्रिरजा: पथ्यवर्जिताः ।

ये कासास्तेऽप्यनेनाऽऽशु प्रणश्यन्ति न संशयः । कासकण्ठनामाऽयं योग आव्रेयभावितः ॥

कासकण्ठनावलेह—करी का मूत्र सौ पल लेकर गुडपाक की भाँति मन्द २ अंगि पर पका कर गाढ़ा होने पर उसमें बहेरे का चूर्ण दो २ पल मिलावे और पीपरि, पिपरामूल का चूर्ण एक २ पल मिलावे तथा लौहभस्म और कण्टकारी के फलों का चूर्ण दो २ पल मिलाकर अवलेह की भाँति बनाकर इस अवलेह को दो मासी अथवा एक टङ्का (४ मासा) अथवा एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से रोगवलानुसार मधु अथवा उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के कास नष्ट होते हैं । तथा इस अवलेह के सेवन से असाध्य कास तथा जिस कास को वैद्यों ने त्याग दिया हो, जो पुराना कास हो तथा जिससे (जिस कास रोगी से) पथ्य नहीं होता है

उसका कास ये सब कास अवश्य शीघ्र नष्ट होते हैं इसमें संशय नहीं। इस 'कासकण्डन' नामक योग को 'आत्रेय जी' ने कहा है ॥ १-४ ॥

अथागस्तिहरीतकीपाकः

वृन्दात्—दशमूलीं स्वयंगुसां शङ्खपुष्पीं शटीं ब्लाश्म ।

हस्तिपिण्डयपायार्गिष्पलीभूलिचित्रकान् ॥ १ ॥

भार्द्धोपुष्करमूलं च द्विपलां च यवाष्ठकम् । हरीतकीशतं चैव जले पञ्चाढके पचेन् ॥ २ ॥
यद्यः स्विजौः कथायं च पृतं तत्त्वाभ्याशाशतम् । पचेद् गुडनुलां दृश्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ॥ ३ ॥
तैलात् पिष्पलिञ्छूर्णाच्च लिद्ये शीते च मालिकाद् ।

लिद्याद् द्वे चामये निस्यं ततः खादेहसायनात् ॥ ४ ॥

चलीं च पक्षितं हन्याद्युष्णांयुवर्लब्धवैर्णम् । पञ्च कासान्वयशासान् हिङ्कां च विषमउवरान् ॥ ५ ॥
हन्यात्तथा ग्रहणशोऽहंदोगाहुचिपीनसान् । अगस्तिहितं खन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ६ ॥

अगस्तिहरीतकी पाक—दशमूल की ओषधियाँ मिलित २० पल, केवाच का बीज, शङ्खपुष्पी, कच्चूर, बरियारा, गजपीपरि, अपामार्ग, पिपरामूल, चित्रकमूल, बमनेठी, पुष्करमूल, प्रत्येक दो २ पल, जौ एक आढक (४ सेर) और हरीतकी फल सुपक एक सौ (संख्या में) लेकर हरीतकी तथा जौ को पोटली में बौंध देव औषधों के साथ इसे पांच आढक जल के साथ (लेकिन जल को यहाँ द्रवदेहुण्यात् के अनुसार दस आढक (४० सेर) लेना चाहिये) काथ की विधि से पाक करे। जब जौ तथा हरड़ स्वेदित हो जावें और काथ चतुर्थीश देष्ट रह जावे तब उतार-छानकर इसमें (छाने हुए जल में) पुराना गुड एक तुला (१०० पल) मिलाकर धोलकर रख ले पश्चात् उपर्युक्त स्विच्छ हरड़ों को लेकर गुडली निकाल कर एक कुडव (४ पल) धृत तथा एक कुडव तिल के तेल में भूज लेवे और उसी गुड मिश्रित काथ में मिलाकर अवलेह पाक की विधि से पाक कर शोतल होने पर मधु तथा पीपरि का चूर्ण एक २ कुडव मिलाकर रख ले। इसमें से दो हरड़ खाकर उपर से इसी लेह को प्रतिदिन चाटने से बली-पलित नष्ट होते हैं, वर्ण-आयु और बल बढ़ते हैं, पांचों प्रकार के कास, क्षय, श्वास, हिंका, विषम उवर, ग्रहणी, अर्श, ह्रदोग, अरुचि और पीनसरोग नष्ट होते हैं। यह अगस्ति ऋषि का कहा हुआ परम श्रेष्ठ और धन्य रसायन है ॥ १-६ ॥

अथ वैद्यजोवनाद्विभीतकालवलेहः

आजस्य मूत्रस्य शातं पलानां शातं पलानां च कलिद्वृभस्य ।

पक्ष समध्वाण्य निहन्ति कासं खासं च तदृशस्वलं ब्लासम् ॥ १ ॥

बकरी का मूत्र और बड़ेरे का चूर्ण प्रत्येक सौ पल लेकर अवलेह-पाक की विधि से पाक कर गाढ़ा होने पर उतार कर शीतल होने पर उसमें मधु मिलाकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से कास, श्वास तथा स्वल कफ को यह अवलेह नष्ट करता है ॥ १ ॥

कण्टकार्यवलेहः (वृन्दात्)—

कण्टकार्यतुला नीरद्वोणे पक्षवा कथायकम् । पापश्चेषं गुहीर्वा च तदिमश्रूर्णनि दाणयेत् ॥ २ ॥

पृथग्पलांशान्वेतानि गुहीचीच्छवचित्रकम् । सुस्ता कर्कटशङ्की च व्यूषणं धन्वयात्कम् ॥ ३ ॥

भार्द्धो नाशा शटी चैव शर्करा पलविशनिः । प्रत्येकं च पलान्यष्टौ ग्रद्याद् धृततैलयोः ॥ ४ ॥

पक्षवा लेहस्वमायाते शीते मधुपलाष्टकम् । चतुर्थ्यलं तुग्रार्चीयः पिष्पलीनां चतुर्थपलम् ॥ ५ ॥

विषवा निष्पथ्यात् सुहृदे सून्मये भाजने स्तुमे । लेहोऽयं हृति कासात्तिहिंकाश्वासानशेषतः ॥ ६ ॥

कण्टकारी अवलेह—कण्टकारी का पञ्चाङ्ग १ तुला (१०० पल) और जल एक द्वोण (१६ सेर)

लेकर काथविधिसे पाक करे, चतुर्थीश देष्ट रहने पर उतार कर छान देवे। फिर उसमें गुरुचि, चब्य, चित्रकमूल, नागरमोथा, काकडासिंगी, सौंठि, पीपरि, मरिच, जवासा, बमनेठी, रासना, कच्चूर इन सब ओषधियों का चूर्ण पृथक् २ एक २ पल और शर्करा २० पल, गोधृत १ पल, तिल का तेल ८ पल सबको मिलाकर अवलेहपाक की विधि से पाक कर शीतल होने पर इसमें मधु ८ पल, वंशलोचन का चूर्ण ४ पल, पीपरि का चूर्ण ४ पल, मिलाकर खिंग मृत्पात्र में रख, लेवे। यह 'कण्टकारी अवलेह' कास, हिंका और श्वासरोग को समूल नष्ट करता है ॥ २-६ ॥

वृन्दात्—उद्याप्रीस्वरसविषकं राजाकटकलसुगोधृतव्योमः ।

सर्विः स्वरोपवातं निहन्ति कासं च पश्चविधम् ॥ ७ ॥

छोटी कटेरी का स्वरस ४ सेर, मूँछित गोधृत १ सेर लेकर इसमें राजा-कायरक-गोखरू-सौंठि-पीपरि-मरिच प्रत्येक समान मिलित ५। एक प्राव का कलक कर उसे मिलाकर धृतपाक-विधि से पाक करे, धृत मात्र देष्ट रहने पर उतार कर छान करता रख देवे। इव धृत के सेवन करने से स्वरभंग रोग तथा पांचों प्रकार के कास नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

सर्विर्गुहीचीत्वषकपटकारीकायेन कर्षकेन च सिद्धयेत् ।

पैथं पुरुणज्ञकासशूलपूर्णीहिमान्यप्रहणीशदेषु ॥ ८ ॥

मूँछित गोधृत १५ सेर, गुरुचि-अरुसा-छोटी कटेरी इनके समान मिलित प्रस्तुत काथ ४४ चार सेर (अर्धात् तीनों मिलाकर ४ सेर लेकर १६ सेर जल में काथ कर चतुर्थीश देष्ट रहने पर उतार कर छान लेवे) और गुरुचि-अरुसा तथा छोटी कटेरी इनके मिलित ५ के कलक को मिलाकर धृतपाक की विधि से धृतपाक कर सेवन करने से जीणज्वर, कास, शूल, प्रीहा, मन्दाद्य और ग्रहणीरोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

अथ व्यूषणादिधृतं वृन्दात्

व्यूषणं त्रिफलाद्वाकाकाशमर्यादारुचम् । द्वे पाठे देवदार्वद्विष्वगुसं चित्रकं शटी ॥ १ ॥

उद्याप्री तामलकी मेदा काकनासा शतावरी । चिकपटकं विदारी च पिष्टा कर्षमान्यतात् ॥ २ ॥
प्रस्थं चतुर्थुर्गुणस्त्रिलिदं कासहरं पिषेत् । उद्यरुगुमाहुचिपूरीहिमोहृतपार्श्वशूलनुत् ॥ ३ ॥

कामलादर्शोऽनिलाष्टीलाहतशोषचयापहम् । व्यूषणं नाम विषयातं धृतमेतन्महोत्तमम् ॥ ४ ॥

व्यूषणामि धृत—सौंठि, पीपरि, मरिच, अवरा, हर्दा, बहेरा, दाख, गम्भारि, अरुसा, पुराइ-पाटी, पाढ़र, देवदारु, नागरमोथा, केवाच, चित्रकमूल, कच्चूर, छोटी कटेरी, मुई बैंवरा, मेदा, काकनासा (कौआठोडी), शतावरि, गोखरू और चिदारीकन्द इन सब द्रव्यों को पृथक् २ एक २ कप लेकर कलक की विधि से कल्पकर मूँछित गोधृत एक प्रस्तु और गोदुग्ध ४ प्रस्तु लेकर सद को एकत्र कर धृतपाकविधि से धृत पाक कर सेवन करने से कास को नष्ट करता है तथा ज्वर, शुल्म, अरुचि, प्रीहा, शिरःशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कामला, अर्श, वाताष्टीला, क्षतरोग, शोपरोग, क्षयरोग इन सबको नष्ट करता है। यह प्रसिद्ध 'व्यूषणादि' नामक धृत अति उत्तम कहा गया है ॥ १-४ ॥

अथ कण्टकारीधृतम् वृन्दात्

समूलफलपत्रायाः कण्टकार्या रसाढकम् । धृतप्रस्थं बलाक्योषविद्वद्विष्वटिदाहिमः ॥ १ ॥

सौवर्च्छलयवक्षारविद्वामलकपौष्टकैः । वृश्चीवृहतीपय्यायवासीचित्रकादिभिः ॥ २ ॥

सृष्टीकाच्छ्वयवध्यभूरुलालभलवेतसैः । शृष्टीतामलकीभार्द्धीरासनगोधृकैः पचेत् ॥ ३ ॥

कलकस्तस्वसंकासेषु शासहिष्मसु शस्वते । कण्टकारीशूतं सिद्धं कफम्याचिनिष्पूदनम् ॥ ४ ॥

कण्टकारी धृत—मूल-फल-पत्रयुक्त कटेरी का स्वरस एक आडक (४ प्रथ), मूर्च्छित गोदृत १ प्रस्थ, बरिआरा, सौंठि, पीपरि, मरिच, बाभीरंग, कच्चर, अनारदाना, सौवर्चलनमक, यवधुलार, सौंठि, आंवला, पुइकरमूल, श्वेतपुनर्नवा, कटेरी, हर्री, जवाइन, चित्रकमूल, मुनक्का, चब्य, रक्त पुनर्नवा, जवासा, अम्लवेत, काकडासिंगी, भुई अंवरा, बमनेठी, रास्ना और गोबरू इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिवत् कल्प कर सब मिला धृतपाक विधि से पाक कर धृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर इस धृत का सेवन करने से सब प्रकार के कास में तथा श्वास और हिक्कारोग में उत्तम लाभदायक है और यह 'कण्टकारी धृत' कक्ष व्याधि को नष्ट करने वाला है ॥ १-४ ॥

द्वितीयं कण्टकारी धृतं योगतरङ्गिण्याः—

कण्टकायोस्तुलां त्रुणां कृत्वा द्वाणेऽभ्यसः पचेत् । तेनाऽऽद्धेन काथस्य धृतप्रस्थं पिचून्मितः ॥
रास्नादुःस्पर्शवद्ग्रन्थिपिपाकीहृष्टेचकपीनसान् ॥ ६ ॥

सौवर्चलयथवारकृणामूर्च्छ तउज्येत् । कासश्वासकफष्टोविहक्षरोचकपीनसान् ॥ ६ ॥

द्वितीय कण्टकारी धृत—छोटी कटेरी १ तुला (सौ पल) लेकर अधकुटी कर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल के साथ काथ की विधि से पाक करे और एक आडक (४ प्रथ) शेष रहने पर उतार-छान कर इसमें मूर्च्छित गोदृत एक प्रस्थ, रास्ना, जवासा, बच, पीपरि, गजपीपरि, चित्रकमूल, सौवर्चल नमक, यवाखार और पिपरामूल इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिवत् कल्प कर सबको एकत्र मिलाकर धृतपाक विधि से धृत कर सेवन करने से कास, श्वास, कफडीवन (थुक्कुकी कफ की), हिक्का, अरुचि और पीनसरोग नष्ट होते हैं ॥ ५-६ ॥

अथ रसाः

भागोत्तरवटी—

रसगन्धकणापथ्याकलिद्रुक्तवासकाः । भार्क्षी चेति क्रमाद् वृद्धेरेत्तद्वर्जद्वैः ॥ १ ॥
पिष्ठं विशतिमेकान्तन्कुर्यात्कृद्वै गोलकान् । कर्षप्रमाणमेतस्य तमेकं प्रातरुत्थितः ॥ २ ॥
द्वयान्मासश्च शुद्धाकारं दशकणायुतम् । पिवेत्तदनु कासाच्च श्वासाच्च परिमुच्यते ॥ ३ ॥

भागोत्तर वटी—पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, पीपरि ३ भाग, हर्री ४ भाग, बहेरा ५ भाग, अरुचि ६ भाग और बमनेठी ७ भाग इस भाँति यशक्रम प्रवृद्ध लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर उसमें इन सब ओषधियों के उत्तम चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर बबूर की काथ के साथ २१ बार मर्दित तथा भावित कर मधु मिलाकर एक कर्ष के प्रमाण की वटी बनाकर प्रतिदिन प्रातः एक वटी तीन मास तक छोटी कटेरी के काथ में दस पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर उसके अनुपान से सेवन करने से श्वास और कासरोग से मुक्ति होती है ॥ १-३ ॥

अथ पर्पटीरसः

रसरलप्रदीपात्—

भागो रसस्य गन्धस्य द्वावेको लोहभस्मतः । युतद् धृते द्रवीभूतं मृद्धमौ कक्षलीद्वले ॥ १ ॥
पातरेद्वामयगते तथेवोपरि योजयेत् । ततः पिष्ठा द्वैवरेभिर्मर्दयेत्तरसंधा पृथक् ॥ २ ॥
भार्क्षीमूष्ठामूनिवराज्यानिगुणेष्काद्वैः । व्योषवामककन्याद्वैद्वैः शुद्धं पुटेद्वलु ॥ ३ ॥
आगन्ध-खर्पते भाग्ना पर्पटीति रसो भवेत् । सर्वरसाद्वरः रूपैः स्वैरसुपानैर्द्विभाषतः ॥ ४ ॥
ताम्बूलथवसहिता कासश्वासहरा परा । सकणः सुरक्षाकायोऽनुपानं वा सगाजलम् ॥ ५ ॥

पर्पटीरस—शुद्ध पारद २ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, लौहभस्म १ भाग लेकर प्रथम पारद-

गन्धक की कज्जली विधिपूर्वक बनाकर उसमें लौह मिला कर मर्दन कर एक लोहे के पाश रखकर उसमें प्रमाण से गोदृत मिलाकर मन्दामिन पर पाक कर पर्पटी की विधि से द्रवीभूत होने पर उसे केले के पत्ते पर जो गोबर पर रखा हुआ हो उस पर ढाल कर ऊपर से पुनः केले के पत्ते से दबाकर पर्पटी जमा लेवे । पश्चात् इस पर्पटी को खरल में पीस कर निम्न लिखित द्रव्यों के द्रव्यों से सात २ बार पुथक् २ मर्दन तथा भावित करे । बमनेठी, सुण्ठी, अगस्त, अवरा, हर्री, बहेरा, भांग, सम्भाल (मेहुङ्डी), सौंठि, पीपरि, मरिच, अरुसा, धुतकुमारी और अद्रक ये आवाना द्रव्य हैं पश्चात् सुखाकर खर्पते में रख कर पुटपाक की विधि से लघु पुट देवे जब इसमें से गन्धक का गन्ध निकल जावे तब निकाल ले । यह 'पर्पटी' नाम का रस अनुपान के भेद से सब रोगों को नष्ट करने वाला है, इसकी मात्रा २ मासा तक है (पर पहले १ माशा से प्रारम्भ करना चाहिये), पान के पत्ते के साथ खाने से कास और श्वास को नष्ट करता है सेवन के पश्चात् तुलसी की काथ पीपरि चूर्ण के प्रक्षेप के साथ अनुपान देवे—अथवा गोमूत्र का अनुपान देवे ॥ १-५ ॥

अथ पारदादिरसः

योगरत्नावलितः—

पारदं गन्धकं शुद्धं धृतं लोहं च टहुणम् । रास्नाद्विद्विक्षिकलादेवदाहकदुत्रयम् ॥ १ ॥

अमृतापश्चक्षौद्रं पितृतुष्यानि चूर्णयेत् । ग्रिगुञ्जः सर्वकासप्त्रो ज्वरादोचकमेहनुत् ॥ २ ॥

पारदादिरस—शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, लौहभस्म, शुद्धटहुण, रास्ना, वायभिरंग, अवरा, हर्री, बहेरा देवदारु, सौंठि, पीपरि, मरिच, पुटयोगाठ और मधु इन सब ओषधियों का समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की विधिवत् कज्जली कर पुनः उसमें अन्य द्रव्यों का शलक्षण चूर्ण कर मिला कर मर्दन कर तीन रक्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से सब प्रकार के कास को नष्ट करता है और ज्वर, अरोनक तथा प्रेमह को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ कासश्वासविधूननो रसः

रसभागो भवेदेको गन्धकाद् द्वौ तथेव च । यवचारिभिराग्नाः स्याद्वृचकं च चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥

मरिचं पञ्चभागं स्याद्भुत्तारसमर्दितः । कासं पञ्चविधं हन्त्याच्छासं पञ्चविधं हरेद ॥ ४ ॥

कासश्वासविधूनन रस—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्धगन्धक २ भाग, यवाखार ३ भाग, रुचक लवण वा सज्जीखार ४ भाग, मरिचचूर्ण ५ भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की विधिवत् कज्जली कर और ओषधियों को मिला कर तुलसी के स्वरस के साथ घोट कर सुखाकर रखे । इस रस के सेवन करने से पांचों प्रकार के कास तथा पांचों प्रकार के श्वासरोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

अथ ताम्रपर्पटीरसः

मृतं ताम्रं त्रिभागं च रसं गन्धं च तरसमम् । भागमेकं वासनार्भं कज्जलीस्त्वरमध्यगम् ॥ ५ ॥

गोदृतेन कृतं कल्पक लोहपात्रे विपाचयेत् । ढालयेदक्षपद्मस्थो पर्पटी रससिद्धये ॥ २ ॥

गुजार्द्वयं त्रयं चैव पिप्पलीमधुसंयुतम् । त्रिसप्तरात्रयोगेन रोगराजं च नाशयेत् ॥ ३ ॥

आदर्दकस्य रसनेव सक्षिप्तातं नियच्छ्रुतिः । त्रिफलारससंयुत्का सर्वपाणहुं विनाशयेत् ॥ ४ ॥

वातारितेलसंयुक्ता सर्वंशुलनिवारिणी । कुमारीरसयोगेन वातपित्तोपशान्तिकृत् ॥ ५ ॥

आकुचीरससंयुक्ता सर्वदतुविनाशिनी । त्रिफला मधुसंयुक्ता सर्वमेहनिवारिणी ॥ ६ ॥

त्रादिरकथपानेन कुष्ठादादशनाशिनी । मन्धानभैरवेणोक्ता लोकानां हितकामया ॥ ७ ॥

ताम्रपर्पटीरस—शुद्ध ताम्रभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक प्रत्येक ३ भाग, शुद्ध तरसनाम विष १ भाग लेकर प्रथम-गन्धक की कज्जली विधिपूर्वक कर पुनः सब ओषधियों को एकत्र मिला

२७ यो० पू०

कर (खरल कर) इसमें गोधृत मिला कर लोहे के पात्र में रख कर अग्नि पर पाक करे जब पिथुल कर सब एक रस हो जावे तो पर्षटी की विधि से अर्कपत्र गोबर पर रख कर उस पर ढाल कर मुनः कपर से अर्कपत्र रख दवा कर पर्षटी बना लेवे । इस पर्षटी की दो रत्ती अथवा २-३ रत्ती के प्रमाण से पीपरि के चूर्च और मधु के अनुपान से २१ दिन तक सेवन करने से रोगराज (बध्मा) को नष्ट करता है । अद्रक के स्वरस के अनुपान से सेवन करने से सन्तुष्टिपात्र को नष्ट करता है । एवं शिफला के स्वरस से सब प्रकार के पाण्डुरोग, प्रणण के तेल से सब प्रकार के शूल, कुमारी के रस से वात-पित्त, वाकुनों के रस से सब प्रकार के दहु, विफला और मधु से सब प्रकार के प्रमेह, खेर के काथ के अनुपान से सेवन करने से अठारहो प्रकार के कुष्ठ को नष्ट करता है । 'मन्थान मैत्रन' ने लोगों के हिंत के लिये इस 'ताम्रपर्षटी' को कहा था ॥ १-७ ॥

अथ नागवल्लभः

वात्सान्तरात्—

कर्वन्ता मृगमहो वट्टकग्रां श्रव । काशीरज-मद्दरदविष्वव्यः स्युद्धिर्विहितः ॥ १ ॥
आकार छावा जानोपत्रा जाताकृष्ट दिव्यम् । प्रत्येकं पश्चानानि सच्चावद्यथं शुल्ववृक्षे ॥ २ ॥
अहिवृद्वादूरवेदंदेवेष्व दिव्यम् । सुदूरप्राणा वटका लोडा मध्वाद्रिकद्रवः ॥ ३ ॥
ताम्रूद्धिर्विहिते मेहकासद्यमहद्वादा । नागवल्लभनामाऽर्थं रसो विश्वोयकारकः ॥ ४ ॥

नागवल्लभत-कस्तूरी, दाहवोत्तो, शुद्ध टक्कण प्रत्येक एक २ कप्तं, केसर, शुद्ध हिंगुल, पीपरि तूर्णं प्रत्येक दो २ कर्ष, अकरकरा, जावित्रा, जायफर, शुद्ध मोठा विष, प्रत्येक एक २ पल लेकर एकत्र खरल में भजा-मालि वॉट कर पान के पत्ते के रस के साथ ३ दिन तक वॉट कर मूंग के प्रमाण को बयो बना कर मधु आर अद्रक के स्वरस के अनुपान से सेवन करे । अथवा पान के पत्तों में रख कर चर्चां करे तो इसमें प्रेरोग, कास, क्षय तथा वायु दोष नष्ट होते हैं ।
यह 'नागवल्लभ' नाम का रस संसार का कल्याणकारक है ॥ १-४ ॥

अथ हेमगर्भपोद्गुलीरसः

शार्दूलधरात्—

इसस्य भागावत्तारसतावन्तः कनकस्य च । तयोश्च पिष्ठिकां कृष्णा गन्त्वो द्वादशभागः ॥ १ ॥
कुर्यात्कज्जलिकां तत्र मुक्ताभागाश्च षोडशः । चतुर्विंशतिः शङ्खस्य भागैर्कं टक्कणस्य च ॥ २ ॥
एकव मर्दंशेत्पर्वं पक्निम्बूकज्ञे रसैः । कृष्णा तेषां ततो गोलं प्रशासंपुटके न्यसेत् ॥ ३ ॥
सुद्धा दृश्वा ततो हस्तमात्रे गर्तु च गोमयैः । पुटेद्वज्जुटेनेव श्वाङ्गशीतं समुद्दरेत् ॥ ४ ॥
पिष्ठा गुजाचतुर्मानं द्यादूर्ध्वायत्यसंयुतम् । पुकानिंशित्वादुन्मानमरिचैः सह दीयते ॥ ५ ॥
राजते मृगमये पात्रे काचजे बाऽथ लोहजे । लाकनाथसम्पद्यं कुप्यत्प्रयत्नमानसः ॥ ६ ॥
कासे भासे चष्टे वाते कफे प्रहणिकागदे । अतीसारे प्रयोक्तव्या पोद्गुली हेमगर्भिका ॥ ७ ॥

हेमगर्भपोद्गुलीरस—शुद्ध पारद ४ भाग, शुद्ध स्वर्णभस्म ४ भाग लेकर दोनों को एकत्र खरल कर पिष्ठिका (पीठी) करके शुद्ध-गन्धक १२ भाग लेकर मिला कर उचम कज्जली बना लेवे पश्चात् इसमें १६ भाग मुक्ताभस्म, २४ शोखभस्म और १ भाग शुद्ध टक्कण मिलाकर मर्दन कर पके हुए नीबू के रस में घोट कर गोला बना कर शराव-सम्पुट में रख कर विधिपूर्वक (कपरमिट्टी आदि से) सम्पुट का मुख मर्दन कर सुखा कर एक हाथ के प्रमाण के गहरे गडे में उपलों के बीच रख कर गजपुट की विधि से पुटपाक करे । श्वाङ्ग-शीतल होने पर निकाल कर विधिवत् मर्दन (घोट) कर इसकी ४ रत्ती के प्रमाण की मात्रा लेकर २९ काली मरिच के चूर्ण

और गोधृत के अनुपान से चाँदी मिट्टी, काच अथवा लोहे के पात्र में रख कर सेवन करे अर्थात् इनमें से किसी एक धातु के पात्र में औषध को रख कर उसी में मरिच-चूर्ण गोधृत आदि मिला कर चाटे और इसके सेवन-काल में 'लोकनाथ रस' के सेवन करने में जो पथ्य लिखा है उस पथ्य से रहे अर्थात् वही पथ्य करे और मन संयत रखे । इस 'हेमगर्भपोद्गुली रस' का प्रयोग कास, खास, क्षय, वात व्याधि, कफरोग, ग्रहणीरोग और अंतीसार रोगों में करने से ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १-७ ॥

अथ द्वितीयहेमगर्भपोद्गुलीरसः

शुद्धसूतं चतुर्भागं द्विभागं गन्धकस्य च । भागमेकं स्वर्णं च त्रिभागं शुल्वभस्म च ॥ १ ॥
कुमारीरससंयुक्तं सप्ताहं मर्दयेद् दृढम् । गुटिकां कारयेत्तां तु वृद्धनीयाश्वारकर्षणे ॥ २ ॥
वृद्धे किञ्चिद्गुलिं स्थाप्य तत्र गोलं निधाय च । वृद्धनीयापोद्गुलीं गाढां पश्चाद्गुर्वेत्रे वेष्टयेत् ॥
संवभागसमं गन्धं शुश्वा मृगमयभाजने । तन्मध्ये पोद्गुलीं न्यस्य मुखे मुद्रा च कारयेत् ॥ ३ ॥
विधाय किञ्चं सुदास्थं द्रावं द्वाहा शालाकया । पाचयेत्सिकतायन्त्रे इसोऽथं शुद्धवद्धिना ॥ ४ ॥
यामाधृतं सुसंजातं स्वाङ्गशीतं समुद्दरेत् ।

कासे भासे चष्टे वाते कफे प्रहणिकागदे । सर्वरोगेषु दातव्या हेमगर्भपोद्गुली ॥ ५ ॥

द्वितीय हेमगर्भपोद्गुली रस—शुद्ध पारद ४ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, ताम्रभस्म ३ भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर उसमें स्वर्ण-ताम्र मिश्रित कर मर्दन कर लेवे पश्चात् कुमारी के स्वरस के साथ एक सप्ताह घोट कर गुटिका (गोल) बना एक दृढ़ तथा कडे कपडे में बाँध कर रख देवे । फिर एक दूसरे कपडे में थोड़ा शुद्ध गन्धक रख कर उसमें उपर्युक्त वृंधा हुआ गोला रख मली-भाँति बाँध देवे और ऊपर से फिर एक कपड़ा लपेट देवे । पश्चात् एक मिट्टी के पात्र में सम्पूर्ण (उपर्युक्त ओषधियों मिलित जितनी हों) ओषधियों के समान शुद्ध गन्धक रख कर उसके बीच में वह कपड़े में बाँधी पोटली रख कर उस हाली का सुख सुक्रा (कपडमिट्टी आदि से सुख पर के सन्धियों को बन्द) कर देवे परन्तु उसके ठक्कन में एक छिद्र रखे और उसी छिद्र में एक लोहे की सलाका ढाल कर उस के द्वारा यह देखे कि गन्धक का द्रावण हो गया है या नहीं, यदि हो गया हो तो इसे 'सिकता यन्त्र' में रख कर मर्द २ अग्निपर पाक करे । आधा पहर तक पाक होने पर अग्नि से पृथक् कर त्वाङ्गशीत होने पर निकाल कर रख लेवे । इस 'हेमगर्भपोद्गुली' नामक रस को कास, श्वास, क्षय, वातव्याधि, कफरोग, ग्रहणीरोग तथा सब प्रकार के रोगों में सेवन करने से यह सबको नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

अथान्यः प्रकारः

शुद्धसूतं त्रिभागं च तत्समं शुल्वभस्म च । भागैकं गन्धकं दृथात्तदधं स्वर्णमेव च ॥ १ ॥
कज्जलीं कारयेत्तां तु खल्वके सप्तवासरम् । अथ निर्गुणिकाद्रावै मर्दयेत्तिनसपक्षम् ॥ २ ॥
अथवा कनकद्रावै गुटिकां कारयेत्ततः । किञ्चिद्गुलिसमायुक्ते वृद्धे गोलं निधाय च ॥ ३ ॥
वृद्धनीयापोद्गुलीं गाढामेवं च विष्टुप्तं चरेत् । दृढमृगमयापात्रे तु गन्धं दृश्वाऽधरोत्तरम् ॥ ४ ॥
तन्मध्ये पोद्गुलीं न्यस्य तिर्वात्तमवनान्तरे । वित्सितप्रमितं गर्त तस्मिन्स्वस्थाप्य मुद्रयेत्पापा ॥
अञ्जुकैर्मृद्धिकामिश्र ज्वालयेत्पापा च ।

यामेत्तमिद्दातो याति हेमगर्भपोद्गुली । अनुपानानुसारेण सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ५ ॥

दूसरा प्रकार—शुद्ध पारद ३ भाग, ताम्रभस्म ३ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, स्वर्णभस्म द्वा भासा भाग लेकर सात दिन तक खरल में मर्दन कर कज्जली करे फिर सम्पाल के स्वरस के साथ अथवा धत्रौ के रस के साथ सात दिन मर्दन तथा भावित कर गुटिका (गोलक) बना

एक कपडे में थोड़ा शुद्ध गन्धक रख कर उसी में गोलक को रख कर दृढ़ पोटली बौंधे इसी प्रकार दो नार और अलग २ कपडे में थोड़ा गन्धक रख कर उसमें पोटली रखता जावे। इस प्रकार त्रिपुट कर अर्थात् तीन खख में गन्धक रख कर पोटली बना २ कर पहिले को दूसरे में और दूसरे को तीसरे में रखता और बौंधता चला जावे पश्चात् एक दृढ़ सूतपात्र में नीचे-ऊपर शुद्ध गन्धक रख कर बीच में उस पोटली को रख कर पुख-मुद्रा कर बाहु रहित स्थान में एक बित्ते के प्रमाण का एक गहरा गढ़ा खोद कर आग लगा गढ़े का सुख मिट्टी से लेप कर बन्द कर एक पहर तक पाक करे। एक पहर में यह 'हेमगर्भपोट्टीरस' सिद्ध हो जाता है। इसको अनुपान के भेद से प्रयोग करने से सब रोगों को नष्ट करता है॥ १-६॥

अथान्यः प्रकारः

इसं च गन्धकं चैव समं खखे विमर्दयेत् । कउजलयां च तथा स्वर्णं संशुद्धं च विनिविषेत् ॥
सुसूचमे सुशुद्धे वस्त्रे वद्यन्धा पोट्टिलिकां इठाम् ।
गन्धकेनाऽऽयसे पात्रे पकवा पोट्टिलिकां चिरम् ॥ २ ॥

मन्द्याग्निनामा पचेयाद्य व्योमवर्णं अवेतु तत् ।

हेमगर्भं इति ख्यातो इसोऽयं इवासकासनुश् । अनुपानविभेदेन सर्वरोगाभ्यात्यसौ ॥ ३ ॥

फिर दूसरा प्रकार—शुद्ध पारद १ भाग और शुद्ध गन्धक १ भाग लेकर विधिवत् कजली करे और इसी कजली में स्वर्णमस्म १ भाग मिलाकर मर्दन करे। खूब छुट जाने पर एक सूक्ष्म तथा दृढ़ खख में इस को रख कर बौंधकर पोटली बना लेवे। फिर एक लोहे के पात्र में शुद्ध गन्धक रखकर उसी गन्धक में इस पोटली को रख कर बहुत देर तक मन्द २ अविन पर तब तक पाक करे जब तक कि उसका वर्ण आकाश के वर्ण के समान नील (आसमानी) नहीं हो जावे। इस वर्णका हो जाने पर उतार लेवे। इसे 'हेमगर्भरस' कहते हैं। यह श्वास और कास को नष्ट करता है तथा अनुपान भेद से सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है॥ १-६॥

अथ महाहेमगर्भरसः:

शुद्धसूतं पलेकं स्थात्पादांशं शुद्धहेमकम् । शुद्धगन्धस्य माषेकं प्रतिकर्षं प्रथोजयेत् ॥ १ ॥
श्रयमेकत्र कुर्वीत सूचमं खखे विमर्दयेत् । सुहृदे बन्धयेहृस्त्रे स्थाप्यं लोहजसंपुटे ॥ २ ॥
मर्दितं गन्धकपलं तस्योपरि प्रदापयेत् । संपुटं सुदितं कृत्वा भूषरावयपुटे पचेत् ॥ ३ ॥
स्वाक्षरीतलसुद्धृत्या दरधं गन्धं परित्यजेत् । वेर्षायित्वा पुनर्वस्त्रं सूक्ष्मं च गोलकम् ॥४॥
तत्त्वस्यं च पुनर्गन्धं संपुटे विनिविषेद् विषक् । सुदितं संपुटं कृत्वा पुनर्यन्त्रेण पात्रयेत् ॥५॥
हेमगर्भरसो नाम्ना सर्वव्याघ्रिनिवारणः । रोगराजादिकं हन्ति हतरेषां तु का कथा ॥६॥

महाहेमगर्भरस—शुद्ध पारद एक पल, शुद्ध स्वर्णमस्म चतुर्थीशा अर्थात् १ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ मासा लेकर तीनों को एकत्र खरल में भलीभाँति मर्दन कर एक दृढ़ खख में बौंध एक लोहे के शराव-सम्पुट में रख कर उसके ऊपर चूर्ण किया गन्धक एक पल देकर सम्पुट को बन्द कर 'भूधर पुट' में विधिपूर्वक पाक करे। स्वांगशीत होने पर निकाल कर ऊपर का जला हुआ गन्धक देवे फिर इसे कपडे में रख कर सूत से गोले की तरह बौंधकर इस गोले के समान ही गन्धक सम्पुट में रख कर उसमें यह गोला रखकर फिर सूटपाक करे और स्वांगशीत होने पर निकाल कर रख लेवे। यह 'हेमगर्भ' नामक रस सब रोगों को नष्ट करने वाला है यहाँ तक कि जब रोगराजादिक (यक्षमादिक) को नष्ट करता है तो अन्य रोगों की क्या बात है। अर्थात् सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करता है॥ १-६॥

अथ कफकुञ्जररसः:

इसगन्धी समाशी च सुद्धाकैपथसः पलम् । पलं च पञ्चलवणमेकीकृत्यावचूर्णयेत् ॥ १ ॥
आलोड्य चाकहुधेन परयेष्वद्व्युत्पद्यतः । विष्पलीभक्तावारिचूर्णं कृत्वा प्रलेपयेत् ॥ २ ॥
प्रउवालयेद्याममात्रं सूक्ष्मचूर्णं तु काशयेत् । कपूरनारापत्रैश्च देयो मात्राधंगुलया ॥ ३ ॥
श्वासं कासं च हृदोगं कफं पञ्चविधं तदा । नाशयेद्यमवरोगांश्च इसोऽयं कफकुञ्जरः ॥ ४ ॥

कफकुञ्जरस—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, स्तुही (शूहर) का दूध, आक का दूध, पांचो नमक (सोंचर, सेंधो, विड, औषध, सामुद्र) मिलित, प्रत्येक एक २ पल लेकर प्रथम पारद-गन्धक की विधिवत् कजली कर पश्चात् सब को एकत्र मर्दन कर आक के दूध में धोल कर शङ्ख में भरकर फिर पीपरि, गजपीपरि और सुगन्धवाला इनका चूर्ण करूँ जूँ में धोल कर शङ्ख पर लेप कर देवे। फिर इस शङ्ख को एक पहर तक अप्ति में रख कर पाक कर स्वांगशीत होने पर निकाल कर न्यून (क्षक्षण चूर्ण) कर आधी रक्ती के प्रमाण की मात्रा में कपूर तथा पान के पत्ते के साथ सेवन करने से श्वास, कास, हृदोग और पांचो प्रकार के कफ तथा सब प्रकार के रोगों को यह 'कफकुञ्जररस' नष्ट करता है॥ १-४॥

अथ कफरोगे नागरसः:

लवङ्गजातीफलजातिपत्रिकास्तथैव नागोषणप्रनिधकानि ।

कर्वप्रमाणानि तथैकशार्णं कस्तूरिकाकुम्हयोः प्रयुञ्जयात् ॥ १ ॥

आद्रग्नुमात्रथ विहिता वटिका त्रिगुजा चाऽऽद्वैतभसाऽपि विनिहन्ति कफच्छयादीन् ।

किं श्वासकासमथवा जठरस्य शूलं नानानुपानवशातः सकलामयघ्रम् ॥ २ ॥

कफरोग में नागरस—लवंग, जायफर, जाविनी, नागभस्म, मरिच, पिपरामूल, इनमें से प्रत्येक का चूर्ण १-१ कर्ष, कस्तूरी और केशर १-१ शाण (४ मासा) लेकर एकत्र मर्दन कर अद्रक के रस से धोएं कर तीन रक्ती के प्रमाण की बटी बनाकर अद्रक के स्वरस के ही अनुपान से सेवन करने से कफज क्षयरोग को नष्ट करता है। श्वास, कास और उदरशूल को कौन कहे? अर्थात् अनुपान भेद से सब रोगों को नष्ट करता है॥ १-२॥

अथोन्मत्तभैरवरसः:

पारदं दरदं शुद्धं गन्धकं कउजलाकृति । गजकणा वस्तनागं शुण्ठी ओन्मत्तबीजकम् ॥ ३ ॥

जातीफलं जातिपत्रं लवङ्गं मरिचं तथा । अकशकरं समानं स्थान्मदर्येष्व दिनश्रयम् ॥ ४ ॥

आद्रकस्य इसेनैव गुटिकां वलसनिभास्म । चपलामधुना चैव च्यथासनिवृणः ॥ ५ ॥

कफरोगविनाशाय रस उन्मत्तभैरवः । अनुपानविशेषण धातुपुष्टिकरः स्मृतः ॥ ६ ॥

उन्मत्तभैरवरस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, दोनों समान (१-१ भाग) लेकर विधिवत् कजली कर इसमें गजपीपरि, शुद्ध वस्तनाभविष, सौठि, धूतेर का बीज, शुद्ध जायफर, जाविनी, लवंग, मरिच और अकशकरा प्रत्येक का चूर्ण १-१ भाग लेकर एकत्र मर्दन कर अद्रक के रस में तीन दिन तक धोटकर दो रक्ती के प्रमाण की बटी बनाकर पीपरि का चूर्ण तथा मधु के अनुपान से सेवन करने से क्षय तथा श्वास को नष्ट करता है। और यह 'उन्मत्तभैरव'-रस के सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है तथा अनुपानविशेष से धातुपुष्टिक भी है॥ १-४॥

अथ पश्यापथ्यम्

शालिचिक्षणोधूमसापसुद्धकुलत्यकाः । छायाः पथो धूतं विभवी वार्ताकं बालमूलकम् ॥ १ ॥

कासमदेकजीवन्तीवासतुकं बीजपूरकम् । गोस्तनी लशुनं लाजा व्योषमुखोदकं भधु ॥ २ ॥

पथ्यमेततशादोषसुकं कासगदातुरे ।

मैथुनं खिंधमधुरं विवास्वापं पथो दधि । पिण्डाक्षं पाच्यसादीनि कासी धूमं च वज्रेत् ॥३॥
पथ्यापथ्य—शाली धान्यों का चावल, साठीधान का चावल, गेहूं, उरिद, मूंग, कुलधी, बकरी का दूध और धी, बिज्जीफल, छोटी मूली, कसीजर, जीवन्ती (जीवशाक), बकुआ, बिजौरा, नीबू, मुनक्का, लहसुन, धान का लावा, सौंठि-पीपरि-मरिच, गरम जल और मधु ये सब थथादेव विचार कर कास के रोगी के लिये पथ्य कहे गये हैं । मैथुन, खिंधपदार्द, मधुर पदार्थ, दिन में शयन, दूध, दही, पिण्ड पदार्थ (पीठी आदि), खीर आदि तथा धूंआ (धूमपान तथा धूम में रहना) ये कास रोगी के लिये वर्जित अर्थात् अपथ्य हैं ॥ १-३ ॥

अथातो हिक्कानिदानं ठ्याख्यास्यामः

विदाहिगुरुविष्टभिरुक्षाभिष्यन्दभोजनैः । श्रीतपानाशनकानरजोधूमातपानिलैः ॥ १ ॥
व्याघामकमंभाराप्यवेगाधातापतपणैः । हिक्का आसक्त कासक्त नुणा समुपालायते ॥ २ ॥

हिक्का का निदान—दाइ उत्पन्न करने वाले, गुरु, मलावरोधक, रुक्ष तथा कफोत्पादक पदार्थों के अति भोजन से, अति शीतल पेय पीने से, अति शीतल पदार्थों के भोजन से, अति शीतल जल से ज्ञान करने से, धूलि-धूम-धूप और वायु के अति सेवन से, अधिक व्यायाम करने से, अधिक भार ढोने से, अधिक रास्ता चलने से, मल मूत्रादि के वेग को वेग को रोकने से, अधिक उपवास करने से मनुष्यों को हिक्का, शास और कासरोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

अथ संप्राप्तिमाह

सुहुसुहुर्धायुरुदेति सस्वनो यकृत्पुरीहान्त्राणि मुखादिवाऽस्तिपन् ।
स व्योग्यवानाशु हिनरत्यसून् यतस्ततस्तु हिक्केयमिधीयते लुधैः ॥ ३ ॥

हिक्का की सम्प्राप्ति—दूषित प्राणवायु बार-बार 'हिक' पेसा शब्द करता हुआ और मानो यकृत, प्लीहा और आतों को सुख द्वारा बाहर फेंकता हुआ, घोर शब्द करता हो तो 'हिक्का' कहते हैं । यह प्राणनाशक है ॥ ३ ॥

तासां पूर्वस्त्रपमाह—

कपटोरसोगुरुर्लवं च बदनस्य कषायता । हिक्कानो पूर्वरूपाणि कुचेराटोप एव च ॥ २ ॥

हिक्का का पूर्वरूप—जिस मनुष्य का कण्ठ और छाती भारी मालूम हो, सुख का स्वाद कषाय मालूम हो, पेट फूला हुआ मालूम हो तो जानना चाहिये कि इसे हिक्का होगी अर्थात् ये हिक्का के पूर्वरूप हैं ॥ २ ॥

अथ तासां नामान्याह

अस्त्रां यमलो लुद्रां गम्भीरां महतीं तथा । चायुः कफेनानुग्रहः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥ १ ॥

हिक्का के नाम (संख्या)—कफ से अनुग्रह हुआ वायु अन्नजा, यमला, लुद्रा, गम्भीरा और महती नाम की पांच प्रकार की हिक्का उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

अथान्नजालक्षणमाह

पानान्नरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलैः । हिक्कयस्तृप्त्वर्गे भूत्वा तां विद्यादक्षां शिष्क ॥

अन्नजा के लक्षण—पेय पदार्थ तथा अन्नदिक के अत्यधिक संयुक्त ही जाने से अर्थात् अधिक खा-पी लेने से एकाएक पीडित हुआ प्राणवायु कृपित होकर ऊर्ध्वगमी होकर जो हिक्का उत्पन्न कर देता है उसको वैद्य 'अन्नजा' हिक्का कहते हैं ॥ १ ॥

अथ यमलाभावः

चिरेण यमलैर्गर्द्या हिक्का संप्रवर्तते । कर्पयन्ती शिरोग्रीवं यमलां तां विनिदिशेत् ॥ १ ॥

यमला के लक्षण—जिस हिक्का का वेग बहुत देर २ पर यमलवेग अर्थात् एक ही बार दो वेग का हिक्क-हिक्क शब्द करता हुआ आवे और सिर तथा ग्रीवा को कॅंपा देवे उस हिक्का को 'यमला' हिक्का कहते हैं ॥ १ ॥

अथ लुद्रामाह

चिकुष्टकालैर्या वेगमन्द्यैः समभिवर्तते । लुद्रिका नाम सा ज्ञेया लुद्रमुलात्पदावर्ती ॥ १ ॥

लुद्रा के लक्षण—जिस हिक्का का वेग शीघ्र २ और मन्द वेग से आवे और लुद्रमूल से ही जिसका वेग उत्पन्न हो उसे 'लुद्रा' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ गम्भीरामाह

नाभिप्रधृता या हिक्का घोरा गम्भीरनाहिनी । अनेकोपद्वयवती गम्भीरा नाम सा रम्यता ॥

गम्भीरा के लक्षण—जिस हिक्का का वेग नाभिरथान से प्रवृत्त हो और धोर एवं गम्भीर शब्द करे तथा अनेक प्रकार के उपर्योगों को करने वाली हो उसे 'गम्भीरा' नामकी हिक्का कहते हैं ॥ १ ॥

अथ महतीमाह

ममर्ण्यापीढ्यन्तीच सततं या प्रवर्तते । महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगाम्ब्रप्रकरिणी ॥ १ ॥

महती के लक्षण—जिस हिक्का से सब सूर्य स्थान पीडित हों और वेग निरन्तर रहे तथा सम्पूर्ण शरीर को कॅपाती हुई प्रवृत्त हो उसे 'महाहिक्का' अथवा 'महती हिक्का' जानना चाहिये ॥ १ ॥

अथासाध्यत्वलक्षणमाह

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो इष्टशोध्वं ताम्यते यस्य नित्यम् ।

क्षीणोऽक्षिहित् चौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चार्यत्वे वर्जयेद्विक्षकमानी ॥ १ ॥

हिक्का का असाध्य लक्षण—जिस हिक्का के वेग के समय शरीर पसर जावे, इष्ट ऊपर हो जावे तथा पसर जावे ऐसा नित्य हो अर्थात् प्रत्येक वेग में ऐसी अवस्था रहे अथवा जिस में शरीर क्षीण हो जावे, अन्न में अरुचि हो जावे, अधिक छोटी आवे, उपर्युक्त दोनों प्रकार के लक्षणों वाली हिक्का तथा अन्त वाली (गम्भीरा और महती) दो हिक्का छोड़ देना चाहिये अर्थात् ये चार हिक्का असाध्य हैं ॥ १ ॥

अतिसङ्खितदोषस्य भज्ज्वेष्टुष्ट्वय च । व्याघ्रिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिद्यथायिनः ॥२॥

एषां या सा समुत्पत्ता हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ।

यमिका च प्रलापातिमोहत्याणासमन्विता ॥ २ ॥

जिस हिक्का वाले शरीर में वातादि दोष अति संचित हो गये हों, भोजन में अरुचि हो, शरीर क्षीण (दुर्बल) हो गया हो तथा व्याघ्रिय के कारण जिसका शरीर क्षीण हो गया हो, वृद्धावस्था हो, तथा अति मैथुन करने वाले की हिक्का हो, इस प्रकार की अवस्था वाले को यदि हिक्का हो तो शीघ्र जीवन को नष्ट कर देती है अर्थात् ऐसी अवस्था की हिक्का असाध्य है । यदि यमला हिक्का प्रलाप-पीढ़ी-मोह और तृणा से दुक्ष हो तो वह भी जीवन को नष्ट कर देती है अर्थात् इन उपर्योगों वाली यमला भी असाध्य है ॥ १-२ ॥

अष्टीक्षण्याप्यर्दीनक्ष्य विश्रधादिविद्ययः । तत्य साध्ययुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥

जिस हिक्का वाले का शरीर क्षीण नहीं हुआ हो, प्रसन्न मन हो, धातु और इन्द्रिया स्थिर हों अर्थात् अपने कार्य में सदल हों, उसकी 'यमला' हिक्का साध्य है अन्यथा असाध्य जानना चाहिये अर्थात् उपर्युक्त लक्षणों से भिन्न रहने से असाध्य है ॥ ४ ॥

बातेन हिक्का: प्रभवन्ति पश्च तासामसाध्यसुवाहरन्ति ।

अक्षीणमांसस्य भवेत्त्वं साध्या प्राप्नते च हिक्के परिवर्जनीये ॥ ५ ॥

वायु के कोप से जो ५ प्रकार की हिक्कायें होती हैं उन्हें उपर्युक्त उदाहरण से असाध्य समझना चाहिये । परं जिसका मास क्षीण नहीं हुआ हो ऐसे रोगी की हिक्का साध्य होती है । तथा अन्त की दो हिक्का (गम्भीरा और महती) त्याग देने वाली अर्थात् असाध्य है ॥ ५ ॥

अथ दिक्काचिकित्सा

नारथीयात्—नारीपयः पिट्ठुशुक्लचन्दनं कृतं सुखोणं च सैन्धवं च ।

पिण्ठं तथा सैन्धवमधुना वा निहन्ति हिक्कां ननु नाक्षत्रेन ॥ १ ॥

हिक्का की चिकित्सा—(नारायणीय से) खी के दूध में इवेत चन्दन पीस कर (विस कर) थोड़ा गरम कर डसमें सेंधानमक मिलाकर नस्य देने से अथवा सेंधानमक पीस कर केवल जल में बोल कर नस्य देने से हिक्का नष्ट होती है ॥ १ ॥

इन्द्रात्

मधुकं मधुसंयुक्तं पिपली शक्रान्विता । नागरं गुदसंयुक्तं हिक्काधनं नावनन्त्रयम् ॥ २ ॥

वृन्द से—मुलहठी का चूर्ण मधु से वा पीपरि का चूर्ण शक्रकर से अथवा सौंठि का चूर्ण गुड़ से मिश्रित कर इन तीनों में से किसी योग का नस्य देने से हिक्का नष्ट होती है ॥ २ ॥

अथ यवाग्:

इन्द्रात्—

दशमूलीशटीरास्नापिपलीविषयोद्धरकःैः । शङ्कीतामलकीभार्हीगुद्धुचीनागरादिभिः ॥ १ ॥
यवागू मधुना सिद्धां कषायं च विवेष्यः । कासहृदप्रहाशार्थार्तिहिक्काशासप्रशान्तये ॥ २ ॥

यवागू—दशमूल की ओषधियाँ, कच्चर, रासना, पीपरि, सौंठि, पुहकरमूल, काकडासिंगी, झुंझुंवरा, बमनेठी, गुरुचि और सौंठि आदि से विधिवत् सिद्ध यवागू में मधु मिलाकर अथवा—इन उपर्युक्त ओषधियों के विधिवत् कथाय में मधु का प्रक्षेप देकर पीने से कास, हृदय का घुटना, पार्श्वपीड़ा, हिक्का और शास नष्ट होती है ॥ १-२ ॥

हिङ्गवदियवागूविषयवारात्—

हिङ्गमौवर्चलाजाजीविडपौष्करचित्रकैः । शटो कर्कटश्वर्णी च यवागूः श्वासहिक्किनाम् ॥ ३ ॥

शुद्ध हींग (मुनी हुई), सौवर्चल नमक, जीरा, विड नमक, पुहकरमूल, चित्रकमूल, कच्चर और काकडासिंगी इनसे विधिवत् सिद्ध यवागू के सेवन करने से श्वास और हिक्का नष्ट होती है ॥ ३ ॥

अथ यूषः

इन्द्रात्—काममर्दकपत्राणां यूषः, शोभाक्षमस्य च ।

युषमूलकयूषश्च हिक्काश्वासनिवारणः । सद्धिद्वयाषसर्विको यूषो वार्ताक्षो दितः ॥ १ ॥

यूष—कसौंठी के पत्रों का विधिपूर्वक बना यूष, सहिजन की छाल का यूष और सूखी मूली का यूष सेवन करने से हिक्का तथा श्वासरोग नष्ट होते हैं । और दहो, त्रिकटुचूर्ण और धी से युक्त वैगन का यूष भी हिक्का तथा श्वासरोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ काशः

रसरत्नप्रदीपात्—

दशमूलं जलयुतं श्रुतं हिक्कासु योजयेत् । श्वासकासहरः सर्वो विवित्रापि युज्यते ॥ १ ॥

काश—दशमूल की ओषधियों का विधिवत् काश बना शीतल कर हिक्कारोग में सेवन करना चाहिये अर्थात् इससे हिक्का नष्ट होती है और श्वास तथा कास को नष्ट करने वाली प्रायः सभी विधियाँ यहीं प्रयोग में लानी चाहिये ॥ १ ॥

इन्द्रात्—

पाठ्यव्याः फलतोयेन छौद्रेण च समन्वितम् । हेसभस्म निहन्त्रयेत् हिक्काः पञ्चतिद्वुस्तराः ॥ २ ॥

पाढ़र के फल के स्वरस में मधु मिलाकर इसके अनुपान से स्वर्णमस्म सेवन किया जावे तो पांचों प्रकार की धृति दुस्तर हिक्का नष्ट होती है ॥ २ ॥

दशमूलीकषायेण मधुना च समन्वितम् । कान्तायोभस्म हिक्कानां पञ्चतां पञ्चनां नयेत् ॥

दशमूल की ओषधियों के विधिवत् काश में मधु मिलाकर इसके अनुपान से कान्तलौह का भस्म सेवन किया जावे तो यह पांचों प्रकार की हिक्का को नष्ट कर देता है ॥ ३ ॥

कुलित्ययवकोलाम्बुद्धशमूलबलाजलम् । पानार्थं कवपयेकालहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ ४ ॥

कुलथी, यव, वेरफल, दशमूल और वरिधारा इन ओषधियों का विधिवत् बना काश पान करने से कास, हिक्का और श्वास शान्त होते हैं ॥ ४ ॥

वैविलासात्—धात्री च मायाधी शूष्टीकायश्चैर्वासितायुतः ।

हिन्तित्वद्वयोद्भूतौ हिक्काः प्राणापनोदिनीय ॥ ५ ॥

आँवला, पीपरि और सौंठि के काश में मिश्री मिलाकर सेवन करने से हृदय से उत्पन्न होने वाली प्राणनाशक हिक्का भी नष्ट होती है ॥ ५ ॥

अथ चूर्णम्

चिकित्सादीपात्—शिखिपिण्ड्यभस्म कृष्णाचूर्णं मधुमिश्रितं सुहुर्लीढम् ।

हिक्का हरति प्रबलां श्वासं चैवातिद्वुस्तरं छुर्दिम् ॥ १ ॥

चूर्ण—मयूर के पंख की भस्म और पीपरि के चूर्ण में मधु मिलाकर बार २ चाटने से प्रबल हिक्का, श्वास तथा भयंकर वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

इन्द्रात्—

कृष्णामलकशूष्टीनां चूर्णं मधुसितायुतम् । सुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिवारणम् ॥ २ ॥

पीपरि, आँवला और सौंठि के मिलित चूर्ण में मधु और मिश्री मिलाकर बार २ चाटने से हिक्का तथा श्वास नष्ट होता है ॥ २ ॥

हिक्काशासीपिवेद्धार्ही सविक्षामुष्णवादिग्निः । नागरं वा सिताभार्हीनैवर्चलसमन्वितम् ॥ ३ ॥

हिक्का तथा श्वास का रोगो बमनेठी तथा सौंठि के मिलित चूर्ण को उषणाम्बु से अथवा सौंठि का चूर्ण, मिश्री, बमनेठी और सौवर्चल नमक का चूर्ण सेवन करने से हिक्कारोग तथा श्वासरोग से मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥

शृङ्गादिचूर्णं योगशतकात्—

शङ्कीकुलित्रिकफलश्चयकण्टकारी-भार्हीसुहुकरजटालवणानि वैवासम् ।

चूर्णं पिवेद्धिशिरेण जलेन हिक्का-धासोर्ध्वदातकसनाहृचिपीनसेषु ॥ ४ ॥

शृङ्गादिचूर्ण—काकडासिंगी, त्रिकटु, त्रिफला, कण्टकारी, बमनेठी, पुहकरमूल, पांचों नमक

इन सब ओषधियों को समान ले चुर्णकर उण्ठोदक के अनुपान से सेवन करने से हिक्का-भास-अधर्वात्-कास-अरुचि और पीनस रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

वैश्वजीवनात्—

विषमिक्षिकणाच्यूर्णः समितः समधुः स्मृतः । गुह्यचीनागरं नस्यं हिक्काविकारकारकम् ॥५॥
सोठि, सौफ, पीपरि इनका मिलित चूर्ण गिरी और मधु के अनुपान से अथवा गुरुचि और सोठि का विषिष्ठक नस्य बनाकर सेवन करने से हिक्कारोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अथ सामान्यप्रतीकारः

नारायणीयाद्—

हिक्कातंस्य पथश्छागं हितं नागरसाधितम् । रसान्पचेत्कलाम्लाश्च लाजचूर्णं ससैन्धवम् ॥१॥

सामान्य प्रतीकार—हिक्का के रोगी को सोठि के साथ पकाया हुआ बकरी का दूध लाभ-दायक होता है तथा फलों की खटाइयों (अनार आदि) तथा सेन्धानमक के साथ पका मांसरस एवं लाजा चूर्ण हितकारक होता है ॥ १ ॥

सुश्रुतात्—यथाहं वा माचिकेणावलीं कृष्णचूर्णं शक्तरात्यं च किं चा ।

सर्पिः कोणं शीरमुण्डं रसो वा हन्यादिष्वाः पानतः पश्च हिक्काः ॥ २ ॥

जेठीमधु का चूर्ण मधु के साथ अथवा पीपरि का चूर्ण शर्करा के साथ सेवन कर कुछ २ ग्रम धी, गरम दूध और ईख का रस पीने से पांचों प्रकार की हिक्का नष्ट होती है ॥ २ ॥

योगतरक्षिण्याम्—

मधुसौवर्ष्णोपेतं मातुलुक्करसं पिवेत् । हिक्कातो मधुना लिह्वाच्छुष्टीचाच्चीकणान्वितम् ॥३॥

मातुलुक्करसादि—विजीरे नीबू का रस, मधु तथा सौवर्ष्ण नमक के साथ पीने से अथवा सोठि, आँवला और पीपरि का चूर्ण मधु के साथ मिलाकर चाटने से हिक्का का रोगी हिक्का से उत्तर होता है ॥ ३ ॥

चिकित्सासारात्—

कपित्थस्वरसो वाऽपि रस आमलकस्य च । पिपलीशीद्रसंयुक्तो हिक्काशासनिवारणः ॥ ४ ॥

कपित्थादि योग—कैश का स्वरस अथवा आँवले का स्वरस पीपरि तथा मधु मिलाकर चाटने से हिक्का और श्वास नष्ट होता है ॥ ४ ॥

पिपलीमूलमधुकगुड्योऽभ्यशकुद्रसान् । हिद्माभित्यन्दकासन्नांहिद्यामधुधृतान्वितान् ॥५॥

पिपलीमूल, मुल्हठी, गुड़ पुराना, गोबर और घोड़े की लीद का रस इन ओषधियों के चूर्ण और रस को समान लेकर मधु और धृत के अनुपान से सेवन करने से हिक्का, अभित्यन्द और कास रोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

खर्जः पिपली द्राक्षा शकरा चेति तत्समस् । मधुसर्पिर्युतो लेहो हिक्काशासनिवारणः ॥६॥

खर्ज़, पीपरि, दाल और शर्करा समान लेकर चूर्ण कर मधु तथा धृत के अनुपान से चाटने से हिक्का तथा श्वास नष्ट होता है ॥ ६ ॥

बौद्धसर्वस्वात्—

कटुकार्गैरिकभ्यो च मुक्तामस्म तथैव च । शीजपूरस्य लोयेन ताङ्गे तदूरसमाचिकम् ॥ ७ ॥

हेमसूर्कार्कान्तानां भस्म वस्त्रमितं वरम् । शीजपूरस्यैद्रसौवर्ष्णवर्चलसमन्वितम् ॥ ८ ॥

हन्ति हिक्काशतं सत्यसेकमात्रा प्रथतः । का कथा पश्चहिक्कानां हरणे सूत उच्यते ॥९॥

अन्य कटुकादियोग—कुटकी, गेरचूर्ण, मुक्तामस्म इनको समान लेकर विजौरा नीबू के रस के साथ सेवन करे अथवा ताङ्गमस्म मधु के साथ सेवन करे, अथवा स्वर्णमस्म, मुक्तामस्म, ताङ्ग-

मस्म, कान्तलौहभरम इनको समान लेकर एकत्र मर्दन कर दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से विजौरे नीबू के रस, मधु और सौवर्ष्ण नमक के अनुपान से सेवन करे तो इसके एक ही मात्रा के सेवन से जब १०० प्रकार की हिक्का नष्ट होती है तब पांच प्रकार की हिक्का का क्या कहना है अर्थात् इससे हिक्का अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ ७-९ ॥

अथ शङ्खचूलो रसः

रसरक्षणदीपात्—

रसाञ्छेमभासानि वैकान्तं सर्वतुहयकम् । स्वैः पश्चगुणं शङ्खचूर्णं हृष्टं विमर्दयेत् ॥ १ ॥
देहयमधुना माषचतुर्षुकं सानुपानकम् । हिक्कां पञ्चविधो हन्ति मुमुक्षोरपि तात्प्राणत ॥२॥

शङ्खचूल रस—पारदभरम, खर्जमस्म, स्वर्णमस्म इनको समान अर्थात् एक २ मात्रा ले और सब के समान वैकान्तभरम लेकर जितना हो इसमें सब के पांचगुणा शङ्खमस्म लेकर एकत्र मर्दन कर ४ मासा के (यह मात्रा पूर्ण वलशाली के लिये है वैष्ण रोग-वल-वय विचार कर देवे) प्रमाण की मात्रा से मधु के अनुपान से सेवन करे तथा हिक्का नाशक अन्यान्य अनुपान सेवन करे तो पांचों प्रकार की हिक्का नष्ट होती है । तथा मरणोन्मुख रोगी को भी यह शङ्खचूलरस बचा देता है ॥ १-२ ॥

सामान्योपायमाह—

कासशक्तिकोसं च भिषणात्र नियोजयेत् । इत्येवं वाऽन्न कासे च हिक्काशासे नियोजयेत् ॥

सामान्य उपाय—कासरोग के प्रकरण में कहे हुए सभी उपाय इस हिक्कारोग में वैष्ण प्रयोग करे अथवा क्ष्वरोग में कहे हुए उपाय भी कास-हिक्का तथा श्वासरोग में प्रयुक्त करे ॥ ३ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

इवेदनं वसनं नस्य धूमपानं विरेचनम् । निद्रा इन्द्रियानि चाषानि सृष्टौनि लक्षणानि च ॥

जीर्णाः कुलिथा गोधूमाः शाल्यः वर्ष्णका यवाः । एण्टिसिस्तरलावाशा जाङ्गला मृगपत्तिणः ॥

दण्डोदकः मातुलुकुं पटोलं वालूमूलकम् । यद्यत्र विष्यं द्युगुं चौदं चेष्टानि हिक्किनाम् ॥३॥

पथ्यापथ्य—स्वेदनकम, वसन, नस्यकर्म, धूमपान, विरेचन, निद्रा, लिंग (रनेह उक्त) अन्न, मुदु अन्न, लवण, पुराना कुलथी, गेहूं शालीधान्य तथा साठीधान का चावल, यव, एण्मूर्ग, तिचिर पक्षी, वटेर पक्षी, जाङ्गल जीव, मृग तथा पक्षियों का मांस, उणजल, विजोरा नीबू का रस, परवर, नरम भूली, पक्का हुआ वैष्ण का फल, लहसुन और मधु ये सब पदार्थ हिक्का के दोगियों के लिये हितकर कहे गये हैं । अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ १-३ ॥

जिप्पावामाषपिण्याचवारिजानूपमामिषम् । अचिदुरधं दन्तकां हस्तिं मर्त्यांश्च सर्वपान् ॥४॥

अडलं तुर्गीविळं कन्दं तेलशृष्टोदिकाम् । गुरु कीर्तं चाषानं हिक्कारोगी विचर्जयेत् ॥५॥

सेम, उरद, तिलकुट, जलज जीव तथा आनूप जीवों का मांस, भेंड का दूध, दन्तधावन, बरित्कर्म, मटली, सरसों, खटाई तथा खट्टे पदार्थ, लौकी, कन्दशाक, तेलपका पदार्थ, पोई का शाक, गुरु तथा शीतल अन्न एवं पेय पदार्थ इन सब द्रव्यों को हिक्का का रोगी त्याग कर देने अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ४-५ ॥

अथ श्वासनिदानमाह

कासवृद्धासः पूर्वो दोषकोपनैः । आमतिसारवमधुविष्पाणहुउवरैराप ॥ १ ॥

श्वास का निदान—कासरोग के बहुत बढ़ जाने से अथवा पूर्व (हिक्का) में कहे हुए दोषों

के कुपित होने से तथा आमातिसार, वमन, विष, पाण्डुरोग तथा उवररोग से भी शासरोग हो जाता है ॥ १ ॥

रजोधूमानिलेभंमधात् इति हिमाङ्गुना । ये रेव कारणैहिंश्का बहुमः सम्प्रवर्तते ॥ २ ॥
तेरेव कारणैः शासो चोरो अवति देहिनाम् ।

धूल, धूम तथा वायु के अति सेवन से, मर्मस्थानों में अधात होने से, अतिशीतल जल के सेवन से तथा जिन बहुत से कारणों से हिंका उत्पन्न हो जाती है उन्हींसे शासरोग उत्पन्न हो जाता है, अर्थात् उन्हीं कारणों से भयंकर शासरोग भी मनुष्यों को होता है ॥ २-२५ ॥

विहाय प्रकृतिं वायुः प्राणोऽथ कफसंयुतः । शासयथूर्धर्गो भूत्वा तं शासं परिचक्षते ॥ ३ ॥
सामान्य लक्षण—जब प्राणवायु कफ से संयुक्त होकर अपनी प्रकृति को (स्वाभाविक स्थिति को) छोड़कर ऊर्धवग अर्थात् ल्पर की ओर होकर बारबार शास को चलाता है तब उस अवस्था को शासरोग कहते हैं ॥ ३ ॥

दोषाणामप्यनेकरवाच्छेष्टितस्थापि सम्भवात् ।

शासो नैकप्रकारः स्यादिति तावद्वावस्थितम् ॥ ४ ॥

दोषों के अनेक होने से तथा शोष रोग के कारण भी शासरोग उत्पन्न हो जाता है इसलिये शासरोग भी एक प्रकार का नहीं होता है अर्थात् अनेक प्रकार का होता है, ऐसी शाख की व्यवस्था है ॥ ४ ॥

महोर्ध्वचिक्षतमकञ्जदभेदैस्तु पञ्चशा । भिद्यते स महाब्याधिः शास एको विशेषतः ॥ ५ ॥

एक ही शासरोग—महाशास, ऊर्धवशास, छिन्नशास, तमक शास और क्षट्रशास के भेद से पांच प्रकार का होता है। यह महाब्याधि अर्थात् बहुत कठिन रोग है ॥ ५ ॥

अथ तस्य पूर्वरूपमाह

प्रायूपं तस्य हस्तीदा शूलमाध्यानमेव च । आनाहो वक्त्रवैरस्य शङ्खनिष्ठोद पव च ॥ १ ॥

शास का पूर्वरूप—जब मनुष्य को शासरोग उत्पन्न होने को होता है तब उसके प्रथम हृदय में पीड़ा, शूल और आधमान होता है, तथा आनाह और सुख का स्वाद विकृत हो जाता है, तथा शङ्ख देश में सूई चुमाने के समान पीड़ा होती है ॥ १ ॥

अथ महाश्वासलक्षणमाह

तस्य संप्राप्तिः—

यदा चोतांसि चंशय मारुतः कफरूपः । विषवृक्षजति संरुद्धस्तदा शासान्करोति सः ॥ १ ॥

महाशास की संप्राप्ति—जब कफयुक्त वायु प्राण (शास), जल तथा अन्नादि को वहन करने वाली स्रोतों (नाडियों) को अवरुद्ध कर देता है अर्थात् कफ से भर देता है तब इस अवरोध से प्राणवायु उचित मार्ग को नहीं पाने से चारों ओर दौड़ने (धूमने) लगती है उस अवस्था में शासरोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तस्य लक्षणम्—

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुखितो नरः ।

उद्धैः शसिति संकुद्धो मत्तर्पय इवनिशम । प्रणष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः ॥ २ ॥

विवृताणाननो वदमूत्रवर्चो विशीर्णवाक् ।

दीर्घं प्रशसितं चास्य दूराद्विक्षायते भृशम् । महाश्वासोपसृष्टस्तु विप्रमेव विपथते ॥ ३ ॥

महाश्वास के लक्षण—जिस श्वास में मनुष्य की प्राणवायु उमड़ कर ऊर्ध्वरुद्धति को प्राप्त होती हुई, शब्द करती हुई तथा उस मनुष्य को दुःख पहुँचाती हुई, कुद्र मत्त वृष की भाँति

उच्चरवर से श्वास लेने की भाँति श्वास छोड़ती हुई निरन्तर रहती है अर्थात् जिसे इन लक्षणों द्वाला श्वास आवे और ज्ञान (शास्त्र) विवेक सब जिसका नष्ट हो जावे, नेत्र विभ्रान्त (विकृत) हो जावे, नेत्र तथा सुख विवृत हो जावे (खुल जावे), मूत्र-पुरीष का अवरोध हो जावे, बचन में दीनता (दुर्बलता) आ जावे, जिसके दीर्घ श्वास का शब्द दूर से ही ज्ञात होने लगे, उसे (उस लक्षण वाले को) महाश्वास कहते हैं और इस महाश्वास से युक्त रोगी शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ २-३ ॥

अथोर्धवश्वासलक्षणमाह

उर्ध्वं शसिति यो वीर्यं न च प्रत्याहरत्यधः । श्वेषमावृतमुखचोताः कुद्रगन्धवहार्दितः ॥ १ ॥

उर्ध्वदृष्टिविपश्यंस्तु विभ्रान्ताच्च इत्यस्ततः । प्रसुद्धाद्वैदनातंश्च शुद्धास्योदरतिपीडितः ॥ २ ॥

उर्ध्वस्थासे प्रकृपिते शृणु शासो निरुद्धयते । मुहूरतस्त्वाऽर्थात्प्रवृत्तं श्वासस्तस्यैव हृत्यसून् ॥ ३ ॥

ऊर्धवश्वास के लक्षण—जिस श्वास में मनुष्य कपर की ओर दीर्घ श्वास लेवे पर नीचे उसे नहीं कर सके (नहीं छोड़ सके), सुख और स्रोत आदि जिसके कफ से ढक जावे और कुपित हुई वायु के कारण पीड़ा होती हो, ऊपर ही दृष्टि कर इधर-उधर देखे, नेत्र विभ्रान्त (विकृत) एवं इधर-उधर धूमने लगे, जिसे मोह हो जावे, बेदना से जो व्याकुल हो, सुख सूख गया हो और रोग से जो निरन्तर पीड़ित (दुःखी) हो, तथा ऊर्धवश्वास के कुपित रहने के कारण जिसके नीचे के श्वास का अवरोध हो जावे, मोह हो और शरीर में कलेश हो, उसे (उस लक्षण को) 'ऊर्धवश्वास' कहते हैं और इस प्रकार का ऊर्धवश्वास प्राण को नष्ट कर देता है ॥ २-३ ॥

अथ विच्छिन्नश्वासलक्षणमाह

पस्तु शसिति विच्छिन्नं संवप्नाणेभ पीडितः । न वा शसिति दुःखातों मर्मच्छेदरूपार्दितः ॥ १ ॥

आवाहस्वेदमूर्ध्वातों चक्षमानेन वरित्वा । विच्छुताच्च परिक्षीणः श्वसन्त्वकेक्षोचनः ॥ २ ॥

विच्छिन्नन् (छिन्न) श्वास के लक्षण—जिस श्वास में सब प्रणों से पीड़ित हुए रोगी को विच्छिन्नन् (रुक र कर) श्वास आवे अथवा दुःख से पीड़ित होने से श्वास रुक जावे और वह मर्मस्थानों के छेदने (काटने) की भाँति पीड़ा से पीड़ित हो, आनाह हो, स्वेद हो, मूर्छा से पीड़ित हो, वस्ति में दाह हो, जल से भरे हुए नेत्र हो, शरीर क्षीण हो गया हो और श्वास लेते समय, नेत्र लाल हो जावे उसे 'छिन्न श्वास' कहते हैं ॥ २-२ ॥

अस्य उद्याधिप्रभावादसाध्यत्वमाह

विचेता: परिशुद्धकाश्यो विवर्णः प्रलपश्चरः । छिक्षश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥

छिन्न श्वास की असाध्यता—यदि छिन्न श्वास का रोगी चेतनारहित हो जावे, सुख उसका सूख जावे, वर्ण विवर्ण हो जावे, प्रलप करे तो शीघ्र ही छिन्न श्वास से पीड़ित वह प्राण त्याग करेगा ऐसा जानना चाहिये अर्थात् ये छिन्न श्वास के असाध्य लक्षण हैं ॥ १ ॥

अथ तमक्ष्वासलक्षणमाह

प्रतिलोमं यदा वायुः चोतांसि प्रतिपथते । ग्रीवां शिरश्च लंगृह्ण रलेष्याणं समुद्दीर्घं च ॥ १ ॥

करोति पीनसं तेन रुद्धो युर्धरकं तथा । अतीव तीव्रवेगं च शासं प्राणप्रीडकम् ॥ २ ॥

प्रताध्यति स वेगेन व्रस्यते संनिरुद्धयते । प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति सुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥

श्वेषमानेन भृशां भवति दुखितः । तस्यैव च विमोक्षान्ते सुहृत्तं लभते सुखम् ॥

तथाऽस्योद्धर्वंसते कण्ठः कृद्याद्वक्षकोति भावितुम् ।

न चापि निद्रां लभते शयातः शासुपीडितः ॥ ५ ॥

शार्थ तथा उद्गुप्ति शयात्मस्य ममीरणः । आसानो लभते सौख्यमुण्डं चैवाभिकाञ्जिते ॥६४
उचित्राच्छालाटेन स्विद्यता भृत्यमातिमान् । रित्युक्ताह्या मुदुःशासो मुदुश्च वावधम्यते ॥
मेवाभ्युशीतप्रावातैः इलेखम्लेख विवधते ।

स याप्यत्मकः श्वासः साप्तयो वा स्थाच्च वेधितः ॥ ६ ॥

तमक श्वास के लक्षण—जित श्वास में वायु प्रतिलोम अर्थात् कुमारेगामी होकर स्रोतों में प्राप्त होता है और कफ की बढ़ाकर योवा तथा सिर को जकड़ देता है, इस कारण पीनसरोग को उत्पन्न करता है तथा कफ से अवश्य होने के कारण बुर २ शब्द करता है, और प्राण को (हृदय को) पोड़ित करने वाला, अत्यन्त तीव्र वेग वाला इवास उत्पन्न कर देता है। उस इवास के वेग से वह मनुष्य पोड़ित होता है, त्रस्त होता है, अकर्मण्य हो जाता है और वह बार २ कास के वेग के साथ २ मूर्च्छित होता रहता है। कफ के निकलने में अत्यन्त दुःख होता है और कफ के निकल जाने पर योड़ी देर तक उसे सुख मालूम होता है, तथा उस रोगी को स्वर भंग हा जाता है और कठिनता से बोल दाता है, उसे निद्रा नहीं आती है और सोने में श्वास से पीड़ा होती है, क्योंकि सोने के समय वायु पार्श्वरेत्रा को जकड़ लेता है इसलिये बैठने से उसे सुख मालूम होता है और वह उद्ध उद्धर्ण वार्षीय की इच्छा करता है। और उसके नेत्र उचित्रित अर्थात् विकुन्ठ रहते हैं, ललाट में स्वेद, अधिक पीड़ा, मुख का सुखना, बार २ इवास लेना और हृदय धड़कना ये सब लक्षण होते हैं और जो श्वास मेघ वेने के समय वर्षा से, शीत से, पूर्वी वायु से तथा कफरक आद्यार-विद्यार से वृद्धि की प्राप्त होता है उसे 'तमक-श्वास' कहते हैं, यह याप्य है और यदि नवीन रोग हो तो साध्य भी होता है ॥ १-८ ॥

अथ तमकस्यै पित्तानुबन्धाद्यवरादियोगेन प्रतमकसंज्ञामाद् ।

उद्यमूर्ढ्यापीरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् । उद्यावर्तं रजाऽप्तिर्णिल्लक्षकायनिरोधजः ॥ १ ॥

प्रतमक श्वास—(तमक श्वास ही पित्तानुबन्ध से तथा उवादिके योग से प्रतमक नामका कहा जाता है) यथा—यदि उवर और मूर्ढ्या से युक्त तमक श्वास हो तो उसे 'प्रतमक श्वास' जानना चाहिये। और उद्यावर्तरोग, अति धूलि सेवन, अर्जीन का निरन्तर होना, शरीर में अति क्लेद (कफादिकों का) होना तथा प्राणवायु अथवा मल-मूत्रादि के वेगों के निरोध से 'प्रतमक श्वास' उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तमसा वर्षते अर्थं शीतैऽस्तु प्रशास्यनि । मउजनरत्ममीवाय विद्यात्प्रतमकं तु तमः ॥२॥

जिस इवास में तम के कारण अर्थात् ऊपर के कारण वेग अधिक होते (यद्या तम शब्द से विशेषतः ऊपर का बोध जानना चाहिये क्योंकि शीत से इसकी शान्ति कही गयी है) और शीत किया से शीघ्र श्वास का वेग शान्त हो जाते तथा उस रोगों को ऐसा मालूम होते कि मैं अन्धकार में डूबा हुआ हूँ तो इस लक्षण वाले इवास को 'प्रतमक श्वास' कहते हैं ॥ २ ॥

अथ शुद्रशासलक्षणमाद्—रुक्षायासोऽद्युषः कोषे चूत्रवात्मुदीरयेत् ।

शुद्रशासो न सोऽस्थर्थं दुःखेनाङ्ग्रव्याधकः ॥ १ ॥

शुद्रश्वास के लक्षण—लूप आद्यार-विद्यार तथा परिश्रम के कारण उत्पन्न हुआ इवास कोष में छुट वात की उत्पन्न करता है और यह शरीर में अधिक पीड़ा करने वाला नहीं होता है। इस प्रकार के इवास को 'शुद्रश्वास' कहते हैं ॥ १ ॥

हिनस्ति न त गात्राणि न च दुःखो यथेतरे । न च भोजनशानानि निरुगद्यवित्तां गनिम् । नेन्द्रियाणां धर्यो चाऽपि कांचिकापाद्येदुलम् । स याप्य उक्तो वृत्तिः सर्वे चाव्यक्तश्वासाः ॥

यह इवास शरीर को नष्ट नहीं करता है न दुःख ही अधिक देता है जैसे और इवास देते हैं। और भोजन-पान आदि की उचित गति में भी रुक्षावट नहीं करता है। यह इन्द्रियों में किसी प्रकार की पीड़ा को नहीं करता और न दूसरे रोग को ही उत्पन्न करता है। यह 'शुद्रश्वास' साध्य है और सभी प्रकार के इवास भी यदि वलवान को हों और अव्यक्त लक्षण वाले हों तो साध्य होते हैं ॥ २-३ ॥

अथ साध्यासाध्यानाह—

वाताधिको भवेत्तु द्रस्तवकश्च कफाधिकः । कफताताधिकः पित्तवंसर्गाद्युक्त्वासंज्ञकः ॥ १ ॥

इवास रोग का साध्यासाध्य विचार—वात की अधिकता के कारण 'शुद्र श्वास' होता है। कफ की अधिकता के कारण 'तमकश्वास' होता है। कफ और वात दोनों की अधिकता और पित्त के भी संसर्ग से 'छिन्नश्वास' होता है ॥ १ ॥

श्वासो माहूतभूषिष्ठो महानुर्वृत्तस्था मतः ।

कुटुः प्राप्यतमस्तेषां तमकः कुच्छु उच्चरते । अथः श्वासा न सिद्ध्यन्ति तमको दूर्वलस्य च ॥

केवल वायु की अधिकता (कोप) से होने वाला महाश्वास और उर्ध्वश्वास होता है। इन सब प्रकार के इवास रोगों में शुद्रश्वास साध्यतम (अति सुखसाध्य) है, तमकश्वास कह साध्य है और शीष तीनों इवास (महा, उर्ध्व और छिन्न) तथा दुर्बल भनुष्य का तमक इवास भी सिद्ध नहीं होता है अर्थात् ये असाध्य हैं ॥ २ ॥

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु से तथा । यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु चै ॥ ३ ॥

यथापि बहुत से रोग प्राणनाशक हैं तथा पृथिवी जैसे हिक्का और इवास शीघ्र प्राणनाश करते हैं वैसे अन्य नहीं हैं अर्थात् ये शीघ्र प्राणनाशक हैं ॥ ३ ॥

अथ श्वासचिकित्सा

स्नेहश्वितमृते केचिद्दूर्धवै चाधक्ष शोधनम् । मृदु प्रणयतौ श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि ॥ १ ॥

इवास की चिकित्सा—स्नेहश्वित के अतिरिक्त भी किसी र श्वास के रोगी का उर्ध्व एवं अधः शोधन (वमन-विरेचन) भी करना चाहिये तथा इवास के रोगियों के लिये सब प्रकार के उपचार शुद्ध (कोमल) करना चाहिये जो कि उत्तम किया है ॥ १ ॥

सर्वेषु श्वासरोगेषु चातश्लेष्मनिर्बहंगम् । विद्धीत विधि विद्वानादौ स्वेदं मृदुं सथा ॥ २ ॥

विद्वान् वै सब प्रकार के इवासरोगों की चिकित्सा के आदि में वातकफ के नष्ट होने की किया करे तथा मृदु स्वेद की विधि भी करे अर्थात् मन्द २ स्वेदकर्म भी करे ॥ २ ॥

अथ काथः

कुलत्थादिः—

कुलथानुरुद्धायाद्विवासाभिः क्षयितं जलम् । पीतं पौष्ट्रसंयुक्तं श्वासकासनिवारणम् ॥ १ ॥

कुलत्थादि काथ—कुलधी, सौंठि, छोटी केरी और अरुस। इनको समान लेकर जल के साथ विधिपूर्वक काथ कर उसमें पुहकरमूल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पीने से इवास और कास को नष्ट करता है ॥ १ ॥

दशमूलादिः—

दशमूलीकृतः काथः पौष्ट्ररेणावच्चूर्गितः । इवासकासनप्रशमनः पार्श्वमूलनिवारणः ॥ २ ॥

दशमूलादि काथ—दशमूल की ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर पुहकरमूल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करने से इवास और कास शान्त होता है तथा पार्श्वशूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

देवदार्वादिः—

देवदाहवचाध्याज्ञीविश्वकटफलपौष्टकः । कृतः काथो जयत्याग्नु श्वासकासावशोषतः ॥ ३ ॥
देवदार्वादिं काथ—देवदार, वच, छोटी कटेरी, सौंठ, कायफर, पुहकरमूल, इन ओषधियों को समान लेकर विधिवत् काथ बनाकर सेवन करने से श्वास तथा कासरोग शीघ्र घंटे मूल नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

वैधविलासात्—

सिंहीनिशासिंहमुखीगुहूचीविश्वोपकृष्णाभ्युज्जावनाम् ।

कृष्णामरीचैर्मिलितः कथायः श्वासाट्टीदाहपयोद् एषः ॥ ४ ॥

सिंहादि काथ—छोटी कटेरी, हरदी, अरुसा, गुरुचि, सौंठि, पीपरि, बमनेठी और नागर-मोथा इन ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पीपरि तथा मरिच के चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करने से श्वासरूपी बनायिए को मेष के समान नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

वैधजीवनात्—

वासाहरिद्राघनिकागुहूचीभार्ज्ञीकणानागरिङ्गणीनाम् ।

काथेन मारीचर्जोडन्वितेन श्वासः शामं याति न कस्य पुंसः ॥ ५ ॥

वासादि क्वाथ—अरुसा, हरदी, धनियां, गुरुचि, बमनेठी, पीपरि, सौंठि और कटेरी इनको समान लेकर विधिवत् काथ बनाकर मरिच के चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करने से किस पुरुष का श्वास शान्त नहीं होता है अर्थात् सभी का श्वासरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अथ प्राणप्रिये जातीफललोहितलोचने ! भार्ज्ञीनागरयोः काथं श्वासनाराण्यं पाथयेत् ॥ ६ ॥

भार्ज्ञीदि काथ—अथि (हे) जायफर के समान रक्तनेंवाली प्राणप्रिये। भारंगी तथा सौंठि का विधिवत् बना काथ श्वास से रक्षा के लिये पीना चाहिये अर्थात् इससे श्वास नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शंकराख्यात—द्राज्ञामृतानागरतोयसुष्ठुण् कृष्णाविषयकं बहुरोधनिष्ठम् ।

श्वासं च शूलं कसनं च मान्यं जीर्णज्वरं चैव जयेष्व तृष्णाम् ॥ ७ ॥

द्राक्षादि काथ—दाख, गुरुचि, सौंठि और पीपरि इन ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर गरम २ पान करने से बहुत से रोग नष्ट होते हैं। यथा यह श्वास-शूल-कास-मन्दार्जिन-जीर्णज्वर और रुध्णा को भी नष्ट करता है ॥ ७ ॥

अथ चूर्णानि

योगतः—

कूर्माण्डकशिफाचूर्णं पीतं कोष्ठेन वारिणा । शीघ्रं शमयति श्वासं कासं चैव सुदाहणम् ॥ १ ॥

चूर्णं प्रकरण—शेष कूर्माण्ड की जड़ को लेकर विधिवत् चूर्णकर उणोदक के अनुपान से सेवन करने से शीघ्र श्वास शमन हो जाता है और कठिन कास भी शमन होता है ॥ १ ॥

शुक्रादिचूर्णं योगशतात्—

शुक्रीकटुश्रयफलब्रयकण्ठकारीभार्ज्ञीसपुष्करजटा लवणानि पञ्च ।

चूर्णं दिवेषविशिष्येण जलेन हिक्का—श्वासोदर्धवात्कसनारुचियीनसेषु ॥ २ ॥

शुक्रादि चूर्ण—काकड़ासिंगी, सौंठि, पीपरि, मरिच, अंवरा, हररा, बहरा, छोटी कटेरी, बमनेठी, पुहकरमूल और पृथक् २ पांचों नमक, सबको समान लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर उणोदक के अनुपान से हिक्का, श्वास, अर्द्धवात, कास, अरुचि और पीनस रोगों में सेवन करने से इन सबको नष्ट करता है ॥ २ ॥

शुक्रादिचूर्णं वृन्दाव—

शटीभार्ज्ञीविषाध्योषपथ्याहचककटफलम् । तेजोङ्गा पौष्टकं शृङ्गी सदौद्रं श्वासकासनुतः ॥ ३ ॥

शट्यादि चूर्ण—कचूर, भारंगी, वच, सौंठि, पीपरि, मरिच, हररा, लचक लवण, कायफर, तेजबल, पुहकरमूल, काकड़ासिंगी, इन ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर मधु के अनुपान से सेवन करने से श्वास तथा कास नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गुडादिः—

गुडोषणनिशारासनाद्राष्ट्रामागच्छिकाः समाः । तैलेन चूर्णिता लीढास्तीवश्वासनुदः स्मृताः ॥ ४ ॥

गुडादि चूर्ण—गुड़ पुराना, मरिच, हरदी, रासना, दाख, पीपरि, इन सब द्रव्यों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर तेल में मिलाकर चाटने से तीव्रश्वास को नष्ट करने वाला कहा गया है ॥

शुक्रादिचूर्णम्—

योगशतात्—शुण्ठीकणामरिचनागदलवर्गेण चूर्णकृतं क्रमाव॑वर्धितमूर्ध्मन्यात् ।

शादेहिदं समसितं गुदज्ञिमान्ध्य-गुदमाहचित्वसनकपठहृदामयेषु ॥ ५ ॥

शुक्रादिचूर्ण—इलायची के दाने १ भाग, दालचीनी २ भाग, पान के पत्ते ३ भाग, मरिच ४ भाग, पीपरि ५ भाग और सौंठि ६ भाग इस भौति से अन्य से क्रमविनिर्दित भाग लेकर विधिवत् चूर्णकर जितना चूर्ण हो उसके समान द्वेत शर्करा (चीनी) मिलाकर रोगबलानुसार उचित मात्रा से अर्श, मन्दार्जिन, गुडम, अरुचि, श्वास, कण्ठ के रोग और हृदय के रोगों में सेवन करने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

चिकित्सासाराद—

मर्कटीनां तु वीजानां चूर्णं मादिकसर्पिषा । प्रलिङ्गात्रातस्थाय श्वासातः स्वास्थ्यमाप्नुयात् ॥

मर्कटीवीजचूर्ण—कैवांच के बीजों को लेकर विधिवत् चूर्णकर मधु और घृत के अनुपान से प्रातःकाल सेवन करने से श्वास से पीड़ित मनुष्य स्वास्थ्य लाभ करता है अर्थात् इससे श्वास नष्ट होता है ॥ ६ ॥

अथावलेहाः

गुडावलेहः—

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् । ग्रिसासाहप्रयोगेण श्वासो निःशेषतां वज्रेत् ॥ ३ ॥

गुडावलेह—पुराना गुड़, समान कटुतैल से मिश्रित कर लेह बना चाटने से २१ दिन के प्रयोग से श्वास निर्मल हो जाता है ॥ ३ ॥

हरिद्रादिः—

हरिद्रा मरिचं द्राष्टा गुडो रासना कणा शटी । कटुतैले लिहन्त्याद्युत्तासान्ध्राणहरानपि ॥ २ ॥

हरिद्रादिलेह—हरदी, मरिच, दाख, पुराना, गुड़, रासना, पीपरि, कचूर, इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिवत् चूर्ण कर कल तेल (ससों का तेल) मिलाकर लेह बनाकर चाटने से प्राणनाशक श्वास को नष्ट करता है ॥ २ ॥

भार्ज्ञादिः—

भार्ज्ञीनागरयोश्चूर्णं लीढमाद्रंकवारिणा । श्वासं निहन्ति कुर्वन्तं पञ्चानन इव द्विपम् ॥ ३ ॥

भार्ज्ञादि लेह—भारंगी, सौंठि, इन दोनों ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर अद्रक के रस के साथ लेह बना कर सेवन करने से अवश्यकर श्वास इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार रिंह से हाथियों का समूह नष्ट होता है ॥ ३ ॥

योगरत्नाकरः

भुद्रावलेहो योगतरक्षिण्याम्—

स्थाग्रीशतं स्थादभ्याशतं च दोषे जलस्य प्रपचेत्तुर्धायम् ।
तुलाप्रमाणेन गुणेन युक्तं पवरवाऽभयाभिः सह तामिरन्न ॥ ४ ॥
ज्ञीते विषेषणमधुनः पलानि पलानि च ज्ञीणि कदुक्रयस्य ।
त्वक्पत्रकैलकरिकेसराणां चूर्णारपलं चेति विदेहाद्यः ॥ ५ ॥
भुद्रावलेहः कफजान्विकारान्सधासोफानपि पञ्च कासान् ।
हिङ्कासुरोरोगमपस्थुतिं च हत्वा विवृद्धिं कुरुतेऽनलस्य ॥ ६ ॥

भुद्रावलेह—छोटी कटेहे १०० पल, सुपक हरड संख्या में १००, दोनों को लेकर एक द्रोण (१६ सेर) जल के साथ काथ की विधि से पाक कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार-छानकर हरड अलग रख ले और कथित जल में पुराना गुड़ एक तुला (१०० पल) मिलाकर घोल छानकर उसमें वही काथ-परिपक हरड़ मिलाकर अबलेह पाक की विधि से पाक करे। पाक सिद्ध हो जाने पर उतार कर शीतल होने पर उसमें मधु ६ पल, त्रिकटु का समान मिश्रित उत्तम चूर्ण ३ पल, दालचीनी, तेजपात, इलायची के दाने, नागकेसर इन ओषधियों का समान मिलित उत्तम चूर्ण १ पल मिलाकर रख लेवे। इसे विदेह ने निर्मित किया था। इसका नाम ‘भुद्रावलेह’ है। सेवन करने से यह कफ के सम्पूर्ण विकार (रोग), इवासरोग, शोथ, पाचों प्रकार के कास, हिङ्क भरःसम्बन्धी रोग और अपस्माररोग इन सर्वों को नष्ट कर अद्वितीयी वृद्धि करता है ॥ ४-६ ॥

भार्क्षीहरीतक्यवलेहः—

भार्क्षीभटापलशतं सलिलार्मणेन युशपञ्चमूलतुलया सहितं विषाध्य ।
पादस्थिते तु शतभन्न हरीतकीनां पक्षव्यमुज्जवलाद्युद्धयं ज्ञातेन साकम् ॥ ७ ॥
उत्तार्यं तत्र शिक्षिरे मधुनः पलानि चत्वारि च द्विगुणितानि फलत्रयं च ।
व्योधं त्रुटिवगिभक्तेसरपत्रकाणामेषाण एलं खलु निधेयमयोजयम् ॥ ८ ॥
शासं च कासमयि शोषमथातिदिक्षामकाहिकं उवरमयो कफपीनसं च ।

हन्त्याद्रसायनमिदं हि पुरन्दरस्य ग्रोकं सहस्रकरुप्रभिष्ववराभ्याम् ॥ ९ ॥

भार्क्षीहरीतकी अबलेह—मारंगी का मूल १०० पल, लघुपञ्चमूल १०० पल, जल एक द्रोण (१६ प्रस्थ), सुपक हरड संख्या में १०० सौ, सब को एकत्र कर काथ की विधि से पाक कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार कर हरड अलग करले और काथ छानकर उसमें स्वच्छ पुराना गुड़ १०० पल और वही काथ में परिपक हरड़ १०० मिलाकर अबलेहपाक की विधि से पाक कर सिद्ध हो जाने पर उतार कर शीतल होने पर उसमें ८ पल और अंवरा, हर्दा, बहेरा, सौठि, पीपरि, मरिच, छोटी इलायची के दाने, दारुचीनी, नागकेसर, तेजपात, इन सब ओषधियों का पुथक् २ चूर्ण एक २ पल मिलाकर रख ले। इस (अबलेह) के सेवन करने से श्वास, कास, शोथ, प्रवल हिङ्क, ऐकाहिक उवर, कफ तथा पीनस आदि रोग नष्ट होते हैं। इस रसायन को पहले इन्द्र के लिये वैद्यों में श्रेष्ठ अविनीकुमारों ने कहा था ॥ ७-९ ॥

चित्रकहरीतक्यवलेहः—वैपदेवशतार—

पक्षव्या पञ्चतुलागुडामलशिखिचिद्वाद शादग्रयम्भसा।
पद्ध्यापात्रवतीकृता शिखितिवाद्योषाच्चतुर्जातिकात् ।
चौद्राव्य व्रिक्षलाभलहिंकुद्वयैः शाराच्च शुकर्या युतः ।
शोफार्शः चयकुष्ठपीनसकृमिष्वासान्वगुशमान्तकृत् ॥ १० ॥

चित्रकहरीतकी अबलेह—आंवला, चित्रकमूल, गुरुचि, दश (मिलित), पृथक् २ सर्वों का

श्वासचिकित्सा

स्वरस अथवा काथ सौ २ पल लेकर उसमें पुराना गुड़ १ तुला (१०० पल) मिलाकर अबलेह पाक की विधि से पाक करे और इसी में हरड़ का चूर्ण भी एक आढ़क (४ प्रस्थ) मिला देवे और पाक सिद्ध हो जाने पर उतार कर शीतल कर उसमें चित्रकमूल, हर्दा, सौठि, पीपरि, मरिच, दालचीनी, तेजपात, इलायची के दाने, नागकेसर, मधु, अंवरा, हर्दा, बहेरा इन सब ओषधियों का समान मिलित २ इलक्षण चूर्ण (इसी में मधु का प्रमाण अंश एक रहेगा) एक अजली और दो कुड़व अर्थात् १२ पल तथा यवाखार २ शुक्ति (आधापल) मिला कर रख लेवे। इसके सेवन से शोथ, अर्श, क्षय, कुठ, पीनस, कृमि, श्वास, अंतिडियों के रोग और गुल्म ये सभी नष्ट होते हैं। इसे ‘चित्रकहरीतकी लेह’ कहते हैं ॥ १० ॥

द्राक्षाहरीतक्यवलेह—

द्राक्षां हरीतकीं सुस्तों कर्कटाख्यं दुरालभाग् ।

सर्पिंधुभूर्यां विलिह्न्य शासान्हन्ति सुदाहणात् ॥ ११ ॥

द्राक्षाहरीतक्यादि लेह—दाख, हर्दा, नागरमोथा, काकडासिंही, जवासा इनको समान लेकर विधिवत् चूर्णकर मधु और धृत के साथ लेह बनाकर चाटने से भयंकर श्वास भी नष्ट होता है ॥

प्रलिङ्गान्मधुसर्पिंधर्यां भार्क्षीमधुकसंयुताम् । पथ्यां तिक्काकणाव्योषयुक्तां वा शासनाशिनीम् ॥

१—बमनेठी, मुलाईठी, में इनके समान मिलित चूर्ण में हरीतकी का चूर्ण मिलाकर अथवा २—कुटकी, पीपरि, सौठि, मरिच इनके समान मिश्रित चूर्ण में हर्दा का चूर्ण मिलाकर उसको मधु तथा धृत के साथ लेह बनाकर चाटे तो श्वास का नाश होता है ॥ १२ ॥

गुडवादिममद्वीकपिष्वलीविषमेष्वजौः ६ मातुलुक्करसं चौदं लीढं शासनिवर्णम् ॥ १३ ॥

पुराना गुड, अनारदाना, मुनका, पीपरि, सौठि इन ओषधियों के समान चूर्ण को विजौरेनीदू वा रस तथा मधु के साथ लेह बनाकर चाटने से श्वासरोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

अथ रसाः

शासकुठारः—

१०० ग्रन्थो विषं चैव टकुणं च मनःशिला । एतानि टकुमाशाणि मरिचं चाषट्कुकम् ॥ १ ॥

एकैकं मरिचं च द्वा खण्डे सूचमं विर्मद्येत् । त्रिकटु टकुमाशं च द्वाच्च पश्चात्कुण्डेत् ॥ २ ॥

संवर्मेकत्र संयोगं काच्छूर्यां विनिविषेत् । कासे श्वासे च मन्द्वाद्मो शात्स्तेष्वामयेषु च ॥

गुआमात्रं प्रदातव्यं पर्णश्वप्नेन धीर्मता । संनिपाते च मूर्च्छार्यामपस्मारे तथा पुनः ॥ ३ ॥

अतिमोद्दृष्टमाप्ते नहर्य द्रव्या विच्छणः । इसः शासकुठारोऽयं सर्वशासविकारादा ॥ ४ ॥

शासकुठार रस—शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, शुद्ध मीठा विष, शुद्धटक्कण, शुद्ध मैनसिल ये प्रत्येक एक टक्क (चार २ मासा) और मरिच आठ टक्क लेवे। मरिच को एक २ दाना खरल में दे देकर सूक्ष्म चूर्ण करे और पहले पारद-गन्धक की कल्जी कर तदनन्तर सब ट्रूप्यों को मिलावे और इनमें त्रिकटु का मिलित चूर्ण एक टक्क लेकर अन्त में मिलाकर सब को एकत्र भलीभांति खरल कर शीशी में रख देवे। इसको कास, श्वास, मन्द्वाद्मि, वात और कफ के रोगों में एक रसी के प्रमाण की मात्रा से पान के साथ दुष्क्रियान वैष देवे तथा संचिन्पात, मूर्च्छा, अपस्मार और अथवन्त मोइ की अवस्था में इसका नस्य देना लाभप्रद है। यह ‘शासकुठार रस’ सभी प्रकार के श्वास के विकारों को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

विरेचनस्वेदनधूमपानप्रद्वदंनानि स्वपनं विवा च ।

पुरातनाः विष्विकालितंद्वलाः कुलत्थगोधूमयवाः प्रशस्ताः ॥ १५ ॥

४३६

योगरत्नाकरः

अभीयाच सप्तिष्ठकं यदीमधुकथायकम् । शर्करामधुमिश्राणि शतानि मधुरैः सह ॥ २ ॥

जेठीमधु का विधिपूर्वक कथाय बना कर उसमें घृत मिलाकर पीने से अथवा मधु वंस्तुओं के साथ पकाये हुए दूध में शर्करा और मधु मिलाकर सेवन करने से पित्तज स्वरभेद नष्ट होता है ॥ २ ॥

पित्तेत्पर्यासि यस्योच्चैर्दतोऽभिहतः स्वरः ।

शतावरीचूर्णयोगं वलाचूर्णमथापि वा । शतावरीलाजचूर्णं लिङ्गान्मधुसमायुतम् ॥ ३ ॥

जिसको उच्च स्वर से बोलने के कारण स्वरभेद हुआ हो वह मधुर पदार्थों के साथ पकाया दूध पीवे अथवा शतावरि के चूर्ण को मधु के साथ अथवा बला (वरिआरे) के चूर्ण को मधु के साथ अथवा शतावरि का चूर्ण और धान के लावा (खील) के चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर चाटने से उसका स्वरभेद नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ शुण्ठीघृतम्

शुण्ठी त्वचो दुर्घवती द्वुमाणां सरिपत्य हुग्ये विपचेतु तेन ।

कलेन यदीमधुकस्य सर्पिः सशकरं पित्तज्ञामयम्भ्रम् ॥ १ ॥

शुण्ठी घृत—सोंठि और शीरी घृतों (वट-पीपरि-पाकर आदि) की त्वचा (छाल) इनको समान भाग लेकर दूध में पीस कर विधिवत् कल्प बना कर जितना होवे उसके चतुर्गुण मूर्च्छित गोधृत और घृत के चतुर्गुण जेठीमधु का काथ मिलाकर घृतपाक की विधि से पाक सिद्ध कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर इसमें शर्करा मिलाकर सेवन करने से यह शुण्ठी घृत वैत्तिक-स्वरभेद रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ कफजस्वरभेदः

पित्तलयादिचूर्णम्—

पित्तली पित्तलीमूलं मरिचं विश्वभेदजम् । पित्तेन्मूलेण मतिमान्कफजे स्वरसंशये ॥ १ ॥

पित्तलयादि चूर्ण—पीपरि, पिपरामूल, मरिच, सोंठि इन ओषधियों को समान लेकर उत्तम चूर्ण कर गोमूत्र के साथ सेवन करने के लिये कफज स्वरभेद में देने से कफज स्वरभेद नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ सन्निपातजस्वरभेदः

अजमोदा निशां धारीं श्वारं वह्नि विचूर्णेत् । मधुसर्पिंयुतं लीढवा त्रिदोषस्वरभेदनुतः ॥ १ ॥

सन्निपातज स्वरभेद चिकित्सा—अजमोदा, हरदी, आँवला, यवाखार, च्यिक्रमूल, इन ओषधियों को समान लेकर विधिवत् चूर्ण कर मधु तथा घृत के अनुपान से सेवन करने से त्रिदोष से उत्पन्न स्वरभेद नष्ट होता है ॥ १ ॥

कलत्रिकश्युचण्यावश्यकचूर्णानि हनयुः स्वरभेदमाशु ।

किंवा कुलस्थ वद्नान्तरस्थं स्वरामयं हन्त्यथ पौष्टकं वा ॥ २ ॥

अँवरा, हर्दा, वहेरा, सोंठि, पीपरि, मरिच, यवाखार, इन ओषधियों को समान लेकर चूर्ण कर सेवन करने से शीघ्र स्वरभेद नष्ट होता है अथवा कुलथी वा पुहकरमूल को चूसने से स्वर के रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

क्षयमेदस्वरभेदौ—

क्षयजे स्वरभेदे तु तथोक्तं विद्यमाचरेत् । कटुतिककथायाद्यमेदः स्वरहति जयेत् ॥ १ ॥

क्षयज तथा मेदोज स्वरभेद की चिकित्सा—क्षयज स्वरभेद में क्षयरोग में कहे हुए उपाय को

करे । और मेदोज स्वरभेद में कटु, तिक्त तथा कथाय आदिक रसों का प्रयोग करने से मेदोज स्वरभेद नष्ट होता है ॥ १ ॥

सामान्यविधि-चब्यादिचूर्णं योगशताद—

चब्यादिलवेतस्मद्गुदितं श्रिष्टुग्न्युक्तं वैस्वर्यपीनसककासचिद्धु प्रशस्तम् ॥ १ ॥

चब्यादि चूर्ण—चब्य, अम्लवेत, त्रिकुपुर्थक् २, शमली, तालीसपत्र, जीरा, वंशलोचन, चिक्रमूल और दालचीनी, इलायची, तेजपात इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिवत् चूर्ण कर गुड में मिलाकर सेवन करना स्वरभेद, पीनस, कफ, अरुचि आदि में उत्तम है अर्थात् इसके सेवन से ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ व्याप्रीघृतम्

चिकित्सासाराद—

व्याप्रीश्वरसविपक्षं रासनावाक्यालगोमुखरध्योषैः ।

सर्पिः स्वरोपघातं हन्याकासं च पञ्चविधम् ॥ १ ॥

व्याप्री घृत—छोटी कटीरी का स्वरस वा काथ चार से०, मूर्च्छित गोघृत एक से० और राजा, दरियारा, गोखल, सोंठि, पीपरि, मरिच इन द्रव्यों का समान मिलित कल्प एक पाव को लेकर पकव कर घृतपाक की विधि से पाक कर घृत सिद्ध कर ले । इस घृत के सेवन करने से स्वरभेद भारोग और पांचों प्रकार के कासरोग भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

कदम्बाद—

यद्यपीप्रकक्षकं वा घृतमृद्दं ससैन्धवय । स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

बैर के पत्तियों का कल्प बनाकर घृत के साथ भूजकर सेन्धानमक मिलाकर स्वरभेद और कासरोग में इस लेह का प्रयोग करने से स्वरभेद और कास नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

सारसभ्यहात—

विहितमधुण्ठूर्णान्यारचालेन सार्धं कलित्तहक्लकृष्णालैन्धवानि प्रलिङ्गात् ।

अभिलषति विजेतं यः स्वरस्य प्रणाशं स हि पिवतु सदुर्धं चाऽमलवयाः फलं वा ॥ १ ॥

कलित्वादिदि योग—जो स्वरभंग के नाश पर विजय पाना चाहता हो वह नदेरा, पीपरि और सेन्धानमक का चूर्ण (समान मिलित) लेकर आरनाल (काँजी) में मिला कर लेने बनाकर घाटे अथवा आँवले के चूर्ण को दूध के साथ पीवे अर्थात् इन योगों के सेवन करने से स्वरभेद नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाचिकम् । कफे सद्धारकटुकं चौद्रं केवलमित्यते ॥ १ ॥

गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाऽश्रितः । तेन जिष्ठमते लेलेप्ता स्वरश्चाऽद्यु प्रसीदति ॥

वातादिक के मेद से स्वरभंग के उपाय—वातज स्वरभेद में नमक मिला हुआ तेल, पित्तज स्वरभेद में घृत और मधु (असमान) और कफज स्वरभेद में कटुद्रव्य यवाखार मिलित मधु के साथ सेवन करने से गला, तालु, जिह्वा और दन्तमूल में आश्रित कफ निकल जाता है और स्वर शीघ्र ठीक हो जाता है ॥ १-२ ॥

वृद्धाद—

तालाकं स्वरभेदे वा खादिरं धारयेन्मुखे । पद्यापिधपियुक्तं वा संयुक्तं नाशरेत् वा ॥ १ ॥

अथवा स्वरभेद में तेल मिला हुआ खीर मुख में धारण करे, अथवा हर्दा, पीपरि और खैर

मिलाकर मुख में धारण करे अथवा सौंठि और खैर मिलाकर मुख में धारण करे तो स्वरभेद नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ रसाः

गोरक्षवटी—

रसभस्माक्लोहस्य भावितस्य त्रिसप्तम् । शुद्धाकलरसैर्युद्गतुस्य कार्या वटी शुभा ॥
मुखस्था हरते सब स्वरभक्तमसंशयम् । गोरक्षनाथर्दिता स्वरामयिकृपालुभिः ॥ २ ॥

गोरक्ष वटी—यारदभस्म वा रससिन्दूर, ताम्रभस्म और लौहभस्म सबको समान लेकर एकत्र मर्दन कर छोटी कटेटी के फलों के रस के साथ २१ बार भावित कर मूंग के प्रमाण की वटी बना कर रख लेवे । इस वटी को मुख में धारण करने से सब प्रकार के स्वरभेद निश्चित ही नष्ट होते हैं । स्वरामय रोगी के लिये कृपालु गोरखनाथ जी ने इसे कहा था । इसलिये इसे 'गोरक्ष वटी' कहते हैं ॥ १-२ ॥

अथ पथ्यम्

द्राक्षा पथ्या मातुलुक्नं लग्ननं लवणाद्रकम् । ताम्रलूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम् ॥ १ ॥

पथ्य—द्राक्षा, हरड़, विजौरानीबू, लहसुन, नमक और अद्रक, पान, मरिच, घृत ये सब स्वरभेद वालों के लिये पथ्य हैं ॥ १ ॥

अथारोचकनिदानं ड्यारुत्यास्यामः

पृथग्दीघैः समस्तैर्वा तथाऽप्यागमन्तवो हि ये । भवन्त्यरोचकाः पञ्च तेषां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥

अरोचकरोग—अरोचक निदान-पृथग् २ दोषों से अर्थात् वात से, पित्त से, कफ से, और समस्त (त्रिदोष से) दोषों से तथा आगन्तुक कारणों से अरोचक पांच प्रकार के होते हैं, उनका लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

वातिकमाह—वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोधनाशनरूपयात्यैः ।

अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः कथायवक्त्रम् मतोऽनिलेन ॥ १ ॥

वातिक निदान तथा अरुचि लक्षण—वातादि दोषों से, शोक, भय, अतिलोभ, अतिक्रोध, मनको घुणा उत्पन्न करनेवाले रूप देखने तथा गन्ध सूचने से, अरुचिरोग उत्पन्न हो जाता है । इसमें वायु के कोप होने से रोगी के दाँत परिहृष्ट अर्थात् जैसे खटाई खाने पर दाँत अवस्था हो जाते हैं वैसे हो जाते हैं । मुख का स्वाद कसैला हो जाता है । अर्थात् ये लक्षण जिस अरुचि में हो उसे बातज अरुचि जानना चाहिये ॥ १ ॥

पित्तजमाह—कट्यम्लमुष्ठिं विरसं च पूति पित्तेन विचाहूवणं च वक्त्रम् ॥ १ ॥

पैत्तिक अरुचि के निदान लक्षण—पित्त के कोप से होनेवाले में मुख का स्वाद कड़, अम्ल, उष्ण, विरस (फीका २), दुर्गंध युक्त और लवण युक्त मालूम होता है अर्थात् इन लक्षणों वाले अरुचिको पैत्तिक अरुचि जानना चाहिये ॥ १ ॥

कफजमाह—माधुर्यपैचित्तिरुपयुक्तवृश्चयस्त्रिन्द्रियन्द्रिययुतं कफेन ॥ १ ॥

कफज अरुचि के निदान लक्षण—कफ के कोप से होने वाले अरुचि में मुख का स्वाद मधुर, पिच्छिल (कफ से रिनध), भारी, शीतल, स्नेहयुक्त तथा दुर्गंधिसे युक्त होता है । (ऐसे लक्षणों वाले अरुचिको कफज कहते हैं) ॥ १ ॥

आगन्तुत्रिदोषजावाह—

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्याशुचिगन्धजे स्याद् ॥ १ ॥

स्वामाविकं चाऽस्यमयाहचित्र त्रिदोषजेऽनेकरसं भवेत् ॥ २ ॥

आगन्तुक और त्रिदोषज अरुचि के निदान-लक्षण-शोक, भय, अतिलोभ, अतिक्रोध, हृदय और पदार्थ को अधिय पदार्थ को खाने वा देखने तथा अशुचि (अश्विय) गन्ध के लगाने से जो अरुचि उत्पन्न होती है उसमें मुख का स्वाद स्वामाविक हो रहता है । और त्रिदोषज अरुचि में मुख का स्वाद एक रस का नहीं होता अर्थात् तीनों के लक्षणों वाला कई प्रकार का होता है ॥ १-२ ॥

विद्युतिमाह—हृष्टलुपीडनयुतं पवनेन पित्तात्तद्वाहचौषड्हुलुं सकफप्रसेकम् ।

श्लेषमासमं बहुरूजं बहुभित्र विद्युत्प्रयमोहजडताभिरथापरं च ॥ १ ॥

विकृति (वातादिक भेद से विकृति) का निर्देश—वात के दोष से जो अरुचि होती है उसमें हृदय में शूल होता है इससे रोगी पीड़ित रहता है । पित्त से होने वाली अरुचि में तृप्ता, दाह, ज्वर (चूसने के समान की पीड़ा) अधिक होती है । कफ से होने वाली अरुचि में मुख से कफ का खाव (लालासाव) अधिक होता है । त्रिदोष के कारण होने वाली अरुचि में अनेक प्रकार की बहुत सी पीड़ायें होती हैं । और आगन्तुक (शोक-भयादि) कारणों से होने वाली अरुचि में विद्युता, पीछ, जड़ता इत्यादिक लक्षण हो जाते हैं ॥ १ ॥

प्रतिदिस्तं सुखे चांशं जन्तुर्नाऽऽस्वदते सुहुः । अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ २ ॥

अरोचक के लक्षण—जिस मनुष्य को मुख में दिये अन्न का स्वाद बार २ देने पर भी नहीं मालूम हो उसे अरोचक या अरुचि कहते हैं आगे भक्तद्वेष का लक्षण सुनो ॥ २ ॥

चिन्तत्यिक्ता तु मनसा दृष्टा श्रुत्वा तु भोजनम् । द्वेषमायाति यो जन्तुभर्त्तुद्वेषः स उद्यते ॥ ३ ॥

भक्तद्वेष के लक्षण—जिस मनुष्य को मन में अन्न का स्मरण करने, देखने या सुनने से, देष (अनिच्छा) ही अर्थात् घृणा करे तो उसे 'भक्तद्वेष अरुचि' कहते हैं ॥ ३ ॥

अथारोचकचिकित्सा

वस्तिः सप्तीरणे विसे विरेको वमनं कर्मे । सर्वज्ञे सर्वकामार्थं हृष्णं स्याद्वोचके ॥ १ ॥

अरोचक चिकित्सा—वातजनित अरुचि में वस्ति कर्म करे, पित्तजनित अरुचि में विरेचन कर्म करे, कफजनित अरुचि में वमन कर्म करे, तथा सविपातज और आगन्तुक अरुचि में हृष्ण कर्म (हृष्णकारक आहार-विहारादि) करे । इससे अरुचि नष्ट होती है ॥ १ ॥

क्षारचौ कवलग्राहो धूमः सुमुखावनः । मनोज्ञमङ्गपानं चा हृष्णाश्वासनानि च ॥ २ ॥

अरुचिरोग में कवल धारण (गण्डूष धारण) करना, धूत्रपान करना, दतुअन, मंजन आदि करना । मनोज्ञकूल अन्न-पानादिक करना और हृष्ण कर्म (हृष्णकारक कर्म) और सान्त्वना प्राप्त होने वाले कर्म करना चाहिये ॥ २ ॥

मात्यान्द्वयदेशरचित्तन्दिविधान्श्च भक्तद्वापानानि मूलफलखाणदवरागलेहान् ।

सेवेद्रसांश विविधान्दिविधैः प्रयोगैर्मुक्तीत चापि लघुरूपमनःसुखानि ॥ ३ ॥

अपनी प्रकृति के अनुकूल, अपने देश की विधि से बने हुए भक्त यदा ये पदार्थ, मूल वाले भक्त, फल, राग, खाण्डव (मुरब्बे), अबलेह (चटनी) अनेक प्रकार के रस वाले भोजन, अनेक प्रकार के बने (रोचक) भोजन-पैद्य पदार्थ, लतु, रुक्ष तथा मनको सुख पहुंचाने वाले पदार्थों के सेवन से अरुचि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

अथ मुखधावनम्

अजाजी मरिचं कुष्ठं विडं सौवर्चलं तथा ।

मधुकं शर्करा तैलं वातिके मुखधावनम् । करभद्वन्तकाष्ठं च विषेयमसूची मदा ॥ १ ॥

अरुचि में मुखधावन क्रिया—जीरा, मरिच, कूठ, विडलवण, सौवर्चल लवण, मुलहठी,

शकर और तेल इन सब ओषधियों को समान लेकर यथाविधि चूर्णकर एकत्र मिला कर इससे मुख थोने को (मज्जन करने को) बातज अरुचि में देना चाहिये, इससे अरुचि नष्ट होती है। और अरुचि के रोग में सदा करज के द्वारा उन करने की विधि है अर्थात् यह लाभदायक है ॥ १ ॥

त्रिष्युवृणानि त्रिफला रजनीद्रव्यं च चूर्णकृतानि यवशूकिमिश्रितानि ।

सौद्रनितितानि वित्तरेन्मुखधावनार्थमन्यानि तिक्कटुकानि च मेषज्ञानि ॥ २ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, इरदी दारुहरदी और जवाखार इन ओषधियों का विधिवत् चूर्ण कर मधु मिला कर मुख थोने से (मज्जन करने से) अथवा और किसी तिक्क और कटु ओषधियों से मज्जन करने से अरुचि नष्ट होती है ॥ २ ॥

अथ गण्डूषः

किञ्चित्सूचणसंयुक्तमारनालं विपाचयेत् । तेन गण्डूषमादध्यादास्यवैरस्यशान्तये ॥ ३ ॥

अरुचि में गण्डूष धारण किया—थोड़ा सा सेन्धा नमक मिला कर काँजी को पकावे और पक जाने पर उसका गण्डूष धारण करने से मुख की विरसता (फीकापन) नष्ट होती है ॥ ३ ॥

अथ पानकम्

अभिलक्षपानकम्—

अभिलक्षा मुद्रतोयं च त्वगेलामरिचान्तितम् । अभक्त्यज्जन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणे ॥ ४ ॥

पानक योग—अभिलक्षा पानक—इमली, मूंग का पानी, दारुचीनी, इलायची, मरिच इन सबको एकत्र मिलाकर केवल धारण (गण्डूष धारण) करने से भक्त्यज्जन्दरोग में लाभ होता है ॥ ४ ॥

निम्बुपानकम्—

भागैकं निम्बुजं सोयं पठभागं शार्करोदकम् । लवङ्गमरिचोन्मिश्रं पानकं पानकोत्तमम् ॥ ५ ॥

निम्बु पानक—एक भाग नीबू का रस, छ भाग शार्करोदक (रस) दोनों को एकत्र कर इसमें लौंग और मरिच का चूर्ण मिलाकर पानक की विधि से बना कर सेवन करने से यह उत्तम अरुचि का नाश करता है ॥ ५ ॥

नीबूरसम्बन्धं पानमत्यग्न्तं वातनाशनम् । बह्विदीसिकरं हृदयं समस्ताहारपाचकम् ॥ ६ ॥

नीबू के रस के सहित बना पानक अत्यन्त अग्न्त (खट्टा) होता है तथा बात को नष्ट करता है, अग्नि को दीप्त करता है, रुचिकारक है अर्थात् अरुचि को नष्ट करता है, तथा सम्पूर्ण आहार को पचाने वाला होता है ॥ ६ ॥

कुषाणाश्रत्वारः कवलग्रहाः—

कुषसौवर्चलाजाजी शार्करा मरिचं विदम् । धान्यैलापद्मकोशीरपिपलीचन्द्रनोपलम् ॥ ७ ॥

लोध्रं तेजोवती पथ्या व्यूषणं सयकाप्रजम् । आद्रादिमिनिर्यासशाजाजीशार्करारुक्तः ॥ ८ ॥

सत्तेलमालिकाश्रेते चत्वारः कवलग्रहाः । चतुरुरोदोचकान्धन्युर्वाताण्येकजसर्वजान् ॥ ९ ॥

कुषाणिक ४ कवल ग्रहण प्रयोग—१—कूठ, सौवर्चल लवण, जीरा, शार्करा, मरिच, विदलवण ।

२—धनियाँ, इलायची, पद्मकाठ, खस, पीपरि, रक्तचन्दन, नीलोफर । ३—लोध्र, तेजवल, इर्दा, त्रिकटु पृथक् २, यवाखार । और ४—अद्रक का रस, अनार का रस, जीरा और शार्करा ये चार प्रकार के कवलग्रह प्रयोग हैं । बातज अरुचि में तेल के साथ तथा शेष ३ अरुचियों में मधु के साथ मिलाकर कवलग्रह विधि से मुख में धारण करने से बातदिक से उत्पन्न चारों प्रकार के (बातज—पित्तज—कफज—सानिपातिक) अरोचकों को क्रम से उत्त ४ प्रयोग नष्ट करते हैं ॥ १-३ ॥

विडङ्गचूर्णं क्षेत्रं शौद्रं कर्षचतुर्मितम् । असाध्यामपि संहन्यादरुचि व्यक्तप्रधारणात् ॥ १ ॥

विडङ्ग का चूर्ण एक कर्ष और मधु चार कर्ष दोनों को मिलाकर कवलग्रह विधि से मुख में धारण करने से असाध्य अरुचि भी नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अथ गुटिका

कारव्यादिगुटिका—कारव्यजाजि मरिचं द्राक्षा वृक्षाग्लदाढिमम् ।

सौवर्चलं गुडः शौद्रमेषां कार्या वटी शुभा । बद्रास्थिमिता साऽस्त्वये धार्यादरोचकनाशिनी॥

गुटिका प्रकरण—कारव्यादि गुटिका—कृष्ण जीरा (स्याह जीरा), शेत जीरा, मरिच, द्राक्षा, वृक्षाग्ल (कोकमफल), अनारदाना, सौवर्चल नमक, पुराना गुड और मधु सब समान भाग लेकर पहले सब ओषधियों का चूर्ण कर उसमें गुड और मधु मिलाकर वैर की गुठली के प्रमाण की वटी बना कर मुख में धारण करने से अरुचि को यह वटी नष्ट करती है ॥ २ ॥

सितार्थ्योचकपित्तानां चूर्णक्षेत्रकृतां वटीम् । सर्वारोचकशान्त्यर्थं धारयेद्वदनाभुजे ॥ ३ ॥

शर्करा, सौंठि, पीपरि, मरिच, कैथ का फल इन सबको समान लेकर चूर्ण कर मधु मिलाकर वटी बना कर मुख में धारण करने से सब प्रकार के अरोचकरोग शान्त होते हैं ॥ ३ ॥

अथ चूर्णानि

यवानीखण्डवच्चूर्णम्—

यवानी तिनितिदीकं च नागरं चाग्लवेत्तसम् । दाढिमं बदरं साम्लं कार्षिकाण्युपकस्पयेत् ॥ १ ॥

धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गं चार्धकार्षिकम् । पिप्पलीजी शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ॥ २ ॥

शार्करायाक्षं चत्वारि पलान्येकन्नं चूर्णयेत् । यवानीखण्डवार्घ्यं तु चूर्णमेतदोचकम् ॥ ३ ॥

हन्तयेव प्रातरेतत्त्वं स्थापितं च मुखे मुद्दुः । जिह्वाविशेषधनं हृदयं दीपनं भक्तोचकम् ॥ ४ ॥

हृषीद्वापाश्वर्षशूलधनं विवर्धानाहानाशनम् । कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहणज्ञोविकारनुत् ॥ ५ ॥

यवानी खण्डवच्चूर्ण—जवाहन, इमली, सौंठि, अम्लवेत, अनारदाना, खट्टी वैर, ये प्रत्येक यक २ कर्ष, धनियाँ, सौवर्चल नमक, जीरा और दारुचीनी ये प्रत्येक द्रव्य आधा २ कर्ष, पीपरि संख्या में एक सौ और मरिच संख्या में दो सौ और शार्करा ४ पल इन सबको लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर एकत्र मिलाकर रख लेवे । यह ‘यवानीखण्डव’ नाम का चूर्ण प्रातःकाल बार २ मुख में रखने से (मुह में रख कर रस चूसने से) अरुचि को नष्ट करता है, जिह्वा को शुद्ध करता है, हृदय को हितकर है, अग्नि दीप्त करता है और मोजन में रुचि उत्पन्न करता है । और हृदय की पीड़ा, पार्श्वशूल इनको नष्ट करता है, मलबद्धता और आनाह को नष्ट करता है, कास और श्वास को हरण करता है, ग्राही है, तथा ग्रहणी और अर्श के विकार को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

अथ खाण्डवच्चूर्णम्

वेपदेवशतात्—तुर्थं तालीसच्चयोषणलवणगां द्विष्टकणाग्रहण्यजाजी-

वृक्षाग्लास्थित्वचं त्रिर्घ्नवदरधनैलाजमोदाम्लविषम् ।

साध्यश्वेताद्ग्रिसारोऽतिष्ठित्कृमिवमौ ख्याण्डवोऽहृष्यजीणि-

गुहमाध्माद्यपानलाश्योदद्वचणमदमरुद्धद्रुष्यासकासे ॥ १ ॥

खाण्डव चूर्ण—तालीसपत्र, चव्य, मरिच, सेन्धानमक, गजपीपरि ये प्रत्येक द्रव्य समान भाग अर्थात् एक २ भाग, पीपरि, पिपरामूल, जीरा, वृक्षाग्ल (कोकम फल), चित्रकमूल और दालचीनी ये प्रत्येक द्रव्य दो २ भाग, नागरमोथा, वैर, धनियाँ, इलायची, जवाहन, अम्लवेत और सौंठि ये प्रत्येक द्रव्य तीन २ भाग और सबके आधा इवत शर्करा लेकर प्रथम सब ओषधियों का विधिवत् चूर्ण कर शर्करा मिला—एकत्र मर्दन कर रख लेवे । यह ‘खाण्डव चूर्ण’ अतीसार,

कृमि, वमन, अरुचि, अजीर्ण, गुल्म, आधमान, मन्दाग्नि, लालास्राव, वातरोग, हृद्रोग, श्वास तथा कास रोग में सेवन करने से इन सबों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथाऽमलक्यादिचूर्णम्

शार्ङ्गभरात्—आमलं चित्रकं पृथ्या पिप्पली सेव्यवं तथा ।
चूर्णितोऽर्थं गणो ज्ञेयः सर्वं उवरविनाशनः । भेद्वा रुचिकरः श्लेष्मजेता दीपनपाचनः ॥ १ ॥

आमलक्यादि चूर्ण—आँवला, चित्रकमूल, हर्दा, पीपरि, सेव्यानमक सब द्रव्यों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर सेवन करने से यह सब प्रकार के ज्वर को नष्ट करता है । मलमेदक, रुचिकारक, कफनाशक, दीपन तथा पाचन है । इस आमलक्यादि गण को इन सब रोगों का नाशक जानना चाहिये ॥ १ ॥

अथ कर्पूराद्यं चूर्णम्

शार्ङ्गभरात्—

कर्पूरचोचकङ्गोलजातीकलदलः समाः । लवङ्गनागमरिचङ्गलाशुण्डो विवर्चिताः ॥ १ ॥
चूर्णं सितासमं ग्राह्यं रोचनं चथकासजित् ।

वैस्वर्यं उवरवासगुणमाशङ्किकाठामयापहम् । प्रयुक्तं चाच्चापानेषु भिषजा रोगिणां हितम् ॥ २ ॥
कर्पूरादि चूर्ण—कर्पूर, दालचीनी, कङ्गोलमरिच, जायफर, तेजपात, प्रत्येक समान अर्थात् एक २ भाग और विधित क्रमसे लवंग दो भाग, नागकेसर ३ भाग, मरिच ४ भाग, पीपरि ५ भाग और सौंठि ६ भाग लेकर विधिवत् उसम् चूर्णकर इसमें सब के समान सिता (शेत शकरा) मिलाकर रख लेवे । इस 'कर्पूरादि चूर्ण' के सेवन करने से यह रुचिकारक, क्षय, कास स्वरभंग, श्वास, गुल्म, अर्दा, वमन और कण्ठ के रोगों को नष्ट करने वाला है । वैद्य लोग अन्न और पेय पदार्थों में इसका प्रयोग करते हैं, इससे रोगियों को लाभ होता है ॥ २-२ ॥

अथ तालीसाद्यं चूर्णम्

शार्ङ्गभरात्—

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशलोचना । एकद्विनिष्ठतुष्पञ्चकर्षेभर्गान्प्रकर्षयेत् ॥ १ ॥
एलात्वचोस्तु कर्षाद्यं प्रत्येकं भागमावहेत् । द्वात्रिशत्कर्षतुलिता प्रदेया शकरा बुधैः ॥ २ ॥
तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् । कासश्वासउवरहरं छृष्टीतीसारनाशनम् ॥ ३ ॥
शोषाग्नानहरं लौहीह्यरणीपाण्डुरोगिजित् । पक्तव्या वा शकरां चूर्णं द्विपेसा गुटिका तथा ॥
तालीसादि चूर्ण—कमासुसार तालीसपत्र १ कर्ष, मरिच २ कर्ष, सौंठि ३ कर्ष, पीपरि ४ कर्ष, वंशलोचन ५ कर्ष लेवे, इलायची के दाने और दालचीनी प्रत्येक आधा २ कर्ष और शकर ३-२ कर्ष लेकर प्रथम सब ओषधियों का उत्तम चूर्ण बनाकर उसमें शकर कर मिला मर्दन कर रख लेवे । यह 'तालीसादि चूर्ण' रुचिकारक तथा पाचक है । कास और श्वास का नाशक है । वमन और अतीसार का नाशक है और शोष, आधमान, प्लीहा, ग्रहणी और पाण्डुरोग को नष्ट करने वाला है । अथवा इसके प्रस्तुत चूर्णों को शकरा में देने के पहले शकरा का पाक कर (चासनी कर) उसमें मिलाकर वटी बनाई जाती है और उससे भी उपर्युक्त रोग नष्ट होते हैं ॥ २-४ ॥

अथावलेहः—शार्ङ्गभरात् आर्द्रकमातुलङ्गावलेहः—

आर्द्रकस्वरसं प्रस्थं तदधीशं गुडं द्विपेत् । कुद्वचं बीजपूराग्नं गालयित्वा विचक्षणः ॥ १ ॥
तदं मन्दाग्निना पक्तव्या तत्रेमानि विनिष्पेत् । त्रिजातकं त्रिकुरुकं त्रिफलायासमेव च ॥ २ ॥
चित्रकं ग्रन्थिकं खाद्यं जीरकद्वयमेव च । कर्षांशं शुष्णनचूर्णं तु मेलयित्वा तु भव्येत् ॥ ३ ॥

अरोचकचृश्चहरमग्निदीप्तिकरं परम ।

कामलापाण्डुशोफद्धनं श्वासकासहरं परम । आधमानोदरगुलमानि प्लीहशूले च नाशयेत् ॥

आर्द्रक मातुलङ्गावलेह—आद्रक का स्वरस एक प्रस्थ, पुराना गुड आधा प्रस्थ, विजौरे नीबू का रस छाना हुआ एक कुडव (४ पल) लेकर एकत्र कर मन्द २ अविन पर अवलेह पाक को विधि से पाक करे, पाक सिंड हो जाने पर उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, सौंठि, पीपरि, मरिच, अंवरा, हर्दा, बहरा, जवासा, चित्रकमूल, पिपरामूल, धनिया, शेतजीरा और कुण्जीरा इन ओषधियों में से प्रत्येक को एक २ कर्ष लेकर शृण्ड चूर्ण बना पाक में मिला कर भक्षण करे तो अरुचि और क्षय को नष्ट करता है, अविन को अत्यन्त दीप्ति करता है, कामला, पाण्डु शोथ, श्वास, कास, आधमान, उदररोग, गुल्म, प्लीहा और शूल को नष्ट करता है ॥ २-४ ॥

अथ खण्डाद्रकयोगः—योगसारात्—

आर्द्रकस्य सितायाश्च द्विगुणाष्टलानि च । निष्कृद्वादशकं तीक्ष्णमष्टनिष्का च सागधी ॥ १ ॥

अष्टनिष्कं च तन्मूलं पञ्चनिष्कं च नागरम् । जातीफलैलादहनवंशाद्याः । पञ्चनिष्ककाः ॥ २ ॥

सर्वांगेतानि शुष्काणि चूर्णं कृत्वा पृथक्पृथक् । आर्द्रक खण्डशः कृत्वा पोष्टतेऽष्टपले पचेत् ॥

शकरां वा खूबचूर्णं आऽस्त्रद्रकं सह मेलयेत् । मण्डकं सेवयेत्तिथं महापित्तिवाशनम् ॥ ३ ॥

अउलपित्तं निहन्त्याशु सर्वपित्तिविकारजित् । सर्वांगच्च वातरोगं मन्दाग्निं च नियचक्षति ॥

खण्डाद्रक योग—आद्रक और शेतशकरा १६-१६ पल दोनों को लेवे, मरिच १२ निष्क (४८ माघ), पीपरि ८ निष्क (३२ माघ), पिपरामूल ८ निष्क, सौंठि ५ निष्क, जायफर, इलायची, चित्रकमूल, वंशलोचन इन प्रत्येक द्रव्यों को ५-५ निष्क लेकर आर्द्रक को छोड़कर शेष ओषधियों को सुखा कर पृथक् २ चूर्ण करे । प्रथम आर्द्रक को खण्ड २ करके आठ पल गो धृत में पाक कर लेवे पश्चात् उसमें शकरा और इन ओषधियों के चूर्णों को मिलावे । इसको 'खण्डाद्रक' कहते हैं, इसको मण्डल तक अर्थात् ४८ दिन तक नित्य सेवन करने से महापित्त को नष्ट करता है और यह अम्लपित्त को शीघ्र नष्ट करता है और पित्त के सब प्रकार के विकार तथा सब प्रकार की अरुचि, वात व्याधि और मन्दाग्नि इससे नष्ट होती है ॥ २-५ ॥

आर्द्रकयोगः (मदनपालात्)—

धौतं खण्डितमार्दकं च सलिलेः चिसं सुत्से धृते

सिन्धूरथं मरिचं सुजीरयुगां चूर्णीकृतं प्रसिद्धेत् ।

चूर्णं भृष्टयोद्धवं च वितुषं हिष्टवाजयधूमे धृते-

वितुषं दोषविहीनमार्दकवरं सुस्वादु संजायते ॥ ३ ॥

आर्द्रक योग—आद्रक को धोकर खण्ड २ करके तपाये हुए धृत में छोड़ कर उसमें सेव्यानमक, मरिच, कुण्जीरा, शेत जीरा, इनका चूर्ण मिलावे और निष्ठुष यव का चूर्ण भी मिला कर भूने । इसमें पहले धृत में हींग देकर भलीभांति जलाकर धुँआँ होने पर उसमें अद्रक तथा अन्य ओषधियों को मिलावे । इस प्रकार दोषहीन होकर आद्रक अत्यन्त शेष तथा स्वादिष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

मातुलङ्गादियोगः—

मातुलङ्गादिकेसरोदधृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो सुखे ।

इनित वातकफरोगमांस्यं शोषमास्यजहतामरोचकम् ॥ १ ॥

मातुलङ्गादि योग—विजौरे नीबू के फल में का जीरा (गूदा), सेव्यानमक और मरिच का चूर्ण एक में मिलाकर मुख में रख कर चूसा जावे तो वात-कफ के रोग, मुख का शोष, मुख की जड़ता और अरोचक को नष्ट करता है ॥ १ ॥

मातुलुक्षस्य सैन्धवं मधुनाडिप्रचा । आस्थ्यवैरस्थशमनं भद्रयेकर्षसंमितम् ॥ १ ॥
मातुलुक्ष के केसर (जीरा या गूदा) का गुण—विजौरा नीबू के केसर में सेन्धानमक अथवा
मधु मिलाकर एक कर्ष के प्रमाण से खाने से मुख की विरसता नष्ट होती है ॥ १ ॥

शमयति केसरमहार्चि सलवणघृतमाशु मातुलुक्षस्य ।

दाढिमर्चवणमथवा चरको द्विकमरि सूचयामास ॥ २ ॥

नीबू के केसर के साथ घृत और सेन्धानमक मिलाकर खावे अथवा अनार के दानों को
चबाना रुचिकर है । अर्थात् इससे अरुचि नष्ट होती है यह चरक ऋषि का मत है ॥ २ ॥

शर्करादियोगः—शर्करा दाढिम चाथ द्राशा खर्जूरमेव च ॥ ३ ॥

शर्करादि योग—शर्करा और अनारदाना और द्राशा तथा खर्जूर इनको सेवन करने से अरुचि
नष्ट होती है ॥ ३ ॥

अथाऽद्विकदाढिमयोगदृश्यम्—

जिह्वाकण्ठविशोधनं तदनु च स्वाष्ठङ्गवेरान्वितं
सिन्धुर्थं हितमन्त्र चाथ मधुना शर्सो रसो दाढिमः ।
अभ्युद्वाषकराण्यजीर्णशमनान्धाहृतथा भेषजा-
न्यवारोचकहृतप्रयोगसमये तानि प्रदेयानि च ॥ १ ॥

आद्रक-दाढिम योग—आद्रक और सेन्धानमक मिला हर सेवन करने से जिहा और कण्ठ की
शुद्धि होती है तथा अनारदाना और मधु मिलाकर सेवन करने से भी जिहा और कण्ठ की शुद्धि
होती है । और इन दोनों योगों के सेवन से अरुचि की शुद्धि होती है, अजीर्ण का शमन छोटा है
और अरुचि नष्ट होती है, इसलिये इन योगों में इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

सारसंग्रहाज्ञीरकाथं धृतम्—

पिण्डवाऽज्ञानीं सधान्याकां धृतप्रस्थं विपाच्येत् । कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवर्मि लयेत् ॥ ३ ॥
जीरकादि धृत—गोधृत मूर्च्छित एक प्रस्थ लेकर उसमें जीरा और धनियाँ का कल्क मिलाकर
धृतपाक विधि से पाक कर सेवन करने से कफ-पित्त और अरुचि नष्ट होती है और मन्दान्धि
तथा वमन नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ रसाः

सूतादिगुटिका-योगतरङ्गिण्याः—

सूतगन्धाभ्रमगच्छालिकामरिचसैन्धवै । गुटकाऽरोचकहरी जिह्वावदनशुद्धिकृत ॥ १ ॥
सूतादि गुटिका—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकमस्म, पीपरि का चूर्ण, इमली, मरिच चूर्ण
और सेन्धानमक का चूर्ण सब को समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की विधिपूर्वक कजली कर
उसमें अन्य द्रव्यों को मिलाकर घोट कर जल के सहारे वटी बनाकर सेवन करने से अरुचि को नष्ट
करता है तथा जिहा और मुख को शुद्ध करता है ॥ १ ॥

गदनिग्रहालघुचुकसन्धानम्—

गुडचौद्रानालनि समस्तानि यथोत्तरम् । ज्ञासनित द्विगुणान्मात्रान्सम्यक्तुकस्य सिद्धये ॥
लघुचुक और सन्धान की विधि—गुड, मधु और कांजी इनको यथोत्तर द्विगुण अर्थात् गुड
१ भाग, मधु २ भाग और कांजी ४ भाग लेकर मिलाने से उत्तम चुक (सिरका) की सिड्धि
होती है अर्थात् इस प्रकार बनाने से उत्तम चुक (सिरका) होता है ॥ १ ॥
यन्मस्त्वादि शुचौ भाष्टे सखौद्रगुडकालिकम् । धान्यराशौ निरावस्थं शुकं चुकं तदुच्यते ॥

दही के पानी आदि को शुद्ध पात्र में रख उसमें मधु, गुड और कांजी मिलाकर धान्य की
राशि में तीन रात-दिन तक रख कर निकाल-छानकर रख लेवे । इस विधि से बने चुक को शुक्त
(संधान) कहते हैं ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

गोधूमसुद्धाकणशालिष्ठिका मांसं वराहाजशशैणसंभवम् ।

चेगो ज्ञाषाण्डं मधुरालिकं लिशः प्रोष्ठी खलेशः कबरी च रोहितः ॥ १ ॥

कक्फूवेश्वाग्रनवीनमूलकं वारांकसैभाज्ञनमोचदाहिमम् ।

भव्यं पटोलं रुचकं पयो धृत बालानि मूलानि रसोनसूरणम् ॥ २ ॥

द्राशा रसालं नलदाम्बु कालिकं कोलं रसाला दधि तक्रमाद्रकम् ।

स्वाहुर्गलतिक्तानि च देहमार्जनं वर्णोदयमुक्तोऽहंचिरोगिणां हितः ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—गोहू, मूंग, लाल, शालिधान्य, साठी आदि के चावल, वाराह (सूबर), बकरी,
शशक, एगमुका का मांस, चेग, मछली का अण्डा, मधुरालिक, लिश, प्रोष्ठी, खलेश, कबरी और
रोहित ये मछलियाँ, तरबूज, वेत की नरम फुनगियों का साग, नवीनमूली (बालमूलक), वैगन,
सहिजन, केला, अनार, भव्य (कमरख), परवर, रुचकनमक, दूध, धृत, छोटी मूली, लहसुन
और सूरण (ओल), दाख, आम, खस का पानी, कांजी, वैर, रसाला (सिखरन), दही, तक,
आद्रक, मधुर, अम्ल और तिक्त पदार्थ और शरीर को भलीभौति स्वच्छ करना ये सभी अरुचि के
रोगियों के लिये हितकर (पथ्य) कहे गये हैं ॥ १-३ ॥

एष्टोद्वारारुच्यानेववारिवेदविधारणम् ।

अहृद्याङ्गमधुर्खोद्वं क्षोभलोभं भव्यं शुचम् । हुर्गन्धानपूसेद्वा च न कुर्याददृचौ नरः ॥ ४ ॥

तुषा, डकार, क्षुधा और नेत्र के आँखों के वेग का अवरोध करना, अहृथ (अरुचिकर) अन्न
स्वाना, रक्तमेश्वण करना, कोष करना, लोभ, भय, शोक आदि करना, दुर्गन्ध में रहना या
दुर्गन्धित पदार्थ का सेवन करना और आनूप (जलीय) स्थान में रहना ये सब अरुचि का रोगी
नहीं करे अर्थात् ये कर्म अपथ्य हैं ॥ ४ ॥

अथातश्छर्दिनिदानं व्याख्यास्यामः

कुर्वदेवः पृथक्सर्वैर्भ्रसालोकनादिभिः । कुर्वयः पञ्च विज्ञेयस्त्वासां लङ्घणमुच्यते ॥ १ ॥

छर्दि का निदान—दूषित हुए वातादिक पृथक् २ दोषों से, सन्दिपात से और धृणित पदार्थों
के दर्शन से इन पांच कारणों से पांच प्रकार का वमन होता है यह जानना चाहिये । अब इनके
लक्षण कहते हैं ॥ २ ॥

तासां संप्राप्तिमाद—

अतिद्वैरतिप्रिधृष्टेऽरुच्येष्ठ तथाऽसारम्यैष भोजनैः ॥ ३ ॥

श्रमाद्यात्मथोऽग्राहाज्ञीर्णक्तमिदोषतः । नार्याशाऽप्त्वस्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमक्षतः ॥ २ ॥

बीभ्रसैहंतुभिश्वान्यैदूतसुखलेशितो चलात् ।

छर्दियानानं वेगोरुच्यालभानैः । निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ३ ॥

छर्दि की सम्प्राप्ति—अत्यन्त द्रव तथा अत्यन्त स्नेहयुक्त, हृदय को अप्रिय तथा अति नमकीन
पदार्थ, असनय में भोजन, अति भोजन, अपथ्य वा - प्रकृति-विरुद्ध भोजन करने से तथा अधिक
परिश्रम, भय, उड़ेग से, अजीर्णरोग, कृमिरोग तथा खिर्यों की गर्भावस्था होने पर, अत्यन्त शीघ्र २
भोजन करने से तथा अन्य धृणित पदार्थों के दर्शन से, इत्यादि कारणों से वातादिक दोष
वस्त्रलेशित होकर शीघ्र बलपूर्वक मुख की आच्छादित करते हुए अङ्गों को तोड़ते और पीड़ित करते

दुष्पुख की ओर आते हैं अर्थात् उदर के पदार्थ मुख में से बाहर निकालते हैं। इसलिये इसे 'छाँदि' कहते हैं ॥ १-३ ॥

तस्याः पूर्वलूपमाह—

हृषासोद्रासंरोधी प्रसेको लबणस्तजुः । द्वंशोऽज्ञापाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ १ ॥
छाँदि का पूर्वरूप—जिस मनुष्य को हृषास हो, डकार का अवरोध हो, लालासाव थोड़ा तथा लबण युक्त हो, जोजन और पेय पदार्थों से देव अर्थात् अनिच्छा हो, उसको वमन होगा ऐसा जानना चाहिये अर्थात् ये लक्षण वमन के पूर्वरूप हैं ॥ १ ॥

वातजामाह—हृषास्त्रीपीडासुखशोषशीर्णमाभ्यतिंकासस्वरभेदतोदैः ।

उद्गारशब्दप्रवलं सफेनं विचिक्षनकृष्णं तनुकं कणायम् ॥ १ ॥
कृष्णेण चाल्पं महाता च वेरोनार्तोऽनिलाच्छ्वाँयतीह दुःखम् ॥ २ ॥

वातज वमन के लक्षण—वात के कुपित होने से जो वमन होता है उसमें हृदय में पीड़ा, पार्श्वदेश में पीड़ा, मुख का सूखना, सिर और नाभि में पीड़ा, कास, स्वरमेद, शरीर में सूर्ख चुमाने के समान पीड़ा होना, प्रबल शब्द के साथ डकार आना, फेनयुक्त-फटा हुआ, कृष्णवर्ण का थोड़ा तथा कणाय रस युक्त, बड़े कष के साथ, बड़े वेग से लेकिन मात्रा में अत्यलप तथा कष्टद्युक्त वमन होता है ॥ १-२ ॥

पित्तजामाह—मूल्धृष्णिपियासासुखशोषशूर्धताश्वचिसंतापत्तमोभ्रमातः ।

पीतं भृशोषणं हरितं च तिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥ ३ ॥

पित्तज वमन के लक्षण—पित्त के कुपित होने से जो वमन होता है, उसमें मूल्धृष्ण, तृष्णा, मुख का सूखना, सिर-तालु और नेत्रों में सन्ताप, नेत्रों के सामने अन्धकार मालूम होना, ऋग होना, इनके कारणों से रोगी पीड़ित होता है और पीत वर्ण का अत्यन्त उष्ण, हरा, तिक्तरस युक्त, धूम्र के समान और दाह करता हुआ वमन होता है ॥ २ ॥

कफजामाह—तन्द्रास्थयमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्राऽहचिगौरवातः ।

द्विधर्थं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धलं सरोमहषोऽप्यरजं वमेत् ॥ ३ ॥

कफज वमन के लक्षण—कफ के कुपित होने से जो वमन होता है उसमें तन्द्रा, मुख का स्वाद मधुर रहना, मुख से कफ (लाला) स्नाव होना, सन्तुष्ट रहना अर्थात् जोजन आदि की इच्छा नहीं रहना, निद्रा होना, अरुचि होना, तथा शरीर का गुरु रहना (इन उपद्रवों से पीड़ित रहना) यह सब होता है तथा चिकना, गाढ़ा, मधुर रस युक्त, कफ के समान ही अत वर्ण का, रोमाघ करता हुआ और अल्पपीड़ा करने वाला वमन होता है ॥ १ ॥

त्रिदोषजामाह—शूलाचिपाकारुचिद्वाहतुष्णाश्वासप्रमोहप्रवलं प्रसक्तम् ।

छाँदिक्षिदोषासुखणाम्लनीसान्द्रेष्वरक्तं वमतां नृणां स्थान ॥ ३ ॥

त्रिदोषज वमन के लक्षण—त्रिदोष के कुपित होने से जो वमन होता है उसमें शूल होता है, जोजन का पाक नहीं होता है, अरुचि होती है, दाह, तृष्णा, श्वास और प्रबल मोह (मूल्धृष्ण) से वह मनुष्य पीड़ित रहता है और लबण रस युक्त तथा अम्लरस युक्त, नीलवर्ण का गाढ़ा, उष्ण और रक्तवर्ण का वमन होता है ॥ १ ॥

अथासाध्यामाह—

विट्स्वेदमूत्राश्वुष्मानि वायुः शोतासि संहृष्य यदोर्ध्वमेति ।

डरसप्त्रोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्धृय नरस्य कोष्ठाद् ॥ ३ ॥

विष्मुख्योस्तत्समग्रमध्यवर्णं तृष्णासाकासातियुतं ग्रसकम् ।

ग्रज्जर्देवदृष्टमिहातिवेगात्ययाऽदित्यमाऽष्टु विनाशमेति ॥ २ ॥

असाध्य वमन के लक्षण—जिस वमन में मल-रवेद-मूत्र तथा जल अर्थात् रस को वहन करने वाली नाड़ियों को बायु अवरुद्ध कर अधर्वाति को प्राप्त होता है अर्थात् मुख की ओर जाता है और इसमें उत्पन्न हुए जो दोष हैं वे कोष के सचित दोषों को उद्दिष्ट कर कोष से बाहर (कपर) करते हैं इससे जो वमन होता है वह मल-मूत्र के समान गन्ध और वर्ण बाला होता है, तथा तृष्णा, श्वास और कास से रोगी पीड़ित होता है, और अस्थन्त वेग से दूषित पदार्थ मुख से निकलते हैं। इस प्रकार के वमन से पीड़ित मनुष्य का शीघ्र विनाश होता है अर्थात् ये लक्षण असाध्य वमन के हैं ॥ १-२ ॥

अथाऽसान्तुजमाह—

बीभ्रमजा दौर्हृदज्ञाऽसमजा वा द्वासाध्यज्ञा वा कृमिजा च या स्थान ।

सा पञ्चमी तां च विभावयेच्च दोषोच्छृद्येणैव यथोक्तमादौ ॥ ३ ॥

आगन्तुज वमन के लक्षण—घृणित पदार्थों के कारण से, खियों को गर्भावस्था के कारण से, आम में (अजीर्णसे), प्रकृति के विरुद्ध आहार-विहार से और उदर में कृमि होने से जो वमन होते हैं उन्हें पाचवाँ (आगन्तुज) वमन कहते हैं। इन वमनों में पहले कहे दुष्पुख वमनादिक दोषों के लक्षणों के अनुकूल दोष का विचार कर लेना चाहिये ॥ १ ॥

कृमिजाया विशेषलक्षणम्—

शूलहृष्णसघन्तुला कृमिजा च विशेषतः । कृमिजद्वोगतुक्त्वेन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १ ॥

कृमिज वमन के विशेष लक्षण—कृमि के कारण जो वमन होते हैं उसमें विशेष कर शूल, हृष्णस ये अधिक होते हैं और कृमिजनिर्त हृद्रोग के लक्षणों के समान इसमें लक्षण होते हैं अर्थात् हृष्णस, तोद, प्रसेक, शूल, स्नाव, अरुचि, नेत्रविकृति, मुखशोष आदि लक्षण जो कृमिज हृद्रोग के होते हैं वे सभी कृमिज वमन में होते हैं ॥ १ ॥

साध्यासाध्यां चाह—

क्षीणस्थ या छाँदित्विन्प्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपृथग्युक्ता ।

सचन्द्रकां तां प्रवदेवसाध्यां साध्यां चिकित्सेचिरुपद्रवां च ॥ १ ॥

साध्यासाध्य विचार—जो वमन क्षीण पुरुष को हो, और अधिक वमन हो, उपद्रव से युक्त हो, वमन के साथ रक्त-पूय आदि आता हो, और वमन में मोर के पंख के वर्ण के चमकदार पदार्थ आवृत उसको 'असाध्य' कहते हैं। जिस वमन में उपद्रव नहीं हो वह साध्य है, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

तस्या उपद्रवानाह—

कासः श्वासो उवरो हिष्ठा तृष्णा वैचित्र्यमेव च । हृद्रोगस्तमकश्चेव ज्ञेयाश्वृद्धरपद्रवीः ॥ १ ॥

वमनरोग के उपद्रव—वमन में कास, श्वास, उवर, हिष्ठा, तृष्णा, विचित्र्यम, हृद्रोग और तमक श्वास इनका होना उपद्रव है अर्थात् ये वमन के उपद्रव कहे जाते हैं ॥ १ ॥

अथ छाँदिचिकित्सां ड्यारुख्यास्यामः

* आमाशयोत्कृशभवा हि सर्वाः स्युश्वृद्धयो लङ्घनमेव तस्मात् ।

प्राकारयेन्मात्रजां विना तु संशोषनं वा कर्फपित्तादि ॥ १ ॥

छाँदि (वमन) रोग की चिकित्सा—आमाशय के अधिक उत्कृशित (आमाशय के अधिक भार से पीड़ित) होने से ही प्रायः सभी प्रकार के वमन होते हैं। इस कारण वातज वमन को छोड़कर सभी प्रकार के वमन में लङ्घन कराना चाहिये अथवा कफ-पित्त को हरण करने वाले संशोधन कराने चाहिये ॥ १ ॥

योगरत्नाकरः

अथ वातच्छ्रद्धिः योगतरङ्गिण्याः

धान्याकादियोगः—

धान्याकविष्वदशमूलकशायसिदान्युचान्वसान्पवनवृष्टिप्रशास्त्रये ।

पीत्वा सुखानि उभते मधुमिश्रितं वा शुद्धाहृष्टास्वरसमूषणचूर्णयुक्तम् ॥ १ ॥

वातज छार्दि की चिकित्सा—धान्याकादि योग—धनियाँ, सौंठि और दशमूल के विधिवत् काथ में सिद्ध किये हुए यूथ और रस वातज वग्न और असचि को शान्त करते हैं । अथवा—शहू-उष्णी के स्वरस में मरिच का चूर्ण और मधु मिलाकर पान करने से वातज वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

लवणादियोगः—

लवणादि योग—संयुक्त संयुक्त लवण वातज वमनसम्बन्धाम् ॥ १ ॥

लवणादि योग—तीनों प्रकार के लवण (सेवा नमक, काला नमक, विडनमक) अथवा केवल सेव्यानमक मिला कर दुग्धोदक (दूध और पानी समान मिश्रित) के पान करने से वातजनित वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

सैन्धवादियोगः—सैन्धवं पिवेत्सर्पिर्वातच्छ्रद्धिनिवारणम् ।

सैन्धवादि योग—सेव्या नमक मिलाकर धृत पान करने से वातजनित वमन नष्ट होता है ॥

पित्तच्छ्रद्धिः—चन्दनपानकम्—

चन्दननेत्राचमाश्रेण संयोगाऽमलकीरसम् । पिवेत्समादिकसंयुक्तं पित्तच्छ्रद्धिनिवृत्तये ॥ १ ॥

चन्दन पानक—चन्दन को जल के साथ घिस कर एक कर्व लेकर उसमें आँवके का रस और मधु मिला कर पीने से पित्तज वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

लाजादियूषः—सारसंग्रहात्—

लाजामसूख्यवसुद्रकृता यवागूश्छर्च्छां हितं मधुयुता बहुवित्तजायाम् ।

यूषः सुगन्धिमधुतिकरसप्रयुक्तो मृद्भृत्युलोषभवमञ्जु हितं तृष्णायाम् ॥ १ ॥

लाजादि यूष—धान की खील, मसूर, चव और मूंग इन अन्तों की विधिवत् बनाई हुई यवागू में मधु मिलाकर सेवन करने से बहुत पित्त के बढ़ने के कारण से उत्पन्न हुई छार्दि में भी दितकर होता है । तथा इस वमन की अवस्था में उत्पन्न तुणा में सुगन्धित द्रव्य (इलायची आदि), मधु और तिक्त रस मिश्रित विधिवत् बना यूष और मिट्टी के ढेले को अग्नि में तपाकर उससे दुक्षाया हुआ जल, इनका सेवन भी हितकर है ॥ १ ॥

चन्दनावलेहः—शार्ङ्गेयरात्—

चन्दनं च मृणालं च बालकं नागरं वृषभम् । सतपुलोदकचौद्धिः पीतः कहको वमीर्जयेद् ॥ १ ॥

चन्दनावलेह—थेतचन्दन, कमलनाल, सुगन्धवाला, सौंठि, अरुसा, इन ओषधियों का विधिवत् कल्प बनाकर तण्डुलोदक तथा मधु के अनुपान से सेवन करने से पित्तज वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथोदीन्यादिः—चिकित्सासारात्—

सोदीन्यं गैरिकं देयं सेव्यं वा तप्तुलाञ्जुना । धान्यारेसेन वा पीता सिता लाजाक्ष हन्ति ताम् ॥

उदीन्यादि—सुगन्धवाला और गेह दोनों को समान लेकर चूर्ण कर केवल जल के अनुपान से अथवा खस के चूर्ण को तण्डुलोदक के साथ अथवा लावा (धान की खील) को शक्करा और आँवले के रस के साथ पान करने से पित्तज वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

मुद्रकवायः—

कवायो भृष्मुद्राणां सलाजमधुशक्करः । छुर्यतीसारदाहनो उवरक्तः संप्रकाशितः ॥ १ ॥

छर्दिचिकित्सा

मुद्र कवाय—मुजे हुए मूंग के विधिवत् काथ में धान की खील, मधु और शक्करा मिलाकर सेवन करने से वमन, अतीसार, दाइ और जवर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ योगतरङ्गिण्यां पर्यटकाथः—

काथः पर्यटजः पीनः मधौद्धिः शिशिरीङ्गनः । पित्तच्छ्रद्धिं शिरस्तापं चकुर्दीहं स्योहसि ॥ १ ॥

पर्यटक काथ (योगतरङ्गिणी से)—पित्तपायडा का विधिपूर्वक बना हुआ काथ शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तज वमन, सिर का ताप, नेव्रदाह, ये सब नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ मक्षिकाविडवलेहः—सिनाचन्दनमधुशक्करः विलहेन्मधिकाशकृत् ।

सोपद्रवा पित्तमधा छुर्दिरेतेन जाग्यति ॥ १ ॥

मक्षिकाविडवलेह—शक्करा, चन्दन और मधु मिलाकर मक्षिकायों के बीट को चटाने से उपद्रव से युक्त पित्तज वमन नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ लाजसक्तवलेहिका—मरिचःकौद्रिमितोपेतांश्चाजसक्तैङ्गिहेत्तनः ।

पित्तच्छ्रद्धिरनेनात्तद्यु प्रशास्यति सुदुस्तरा ॥ १ ॥

लाजसक्तवलेहिका—घृत, मधु और शक्करा मिलाकर धान की खीलों के सतुआ को चाटने से यजक्कर पित्तज वमन शीघ्र शान्त होता है ॥ १ ॥

अथ युहूच्यादिकाथः—योगसारात्—युहूचीत्रिफलारिष्टप्रयोगेणः कथितं जलम् ।

त्रिद्रव्यक्तिरिष्टप्रयोगेणः छुर्दिं पित्तसमुद्धाम् ॥ १ ॥

युहूच्यादि काथ—युरुचि, आँवरा, हर्दा, बहेरा, नीम की छाल, पटोलपत्र इन ओषधियों से सिद्ध काथ में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तज वमन शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ काफच्छ्रद्धिः—छुर्चां कफोद्धवायां तु वमनं कारयेत्तिक्षकः ।

तोयैः सर्वप्रिमित्युत्थाठिनिग्रहयुतैः ॥ १ ॥

कफज वमन की चिकित्सा—कफज छार्दि में वैध प्रथम वमन ही करावे । इसके लिये सर्सों, सेव्यानमक, मैनफल, नीम की छाल और पीपरि के विधिपूर्वक काथ के द्वारा वमन कराना उपचार है ॥ १ ॥

प्रास्यन्ते शालिगोध्मयवसुद्रामकुष्ककाः । विष्टिकास्त्रव यूषाम्ब पटोलपत्राश्च भोजने ॥ २ ॥

और शालिधान्य का चावल, गेह, यव, मूंग, सोंठ, साठी का चावल और पटोलादिक का यूष भोजन में हितकर है ॥ २ ॥

अथ विडङ्गादिन्चूर्णम् योगतरङ्गिण्याः—

विडङ्गादिन्चूर्ण—बाभीरंग, आँवरा, हर्दा, बहेरा, सौंठि, पीपरि, मरिच इन ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु मिलाकर चाटने से मनुष्यों का उपद्रव से युक्त कफज वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ रक्तशाल्यादियोगः—चिकित्सासारात् ।

अथ रक्तशाल्यादिन्चूर्ण गोद्धिशक्करविमिश्रं च । कुर्यान्नोजनमेतद्धुलेष्वच्छ्रद्धिरिष्टं जन्तोः ॥

रक्तशाल्यादि योग—लाल शालिधान्य के चावलों का भात, गाय की दही और शक्करा के साथ भोजन करने से मनुष्यों का कफज वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ जाम्बवादियोगो योगसारात्—

सजाम्बवं बाद्रचूर्णमग्ने मुस्तायुतः कर्कटः सशङ्खः ।

कुरालभां वा मधुना च युक्तां लिहात्कफच्छ्रद्धिविनिग्रहार्थम् ॥ १ ॥

जाम्बवादि योग (योगसारोमें)—जामुन और खट्टी वैर का चूर्ण अथवा नागरमोथा और काकडासिंगी का चूर्ण अथवा जवासे का चूर्ण मधु के साथ लेह बनाकर कफज बमन की निवृत्ति के लिये सेवन करे ॥ १ ॥

अथ त्रिदोषच्छर्दिः

धात्रीकलादिपानकम्—पिंडा शाश्रीकलं द्राश्चांशं शर्करां च पलोनिमताम् ।
दृश्वं मधुपूरुणं चैव कुडवं सलिलस्थ च । वासासा गालितं पीतं हन्ति चक्रदिं शिष्ठोषज्ञाम् ॥ ३ ॥

त्रिदोषज बमन की चिकित्सा—धात्रीकलादि पानक—आंवला, द्राश्चा, शर्करा एक २ पल लेकर इनको पीस कर उसमें मधु एक पल और जल ४ पल मिलाकर घोल कर कपड़े से छान कर विधिपूर्वक पानक बनाकर बनाकर लेकर इनको सेवन करे ॥ १ ॥

मसूरसक्तुः—

मसूरसक्तुः छोद्रमविता द्वाडिमारभम् । पीतः निवारयन्त्याशु चक्रदिं दोषब्रयोऽन्वाम् ॥ १ ॥
मसूरसक्तु का योग—मसूर का सतू, मधु और अनार का रस सब एक में मिलाकर घोल कर पान करने से शीघ्र त्रिदोषज बमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथेलादिच्छूर्णम्—योगरत्नावलितः—

पुलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जालाजप्रियहृष्णन्वन्दनपिध्यलीनाम् ।
चूर्णं खितामधुयुतं भनुजो विलिष्ठाचक्रदिं निहन्ति कफमाहृतपित्तजाताम् ॥ ३ ॥
एलादि चूर्ण—इलायची, लवंग, नागकेसर, वैर की मीरी, धान की खील, फूल प्रियंगु, नागरमोथा, चन्दन, पीपरि, इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर इसमें शर्करा और मधु मिलाकर लेह की भाँति बना सेवन करने से कफ, वात और पित्त से उत्पन्न (त्रिदोषज) बमन नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शार्करादिव्यवादिः—

विवरत्वतो गुह्यता वा काथः द्वौद्रेण संयुतः । जयेष्ठिदोषजां चक्रदिं पर्यंतः पित्तजां तथा ॥ १ ॥
विवरादि योग—बेल की छाल का काथ अथवा गुह्यती का काथ शीतल कर मधु का प्रक्षेप दे सेवन करने से त्रिदोषज बमन नष्ट होता है और पित्तपापड़े के काथ में शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से पित्तज बमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

सामान्यच्छर्दिः: कोलाष्वरलेहः—

कोलामलकमम्बानौ मधिकविट् सिता मधु । सङ्कृष्णातण्डुलो लेहचक्रदिमाशु व्यपोहति ॥ १ ॥
सामान्य बमन की चिकित्सा—कोलादि अबलेह—वैर तथा आंवला की गुही, मक्खी की चिढ़ा, शर्करा, मधु, पीपरि और चावल इनको समान लेकर कूट-पीस कर विधिपूर्वक अबलेह बनाकर सेवन करने से सामान्यतः बमन को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

मनःशिलादियोगो योगशतात्—

मनःशिलाभागचिकोषणानां चूर्णं कपित्याभ्यर्थसेन युक्तम् ।
लाजैः समाशैमधुनाडवलीं चक्रदिं ग्रसकामसकृचिहन्ति ॥ १ ॥
मनःशिलादि योग—शुद्ध मैनसिल, पीपरि, मरिच इनको समान लेकर चूर्ण कर इसमें कैथ का गूदा तथा किसी प्रकार का अम्लरस मिलाकर इसके समान धान की खीलों का चूर्ण मिलाकर और मधु के साथ लेह बना कर सेवन करे तो शीघ्र ३ होने वाला बमन इससे शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

योगसारादश्त्वलक्लादिः—

अथश्वलकं शुद्धं वर्णं निर्वापितं जाके । तज्जकं पामगामेण चक्रदिं जयति तुर्जयाम् ॥ १ ॥

अथश्व-वल्कलादि—पीपल के वृक्ष की छाल को सुखा कर अरिन में जल कर जल में बुद्धा कर उस जल को छान कर पान करने से कठिन बमन भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

योगतरक्षिण्यां लाजादियोगव्रयम्—

लाजाकपित्यमधुमागचिकोषणानो द्वौद्राभयाचिकटुष्वान्यकजीरकाणाम् ।

पथ्यामृतामरिचमधिकपिध्यलीनां लेहाद्ययः सकलवन्ध्यरुचिग्राम्यम् ॥ १ ॥

लाजादि तीन योग—१ धान की खील, कैथ का गूदा, मधु, पीपरि और मरिच अथवा २—मधु, हरी, सोंठि, पीपरि, मरिच, धनियाँ और जीरा अथवा ३—हरी, गुरुचि, मरिच, मधु, और पीपरि इनको समान लेकर कूट-पीस कर विधिपूर्वक अबलेह बनावे । ये तीनों प्रकार के अबलेह सब प्रकार के बमन और असूचि को शान्त करते हैं ॥ १ ॥

योगतरक्षिण्याम् आग्रास्थादिकायः—

आग्रास्थिविष्वनियुहः पीतः समधुशार्करः । निहन्ति चक्रदितीसारं वस्त्रानर द्वाऽऽहृतिम् ॥ १ ॥

आग्रास्थादि काथ—आमकी गुठी और बेल के फल का गूदा (कच्चे बेल का) इन का विधिपूर्वक काथ बना कर इसमें मधु और शर्करा का प्रक्षेप देकर सेवन करने से बमन और अतीसार को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार आहुति को (इवन किये हुय पदार्थों को) अंग नष्ट (भर्म) कर डालता है ॥ १ ॥

योगतरक्षिण्यां जन्मवृपलवादिः—

जग्नवाप्रपञ्चशृतं द्वौद्रं दरक्षा द्वुषीतलं तोथम् । लाजैवत्वचूर्णं पिवेष्ठकृद्यतिसारे परं सिद्धम् ॥

जन्मवृपलवादि योग—जामुन और आम के पलबों का (एकत्र वा पृथक् २) क्वाय विधिपूर्वक बनाकर शीतल कर मधु तथा धान की खीलों का प्रक्षेप देकर पान करने से बमन तथा अतीसार के लिये यह अत्यन्त सिद्ध औषध है ॥ १ ॥

योगतः पदाकायं धृतम्—

पद्मामृतनिश्चिवानां धान्यच्छन्दनयोः पचेत् । कषके क्षाये च हविः प्रस्थं छर्दिनिवारकम् ॥

योग से पदाकाय धृत—मूर्च्छित गोवृत एक प्रस्थ, पदुमकाठ, गुरुचि, नीम की छाल, धनियाँ और चन्दन इनका विवित समान मिलित कल्प १ एक पाव और इनका काथ प्रस्तुत ५४ चार सेर लेकर एकत्र धृतपाक की विधि से पाक करे, सिद्ध होने पर इस धृत का सेवन करने से बमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

मथूरपक्षमस्त्वावलेही योगतरक्षिण्याः—

मयूरपचं चिर्द्वा तद्वस्म मधुमिश्रितम् । लीढ़वा निवारयत्याशु चक्रदिं सोपदवामयि ॥ १ ॥

मयूरपक्षमस्त्वावलेह—मीर के पांव की जलाकर (भर्म कर) उसमें मधु मिला कर लेह बना कर सेवन करने से उपद्रव से युक्त बमन भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

सारसंग्रहाद्वैष्णवाचम्—

पुराणगोणिभस्माम्भा मधुयुक्तं निपीय तु । चक्रदिं छिनत्ति मनुजस्तुर्णानीष्व हृताश्वः ॥ १ ॥

गोण्यादि योग—पुरानी गोणी (बोरी या चट्टी) को जलाकर भस्मकर जल में घोल कर मधु मिला कर पान करने से मनुष्यों का बमनरोग इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार अग्नि से रुण नष्ट होता है ॥ १ ॥

चिकित्सासाराजातीपत्रादिः—जातीपत्ररसं फृष्णा मरिचं शाकं राम्बितम् ।

पतानि मधुयुक्तानि निहन्ति चक्रदिं विरोद्धवामय ॥ १ ॥

जातीपत्रादि योग—चमोली के पत्तों का स्वरस, पीपरि, मरिच, शर्करा और मधु इनको समान लेकर व्याविधि कूट-पीसकर लेह बना कर सेवन करने से पुराना बमन भी नष्ट होता है ॥

कोलमज्जादिश्चिकित्सासारात्—

कोलमज्जादि योग—बैर की गुठली का गूदा, पीपरि, मोर के पाँख की भस्म, शंकरा और मधु इन सब को समान लेकर यथाविधि कूट-पीसकर लेह बनाकर सेवन करने से वमन और हिंका का प्रकोप शान्त होता है ॥ १ ॥

शार्कराद्वयपूरादिः—बीजपूराद्वयवृलां पशुलबानि जटा: पृथक ।
विषचेतुपाकेन हौद्रयुक्त तद्रासः । छुर्दिं निवारयेद्वोरा सर्वदोषसमुच्छवाम् ॥ १ ॥

बीजपूरादिः योग—बिजौरा नीबू के पत्ते, आम के पत्ते और जामुन के पत्ते अथवा इन तीनों के मूल लेकर पुष्टाक की विधि से पाक कर रस निकाल कर शीतल कर उसमें मधु का प्रशेष देकर सेवन करने से भयंकर त्रिदोष से उत्पन्न वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

चिकित्सासाराजम्बवाप्रपलवादिः—

जग्नवाग्रपश्चलबोशीरवटहुक्षावरोहजः ।

फाथः हौद्रयुतः पीतः शीतो वा विनियच्छ्रुतिः ।

छुर्दिं उवरमतीसारां मूर्च्छां तुणां च हुर्जयाम् ॥ १ ॥

जम्बवाग्रपछवादिः योग—जामुन के पत्ते, आम के पत्ते (कोपल), खस, वट (वर) की कोपल और वट की जटा, इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर शीतल होने पर मधु का प्रशेष देकर सेवन करने (पीने) से वमन, ज्वर, अतीसार, मूर्छा तथा कठिन तुणा नष्ट होती है ॥ १ ॥

पटोलाद्यं धृतम्—

पटोलशुण्ठ्योः कलकाभ्यां केवलं कुलकेन वा । धृतप्रस्थं विषपक्षयं कफपित्तवमीहरेत् ॥ १ ॥

पटोलादि धृत—पटोलपत्र और सौंठ दोनों को समान लेकर विधिवत् कलक कर अथवा केवल पटोलपत्र का कलक बनाकर एक पाव लेकर गोधृत मूर्च्छित ५१ एक प्रस्थ के साथ (पाकार्थ जल ५४ (चार प्रस्थ) भी देकर) धृतपाक की विधि से पाक कर सेवन करने से कफज और पित्तज वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिंगवादिः—

हिंगवानामूलं सर्ववान्तिहरं परम् । इभाकन्द्रसो वाऽपि मधुना छुर्दिनाशकृत् ॥ १ ॥

हिंगवादिः योग—हींग शुद्ध और सारिवा की मूल का चूर्ण सेवन करने से सब प्रकार का वमन नष्ट करने वाला होता है । केले की जड़ का रस मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के वमन का नाश होता है ॥ १ ॥

दध्युत्थरसादिः सुश्रुतात्—

दध्युत्थरससंयुक्तं पिष्पलीमाचिकान्वितम् । सुहुर्सुहुर्नरो लिह्वाच्छुर्दिभ्यः प्रतिसुच्यते ॥ १ ॥

दध्युत्थरसादिः—दहों के पानी में पीपरि का चूर्ण और मधु मिलाकर बार २ चाटने से वमन से छुटकारा मिलता है ॥ १ ॥

करञ्जादिः सारसंग्रहात्—

कोमलकरञ्जपत्रं सलवणमग्लेन संयुक्तम् । यः स्वादनि दीनवदनश्छुर्दिकौ तस्य कुत्रेह ॥ १ ॥

करञ्जादिः—करञ्ज के नीनी (कोमल) पत्ते, सेन्धनमक और खटाई के साथ जी खाता है उस दीनमुख (दुर्वल) रोगी को वमन और कफ कहाँ रह जाते हैं ? अर्थात् इसके सेवन से वमन और कफ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

करञ्जबीजादिः—

ईषद्वाष्टं करञ्जस्य बीजं स्वप्नीकृतं पुनः । सुहुर्सुहुर्नरो सुक्रवा छुर्दिं जयति तुस्तराम् ॥ १ ॥

करञ्जबीजादिः—करञ्ज के बीज को थोड़ा भून कर खण्ड २ करके बार बार स्वाने से भयंकर वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

शङ्खपुष्पीरसादिः—लघुयोगतः—

शङ्खपुष्पीरसं टक्कह्यं समरिचं सुहुः । सचौदं मनुजः पीत्वा छुर्दिभ्यः किल मुच्यते ॥ १ ॥

शङ्खपुष्पीरसादिः—शङ्खपुष्पी का रस दो टक्क (२ माघा) लेकर इसमें मरिच का चूर्ण और मधु मिलाकर बार २ पीने से मनुष्य वमन से निश्चय हीं मुक्त होता है ॥ १ ॥

हरीतकयवल्लेहः—

प्रीतकीनो चूर्णं तु लिह्वाम्भाचिकसंयुतम् । अधोभागे कृते दोषे छुर्दिस्तेनैव शास्यति ॥ १ ॥

हरीतकयवल्लेह—हरी के चूर्ण में मधु मिलाकर लेह बना कर सेवन करके से कोष से कष्ठवंश दोष मुख की ओर से नीचे होते हैं इस कारण वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

योगसाराज्ञारिकाद्यो धृपः—

तीराम्बिलं पृष्ठवस्थं वर्णं कृत्वाऽथ धूपयेत् । आद्वाणाच्छिक्यं याति सर्वा छुर्दिश्चिरोऽन्वा ॥ १ ॥

जीरकादिः धृप—जीरा को रेशम के वज्र में लेपेट कर (जीरा पीस कर वज्र पर गाढ़ा २ लेप कर उसे लेपेट कर) बत्ती बना कर अथवा जीरे को रेशमी कपड़े में भर कर बत्ती बनाकर आग में जलाकर उसके धृप को सूंघने से पुरानी एवं सब प्रकार की (त्रिदोषज भी) छुर्दि (वमन) नष्ट होती है ॥ १ ॥

बीमसादिपञ्चमिष्ठु—

बीमामज्जामधीभरसैहेतुभिः संहरेद्वस्थां वर्मिं हृष्यः काङ्क्षितैर्वस्तुभिर्जयेत् ॥ १ ॥

बीमसादिः पञ्च वर्मियों में—घृणित पदार्थों के दर्शन-पानादि के कारण से उत्पन्न हुए वमन को उसके नाशक (हवद्य को प्रसक्त करने वाले) उपायों से हरण करना चाहिये । गर्भवती के गर्भ के कारण से उत्पन्न वमन का हृदय एवं अमीष की प्राप्ति अर्थात् इच्छित वस्तु को देकर प्रसक्त कर हरण करना चाहिये । अर्थात् प्रसन्नता होने से गर्भवस्था के वमन नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

कृमिहनैर्वैर्मनैर्वाऽपि सात्क्षयैर्वैर्डसास्यसंभवाम् । कृमिहद्वयवच्छापि सात्क्षयैर्कृमिजां वर्मिम् ॥ १ ॥

प्रकृति-विश्वद वस्तुओं के सेवन से उत्पन्न वमन को लहून करा कर अथवा वमन करा कर अथवा हितकर पदार्थों का सेवन करा कर शान्त करे । और कृमिज वमन को कृमिज हृदोग की भाँति चिकित्सा और शमन करे ॥ २ ॥

यथाद्वौचं विलरेच्छुर्तं विशिमनस्तरम् । पवनधनी चिरोथासु प्रयोजया छुर्दिषु क्रिया ॥ ३ ॥

दोष के (वमन के) पश्चात् अर्थात् शान्त होने पर इस प्रकार की प्रशस्त विधि (उत्तम शुक्रि) व्यवहृत करे जिससे पुनः वमन न होने पावे । और पुराने वमन रोग में वातनाशक किया करना चाहिये अर्थात् वातनाशक किया से पुराने वमन नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

अथ रसाः

पारदादिच्वर्णं रसरब्लप्रदीपात्—

रसबलिघ्नमारकोलमज्जामरकुसुसाम्बुधरप्रियकृष्णाजाः ।

मलयजमग्नावगेलपत्रं दलितमिदं परिभाष्य चन्दनाजिः ।

मधुमरिचयुतं रजोऽस्य मार्घं जयति वर्मि प्रबलां विलिङ्गं भयः ॥ १ ॥

पारदादिः चूर्ण—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक (आँवलासार), कर्पूर, वैर की मीठी, लंबा, नागरमोथा, फूल प्रियहु, धान की खोले, धेत चन्दन, पीपरि, दालचीनी, इलायची और तेजपाता इनमें ही प्रत्येक आवधियों को एक २ माघ (समान) लेकर चूर्ण कर प्रथम पारद-गन्धक की

विधिवत् कजली कर उसमें सबको मिलाकर मर्दन कर चन्दन को विस कर घोल कर उस जल से भावित कर रख लेवे। इस चूर्ण को एक माषा के प्रमाण की मात्रा से लेकर मरिच के चूर्ण और मधु के अनुपान के साथ सेवन करने से मनुष्यों के प्रबल वमन भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

योगरत्नाकरावस्थाः जीरकादिरसः—

अजाजीवान्यपथ्याभिः सर्वदौऽसः सकटुष्टिकैः । एतेः सार्धं सूतभस्म सद्यो वान्ति विनाशयेत् ॥
जीरकादि रस— जीरा, धनिया, हरा, सॉठि, मरिच, पीपर इनको समान लेकर विधिवत् चूर्ण कर इनके साथ पारदभस्म वा रससिन्दूर और मधु मिलाकर सेवन करने से शीघ्र वमन नष्ट होता है ॥ २ ॥

योगसाराद्वयनामृतयोगः—

गन्धकः कमलाचक्ष यष्टीमधु शिलाजतु । रुद्राच्छट्टुणश्चैव सारक्षस्य च शृङ्ककम् ॥ ३ ॥
चन्दनं च तवचोरी गोरोचनमिदं समम् । विच्वमूलकाचायेण मर्दयेषाममाश्रकम् ॥ २ ॥

मात्रा चैव प्रकुर्वति चक्षस्यैव प्रमाणतः ।

नामाविवानुपानेन छक्षिदि हन्ति त्रिदोषजाम् । वमनामृतयोगोऽयं कमलाकरभावितः ॥ ३ ॥

वमनामृत योग—शुद्ध गन्धक, कमल का बीज (कमलगट्टा), जेठीमधु, शिलाजीत शुद्ध, रुद्राच्छट्टुण के फल, शुद्ध टक्कण, सृग-शृगभस्म, चन्दन, तवचोरी और गोरोचन इन प्रत्येक ओषधियों को समान लेकर बेल को जड़ के काढ़े के साथ एक पहर तक मर्दन कर रख लेवे। इसको दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से अनेक प्रकार के अनुपानों के साथ सेवन करने से तीनों दोष बाले (पृथक् २ और सन्त्रिपातज) वमन नष्ट होते हैं। यह वमनामृत योग 'कमलाकर' का कहा है ॥ २-३ ॥

वान्तिहन्दसः—

अयः शङ्खो बलिः सूतः स्वस्वे तुष्यं विमर्दयेत् । कन्याकनकचाक्षेत्रसैर्गोळं विधाय च ॥ १ ॥

सप्तमृत्युर्दैलिप्त्या पुष्टितो वान्तिहन्दसः । द्विवङ्गः कृमिरोगेऽपि साजमोदः संवेष्टकः ॥ २ ॥

वान्तिहारेण सुनिना ग्रोकोऽयं मधुना युतः । पिप्पलद्वारापानीर्यं पाथयेद्वान्तिहन्दिपकः ॥ ३ ॥

वान्तिहन्दस— लौहभस्म, शङ्खभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्धपारद, इनको सम भाग (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर फिर शेष अन्य रसों को मिलाकर मर्दनकर पृथकुमारी, घटरा और चाँड़ी (अस्लोनी) के रस में पृथक् २ मर्दन करे और गोला बना कर सम्पुट में रख कर उस पर सात वार कपरमिट्टी कर लुका कर पुष्टापक की विधि से पाक कर निकाल-मर्दन कर लेवे तो यह 'वान्तिहन्दस' होता है। इसको दो रस्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से वमन नष्ट होता है और अजवाइन तथा विंडक के चूर्ण के साथ इसे सेवन करे तो कृमिरोग भी नष्ट होता है। इसको 'वान्तिहार' सुनि ने कहा था। इस रस को मधु अथवा पीपल वृक्ष के क्षार के जल के अनुपान से सेवन करने से वमन नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

छक्षितकरसः—

रुद्रभस्म पलोशं स्यात्तपादः स्वर्णभस्म च । ताञ्चभुजङ्गवङ्गे च मौकिकं तत्समाशकम् ॥ १ ॥

तेषां सममयस्वर्णमञ्चकं तत्समं भवेत् । तत्समं गन्धकं दद्वा श्रीजपूराद्वाक्षुना ॥ २ ॥

सर्वं स्वस्वे विनिहित्यं मर्दयेश्चिनावधिः । तत्कषकं भावयेत्सप्त दिनान्यामलकद्वयः ॥ ३ ॥

पश्चात्तन्मूलमूष्यार्थं रुद्रध्वा आण्डे विनिहितेत् । पांसुभिः परिपूर्याथ क्रमवृद्धेन वह्निः ॥ ४ ॥

पचेष्यामयं तुष्यां स्वाङ्गशीतिलमुद्धरेत् । ततः सर्वं समाकृत्य चूर्णयेत्पट्टगाक्षितम् ॥ ५ ॥

अजाजी वीप्त्यकं व्योषं छिफला कृष्णजीरकम् । कृमिशुर्वरगङ्गं च प्रत्येक निष्कमानकम् ॥ ६ ॥

ततः सर्वं चूर्णयित्वा योजयेत्पूर्वभरमना । इस्थं पञ्चरसेऽनेन प्रोक्तश्छृण्यन्तको रसः ॥ ७ ॥

ततः शोगरहरेद्वयैद्याद्युष्मप्रमाणतः । अम्लपित्तमस्तुक्पित्तं छुर्विं गुरुममरोचकम् ॥ ८ ॥

आमवातं च दुःसाध्यं प्रसेकक्षुर्विहन्दुवाय ।

सर्वेलुष्णसप्तपूर्णं विनिहितं लुष्णामयम् । स्वस्थेचित्तो हितकरः सर्वेचमस्तुतोपमः ॥ ९ ॥

छक्षितकरस— पारदभस्म वा रससिन्दूर एक पल, स्वर्णभस्म चतुर्थीशपल (१ कर्ष), ताङ्गभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, मुक्ताभस्म, ये प्रत्येक स्वर्ण के समान भाग (१-१ कर्ष), इन सब के समान अर्थात् सब मिलकर जितने हों उसके बराबर लौहभस्म और लौह के समान अभ्रकभस्म, और अभ्रक के समान शुद्ध गन्धक, इन सब को एकत्र मर्दन कर खल में रख कर बिजौरा नीबू के रस के साथ तीन दिन तक मर्दन करे फिर इसे आँवले के स्वरस के साथ सात दिन तक भावित करे और घोटे, पश्चात् भूषा में (शराव-सम्पुट में) बन्द कर एक हाँड़ी में रख कर बाल से उसे भरे (सम्पुट रखने के पहले हाँड़ी में कुछ बाल रख कर तब सम्पुट रखे फिर चारों तरफ उसमें बाल भरे) और चूल्हे पर रख कर कम से मन्द, मध्य और तीव्र अस्थि का आँच देकर (बालुका यन्त्र की विधि से) तीन पहर तक पोक कर अस्थि हटा लेवे और स्वांग-शीत इने पर उतार कर इसमें के रस को निकाल कर चूर्ण कर कपड़े में छान कर रख लेवे। पश्चात् जीरा, जवाइन, सॉठि, पीपर, मरिच, अंवरा, हरा, वहरा, कृष्णजीरा, बामीरंग और दालचीनी इन ओषधियों में से प्रत्येक को एक निष्क (४-४ माषा) लेवे और विधिवृत्क शलशं चूर्ण कर उपर्युक्त भस्म में मिलाकर मर्दन कर रख लेवे। इस प्रकार से यह 'छक्षितकरस' होता है। इसको रोगानुसार विधिव अनुपानों के साथ वल प्रमाण (दो रस्ती की मात्रा) की मात्रा से सेवन करने से अम्लपित्त, रक्तपित्त, वमन, गुल्म, अरुचि, मयक्कर आमवात, मुखसाव (शुक्तुकी), वमन, हृद्रोग और सब लक्षणों से युक्त श्वस्योग नष्ट होता है तथा यह स्वास्थ्यवर्धक, हितकर और सब के लिये अमृत के समान है अर्थात् इसके सेवन से सभी लाभ उठाते हैं ॥ १-९ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

कलायपथगोधूमसुदगष्टिकशालयः । शाशतित्तिरसावाया भुग्नजाङ्गलसंज्ञिताः ॥ १ ॥

शाशस्त्राण्डक्षेप्राग्कोलङ्गाङ्गाक्लानि च । वमिरोगेषु पथ्यानि मुनिभिः कथितानि तु ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—केराव, यव, गेहूं, मूंग, साठी और शाली धान का चावल, शशक-तित्तिर-लवा आदि पक्षी तथा सृग और जाङ्गल जीवों का मांसरस, सुरबा, बेत के नव पलव का शाक, वैर और द्राक्षा फल ये सब वमन रोग में मुनियों ने पथ्य कहे हैं ॥ १-२ ॥

लड्बां विष्वीकोशवरये मधूकं चित्रामेलां सर्वपं देवदालीम् ।

च्यायामं वाऽमायाभ्युद्युष्टाक्षणानं छुर्या स्थौ वर्जयेद्प्रमत्तः ॥ ३ ॥

तुम्बी (कटुतुम्बी), विष्वी फल, कोशातकी (तरोई), महुआ, इन्द्रायण, इलायची, सर्सों, बांशकोड़ा, व्यायाम, प्रकृति-विरुद्ध तथा दूषित अन्न एवं पेय पदार्थ ये सभी पदार्थ वमन में शीघ्र स्थान देवे अर्थात् ये वमन में अपथ्य हैं ॥ ३ ॥

अथ तृष्णानिदानं ठ्यास्यास्यामः

भयश्रमाभ्यां बलयन्त्रयाद्युष्मां उर्चं वित्तविवर्धनेत्रः ।

पित्तं सद्वातं कृपित्वं नराणां तालुप्रपञ्चं जनयेत्पिपासाम ॥ १ ॥

तृष्णा का निदान—मय के कारण, परिश्रम के कारण अथवा बल के क्षीण हो जाने के कारण, अथवा पित्त को बढ़ाने वाले पदार्थों के सेवन करने से या पित्त को बढ़ाने वाले कार्य धूप, अस्थि आदि के अधिक सेवन से संचित होकर पित्त वायु सहित कृपित होकर उर्ध्वगामी होता हुआ मनुष्यों के तालु स्थान में पहुंच कर पिपासा को उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

सततं या पिषेदोयं न तु सिमधिगच्छति । पुनः काङ्क्षति तोयं च सं तुष्णार्दितमादिशेत् ॥२॥
तुष्णा के साधारण लक्षण—जिस अवस्था में मनुष्य निरन्तर जल पीवे फिर भी तुष्णि नहीं हो और पुनः जल की इच्छा करे उस अवस्था को तुष्णारोग कहते हैं। अर्थात् तुष्णा रोग के वे लक्षण हैं ॥ २ ॥

तुष्णानां सम्प्रातिमाह—

त्रोतस्वपांवाहिषु दूषितेषु दोषेष्व तृट् सम्भवतीह जन्तोः ।
तिक्षा रमृतारसाः क्षतजा चतुर्थी चत्यात्याऽन्याऽसमसुद्धवा च ॥ १ ॥
शुक्लोद्धवा सम्प्रिकेति तासां निकोष लिङ्गाभ्युत्पूर्वशाश्व ।

तुष्णारोग की सम्प्राप्ति—जल सम्बन्धी (द्रव) धातुओं को वहन करने वाली नाड़ियाँ जब दोषों (पित्तादिकों) के कुपित होने के कारण दूषित होती हैं तब मनुष्यों को तुष्णा उत्पन्न होती है। वह तुष्णा दोषों के मेद से (वात-पित्त और कफ से) तीन प्रकार की और चौथी क्षत के कारण से होने वाली, पांचवीं क्षय से होने वाली, छठीं आम के कारण से होने वाली और सातवीं भोजन के कारण से होने वाली, इस प्रकार सात मेद की होती है, जिनका लक्षण अनुक्रम से कहते हैं ॥ १-२३ ॥

पूर्वस्पम्—तात्क्षेषुकण्ठस्य वित्तोद्वाहसन्तापमोहन्नमनिप्रलापाः ।

पूर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासामुपत्तिकालेषु विशेषतो हि ॥ २ ॥

तुष्णा का पूर्वस्पम्—जिस मनुष्य को तालु, ओष्ठ और कण्ठ में सूई नुभाने के समान पीड़ा हो और दाह, शरीर में ताप, मोह, अम और प्रलाप हो तो ऐसे लक्षण विशेष कर तुष्णारोग के पूर्व में होते हैं ॥ १ ॥

वातजां तुष्णामाह—क्षुद्रकास्यता मारुतस्वभवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि ।

क्षोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरद्विश्व विवृद्धिमेति ॥ ३ ॥

वातजा तुष्णा के लक्षण—वात के कुपित होने से जो तुष्णा होती है उसमें मुख सूखता रहता है, शङ्खदेश (कनपटी) में तथा सिर में सूई नुभाने की भाँति पीड़ा होती है, जलवाही नाड़ियों (द्रववाही अर्थात् रस-रक्त-वेद-मूत्रादि वहन करने वाली) की गति अवरुद्ध हो जाती है, मुख स्वादहीन हो जाता है, और शीतल जल के पीने से तुष्णा और बढ़ती है। ये सब लक्षण वातजा तुष्णा के हैं ॥ १ ॥

पित्तजामाह—मूर्ध्नादिविहेषविलापदाहा रक्तेष्वरावं ग्रहतत्त्वं शोषः ।

शीताभिनन्दो मुखनिक्तता च पित्ताग्निकायां परिधूपनं च ॥ १ ॥

पित्तजा तुष्णा के लक्षण—पित्त के कुपित होने से जो तुष्णा होती है उसमें मूर्ध्ना, अन्न से देश अर्थात् भोजन की अनिच्छा, प्रलाप, दाह, नेत्र का रक्तवर्ण होना, नित्य शरीर का सूखते जाना, शीतल पदार्थों से प्रसवता, मुख का स्वाद निक्त होना और शरीर में ताप होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

द्वेषमजामाह—वाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽन्नो तुष्णा बलासेन भवेष्वरस्य ।

निद्रा गुह्यवं मधुरास्यता च तुष्णार्दितः शुद्धति चातिमात्रम् ।

कण्ठापलेषु सुखपिण्डिलवद्यं शीतउवरश्छुदिरसोचकश्च ॥ १ ॥

कफात्मिकायां गुह्याश्रता च शाकासु शोषस्वविपाक च ।

एतानि रूपाणि भवन्ति तस्यां तथाऽर्दितः काङ्क्षति नाति चाप्तम् ॥ २ ॥

कफजा तुष्णा के लक्षण—कफ के कुपित होने से जो तुष्णा उत्पन्न होती है उसमें कफ के

कुपित होने से जठरामि आच्छादित हो जाती है और उसका जलीय बाष्प ऊपर नहीं निकलने पाता है जिससे वह नीचे दबकर जलवाही नाड़ियों को तपाकर कफजा तुष्णा उत्पन्न करता है। इस तुष्णा में निद्रा अधिक होती है, शरीर भारी बना रहता है, मुख का स्वाद मधुर रहता है, तुष्णा से निरन्तर पीड़ित रहने से रसादि धातु क्षीण होते रहते हैं जिससे शरीर अधिक सूखता जाता है। कण्ठ में लेप लगा हुआ जात होता है, मुख कफ के कारण पिच्छिल रहता है, शीत ऊपर (जहैया), वमन और अस्थि होती है, और कफजा तुष्णा में शरीर का भारीपन, हाथ-पैर आदिकों का सूखना, अन्न का परिपाक न होना और रोगी जल भी अधिक नहीं चाहता है, ये सब लक्षण होते हैं ॥ १-२ ॥

क्षतजामाह—क्षतस्य रुक्षशोणितर्गम्भयो तुष्णा चतुर्थी चत्यजा भवेत्सा ॥ १ ॥

क्षतजा तुष्णा के लक्षण—क्षतजा तुष्णा में क्षत (आधात) की पीड़ा और रक्त निर्गमन के कारण तुष्णा होती है इससे इसे चौथी तुष्णा क्षत के कारण होने से 'क्षतजा' कहते हैं ॥ २ ॥

क्षयजामाह—रसचयात्मा सावसम्भवा सा नथाऽभिभूतस्तु निशादिनेषु ।

पैषीयतेऽग्नः स सुखं न याति तां स्वप्नापातादिति केचिदादुः ॥ १ ॥

रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशोषेण भिवरथवस्थेत् ॥

क्षयजा तुष्णा के लक्षण—रस के (रस धातु के) क्षय होने के कारण जो तुष्णा होती है उसे 'क्षयजा' कहते हैं उसमें रोगी दिन-रात जल पीने पर भी सुखी नहीं होता है। इस तुष्णा को कोई र आन्वार्य सानिवापातिक भी कहते हैं। रसक्षय में (यक्षमा जो रसक्षय के कारण से होता है उसमें) कहै दृष्ट लक्षण सम्पूर्ण इसमें रहते हैं, इसे विचार कर वैद्य अवस्था करे ॥ १-२३ ॥

अथाऽस्मजामाह—त्रिदोषिलङ्घामलसुद्धवा च हृष्टुक्षिणिष्ठीष्वनसादकर्त्री ॥ १ ॥

आमजा तुष्णा के लक्षण—आम से उत्पन्न होने वाली तुष्णा तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त होती है तथा हृदय में शूल और मुख से अधिक थूक आना तथा अङ्गों में शिथिलता होती है ॥ १ ॥
मुक्तोऽद्वावा तुष्णा—मुक्तोऽद्वावा तुष्णा के लक्षण—जो तुष्णा स्तिंश्व पदार्थ, अम्लपदार्थ, अति लवण युक्त पदार्थ और गुरु अन्न अथवा अन्य गुरु मोज्य पदार्थों के सेवन के कारण होती है उसमें इन कारणों से शीत २ तुष्णा होती है। उसे 'मुक्तोऽद्वावा' या 'अन्नजा तुष्णा' कहते हैं ॥ १ ॥

अथोपसर्गजामाह—इनश्वरः प्रनायन्यन्दीनाननशुष्कहृदयालतालः ।

भवति खलु सोपसर्गा तुष्णा सा शोषणी मता कष्टा ॥ १ ॥

उपसर्गजा तुष्णा के लक्षण—जिस तुष्णा में रोगी का स्वर मन्द हो जाये, शरीर विश्वस हो जावे (तन जावे या मोह को प्राप्त हो जावे), मुख मलिन हो जावे और मुख-हृदय-गला और तालु सूखे लगे, ऐसी तुष्णा उपसर्ग वाली तुष्णा है ये सा जानना चाहिये यह शरीर को सुखा देने वाली और कष्टदायक तुष्णा है ॥ १ ॥

उपरमोहृदयकासाकासाच्यन्पृष्ठदेहानाम् । सर्वास्त्वनिप्रसन्ना रोगकृषानां विमप्रसक्तानाम् ॥

भवति खलु सोपसर्गा तुष्णा मरणाय विज्ञेया ।

उपसर्गजा की असाध्यता—जिस तुष्णा में ज्वर, मोह, क्षय, कास, शास आदि उपद्रव उपसर्वत हों, रोगी दुर्बल हो गया हो, वमन होता हो, इस प्रकार की अवस्था वाली सभी तुष्णा उपसर्वयुक्त होती है। अर्थात् किसी भी निरन्तर होनेवाली तुष्णा में ये उपरादिक उपद्रव हों (अथवा इन उपरादिकों में निरन्तर तुष्णा होने लगे) तो उसे उपसर्गजा जानना चाहिये और इस प्रकार की उपसर्गजा तुष्णा मृत्यु के लिये जानना चाहिये अर्थात् असाध्य है ॥ १-२ ॥

अथासाध्यामाह—तारदोषकण्ठस्थ तु तोद्वाहाः सन्तापमोहभ्रमविप्रलापाः ।

सर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासां मधुयुहिं काले तु विशेषतो हि ॥ १ ॥

तृष्णा के असाध्य लक्षण—जिस तृष्णा में तालु, ओष्ठ, कण्ठ इन स्थानों में सूई चुभाने की भाँति पीड़ा हो और दाह हो, शरीर में संताप हो, मोह हो, भ्रम हो, प्रलाप हो, और सब प्रकार के तृष्णा के लक्षण जिसमें ही जावे तो इस अवस्था में रोगी विशेषकर निश्चित ही मर जावेगा ।

दीर्घं विभिन्नं विधिं तृचारं विवर्जयेत्तिर्गतं जिह्वामात्रु ॥ २ ॥

और जिस तृष्णा में रोगी क्षीण हो गया हो, स्वरभग हो गया हो, वधिर हो गया हो, अधिक तृष्णा से पीड़ित हो और जिहा को मुख से बाहर निकाल दिया हो, उसे त्याग देना चाहिये अथात् वे असाध्य के लक्षण हैं ॥ २ ॥

उपद्रवः—

ज्वरो मोहः क्षयः कासः श्वासो वाधिर्यमेव च । विहिनिंगतजिह्वावं ससैते तुमुपद्रवाः ॥ ३ ॥

तृष्णा के उपद्रव—तृष्णा रोग में ज्वर हो, मोह हो, क्षय हो, कास हो, श्वास हो, वधिरता हो और मुख से जिहा बाहर निकल जावे ये सात लक्षण तृष्णा के उपद्रव कहे जाते हैं । अर्थात् तृष्णा रोग के ये साथ उपद्रव हैं ॥ ३ ॥

अथ तृष्णाचिकित्सां व्याख्यास्यामः

वाततृष्णां वृन्दात—

वातप्रमङ्गपानं मिष्टं शीतं च वाततृष्णायाः । स्याज्जीवनीयसिद्धं चीरधृतं वातजे तर्हे ॥ १ ॥

तृष्णा की चिकित्सा—वातज तृष्णा की चिकित्सा—वातनाशक अंश तथा पेय पदार्थ के सेवन से और मधुर तथा शीतल पदार्थों के सेवन करने से 'वातज तृष्णा' नष्ट होती है, तथा जीवनीय गण की आवश्यियों से विधिपूर्वक सिद्ध किया दूध अथवा छूत सेवन करने से वातज तृष्णा शमन होती है ॥ १ ॥

पित्तजायां सितायुकः पक्षोदुम्बरजो इतः । प्रपित्तेत्सतं मन्थं पयसा लाजसमुभिः ॥ १ ॥

पित्तज तृष्णा की चिकित्सा—पित्तज तृष्णा में मिश्री मिलाया हुआ पके गूलर के फल का रस पान करने से शान्ति होती है और निरन्तर दूध और धान की खीलों के सत्रू में शर्करा मिलाकर मन्थ पान करने से भी पित्तज तृष्णा शमन होती है ॥ १ ॥

काशमर्यादिविकित्सासारात्—

काशमर्यादि योग—गम्भार, लालचन्दन, खस, पद्माव, द्राक्षा, मुलहठी, इन सबको समान लेकर जलपाक की विधि से पाककर छानने के बाद शर्करा मिलाकर पान करने से पित्तज तृष्णा शमन होती है ॥ १ ॥

कफतृष्णा वृन्दात—यथोक्तं कफतृष्णायां क्षर्यं तथेव कार्यं स्यात् ।

स्तम्भादृच्छिपियाकालहृच्छिक्षु कफानुगां तृष्णाम् ॥ १ ॥

ज्ञात्वा मधुइधितपंगलवणेन जलेवैमनमधीचणम् ।

दाढिमग्लफलं वाऽप्यन्यरसकाचायमवलेश्यम् ॥ २ ॥

पयसांथं वा प्रदद्याद्वज्जीवनीमधुशर्करायुक्तम् ॥ ३ ॥

कफज तृष्णा की चिकित्सा—कफज वमन में जो उपचार कहे गये हैं, वे ही उपचार (कफज

तृष्णा में भी करना चाहिये । कफज छाँदि में जो लक्षण—शरीर का स्तम्भन, अहन्ति, अक्ष का परिपाक न होना और आलस्य आदि होते हैं, उनसे लक्षणों वाली विदि तृष्णा हो तो उसी के अनुसार (कफज वमन के अनुसार) ही जान कर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये । यथा मधु और दही मिलाकर भली भाँति तर्पण करावे पश्चात् सेन्धानमक जल में घोलकर भली भाँति वमन करावे । अनार अथवा इमली अथवा अन्य कोई कषाय द्रव्य का अवलेह चाटे अथवा दूध के साथ हल्दी, मधु और शकरा का अवलेह बना कर सेवन करे तो कफज तृष्णा शान्त होती है ॥ १-३ ॥

अथ सामान्यविधिः

सारसंग्रहात्—तृष्णातिवृद्धावुदरे च पूर्णं संछर्द्येत्तिमाशधिको दक्षेन ।

विलोमसंचारहितं विधेयं स्याद्विमान्नातकमातुलुहैः ॥ १ ॥

सामान्य विधि—तृष्णा के अधिक बढ़ जाने पर तथा उदर पूर्ण रहने पर (आनाह रहने पर) पीपरि पानी में औटा कर उस पानी को पिलाकर वमन करावे । और जिस विधि से दोष विलोम हो सके (कषवंग दोष अधोगामी हो सके) वह विधि प्रयोग में लावे तथा अनार, अमडा और जम्बूरी नीबू इनको चूसने से तृष्णा शान्त होती है ॥ १ ॥

सुवर्णरौप्यादिभिरप्तिसैलोषेः कृतं वा सिक्तोपलैर्वा ।

जलं सुखोषणं शमयेच्च तृष्णां भ्यार्करं द्वौद्वयुतं हिमं वा ॥ २ ॥

सोना तथा चाँदी इनके डुकड़ों अथवा डेलों को अग्नि में तोपा कर जल में बुझा कर उस सुखोषण जल की पीने से तृष्णा शान्त होती है अथवा शर्करा और मधु मिला शीतल जल पीने से तृष्णा शान्त होती है ॥ २ ॥

कसेश्वराटकपद्मजीविसेषुसिद्धं ससितं च वारि ।

तृष्णां चतोत्थामपि पित्तजातां निहन्ति पीतं शिशिरीकृतं च ॥ ३ ॥

कसेरु, सिंधाडा, कमल के बीज, मृग्नाल और ईख की जड़ को समान लेकर जलपाक की विधि से पाक-छान कर शीतल होने पर शर्करा मिलाकर पान करने से क्षतजा और पित्तज तृष्णा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

योगतरक्षिण्याः—

तुलसीमञ्जरीगृणीकणःद्वाद्वालचङ्गकः । नागब्रह्मीपर्णवृन्तत्वकस्वर्जैरैश्च काषिकैः ॥ १ ॥

कर्षधृष्टिभ्रात्र्यसुंयुक्तिविहितोदयं कथांश्यकः । सृष्णादाहग्लानिहरस्त्रिदोषवशमनः परः ॥ २ ॥

तुलसी की मजरी, सोठि, पीपरि, द्राक्षा, लंबंग, पान के पत्तों की झंडियां, दालचीनी और खजर इनको एक २ कर्ष लेवे और लोप आधा कर्ष लेकर विधिपूर्वक क्षाथ बना कर सेवन करने से तृष्णा, दाह, ग्लानि और त्रिदोष का शमन करने वाला होता है ॥ १-२ ॥

मधुयुक्तं खलं शीतं पिवेदाकपठमातुरः । पश्चाद्वमेदशेषं तृष्णा तेन प्रशांत्यति ॥ २ ॥

शीतल जल में मधु मिलाकर तृष्णा के रोगी को कण्ठ तक पिलाकर सब वमन कराने से उसकी पिपासा शान्त हो जाती है ॥ ३ ॥

वृन्दात—मधुरैः सुजीवनीयैः शीतीश्च सतिस्कं श्रतं द्वीरम् ।

पानाभ्यञ्जनसेके विवृष्टं मधुशर्करायुक्तम् ॥ १ ॥

मधुर द्रव्य, जीवनीय गण की आवश्यियाँ और शीत पदार्थ इनके काथ और तिक्तक अर्थात् पटोलपत्रादि के कल्प से सिद्ध क्षीर (क्षीरपाक विधि से इन आवश्यियों के साथ सिद्ध किया) मधु तथा शर्करा से युक्त कर पान करने, शरीर में लगाने और सेक करने (गण्डूष धारण करने) से तृष्णा शमन होती है ॥ १ ॥

तउजं वा धृतमिष्टं पानाभ्यद्देषु नस्यमपि किञ्चित् ।

जम्भवाग्रातकवद्यन्तवेतसवल्लकलपञ्चाम्लैः ॥

हृष्मुखशिरःप्रदेहाः सवृत्ता मूर्च्छांनिभ्रमतुषाध्नाः ॥ २ ॥

और उपर्युक्त मधुरादि द्रव्यों से विधिवत् सिद्ध धृत को पान करने, लगाने और नस्य लेने से भी तुषा शान्त होती है। जामुन, अमला, वैर, अम्लवेत, इनकी छाल और पञ्चाम्ल (वैर, अनार, इमली, अम्लवेत और चाँड़ीरी (अम्लोनी) इन्हें 'पञ्चाम्ल' कहते हैं) सबकी लेकर पीस कर धृत मिलाकर हृदय-मुख तथा सिर पर लेप करने से मूर्च्छा, अम तथा पिपासा नष्ट होती है ॥ २ ॥

चिकित्सासारात्—सजीरकापथाद्वकशूलवेतसवल्लकलपञ्चाम्लैः ॥

मणानि दृष्टानि च गम्धवनिति पीतानि मध्यः शमयनित तुषाध्न ॥ ३ ॥

जीरकादि योग—जीरा, ताजा अद्रक, सौवर्चल नमक इनको कूट पीसकर (समान) लेकर जल में घोल कर पीने से तथा हृदय को द्वितकर और उत्तम सुगन्धित मध्य के पान करने से शीघ्र पिपासा शान्त हो जाती है ॥ ३ ॥

आञ्जन्यवृक्षाग्नं वा पिवेन्माहिकसंयुतम् । मर्वां छृद्विं प्रणुदति तुषाणां चैवापकर्त्तव्य ॥ २ ॥

आम के पलव और जामुन के पलव को लेकर विधिपूर्वक काथ बना कर शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के वमन और सब प्रकार की तुषा नष्ट होती है ॥ २ ॥

गोस्तनीभूरसजीरयष्टीमधुमधृष्टपलैः । नियतं वाग्धतः पीतैस्तुषाणा शाग्धयति तत्त्वाणात् ॥ ३ ॥

मुनका, ईख का रस, दूध, मुलहठी, मधु और नीलोत्पल सबको (ओषधियों को) कूट पीस कर रस और दूध के साथ मिलाकर पीकर वमन करने से उसी समय तुषा शान्त हो जाती है ॥ ३ ॥

जीरकस्तुम्बरीद्राक्षाचन्दनोपयलशीतलम् । शीतलेन समं दृष्टान्तुषाणां हृष्मयति शीलितम् ॥ ४ ॥

जीरा, धनियाँ, द्राक्षा, चन्दन, नीलोत्पल, और पदुमकाठ इन द्रव्यों को समान लेकर विधिपूर्वक हिम बना कर सेवन करने से तुषा शमन होती है ॥ ४ ॥

निर्वापितं तस्लोष्टकपालमिकतादिभिः । तुषाणायो वमनोरथायं सगुडं दधिं शास्यते ॥ ५ ॥

आग में तपाया हुआ मिट्टी का ढेला, ठिकरा (बड़े का डुकड़ा) और बाल इनसे तुषाया हुआ दही अर्थात् इनको आग में तपाकर दही में बुझाकर उस दही में गुड़ मिलाकर सेवन करने से वमन से उत्पन्न तुषा शान्त होती है ॥ ५ ॥

अथ लघुमधुकादिफाण्टः

शार्करात्—मधुकपुष्पगम्भारीचन्दनोशीरसान्त्वयैः ।

द्राक्षया च कृतः फाण्टः शीतः शार्करा युतः । तुषाणापित्तहरः प्रोक्तो दाहमूर्च्छांभ्रमाल्येत् ॥

लघु मधुकादिफाण्ट—महुए का फूल, गम्भार का फल, चन्दन, खस, धनिया और द्राक्षा इन ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक फाण्ट बना कर शीतल होने पर उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से तुषा तथा पित्त को दूरण करता है और दाह, मूर्च्छा, अम को नष्ट करता है ॥

अथ गण्डूषः

रसरत्नप्रदीपद—

सचौदमाश्रजग्वर्थं पिवेकार्थं सुपाचित्तम् । सतुषाणो मधुना कुर्याद् गण्डूषान् विशिरस्थितः ॥

गण्डूष विधि—आम और जामुन के पचों का विधिपूर्वक काथ बनाकर शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से तुषा शान्त होती है। और इसी काथ में अधिक मधु मिलाकर शीतल स्थान में वैठ कर गण्डूष धारण करने से तुषा शान्त होती है ॥ ६ ॥

योगतरङ्गिण्याः—

चीरेचुरसमृद्धीकालौद्रिसिन्धुगुडोषैः । सहवृक्षाग्लगण्डूषस्तालुशोषतुडम्भकृत् ॥ १ ॥

क्षीरादि गण्डूष—दूध, इस का रस, किसमिस, मधु, सेन्धा नमक, गुड और जल तथा वृक्षाम्ल (कोकम) इन सब को कूट पीस कर एक में मिला कर गण्डूष धारण करने से सालु-शोष और तुषा नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथ लेपाः

वृदान्त—दाढिमकपित्तलोध्रैः सविदारीबीजपूरकैः शिरसः ।

लेपो गौशमलकैः श्रतारनालयुतैः सहितैः ॥ १ ॥

लेप—अनार, कैथ, लोध, विदारीकन्द, विजौरा नीबू और पके खन्ड आंवले इन सब को गरम काँजी के साथ पीस कर सिर पर लेप करने से तुषा शान्त होती है ॥ १ ॥

कदम्बात्—अरुणचन्दनचन्दनचन्दनवालकैर्नलदपशकतुष्यकृतांशकैः ।

शिरसि लेपनमाचरतां चूर्णां तुष्यपात्युपशानितमसंशयम् ॥ १ ॥

अरुणचन्दनादिं लेप—लाल चन्दन, शेत चन्दन, सुगन्धबाला, खस, पदुमकाठ इनको समान लेकर जल के साथ पीस कर सिर पर लेप करने से मनुष्यों की तुषा अवश्य ही शमन हो जाती है ॥ २ ॥

योगतरङ्गिण्याः—

दाढिमं बहरं लोध्रं कपित्तं बीजतुरकमः । पिष्ठा लेपः शिरस्येषां पिपासादाहनाशनः ॥ १ ॥

दाढिमादिं लेप—अनार, वैर, लोध, कैथ और विजौरा नीबू इन सबको पीस कर सिर पर लेप लगाने से पिपासा और दाह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ गुटिका

राजमार्त्तिण्डात्—

नीलाम्बुजाद्वमधुलाजयटावरोहैः श्लेषणीकृतैर्विरचिता गुटिका सुखस्था ।

तुषाणां निवारयति तत्त्वामेव तीव्रां सूख्योः स्पृहामिक यत्तेः परमार्थिच्छता ॥ १ ॥

गुटिका—नील कमल, नागरमोथा, मधु, धान की खील, वट वृक्ष के अड्डर, इन सब ओषधियों को समान लेकर उत्तम चूर्ण कर अथवा उत्तम रीति से श्लेष पीस कर विधिवत् बना कर सुख में धारण करने से तीव्र भी प्यास इस प्रकार शीघ्र नष्ट होती है जिस प्रकार यति के परमार्थ चिन्तन से सूख्य का भय भाग जाता है ॥ १ ॥

योगशतात्—बटप्रोरोहं मधुकुम्भमुरुपलं सलाजज्ञरूपं गुटिका प्रकल्प्या ।

सुमिंहिता सा वृदने च धारिता तुषाणां सुवृद्धामपि हनित सउवराम् ॥ १ ॥

बटप्रोरोहादि बढ़ी—बट वृक्ष के बरोह (जटा), मधु, कूठ, नीलोत्पल, धान की खीलों का चूर्ण, इनको समान लेकर कूट पीस कर विधिपूर्वक बढ़ी बना कर सुख में धारण करने से बढ़ी तथा ऊर के सहित भी तुषा हो तो यह उसका नाश करती है ॥ १ ॥

वैद्यजीवनात्—हृग्लाजाद्वबटप्रोरोहमधुकैर्मध्वनितैः कविष्पताऽ-

प्रयुग्रामाशु तुषे भृशं प्रशमयेदास्यान्तरस्था गुटी ।

प्लालाजलचन्दनागच्छपलाञ्छोकलमजाग्नुद-

श्रीखंडं मधुकुम्भं प्रिये प्रशमयेद्वृन्तिं विद्वोद्वद्वाम् ॥ १ ॥

रुग्नादिवटी—१—हे प्रिये ! कूठ, धान की खील, नागरमोथा, बटाडुर और जेठी मधु, इनको समान लेकर कूट पीस कर विधिपूर्वक मधु मिला बटी बना कर सुख में धारण करने से

शीघ्र अत्यन्त उषा को भी शान्त करती है। २—और हलायची, धान की खील, लवंग, नागकेसर, पीपरि, प्रिङ्गु, वैर की गुठली की गूदी, नागरमोथा, चन्दन और मधु इन सबको समान यथायोग्य लेकर कूट पीस कर वटी अथवा लेह बना कर सेवन करने से चिकित्सा वर्णन शान्त होता है॥ १॥

चिकित्सासारात्—रोगोपसर्गजातायां खान्याभ्यु समितामधु ।

बहप्ररोहयस्त्वाहृकणमधुकृता वटी । मुखस्था चिरकालोत्थां तुष्णीं हन्यामधुसुदुस्तराम् ॥१॥

खान्याभ्यु योग—रोग के उपसर्ग से उत्पन्न तुष्णा में धान यिगाया हुआ पानी, शर्करा और मधु इसका सेवन करने से उपसर्ग तुष्णा शान्त होती है और वटाङ्गु, जेठी मधु, पीपरि और मधु को समान भाग लेकर यथायोग्य कूट पीस कर विधिपूर्वक वटी बना कर मुख में धारण करने से पुरानी और भयंकर तुष्णा को भी नष्ट करती है॥ १॥

सामान्यविधि—इतोद्वारा रुचिनिवारणेन जयेद्दसानामसूजश्च पानः ।

इतोद्वितीयां चीरजलं निहन्यान्मासोदकं वा मधुकोदकं वा ॥ १ ॥

क्षतोद्वाव, क्षयोद्वाव तथा आमोद्वाव तुष्णा में प्रयोग—क्षत से उत्पन्न तुष्णा को क्षतनाशक प्रयोग करके और मांसरस तथा रक्तपान करा के शमन करना चाहिये। क्षय से उत्पन्न तुष्णा को दूध में जल मिला कर वा. मांसरस अथवा जल में मधु मिला कर सेवन करा कर शमन करना चाहिये॥ १॥

आमोद्वावां विश्ववचायुतानां जयेत्क्षयायरपि दीपनानाम् ।

उल्लेखनेर्गुर्वशनप्रभातां जयेत्क्षयोत्थां तु विना पिपासाम् ॥ २ ॥

आम से उत्पन्न तुष्णा को बैल और वच आदिक दीपन पदार्थों के कवाय को सेवन करा कर शान्त करे। युरु पदार्थों के भोजन करने से उत्पन्न तुष्णा को लेखनकारक औषधियों के काथ (वचादिक) को सेवन करा कर शमन करे किन्तु क्षयज पिपासा को होड़ कर अर्थात् क्षय में युरु अन्न सेवन करने से पिपासा बढ़ी हो उसमें लेखन कर्म नहीं करावे॥ २॥

स्त्रियेऽनन्ते भुक्ते या तुष्णा स्यात्तो गुदाश्वुना शमयेत् ।

अतिरक्तदुर्बलानां तुष्णां शमयेन्नृणामिहाऽदश्य यथः ॥ ३ ॥

क्षिरथ (अति स्त्रेह वाले पदार्थ) अन्न के भक्षण करने के कारण से उत्पन्न तुष्णा को युरु जल में मिला कर सेवन कर शमन करे। अत्यन्त रुक्ष हुए तथा दुर्बल मधुव्यों की तुष्णा को दूध से दीप्र शान्त करे अर्थात् दूध पिलावे॥ ३॥

छागमांसरम् साड्यं शीत समधुशर्करम् । पीत्वा जयति दुर्दृश्यमृच्छिदिमदात्ययान् ॥४॥

छाग के सांस के रस में धृत मिला लेवे और उसे शीतल कर, उसमें मधु और शर्करा मिला कर दीने से दाह, मूर्छा, वर्मन मदात्यय तथा तुष्णा को जीतता है अर्थात् ये सब रोग नष्ट होते हैं॥ ४॥

सात्याङ्गपानभैषज्यैस्तुष्णातर्थ्य जयेत्त्वाम् ।

तथां जितायामन्योऽपि व्याधिः शक्यत्रिकित्सुम् ॥ ५ ॥

प्रकृति के अनुकूल (पथ्य) अन्न, पेय पदार्थ तथा सात्यां औषधियों से तुष्णा से पीड़ित की तुष्णा को जीते अर्थात् शमन करे। इसके जीतने पर (शमन होने पर) अन्य भी उपसर्वव्याधियां चिकित्सा के लिये शक्य हो सकती है अर्थात् उनको भी चिकित्सा साध्य हो सकती है॥ ५॥

तृष्णितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विचमुञ्चति ।

तस्मात्सर्वात्प्रवृत्तस्थासु न क्षिद्वारि वार्यते ॥ ६ ॥

जल का सर्वत्र अविरोध—तुषा वाला मनुष्य मोह को प्राप्त होता है और मोह के कारण प्राण भी नष्ट हो जाते हैं इस लिये सब अवस्थाओं में कभी भी जल का अवरोध नहीं करना चाहिये अर्थात् तुषा वाले को (तुषा लगने पर) जल अवश्य देना चाहिये॥ ६॥

अषेनापि विना जन्मुः प्राणान्मंधारयेच्छिरम् । तोयाभावे पिपासातः खणात्प्राणान्विचमुञ्चति ॥

अन्न के विना (भोजन के विना) जीव बहुत समय तक प्राण धारण किये रह सकता है (जीवित रह सकता है) परन्तु पिपासा से पीड़ित होने पर जल के विना क्षण भर में प्राणों को त्याग देता है॥ ७॥

अथ रसाः

रसादिगुटिका—रसरजनगृहीं पटीयस्त्रीं यो वदनम्यशोहृष्मध्ययां दधाति ।

स्य जयति तृष्णतस्तुषां मनुष्यो भृशमधुपुञ्जमिव त्रिमार्गाम्भः ॥ १ ॥

रसादि गुटिका—शुद्ध पारद और रजत भृशम समान लेकर खल में मर्दन कर वटी बना कर मुख में धारण करने से अथवा जो इसको धारण करता है उस तृष्णितकी तुषा इस प्रकार नष्ट होती है जिस प्रकार गंगा के जल से पाप पुजा नष्ट हो जाता है॥ १॥

अथ रसादिच्चूर्णम्

सारसंयहात्

रसगम्धकपूर्वैः शौलोऽशीरमरीचकैः । समितैः क्रमवृद्धैश्च सूचमं कृत्वा त्वद्मुर्से ॥ १ ॥

त्रिगुलाप्रमितं स्वादेतिपित्रेत्युचिताम्भु चैव भृशां निहत्येवमधिभ्यां च प्रकाशितम् ॥२॥

रसादि चूर्ण—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कर्पूर, शिलाजीत, खस, मरिच और शर्करा इनको कम से बढ़ाकर अर्थात् शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, कर्पूर ३ भाग और शुद्ध शिलाजीत ४ भाग तथा शर्करा इवेत ५ भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर उस में अन्य द्रव्यों के चूर्ण को मिला कर विधिपूर्वक वटी बना कर मुख में धारण करने से तथा इस चूर्ण को ३ रक्ती के प्रमाण से खाकर बासी पानी का अनुपान लेने से अत्यन्त कठिन तुषा को नष्ट करता है। इसको अश्विनीकुमारों ने प्रकाशित किया था॥ १-२॥

अथ पश्यापथ्यम्

पष्टिका: शालयः पेत्वा विलेपी लाजसक्तवः । अश्वमण्डो धान्यरसः शर्करारागसाप्त्वौ ॥ १ ॥

भृष्टेन्दुर्गैमस्त्रैव चणकीर्णी कृतो रसः । रसभापुष्पं तक्कूर्चीं कृष्माण्डकमुषोदिका ॥ २ ॥

खर्जूर दाढिमं धानीं शीलपूर्णं गवां पथः । जग्वीरं करमदं च पथ्यमेतत्तुषातुरे ॥ ३ ॥

पश्यापथ्य—साठी और शाली धान का चावल, पेत्वा, विलेपी, धान की खीलों का सत्तू, अन्न का माल, धान्यरस, शर्करा, मुरब्बा, सुजे हुए मूग-मसूर अथवा चना का पकाया यूष—(रस), केले का फूल, तक्कूर्चीं (छेना अर्थात् छाल फाड़ा इवा दूध), खेत कृष्माण्ड, पोई का शाक, खजूर, अनार, आँवला, विजौरा नीबू, गोदुग्ध, जम्बूरी नीबू, करौदा ये सब तुषा रोग के लिये पथ्य हैं॥ १-३॥

गुर्वस्त्रम्भलं लवणं कथायं कटुत्रयं दुष्टजलानि तीचणम् ।

पतानि सर्वाणि हिताभिलाषी तुषातुरो नैष भजेत्कदाचित् ॥ ४ ॥

गुरु अन्न, अम्लरस युक्त पदार्थ, लवण युक्त पदार्थ, कथाय द्रव्य, त्रिकटु, दूषित जल और तीचण पदार्थ इन सब को हित की इच्छा करने वाला तुषा का रोगी कभी नहीं सेवन करे अर्थात् ये अपथ्य हैं॥ ४॥

अथ मूच्छानिदानम्

द्वीपस्थ वहुदोषस्य विलक्ष्मा हारसेविनः । वेगावाताद्भीवाताद्भीनसवस्य च युनः ॥ १ ॥
करणायतनेषु वादाशेष्वाभ्यन्तरेषु च । निवासनित यथा दोवास्तदा मूच्छनित मानवाः ॥ २ ॥

मूच्छा का निदान तथा संप्रसि—क्षीण मनुष्य, बहुत दोषों वाला मनुष्य (जिसके बातादिक दोष वह गये हो), विरुद्ध भोजन (क्षीर-मस्त्यादि) करने वाला मनुष्य तथा मल-मूत्रादिक के बेग को रोकने से, आधात आदि से और जिस मनुष्य में सत्त्वगुण की न्यूनता हो अर्थात् अधिक तमोगुण हो जाने से इनियों के स्थानों ने जब उग्र दोष बाहर और भीतर निवास कर लेते हैं तब मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है ॥ १-२ ॥

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः । तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥
सुखदुःखव्यपोहास्त नरः पतति काष्ठवत् । मोहो मूर्च्छन्ति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥

संक्षा (चेतना) को बहन करने वाली नाड़ियों के बातादिक दोषों के भर जाने के कारण अवसर्द हो जाने से तमोगुण अर्थात् अन्धकार सहसा उत्पन्न हो जाता है जिससे मनुष्य सुख-दुःख के शान से हीन हो जाता है और तब सुख-दुःख के ज्ञान के नष्ट होने पर मनुष्य काष्ठ की भाँति गिर जाता है उसको मोह और मूच्छा कहते हैं, वह छवि प्रकार होती है ॥ ३-४ ॥

द्वातादिभिः शोणितेन मध्येन च विचेण च । उटस्वव्येतासु पित्तं च प्रभुत्वेनावतिष्ठति ॥ ५ ॥

बातादिक से अर्थात् बात-पित्त और कफ से (तीन), उटदोष से, मध्य से और विष के कारण इस प्रकार (इ में दोष की मूच्छा होती है) इन छोड़ों प्रकार के मूच्छा में पित्त का ही प्रभुत्व अधिक रहता है ॥ ५ ॥

तस्याः पूर्वरूपमाह—

हरपीढो जृभर्णं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेष्य च । सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं च विभावयेत् ॥

मूच्छा का पूर्वरूप—जिस मनुष्य को हृदय में पीड़ा, जृभर्ण, ग्लानि, चेतना की न्यूनता आदि मालूम होके उसे मूच्छा होने वाली है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् ये लक्षण सब प्रकार की मूच्छा होने के पूर्वरूप के हैं और दोष के अनुसार कौन मूच्छा है—यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

बातजामाह—

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमयवाऽरुणम् । पश्यन्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुद्ध्यते ॥ १ ॥
वैपथुद्वाक्षमर्दश प्रपीढा हृदयस्थ च । काशर्य इथावारुणद्वाया मूर्च्छाये वातसंभवे ॥ २ ॥

बातज मूच्छा के लक्षण—जिस मूच्छा में होने के समय प्रथम आकाश लौले वर्ण का, कृष्ण वर्ण का अथवा अरुण वर्ण का दिखाई देवे और उसी समय में तम का प्रवेश हो अर्थात् मूर्च्छित हो जावे और शीघ्र ही फिर चैतन्य हो जावे और शरीर में कम्पन हो, देह दूटे, हृदय में पीड़ा हो, शरीर दुर्बल हो जावे तथा शरीर इथाव अथवा अरुण वर्ण का हो जावे उसे वातजनित मूच्छा जाननी चाहिये ॥ १-२ ॥

पित्तजामाह—

उटं हरितवर्णं वा विश्वपीतमध्यापि वा । पश्यन्तमः प्रविशति सस्तेदः प्रतिबुद्ध्यते ॥ १ ॥

सपिषामः सम्बन्धातो उटपित्ताकुलेषणः ।

जातमात्रे च पतति शीघ्रं च प्रतिबुद्ध्यते । संभिश्ववर्चीः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसंभवे ॥ २ ॥

पित्तज मूच्छा के लक्षण—जिस मूच्छा में होने के समय प्रथम आकाश-उटवर्ण, हरित वर्ण अथवा पीतवर्ण का दिखाई देवे और उसी समय तम का प्रवेश (मूच्छा) हो, जावे और उटेद के साथ चेतना हो और तुषित हो, ताप से युक्त हो, उसके नेत्र लाल, पीले और व्याकुल दिखाई

देवे, मूच्छा उत्पन्न होते ही गिर जावे और शीघ्र ही चैतन्य हो जावे, मलभेद हो और शरीर का वर्ण पीला हो जावे उसे पित्तजनित मूच्छा जाननी चाहिये ॥ १-२ ॥

श्लेष्यजामाह—

मेघमङ्गलाशमाकाशमावृनं वा तमोधनैः । पश्यन्तमः प्रविशति चिराप्तच प्रतिबुद्ध्यते ॥ १ ॥
गुरुभिः प्रावृत्तैर्कर्यं चाऽऽद्रेष्टं चमणा । सप्रसेकः सहजासो मूर्च्छाये कफसंभवे ॥ २ ॥

कफज मूच्छा के लक्षण—जिस मूच्छा में होने के समय प्रथम आकाश में वो से युक्त और में वो से धिरा हुआ जाने अन्धकार से युक्त दिखाई देवे और उसी समय तम का प्रवेश (मूच्छा) हो जावे और बहुत देर में चैतन्य हो, शरीर भारी मालूम हो और शरीर गीले चमड़े से ढका जावा है ऐसा मालूम हो, लालासाव हो और हल्लास (उवकाई) हो उसे कफ जनित मूच्छा जानना चाहिये ॥ १-२ ॥

संनिपातजामाह—

सर्वाकृतिः सन्निपातात्प्रस्मार इचाऽपरः । स जन्मनुं पातयथाशु विना शीभत्सवेष्टिते ॥ १ ॥

सन्निपातज मूच्छा के लक्षण—जिस मूच्छा में सब प्रकार के मिलित लक्षण हों और अप्रस्मार की भाँति विना शीभत्सवेष्टिते की द्वारा एक शीघ्र मनुष्य अचेत होकर गिर जावे उसे सन्निपातज मूच्छा जानना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तगन्धजमूच्छामाह—पृथिव्यापस्तमोरुपं रक्तगन्धस्तदन्वयः ।

तस्माद्रक्षस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि भानवाः । ब्रह्यस्वभाव हृत्येके हृष्टा यद्यभिसुष्टुति ॥ १ ॥

रक्तगन्धज (रक्तज) मूच्छा के लक्षण—पृथकी और जल का ही अंश हो तमोगुण के रूप हैं और रक्त के गन्ध में पृथकी और जल का ही अंश है इसलिये रक्त के गन्ध से लोक में मूर्च्छा मूर्च्छित हो जाते हैं। कई आचार्यों का यह मत है कि द्रव्य का ही स्वभाव है क्योंकि रक्त के देखने पर यह मूच्छा होती है ॥ १ ॥

विषमद्वजे आह

गुणास्तीवतरवेन दिथताश्च विषमश्योः ।

त एव तस्मात्त्वाभ्यां तु मोहौ स्पाती यथेतिरै ।

स्तध्वाद्वद्विषत्वसुभागृहोच्छ्रुताश्च मूर्च्छितः ॥ १ ॥

विषज और मध्यज मूच्छा के लक्षण—विष तथा मध्य में तीक्ष्णतर गुण उपस्थित रहते हैं। विष तथा मध्यपान करने से वे तीक्ष्णतर गुण ही मनुष्य को मूर्च्छित करते हैं। (विष की मूच्छा में मध्य की मूच्छा से अधिक तीक्ष्ण होती है) रक्त के गन्ध से हुई मूच्छा में अङ्ग और दृष्टि स्तब्ध हो जाते हैं, और मूर्च्छित होने पर श्वास अस्पष्ट होता है ॥ १ ॥

मध्येन विलयज शेते नष्टविभ्रान्तमानसः । गात्राणि विद्विष्यमूर्च्छी जरां यावज्ञ याति तत् ॥ २ ॥

मध्य से हुई मूच्छा में मनुष्य प्रलाप करता हुआ सोया रहता है, और उसका मन स्मृति हीन रहता है और विभ्रान्त रहता है। और जब तक मध्य पच नहीं जाता है तब तक वह भूमिपर पड़ा अङ्गों को इधर-उधर फेकता (पटकता) रहता है। पच जाने पर वह स्वस्थ हो जाता है ॥ २ ॥

वैपशुस्वप्नतुरुणः न्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते । वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ ३ ॥

विष से हुई मूच्छा में कम्पन होता है, स्वप्न होता है, तृष्णा होती है, और नेत्रों के सामने अन्धकार छाया रहता है। इसको तीव्र और तीव्रतर विष के लक्षणों के अनुसार जानना

वाहिये अर्थात् जिस प्रकार के विष के कारण मूर्च्छा हुई हो उसी की तीव्रता आदि से विष का निश्चय करना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ मूर्च्छाभ्यमतन्द्रानिद्राभेदानाह

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया: हृजः पित्तानिलाद् अमः । तमोवात्कफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मसोभवा ॥

मूर्च्छा—अम—तन्द्रा आदि के भेद—मूर्च्छा, तन्द्रा आदि में जो मोह होता है वह प्रायः देखने में एक ही प्रकार का होता है इसलिये इनके विशेष लक्षण कहते हैं, जैसे—मूर्च्छा—प्रायः करके पित्त प्रकोप और तमोगुण की प्रधानता से होती है । अम—पित्त तथा वात के प्रकोप और रजोगुण की प्रधानता से होता है । तन्द्रा—तमोगुण की प्रधानता और वात तथा कफ के प्रकोप से होती है और निद्रा—कफ के प्रकोप और तमोगुण की प्रधानता से होती है ॥ १ ॥

इन्द्रियार्थव्यवसंचित्तार्थव्यवसंचित्तभ्यं बलमः: निद्रार्थस्येव यस्यते तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

तन्द्रा के लक्षण—इन्द्रियों अपने २ विषयों को ग्रहण नहीं कर सकें, अर्थात् स्पृष्ट—रसादिक के ज्ञान में अवरोध हो गया हो, शरीर गुरु हो, जूँभा हो, झूँझानि हो और निद्रा से पीड़ित की भाँति अलसाया हो ऐसे लक्षण जिस मनुष्य में हों उसे तन्द्रा हुआ जाना चाहिये ॥ २ ॥

अथ संन्यासस्य मूर्च्छादिभ्यो भेदमाह

दोषेषु मदमूर्च्छया गतवेषु देहिनाम् । स्वयमेवोपशास्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥ ३ ॥

मूर्च्छा के भेद संन्यास के लक्षण—मनुष्यों के दोषों के वेग के हट जाने पर मद-मूर्च्छादि रोग स्वयं विना चिकित्सा के ही शान्त हो जाते हैं—परन्तु संन्यास रोग वेग गत होने पर भी विना औषध के शान्त नहीं होता है ॥ ३ ॥

बाघेद्वेषसां चेष्टामाप्त्यातिवल्ल मलाः । संन्यस्यन्त्यवलं जन्तुं प्राणाश्वसनमाश्रिताः ॥ ४ ॥

संन्यासरोग के लक्षण—अतिरुदूर्ल मनुष्य को जब अत्यन्त बढ़े हुए तथा अत्यन्त बलवान वातादिक दोष देह, मन आदि को चेष्टाओं का अवरोध कर प्राणवायु के आश्रित होकर संन्यस्त (संज्ञाहीन या मूर्च्छित) करते हैं तब उसे 'संन्यास' कहते हैं ॥ ४ ॥

स. ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो सूतोपमः ।

प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं सुकर्वा सद्यःकला क्रियाम् ॥ ५ ॥

वह संन्यास से मूर्च्छित रोगी मरे हुए एवं काठ की भाँति पड़ा रहता है उसकी यदि सद्यः कल देने वाली (चैतन्यकारक) क्रिया उसी समय नहीं की जावे तो वह प्राण को त्याग देता है । अर्थात् ये लक्षण संन्यास के हैं ॥ ५ ॥

बादित्रिगीतानुवायैरप्यवैर्विशमापनैर्गुसफलावधेः ।

आभिः क्रियाभिष्ठ न लब्धसंज्ञो सानाहलालश्च नरश्च वर्ज्यः ॥ ६ ॥

संन्यास की असाध्य अवस्था—संन्यास की अवस्था वाले रोगों के निकट वाजा बजाकर, गीत सुनाकर, अनुनय विनय करके, अपूर्व—अपूर्व तथा विस्मय शुक्त बातें करके और केवाच के फल का शरीर पर धर्षण करके चेतनता लावे । यदि इन क्रियाओं (इस चिकित्सा) से चेतनता नहीं प्राप्त हो और आनाह हो तथा मुख से लालासाव हो तो इस संन्यास के रोगी को त्याग देना चाहिये अर्थात् ये संन्यासरोग के असाध्य लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छाचिकित्सा

मूर्च्छा मोहो हृधा स प्रभवति वहजागन्तुमेदेन पित्त-
स्त्राऽग्न्तुमिथा स्थाप्तुविरविषयुराजम्यभेदाह्विभिन्नः ।

प्रथमेकं दोषभेदात्त्वति च सहजः स त्रिधा षट्सु पित्तं

प्राणान्देनेह तिष्ठेदभिदध्नि च तां द्वन्दजां सञ्जिपते ॥ १ ॥

मूर्च्छारोग की चिकित्सा—मूर्च्छा के भेद—मूर्च्छा अथवा मोहरोग दो प्रकार का होता है एक सहज और दूसरा आगन्तुक । उसमें आगन्तुक मूर्च्छा ३ प्रकार की होती है, एक रक्तदोष से, दूसरी विषदोष से और तीसरी सुरा के दोष से और सहजा मूर्च्छा भी दोषों के भेद से तीन प्रकार की होती है अर्थात् वातजा, पित्तजा और कफजा इस प्रकार मूर्च्छा ३ प्रकार की होती है । इन छहों प्रकार की मूर्च्छाओं में पित्त ही की प्रधानता होती है । इसमें अन्य दोषों के लक्षण होने से द्वन्दजा भी कोई २ आचार्य मानते हैं ॥ १ ॥

येकावगाहा अण्यः महातः शीताप्रदेहा व्यजननिलाश ।

शीतानि पानानि च गन्धवन्ति पर्वासु मूर्च्छाश्वनिवारितानि ॥ २ ॥

सब प्रकार के मूर्च्छारोग में जल से सिंचन, डुबकी लगाकर जल में स्वान करना, मणि आदि को धारण करना, हार पहिरना, शीतल (चन्दनादिक) लेप करना, पंखे से हवा करना और शीतल तथा सुगन्ध बाले पेथ पदार्थ का सेवन करना ये सब कर्म अनिवार्य हैं अर्थात् इन कर्मों से लाभ होता है ।

द्वन्दात्—

कोलमज्जोषणोशीताकेसरं शीतवारिणा । पीतं मूर्च्छा जयेश्वीढा कृष्णा च मधुसंयुता ॥ ३ ॥

बैरके फल की गुठली की मीणी, मरिच, खस, नागकेसर इन थोषविद्यों को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर धोल कर पान करने से मूर्च्छा नष्ट होती है । अथवा पीपरि के चूर्ण को मधु के साथ लेह बनाकर चाटने से मूर्च्छा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

त्रिन्दात्—

महोषधामृताद्रापुष्करग्रन्थिकोऽस्त्रवस्त्र । पिवेश्कणायुतं क्षायं मूर्च्छायां च मदेषु च ॥ ४ ॥

महोषधादि क्षाय—सोंठि, गुरुचि, द्राक्षा, पुष्करमूल और पिपरामूल को समान लेकर विधि-पूर्वक क्षाय वनाकर पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर मूर्च्छा और मद में पान करने से ये दोनों रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

चिकित्सासारात्—

नारिकेलाम्बुना शीताः सक्तवः समर्शकरा । पित्तहृतकरुणमूर्च्छाअभादीन्द्रिन्तदारुणान् ॥ ५ ॥

नारिकेलाम्बुदि योग—नारियल के जल में सत्तु और शर्करा समान मिलाकर पान करने से पित्त को हरण करता है तथा दारुण (कठिन) कफ, लृष्ण, मूर्च्छा तथा अम आदिक रोगों को नष्ट करता है ॥ ५ ॥

चक्रदत्तात्—

शतावरीबलामूलद्राहासिङ्कं पयः पिवेत् । सासिंतं अभनाशाय शीजं वाक्यालकस्य च ॥ ६ ॥

शतावर्यादि पय—मतावरि, बैरआरे की जड़ और द्राक्षा इनको समान लेकर इनसे शीर-पाक विधि से पाक किया दूष मिश्री मिला कर पान करने से अम का नाश होता है । तथा चरिआरे के बीज के साथ विधिवत् पाक किया दूष भी हैवन करने से अमरोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

वैद्यजीवनात्—

द्वुरालभाकथायस्य धृतयुक्तस्य सेवनात् । अमः शास्त्रयति गोविन्दस्मरणादिव पातकम् ॥ ७ ॥

द्वुरालभादि कथाय—जवासा के विधिवत् काथ में धृत का प्रश्नेप देकर पान करने से अमरोग इस प्रकार शमन होता है जिस प्रकार गोविन्द के स्मरण से पातक शमन होता है ॥ ७ ॥

चिकित्सासारात्—मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला राश्री गुदाद्रवं प्रातः।
सप्ताहात्पथ्यभुजो मद्मूर्च्छाकामलोभ्मादान् ॥ १ ॥

दिन और रात्रि में त्रिफला का प्रयोग—रात्रि में त्रिफला का चूर्ण-मधु के साथ सेवन करने से, अथवा प्रातःकाल त्रिफला का चूर्ण अद्रक के रस और गुड़ के साथ सेवन करने से तथा सात दिन तक पथ्य और ये औषध सेवन करते रहने से मद-मूर्च्छा-कामला और उन्मादरोग ये सभी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वृन्दात्—श्वसमामलकं पिष्ठा द्राघ्या सह संसृजेत्।
विश्वेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ॥

तेनास्य शास्यते मूर्च्छी कासः आसस्तर्थं च ॥ १ ॥

स्वशमामलकादि योग—भूस्वेदित आँखेले को पीस कर उसमें पिसा हुआ द्राक्षा, सौंठि का चूर्ण और मधु ये सब समान लेकर विधिपूर्वक अवलेइ बनाकर सेवन करने से मूर्च्छा-कास तथा श्वासरोग शमन होते हैं ॥ १ ॥

योगतरङ्गिण्यां धृतम्—

पश्याङ्कायेन वृंसिद्धं धृतं धात्रीश्वेतं वा । यदिः कंह्याणकं वाऽपि मद्मूर्च्छापिं पिवेत् ॥ १ ॥

योगतरङ्गिणी से पश्यादिक धृत—हीरीकी अथवा आँखेले के काथ एवं कल्प से विधिवृत्त सिढ़ किया हुत अथवा कल्पाण धृत नामक सिढ़ धृत के योग को पान करने से मद और मूर्च्छा रोग का नाश होता है ॥ १ ॥

रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः । मद्यजायां पिवेन्मध्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम् ॥

रक्तदोष से उत्पन्न मूर्च्छा में शीतल किया और शीत विधि (शीतवीर्यादि औषध) करना चाहिये । मध्य से उत्पन्न मूर्च्छा में मध्य पिलावे तथा इच्छापूर्वक सुख से सोने देवे । यही चिकित्सा करें ॥ २ ॥

विषजायां विषदनानि भेषजानि प्रदापयेत् । अञ्जनान्यवर्णां दोषं धूमान्त्रधमनानि च ॥ ३ ॥

विष से उत्पन्न मूर्च्छा में विषनाशक औषध देना चाहिये और चेतनाकारक अज्ञन, अव-पीड़न नस्य, धूम और प्रथमन नस्य (तीव्र नस्य जिससे हृदय प्रधमित हो उठे) आदि चैतन्य करने को देना चाहिये ॥ ३ ॥

सूचीभिस्तोदनं शम्तं दाहः पीडा नस्वान्तरे । लुक्ष्मनं नखलोभ्नां च धृतं देवशनमेव च ॥ ४ ॥
आस्मगुप्तावधर्याद्वा हितस्तस्यावद्वोधने । अण्डयोर्धर्षणं चापि हितमेतैविषोधनम् ॥ ५ ॥

तथा सूर्य चुमाना चाहिये, नरों के मध्य में दाह तथा पीडा पहुचाना चाहिये, नख तथा रोमों को नोंचना चाहिये, डाँतों से काटना चाहिये, केवांच के फलियों से धर्षण करना (खुजलाना) और अण्डकोष को धर्षण करना ये सभी कर्म चैतन्य करने के लिये हितकर हैं ॥ ४-५ ॥

नासावद्वनरोधेद् नस्यर्मरिचनिनितैः नरं जागारयेद् भूमी भूद्वित्तं मदमाहतः ॥ ६ ॥

नाक और मुख को अवरुद्ध करने (बन्द करने) से और मरिन के चूर्ण का नस्य देने से भूमि में पड़े हुए मद और मारुत से मूर्च्छित मनुष्य चैतन्य होते हैं ॥ ६ ॥

अथ रसाः

रमरलप्रदीपात्—

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायामनुशीलयेत् । शीतसेकावशाहादि सर्वे या पीड़नं हितम् ॥ १ ॥

कणा—मधुयुत सूतादिरस—पीपरि के चूर्ण और मधु इनके साथ अर्थात् इस अनुपान से पारद मरम अथवा रससिन्दूर की मूर्च्छारोग में सेवन करने से लाभ होता है और शीतल जलादि

से सिद्धन, शीतल जल में डुबकी लगाकर स्नान करना और सब प्रकार का पीड़न (पीड़ा पहुंचाना) आदि कर्म मूर्च्छारोग में हितकर हैं ॥ १ ॥

अथ पथ्यम्

जीर्णा यवा लोहितशालयश्च कौम्भं हविसुर्द्वस्तीनयूधाः ।

धन्वोद्वचा मांसरसाश्च रागाः सखाङ्गवा गद्यपथः सिना च ॥ १ ॥

पुराणकृष्णाण्डपटोलमोचहरीनकीदाङ्गिमनांगिकेलम् ।

मधुकपुष्पाणि च तण्डलीयसुपोदिकाऽङ्गानि लघूनि चापि ॥ २ ॥

अरयुच्चशब्दोद्भुतदर्शनं च शीतानि वायान्यपि चोरकटानि ।

त्रेयः श्रुतेश्विन्ननमात्मबोधो धैर्ये च मूर्च्छास्त्रिनि पथ्यवर्गः ॥ ३ ॥

पथ्यपथ्य—पुराना यव, लालवर्ण के शालिधान का चावल, सौंवर्ष का पुराना धूत, मूंग और मटर का यूष, धन्वदेश (मरभूमि) में उत्पन्न जीवों का मांसरस, मुरब्बा, गोदुरप, मिश्री, पुराने शेत कुषमाण्ड (भत्रआ वा पेठा), परवर, केला, हर्रा, अनार, नारियल, महुए के फूल, चौराई का शाक, पोई का शाक, लतुपाक अव, अति उच्चस्वर से बोलना, अद्भुत पदार्थों का दर्शन, गीत तथा उत्कट बाजा आदि सुनना, परिश्रम करना और उससे श्रान्त हो जाना, वेद-शास्त्र का चिन्तन करना, अत्मज्ञान पर विचार, धैर्यधारण करना, ये सब मूर्च्छारोग में पथ्य हैं ॥ १-३ ॥

नासामुखद्वारमस्त्रिशोधो विरेचनं द्वृतलङ्घनानि ।

द्वाया नभोद्धरमः शतसौत्सर्विमधूनि तीण्णानि च लाजमण्डः ॥ ४ ॥

नासिका और मुख के द्वार को अवरुद्ध कर वायु अर्थात् श्वास का अवरोध कर देना, विरेचन करना, वमन और लहून करना, छाया में रहना, आकाश का जल अर्थात् वर्षा का जल पीना, सौंवर धोया हुआ धृत लगाना, मधु खाना, तौक्षण पदार्थों का सेवन करना और धान की खीलों का माँड़ बनाकर सेवन करना ये सब मूर्च्छारोग में पथ्य हैं ॥ ४ ॥

अथापश्यम्

ताम्बूलं पचशाकानि दन्तवर्षणमात्पम् ।

विरुद्धान्दन्तपानानि व्यवायं व्येदनं कटुम् । विषमूत्रवेगरोधं च तक्मूर्च्छामधी व्यजेत् ॥ ५ ॥

अपथ्य—पान खाना, पसे वाले शाक भाजी खाना, दाँतों को अधिक रगड़ना, धूप में रहना, विरुद्ध (शीर-मस्त्यादि) अत्र एवं पेय पदार्थों का सेवन करना, मैथुन करना, स्वेदकर्म करना, कुरुम वाले पदार्थों का सेवन करना, मल-न्यादिक के वेगों को रोकना और तक का सेवन करना ये सब कर्म मूर्च्छा का रोगी त्याग देवे अर्थात् मूर्च्छारोग में ये सब अपथ्य हैं ॥ ५ ॥

अथ पानात्ययपरमद्वपानार्जीर्णपालत्रिभ्वभिन्दानम्

ये विषस्य गुणः प्रोक्तास्ते च मध्ये प्रतिष्ठिताः । तेज भित्योपद्यक्षेन भवत्युग्रो मदात्ययः ॥

मदात्यय का निदान—विष के जो गुण हैं वे ही गुण मध्य में भी स्थित हैं, इस लिये उस मध्य के मिथ्या उपयोग से (अविधि तथा अधिक सेवन से) मदात्ययरोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ६ ॥

किन्तु मध्यं स्वभावेन व्यवहारं तथा स्मृतम् । अयुक्तिसुक्तं रोगाय युक्तिसुक्तं यथाऽसृतम् ॥ ७ ॥

किन्तु मध्य जो है वह स्वभावादिक रीति से अन्त ही के समान है यथापि मध्य और विष समान गुण बाले हैं तो भी जिस प्रकार अन्त शरीर का धारण-पोषण करता है उसी प्रकार मध्य भी शरीर के लिये हितकर है । अयुक्तिपूर्वक (अविधिपूर्वक) इनका (मध्य और अन्त का भी) सेवन

किया जावे तो रोगकारक होते हैं, लेकिन युक्तिपूर्वक सेवन करने से अमृत के समान लामदायक होते हैं ॥ २ ॥

शुद्धकायः प्रिदेत्प्रातः सोपदंशं पलहृयम् । मध्याह्ने द्विगुणं तद्वच विग्रधाहारेण पाययेत् ॥३॥
प्रद्वेषेऽपलं तद्वृत्पात्रा मध्यसायने । आरोग्यं धातुराग्न्यं च द्विकान्तिवलप्रदम् ॥ ४ ॥

अनेन विधिना सेव्यं मध्यं नित्यमतिन्द्रितैः ।

मध्यपान की विधि और मात्रा—प्रातः शरीर को शौचादिक क्रिया से शुद्ध कर उपर्दश के सहित अर्थात् मध्य के समय के खाद्यपदार्थ के सहित जो मध्य में रुचि उत्पन्न करने वाले हों उनको भक्षण कर दो पल के प्रमाण से भवपान करे । और यदि मध्याह्न में पीवे तो दिनभ्य आहार करने के पश्चात् ४ पल के प्रमाण की मात्रा से भवपान करे और रात्रि में भोजन के पश्चात् ८ पल के प्रमाण की मात्रा से मध्यपान करे । इस प्रकार से (ऐवित) इस मध्यरूपी रसायन के सेवन करने से आरोग्य होता है, धातुओं में समता होती है और अग्नि, कान्ति तथा बल में वृद्धि होती है इस प्रकार से नियंत्रण अतिन्द्रित (आल्स्यरहित) होकर मध्यपान करना चाहिये ॥ ३-४ ॥

बुद्ध्यादयोगुणा यावदुल्लसन्ति निरत्ययाः । मात्रा स्त्रा विहिता मध्यपाने रोगाय चापरा ॥५॥

मध्यपान की विहित मात्रा—मध्यपान करने पर जब तक बिना कष्ट के बुद्धि आदि की मात्रा (गुण) में उडास (बृद्धि) होवे तभी तक मनुष्य मध्य की मात्रा अपने लिये उपयुक्त समझे अर्थात् जितने मध्य में मध्यपान करने पर ज्ञान में बुद्धि होती दिखाई देवे तभी तक (उसी प्रमाण तक) मध्य की मात्रा समझनी चाहिये । इसके विपरीत (अधिक मात्रा में या ज्ञान लोप होने तक में) सेवन करने में वह मध्य रोगकारक होता है ॥ ५ ॥

लघुतीचणोणसूधमालव्यवायाशुगमेव च । रुचं विकासि विशदं मध्यं दशगुणं स्मृतम् ॥६॥

मध्य के गुण—१ लघु २ तीक्ष्ण ३ उष्ण ४ सूक्ष्म ५ अम्ल ६ व्यवायां ७ आशुग (शीघ्र शरीर में व्यापक होने वाला) ८ रुक्ष ९ विकासी और १० विशद इस प्रकार दस गुणों से युक्त मध्य होता है ॥ ६ ॥

मध्यस्याम्लस्वभावस्य चत्वारस्तु रसाः स्मृताः । मधुरश्च कषायश्च कटुकस्तिरुपचर्च एव च ॥७॥

अम्ल स्वभाव मध्य में चार रस और युक्त होते हैं ऐसा कहा गया है जैसे मधुररस-कषाय-रस-कटुरस और तिक्त रस अर्थात् लवणरस को छोड़कर शेष सभी रस उपस्थित रहते हैं ॥ ७ ॥

विषं प्राणहरं तद्वच युक्तियुक्तं रसायनम् । प्राणाः प्राणभृतामन्नं तद्युक्त्या निहन्त्यसुन् ॥८॥

विष प्राणनाशक वस्तु है लेकिन वह युक्तिपूर्वक (विष से) सेवन करने से रसायन होता है । और प्राणियों के लिये (मनुष्यों के लिये) अब ही प्राण है (रक्षक है) किन्तु अयुक्ति से सेवन किया जाय तो प्राण का नाशक हो जाता है ॥ ८ ॥

मध्यमुण्ठं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च । रुचमाशुकरं चैव व्यवायां च विकासि च ॥९॥

मध्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, रुक्ष, आशुकर, व्यवायां तथा विकासी होता है ॥ ९ ॥

औषध्याद्वितीयोपचारं च तैक्षण्याद्वन्ति मनोगतिम् ।

विशायव्यवायान्मैवयाद्वैश्याद्वैश्याकफशुक्रनुत् ॥१०॥

मध्य उष्ण होने से शीत को नष्ट करने वाला होता है, तीक्ष्ण होने से भन की गति (मनो-वेग) को नष्ट करता है, सूक्ष्म होने से अवयवों में प्रवेश करने वाला होता है और विशद होने से कफ और शुक्र को नष्ट करता है ॥ १० ॥

माहूतं कोपवेद्वैश्याद्वैश्यादाशुकरिं च । हर्षदं च व्यवायित्वाद्विकशित्वाद्विसर्पति ॥११॥

रुक्षगुण वाला होने से वात को कुपित करता है, आशुग होने से आशुकारी प्रवृत्ति करता

है (पीने वाले में शोषणाकारक प्रवृत्ति को उत्पन्न कर देता है), व्यवायी होने से हर्ष को देने वाला (मैथुन में हर्ष बढ़ाने वाला तथा शक्ति बढ़ाने वाला) होता है, और विकासी होने से शरीर में फैलने वाला होता है ॥ ११ ॥

तद्वलं रसनः ग्रोकं लघुश्चेष्यनपाचनम् । केविल्लवणवज्यास्तु रसांस्तत्राऽदिक्षिण्ति हि ॥१२॥

मध्य में अम्लरस उपस्थित रहने के कारण-मध्य लघु-दीपन तथा पाचन होता है । कोई २ आचार्य लवणरस को छोड़ कर शेष पांचों रस मध्य में मानते हैं । (ऐसा है भी, क्योंकि चार रस (मधुर-कषाय-कटु और तिक्त) तो माना ही जाता है और अम्लरस मध्य में स्वाभाविक रहता है अस्तु लवण रस के अतिरिक्त शेष पांचों रस इसमें उपस्थित हुए हैं) ॥ १२ ॥

विधिनोपयुक्तस्य फलमाह—

विधिना मात्रायां काले हितैरस्त्रैर्यथाक्षलभ् । ग्रहष्टो यः पिवेन्मध्यं तस्य स्थाक्षृतं यथा ॥१॥

विधिपूर्वक सेवित मध्य के फल—जो मध्य उपयुक्त विधि से, योक्त मात्रा से, उपयुक्त समय पर, हितकर अन्नादिक पदार्थों के साथ, वयावल (अपनी शक्ति के अनुसार) प्रसन्न चित्त होकर पीया जाता है (अर्थात् जो मनुष्य इस नियम से पीते हैं उनके लिये) वह मध्य अमृत के समान गुणकारी होता है ॥ १ ॥

स्त्रियधैः सदन्नैर्मस्त्रैश्च भव्यंत्यस्थ सह सेवितम् । भवेदायुःप्रकर्चय बलायोपचयाय च ॥२॥

दिनभ्य (रुक्षेहुक्त) उत्तम अन्नों के साथ, मांस के साथ तथा अन्य भक्षण पदार्थों के साथ सेवन किया हुआ मध्य आयु की बुद्धि करने वाला होता है और वेल को बढ़ाने वाला होता है ॥ २ ॥

काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रमं एव च । विधिवसेव्यमाने तु मध्ये संविहिता गुणः ॥३॥

विधिपूर्वक सेवन किये हुए मध्य में काम्यता, मनस्तुष्टि, तेज और पराक्रम ये गुण होते हैं ॥

मध्यस्य प्रथमदमाह—बुद्धिस्मृतिमीतिकरः सुखश्च पानाष्ट्रिनिद्रारतिवर्धनश्च ।

संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरथः प्रथमो मध्यो हि ॥ १ ॥

प्रथम मध्य के लक्षण (साम्बिक के लक्षण)—मध्यपान से प्रथम (उत्तम साम्बिक) मध्य होता है उसमें बुद्धि, स्मृति (स्मरणशक्ति) और प्रीति, इनकी बुद्धि होती है, सुख मालम होता है, पेत-पान, अन्न-भक्षण, निद्रा और रतिशक्ति में बुद्धि होती है, पाठ की शक्ति, गान की शक्ति और स्वर की शक्ति में बुद्धि होती है और अत्यन्त आनन्द का अनुभव होता है अर्थात् ये लक्षण साम्बिक मध्य के हैं ॥ १ ॥

मध्यमदमाह—बुद्धिस्मृतिविवेषणः सोऽमस्तलीलाङ्गातिरप्रशान्तः ।

आलस्यनिद्राभिहतो सुखश्च मध्यंन मध्यः पुरुषा मदेन ॥ १ ॥

मध्यम (राजस) मध्य के लक्षण—मध्यपान से द्वितीय (राजस) मध्य जो होता है उसमें बुद्धि, स्मृति (स्मरणशक्ति), वक्ष्यशक्ति और चेष्टा ये अव्यक्त हो जाते हैं अर्थात् ये स्पष्ट नहीं होते हैं, और उन्मत्त (उन्माद की भाँति) पुरुष की भाँति लीला (कर्म) आदि उसके हो जाते हैं और अद्वान्त चित्त रहता है, तथा उसे आलस्य और निद्रा बार २ होती रहती है । अर्थात् ये राजस मध्य के लक्षण हैं ॥ १ ॥

तृतीयमदमाह—गच्छेदेशाद्यां न गुरुं च मन्येत्वादेवभव्याणि च नष्टसंज्ञः ।

ब्रूयाच्च गुरुणि हृदि स्थितानि मध्ये तृतीये पुरुषोऽस्वतन्तः ॥ १ ॥

तृतीय (तामस) मध्य के लक्षण—मध्यपान करने से तृतीय मध्य (तामस मध्य) जो होता है उसमें बुद्धि ऐसी ऋष हो जाती है कि वह अगम्यागमन (जिस खीं के साथ मैथुन करना अनुचित है उस खीं के साथ मैथुन करता है), गुरुजनों को नहीं मानता है अर्थात् उनका आदर

नहीं रखता है, अभक्ष्य पदार्थों को भक्षण करता है और संज्ञाहीन (अज्ञान) हो जाता है, हृदय में स्थित युस वालों को भी कह देता है अर्थात् अज्ञानवश युस नहीं रख सकता और अस्वतन्त्र (अपने वश में नहीं रहने वाला) ही जाता है। अर्थात् ये तामस मद के लक्षण हैं ॥ १ ॥

सुशुतोक्तं चतुर्थमदमाह—

चतुर्थं तु मदे मूढो अग्रमदार्चिव निष्क्रियः । कार्याकार्यविभागाङ्गो मृतादप्यपशो मृतः ॥ २ ॥

सुशुत के मत से चतुर्थ मद (अति तामस) के लक्षण—मद पान करने से चतुर्थ (अति तामस) जो मद होता है उसमें मनुष्य मूढ होकर टूटे हुए बृक्ष की भाँति निष्क्रिय (अकर्मण्य) होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है और कार्याकार्य के विचार से शून्य हो जाता है तथा एक दूसरे हृप में मृतक (मरे हुए के तुल्य) ही हो जाता है ॥ २ ॥

को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम । वहुद्वेषिमिवामूढः काननार्द स्वतवशः कृती ॥ २ ॥

इस प्रकार के भयद्वारा दूसरे रूप में उन्माद के समान इस चतुर्थ मद को कौन पुरुष प्राप्त होगा ? अर्थात् कौन मूर्ख इस प्रकार का मद पान करेगा जो इस चौथे मद को प्राप्त होगा । जैसे बहुत दोषों से युक्त भयद्वारा गहन वन में कोई भी पुरुष स्वतः नहीं जावेगा इसी प्रकार इस चतुर्थ मद को भी नहीं प्राप्त होगा ॥ २ ॥

श्लैषिमिकानिलप्रकृतेः फिनश्चमानोपसेविनः । पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीतं तु आधते ॥ ३ ॥

अधिक मध्यपान के योग्यायोग्य पुरुष—जिसकी प्रकृति कफ और वात की हो और जो स्त्रियों पदार्थों को अधिक सेवन करने वाला हो वह यदि अधिक भी मध्यपान करे तो उससे उसको अधिक कष्ट नहीं होता है किन्तु इससे विपरीत (अर्थात् पित्तादि प्रकृति का तथा अस्त्रिय-भक्षणकारी मनुष्य) यदि अधिक मध्यपान करे तो उसे अधिक कष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथाविधिमद्यपानस्य विकारकारणत्वमाह

निर्मुकमेकान्तत पूव मध्यं निषेद्यमाणं मनुजेन विश्यम् ।

आपादयेकष्टमानिविकारानापादयेष्वापि शरीरमेष्वम् ॥ १ ॥

अविधि से सेवन किये मध्य के दोष (अविधि से सेवन करने से अन्य विकारों की उत्पत्ति)—जो मनुष्य नित्य भोजनादिक की व्यवस्था करने के बिना (विधि रहित) अर्थात् मध्यपान में जो अज्ञादि भक्षण कर मध्य पीने का विधान है उसके बिना, केवल मध्य का ही सेवन करते हैं उहाँ वह मध्य अत्यन्त कठिन कष्टदायक विकारों (रोगों) को उत्पन्न करता है और शरीर को भी नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

क्रुद्देन भीतेन पिपासितेन शोकभितसेन त्रुभुजितेन ।

व्यायामभाशधपरिक्षेतेन वेगावराधाभिहतेन वाऽपि ॥ १ ॥

अत्यक्षमध्यावततोष्ठरेण साजीणं सुक्षेन तथाऽवलेन ।

उष्णाभितसेन च सेव्यमानं करोति मध्यं विविधानिविकारान् ॥ २ ॥

क्रोधित मनुष्य, भयभीत, पिपासित, शोकसन्तस, वमुक्षित, व्यायाम से और अधिक भार ढोने से तथा मार्ग चलने से परिक्षत (शान्त) और वेगाधात (मल-मूत्रादिक के वेग के अवरोध) के कारण पीड़ित, अत्यन्त अन्न खाने से जिसका पेट फूला हुआ हो और जो अजीर्ण में भोजन, किया हो, निवेल हो और ऊर्मा से व्याकुल हो ऐसे मनुष्य से सेवित मध्य (अर्थात् इन कारणों वाला मनुष्य यदि मध्य सेवन करे तो) अनेक प्रकार के विकारों को उत्पन्न कर देता है ॥ १-२ ॥

तानेत्र विकारानिवृणोति—

पानात्ययं परमदं पानाजीणं मध्यापि वा । पानविश्रमसुग्रं च तेषां वस्यामि लक्षणम् ॥ ३ ॥

उस विधिरहित मध्यपान से उत्पन्न विकारों के नाम—अविधि से सेवित मध्य से उत्पन्न होने वाले पानात्यय, परमद, पानाजीण और भयद्वारा पानविश्रम नाम के रोग उत्पन्न होते हैं, जिनके लक्षण आगे कहे जाते हैं ॥ ३ ॥

तत्र वातिकमदात्ययमाह—

हिक्काशासचिरः करुणाप्रस्तुत्यग्राम्यशूलग्रामाराहैः । विचाद्वाहुप्रलापस्य वातग्राम्यं मदात्ययम् ॥ ३ ॥

वातिक मदात्यय के लक्षण—जिस मदात्यय रोग में हिक्का, श्वास, सिर में कम्पन, पार्श्व देश में शूल, अनिद्रा और बहुत प्रलाप हो उसे वात के कोप का मदात्यय जानना चाहिये। अर्थात् ये लक्षण वातज मदात्यय के हैं ॥ ३ ॥

पैत्तिकमाह—

तृणादाहुपरस्वेदमोहातीसारविश्वमैः । विचाद्वरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ ३ ॥

पैत्तिक मदात्यय के लक्षण—जिस मदात्यय रोग में तृष्णा, दाह, उवर, स्वेद, मोह (मूच्छाँ), अतीसार और भ्रम हो और उसके शरीर का वर्ण हरित वर्ण (नीलवर्ण) का हो जावे उसे पित्त के कोप का मदात्यय जानना चाहिये। अर्थात् पित्त ज मदात्यय के ये लक्षण हैं ॥ ३ ॥

ज्येष्ठानि तत्र विषजा सुविनिश्चितानि पित्तप्रकोपजनितानि च लक्षणानि ॥ ३ ॥

इन सब लक्षणों को विद्धान् वैद्यों ने पित्त प्रकोप से उत्पन्न मदात्यय के लक्षण निश्चित किये हैं ॥ ३ ॥

इलैषिमकमाह—

छुट्ट्यं गोचकहृष्टासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः । विचाद्वैष्णवीतपरीतस्य कफग्राम्यं मदात्ययम् ॥ ३ ॥

कफज मदात्यय के लक्षण—जिस मदात्यय रोग में कम्पन, अरुचि, हृल्लास (लबकाई), तन्द्रा, स्तैमित्य (आद्रवस्थ से वेष्टित) की भाँति, गौरव (शरीर का भारीपन) और शीत से युक्त शारीरोना अर्थात् शीत लगना ये सब लक्षण हों उसे कफ के कोप का मदात्यय जानना चाहिये ॥ ३ ॥

त्रिदोषदिवोषजमाह—

ज्येष्ठिदोषजश्वापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः । द्विदोषसर्वविश्वस्तु द्विदोषजः ॥ ३ ॥

त्रिदोषज-द्विदोषज मदात्यय के लक्षण—जिस मदात्यय में सब दोषों (वात-पित्त और कफ) के लक्षण एकत्र दिखाई पड़े उस मदात्यय को त्रिदोषज जानना चाहिये और जहाँ दो-दो दोषों (वात-पित्त, पित्त-कफ और कफवात) के लक्षण एकत्र दिखाई पड़े वहाँ उस (मदात्यय) को द्विदोषज जानना चाहिये ॥ ३ ॥

परमदमाह—

श्लेष्मोद्दूष्योऽङ्गमुहुता सप्तरास्यता च विषमूत्रसिकिरथ तन्द्रिररोचकश्च ।

लुङ्घं परस्य तु मदस्य वदनित उज्ज्वास्तृणा कजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः ॥ ३ ॥

परमद के लक्षण—मध्यपान से उत्पन्न जिस रोग में कफ अधिक हो जावे, शरीर मारी मालूम हो, मुख का स्वाद मधुर हो जावे, मल-मूत्र का अवरोध हो जावे, तन्द्रा, अरुचि, तृष्णा, सिर-में पीड़ा हो तथा सन्धियों में टूटने के समान पीड़ा हो यदि ये सब लक्षण हों तो उसे परमद रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

पानाजीणपानविश्रमावाह—

आर्धमानसुग्रम्य चोद्रिरणं विद्वाः पाने त्वजीणसुपगच्छति लक्षणानि ।

हृद्राश्वभेदकसंस्तुत्यग्राम्यशूलग्राम्यशिरसोरुजनप्रदाहाः ।

द्वेषः सुराश्विकृतेष्वपि तेषु तेषु तं पानविश्रमसुशब्द्यखिलेन धीराः ॥ ३ ॥

पानाजीर्ण और पानविभ्रम के लक्षण—मद्यपान से उत्पन्न जिस रोग में पेट में पेट में अत्यन्त रोग कहते हैं और जिस मद्यपान से उत्पन्न रोग में हृदय तथा शरीर में टूटने की भाँति पीड़ा हो, कफ का अधिक स्राव हो, कण्ठ में धूम भरने की भाँति ज्ञात हो और मूच्छा, वमन, ऊंचर, सिरे में पीड़ा और दाह तथा सुरा और अन्न के पदार्थों से अनिच्छा हो, ये सब लक्षण हों उसे विद्वानों ने पानविभ्रम रोग कहा है ॥ १ ॥

अथासाध्यलक्षणमाह—

हीनोत्तरोष्टमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्यमति पानहतं त्यजेत् ।
जिह्वाउष्टदत्तमसितं खथवाऽपि नीलं पीते च यस्य नशने रुधिरप्रमे च ॥ १ ॥

पानात्यय के असाध्य लक्षण—जिस पानात्यय के रोगी का ऊपर का थोड़ा हीन (छोटा) हो जावे, शरीर शीतल हो गया हो और भीतर अधिक दाह हो अथवा कभी शीत लगे और कभी दाह हो, मुख की प्रभा तेल लगे हुए की भाँति दाह मुख पर ऐसा ज्ञात हो कि तेल लगाया गया है, जीभ, ओठ और दाँत कृष्ण वर्ण अथवा नील वर्ण के हो जावे और जेत्र पीत वर्ण के अथवा रुधिर के वर्ण के (लाल). ही जावे उस पानात्यय के रोगी को असाध्य समझ कर त्याग देना चाहिये ॥ १ ॥

उपद्रवानाह—

हिङ्का उवरो वस्तुवेष्युपाश्वर्वशूलः कासधमावपि च पानहतं त्यजेत्तम् ॥ १ ॥
पानात्यय रोग के उपद्रव—जिस पानात्यय के रोगी को हिङ्कां, ऊंचर, वमन, कम्पन, पाश-शूल, कास, अम-आदि हों उसे त्याग देना चाहिये अर्थात् पानात्यय रोग के ये सब उपद्रव कहे गये हैं । और इनके उपस्थित हो जाने पर रोगी अवश्य मृत्यु की प्राप्त होता है ॥ १ ॥

पानात्ययादीनां चिकित्सा—मध्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ।

जीर्णमध्याय दात्तद्यं वातपानात्ययापहम् ॥ १ ॥

पानात्यय आदि की चिकित्सा—वातज पानात्यय की चिकित्सा—सौवर्चल नमक, सौंठि, पीपरि, मरिच, इनका चूर्ण और कुछ जल मिला कर मध्य पिलाने से मध्य की जीर्णता से उत्पन्न वातिक पानात्यय रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

युक्तं सौवर्चल शृङ्खीश्युषणाद्वक्दीप्यकैः । मध्यं पीत्वा ज्यायुग्रं पवनोद्यं मदात्ययम् ॥ २ ॥

शुक (सिरक), सौवर्चल लवण, काकड़ासिंगी, सौंठि, पीपरि, मरिच, अद्रक का जवाइन, का चूर्ण (इन सब का समान भिलित चूर्ण) मध्य में मिलाकर पान करने से उग्र (कठिन) वातिक मदात्यय रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

पित्तपानात्यये पेयं वटशूलं हिमग्नुना । सशकरं पुनर्मध्यं पित्तेभिक्षिज्जलान्वितम् ॥ १ ॥

पित्तज पानात्यय की चिकित्सा—पित्तज पानात्यय में वट वृक्ष के अंडुर को शीतल जल के साथ पीस कर पान करे और मध्य में शर्करा और कुछ जल मिलाकर पान करे तो पित्तज पानात्यय नष्ट होता है ॥ १ ॥

इदायलक्षर्जुरपरूपकहिमं पित्तेत् । लिताविमिग्रितं पीतं पानात्ययविकारनुत् ॥ २ ॥

छोटी कटेरी, आंवला, खजूर और फालसा इनको सम भाग लेकर मिलो कर विषपूर्वक हिम बना कर उसमें शेष शर्करा का प्रश्नेप देकर पान करने से पित्तज पानात्यय रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

कफपानात्ययचिकित्सा—

पानात्यये कोरथे तु तत्पोरबोल्लेखनं चरेत् । यथाबलं लंघनं च दीपनीयौषधानि च ॥ ३ ॥
कफज पानात्यय की चिकित्सा—कफज पानात्यय रोग में मध्य ही को पीकर कफ का उल्लेखन करे और बल के अनुसार लंघन करे तथा दीपन औषध का उपयोग करे ॥ १ ॥

बटाङ्गलवणम्—

सौवर्चलममाजी च वृक्षारलं साङ्केततसम् । त्वगेषामरिचाधांशं शक्कराभागयोजितम् ॥ १ ॥
पृत्तश्वरणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपयनं परम् । मदात्यये कफोरथे तु दद्यात्तोतेविषोषनम् ॥ २ ॥

बटाङ्गलवण—सौवर्चल नमक, जीरा, वृक्षारल (कोकम), अम्लवेत और दालचीनी, इलायची, मरिच, इनमें से प्रथम कही हुई चारों वस्तुओं को ५क २ भाग लेवे और पश्चात की दालचीनी आदि तीनों औषधियों को आधा २ भाग लेवे और शक्करा एक भाग लेकर विषिवत् चूर्ण कर एकव र कर लेवे । यह 'बटाङ्गलवण' कहा जाता है । यह अत्यन्त अद्यादीपक है, कफ से उत्पन्न मदात्यय रोग में सेवन करने से स्त्रीों को शुद्ध करता है और कफज मदात्यय को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम् ।

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शान्तिं याति मदात्ययः ॥ ३ ॥

विदोषज पानात्यय की चिकित्सा—विदोषज पानात्यय में सब प्रकार की चिकित्सा विचार कर करनी चाहिये । इन क्रियाओं के सिद्ध होने पर (समुचित उपयोग होने पर) मदात्यय रोग शमन हो जाते हैं । (इसी भाँति द्विदोषज में भी विचार कर मिलित चिकित्सा करनी चाहिये) ॥ १ ॥

सामान्यप्रतीकारः—मधुना हन्त्यपयुक्ता विकला रात्रौ गुडाद्रकं प्रातः ।

सामान्यहात्पथमुजो मदमूर्छाकामलोन्मादान् ॥ १ ॥

सामान्य प्रतीकार—रात्रि में विकला का चूर्ण उपयुक्त मात्रा से मधु के अनुपान से सात दिन तक सेवन करने से अथवा प्रातः गुड़ और अद्रक का सात दिन तक सेवन करने से और पथ्य से भोजनादि करने से मद-मूर्छा—कामला और उन्माद रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वृन्दात्—

हुःस्पर्शन समुद्देन सुस्तपर्पटकेन ला । जलं सुन्देतः श्रतं वाऽपि दद्याहोषविपाचनम् ॥ २ ॥

जवासा और नागरमोथा, अथवा नागरमोथा और पित्तपापडा अथवा केवल नागरमोथा को ही लेकर जलपाक विषि से पाक कर सेवन करने को मदात्यय में दोषों के पाचन के लिये देना चाहिये ॥ २ ॥

पतदेव च पानीयं सर्वव्यापि मदात्यये । निरन्तरं पीयमानं पिपासादवरनाशानम् ॥ ३ ॥

ये उपयुक्त तीनों प्रकार के सिद्ध जल सब प्रकार के मदात्यय रोगी में देना चाहिये । और इसके निरन्तर पान करने से पिपासा और ऊंचर नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

चिकित्सासारात्—

चव्यं सौवर्चलं हिङ्गु पूरकं विषभेषजम् । चूर्णं मध्येन पातव्यं पानात्ययहन्त्यपहम् ॥ १ ॥

चन्द्रादि-चूर्ण—चव्य, सौवर्चल लवण, शुद्ध हींग, विजौरा नीबू का गूदा और सौंठि इन औषधियों को समान लेकर चूर्ण कर मध्य में मिलाकर पान करने से पानात्यय की पीड़ा नष्ट होती है अर्थात् पानात्यय रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

मध्यः सर्जूरमृद्दीकावृचाम्लाग्निकदादिमैः । सपरूपैः सामलक्यैर्युक्तो मध्यविकारमृतः ॥ १ ॥

खर्जूरादि मन्थ—खजूर, मुनका (किसमिस), बृक्षाम्ल (कोकम), इमली, अनार, कालसा, और आँवला इन ओषधियों का विधिपूर्वक बनाया हुआ मन्थ सेवन करने से मद्य के विकारों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात्—

मथितं गोदधिसहितं तैलं कर्पूरसंमिश्रम् । आस्थाच्य पीतमाशु छपयति पानात्ययं रोगम् ॥

मथितयोग—तिल का तैल और कर्पूर एकत्र मिश्रित कर चाटकर उपरे से गोदधि का मथित (तक) पान करने से शीघ्र मदात्यय रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

शतावरीपुनर्नवासपिः लुभ्योगतः—

शतावरीशसच्चीशयद्वीकरुक्तैः श्रुतं घृतम् । पुनर्नवाकाथयुतं पानात्ययमपोहति ॥ ३ ॥

शतावरी—पुनर्नवा घृत—शतावरि के स्वरस, क्षीरविदारी और जेटी मधु के कल्क और पुनर्नवा के काथ के साथ विधिपूर्वक मूर्छित गोघृत प्रमाण से लेकर पाक कर सिद्ध होने पर सेवन करने से पानात्यय रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

माषघृतम्—कट्फलमुस्तगुह्यधीमाषैः क्रमवर्धितस्त्रै तरसर्वम् ।

घृतमुदितं माषघृतं हन्याद्रूपं सुशाभव सपदि ॥ १ ॥

कट्फलादि घृत—कायफर, नागरमोथा, गुरुचि और उरद इन सबको क्रम से वर्दित लेकर अर्थात् कायफर १ भाग, नागरमोथा २ भाग, गुरुचि ३ भाग और उरद ४ भाग इस प्रकार लेकर कल्क कर इसी प्रमाण से मूर्छित गोघृत लेकर घृतपाक की विधि से पाक कर सेवन करने से यह माषघृत (इसे कट्फलादि या माषघृत दोनों कहते हैं) सुराजनित गन्ध को निश्चित नष्ट करता है ॥ १ ॥

मध्यं पीत्वा यदि वा तरचणमवलिङ्गं शर्करां सघृताम् ।

मद्यतिं न जातु मध्यं मनाग्निं प्रथितवीर्यमपि ॥ १ ॥

मद्य की मदनाशक शुक्ति—मध्य पीकर यदि उस समय शर्करा और घृत चाट लिया जाये तो अत्यन्त भद्रकारी तथा उग्रवीर्यं मद्य भी मद्य को (नशा) नहीं करता है ॥ १ ॥

सामान्यप्रतिकारः—अहूनि सप्त चाष्टौ वा नृणां पानात्ययः स्मृतः ।

पानात्यय रोग की अवधि—मनुष्यों को पानात्यय रोग सात अवधा आठ दिन तक रहता है ॥

पानं हि मउजतेऽजीर्णमत ऊर्ध्वं विमार्गंगम् । पानाजीर्णविनाशाय कुर्यात्कफहर्वं विधिम् ॥ १ ॥

पानाजीर्ण की चिकित्सा—अति मध्यपान करने से अजीर्ण अर्थात् पानाजीर्ण रोग हो जाता है, जिससे बातादिक दोष विमार्गामी होकर ऊर्ध्वंगमी हो जाते हैं । इसलिये पानाजीर्ण को नष्ट करने के लिये कफनाशक विधि करनी चाहिये ॥ १ ॥

वृन्दात् पूर्णमदप्रतीकारः—

पूर्णाभ्युदं प्रशमयत्यधिरेण जन्मतोराद्राय शङ्खरजसः ग्रवलस्थं गन्धम् ।

पूर्णन वा शशिरपुष्करिणीजलस्थं संसेवितरतिहितैव्यजनानिलेश ॥ १ ॥

पूर्णमद का प्रतीकार—सुपारी के सेवन से यदि मद्य हुआ हो तो उसमें शङ्ख के चूर्ण को नाक में सुंचाने से शमन हो जाता है, अथवा पुष्करिणी (पोखरी) का शीतल जल पीने से शमन हो जाता है अथवा अत्यन्त हितकर (ताढ़ आदि के) पंखे की बायु के सेवन से शमन हो जाता है ॥ १ ॥

कोद्रव—खजूरमदप्रतीकारः—

कृष्माण्डरसः सगुडः शमयति मदमाशु कोद्रवजम् । खजूरजं च दूरधं वशर्करं पानयोगेन ॥

कोद्रव तथा खजूर के मद का प्रतीकार—कोद्रो अच्छ खाने से यदि मद हुआ हो तो इवेत कृष्माण्ड (पेटा) के रस में गुड़ मिलाकर सेवन करने से शीघ्र मद शमन हो जाता है । खजूर के सेवन से यदि मद हुआ हो तो शर्करा मिलाकर दूध पान करने से शमन हो जाता है ॥ १ ॥

कज्जलीरसः—धात्रीऽवरसनिपीता रसरात्यककज्जली सितासहिता ।

हस्ति मद्यात्ययरोगान्सपदि मदस्तमानिवोरगान्सहस्रा ॥ १ ॥

कज्जली रस—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की समान मात्रा के योग की विधिपूर्वक बनी कज्जली—आँवले के स्वरस में मिश्री मिलाकर उसके साथ एकत्र मिलाकर यदि पान किया जावे (सेवन किया जावे) तो सब प्रकार के मदात्यय रोग को इस प्रकार नष्ट करती है जिस प्रकार गरुड़ सहसा सर्पों को नष्ट कर डालता है ॥ १ ॥

पथ्यम्—गोधूमयवसुदाश्च माषवष्टिकशालयः ।

तण्डुलीयं पटोलं च दक्षबहिंशामिषय । शीताम्बु चन्दनं स्नानं सेष्यमेतत्मदात्यये ॥ १ ॥

मदात्यय में पथ्य—गेहूं, बव, मूंग, उरद, साठीधान के चावल, शालिधान्य के चावल, चौराई के शाक, परवर, मुर्गी, मोर और शशक का मास, शीतल जल, चन्दन का लेप, स्तान वे सभी मदात्यय रोग में सेवन करना चाहिये । अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ १ ॥

अथ दाहनिदानम्

तीण्मुष्णं पित्तमध्यं दाहं प्राप्नोति मानवः । दाहः सप्तिविषः प्रोक्तो वै शास्त्रप्रकल्पितः ॥ १ ॥

दाह रोग के निदान—मनुष्यों को तीक्ष्ण तथा उष्ण मद्य पीने के कारण दाह रोग उत्पन्न हो जाता है, वह दाह रोग वैचक शाश्वत में सार्वत्र प्रकार का कहा और माना गया है ॥ १ ॥

मध्यजमाह—

स्वचं प्राप्तः स पानोधमा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः । दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्त्र भेषजम् ॥ १ ॥

मध्यज दाह—मध्य से उत्पन्न होने वाले दाह में जो मध्यपान की जड़ा है वह पित्त तथा रक्त से मूर्छित होती हुई त्वचा में प्राप्त होकर घोर दाह को उत्पन्न करती है । इस रैतान पर (मध्य दाह में) पित्त रोग की भाँति चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

रक्तजमाह—कृत्त्वदेहानुगं रक्तमुद्विर्लं वहति भ्रुवम् ।

समुद्धयते चोद्यते वा तात्राभस्तान्नलोचनः । लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥ १ ॥

रक्तज दाह में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहने वाला रक्त जड़ा से विकृत होकर वृद्धि को प्राप्त होता है तब दाह उत्पन्न कर देता है, उस दाह में मनुष्य का शरीर जलने लगता है (ताप हो जाता है), शरीर में चूसने के समान पीड़ा होती है, शरीर और नेत्र ताप्र वर्ण के समान लाल हो जाते हैं, अङ्ग से और सुख से लोह के समान गन्ध आती है और ऐसा हात होता है कि मानो सम्पूर्ण शरीर में अभिव्याप्त है अर्थात् सन्ताप होता है ॥ १ ॥

पित्तजमाह—पित्तजवरसमः पित्तात्य चाप्यस्य विषः स्मृतः ॥ १ ॥

पित्तज दाह—पित्त से उत्पन्न होने वाले दाह में पित्तजवर के समान पीड़ा होती है अतः इसकी चिकित्सा भी पित्तजवर की भाँति ही करनी चाहिये ॥ १ ॥

तृष्णानिरोधावधातौ चीणे तेजः समुद्रतम् । सबाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेम्बन्दचेतसः ॥ १ ॥

संशुष्कगलताक्षोषो जिह्वा निष्कृत्य वेपते ।

तृष्णानिरोधज दाह—तृष्णा के अवरोध से जो दाह उत्पन्न होता है उसमें तृष्णावरोध से शरीर के जलसम्बन्धी जो रस-रक्तादि धातु हैं वे क्षीण हो जाते हैं और तेज के अंश (जड़ा) की वृद्धि

हो जाती है जिससे वाया शरीर में और आम्बन्तर भी दाह (ताप) होता रहता है, चित्र को दशा मन्द हो जाती है (चेतना में न्यूनता या जाती है), गला-तालु और ओठ सूख जाते हैं तथा रोगी जिहा को सुख से बाहर निकाल कर कांपता रहता है ॥ १ ॥

असूजा पूर्णकोष्टस्य दाहेऽन्यः रथारसुदुःसङ्खः ॥ १ ॥

रक्तपूर्ण कोष्ठ दाह—किसी कारण से क्षेष में जब रक्त भर जाता है तब उसमें अत्यन्त कठिन दाह शरीर में उत्पन्न हो जाता है । (वाधात या किसी प्रकार के क्षतादि से जो आम्बन्तर ही होता है और उस क्षत ना रक्त बाहर नहीं निकल बर रहने से कोष्ठ में ही भर जाता है उस रक्त से पूर्ण कोष्ठ के कारण जो दाह उत्पन्न होता है वह असूजा होता है) ॥ १ ॥

धातुक्षयजमाह—

धातुक्षयो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृष्णान्वितः । आमस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद् भृशपीडितः ॥

धातुक्षयज दाह—धातुक्षय के कारण जो दाह होता है उसमें (रस-रक्तादि के क्षय के कारण) मूर्च्छा, पिपासा, स्वर की क्षीणता, शारीरिक क्रिया (उठना-बैठना आदि) की न्यूनता और पीड़ा के कारण पीड़ित रहना ये सब लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

क्षतजमाह—

क्षतजोऽनभतश्चासां शोचते बाऽप्यनेकधा । तेनाङ्ग दद्यतेऽद्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ १ ॥

क्षतजदाह—क्षत के कारण से जो दाह होता है उसमें रक्त-निर्गमन से अन्नादि नहीं मक्षण करने के कारण अथवा अनेक प्रकार की उसमें चिन्ता हो जाने से उस क्षती का अङ्ग अत्यन्त दाह से उक्त हो जाता है और उसमें तृष्णा-मूर्च्छा और प्रलाप भी रोगी करता है ॥ १ ॥

मर्माभिघातजमाह—

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः । सर्वं एव विवर्याः स्युः शीतगात्रेषु देहितुः ॥

मर्माभिघातज दाह—मर्मस्थानों में अधात हो जाने से जो दाह होता है वह सातवाँ दाह है उसे असाध्यजनना चाहिये और जिस दाह में दाह वाले का शरीर शीतल रहे और दाह हो वह भी असाध्य है । इन सब को त्याग देना चाहिये अर्थात् चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ दाहचिकित्सा

दाहेऽतिशिरिरं तोयं क्रिया कार्या सुशीतला । सर्वाङ्गे चन्दनाके पश्चन्दकस्त्रिकायुतः ॥ १ ॥

दाहरोग की चिकित्सा—दाहरोग में अत्यन्त शीतल जल सेवन करावे और सम्पूर्ण क्रिया शीतल ही करे और सम्पूर्ण अङ्गों में कपूर और कस्तूरी मिला कर विसे हुए चन्दन का लेप करे ॥ १ ॥

शीतनीरजलेषो वा धारागारनिवेशनम् । सहजस्नेहसोत्साहसुभ्यमञ्जुललापिनाम् ॥ २ ॥

बालकानां समाश्लेषतापं निर्वापयेज्जवात् । उशीरागारशयनं तालवृत्तानुवर्तनम् ॥ ३ ॥

साहित्यसरसा बाणी क्वीनां तापहृत्यम् । उत्कृष्टकुचसंसिधीणानां हरिणीदशाम् ॥ ४ ॥

गायनं सुकुमारीणां दाहसुरसाद्येद् द्रुतम् । रसोष्वससुद्भूते तापेऽपि सकले हतम् ॥ ५ ॥

शीतल जल के साथ कमल की पीस कर उसका लेप करना चाहिये और जल की धूरा जिस स्थान में गिरती हो (फौलवारा जहाँ लगा हो) उस स्थान में रोगी का निवास करावे और स्वामाविक, स्नेहयुक्त, उत्साहपूर्ण, मन को सुख करने वाले तथा मधुर भाषण करने वाले वालकों का आलिङ्गन आदि कर्म करने से दाह शीघ्र नष्ट होता है और खस लगे हुए घर में शयन करना, ताड़ के पत्र के बने च्यवानी (खंखों) से हवा करना तथा साहित्यरस से युक्त कवियों की वाणी सुनना ये तीनों दाहनाशक हैं । कैचे स्तनों में सटी हुई वीणा के साथ हरिणी के सदृश नेत्रों

बाली सुकुमारी हुन्दरियों का गायन सुनने से शीघ्र दाह नष्ट हो जाता है । और सब प्रकार के रस औरध आदि के सेवन से उत्पन्न दाह में भी हुन्दरियों का गायन हितकर है ॥ २-५ ॥
पानीयाभृतकं द्वाषाबालिकेरेत्पुष्टकराः । सेवनाय हितास्तापे कोमलं मूत्रलं फलम् ॥ ६ ॥

सब प्रकार के दाह में जल का सेवन, आँवला, द्राक्षा (किसमिस) इनको जल में पीसकर पीना, नारियल का पानी पीना, ईख का रस वा ईख चूसना और शंकरा जल में धोल कर पान करना और कोमल तथा मूत्रकारक (कर्कटी, खीरा आदि) फल का सेवन करना अत्यन्त हितकर है, अर्थात् इससे दाह शमन होता है ॥ ६ ॥

तद्दुलीयकमूलानि धात्यजीरकं पथः । तुलसीस्वरसं टङ्क तापेऽपि रसजे हितम् ॥ ७ ॥

पारद आदि रसों के भक्षण के कारण से उत्पन्न दाह में चौराई शाक की जड़, धनियाँ और जीरा इनको जल में पीस कर उस जल को सेवन करने से अथवा तुलसी का स्वरस एक टंक (४ मासा) पान करने से रस से उत्पन्न दाह नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

फलिनीलोध्रसेव्याम्बुद्धे व्यापत्रं कुट्टादम् । कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ८ ॥

फूलप्रियज्ञु, लोध, खस, सुगन्धबाला, नागकेसर, तेजपात, नागरमोया, इन सबको सम भाग लेकर पीत चन्दन के रस के साथ पीस कर शरीर में लेप करने से दाह में लाभ होता है ॥ ८ ॥

द्वीपरपद्मकोहीरचन्दनशोद्वारिणा । सर्पणामिवगाद्वत् द्रोणीं दाहादितो नरः ॥ ९ ॥

हाऊरे, पटुमकाठ, खस और चन्दन इन सबके चूर्ण को जलपूर्ण द्रोणी (नाद) में मिलो कर उसी पान में दाह के रोगी को बैठा कर सम्पूर्ण शरीर का अवगाहन करावे तो दाह नष्ट होता है ॥ ९ ॥

प्रातः पर्युषितं धान्यसलिलं सितया युतम् । अन्तर्दीहं हरेत् पीतं हुःखं हुर्गार्चनं यथा ॥ १० ॥

प्रातः काल पर्युषित धनियाँ का पानी (अर्थात् धनियाँ को रातभर पानी में मिलो कर) प्रातः येत शंकरा मिश्रित कर पान करने से अन्तर्दीह को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार दुर्गा का पूजन दुखों को नष्ट करता है ॥ १० ॥

सशर्करं सेन्दुष्टैलं शीतमम्भः पित्तेष्वः । तृष्णानिरोधतं दाहं हन्ति तोषमिवानुष्म ॥ ११ ॥

शर्करा, करूर और शिलाजीत शीतल जल में मिलाकर पान करने से तृष्णा-निरोधज दाह इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार जल से अस्ति नष्ट होता है ॥ ११ ॥

शार्वधरादान्यकादिहिमः—

धान्याद्धारीवासानौ द्वाषापेष्टोहिमः । रक्तपित्तं उवरं दाहं तृष्णा शोषं च नाशयेत् ॥ १२ ॥

धान्यकादि हिम—धनियाँ, आँवला, अरुसा, द्राक्षा और पित्तपापदा इनको समान लेकर विधिपूर्वक हिम बना कर सेवन करने से रक्तपित्त, उवर, दाह, तृष्णा और शोष ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

शीत्वा वेणुत्खचः क्वांश्च सङ्कृद शिशिरं नरः । रक्तसम्पूर्णकोष्ठोर्थं दाहं जयति तुहतरम् ॥ १३ ॥

बाँस की छाल का विधिपूर्वक काथ बनाकर शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से मनुष्य का रक्तपूर्ण कोष्ठ कठिन दाह नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

शार्वधरादत् सक्तुमन्यः—

पानितैः शीतनीरेण समृद्धैर्यवसवतुभिः । नासिसान्द्रद्वयैर्मन्थस्तृष्णादाहातिपित्तहा ॥ १४ ॥

सक्तुमन्य—शीतल जल के साथ जो के सत्तु को धोल कर पान कर उसमें धूत मिला कर मधित कर (मन्थ की विधि से मधित कर जो न अत्यन्त धूत हो न अत्यन्त द्रव हो हो) रोगी को सेवन करने से यह सत्तु का मन्थ तृष्णा, दाह तथा पित्त को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

दशसारचूर्णम्—

यद्यो वात्रोकं द्राक्षा पलाचन्दनधालकम् । मधुकुपुष्पं खजूरं दाढिमं पेषयेत्समम् ॥ १ ॥
सर्वतुल्या तिता योउथा पलाथं भवयेत्सदा । दशसारमिदं खण्टातं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ २ ॥

दशसार चूर्ण—जेठी मधु, आँवला, द्राक्षा, इलायची के दाने, चन्दन, सुगन्धबाला, महुए का फूल, खजूर और अनारादाना, इन सब द्रव्यों को समान लेकर विधिवत् चूर्णकर सब के बावर खेत शक्तरा मिलाकर इस में से आधा पल (२ कवच) के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह 'दशसार' नाम का चूर्ण सब प्रकार के पित्त के विकारों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मृतसंजीवनी वटिका—

षष्ठीमधुं छवङ्गं च शिला वस्कं मुदित्तथा । सहस्रभावना: कार्या नवतण्डुलवारिणा ॥ ३ ॥
थाममात्रं हृष्टं भर्तु वटिका कोलसिमिता । कृष्णकार्पासनीरेण तुण्णादाहरवराजयेत् ॥ ४ ॥
मृदुलाभ्रमापरोगं च वानितं पित्तं च नाशयेत् । मृतसंजीवनी नाडना पूज्यपादैक्षिरिता ॥ ५ ॥

मृतसंजीवनी वटिका—जेठीमधु, लंग, शिलाजीत, दालचीनी और छोटी इलायची इन सब को समान लेकर चूर्ण कर नये चावलों के धोबन के जल से १००० एक हजार बार भावित कर एक पहर तक खरल में घोटकर झरवैर के प्रमाण की वटी बनाकर काले कपास के पत्तों के रवरस के अनुपान से सेवन करने से तुषा, दाह और उत्तर को नष्ट करता है तथा मूर्छा-अम एवम् उपरोग (उन्माद आदि), दमन और पित्त रोग को नष्ट करता है । इस 'मृतसंजीवनी' नामक वटी को पूज्यपाद महर्षियों ने ग्रन्थालिपि किया था ॥ १-५ ॥

चन्दनादिचूर्णम्—

चन्दनोशीरकुषाद्वाद्वाद्रोक्तमुख्यलम् । मधुकुं मधुकुपुष्पं च द्राक्षा खजूरकं तथा ॥ १ ॥
चूर्णं कृतं सप्रतितं प्रातः शीतामधुना पिवेत् । रक्तपित्तं तथा वासं पैतं गुरुमं समुद्रेत् ॥ २ ॥

अङ्गदाहं शिरोदाहं शिरोदिभ्रममेव च ।

कामठों च प्रमेहोद्य वित्तउत्तिवशनम् । चन्दनाद्यमिदं चूर्णं पूर्यपादेन भाषितम् ॥ ३ ॥

चन्दनादि चूर्ण—चन्दन, खस, कूठ, नागरमोथा, आँवला, चारक (चौरा), नोलोफर, मुलहठी, महुए का फूल, द्राक्षा, खजूर इन सब ओवरियों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर सबके समान खेत शक्तरा मिलाकर यथायोग्य मात्रा से शीतल जल के अनुपान से सेवन करने से रक्तपित्त, वास, पित्त गुरुम, इन सब को नष्ट करता है और अङ्गों का दाह, सिर का दाह, सिर का घूमना, कामला, प्रमेह और पित्त-उत्तर को भी नष्ट करता है । यह 'चन्दनादि चूर्ण' है, इसे पूज्यपाद महर्षि ने कहा था ॥ १-३ ॥

खजूरादिचूर्णम्—

खजूरामलदीजानि विष्पलो च शिलाजतु । पलाचन्दुकपाचागचन्दनैर्वाद्वीजकम् ॥ १ ॥
थाम्याकं शक्तरायुकं पात्तयं उपेष्ट वारिणा । अङ्गदाहं लिङ्कदाहं गुदवङ्गगृष्णक जम् ॥ २ ॥

शक्तरामरिशुलघ्नं दूष्य बलकरं परम् ।

जाशयेन्मूत्रोगांशं तया दुक्षमवान्वि । शक्तरामिहितं यष्टीकषायं प्रपिवेत्तदा ॥ ३ ॥

खजूरादि चूर्ण—खजूर, आँवलों के बीज, पीपरि, शिलाजीत, इलायची के दाने, मुलहठी, पाषाणमेद, चन्दन, ककड़ी का बीज और धनियाँ इन सबको समान लेकर चूर्णकर शक्तरा मिलाकर चावलों के धोये हुए जल के अनुपान से सेवन करने से अङ्गदाह, लिङ्कदाह, गुदा-वंक्षण और शुक्कसम्बन्धी दाह, शक्तरारोग, अश्वमी और शूल को नष्ट करता है । यह दूष्य और अत्यन्त

बलकारक है और मूत्र तथा शुक्र सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है । इससे सेवन के पश्चात् जेठी मधु के काथ में शक्तरा का प्रक्षेप देकर पीना चाहिये ॥ १-३ ॥

वैद्यजीवनात्—

अथि नितमिवनि खेलनलालये मधुरवाणि निकाममधालसे ।

बपुषि दाहवर्ता चिह्नितं हिंसे हिमहिमांगुज्जलैरनुलेपनम् ॥ १ ॥

दाहचिकित्सा—हे सुन्दर नितम्बों वाली ! कीड़ा की हड्डा वाली ! मधुरभाषिणी ! काम के मद से मत प्रिये । दाह से पीड़ितों के शरीर में चन्दन, करूर और सुगन्धबाला का विधिवत् बनाया लेप अत्यन्त हितकारक है ॥ १ ॥

सहस्रधौसेन बृतेन दिग्धदेहस्य दाहः कृषातां विभर्ति ।

अम्याङ्गनासंगमसादारस्य स्वीपेषु दारेषु यथाऽभिलाषः ॥ २ ॥

एक हजार बार के धोये हुए धूत के लेप से दाह के रोगी का दाह इस प्रकार कम हो जाता है जिस प्रकार दूसरी २ जियों के संग रमण करने वाले पुरुष की अभिलाषा अपनी खो के साथ घट जाती है ॥ २ ॥

तुष्टादाहमोहाः प्रशमं प्रयाच्नित निष्पत्वालोपित्यफेवत्प्राप्तः ।

थथा नराणां धनिनां धनादि समागमाद्वारविकासिनीनाम् ॥ ३ ॥

नीम के कोपलों की पीस कर जल में धोल कर एक पात्र से दूसरे पात्र में बार २ करने से (केटने से) जो फेन उत्पन्न होता है उस फेन के लेप करने से तुषा, दाह और मोद इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार वेश्याओं के समागम से धनियों का धन नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

कुशाद्वैलघृते—

कुशादिविशालिपणीयजीवकर्वभसाभित्तम् । तेऽनु धूतं वा दाहनं वातपित्तविनाशनम् ॥ १ ॥

कुशादि तैल अथवा धूत—कुश, काश, शर (दाम), ईख की जड़, शालिपणी, जीवक, ऋषभक इन ओषधियों के काथ तथा ककड़ के साथ विधिपूर्वक मूर्चित तैल वा धूत लेकर पाक कर उस तैल अथवा धूत का सेवन करने से दाह नष्ट होता है और वात तथा पित्त को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

शालाश्रयां यथाम्यायं रोहिणीं व्यधयेष्विष्वराम् ।

रक्जातस्ततो दाहः प्रशास्यति न संशयः ॥ २ ॥

बाहुओं में स्थित रोहिणी नाम की सिरा को विद्र करने से रक्तजनित जो दाह है वह निस्सन्देह नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

धातुक्षयोत्थदाहं तु जयेदिष्टार्थसाधनेः । शोरमांसरसाहारैर्विभिनोक्तेन तत्र च ॥ ३ ॥

धातुक्षय से उत्पन्न दाह को इच्छित पदार्थों के सेवन से नष्ट करे और विधिपूर्वक दूध, मांस-रस आदि धातुक्षयक आहार को सेवन करावे तो धातुक्षयज दाह नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पित्तउत्थदः सर्वः पित्तदाहे विधिर्मतः ।

औदुम्बरस्य निर्यासः वित्तया दाहनाशनः ।

छिक्षासारः सितायुक्तः पित्तउत्थरनिसूदनः ॥ ४ ॥

पित्तज दाह में पित्तज्वर हरण करने वाली सम्पूर्ण विधि करनी चाहिये । गूलर का दूध शक्तरा के साथ सेवन करने से दाह नष्ट होता है । गुरुचि का सत्त शक्तरा के साथ सेवन करने से पित्तज्वर को नष्ट करता है (यहाँ पर गूलर की जड़ का रस और गुरुचि का स्वरस भी पृथक् २ प्रयोग करना लाभदायक है) ॥ ४ ॥

अथ रसाः

रसरत्नप्रदीपाद्रासादिगुटिका—

रसवल्लिघनसारवचन्द्रनानां सनलद्वेष्यपयोद्जीवनानाम् ।

भपहरति गुटी मुखस्थितेयं सकलसमुरिथतद्वाहमधमेण ॥ १ ॥

रसादि गुटिका—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, कपूर, चन्दन, लामजक रुण (गुलाबकांड), खस, नागरमोया, सुगन्धवाला, इन औषधियों को समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली बना उसमें शेष औषधियों का न्यूण छाल घोटकर बटी बना मुखा कर रख लेवे । इसमें से १ वटी युक्त में रख नूसने से सब प्रकार का दाह विना थम शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १ ॥

रसमज्जयार्थन्दकलारसः—

गगनवरदयुक्तं शुद्धसूतं च गन्धं प्रहरमथ सुपिण्ठं वस्त्रयुग्मं नरोऽथात् ।

उवरहमगतिसिंहः श्वरबेरादकेन प्रथमजनितद्वाहे तक्षभक्तं च भोजयम् ॥ १ ॥

चन्द्रकलारस—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, अब्रकमस्म और शुद्ध हिंगुल सब को समान भाग लेकर पारद-गन्धक की कजली कर उसमें अब्रक और हिंगुल मिलाकर एक पहर तक खरल में बोटना चाहिये । पश्चात् रस को दो बल (चार-रुची) के प्रमाण की मात्रा से अब्रक के रस के अनुपान से सेवन करने से यह ऊर को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सिंह इथियों को । यदि दाह हो तो (ऊर में भी दाह हो तब भी) मट्टा भात का पथ्य लेना चाहिये ॥ १ ॥

मुस्तादाद्विदुर्वेष्यैः केतकीस्तनजद्रवैः । सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्षटस्थापि वारिणा ॥ २ ॥

रामशीतिलिकात्रोये: शतार्थ्या रसेन च । भारविद्या प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ३ ॥

तिका गुद्धचिकासरवं पर्षटोशीरमाधवी । श्रीगन्धं सारिवा चैर्था समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ४ ॥

द्राढा फलकवायेण ससधा परिभावयेत् । ततो धान्याधयं कृत्वा वद्यः कार्याङ्गोपमाः ॥ ५ ॥

अथं चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः । सर्वपित्तराधधसी वातपित्तराधापहः ॥ ६ ॥

अन्तर्ष्वाद्यमहादाहविष्वंसंसनमहाधनः । ग्रीष्मकाले शरकाले विशेषण प्रशस्यते ॥ ७ ॥

और इसी रस को नागरमोया, अनार, दूब, केतकी, लौ के दूध, सहदेवी, कुमारी और पित्तपापड़ा के पृथक् २ ख्वरस अथवा काथ से तथा रामशीतिला (रुण विशेष) के स्वरस से, शतावरि के स्वरस से, इन सब के साथ पृथक् २ एक २ दिन विधिपूर्वक मावना देवे । पश्चात् कुट्टी, गुरुचि का सत्ता, पित्तपापड़ा, खस, मालतीलता, इवेतचन्दन, सारिवा, इन औषधियों को उपर्युक्त रसादिक के अनुसार समान भाग लेकर शलक्षण न्यूण कर उपर्युक्त भावित रसादिकों में मिलाकर मर्दन कर द्राक्षा के क्वाय के साथ सात बार भावित कर धान्यराशि में रख देवे एक दिन पश्चात् निकाल कर खरल कर विधिपूर्वक चन्ने के प्रमाण की बटी बना लेवे । इस वटी का नाम चन्द्रकला है और रसेन्द्र (रसों में श्रेष्ठ) कही जाती है । यह चन्द्रकला नाम की वटी सेवन करने से सब प्रकार के पित्त के तथा वात-पित्त के रोगों को हरण करती है । और अन्तर्दाह तथा बाया महादाह को महामेष के समान नष्ट करती है । तथा यह ग्रीष्मकर्तु तथा शरद ऋतु में विशेष लाभदायक है ॥ २-७ ॥

कृहते नामिमान्यं च महातपद्वरं हरेत् । अममूर्धुर्हृष्टरक्षाऽऽशु खीणां रक्तं महाच्चवम् ॥ ८ ॥

द्विष्वोषो इक्षपित्तं च रक्तवान्ति विशेषतः । मृधकृष्णाणि सर्वाणि नाशयेषात्र संशयः ॥ ९ ॥

इसके सेवन से मन्दाग्नि भी नहीं होती है और महातप से युक्त ऊर तथा भ्रम और मूळर्धी रोग, ज्योंग के महारक्तसाव और अर्धवर्ग अथवा अधोग दोनों प्रकार के रक्त-पित्त तथा विशेष कर रक्तवस्त्र नष्ट होते हैं और सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र को यह निस्सन्देह नष्ट करती है ॥ ८-९ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

शालयः शिका मुद्रा मसूराश्वणका यवाः । घन्वमांसरवा लाजा मण्डो वै सकवः सिता ॥

शतकौतश्चतुर्वृत्तं कूद्धं नवनीतं पयोभवम् । कूद्धमाण्डं कर्कटी भोचं पनसं स्वादुदादिमम् ॥ २ ॥

पटोलं खर्जं तुश्ची विश्वी द्राचा कसेशकम् । हति दाहवता नृणां पथ्यवर्णं उदाहृतः ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—शालिधन्य के चावल, साठी के चावल, मूँग, मसूर, चना, जी, खन्देश (मरुस्तल) के जीवों का मांसरस, धान की खील, माड़, सत्ता, शर्करा, सौ बार का धोया हुआ घृत, दूध और दूध से निकाला मक्खन, श्वेत द्रूष्माण्ड (पेठा), ककरी, कोला, कटहर, मधुर अनार, परवर, खजूर, तुम्ही (लौकी), विम्बीफल, दाढ़ा और कसेल ये सब दाह के रोगियों के लिये पथ्य कहे गये हैं ॥ १-३ ॥

उवाच्याममातरं तक्षं ताम्बूलं मधु रामठम् । अपवायं कदुतिकोणं दाहवान् परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥

व्यायाम, आतप सेवन, तक्ष, ताम्बूल, मधु, हींग, मैयुन कम, कटुरस युक्त, तिक्करस युक्त और उष्ण पदार्थ को दाह का रोगी त्वाग देवे, अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ४ ॥

अथोन्मादनिदानम्

मध्यम्यन्दुत्ता दोषा यस्मादुन्मार्गमात्रिताः मानसोऽयमतो द्वाविकन्माद इति कीर्तिः ॥ १ ॥

उन्माद का निदान—अपने २ कुपित होने वाले कारणों से बड़े दुष्ट वातादिक दोष उन्माद-गमी होकर (अपने मार्म-को छोड़ कर मनोवह मार्म में प्रवेश कर) मद उत्पन्न कर भ्रुव्य को उन्मत्त कर देते हैं । यह व्याधि मानसिक है इस लिये इसे 'उन्माद' कहते हैं ॥ १ ॥

पुकैकशः सर्वाश्रम दोषैरत्यर्थमूर्धित्वतः । मानसेन च दुःखेन स पञ्चविष उपथते ॥ २ ॥

संख्या—वातादिक दोषों के पृथक् २ कुपित होने से तीन, तथा तीनों के एकत्र कुपित होने (सन्त्रिपात) से एक (चौथा), और मानसिक दुःख से एक (पांचवा), इस प्रकार से उन्मादरोग पांच प्रकार का होता है ॥ २ ॥

विषाद्वाति वृष्ट्य यथास्वं तत्र भेषजम् । स चाप्रदृद्धस्तहोगे मदवंज्ञी विभर्ति च ॥ ३ ॥

और छठां उन्माद विष से भी होता है इसका निदान और चिकित्सा विष के अनुसार यथाद्योग्य करनी चाहिये । यह विष उन्माद जब तक बढ़ा हुआ नहीं होता है तब तक इसको 'मद' कहते हैं ॥ ३ ॥

सयोद्गौरी तमः शोषो गात्राणाभपर्कर्णम् । मृथ्यूसाहोऽहृष्टिश्वान्ते स्वप्नेऽवृद्धुषु-मज्जनम् ॥ ४ ॥

सायुनोन्मादनं चैव अमक्लमगतस्य च । यस्य स्याद्विरेणैवमुम्मादं सोऽपि गण्डिति ॥ ५ ॥

उन्माद का पूर्वलूप—जब मनुष्य को उन्माद होने को होता है, तब उसके पूर्व उसे भय, उद्वेग, तम, शोष, अज्ञों का दुर्बल होना, मृत्यु में उत्साह, अन्न में अरुचि, स्वप्न में जल में झूबना, बायु लगते ही मद हो जाना, अम होना और छानित होना ये सब लक्षण होते हैं अथवा ये लक्षण अविक दिन तक जिस मनुष्य में रहे उन्हें 'उन्माद' हो जाता है । अर्थात् ये उन्माद के पूर्वलूप हैं ॥ ४-५ ॥

कारणसप्रासी—विरुद्धाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुहिंशानाम् ।

उन्मादहेतुर्यहर्षपूर्वों मनोभिवातो विषमात्र चेष्टा: ॥ ६ ॥

तैरपसत्त्वस्य मलाः प्रदुषा बुद्धेनिवासं हृदयं प्रदृष्ट्य ।

चोतांस्यचिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्याशु नरस्य चेतः: ॥ ७ ॥

उन्माद के कारण और सम्प्राप्ति—विरुद्ध भोजन (प्रकृति-विरुद्ध वा संयोग-विरुद्ध), दूषित भोजन (विषादिक से दूषित अथवा सड़ा गला), अपवित्र भोजन । मन जिसको अशुचि समझे ।

करने से और देवता-गुरु एवं ब्राह्मणों के द्वारा मन को क्षोभ पहुंचाने से, अत्यन्त भय हो जाने से अथवा अत्यन्त हर्ष हो जाने से, मन को आधात पहुंचने से और विषम चेष्टा (बलवान के साथ देखादि) करने से अथवा सत्त्व (दुर्बल-हृदय) प्राणियों के दूषित वातादिक मल (कुपित होकर) बुद्धि का निवास-स्थान जो हृदय है उसको दूषित कर मन को बहन करने वाली नाड़ियों में स्थित होकर (वातादिक कुपित दोष) मनुष्य के चित्त को शीघ्र मोहित कर देते हैं अर्थात् कार्य-कार्य के विचार से रहित कर देते हैं, उस ही 'उन्माद' कहते हैं ॥ ६-७ ॥

अथ साधारणोन्मादलक्षणम्

धीविभ्रमः सत्त्वपरिष्ठवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ।

अथद्वाधयं हृदयं च शून्यं सामान्यसुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ १ ॥

उन्माद के साधारण लक्षण—जिस मनुष्य को बुद्धि में अम हो जावे, मन स्थिर नहीं रहे, दृष्टि व्याकुल (चंचल) रहे, धैर्य नहीं रहे, असम्बद्ध वाक्य कहे, और हृदय शून्य हो गया हो (स्मृति नष्ट हो गयी हो), ये सब उन्माद के साधारण लक्षण हैं ॥ १ ॥

वातोन्मादलक्षणम्—

रूचावपशीताभविरेकधातुचयोपवासैरनिलः प्रवृद्धः ।

चित्तादिद्वृष्टं हृदयं प्रदृश्य बुद्धि स्मृतिं चाप्युपहन्ति क्षीर्ग्रम् ॥ १ ॥

वातिकोन्माद के निदान और लक्षण—अतिरक्ष, अल्प तथा अति शीतल अवस्था के भोजन करने से, शक्ति से अधिक विरेचन करने से, धातुचय दोने से और उपवास अधिक करने से, इन वायुवर्धक कारणों से बड़ी हुई वायु चिन्ता इत्यादिक कारणों से दूषित हृदय को और अधिक दूषित (हृदय में प्रवेशकर) कर बुद्धि तथा स्मृति (स्मरण-शक्ति) को शीघ्र नष्ट कर देती है ॥ १ ॥

अस्थानहासादितनृत्यगीतवाचाङ्गविदेषणरोदनानि ।

पारुष्यकाशर्याहृणवर्णता च जीर्णे वर्लं चानिलजस्य रूपम् ॥ २ ॥

इस प्रकार बुद्धि और स्मृति के नष्ट हो जाने पर अस्थान में (वै समय-अकारण) हँसना, सुस्कराना, नाचना, गाना, बजाना, हाथ-पैर इधर-उधर फेंकना, रोना इत्यादिक होता है और उसका शरीर रक्ष, कृश और तान्त्र वर्ण का हो जाता है और आहार के जीर्ण होने पर (पचने पर) इसका बल होता है । यह वातज उन्माद का रूप है । अर्थात् जिस उन्माद में ये लक्षण लक्षित हों उसे वातज उन्माद कहते हैं ॥ २ ॥

पित्तोन्मादलक्षणम्—क्षीर्णकट्टवर्णविदाद्यशीतैर्भोद्यैश्चितं पित्तसुदीर्णवेगम् ।

उन्मादगदस्यमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाद्य कुर्यात् ॥ १ ॥

पित्तजोन्माद का निदान और लक्षण—अजीर्ण होने से, कट्ट, अलं, विदाही (दाहकारक) और उष्ण पदार्थों के सेवन से संचित पित्त उत्तर होकर अनात्मक जो पुरुष हैं (चिन्तादि से दूषित चित्त वाले) उसके हृदय में प्रवेश कर पूर्वकथित मनोवृद्धि सौतों में स्थित हो बुद्ध्यादि को विकृत कर अत्यन्त कठिन उन्माद रोग को उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

अमर्थसंरभविनश्वभावाः सन्तर्जनाभिद्वयणीष्यशोधाः ।

प्रचञ्चायशीताशजलाभिलाषाः पीता च आ पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ २ ॥

पित्त के दोष से होने वाले उन्माद में असहिष्यता, व्याकुलता, शरीर पर वस्त्र नहीं रख कर नंगा हो जाना, ताङ्ना करना, भागना, उष्णता होना, क्रोध होना, छाया, शीतल अवस्था

उन्मादनिदानम्

तथा शीतल जल की इच्छा होना और आमा अर्थात् शरीर की कान्ति पीतवर्ण का हो जाना ऐ सब होते हैं । अर्थात् पित्तजोन्माद के ये लक्षण हैं ॥ २ ॥

कफोन्मादलक्षणम्—सत्त्वपूर्णमः द्विष्ठेष्ठितस्य सोम्या कफो मर्मणि सम्प्रवृद्धः ।

बुद्धि स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन् संजनयेद्विकारम् ॥ ३ ॥

कफजोन्माद के निदान और लक्षण—अधिक कफवर्धक पदार्थों के सेवन से उदर पूर्ण रहने (विकार युक्त रहने) वाले और चेष्टा मन्द रहने वाले (परिश्रम आदि नहीं करने वाले) मनुष्य का लक्ष्य के सहित बढ़ा हुआ कफ मर्मस्थानों एवं हृदय में प्रवेश कर बुद्धि और स्मृति (स्मरण-शक्ति) को नष्ट कर देता है और चित्त को मोहित कर विकार (उन्माद रोग) उत्पन्न करता है ॥

बाक्षित्वं चाप्युपहन्ति चन्द्रमोचक्षं चार्याविविक्षिप्रियता च निन्दा ।

छृश्च लाला च बलं च भुक्ते नस्तादिवौषधयं च कफात्मके स्थात् ॥ २ ॥

कफ के दोष से उत्पन्न उन्माद में वाणी और चेष्टा मन्द हो जाती है, अरुचि होती है, खियों से दैराय दोता है (मैथुन की इच्छा नष्ट हो जाती है), नींद अधिक आती है, वमन होता है, लालासाव होता है, भोजन करने पर उन्माद का बल होता है और नख-मुखादि शेत हो जाते हैं । ये सब कफज-उन्माद के लक्षण हैं ॥ २ ॥

सान्निपातिकमाह—

यः सचिपातप्रभवोऽतिव्विराशः सर्वैः समस्तैरपि हेतुभिः स्थात् ।

सर्वाणि रूपाणि विभर्ति ताहृविश्वद्भैषज्यविविवर्णः ॥ १ ॥

सान्निपातिक उन्माद के लक्षण—जो उन्माद सान्निपात से होता है उसमें तीनों दोषों के सम्पूर्ण लक्षण पक्षत्र उपस्थित रहते हैं । यह अति कठिन है । इस की चिकित्सा सान्निपातिक कारणों के विरुद्ध करनी चाहिये । विसी २ का मत है कि औषध नहीं करना चाहिये क्योंकि इसमें औषध करना ही विरुद्ध है । यह असाध्य है ॥ १ ॥

मनोदुःखजमाह—

चौर नन्द्यपुरुषेविभित्तथाऽन्यैविविवर्ण धनशान्धवसंद्याद्वा ।

गाञ्छ च्छे मनसि च ग्रियथा विरंसोजायेत चोकटत्रो मनसो चिकारः ।

चित्रं ब्रह्मीति च मनोनुगतं चंद्रो गायथ्रयो हसति रोदिति चालिमृढः ॥ १ ॥

मनसे अर्थात् मन के दुख से होने वाले उन्माद के कारण तथा लक्षण—चोरों, राजपुरुषों और शक्तिवालों के द्वारा तथा अन्य किसी प्रकार के भय से, अति भयभीत होने से अथवा धन और बर्षु-बान्धव के नष्ट होने से अथवा कामी पुरुष को खी से वा कामातुर खी को पुरुष से तिरस्कृत होने पर इन कारणों से मन पर कठित आधात होने से मनुष्यों को अत्युत्कट मानस विकार अर्थात् 'उन्माद' हो जाता है उसमें वह मनुष्य अनेक प्रकार की बातों की कहता है, और मन का अभिग्राय भी जो गोप्य है कह देता है, चेतनाराहित हो जाता है, गता है, हँसता है, रोता है, और मृद हो जाता है । अर्थात् मन के दुखी होने से उत्पन्न उन्माद के ये लक्षण हैं ॥ १ ॥

विषजमाह—३८ इष्टो हुरुक्लेऽद्रभाः सुदीनः इयावानो विषकृतेन भवेद्विषङ्गः ॥ १ ॥

विषज उन्माद के लक्षण—विष-भक्षण के कारण से जो उन्माद होता है उसमें देव रक्तवर्ण के हो जाते हैं, बल और इष्टों की शक्ति तथा क्षीण हो जाती है, अंतिमीन तथा हुख-द्युवर्ण का हो जाता है और वह देतना रहित हो जाता है । अर्थात् 'विषज उन्माद' के ये लक्षण हैं ॥ १ ॥

असाध्यलक्षणमाह—

अथवा कुखश्चोन्मुखो वा शीणमांसबलो न रहः । आगरहको श्वपंदेहमुभावेन विनश्यति ॥ १ ॥
उन्माद के असाध्य लक्षण—जो उन्माद का रोगी नीचे धरती की ओर मुख किये रहे अथवा कपर आकाश की ओर मुख किये रहे, तथा जिसके मांस और बल क्षीण हो गये हों, दिन-रात जगा रहे (निद्रा नहीं आवे), ऐसा उन्माद का रोगी निश्चित ही उन्माद से नष्ट हो जाता है। अर्थात् उन्माद रोग के ये असाध्य लक्षण हैं ॥ १ ॥

अथोन्मादचिकित्सा

आधासयेऽसुहृदाक्यैर्बूयादिष्टविनाशनम् । दर्शयेदन्मत्वं कर्म ताण्डयेत्त कशादिभिः ॥ १ ॥

उन्माद रोग की चिकित्सा—उन्माद रोग में भिन्नतापूर्ण वचनों से आश्रासन देवे, जिस इष्ट वस्तु की अप्राप्ति के कारण उन्माद उत्पन्न हुआ हो उसका नष्ट हो जाना कहे अथवा उस प्राप्ति का उत्तोग बतावे, विचित्र २ कर्म (कार्य) उस रोगी को दिखावे जिससे चित्त स्थिर हो जावे और अधिक उन्मत्त को चाबुक आदि से ताङ्ना द्वारा डरा-घमकाकर भी चित्त (चिन्ता या उन्माद से) फिरावे ॥ १ ॥

सुखदं विजने गेहे आसेदेहिभिर्धिया । बद्धं सर्वपत्तेलाकं न्यसेदुक्तानमातपे ॥ २ ॥

एकान्त स्थान में (घर में) रोगी को भलीभाँति बौध कर सर्पादिक से उसकी बुद्धि में भय उत्पन्न करावे (या उस घर में सर्प दिखाकर डरावे या इस घर में सर्प रहता है ऐसा कह करके धूप में सुलावे) ॥ २ ॥

कपिकच्छाऽथ वा तसलोहतैलजलैः स्पृशेत् । वज्रापिधाने कूपे वा सतर्तं च निवेशयेत् ॥ ३ ॥

अथवा रोग सहित केवाच के फल को उसके शरीर पर लगावे, लोहा को अग्नि में तपाकर उससे दागे अथवा तेल को अग्नि पर तपाकर वा जल को अग्नि पर तपाकर शरीर पर ढाले (त्रास दिखावे) अथवा वज्र को जल में भिगाकर शरीर पर लपेटे रहे अथवा कूपे में बहुत देर तक बैठावे ॥ ३ ॥

सतरं धूपत्रेच्छैनं गोमांसैष सपूतिभिः कामशोभयकोष्ठवैर्यालोभसमवान् ॥ ४ ॥

परस्परप्रनिदृग्नं रेभिरेव शामं नयेत् । जलादिदुमशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा ॥ ५ ॥

रचेदुन्मादिनं चैव सद्यः प्राणहरं हि तत् । यज्ञापदेष्यते किञ्चिद्वप्स्मारे चिकित्सितम् ॥ ६ ॥

उन्मादे तत्त्वं सामान्यादोषदूषयोः । स्नेहादिना क्रेषणाऽद्दातुः प्रादिनमुत्ताचरेत् ॥

अथवा सड़े हुवे गोमांस से धूपन करे (जहाँ धूप दे वहीं उसको रखे जिससे संपूर्ण धूप उसके शरीर में लगे), और काम, शोक, भय, कोष्ठ, हर्ष, ईर्ष्या और लोम से उत्पन्न उन्माद में इहीं में से परस्पर प्रतिद्रव्यी भावों को कहकर शान्त करे, अर्थात् काम से उत्पन्न उन्माद में शोक तथा भय की बातें कहकर, शोक से उत्पन्न उन्माद में हर्ष तथा काम के बातें को कहकर, भय से उत्पन्न उन्माद में क्रोध तथा कामादि की बातें करके, क्रोध से उत्पन्न उन्माद में हर्ष तथा कामादि की बातें करके और हर्ष से उत्पन्न उन्माद में क्रोधादि की बातें करके, ईर्ष्या से उत्पन्न में हर्ष आदि की बातें करके तथा लोम से उत्पन्न उन्माद में क्रोधादि की बातें कर के मन के भावों में परिवर्तन लाकर चिकित्सा करनी चाहिये। और उन्माद के रोगी को जल, अग्नि, दृक्ष, पर्वत और इसी प्रकार के बन आदिक विषम स्थल में नहीं जाने दे सर्वदा इससे उसकी रक्षा करे क्योंकि ये स्थान उन्माद के रोगी के लिये प्राण-घातक हैं अर्थात् इन स्थानों में पूँछ कर रोगी छूट कर, छलकर, गिरकर प्राण त्याग दे, इसकी बराबर सम्भावना रहती है। और जो चिकित्सा-क्रम

अपस्मार रोग में कहेंगे वे सब उन्माद रोग में करना चाहिये क्योंकि इन दोनों रोगों में दोष (वातादिक) और दूध्य (मन आदिक) समान ही रहते हैं। और स्नेहपान आदि किशा के क्रम से, आदि (वातज) में उन्माद का उपचार करे अथवा स्नेह-पानादि कराके आदि (वातज) उन्माद की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४-७ ॥

बस्तिभिः स्नेहकलकैश्च निरुहैः स्वेदनाभ्यन्ते ।

वातिके स्नेहपानं प्राप्तिव्यवेकः पित्तसम्भवे । कफजे वमनं कार्यं परो वस्त्रादिकः क्रमः ॥ ८ ॥

उन्माद रोग में—बस्ति कर्म, स्नेह कर्म, कल्कविधि, निरुहवस्ति, स्वेद कर्म और अज्ञानादिक कर्म करना चाहिये। प्रथम-वातज उन्माद में स्नेहपान विधि, पित्तज उन्माद में विरेचन कर्म और कफज उन्माद में वमन कार्य करना चाहिये। पश्चात् बस्ति कर्म आदि विधि करावे ॥ ८ ॥

शार्शभराद् ब्राह्मादिस्वरसः—

आहौरीकृष्मणदृग्न्याशङ्कुनीस्वरसः पृथक् । मधुकुष्ठयुताः पीताः सर्वोन्मादापहारिणः ॥

ब्राह्मादिद्वरस उत्तम ब्राह्मी, शेत कुम्भाण्ड (पेठा), बच और शङ्खपुष्पी इन ओषधियों को पृथक् २ लेकर (किसी एक का) विधिपूर्वक स्वरस निकाल कर मधु और कूठ के नूर्ण का प्रसेप देकर पान करने से सब प्रकार के उन्माद को नष्ट करता है ॥ १ ॥

ब्राह्मादिकल्पो-वीरसिंहावलोकतः—

ब्राह्मीरसः स्यासवच्च सकुष्ठः सशङ्खपुष्पः समुच्चण्णूर्णः ।

उन्मादिनामुन्मदमानसानामपस्मृतेभूतहतात्मनां हि ।

नस्येऽज्ञने पानविधौ च शस्त्रो ब्राह्मीरसोऽयं सवचांदचूर्णः ॥ १ ॥

ब्राह्मादिकल्प—ब्राह्मी का स्वरस, बच का चूर्ण, कूठ का चूर्ण, शङ्खपुष्पी का चूर्ण, स्वर्ण-भस्म सवको समान भाग लेकर एकत्र कल्प बना वा मिलाकर इस योग का प्रयोग नस्य, अज्ञन तथा पान में उन्माद या मद युक्त जिनका मन हो, अपस्मार और भूतोन्माद रोगी के लिये वचादिकों के चूर्ण के सहित यह ब्राह्मीरस उत्तम कहा गया है ॥ १ ॥

न्यूषणादिवर्तिः—

न्यूषणं हिङ्गु लवणं वचा कटुकरोहिणी । शिरीषनक्लमालानां बीजं शेताश्च सर्वपाः ॥ १ ॥

गोमूत्रपिण्डैतेत्सू वर्तिनेन्माज्जने हिता । चातुर्थिकमपस्मारमुन्मादं च नियच्छ्रुतिः ॥ २ ॥

न्यूषणादिवर्ति—सौंठि, पीपरि, मरिच, हींग, सेन्धा-नमक, बच, कुट्की, शिरिस के बीज, करंज के बीज, शेत-सरसों, इन सब ओषधियों को गोमूत्र के साथ पीसकर विधिपूर्वक वर्ति बनाकर नेत्रों में अज्ञन करने से चातुर्थिक उत्तर, अपस्मार और उन्माद रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शिरीषादिः वृन्दात्—

शिरीषं लग्नं हिङ्गु नाशरं मधुकं च च । कुष्ठं च वस्त्रमूत्रेण पिण्डं स्यासावनाज्जनम् ॥ १ ॥

तद्वायों द्वायिदेव मसिष्ठा गौरसर्पणाः । शिरीषबीजमुन्मादग्रहापस्मारमाज्जनम् ॥ २ ॥

शिरीषादिरोग—शिरीष के बीज, लहसुन, हींग, सौंठि, मुलहठी, बच और कूठ इन सब ओषधियों को समान भाग लेकर बकरी के मूत्र में पीस कर इसका नस्य अथवा अज्ञन लगाने से अथवा सौंठि, पीपरि, मरिच, हींग, दारहरदी, मजीठ, शेत सर्सों और शिरीष के बीज इन ओषधियों को समान लेकर पीस कर नस्य अथवा अज्ञन लगाने से उन्माद-ग्रह और अपस्मार रोग नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

चिकित्सासारात्सिद्धार्थकादियोगः—

सिद्धार्थकवथाहिङ्गुकरज्ञोदेवदारुच । मञ्जिष्ठा श्रिफला श्वेता कटभीरवक्षुद्रवयम् ॥ ३ ॥
समाक्षानि प्रियद्वाशं शिरीषो रजनीदूधयम् । बहस्तमूत्रेण पिष्टोडयमगदः पानमञ्जनम् ॥ २ ॥
नस्थमालेपनं चैव स्नानमुद्दर्तनं तथा । अपस्मारविषोन्मादकृत्यालचमीडवरापदः ॥ ३ ॥
भूतेभ्यश्च भयं दृन्ति राजद्वारे च शस्थयते । सविषेरेतेन सिद्धं वा सगोमूत्रं तद्धर्थकृत् ॥ ४ ॥

सिद्धार्थक योग—श्रेत सर्सों, वच, हींग, करंज, के बीज, देवदारु (धूप), मजीठ, औंवरा, हर्दी, वहेरा, श्रेता (अपराजिता), कटमी की छाल, सौंठि, पीपरि, मरिच, फूलप्रियद्वं, शिरीष का बीज, हरदी, दारुहरदी, इन सब ओषधियों को सम भाग लेकर बकरी के मूत्र में पीस कर अथवा चूर्ण कर बकरी के मूत्र में घोट कर इस योग को पान करने, अजन लगाने, नस्थ लेने, लेप करने, इससे कथित जल से स्नान करने तथा इसके उबटन लगाने से अपस्मार, विष, उन्माद, कृत्या (अभिचार) दोष, अलक्ष्मी, ज्वर, भूतावाधा दूर होता है, और राजद्वार में लगाकर जाना उत्तम होता है, तथा इन्हीं ओषधियों के कल्प और गोमूत्र (पाकार्थ धृत से चतुर्गुण) के साथ मूर्च्छित गोधृत लेकर धृत सिद्ध कर प्रयोग करने से भी उपर्युक्त रोगों का नाश एवं कथित कार्य का लाभ होता है ॥ २-४ ॥

योगतरक्षिण्या: सितकुसुमबलादियोगः—

सितकुसुमबलादियोगः सार्वकर्षन्त्रयं यः-निष्कर्षित्वरणकेन चीरपाकेन पक्षम् ।

पितृति तद्वन्तु भित्यं प्रातरथाय शीतं जयति धृतिं धोरं ध्याचिमुन्मादसंज्ञम् ॥ १ ॥

सितकुसुमबलादियोग—इवेत पुष्प की बला (बरियारा) के ३। साढ़े तीन कर्ष चूर्ण को अपामार्ग की जड़ द्वारा क्षीरपाक विधि से पाक किये दूध को शीत कर उसके अनुपानू से जो उन्माद का रोगी पान करता है उसका घोर उन्माद रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

योगतरक्षिण्या दशमूलादियोगः—

दशमूलाभ्यु सप्ततं युक्तं मांसवस्त्रेन वा । सिद्धार्थकचूर्णं वा केवलं वा नवं धृतम् ॥ १ ॥
उन्मादशान्तये पेयो रसो वा कालशाकजः । प्रयोदयं सार्वपं तेलं नस्थाभ्युसंनयोः सदा ॥ २ ॥

दशमूलादियोग—दशमूल की ओषधियों को समान भाग लेकर चिथिपूर्क काथ कर उसमें धृत अथवा मांसरस मिलाकर अथवा सरसों का चूर्ण मिलाकर अथवा केवल नवीनधृत (नवीनीत) का पान करने से, अथवा सरुंखा का स्वरस पान करने से उन्मादरोग नष्ट होता है और सरसों के तेल का नस्थ और अजन में सदा प्रयोग करने से भी उन्माद नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

अथ धृतानि

हिङ्गवादिधृतं वृद्धात्—

हिङ्गसौवर्चलव्योषैद्विपलाक्षैर्धृताठकम् । चतुर्गुणं गवो मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ३ ॥

हिङ्गवादि धृत—शुद्ध हींग, सौवर्चलमक, सौंठि-पीपरि-मरिच, प्रत्येक द्रव्य को दो २ पल (८ तो ०) लेकर कल्प कर मूर्च्छित गोधृत एक आडक (४ प्रस्थ), गोमूत्र चतुर्गुण (४ आडक) सबको एकत्र कर धृतपाक विधि से पाककर इस धृत का सेवन करने से उन्माद नष्ट होता है ॥ १ ॥

कल्याणधृतं योगतरक्षिण्या:—

विशाला श्रिफला कौशी देवदारेलबालुकम् । स्थिराऽनन्ता हरिद्रद्वे सारिवे द्वे प्रियद्वंका ॥
नीलोरपललामाकृष्णाऽनन्तादारादमकेसरम् । विडं पृथिवीं च कुषुं चन्दनपद्मके ॥ २ ॥
तालीसपत्रं ब्रह्मी मालत्याः कुसुमं नवम् । पृतः कर्षसमैः कष्टकैर्विशत्यष्टमिरेव च ॥ ३ ॥

चतुर्गुणं जलं दृक्षा धृतप्रस्थं विषाच्येते । अपस्मारे उचरे शोषे कासे मन्दानले छये ॥ ४ ॥
वातरके प्रतिशये तुतीयकचतुर्थके । बातारोंमूत्रक्षुद्रेषु विसर्पेणहेषु च ॥ ५ ॥

कण्ठपाण्डवामयोःमादविषमेहयदेषु च । भूतोषहर्ताचत्तानां दश्तादानामचेतसाम् ॥ ६ ॥
शतं छीणां च बन्ध्यानां बन्ध्यमायुवैलप्रदम् ।

अलक्ष्मीपापरस्थोन्दं सर्वग्रहनिचारणम् । कल्याणकिमिदं सर्विः श्रेष्ठं पुंश्वप्रदं नृणाम् ॥ ७ ॥

कल्याण धृत—इन्द्रायण की जड़, औंवरा, हर्दी, वहेरा, रेणुका, देवदारु (धूप), एलुआ (मुसच्चर), शालिपर्णी, अनन्तमूल, हरदी, दारुहरदी, सारिवा, कृष्ण सारिवा, फूलप्रियंगु, नीलोत्पल, इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनार, नागकेसर, वायविड़क, पृष्ठपर्णी, कंठ, लालचन्दन, पदुमकाठ, तालीसपत्र, वडी कटेरी, मालती के नूतन (हरे) फूल एक २ कर्ष लेकर विषिपूर्वक कल्प कर, मूर्च्छित गोधृत एक प्रस्थ, जल ४ प्रस्थ सब मिलाकर धृत पाक करे । इस धृत को सेवन कर अपस्मार, ज्वर, शोष, कास, मन्दाद्यि, क्षयरोग, वातरक्त, तुतीयक तथा चतुर्थक ज्वर, वातव्याधि, अर्श, मूत्रक्षुद्र, विसर्पेणीग, कण्ठ, पाण्डु, उन्माद, विष तथा प्रमेहरोग में और भूतोन्माद रोगी, दौंत से काटने वाले तथा अन्तैनन्य रोगी आदि को देने से लाभप्रद है अर्थात् इन रोगों को नष्ट करता है और बन्ध्या छियों के लिये लाभदायक है । आयु तथा वल को देने वाला है । अलक्ष्मी-पाप-राक्षसवाधा और सब प्रकार की ग्रहावाधा को नष्ट करता है । तथा यह कल्याण नामक धृत मनुष्यों को पुरुषार्थ (सन्तानोत्पादक शक्ति) देता है और अत्युत्तम है ॥ १-७ ॥

चैतसधृतं योगतरक्षिण्याम्—

पञ्चमूळी च काशमयों रासैरप्रद्विष्टवृद्धलाला । मूर्वा शतावरी चेति काथैद्विपलकैः शुभैः ॥ ८ ॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन चैतसं नाम तद् धृतम् । सर्ववेत्सोविकाशाणां शमनं परमं मतम् ॥ ९ ॥
कार्यः क्षायो द्विगुणः क्षायान्मरुतु कलागुणम् । कल्याणकोक्तकलेन पाद्याशेन धृतं पचेत् ॥

चैतस धृत—लघु पञ्चमूल (शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, वडी कटेरी, गोखरु), गम्भार की छाल, रासना, एरण्डमूल, निशोथ, बरियारा, मूर्वा, शतावरि, इन सब ओषधियों को दो २ पल लेकर विषिपूर्वक काथ करे और कल्याण धृत में कहीं हुई इन्द्रायण आदि २८ ओषधियों को उसी मात्रा (प्रमाण) से अर्थात् एक २ कर्ष लेकर कल्प कर कल्प के चतुर्गुण मूर्च्छित गोधृत और धृत से द्विगुण उपर्युक्त काथ और काथ से कलागुण अर्थात् सोलह गुणा मस्तु (दहो का पानी) सब एकत्र मिलाकर धृतपाक विधि से पाककर सेवन करने से सब प्रकार के चित्त, विकार (उन्माद, अपस्मार, मदादि) को अत्यन्त शमन करने वाला कहा गया है । किसी २ आचार्य का मत है कि कल्याण धृत में कहे हुए कल्प को धृत से चतुर्थीश लेकर और मस्तु को चतुर्गुण मिलाकर धृत सिद्ध करे ॥ ८-१० ॥

रसरक्षप्रदीपाहुन्मादगजकेसरी रसः—

सूत गन्धं शिलातुरुषं स्वर्णबीजं विनृप्य च । भावयेद्वग्रगन्धायाः काथैसुनिदिनैः पृथक् ॥ १ ॥

राज्ञाकाथेन सर्वतेव भावयित्वा विचूर्णेत् । रसः सलायते नूनमुन्मादगजकेसरी ॥ २ ॥

अस्थ माषः ससपिंश्को लौटी हन्ति हठाद्रूदम् । उन्मादाख्यमपस्मारं भूतोन्मादामपि त्वरम् ॥

उन्मादगजकेसरी रस—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, शुद्धशिला (मनःशिला) सब को समान अर्थात् एक २ भाग और धत्तूर के शुद्ध बीज का चूर्ण एक भाग अर्थात् सब को समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अन्य ओषधियों को मिला मर्दन कर उप्रगम्भा (वच) के काथ से सात भावना देवे और फिर रासना के काथ से भी सात भावना देकर चूर्ण कर रख लेवे । यह

रस 'उन्मादगजकेसरी' नाम का है, इसको एक मात्रा के प्रमाण की मात्रा से धृत के अनुपान से चाउने से (सेवन करने से) यह रस हठपूर्वक (बलाद) उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और उवर को भी नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

प्रसादश्चनिद्र्यार्थानां बुद्ध्यात्ममनसामपि । ज्ञातूनो प्रकृतिश्यस्थं विगतोन्मादलक्षणम् ॥१॥
विगत उन्माद के लक्षण—इन्द्रियों प्रसव तथा अपने विषयों को समुचित ग्रहण करने लगे, दुष्टि, आत्मा और चित्त भी स्थिर होकर अपनी पूर्वीवस्था (नीरोध्यावस्था) में ही जावें, सब धार्तुयें प्रकृतिश्य हो जावें तो उन्माद नष्ट हो गया, यह जानना चाहिये अर्थात् विगत उन्माद (उन्माद रोग के नष्ट हो जाने) के ये लक्षण हैं ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

गोधूमसुदगारुणशालयश्च धारोणदुर्घं शतधौतसर्पिः ।

शृतं नवीनं च पुरातनं च कूमारिषिं धन्वरसा रसाला ॥ १ ॥

पुराणकूमारिषिं फलं पटोलं ब्राह्मीदलं बास्तुकतण्हूलीयम् ।

द्रावा कपिरथं पतसं च वैयेविधेयसुन्मादगदेषु पथ्यम् ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—गेहूं, सूंगा, लाल शालिधान का चावल, धारोण गोदुर्घ, सौ बार का धोया धृत, नवीन तथा पुरातन दोनों प्रकार का धृत, कछुये का मास, धन्वदेश (मरुभूमि) के जीर्वों का मास, रसाला (सिखरन), पुराना श्वेत कूमारिषि (पेठा) का फल, परवर, ब्राह्मी के पत्ते, बकुआ, चौराई, दाख, कैथ का फल, करड़ल, इन सब पदार्थों को वैय उन्मादरोग में पथ्य देवे ॥ १-२ ॥

मर्यं विशद्वाशनसुष्णमोजनं निद्राषुधातुरकृतवेगधारणम् ।

तिक्तानि तीक्ष्णानि भिषक् समादिषेदुन्मादरोगपहतेषु गर्हितम् ॥ ३ ॥

मर्य, विरुद्ध भोजन (प्रकृति-विरुद्ध तथा संयोग-विरुद्ध), उष्ण भोजन (भोजन के समय का उष्ण तथा वीर्य का उष्ण) और निदा, शुधा, तृष्णा आदि के वेंगों को रोकना, तिक्त तथा तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन इन सबको वैय उन्माद के रोगियों को नहीं देवे । अर्थात् ये सब पदार्थ अपथ्य हैं ॥ ३ ॥

अथ भूतोन्मादनिदानमाह—

अमर्यं वाडिकमवीर्यचेष्टो झानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।

उन्मादकालो नियतश्च यस्य भूतोत्थुमुन्मादसुदाहरणितः ॥ १ ॥

भूतोन्माद का लक्षण—जिस उन्माद में रोगी अमनुष्योचित (जो मनुष्यों से नहीं होने योग्य है) चचन, पराकम, शौर्य और चेष्टा आदि, ज्ञान (शास्त्रज्ञान वा तत्त्वज्ञान) और विज्ञान (शिल्प शास्त्रादिक ज्ञान) तथा स्मृति और बल करने लगे और उन्माद का समय नियत जिसमें हो (उन्माद का वेग किसी नियत समय पर हो निरन्तर नहीं रहे) उसको 'भूतोन्माद' कहते हैं । अर्थात् भूतजुष्ट उन्माद के ये लक्षण हैं ॥ १ ॥

देवजुष्टमाह—सन्तुष्टः शुचिरतिद्विद्यमाहयगम्यो निस्तन्द्रोऽप्यवितथसंस्कृतप्रभाषी ।

तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति न रः स देवजुष्टः ॥ १ ॥

देवजुष्ट उन्माद के लक्षण—जिस उन्माद में रोगी सन्तुष्ट होए (किसी वस्तु की इच्छा न करे), पवित्रता से रहे, उत्तम माला तथा गन्ध धारण करे, आलस्वरहित अथवा सावधान रहे, सत्य बोले और संस्कृत भाषा में बोलने वाला हो, तेज युक्त, स्थिर नेत्रों वाला, वर देने वाला हो

(अर्थात् यह कहे कि तुम्हें क्या चाहिये तुम्हें यह हो जावेगा आदि ऐसा वरदान देवे) और ब्राह्मण-भक्त हो तो उसको 'देवजुष्ट' उन्माद हुआ जानना चाहिये ॥ १ ॥

असुरजुष्टमाह—संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्वालो विगतभयो विमार्गद्विष्टः ।

सन्तुष्टो न भवति चापानजातेद्वारामा भवति स देवशत्रुजुष्टः ॥ १ ॥

असुरजुष्ट उन्माद के लक्षण—जिस उन्माद में रोगी को निरन्तर स्वेद (पसीना) आया करे, ब्राह्मण, गुरु और देवता इन लोगों के दोष को कहे (अथवा इन्हें दोषी ठहरावे), नेत्र कुटिल हो जावे, मर्य से रहित हो, कुमार्ग पर दृष्टि रखने वाला हो, भोजन-पान से सन्तुष्ट न हो (बहुभक्षी हो) और दुष्ट प्रवृत्ति का हो तो वह देवशत्रु (असुर) जुष्ट उन्माद है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १ ॥

गन्धर्वजुष्टमाह—हृष्टामा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाश्यः ।

नृथन् चै प्रहसति चाह चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ १ ॥

गन्धर्वजुष्ट उन्माद के लक्षण—जिस उन्माद में रोगी प्रसन्न चित्त रहे, नदी के तट तथा बन का मध्य आदि निर्जन स्थान में अधिक रहे, सुन्दर आचरण (पवित्रता आदि) से रहे, गीत-गन्ध और पुष्पमाला आदि उसे प्रिय हो, नृथ किया करे और उसमें हँसा करे और सुन्दर तथा अल्प शब्द बोले उसे 'गन्धर्वग्रह' से पीड़ित (जुष्ट) उन्माद कहते हैं ॥ १ ॥

यक्षग्रहजुष्टमाह—ताङ्राचः प्रियतनुरस्तथाधारी गम्भीरो द्रुतगतिरस्पवाक् सहिष्णुः ।

तेजस्वी वदति च किं ददामि कर्म्म चो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ १ ॥

यक्षग्रहजुष्ट उन्माद के लक्षण—जिस उन्माद में रोगी के तेज ताक्रवर्ण के (अरुण) हो गये हों प्रिय (शोभायुक्त), तनु (पतला) और रक्तवर्ण का वस्त्र धारण करे, स्वभाव का गम्भीर हो, शीत्रगामी, अलपभावी और सहनशील हो, तेजयुक्त हो तथा यह कहता फिरे कि किसे क्या दूँ । वह यक्षग्रह से जुष्ट (पीड़ित) है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १ ॥

पितृग्रहजुष्टमाह—

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डाङ्गान्तरामा जलमपि चापस्थवस्त्रः ।

मांसेषुस्तिलगुणपायसाभिकामस्तज्ज्ञो भवति पितृग्रहभिजुष्टः ॥ १ ॥

पितृग्रहजुष्ट उन्माद के लक्षण—जिस उन्माद में रोगी प्रेतों को (पितरों को) कुशादि पर पिण्डदान करे, शान्तचित्त रहे, अपसव्य वस्त्र होकर (दक्षिण कन्धे पर उत्तरीय वस्त्र रख कर) जलदान (तर्पण) करे, मांस-भक्षण की इच्छा करे और तिल-गुड तथा पायस (खीर) आदि के भक्षण की भी इच्छा करे और पितरों का भक्त हो, वह पितृग्रह से जुष्ट है, ऐसा जानना चाहिये ॥

सर्पग्रहजुष्टमाह—

यस्तुर्थ्यं प्रसरति सर्पचक्षुचित्त स्फुक्षियौ विलिहति जिह्वाय तथैव ।

क्रोधालुरुद्गमधुद्गमध्यपायसेषुविज्ञेयो भवति मुजज्ञमेन जुष्टः ॥ १ ॥

सर्पग्रहजुष्ट उन्माद के लक्षण—जिस उन्माद में रोगी किसी २ समय पेट के बल पसर कर सर्प की भाँति चले और सर्प ही की भाँति जीभ से ओढ़ों को चाटे, अधिक क्रीष करने वाला हो, गुड-मधु-दूध और पायस (खीर) की इच्छा करने वाला हो, वह सर्पजुष्ट उन्माद होता है ॥

राक्षसजुष्टमाह—

मांसासुविधिविधिसुराविकारलिप्सुनिर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ।

क्रोधान्धो विपुलबष्टो निशाविहारी कौच्छिद्वात् स भवति राक्षसभिजुष्टः ॥ १ ॥

राक्षसजुष्ट उन्माद के लक्षण—जिस उन्माद में रोगी मांस-रक्त और विविध प्रकार के मध्य

तथा इनसे बने पदार्थ की इच्छा करे, अत्यन्त लज्जाहीन तथा अत्यन्त निठुर हो जावे, अत्यन्त शरूपीर, कोपान्ध (अत्यन्त क्रोध वाला), अत्यन्त बलवान, रात्रि में अमर करने वाला और पवित्रता से देष करनेवाला (अपवित्र) हो तो वह उन्माद राक्षसजुष जानना चाहिये ॥ १ ॥

पिशाचजुषमाह—

उद्धवस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गंभो भृशमस्तुचित्तस्थाऽतिलोकः ।

बहाशी विजनवनाभ्यरुपेषेवी द्याचेष्टन् अमति रुदन् पिशाचजुषः ॥ ३ ॥

पिशाचजुष उन्माद के लक्षण—जिस उन्माद में रोगी उद्धवस्त (अधिक क्षीण) हो, दुर्बल हो गया हो, कठोर वचन बोलने वाला हो और बहुत समय तक प्रलाप करे, शरीर से दुर्गंभ निकले, अत्यन्त अपवित्र रहे, अत्यन्त चञ्चल रहे, बहुत अन्न भक्षण करे, निजन वन में रहे, अनेक प्रकार की चेष्टा तथा रुदन आदि करता धूमता रहे वह उन्माद पिशाचभ्रह जुष जानना चाहिये ॥ १ ॥

तस्यासाध्यलक्षणमाह—

स्थूलाचो दुतमटनः सफेनलेही निद्रालुः पतति च कर्पते च योऽस्ति ।
यथाद्विद्विषयनगादिविष्युनः स्यात्सोऽसाध्यो भवति अयोद्देशेऽवदे ॥ १ ॥

भूतोन्माद के असाध्य लक्षण—जिस उन्माद में (भूतोन्माद में) रोगी के नेत्र स्थूल हो जावे (फूल जावें और फटे से रहें) और वह शीघ्रगामी हो, तथा सुख से अधिक केन गिरे और उसे वह चारे, अधिक नींद उसे आवे, चलते २ गिरता रहे और बहुत शरीर उसका कांपे, एवं पर्वत-ऊँचे भीट, हाथी तथा वृक्षादि से अपने को गिरा दे तथा उन्मादरोग तेरह वर्ष तक रह जावे वह उन्माद असाध्य है । अर्थात् ये असाध्य भूतोन्माद के लक्षण हैं ॥ १ ॥

ग्रहाणा ग्रहणकालमाह—

देवग्रहः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि । गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यत्तात्त्वं प्रतिपद्यथ ॥ १ ॥
पितरः कृष्णपदे स्युः पञ्चम्यामपि चोश्याः । रक्षासिं रात्रौ पैषाचाश्वतुदंशयां विशन्ति हि ॥ २ ॥

भूतोन्माद में ग्रहण करने वाले ग्रहों के ग्रहण का समय—देवग्रह पूर्णिमा को ग्रहण करते हैं, असुरग्रह दिन-रात की दोनों सन्धियों में, गन्धर्व ग्रह प्रायः करके अष्टमी को, यक्षग्रह प्रतिपदा को, पितर कृष्ण पक्ष में, संपर्वह पञ्चमी को, राक्षसग्रह रात्रि में और पिशाचभ्रह चतुर्दशी को ग्रहण (शरीर में प्रवेश) करते हैं । अर्थात् इन लिखित समयों में से जिस समय में उन्माद (भूतोन्माद) उत्पन्न हो तो ग्रह का ज्ञान उसी से करना चाहिये ॥ १-२ ॥

दर्पणादौ यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा । स्वमणिं भास्कराद्विश्वं यथा देहं च देहश्च ॥
प्रविशन्ति न हरयन्ते ग्राहस्तद्व्यक्तिरिणाम् ।

प्रविश्यद्युष्टु शरीरे हि पीडोः कुर्वन्ति दुःसहाय ॥ ४ ॥

देवादिक जो शरीर में प्रवेश करते हैं तो क्यों नहीं दिखाई पड़ते इस शङ्का का समाधान—जिस प्रकार दर्पण आदि में प्रतिविम्ब प्रवेश करते हुए नहीं ज्ञात होता और जिस प्रकार प्राणियों में शीत-उष्ण आदि प्रवेश करते समय नहीं दृष्टिगोचर होते, और जिस प्रकार अपने मणि (सूर्यकान्तमणि) में सूर्य की किरणें प्रविष्ट होती हैं, तथा शरीर में आत्मा का प्रवेश होता है और दिखाई नहीं देता उसी प्रकार देव, यक्ष ग्रहादिक भी शरीरधारियों के शरीर में प्रविष्ट होते नहीं दिखाई देते और प्रवेश कर शीत शरीर में असद्य कष्ट उत्पन्न कर देते हैं ॥ ३-४ ॥

तपासि तीव्राणि तथैव दानं अतानि धर्मा नियमात्म सत्यम् ।

गुणास्तथाऽष्टावपि तेषु निर्यं व्यस्ताः समस्तात्म सत्या प्रभावः ॥ ५ ॥

ग्रहों के गुण—तीव्रतर तप, दान, ब्रत, धर्म, नियम, सत्यता और प्रभाव ये गुण-उन आठों अकार के ग्रहों में पृथक् २ अधिक समस्त रूप से एकत्र रहते हैं अर्थात् इन ग्रहों से ग्रसित होने पर उस मनुष्य में ये गुण नहीं रहते हुए भी पृथक् २ वा एकत्र उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अष्टौ ग्रहास्तरपरिचारकात्मा ते तुल्यसत्यस्वेषु वसन्ति दुष्टाः ।

अयोद्दशावदे च अवस्थसात्मा यथास्वभावं परिवर्तयन्ति ॥ ६ ॥

आठो प्रकार के ग्रह और उन ग्रहों के (१) परिचारक (अनुचर) दुष्ट होकर अपने तुल्य (समान) सत्य (स्वभाव) वाले जीवों में वास करते हैं । ये सब आठो प्रकार के ग्रह तेरह वर्ष में असाध्य हो जाते हैं, क्योंकि इन्हें दिन तक (१२ वर्ष तक) शरीर में वास करने के कारण जीवों के स्वभाव को अपने स्वभाव में परिवर्तित कर लेते हैं ॥ ६ ॥

अथ तच्चिकित्सा—

मुद्रुद्वा दोषं वयः सात्पदं देशं कालं घटावलम् । चिकित्सितमिदं कुर्यादुन्मादे दोषभूतजे ॥

भूतोन्माद की चिकित्सा—इस भूतज उन्माद में दोष (वातादिक), आयु, सात्पद, देश (आनूपादि), काल (श्रीमादि), दल और अवल यह जानकर तब इसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

देवर्षिपितृशब्दवैलमसेषु च हुदिमान् ।

रघजेष्वस्यात्मादीनि तीष्णानि क्रूरकर्म च । सपिंष्णानादिगायत्रीहोममन्त्रादिरिच्यते ॥ २ ॥

देवग्रहाणुष्टु, ऋषिग्रहजुष्टु, पितृग्रहजुष्टु और गन्धवैद्यजुष्टु, उन्मादों में चिकित्सक नस्य कर्म, अजनविवि आदि तीष्ण कर्म तथा कूर कर्म त्याग देवे, इसमें चृत पान करावे, गायत्री जप करावे, होम करावे तथा मन्त्रादिक का जप करावे ॥ २ ॥

एजावरयुपहरशान्तिविषयोः होमेष्विमन्त्रक्रिया

दानं स्वस्त्रयनं ब्रतादिनियमः सत्यं अपो मङ्गलम् ।

प्रायश्चित्तसिवानमस्तुकिरथो रदौषधीधारणं

मूत्रात्मामधिष्पत्य विष्टपतेगौरीरपतेरप्यन्तम् ॥ ३ ॥

ये च स्युरुचिं गुणात्मा ग्रहणपतेषां समाराधनं

देवद्राह्मणपूजनं च शमयेदुन्मादमागन्तुकम् ॥ ४ ॥

पूजा, बलि (ग्रहानुकूल बलि), उपहार आदि देवे तथा शान्तिकारक (ग्रह-शान्तिक) कर्म, होम, यज्ञ, मन्त्रादि का जप, दान कर्म, स्वस्त्रिवाचन, ब्रतादि नियम, सत्यवादिता, जप, मङ्गल कर्म, प्रायश्चित्त, करबद हो प्रार्थना करना, रत्न तथा ओषधियों को धारण करना, भूतों के अपिपति-प्रजापति तथा गौरीपति (शिव जी) की पूजा करना, सुवन में होने वाले जितने भी गुण (यज्ञ-गन्धवैदि), प्रमथादि हैं उनकी आराधना करना, देवता-शान्तिका पूजन करना आदि करने से ये आगन्तुक भूतोन्माद (देवग्रह आदि) शमन होते हैं ॥ ३-४ ॥

शिरीषनक्षमालानां बीजानि मधुसर्पिण्या । भृत्यात्मा सर्वे सर्वेषां सामान्यो विष्णिवस्यते ॥ ५ ॥

शिरीष के बीज, बड़े करञ्ज के बीज, इन दोनों को चूर्णकर मधु और घृत के अनुपान से सब प्रकार के भूतोन्माद में सेवन करने से लाभ होता है । यह सामान्यविधि है ॥ ५ ॥

पून्द्रात् ऋषजम्बुकरोमाणि शाशकी लग्ननं तथा । हिङ्गु मूत्रं च वस्त्रस्य धूपमस्य प्रयोजयेत् ॥

(१) देवग्रह इत्यादिक जो कहे गये हैं वहाँ देवों के अनुचर प्रवेश करते हैं । इसका स्पष्टी-कारण सुश्रुत के उत्तरतन्त्र में है ।

भूपेन शास्त्रिति लिप्रं बलवानपि यो ग्रहः । शिरीषपुष्पं लक्षुनं शृण्टी सिद्धार्थकं वचा ॥ ७ ॥
मञ्जिष्ठा रजनी कृष्णा वस्तमूलेण पैषवेत् । वटी छाथाचिष्ठुका स्यात्सा हिता नाथनाभ्यने ॥

ऋक्ष (भाल) और सियार के बाल, साही का कांटा, लहसुन, हींग और बकरे का मूत्र इन सबको एकत्र मिथित कर कूट-पीसकर इसे धूप देने के प्रयोग में लावे । इस धूप से बलवान ग्रह भी शीघ्र ही नष्ट (शमन) हो जाते हैं । शिरीष का फूल, लहसुन, सौंठि, खेत सर्सों, वच, मजीठ, इरदी, पीपरि, इन सब ओषधियों को समान आग लेकर कूट-पीसकर बकरी के मूत्र के साथ घोटकर बटी बनाकर छाया में सुखाकर रख लेवे । इस वटी के नस्य और अंडन करने से भूतज उन्माद में हितकर है ॥ ८-९ ॥

माहेश्वरधूपो योगशतात्—

कार्पासास्थिमयूपिष्ठवृहतीनिर्मल्यपिण्डीतक-
स्वाक्षांसीवृषदंशविष्णुकेशाहिनिर्मोचनैः ।
नागेन्द्रिष्ठिजश्वङ्गहिङ्गमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचाचाससुरावेशउवरथनः स्मृतः ॥ ९ ॥

माहेश्वर धूप—कपास के बीज (विनीले), मीरे के पंख, बड़ी कटेरी, निर्मल्य (देवता पर छढ़े हुए फूल), मैनफल, दालचीनी, जटामासी, बिलार की विष्णा, नखी द्रव्य, वच, केश, सौंप की केन्तुल, हाथी का दाँत, गौ का सींध, हींग और मरिच इन सबको समान आग लेकर कूट-पीसकर धूप देने से स्कन्दपस्मार, उन्माद, पिशाच-राक्षस और देव के ऊंचर को उत्तर करने वाला है ॥ १ ॥

महापैशाचधृतं योगतरङ्गिण्याः—

जटिला पूतना केशी मर्कटी चारटी वचा । व्रायमाणा जया वीरा चोरकं कटुरोहिणी ॥ १ ॥
कायस्था शूकरी छुआ सातिष्ठुत्रा पल्लक्षणा । महाहुरुहदन्ता च वयस्या नाकुलीद्वयम् ॥ २ ॥
कटमरा वृथिकाली स्थिरा चैतैर्वृत्तं पैषेत् । तत्त्वं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ३ ॥
महापैशाचकं नाम धृतमेत्याऽमृतम् । तुदिमेधास्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्धनम् ॥ ४ ॥

महापैशाचधृत—जटामासी, इरर, शतावरि अथवा भूतकेशी, केवांच, ब्राह्मी, वच, व्रायमाण, जयन्ती अथवा भांग, क्षीरकाकोली अथवा पृष्ठपणी, चोरक (चौरा), कुटकी, कायस्था (संभाल), वाराहीकन्द, सौंफ, सोवा, गुणगुल, शतावरि, गिलोय, नाकुली (रासना), गन्ध-रासना, मालकांगुनी के बीज, वृथिकाली (विच्छू बूटी) और शालिपणी। इन ओषधियों को समान आग लेकर विष्पूर्वक कल्प करे और जितना कल्प हो उसके चतुर्गुण मूर्च्छित गोधृत तथा पार्कार्थ धृत से चतुर्गुण जल देकर धृतपाक कर सेवन करने से चातुर्थिक ऊर, उन्माद, ग्रहदोष, अपस्मार नष्ट होता है । यह 'महापैशाच' नामक धृत अमृत के समान है । और तुदि, मेधाशक्ति और स्मृति (स्मरण शक्ति) तथा बालकों के अंग को बढ़ानेवाला है ॥ १-४ ॥

कल्याणकं प्रयुक्तीत महाद्वा चैतसं धृतम् । तैलं नारायणं वाऽपि महानारायणं तथा ॥ १ ॥
और भूतोन्माद में कल्याण धृत, महाचैतस धृत, नारायण तैल अथवा महानारायण तैल का प्रयोग करावे ॥ १ ॥

रसरलप्रदीपाद् भूतभैरवरसः—

रसः सतालः सशिलः सलोहः सोतोल्लनं सार्कमिदं हि गन्धम् ।
पिण्ठं नृमूलेण समं समन्ताद् देयो हिंभागोऽथ बलिः पैषेत् ॥ १ ॥
लौहे छणं हन्ति धृतेन माषोऽपस्मारमप्युन्मदमानसव्यम् ।

पिवेदनु शूषणशिङ्गुयुक्तं सर्विन्दूत्रं रुचकेन सार्थम् ॥ २ ॥

भूतभैरवरस—शुद्धपारद, शुद्ध हरताल, शुद्धमैनसिल, लौहमस्म, शुद्ध कृष्णजन, ताप्रभस्म, शुद्धगच्छक, इन सब को समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य ओषधियों को एकत्र कर भलीमांति मर्दन कर मनुष्य के मूत्र के साथ मर्दन करे, पश्चात् लौहे की कड़ाही में सबको रख कर सब के दूना शुद्ध गन्धक उसी में देकर थोड़े समय तक (जब तक सब गलकर मिल जावे) अग्नि पर पाक कर रख लेवे । इस रस को एक मात्रा के प्रमाण से अथवा रोगवलानुसार इससे कम मात्रा से धृत के साथ मिलाकर चाटकर ऊपर से सौंठि-पीपरि-मरिच का चूर्ण, हींग शुद्ध, धी, मनुष्य का मूत्र और रुचक लवण सब मिला कर इसका अनुपान देवे अर्थात् रस-सेवन के पश्चात् इसे पिलावे । तो इससे अपस्मार और उन्मादरोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

भूतभैरवः—

भूतोन्मादेषु सर्वेषु रसोऽयं भूतभैरवः । स्वर्णजैः पञ्चमिर्बाजैर्देयः सपिंविभिन्नितः ॥ ३ ॥

सभी प्रकार के भूतोन्माद में इस भूतभैरवरस को पांच धूतूरे के शुद्ध बीज और धृत में मिला कर देना चाहिये ॥ ३ ॥

अथापस्मारनिदानमाह—

चिन्ताशोकादिभिर्दीषाः क्रद्धा द्वृत्तोत्तिस्थिताः । कृत्वा स्मृतेरपच्चंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥

अपस्मार का निदान—चिन्ता, शोक इत्यादिक कारणों से कुछ (कुपित) दोष (वातादिक) हृदय के स्रोतों में स्थित होकर (संज्ञावद नाड़ियों में रह कर) स्मृति (स्मरण) का नाश कर अपस्मार रोग उत्पन्न कर देते हैं ॥ १ ॥

सामन्येन तल्क्षणमाह—तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्वेक्षहतस्मृतिः ।

अपस्मार इति ज्ञेयो गदो दोषोद्वेक्षहतस्मृतिः । वातिपत्तिकैः सर्वेषां देयः स स्थानुर्विधिः ॥ १ ॥

अपस्मार के सामान्य लक्षण—जिस रोग में अन्वाकार वा तमोगुण का प्रवेश हो अर्थात् नेत्रों के आगे अंधेरा मालम हो वा अंधेरे में प्रवेश करने के समान ज्ञात हो, संरम्भ (नेत्रों का इधर-उधर होना), हाथ-पौँव इधर-उधर करना और दोषों के उद्रेक (वृद्धि) के कारण स्मृति शक्ति-का नाश होना, यह होते हैं । उसे अपस्मार जानना चाहिये, अर्थात् साधारणतः अपस्मार के ये लक्षण हैं । और यह रोग वातज, पित्तज, कफज तथा सन्धिपातज मेद से चार प्रकार का होता है ॥

तत्य पूर्वरूपमाह—

हृतकप्तः शून्यता स्वेदो ध्यानं सूक्ष्मा ग्रमूलता । निद्रानाशश्च तस्मिस्तु भविष्यति भवन्त्यथ ॥

अपस्मार का पूर्वरूप—जिस मनुष्य को हृदय में कम्पन, शरीर में शून्यता, स्वेद होना, एकाय इति हो जाना, मूर्छा, संज्ञानाश और निद्रा का नाश हो जाना ये लक्षण हों तो उसे अपस्मार होगा, यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

वातिकमाह—

कृपते प्रदूषोद्वत्तान्फेनोद्वामी शसित्यपि । परुषाहणकृष्णानि पश्येद्वृपाणि चानिलान् ॥ ३ ॥

वातिक अपस्मार के लक्षण—वात के कोप से जो अपस्मार होता है उसमें रोधी की कम्पन होता है, दाँत बैठ जाते हैं, फेन वमन करता है अर्थात् सुख से ज्ञाग (गाज) निकलते हैं, शास प्रयोग से चलने लगता है और रोधी को कर्कश, लाल और कृष्ण रूप (आकाशादि) दिखाई देता है । अर्थात् वातिक अपस्मार के ये लक्षण हैं ॥ १ ॥

पैतिकमाह—

पीतफेनाङ्गवत्रादः पीतासुग्रूपदर्शनः । सतृणोष्णानलद्वयासुलोकदर्शी च पैतिकः ॥ १ ॥

पैचिक अपस्मार के लक्षण—पित्त के कोप से जो अपस्मार होता है उसमें रोगी के मुख से पीतवर्ण का फेन गिरता है और अङ्ग (शरीर), मुख तथा नेत्र पीतवर्ण के हो जाते हैं, पीत-रक्त मिश्रित रूपों को देखता है, तृष्णा होती है, और सम्पूर्ण जगत् को उष्ण तथा अधि से व्याप्त देखता है अर्थात् पैचिक अपस्मार के ये लक्षण हैं ॥ १ ॥

इलैंजिकमाह—

युहुकेनाङ्गवद्वाचः दीर्तो हृषाङ्गजो गुहः । परयेत्रूपाणि शुक्लानि श्लैंजिम्बिको मुष्टयते विरात् ॥

कफज अपस्मार के लक्षण—कफ के कोप से जो अपस्मार होता है उसमें रोगी के मुख से व्येतवर्ण का फेन गिरता है, तथा अङ्ग (शरीर), मुख और नेत्र व्येतवर्ण के हो जाते हैं, शरीर शीतल हो जाता है, रोमाङ्ग होता है, शरीर मारी होता है, और व्येतवर्ण के रूपों को सामने देखता है तथा अपस्मार के वेग से बहुत काल के पश्चात् मुक्ति (चेतना) होती है अर्थात् कफज अपस्मार के ये लक्षण हैं ॥ १ ॥

सत्त्विपातिकमाह—

सत्त्विरेभिः समस्तश्च लिङ्गेन्द्रियज्ञिदोषजः । अपस्मारः स चासाऽयो च खण्णिणस्यानवश्य यः ॥ १ ॥

सत्त्विपातज अपस्मार के लक्षण—सत्त्विपात (त्रिदोष) से जो अपस्मार होता है उसमें रोगी को इन त्रावादिकों में कहे हुए सभी (तीनों) के सम्पूर्ण लक्षण उपस्थित रहते हैं अर्थात् सब दोषों के सम्पूर्ण लक्षण जिस अपस्मार में दिखाई दे उसे सत्त्विपातज अपस्मार जानना चाहिये । यह त्रिदोषज अपस्मार और क्षीण पुरुष को हुआ अपस्मार (चाहे एक ही दोष का क्यों न हो) तथा जो अपस्मार नया नहीं हो अर्थात् पुराना अपस्मार ये तीनों असाध्य हैं ॥ १ ॥

अथासाध्यमाह—

प्रस्फुरन्तं च बहुशः क्षीणं प्रचलितश्रुवम् । नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ १ ॥

असाध्य अपस्मार—जिस अपस्मार में रोगी वेग होने पर बहुत हाथ-पैर पटके, क्षीण हो गया हो, मौहों को बहुत चलाके और नेत्रों को टेढ़ा-तिरछा कर दे, वह अपस्मार रोगी को नष्ट कर देता है अर्थात् असाध्य है ॥ १ ॥

कालनियमगाह—

पच्छाङ्गाऽपि दशाङ्गाङ्गा मासाङ्गा कुपिता मलाः । अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किञ्चिद्धर्थान्तरम् ॥

अपस्मार के वेग का नियत समय—एक पक्ष (१५ दिन) में बारह दिन में अथवा एक मास में दोष (वातादिक) कुपित होकर अपस्मार के वेग को करते हैं (वातिक १५ दिन पर, पैतिक १२ दिन पर, श्लैंजिक १ मास पर), परन्तु कभी २ इसके मध्य में भी वेग हो जाता है । देवे वर्षस्थपि यथा भूमी वीजानि कानिचित् । शारदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्वयः ॥

जिस प्रकार मैथ के वर्षान्त्रितु में बरसने पर भी कितने भी भूमि में ही रहकर शरदान्त्रितु में उगते हैं उसी प्रकार रोगों के वेग मी कभी २ रुक २ कर आया करते हैं समय पर नहीं आकर अर्थात् निश्चित समय के आगे भी अपस्मार का वेग होता है ॥ २ ॥

अथापस्माराच्चिकित्सा

पूर्वं युज्यादपस्मारे छर्दनादीनि त्रुदिमान् ।

बातिकं बस्तिभिः प्रायैः पैचिकं च विरेचनैः । कफजं वमनप्रायैरपस्मारसुषाचरेत् ॥ १ ॥

अपस्मार की चिकित्सा—त्रुदिमान् वैय प्रथम अपस्मार रोग में वमनादिक करावे । और प्रायः करके वातिक अपस्मार में बस्तिकर्म, पैचिक अपस्मार में विरेचन कर्म और कफज अपस्मार में वमन कराकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

करजादियोगः—

करज्जदाहसिद्धार्थकटभीरामठं च च । समझा त्रिक्लाम्योर्ब्रियकृष्ण समांशकाः ॥ १ ॥

अस्तमूत्रेण संपित्त्य नस्यपानाज्जनादित्यु । योज्यो योगोद्यसुन्मादेपस्मारे भूतरोगिषु ॥ २ ॥

करजादि योग—करज के बीज, देवदार वा धूप, श्वेतसांसौ, मालकांगर्जी, हींग, वच, मजीठ, अंवरा, हर्षा, बहेरा, सोठि, पीपूरि, मरिच, फूलप्रियज्ञु इन प्रयोक्त ओषधियों को समान लेकर बकरे के मूत्र के साथ पीस कर नस्य लेने, पान करने और अज्जन करने के लिये यह 'करजादि योग' उन्माद, अपस्मार और भूतोन्माद में देना चाहिये । अर्थात् इससे ये रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

योगतरक्षिण्या निर्गुण्ड्यादिनावनम्—

निर्गुण्डीभववन्दाकनावनस्योपयोगतः । उपैति सहस्रा नाशमपस्मारो न संशयः ॥ १ ॥

निर्गुण्ड्यादि नावन—निर्गुण्डी (संभाल) के अंकुरित बीज (जो बीज पौधे का रूप धारण कर चुका हो) को पीस कर नस्य का उपयोग करने से यकायक शीत्र अपस्मार को निश्चित नष्ट करता है ॥ १ ॥

यष्ट्याहादिनावनाज्जने चिकित्सासारात्—

यष्ट्याहिङ्गुवचावत्रीशीर्षलघुनामयैः । साजमूत्रैरपस्मारे सोन्मादेनावनाज्जने ॥ ३ ॥

यष्ट्याहादि नावनाज्जन—जेठी मधु, हींग, वच, अस्थिसंहारी, शिरीष बीज, लहसुन और कूठ, सब को समान लेकर चूर्णकर बकरी के मूत्र में मिलाकर नस्य अथवा अज्जन करने से अपस्मार और उन्माद में लाभदायक है ॥ ३ ॥

चिकित्सासारादज्जनधूपने—

पुष्योदृष्टं द्युनः पित्तमपस्मारमज्जनम् । तदेव संपित्ता युक्तं धूपनं परमं हितम् ॥ १ ॥

अज्जन और धूप—पुष्य नक्षत्र में जिकाले हुए धान के पित्त का अज्जन करने से अपस्मार नष्ट होता है । अथवा वही पित्त धूत से युक्त कर धूपन करने (धूप देने) से भी अपस्मार में तरम हितकर है ॥ १ ॥

मनोहात्यज्जनम्—

मनोहाता तार्चर्यकं चैव शकुन्पारावतस्य च । अज्जनं हन्त्यपस्मारसुन्मादं च विशेषतः ॥ १ ॥

मनोहात्य अज्जन—मैनसिल, रसवत और परेवा पक्षी का बीट इनको समान लेकर पीसकर अज्जन करने से अपस्मार को नष्ट करता है । तथा विशेष कर उन्माद को नष्ट करता है ॥ १ ॥

श्वश्यालदियोगः वृद्धात्—

श्वश्यालदियोगानां कपिलानां गवाभयि । पित्तानि नस्यतो हन्त्युपस्मारं पृथक्पृथक् ॥ १ ॥

श्वश्यालदियोग—कुत्ता, सियार, बिली और कपिला गौ इनके पृथक् २ पित्त का (किसी भी एक के पित्त का) नस्य देने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ १ ॥

ऋपुसीनस्यम्—अरण्यप्रपुसीचूर्णं नस्येनापस्मृतिं जयेत् ।

ऋपुसी नस्य—जंगली खीरे के चूर्ण का नस्य देने से अपस्मार रोग नष्ट होता है ।

मधुवनायोगः—

या खादेत्त्वीरभक्ताणी मालिकेण वचारजः । अपस्मारं महावोरं सुचिरोत्थं जयेद् प्रवस्मा ॥ १ ॥

मधुवन योग—जो अपस्मार का रोगी वच के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करता है और मैत्र दूध-भात का ही पथ्य सेवन करता है वह अति कठिन एवं पुराने अपस्मार को भी निश्चित ही जीता है अर्थात् इससे अपस्मार नष्ट होता है ॥ १ ॥

मधुवनमूलयोगः—उत्तरदिग्गतमुस्तकमूलं बुद्ध्या समुद्धृतं पुष्ये ।

पीतं पयसा हन्यादपस्मृतिं गोः सवर्णवत्साथाः ॥ १ ॥

मुस्तकमूल योग—उत्तर दिशा में जिसकी जड़ गधी ही है ऐसे नागरमोथे को हुद्धिमानी के साथ पृथ्य नक्षत्र में उखाड़ कर चूर्ण कर समान वर्ण के बढ़े वाली (गाय-बछड़ा का रंग एक सा ही हो ऐसी) गाय के दूध के साथ पीने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ २ ॥

कूष्माण्डादिः—

कूष्माण्डकगिरोध्येन रसेन परिपेतिभूम् । अपस्मारविनाशाय यष्ट्याहं स पित्रेत ऋष्यहम् ॥ १ ॥

कूष्माण्डादिं योग—रवेत कूष्माण्ड (पेठे) के बीज के रस के साथ जेठीमधु को पीस कर तीन दिन तक अपस्मार नष्ट होने के लिये पीना चाहिये अर्थात् तीन दिन इसके पीने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ १ ॥

चिकित्सासारादसायनभैरवः—

वचामृताद्योषमधूकप्रशारुद्वाच्चिन्धूद्ववार्हतानि ।

फलं समुद्रस्य इसोनकर्क ध्मातं हि नासातुरमध्यदेशो ॥ १ ॥

अपस्मृतिरश्लेषमहिक्षुरोहवप्रलापतन्द्राप्रमजाङ्गमोहान् ।

ससज्जिपातं श्रुतिकाचिभङ्गानसपीनसं हनित हलीमकं च ॥ २ ॥

रसायनं भैरवनामधेयं ज्ञातं विचारात्कविदिट्टलेन ॥ ३ ॥

रसायनभैरव—बच, गुरुचि, सौठि, पीपरि, मरिच, मटुए का सार, रुद्राक्ष, सेन्धा नमक, बड़ी कटेरी के फल, समुद्रफल और लहसुन का कल्क इनको कूट-पीस कर उत्तम चूर्ण कर नाक में रख कर धूंक मारने से (धूंक किसी नली के द्वारा मारनी चाहिये) अपस्मार, कफ-बात से होने वाले शिरःशूल, प्रलाप, तन्द्रा, भ्रम, जड़ता, मोह, सन्निपात, कान और आँख इनका भंग (टेढ़ा) होना, पीनस, हलीमक इन सभी रोगों को नष्ट करता है । यह भैरव नाम का रसायन विट्टल कवि ने विचार कर (भलीमति परीक्षा कर) उत्तम माना है ॥ १-३ ॥

अथ धृतानि

ब्राह्मीधृतम्—

ब्राह्मीरसे वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेष च । पंकं पुरासनं सर्पिरपस्मारहरं ध्रुवम् ॥ १ ॥

ब्राह्मी धृत—ब्राह्मी का स्वरस ४ सेर, वच, कूठ, शङ्खपुष्पी, इन तीनों ओषधियों का कल्क ५। एक पाव और पुराना मूर्छित गाय का धृत ५१ एक सेर लेकर धृत सिद्ध कर सेवन करने से अपस्मार रोग निश्चित नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

सैन्धवादं धृतम्—

धृतं सैन्धवहिकुञ्जांकणभिस्तच्चनुर्गुणैः । मूर्छैः सिद्धमपस्मारहद् ग्रहग्रामनाशनम् ॥ १ ॥

सैन्धवादि धृत—सेन्धा नमक, हींग और पीपरि इन द्रव्यों का कल्क और उस से चतुर्गुण मूर्छित गोधृत और उस से चतुर्गुण गोमूत्र लेकर धृत सिद्ध कर सेवन करने से अपस्मार तथा ग्रहादिक शान्त होते हैं ॥ १ ॥

स्वल्पपञ्चगव्यधृतम्—

गोशकूदसदध्यरुलच्छीरमूत्रैः समं धृतम् । सिद्धं चातुर्थिकोन्मादप्रहापवस्त्रारनाशनम् ॥ १ ॥

स्वल्प पञ्चगव्य धृत—गोबर का रस, गाय की दही, गाय का दूध और गाय का मूत्र और गाय का धृत इनको समान लेकर विचित्र धृत पाक कर सेवन करने से चातुर्थिक ऊर, उन्माद, ग्रह दोष और अपस्मार रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

बृन्दात्कूष्माण्डादिधृतम्—

कूष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् । यष्ट्याद्वक्षके तसिद्धमपस्मारहरं परम् ॥ १ ॥

कूष्माण्डादिधृत—जेठी मधु का कल्क ५। एक पाव, मूर्छित गोधृत ५१ एक सेर, थेत कुष्माण्ड (पेठा) का स्वरस १८ अठारह सेर लेकर धृत पाक कर धृत मात्र शेष रहने पर उत्तर-छानकर सेवन करने से यह अपस्मार को नष्ट करने में उत्तम है ॥ १ ॥

अथ तैलचूर्णानि

योगतरक्षिण्यादितैलम्—

कटभीनिलकटवक्षमधुशिग्रित्वचारसे । सिद्धं मूत्रसुतं तैलं लेपाद्यन्यादपस्मृतिम् ॥ १ ॥

कटभ्यादितैल—मालकांगुनी, नीमकी छाल, सोनापाठा, मधुशिग्रु (लाल सहिजन) की छाल, इन ओषधियों का मिलित कल्क ५। एक पाव, मूर्छित तिल का तैल, पाकार्थ गोमूत्र, सहिजन की छाल का रस प्रत्येक ५१ एक सेर लेकर सब को एकत्र कर विधिपूर्वक तैल पाक कर इस तैल के लेप करने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ १ ॥

धृदात् सार्षपं तैलम्—

अभ्यक्ते सार्षपं तैलं ब्रह्मसूत्रे चतुर्गुणे । सिद्धं स्याद्वोशकून्मूत्रे स्नानोद्दूर्तनमेव च ॥ १ ॥

सार्षपं तैल—मूर्छित सार्षों का तैल लेकर उसमें चौगुना बकरी का मूत्र मिला कर पाक करे तैल मात्र शेष रहने पर उत्तर-छानकर इस तैल का नित्य मर्दन करने से और गौ के गोबर तथा मूत्र से रनान और उबटन करने से भी अपस्मार नष्ट होता है ॥ १ ॥

धूपनम्—

नकुलोलकमाजारैर्गृहकीटाहिकाकजैः । तुण्डैः पृष्ठैः पुरीषैः धूपनं कारयेत्तिष्क ॥ १ ॥

धूपन विधि—नेवला, उलूपक्षी, विली, गिड, कौट (छोटे २ कीड़े), सर्प और कौबा इनके मुख (ठोर), पंख, मल, एकत्र कर वैद्य धूप देवे इससे अपस्माररोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

दुष्किरिस्थो द्युपस्मारश्विरकारी महागदः । तस्माद्वासायनैरेन प्रायशः समुपाचरेत् ॥ २ ॥

यह अपस्मार रोग दुश्किरिस्थ्य है, बहुत समय के परिश्रम करने पर जाता है (अर्थात् इसका इटना कठिन है) और मदारोग है, इसलिये प्रायः करके इसके लिये रसायन ओषधियों के योग का प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

दुष्करोपोद्विज्ञायस्य स्वेदो हस्ताविशीतता । दशमूलांजलं तस्य कल्याणाद्यं च योजयेत् ॥

जिस अपस्मार के रोगी के हृदय में कम्प होता हो, नेत्रों में पीड़ा होती हो, अधिक स्वेद होता हो और हाथ-पैर आदि शीतल रहते हों उसके लिये दशमूल का क्वाथ और कल्याण धृत का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

कल्याणकं चूर्णम्—

पश्चकोलं समरिच्च त्रिफला विहसेन्द्रवम् । कृष्णविहारपूरीक्षवानीश्वर्यजीरकम् ॥ १ ॥

पीतमुष्णाभुना चूर्णं वातश्लेष्मायापहम् ।

अपस्मारे तथोन्मादे हुर्नामग्रहणीगदैः । एतत् कल्याणकं चूर्णं नष्टस्थानेश्व दीपनम् ॥ २ ॥

कल्याणक चूर्ण—पीपरि, पिपासूल, चव्य, चित्रकमूल, सौठि, मरिच, अंवरा, हरा, बहरा, विषषण, सेन्धानमक, पीपरि, बामीरंग, करज, अजवाइन, धनियाँ और जीरा इनको समान भाग लेकर चूर्ण कर उस जल के साथ सेवन करने से वात और कफ के रोग नष्ट होते हैं और अपस्मार, उन्माद, अशी, ग्रहणी इन रोगों में इस 'कल्याणक' चूर्ण को देना चाहिये अर्थात् ये रोग इसी नष्ट होते हैं तथा जठर की अग्नि जिसकी नष्ट हो जाती है उसको दीप करता है ॥ १-२ ॥

नष्ट हो जाना तथा रज का नष्ट हो जाना, अगों का कम्पन होना तथा फरकना, शरीर का शून्य हो जाना, सिर, नासिका, नेत्र और जटुदेश (कन्धे पर की हँसली) तथा गरदन इनका दिलना, शरीर में फोड़ने के समान पीड़ा होना, सूई चुभाने के समान पांड़ा होना, अङ्गों का इधर-उधर फेंकना, मूर्छा होना, थकान होना, इस प्रकार के अनेक क्षणों को कुपित हुआ वायु उत्पन्न करता है, और कारण विशेष तथा स्थान विशेष से विशिष्ट होकर वायु रोग विशेष को उत्पन्न करता है ॥ २-५ ॥

स्थानविशेषलक्षणमाह—चायुरामाशये कुद्धश्चाण्डीन् कुहते सदा ।

तत्र कोष्ठाश्रिते हुते निग्रहो मूत्रवर्चसोः । ब्रह्महृदोयगुरुमार्घः पार्श्वशूलं च माहते ॥ ३ ॥

स्थान विशेष से वायु के लक्षण—वायु जब आमाशय में कुद्ध होता है तब सदा वमन आदि रोगों को करता है, वही जब पकाशय में कुपित होता है तब मल-मूत्र का अवरोध कर देता है और वर्धम (वृद्धि), हृद्रोग, गुरम, अर्थ तथा पार्श्वशूल करता है ॥ १ ॥

सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणभञ्जनम् । वेदनाभिः परीतस्य शुद्धन्तीवास्य सन्धयः ॥ १ ॥

सर्वाङ्गवात के लक्षण—वायु जब सर्वाङ्ग में कुपित होता है तब गांत्रों में स्फुरण (फरकन), दूटने के समान ज्ञात होना, अत्यन्त पीड़ा होना और सन्धियों में फूटने के समान पीड़ा होना यह सब होता है ॥ १ ॥

गुदस्थितवातलक्षणमाह—

अग्नो विणमूत्रवातानां शूलाधमानानशमशक्तराः । जहोऽश्रिक्षह्यपृष्ठद्वक्ष शोफक्ष गुदस्थिते ॥ १ ॥
गुदा में कुपित वात के लक्षण—गुदा में जब वायु कुपित होती है तब मल-मूत्र और अर्थोवायु का अवरोध, शूल, आधमान, अदमरी (पथरी) तथा शर्करा रोग होता है । जंघा, ऊर, त्रिक, हृदय, पीठ इन स्थानों में पीड़ा होती है और शोथ भी हो जाता है, इसमें वायु गुदा का आशय रहता है ॥ १ ॥

आमाशयवातलक्षणमाह—

सक् पार्श्वोदरहस्याभौ तुर्णोद्वाराविसूचिकाः । कासः कण्ठास्यशोषक्ष इविद्वाऽमाशये स्थिते ॥
आमाशय में कुपित वात के लक्षण—आमाशय में जब वायु कुपित होती है तब पाइख देश, उदर, हृदय और नाभि स्थान में पीड़ा होती है, तुषा होती है, डकार आता है, विसूचिका होती है, कास होता है, कण्ठ तथा मुख सूखते रहते हैं और वमन होता है ॥ १ ॥

पकाशयवातलक्षणमाह—

पकाशय में कुपित वात के लक्षण—वायु जब पकाशय में कुपित होती है तब आँतों में गुदगुड़ शब्द, शूल और आटोप (शब्द युत आधमान) ये सब होता है । मूत्र और पुरीष में कष्ट, आनाह तथा निक स्थान में पीड़ा, यह सब होता है ॥ १ ॥

ओवादिवातलक्षणमाह—ओवादिविविन्दियवर्धं कुर्यात कुद्धः समीरणः ॥ १ ॥

ओवादिकों में कुपित वात के लक्षण—जब वायु ओवादिकों (कर्ण आदि) में कुपित होती है तब ओवेनिद्य आदि को नष्ट कर देता है अर्थात् बधिरता आदि होती है ॥ १ ॥

त्वग्-रसकुपितवातलक्षणमाह—त्वग्भूषा स्फुटिता सुसा कृशा कृष्णा च तुथते ।

आतन्धयते सरागा च पर्वरुक्ष त्वगतेऽनिले ।

त्वचा में कुपित वायु के लक्षण—त्वचा में वायु जब कुपित होती है तब त्वचा रक्ष हो

जाती है, फट जाती है, शून्य हो जाती है, कुश हो जाती है, कुष्ण वर्ण की हो जाती है, सूई चुभाने के समान पीड़ा होती है, तन जाती है, किश्चित् तान्न वर्ण की हो जाती है, सन्धियों में पीड़ा होती है, वै सब त्वचागत वायु के कोप से होते हैं ।

अथद्वा गौरवालस्य उवरो इत्यगतेऽनिले ॥ १ ॥

रस गत वायु के लक्षण—रस गत वायु के कोप में अथद्वा (भोजनादि कार्य में मन नहीं लगना), शरीर भारी मालम होना, आलस्य होना और उवर होना, यह सब होता है ॥ १ ॥

रक्तगतवातलक्षणम्—

रजस्तीवाः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽऽहचिः । गात्रे चारुवि भुक्षस्य स्तम्भश्चाद्यगतेऽनिले ॥

रक्त में कुपित वायु के लक्षण—जब रक्त में वायु कुपित होती है तब सम्पूर्ण शरीर में सन्ताप सहित तीव्र पीड़ा होती है, वर्ण विवर्ण हो जाता है, दुर्बलता होती है, अरुचि होती है, शरीर में कुनिस्यों हो जाती हैं, भोजन करने पर रक्तन्धन होती है ॥ २ ॥

मांसमेदोगतवातमाह—

सर्वाङ्गं तुथते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा । सहकृत्स्मितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ ३ ॥

मांस-मेद में कुपित वात के लक्षण—जब मांस और मेद में वायु कुपित होती है तब सब अङ्गों में सूई चुभाने के समान पीड़ा होती है, शरीर जकड़ जाता है, ढंडा और सुका आदि मारने के समान पीड़ा होती है, और शरीर मींगे हुए के समान रहता है ॥ २ ॥

मज्जास्थिगतवातमाह—

भेदोऽस्थिपर्वणीं सन्धिशूलं मांसमेदलक्ष्यः । अश्वनः सतता रुक्षं मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥

मज्जा और अस्थि के कुपित वात के लक्षण—जब वायु मज्जा और अस्थि में कुपित होती है तब अस्थि और सन्धियों में दूटने के समान पीड़ा होती है, सन्धियों में शूल होता है मांस, बल तथा निद्रा का नाश हो जाता है, निरन्तर पीड़ा होती है ॥ १ ॥

शुक्रगतवातमाह—सिंग्रं सुक्ष्मति बड्डनाति द्युक्षस्थः कुपितेऽनिलः ॥ ३ ॥

शुक्र में कुपित वात के लक्षण—जब वायु शुक्र में कुपित होती है तब शुक्र शीत्र २ निकलता है अथवा निकलता ही नहीं बन्द हो जाता है ॥ १ ॥

सिरागतवातमाह—

कुर्यात्सिरागतः शूलं सिराकुद्धनपूरणम् । स्वाद्याध्यन्तरायाम् खल्हीं कुडजत्वमेव च ॥ १ ॥

सिरा में कुपित वात के लक्षण—जब वायु सिराओं में कुपित होती है तब शूल और सिराओं (स्तोत्रों) का संकोच (सिकुड़न) होता है, और सिराओं में वायु भर जाती है, एवं बाद्यायाम, अन्तरायाम, खल्ही तथा कुडजत्व इन रोगों की उत्पत्ति हो जाती है । (इन रोगों का वर्णन आगे करेंगे) ॥ १ ॥

स्नायुसन्धिगतवातमाह—सर्वाङ्गाकाङ्क्षरोगार्थं कुर्यात् स्नायुगतेऽनिलः ॥ १ ॥

हन्ति सन्धिगतः सन्धीशूलशोकौ करोति च ।

स्नायु और सन्धि में कुपित वात के लक्षण—जब वायु स्नायु और सन्धियों में कुपित होती है तब सर्वाङ्ग का रोग अथवा एक अङ्ग का वात रोग उत्पन्न करती है तथा सन्धि की वायु सन्धियों में शूल और शोथ को करती है ॥ १३ ॥

आतृतवातलक्षणानि—प्राणोद्वानै समानश्च ध्यानश्चापान एव च ॥ १ ॥

स्थानस्था भास्ताः पञ्च ध्यापयन्ति शारीरिणम् ।

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नामिमण्डले ॥ २ ॥

उदानः कण्ठदेवे स्थाद्यथानः सर्वशीरणः ।

वायु की संल्पा तथा स्थान—प्राण-उदान—समान-व्यान और अपान नाम से पांच प्रकार की वायु अपने २ स्थान पर स्थित हुई शरीरथारियों में व्याप रहती है । हृदय में प्राण वायु, गुदा में अपान वायु, नाभि मण्डल में समान वायु, कण्ठ देश में उदान वायु और सम्पूर्ण शरीर में व्यान वायु स्थित रहती है ॥ १-२३ ॥

प्राणे पित्तावृते कृदिव्दाहश्चौपज्ञायते ॥ ३ ॥

कफ-पित्तादि से आवृत वात के लक्षण—प्राण वायु जब पित्त से आवृत हो जाती है तब वमन और दाह (हृदय में) उत्पन्न हो जाता है ॥ ३ ॥

दौर्बल्यं सदनं तथा वैरर्थ्यं च कफावृते ।

और प्राण वायु जब कफ से आवृत होता है तब दुर्बलता, अङ्गों में अवसाद, तन्त्रा और मुख का विरस हो जाता यह सब होता है ॥ ३३ ॥

उदाने पित्तसुके तु दाहो मूर्च्छा अमः कलमः ॥ ४ ॥

अस्येदहषौ मन्दादिनः शीतता च कफावृते ।

उदान वायु जब पित्त से आवृत होती है तब दाह, मूर्च्छा, अम और कलम (क्लान्ति) होता है । और उदान वायु जब कफ से आवृत होती है तब स्वेश-दाह-उणता और मूर्च्छा होती है ॥ ४-४३ ॥

स्वेशदाहौप्यमूर्च्छः स्युः समाने पित्तसंयुते ॥ ५ ॥

समान वायु जब पित्त से आवृत होती है तब स्वेश-दाह-उणता और मूर्च्छा होती है ॥ ५ ॥

कफेन सङ्गे चिप्पमूत्रे गात्राहर्ष्यं जायते ।

और समान वायु जब कफ से आवृत होती है तब मल-मूत्र का अवरोध और रोमाञ्च (सिहरन) हो जाता है ॥ ५३ ॥

अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौप्यं रक्तमूत्रता ॥ ६ ॥

अथःकाये गुरुर्वं च शीतता च कफावृते ।

और अपान वायु जब पित्त से आवृत होती है तब दाह, उणता तथा रक्तमूत्रता होती है और वह जब कफ से आवृत होती है तब अथः-काय (कपर से नीचे) भारी हो जाता है और शीतता होती है ॥ ६-६३ ॥

व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविचेपणं कलमः ॥ ७ ॥

व्यान वायु जब पित्त से आवृत होती है तब दाह, हाथ-पैर का इधर-उधर फेंकना और कलम (क्लान्ति) होता है ॥ ७ ॥

स्तम्भनो दण्डकश्चापि शोफशूलौ कफावृते ।

गुरुणि सर्वगात्राणि स्तम्भनं चास्थियपर्वणाम् । लिङ्कं कफावृते व्याने चेष्टास्तम्भस्तथैव च ॥

और व्यान वायु जब कफ से आवृत होती है तब शरीर में स्तब्दता, दण्ड की भाँति शरीर का अकड़ना, शोथ और शूल होता है । और भी-कफ से आवृत व्यानवायु में सम्पूर्ण शरीर में गुरुता तथा अस्थि और स्निधियों में स्तम्भन और सब प्रकार की चेष्टाओं का भी स्तम्भन हो जाता है ॥ ८ ॥

अथाऽऽदेपकादिरोगलक्षणान्याह

यदा तु घमनीः सर्वाः कुपितोऽश्वेति मारुतः ।

तदा चिप्पयायु मुहुसुहृदेहं मुहुश्वरः । मुहुसुहृस्तदाचेपादालेपक इति स्मृतः ॥ ९ ॥

आक्षेपक आदि रोगों के लक्षण—जब कुपित हुई वायु सब रक्तवाही सिराओं में प्रवेश कर जाती है और बार २ चलायमान होती है जिससे रोगी शरीर को शीघ्र बार २ इधर-उधर फेंकता है । इस बारावार फेंकने के कारण से ही इस रोग को 'आक्षेपक' कहते हैं ॥ १ ॥

क्रुद्धः स्वैः कोपनैवार्थ्यः स्थानादृच्छं प्रपश्यते । पीड़यन् हृदयं गत्वा शिरःशङ्कौ च पीडयेत् ॥

भनुस्तम्भयेद् गात्राण्याधिषेन्मोहयेत्ततः ।

अपने प्रकोपक कारणों से कुपित हुई वायु जब अपने नियन्त स्थान (पकाशय) से ऊपर को जाती है तब ऊपर जाकर हृदय और सिर तथा शंख स्थान (पुटपुटी) को पीड़ित करती है । तथा शरीर को धनुष की भाँति नवा देती है, शरीर को इधर-उधर फेंकती है और मोह (मूर्छा) उत्पन्न कर देती है ॥ २-२३ ॥

अस्यैवावस्थाविशेषावपतनकावाह—

स कृष्णाहुश्चुसितयुच्चैः स्तब्दाद्य निमीलकः ॥ १ ॥

कपोते हृष्व कूजेष्व निःसंज्ञः सोऽपसन्नकः ॥ १ ॥

यही धनुर्वातादिरोग अवस्था विशेष से अपतन्त्रक और अपतानक आदि कहते हैं । उपर्युक्त धनुर्वात के रोगी को जब कष्ट से ऊँचा श्वास-चलने लगता है, नेत्र स्तब्द (निश्चल) हो जाते हैं अथवा बन्द हो जाते हैं, कपोत के शब्द की भाँति उसके गले में शब्द होने लगता है और संज्ञाहीन (अचेत) हो जाता है तब उसे 'अपतन्त्रक' रोग कहते हैं ॥ १ ॥

इष्टि संस्तम्भं संज्ञां च हृदया कण्ठेन कूजति । इष्टि मुक्ते नरः स्थाद्यं याति मोहं वृते पुनः ॥

इस रोग में रोगी की डूषित स्तम्भित (निश्चल) हो जाती है, संज्ञा (चेतना) का नाश हो जाता है और कण्ठ से कपोत के शब्द की भाँति शब्द होता है । तथा जब ऊपर जाती हुई वायु हृदय को छोड़ देती है तब वह रोगी स्वस्थ (सुखी) हो जाता है और फिर जब हृदय को आवृत कर लेती है तब उसको मोह (मूर्छा) हो जाता है ॥ ३ ॥

मर्माश्चितं वृणं प्राप्य वायुवत् सर्वदेहः ।

तेन गौरो भवेद्देहः प्राणधनमपि तं त्यजेत् । वायुना दाहणं प्राहुरेके तमपतानकम् ॥ ३ ॥

इसी रोग में वायु जब किसी मर्मस्थान में दुर्बल (फोड़ा) ने पहुँच जाती है तब उसे सम्पूर्ण शरीर में व्याप कर देती है जिससे रोगी का शरीर गौरवणी का हो जाता है वह (फैला हुआ ब्रह्म) प्राणनाशक होता है, ऐसे रोगी को त्याग देना चाहिये (असाध्य है) । इसको वायु के कारण हीने वाला अत्यन्त कठिन 'अपतानक' भी कोई न आवाय कहते हैं ॥ ३ ॥

तेवा लक्षणमाह, तत्र दण्डापतानकमाह—

कफाभितो भृशं वायुस्तवेव वदि तिष्ठति । दण्डापतानकमेतदेहं स तु दण्डापतानकः ॥ १ ॥

दण्डापतानक के लक्षण—अत्यन्त कफ से युक्त वायु जब सोते में ही स्थित हो जाती है, तब मनुष्य (रोगी) के शरीर को डैडी की भाँति स्तम्भित कर देती है (सूपी ही रखती है), वह रोग दण्डापतानक है ॥ १ ॥

चनुरतुरुषं नमेयस्तु स चनुःस्तम्भसंज्ञकः ।

चनुःस्तम्भ के लक्षण—वही अत्यन्त कफ से युक्त वायु उन्हीं घमनियों (स्नोतों) में स्थित हो जाती है । यह भी अपतानक का ही भेद है ।

विषयं वद्यदृनः चास्ताङ्गो नष्टपैतमः । प्रसिद्धं वद्यदृनस्तम्भी दण्डापतं न जीवति ॥ १ ॥

चनुःस्तम्भ की असाध्यता—चनुःस्तम्भ के रोगी का मुख-विवरण (स्वरूप से अन्य विकृत

रूप का) हो जावे और बन्द हो जावे, अज्ञों में हास हो जावे, संज्ञा नष्ट हो जावे और त्वेद बहुत हो तो वह दस रात नहीं जीवित रह सकता है अर्थात् इसके बीच में ही मर जावेगा ॥ २ ॥

अभ्यन्तरायामस्य साधारणं रूपमाह—

अङ्गुलीगुणकजरहृष्टोगलसंश्रितः । स्नायुप्रतानमनिलो यदा चिपति वेगवान् ॥ ३ ॥
विष्टव्याधाः स्तडधहन्तुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ।

अभ्यन्तरं धनुरिक यदा नमति भानवः । तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते माहते बली ॥ २ ॥
अभ्यन्तरायाम (अन्तरायाम) के साधारणलूप—जब अङ्गुली, गुल (घुटठी) उदर, हृदय, वक्षःस्थल और गले इनके स्नायु-जालों में स्थित (रहने वाली) वायु वेग युक्त होकर (कुपित होकर) इनको फेंकती है (इधर-उधर करती है) तब नेत्र और हृतु (हुड़ी) स्तम्भित हो जाती है, पार्श्वदेश भग्न (टेढ़ा) हो जाता है, कफ का वमन होता है, और भीतर की ओर मनुष्य का शरीर धनुष की भाँति छुक जाता है। यह अभ्यन्तर आयाम है। इसको बलवान वायु उत्पन्न करती है ॥ १-२ ॥

बहिरायामलक्षणम्—

बाह्यस्नायुप्रतानस्यो बाह्यायामं करोति च । तमसाध्यं तुधाः प्राहुर्वस्तःकटवृहमज्जनम् ॥ १ ॥

बहिरायाम के लक्षण—बाह्य स्नायु प्रतानों (पीठ-गला-कमर आदि में के स्नायुजालों) में कुपित हुई वायु बाह्यायाम को करती है अर्थात् इनका आक्षेप करती है (फेंकती है) तब मनुष्य को बाहर की ओर (पीछे की ओर) धनुष की भाँति टेढ़ा कर देती है। यह वक्ष, कटि, ऊर इनको तोड़ने वाला और असाध्य कहा गया है ॥ १ ॥

निमित्तमेदेन चतुरथक्षेपकमाह—

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः । कृद्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमिद्यातज्जर ॥ १ ॥

निमित्तमेदेन से चतुर्थ आक्षेपक के लक्षण—कफ अथवा पित्त से युक्त वायु अथवा केवल वायु आधात आदि से कुपित होकर अज्ञों का आक्षेप करती है उसे चतुर्थ आक्षेप (अपतानक) अथवा अभिघातज आक्षेप कहते हैं। (यह विशेषतः आधात वाले स्थानों का ही आक्षेप करती है) ॥ १ ॥

अथासाध्यमाह—

गर्भपातनिमित्तस्य शोणितातिक्षवाच्य यः । अभिघातनिमित्तश्च न सिद्धयस्यपतानकः ॥ १ ॥

आक्षेप (अपतानक) के असाध्य लक्षण—लिंगों का गर्भपात के कारण से हुआ अथवा अत्यन्त रक्तस्राव के कारण से कि वा आधात के कारण से हुआ अपतानक नहीं सिद्ध होता है अर्थात् असाध्य है ॥ १ ॥

पक्षवयमाह—गृहीत्वाऽधं तनोर्वायुः शिरः स्नायुर्विशेष्य च ।

पक्षमन्यतरं हनित सनिवेष्टन्त्वान्विमोक्षयन् ॥ १ ॥

हृरस्नोऽधंकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः । एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवयं विदुः ॥ २ ॥

पक्षवय के लक्षण—जब कुपित हुई वायु शरीर के अर्धभाग को ग्रहण करके उस भाग के सिरा और स्नायुओं को सुखाकर सनिधनवस्थनों को ढीला कर उस पक्ष (अर्धभाग) को नष्ट कर देती है (शिथिल वा क्रियाहीन कर देती है) तब आधा शरीर शिथिल, क्रियाहीन तथा चेतनाहीन हो जाता है उसको 'एकाङ्गरोग' कहते हैं, कोई २ आचार्य उसे 'पक्षवय' कहते हैं ॥ १-२ ॥

तस्यैव सर्वाङ्गवथमाह—

सर्वाङ्गरोगं तद्वच्च सर्वकायाधितेऽनिले । दाहसन्तापमूर्छाः स्युवायौ पित्तसमन्विते ॥ १ ॥
सर्वाङ्गवथ के लक्षण—उसी प्रकार जब कुपित हुई वायु सम्पूर्ण शरीर को ग्रहण कर शरीर के सम्पूर्ण सिरा-स्नायुओं को सुखा कर तथा सम्पूर्ण सनिधनवस्थनों को ढीले कर सम्पूर्ण अज्ञों को क्रियाहीन तथा चेतनाहीन एवं शिथिल कर देती है तब उसको 'सर्वाङ्गरोग' कहते हैं। इस सर्वाङ्गरोग को वायु जब पित्त के साथ होकर करती है अर्थात् पित्त जब इसमें सहायक रहता है तब रोगी को दाह-सन्ताप और मूर्छा होती है ॥ १ ॥

शैयशोफगुणवानि तरिमनेव कफावृते ।

और जब इसमें वायु कफ संयुक्त रहती है तब शीतला, शोथ और गुरुता होती है।

शुद्धवातहतं पचं कृष्णसाध्यतमं विदुः ॥ २ ॥

साध्यसन्ध्येन संस्थमसाध्यं चयहेतुकम् । गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेषामेषपकादितु ॥ ३ ॥

साध्यासाध्य विचार—केवल वात ही के (अकेले) कोप से जो 'सर्वाङ्गवथ' होता है वह कष्टसाध्य होता है। अन्य अर्थात् पित्त वा कफ आदि से युक्त जो सर्वाङ्गवथ होता है वह साध्य होता है। और श्वय के कारण से जो होता है वह असाध्य होता है। इन सब आक्षेपक, पक्षवय आदिकों में वायु के वेग के चले जाने पर रोगी स्वरथ हो जाता है ॥ ३ ॥

गुर्विणीसूतिकाद्यालवृद्धशीणेष्वस्युक्त्यात् । पक्षाधातं परिहरेद्वद्वन्द्वारहितं यदि ॥ ४ ॥

गर्भिणी स्त्री, सूतिका (प्रसूता) स्त्री, बालक, वृद्ध तथा क्षीण मनुष्यों को अथवा रक्तक्षय के कारण उत्पन्न हुआ पक्षाधात रोग तथा जिस पक्षाधात में वेदना (पीड़ा) आदि का ज्ञान नहीं हो उसे त्याग (छोड़) देना चाहिये अर्थात् अर्थात् असाध्य है ॥ ४ ॥

अदितलक्षणमाह—

उष्मैर्योहस्तोऽस्यथं स्वादतः कठिनानि च । हस्तो जूर्मतो भाराद्विषमाद्युत्यनासनात् ॥ १ ॥
शिरोनासौषुप्तिकलालेष्वसन्धितु । अर्द्धयनिलो वक्त्रमर्दितं जनयेत्सतः ॥ २ ॥

अदित के लक्षण—अत्यन्त ऊंचे स्वर से बोलने, अत्यन्त जूर्मा लेने, अधिक भार उठाने, विषम स्थान में सोने अथवा बैठने से कुपित हुई वायु सिर, नासिका, ओष्ठ, चिकु (ठुड़ी), ललाट, नेत्र और सन्धिओं में पीड़ा करती है फिर मुख को पीड़ित करने वाले (टेढ़ा करने वाले) अदित रोग को उत्पन्न कर देती है ॥ १-२ ॥

अभिघाताद्विवास्वापाजिह्वानिलेष्वनात्पुनः । अणपाकार्कराण्यैश्च सिरावृष्टयस्तस्तथा ॥ ३ ॥

मर्मसंक्षेद्वन्ननेत्रकर्णनासाविधर्णात् । तीक्ष्णमथासावापानाद्वारणाद्वेगनिग्रहात् ॥ ४ ॥

वर्तमानोऽनिलस्तेषु वक्त्रमर्दयति भ्रवम् । वक्त्रीभवति वक्त्रावधं ग्रीवा चाप्यपवर्तते ॥ ५ ॥

अभिघात से, दिन में अधिक सोने से, अधिक जिह्वा निलेखन करने से, ब्रणपाक होने से, हाथ आदि के आधात (अप्पड़ मारने) से, सिरा मोक्षण करने से, मर्मस्थानों के छेदन से नेत्र-कर्ण और नासिका आदि के वर्षण (संवर्षण) से, तीक्ष्णीर्य मध्य अथवा आसवारिष के पान करने से, मल-मूत्रादि के वेग को धारण करने से अथवा अन्य किसी वेगों के धारण करने से उन २ स्थानों में स्थित (रहने वाली) कुपित वायु मुख को निश्चित ही पीड़ित करती है जिसमें मुख का आधा भाग टेढ़ा हो जाता है और गरदन भी टेढ़ी हो जाती है ॥ ३-५ ॥

शिराक्षलति वाक्सङ्घो नेत्रादीनां च वैकृतम् । ग्रीवाचिह्वुकद्वन्तानो तरिमन्पार्श्वं च वेदना ॥

सिर छिलता रहता है, वक्त्र का अवरोध हो जाता है, नेत्रादिक विकृत (अप्राकृतिक) हो

जाते हैं, गला, ठुड़ी और दाँत उसी ओर टेढ़े हो जाते हैं जिस ओर मुख टेढ़ा रहता है तथा गला-ठुड़ी और दाँतों में पीड़ा भी होती है ॥ ६ ॥

अदितपूर्वरूपम्—

तस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाचिलम् । वायुरुर्ध्वं त्वचि स्वधनं तोदं मन्याहनुग्रहौ ॥ ७ ॥
अदित रोग के पूर्वरूप—जब रोमाङ्ग हो, कम्पन हो, नेत्र धूसर वर्ण के हो जावे, वायु कपर को चले (इवास का वेग बढ़े), त्वचा में शून्यता (प्रसुसि) हो, शरीर में तोद (सूई चुभने सी पीड़ा) हो और मन्या तथा हनु में स्तम्भता हो ये सब अदित रोग के पूर्वरूप हैं । वह अदित रोग वात-पित्त और कफ से संक्षेप में तीन प्रकार का होता है ॥ ७-८ ॥

लालातिप्रस्त्रवः कश्यः स्फुरणं हनुसंग्रहः । ओष्ठयोः श्वयथुः शूलमर्दिते वातजे भवेत् ॥ ९ ॥
वातादिक के कोप से होने वाले अदित के लक्षण—जिस अदित रोग में अधिक लाला (लार) का स्राव हो, कम्पन हो, गात्रस्फुरण (फरकन) हो, हनु स्तम्भित हो, ओठों में शोथ और शूल हो तो वह अदित वात से हुआ है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ९ ॥

पीतमास्थं उवश्टुणा पित्ते मूर्छा च धूपनम् ।

माले शिरसि मन्यार्था शोफः स्तम्भः कफोद्धृते ॥ १० ॥

जिस अदित रोग में मुख का वर्ण पीत हो जावे, ज्वर, तृष्णा, मूर्छा और अध्मा अधिक मालूम हो तो वह अदित पित्त से हुआ है ऐसा जानना चाहिये । जिस अदित रोग में गल, सिर और मन्या में शोथ और स्तम्भता हो तो वह अदित कफ से हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥

तस्यासाध्यलक्षणमाह—

चीणस्यानिमित्तास्य प्रसक्ताद्यक्षभाजिणः । न सिध्यत्वादितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ १ ॥

अदित रोग के असाध्य लक्षण—जिस अदित रोग में रोगी क्षीण हो गया हो, नेत्रों का सञ्चालन नहीं होता हो, शक्ति-हीन हो गया हो, वचन स्पष्ट नहीं कह सकता हो, रोग तीन वर्ष का हो गया हो और शरीर में कम्पन होता हो वह अदित नहीं सिद्ध होता है अर्थात् असाध्य है ॥ १ ॥

हनुस्तम्भमाह—

जिह्वानिलेखनाद्युक्तभृष्णादभिचाततः । कुपितो हनुमूलस्थः लांसियत्वाऽनिलो हनुम् ॥ ११ ॥
कशोति विवृतास्यस्यमथवा संबृतास्यताम् ।

हनुग्रहः स तेन स्याकृष्ट्याद्युक्तवर्णमाषणम् । हनुग्रहे पूर्वरूपं हनुस्तम्भस्त्रेपथुः ॥ २ ॥

हनुस्तम्भ के लक्षण—अधिक जिह्वा निलेखन (जिह्वा) करने से, अधिक शूष्क पदार्थ भक्षण करने से, आघात से, हनु के मूल में स्थित रहने वाली वायु कुपित होकर हनु को शिथिल करके मुख को फैला देती अथवा मुख को बन्द कर देती है अर्थात् कभी ऐसा होता है कि मुख खुला ही रह जाता है और कभी बन्द ही रह जाता है, इस प्रकार का हनुग्रह नाम का रोग कर देती है । इस रोग में चबाकर कुछ खाना अथवा बोलना बड़े कष्ट से होता है । हनुग्रह का पूर्वरूप हनु का स्तम्भित होना और कम्पन होना—यही है अर्थात् इसके होने के पूर्व हनु स्तम्भित हो जाता है और कम्पन होता है ॥ १-२ ॥

मन्यास्तम्भमाह—

दिवास्वप्नासनस्थानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणः । मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्वेषणाद्युतः ॥ ११ ॥

मन्यास्तम्भ के लक्षण—दिन में अधिक सोने से, बहुत बैठने से, स्थान के विकार से और कपर मुंह उठाकर अधिक देखने से मन्या में स्थित वायु कफ युक्त होती हुई कुपित होकर मन्यास्तम्भ (गले के नसों का स्तम्भ) रोग उत्पन्न कर देती है ॥ १ ॥

जिह्वास्तम्भमाह—

चापवाहिनीसिरासंस्थो जिह्वा स्तम्भयतेऽनिलः । जिह्वास्तम्भः स तेनाक्षयाद्यव्यनीक्षता ॥

जिह्वास्तम्भ के लक्षण—जापवाहिनी (जाणी निकालने वाली) जो सिरावें हैं उनमें स्थित जो वायु है उसके कुपित होने से जिह्वा का स्तम्भन वा जिह्वास्तम्भ रोग होता है । इस रोग में अन्न-भक्षण, पेश-पान और वचन बोलने में असमर्थता होती है ॥ १ ॥

हृदयं यदि वा पृष्ठुस्त्रं क्रमशः सरुक् । क्रद्वा वायुर्यादा कुर्यासदा तं कुबजमादिशेषत् ॥ २ ॥

कुबज के लक्षण—हृदय अथवा पीठ में स्थित वायु जब कुपित होती है तब हृदय अथवा पीठ की क्रम से उठा देती है और पीड़ा करती है उसे कुबजरोग (कुबजापन) कहते हैं ॥ २ ॥

सिराग्रहमाह—

इक्षमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्ध्वधराः सिराः । रुक्षा: सवेदनाः कृष्णः सोऽसाध्यः स्वारिसराग्रहः ॥

सिराग्रह के लक्षण—जब कुपित हुई वायु रक्त के आश्रय होती है तब सिर को धारण करने वाली सिराओं को रुक्ष, पीड़ा युक्त, कृष्णवर्ण की करके स्तम्भित कर देती है उस रोग को ‘सिराग्रह’ कहते हैं । यह असाध्य है ॥ १ ॥

गृध्रसीमाह—

स्तिष्यवृत्तं कटिपृष्ठोहज्जानुजहापदं क्रमात् । गृध्रसीस्तम्भकोदैर्गृह्णाति स्पन्दते सुहुः ॥ ३ ॥

गृध्रसी के लक्षण—कुपित हुई वायु प्रथम रिक्क देश (नितम्ब) को ग्रहण कर फिर कम पूर्वक कटि, पृष्ठ, ऊरु, जानु, जङ्घा तथा पैर, जो ग्रहण करती है जिससे ये स्थान स्तम्भित हो जाते हैं (जकड़ जाते हैं), पीड़ा होती है, तोद (सूई चुभाने के समान पीड़ा) होती है और बार बार कम्पन (फरकन) होता है इसे ‘गृध्रसी वात’ कहते हैं ॥ ३ ॥

वाताङ्गातकफाभ्यां वा विज्ञेया सा द्विजा युनः । वातजार्थां भवेत्सोद्वो देहस्यापि च दक्षता ॥

जानुकृत्यूहसन्धीनो द्युरणं ब्रुस्ता भृशम् । वातश्वेष्मोद्वायां तु स्तैमित्यं वह्निमाद्वम् ॥

तन्द्रा सुखप्रसेकस्थ भक्षुप्रवस्तथैव च । वाताङ्गातकफातन्द्रागौरवारोचकानिवता ॥ ४ ॥

यह रोग वात के कोप से और वातकफ दोनों के मिलित कोप से इस प्रकार दो तरह का होता है । केवल वात के कोप से जो गृध्रसी होती है उसमें सूई चुभाने के समान पीड़ा, शरीर का टेढ़ा हो जाना, जानु, कटि, ऊरु और सम्बिधों में अत्यन्त द्युरण (फरकन) और शून्यता होती है । वात और कफ दोनों के मिलित कोप से जो गृध्रसी रोग होता है उसमें शरीर भोग द्युए के समान रहता है, अभी मन्द हो जाती है, तन्द्रा होती है, मुख से लालात्ताव होता है, भोजन में अखंचि होती है, और वात तथा वातकफ से तन्द्रा, गौरव (शरीर की गुरुता) और अखंचि होती है ॥ २-४ ॥

विशाचीमाह—

तलं प्रस्यकुरुतीया कण्ठरा बाहुपृष्ठतः । बाह्नोः कर्मस्यकरी विशाचीति हि सोऽप्यते ॥ ५ ॥

विशाची के लक्षण—हृथ की अजुली और प्रत्यकुरुती के तल प्रदेश (हथेली तथा अजुलियों के भीतरी भाग) को कण्ठराये (नसे) जो बाहु से होती हुई पीठ तक रहती है उनमें जब कुपित वायु प्रवेश करती हैं (उनमें जब कुपित होती है) तब उन नसों को स्तम्भित कर बाहु के कर्म (संचालनादि) को नष्ट कर देती है । उसे ‘विशाची’ कहते हैं ॥ ५ ॥

क्रोष्टुशीर्षमाह—

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः । ज्येयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु धूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥

क्रोष्टुशीर्ष वात के लक्षण—रक्त के सहित कुपित वायु जब जानु (धूटने) के मध्य में अत्यन्त

पीड़ा करने वाला सियार के सिर के समान शोथ उत्पन्न कर देती है तब उसे 'क्रोष्टुशीर्ष' रोग कहते हैं ॥ १ ॥

सञ्जप्त्योल्क्षणमाह—वायुः सवध्याश्रितः सकृदः कृष्णरामास्त्रियेत्था ।

सञ्जस्तदा भवेत्तुः पञ्चः सकृदोद्योर्वचात् ॥ १ ॥

खज और पञ्च के लक्षण—संक्षिध (बुटने) में रहने वाली वायु जब कुपित होकर एक पैर के बुटने के कण्डराओं (नसों) को खींच कर स्तम्भित कर देती है तब मनुष्य एक पैर से लंगड़ा हो जाता है उसे 'खज' कहते हैं । और यदि वही संक्षिध स्थित वायु दोनों पैरों के बुटने के कण्डराओं को खींच कर स्तम्भित करती है तब मनुष्य पञ्चल हो जाता है, उसे 'पञ्च' कहते हैं ॥ १ ॥

कलायसञ्जयाह—

प्रकामन्वेषते यस्तु सञ्जिव च गद्धुति । कलायसञ्जं तं विद्यमान्मुक्तसन्धिप्रसन्धनम् ॥ १ ॥

कलायसञ्ज के लक्षण—जिस बात में चलते-फिरते समय कम्पन होता है और चलने के समय लंगड़ाता चले, उसे 'कलायसञ्ज' कहते हैं । इसमें सन्धियों (सम्पूर्ण सन्धियों) के बन्धन हूट जाते हैं अथवा ढीले पङ्क जाते हैं ॥ १ ॥

वातकण्टकमाह—

रुक्षपादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा । वातेन गुरुकमाश्रित्य तमादुर्बातिकण्टकम् ॥ १ ॥

रुक्षपादे के लक्षण—पैरों को विषम रखने अथवा अधिक परिश्रम करने से गुरुक (पड़ी के ऊपर की गांठ) में आश्रित (रहने वाली) वायु कुपित होकर गुरुक में पीड़ा उत्पन्न कर देती है उसे 'वातकण्टक' रोग कहते हैं ॥ १ ॥

न्यस्ते तु विषमे पादे रुजः कुर्यात्समीरणः । पादकण्टक हृथेष विज्ञेयस्तलमाश्रितः ॥ २ ॥

पादकण्टक के लक्षण—पैरों को विषम रखकर चलने से पैर के तलवों में रहने वाली वायु कुपित होकर उसमें पीड़ा उत्पन्न कर देती है, उसे 'पादकण्टक' कहते हैं ॥ २ ॥

पाददाहमाह—

पादयोः कुरुते द्वाहं विचासुक्सहितोऽनिलः । विशेषतश्छक्षमते पादद्वाहं तमादिशेत् ॥ ३ ॥

पाददाह के लक्षण—पित्त तथा रक्त से मिलकर जब वायु कुपित होती है तब पैरों में दाह उत्पन्न करती है वह दाह विशेष करके चलते समय पैरों में होता है, उसे 'पाददाह' कहते हैं ॥ ३ ॥

पादहर्षमाह—

हृष्यतश्चरणौ यस्य भवतस्तु प्रसुसप्त । पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः ॥ ३ ॥

पादहर्ष के लक्षण—कफ से युक्त वायु जब कुपित होती है तब पैरों में हर्षण (रोमाच्च या शिनशिनी) तथा शून्यता होती है उसे 'पादहर्ष' रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

अंतशोष के लक्षण—अंत देश (कन्धे में जब वायु कुपित होती है तब कन्धे के बन्धनों स्नायुक्त्यनों) को सुखा देती है । उसे 'अंतशोष' कहते हैं ॥

अवबाहुकमाह—सिंशास्त्राऽकुद्दम्य तन्नस्थो जनयन्यवाहुकम् ॥

अवबाहुक के लक्षण—अंत में ही कुपित वायु जब सिराओं को सङ्कुचित करके वायु को सुखा देती है तब उसे 'अवबाहुक' रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

मूकमिन्मिनगदादानाह—

आवृत्य सकफो वायुर्धमनीः शब्दवाहिनीः । नरान्करोर्यक्रियकान्मूकमिन्मिनगदानाम् ॥ ३ ॥

मूक-मिन्मिन-गदगद आदि के लक्षण—वायु कफ के साथ कुपित होकर जब वाग्वाहिनी-सिराओं को धेर कर दोषानुकूल मूक (गूँगा), मिन्मिन (नाक से बोलना) और गदगद (इकला कर रुक-रुक कर) रोग को करती है अर्थात् दोष अत्यधिक होने से मूक कर देती है, उससे कम रहने से मिन्मिन शब्द तथा अत्यन्त कम होने से गदगद शब्द होता है ॥ ३ ॥

जर्द्ववातमाह—

अधः प्रतिहृतो वायुः रलेघ्याणा मायुनाऽथ च । करोति भृशमुद्गारमूर्च्चवातः स उच्यते ॥ ३ ॥

अर्द्धवात के लक्षण—कफ और पित्त की अधिकता से वायु जब कोष की ओर से आहत होती है तब ऊपर की ओर आती है जिससे उदगार अधिक होता है उसे 'अर्द्धवात' कहते हैं ॥ ३ ॥

तूनीलक्षणमाह—

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोरिथता । भिन्नसीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः ॥ ३ ॥

तूनीवात के लक्षण—जो बात की पीड़ा मलाशय अथवा मूत्राशय से उत्पन्न होकर नीचे की ओर गुदा तथा मूत्रेन्द्रिय को भेदती हुई (भेदने की भाँति दुःख पहुँचाती हुई) जाती है वह 'तूनी' कही जाती है अर्थात् उस बात की पीड़ा को तूनी दोग कहते हैं ॥ ३ ॥

प्रत्नीमाह—

गुदोपस्थोरिथता सैव प्रतिलोभं प्रधावति । वेगैः पक्षाशयं याति प्रत्नीति हि सोष्यते ॥ ३ ॥

प्रत्नी के लक्षण—जो बात की पीड़ा गुदा तथा मूत्रेन्द्रिय से उत्पन्न होकर ऊपर की ओर पक्षाशय में वेग के साथ तूनी के विपरीत जाती है उसे 'प्रत्नी' कहते हैं ॥ ३ ॥

वार्धिर्यमाह—

यदा शब्दवहूं स्रोतो वायुरावृत्य निष्ठति । शुद्धः रलेघ्मान्वितो वाऽपि वार्धिर्य तेन जायते ॥

वार्धिर्य रोग के लक्षण—जब शब्दवाही स्रोत में कुपित वायु-केवल वायु ही अथवा कफ सहित वायु धेर कर रितं हो जाती है तब वार्धिर्यरोग (वहिरापन) उत्पन्न कर देती है ॥ ३ ॥

आध्यानलक्षणमाह—

सादोपस्थ्यग्रहजमातमुद्दरं भृषाम् । आध्यानमिति जानीयाद् धोरं वातनिरोधजम् ॥ ३ ॥

आध्यान के लक्षण—जिस रोग में अधोवायु के अवरोध होने से शब्दसहित, उपरीवायु अत्यन्त पेट फूल जावे उसे 'आध्यान' कहते हैं ॥ ३ ॥

प्रत्याध्यानमाह—

विमुक्तपांहृदयं तद्रेवाऽमान्वयोरिथतम् । प्रत्याध्यान विजानीयारक्षाकृतितिलभम् ॥ ३ ॥

आध्यान में होने वाले प्रत्याध्यान के लक्षण—जब कफ के सहित वायु कुपित होकर आध्यानशय में ही 'आध्यान' करती है, हृदय और पाथ्र की छोड़ देती है अर्थात् हृदय, पाथ्रदि में पीड़ा नहीं करके केवल आध्यानशय में ही पीड़ा तथा आध्यान करती है तब उसे 'प्रत्याध्यान' कहते हैं ॥ ३ ॥

अष्टीलामाह—

नामेरधस्तात्सञ्जातः सञ्जारी यद्व वाऽचलः । अष्टीलाच्च धनो ग्रन्थिरुद्धर्मायत वस्ततः ॥ ३ ॥

अष्टीला के लक्षण—नामिरधस्तात्सञ्जारी के नीचे उत्पन्न हुई, चलने वाली अथवा एक ही स्थान पर रहने वाली, अष्टीला के समान धनी ग्रन्थि, ऊपर को ढी हुई, चौड़ी तथा उक्त (लम्बी) उत्पन्न हो जाती है उसे 'अष्टीलारोग' कहते हैं ॥ ३ ॥

वाताष्टीलामाह—

विष्मूत्रान्विलसङ्ग्रहं तत्राऽध्यानं च जायते । वाताष्टीलां विजानीयाद्विहर्मार्गनिरोधिनीम् ॥

वाताष्टीला के लक्षण—जिस अष्टीलारोग में मल-मूत्र तथा अधोवायु का अवरोध और उदर में आधमान हो जावे, उसे मल-मूत्रादिकों के निकलने वाले बाहर के मार्गों का अवरोध करने वाली 'वातज अष्टीला' जानना चाहिये ॥ १ ॥

प्रत्यष्टीलामाह—

पृतामेव रजोपेतां वातविन्यमूत्रवरोधिनीमाह । प्रत्यष्टीलाभिति वदेष्ठरे तिर्थगुत्थितात् ॥ १ ॥

प्रत्यष्टीला के लक्षण—जिस अष्टीला में पीड़ा और वात-मल तथा मूत्र का अवरोध हो जावे और वह अष्टीला उदर में तिरछी उठती हो (उत्पन्न होती हो) वह 'प्रत्यष्टीलारोग' कहा जाता है ॥ १ ॥

वातविकृति मूत्ररोधिनीमाह—

मारुतेऽनुगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यक्गवत्तंते । विकारा विविद्याश्चापि प्रतिलोभे भवन्ति हि ॥ १ ॥

वातविकृति और उससे होनेवाले मूत्रनिरोधादि के लक्षण—बैस्तिरथान में वायु जब अनुकूल होती है तब मूत्र भलीभांति होता है। तथा जब वही वात प्रतिलोभ (प्रतिकूल वा कुपित) हो जाती है तब उससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

सर्वाङ्गकम्पवातमाह—सर्वाङ्गकरपः शिरसो वायुर्वेष्युसंज्ञकः ॥ १ ॥

सर्वाङ्गकम्प वात के लक्षण—जब वात के प्रकोप से सम्पूर्ण शरीर तथा सिर में कम्प होता है तब उसे 'वेष्यु' नाम का वात अयथा 'सर्वाङ्गकम्प वात' कहते हैं ॥ १ ॥

खलीमाह—खली हु यादज्ञाहोकरमूलावस्थोटिनी ॥ १ ॥

खली के लक्षण—जिस वात के प्रकोप से पैर, जड़ा, ऊर और करमूल (मणिकन्ध) मुड़ जाते हैं उसे 'खलीवात' कहते हैं ॥ १ ॥

अथानुकृतवातरोगसङ्ग्रहार्थमाह

स्थाननामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत् । सर्वेषु तेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलङ्घयेत् ॥ १ ॥

वातव्याधि में नहीं कहे गये वात रोग का संग्रह—शरीर के स्थान-नाम के अनुरूप लक्षणों के द्वारा शेष वायु के रोगों को जानना चाहिये। उन सब रोगों में पित्त और कफ का संसर्ग जानना चाहिये अर्थात् लक्षण आदि मिलाकर 'द्विदोषज' आदि जानना चाहिये ॥ १ ॥

हिमन्तीव च गात्राणि रोमाशोद्धुरितानि च । शिरोऽस्तिवेदनालस्यं शीतवातस्य लक्षणम् ॥

जैसे-शीतवात के लक्षण—जिस वात रोग में शरीर हिम के समान शीतल हो, रोमाश और कम्पन तथा सिर-आँख में पीड़ा हो और आलस्य हो, उसे 'शीत-वात' कहते हैं ॥ २ ॥

अङ्गेषु तोदनं प्रायो द्वाहः स्पर्शं न विन्दति । मण्डकानि च हरयन्ते स्पर्शवातस्य लक्षणम् ॥

स्पर्शवात के लक्षण—जिस वातरोग में अङ्गों में तोद (सूई चुम्बने के समान पीड़ा), दाह, स्पर्श के ज्ञान का अमाव और चक्कते होने उसे 'स्पर्शवात' कहते हैं ॥ २ ॥

पादोद्योग्य भवेद्वाहस्थकस्फोटः श्वयथुः कलमः । रक्तवातः स्पन्दनं च रक्तवातस्य लक्षणम् ॥

रक्तवात के लक्षण—जिस वातरोग में पैरों में दाह, त्वचा में स्फोट (फट जाना), शोथ, कलानित तथा रक्त का साव हो अर्थात् बाधा शरीर से रक्त बहे और स्पन्दन हो (अङ्ग फड़के) वह 'रक्तवात' कहलाता है ॥ ४ ॥

हनुशङ्खशिरोगीवं यो भित्ति तु चानिलः । कण्ठयोः कुरुते शूलं कर्णशूलः स उक्षयते ॥ ५ ॥

कर्णशूल के लक्षण—जिस वात रोग में हनु, शङ्खदेश, सिर और गरदन में भेदने के समान पीड़ा और कानों में शूल हो वह वात रोग 'कर्णशूल' कहा जाता है ॥ ५ ॥

साध्यासाध्यमह—

हनुश्वसनादितादैपष्ठाचातापकाः । कलेन महता वाता यद्यारिस्त्वन्ति वा न वा ॥ ३ ॥

साध्यासाध्य लक्षण—वात रोग में कथित हनुश्वसन रोग, अदिति, आक्षेप, पक्षावात, अपतानक ये वात रोग बहुत समय तक बन्ते हैं से सिद्ध होते हैं अथवा इस पर भी नहीं सिद्ध होते हैं ॥

नवात् बलवश्चतात् च साध्येष्विष्वप्ववात् ।

विसर्पदाहरुक्षमूल्लाडित्यग्निमार्दवैः । श्वाणमांसवलं वाता धनन्ति पश्ववधाद्यः ॥ २ ॥

ये वात रोग जब तक नये हों, रोगी बलवान हो और उपद्रव नहीं हुआ हो तो चिकित्सा से साध्य हो जाते हैं। २—विसर्प, दाह, पीड़ा, मल-मूत्रावरोध, मूर्छा, अस्त्रिय, मन्दानिन, आदि से युक्त पक्षवध आदि रोग (ये सब पक्षवध, आक्षेप आदि के उपद्रव हैं) २—और जिसके मास और बल क्षीण हो गये हों इनसे युक्त (ऐसे रोगी का) पक्षपथ आदि रोग, रोगी को मार डालते हैं अर्थात् असाध्य हैं ॥ २ ॥

शून्यं सुस्तवचं भवनं कल्पाध्माननिपीडितम् । रुजार्तिमन्तं च नरं वातव्याधिविनाशयेत् ॥ ३ ॥

जिस वातव्याधि में शोथ, त्वचा में प्रसुति (शून्यता), भद्र, कम्प, आधमान तथा अविक पीड़ा होती हो, वह मनुष्य को नष्ट कर देती है ॥ ३ ॥

अव्याहतगतिर्थस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ।

वायुः स्थायासोऽधिकं जीवेष्वौतीतरोगः समाः शतम् ॥ ४ ॥

प्रकृतिर्थ वायु के लक्षण और कार्य—जिस पुरुष के शरीर में वायु अपनी शुद्ध गति से (अवरोध आदि नहीं हो), आती-जाती हो, अपौरुष्यान पर तथा अपने स्वभाव में स्थित हो वह रोग रहित होकर सौ वर्ष से अधिक जीवित रहता है ॥ ४ ॥

अथ वातव्याधिचिकित्सा

अभ्यग्नं स्वेदनं वस्तिर्नस्यं स्नेहविरेचनम् । रिनग्धारुक्लवर्णं स्वाहु वृद्धं वातामयापहम् ॥

वातव्याधि की चिकित्सा—वातव्याधि में अभ्यग्न (तैलमर्दन), स्वेदन (पसीना निकल वाना), वस्ति, नस्य, स्नेहन, विरेचन विचार कर करना चाहिये और रिनग्ध (स्नेहयुक्त), अम्ल तथा लवणयुक्त पदार्थ, मधुर, वृद्ध और बातरोगनाशक अन्यान्य पदार्थों का सेवन जहाँ जो उपयुक्त हो वहाँ उसे करना चाहिये ॥ १ ॥

स्वामुख्यलवर्णः स्निग्धैराहारैर्तीतरोगिणः । अभ्यग्नस्नेहवस्त्याद्यैः सर्वनेत्रोपपादयेत् ॥ २ ॥

स्वादु (मधुर), अम्ल, लवण, रिनग्ध (स्नेह युक्त) पदार्थों को सेवन कराकर और अभ्यग्न (तैल मर्दन) स्नेहनकर्म तथा वस्ति आदिक कर्म कराकर सभी वातरोगों का शमन करें ॥ २ ॥

पित्तस्थाऽऽवरणे वातरोगे शीतोष्णभेषजम् ।

कफस्थाऽऽवरणे वायो रुचोष्णं भययभेषजम् ॥

वातरोग में यदि वायु के साथ पित्त का आवरण (मिश्रित) हो तो शीत और उष्ण मिलित औषध देनी चाहिये। यदि कफ का आवरण हो तो रुक्ष और उष्ण मिलित भोजन (पद्य) तथा औषध देनी चाहिये ॥ ३ ॥

केवले पवनव्याधौ रिनग्धोषणं भययभेषजम् ।

वातरोग में जब केवल शुद्धवात का ही प्रकोप हो तो उसमें रिनग्ध तथा उष्ण भोजन (पद्य) और औषध देना चाहिये।

रिनग्धोषणशीतरुक्षाद्यैर्तीजोः यो न शास्यति । विकारस्तत्र विशेषो दुष्टशोणितसम्भवः ॥ ४ ॥

रुचिरसम्भव वातरोग की परीक्षा-यदि वातरोग रिनग्ध-उष्ण-शीत रुक्ष आदिक औषध या

पथ्य से नहीं शमन हो तो उसे दूषित रक्त से उत्पन्न हुआ जाना चाहिये और उसी के (रक्तदुषि के) अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

वस्तिगते वाते—

कार्यो वस्तिगते वाते विधिर्वस्तिविशेषधनः । विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते लीरं पिर्वेष्टः ॥ २ ॥

वस्तिगत वात की चिकित्सा—यदि वस्ति स्थान में वात स्थित हो तो वस्तिशोधक चिकित्सा करनी चाहिये । विशेष करके वात जब कोष्ठ में स्थित हो तो मनुष्य को दूष पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

व्योषसौवर्णलाजाजीपथ्यालब्धणपञ्चकम् । सारिवाद्वहतीपाठाकलिङ्गाश्रियवाग्रजम् ॥ २ ॥

चूर्णीकृतं दधिसुरातन्मण्डोषणामुकालिकैः । पिवेद्विष्विवृद्धार्थं कोष्ठवासहरं परम् ॥ ३ ॥

सौठि-पीपरि-मरिच, सौवर्णल लवण, जीरा, हर्दी, पांचो प्रकार के लवण (पृथक् २), सारिवा, बड़ी कटी, पुरहनपाढ़ी, इन्द्रजौ, चित्रकमूल, जवाखार, इन प्रत्येक ओषधियों को एक २ मार्म लेकर विधिपूर्वक न्यूनकर दही, मध्य, मुरा, मण्ड, उपनादक अथवा काँची के साथ सेवन करने से अभि की वृद्धि होती है, और यह कोष्ठगत वात को अत्यन्त हरने वाला है ॥ २-३ ॥

गुदाश्रिते—

दशमूलीकथायेण मातुलुक्ष्मरेन वा । पिवेदेरण्डतैलं च वस्तिकुचिगुवाश्रिते ॥ १ ॥

गुदास्थित वात की चिकित्सा—दशमूल के काथ अथवा जम्बूरी नीबू के रस से एरण्ड तैल मिश्रित कर पान करने से वस्ति-कुक्षिं (पेट) और गुदा के आश्रय रहने वाला वात नष्ट होता है ॥ १ ॥

आमाशयगते—

आमाशयगते वाते छृदिश्वापै यथाक्रमम् । देयः पद्धत्रणो योगः सहशांत्सुखाऽम्बुना ॥

आमाशयगत वात की चिकित्सा—आमाशय गत वात में वमन कराकर सुला देना चाहिये पश्चात् उपनोदक के साथ सात रात तक 'षड्धूरण' नामक योग देना चाहिये ॥ १ ॥

षिक्षकेन्द्रियस्याः पाठाकटुकातिविषाभ्याः । महाव्याचिप्रशमनो योगः पद्धत्रणः स्मृतः ॥ २ ॥

षड्धूरण योग—चित्रकमूल, इन्द्रजौ, पुरहन पाढ़ी, कुटकी, अतीस, हर्दी इन सब को समान लेकर न्यून कर एकत्र मिला लेने से यह षट् ओषधियों का समिक्षण 'षड्धूरणयोग' कहलाता है । यह महाव्याधि (वातज्याधि) को शमन करने वाला है ॥ २ ॥

अन्यच—दूतीकपथ्याशटिपुष्कराणि विलवं गुद्ध्वी सुरदारु शूण्डी ।

विड्धपाठासिविषा कणा च काथाज्ञयः सामस्तमीरणज्ञाः ॥ ३ ॥

और भी—१-करंज, हर्दी, कचूर, पुष्करमूल, इन ओषधियों को अथवा २-बेल, गुरुचि, देवदारु और सौठि इन ओषधियों का अथवा ३-वार्षीरंग, पुरहनपाढ़ी, अतीस और पीपरि इन ओषधियों का (इन तीन योगों का) काथ करके अर्थात् इनमें से किसी एक योग का काथ करके सेवन करने से आमाशय में कुपित वात नष्ट होता है ॥ १ ॥

कापासास्थियकुलिथिकातिलयवैरेण्डमाषातसी-

वर्षामूशाणवीजकालिकयुतेरेकीकृतवैर्वा पृथक् ।

स्वेदः स्थादिति कृपैरोदरहनुस्फिक्षपाणिपादाङ्गुली

गुलफस्तम्भकटीरुजो विजयते सामाः समीरोद्धत्वा ॥ २ ॥

कपास की अस्थि (बीज वा विनौले), कुलथी, तिल, यव, रेव की जड़ की छाल, उदर, तीसी, गदहपुरना और सन का बीज इन सब को समान एकत्र कर अथवा पृथक् २ काँची में

मिला कर गरम कर स्वेद लेने से केहुनी, उदर, इन, नितम्ब, हाथ और पैर की अजुली और युक्त स्थान के स्तम्भन और कटि की पीड़ा तथा आमदोष युक्त वायु से उत्पन्न होने वाले इन सब रोगों को नष्ट करता है ॥ २ ॥

पकाशय—

पकाशयगते वाते हितं स्नैहैर्विरेचनम् । अस्तयः शोधनीयाश्च शाशांश्च लवणोत्तरः ॥ ३ ॥

पकाशयगत वात की चिकित्सा—पकाशय में कुपित वातरोग में स्नेह देकर विरेचन देना हितकर है तथा शोधन वस्ति और लवणयुक्त प्राश (लेह, चटनी) तथा भोजन आदि देना लाभदायक है ॥ १ ॥

ओत्रादिषु—

शोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यो वातहरः क्रमः । स्नेहाभ्यङ्गोपनाहात्त्वं मर्दनालेपनानि च ॥ १ ॥

ओत्रादिगत वात की चिकित्सा—ओत्रादि स्थानों में कुपित वातरोग में वातनाशक किया करनी चाहिये, और स्नेहन, अम्बज्ज (तैल मर्दन), उपनाह (स्वेद), मर्दन तथा लेपन कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

त्वचमांसास्विसरागते—

त्वचमांसास्विसराग्रासे कुर्याद्रक्षिमोद्धणम् ।

स्नेहोपनाहात्त्विक्षम्बन्धनोन्मर्दनानि च ॥ १ ॥

त्वचा-मांस-रक्त तथा सिरा में कुपित वात की चिकित्सा—त्वचा-मांस-रक्त तथा सिराओं में कुपित वात में रक्तमोक्षण कराना चाहिये, और स्नेहकर्म, उपनाह (स्वेद), अश्विकर्म (दागना), बन्धन और मर्दन आदि करना चाहिये ॥ १ ॥

मांसमेदोमज्जास्थिकुपिते—

विरेको मांसमेदःस्थे निरुहः शमनानि च । बाह्याभ्यन्तरशस्त्रनेहैरस्थियजागतं जयेत् ॥ १ ॥

मांस, मेद, मज्जा और अस्थि में कुपित वात की चिकित्सा—मांस और मेद में जब वायु कुपित हो तो विरेचन देना चाहिये तथा निरुह वस्ति और संशमन औषध देना चाहिये । और अस्थि तथा मज्जा में जब वायु कुपित हो तो वाय्य शरीर तथा आम्बन्तर शरीर में स्नेहन किया करे अर्थात् बाहर से तैल मर्दन आदि तथा भीतर से स्नेह-पान आदि चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

स्नायुसंध्यस्थिगते—

स्नायुमन्धस्थिसम्प्रासे कुर्याद्वाते विच्छणः । स्वेदोपनाहसंमर्दनेहनादिकगादरात् ॥ १ ॥

स्नायु-सन्धि तथा अस्थिगत वात की चिकित्सा—स्नायु-सन्धि तथा अस्थि में जब वात कुपित हो तब वैद्य स्वेद कर्म, उपनाह (स्वेद), मर्दन और स्नेहन आदि कर्म करे ॥ १ ॥

शुक्रस्य कुपिते—शुक्रपासेऽनिले कार्यं शुक्रदोषचिकित्सितम् ॥ १ ॥

शुक्रगत वात की चिकित्सा—वायु जब शुक्र स्थान में कुपित हुई हो तो शुक्र दोष की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

वश्वादिमन्यागते—

वश्वादिकस्कन्धगते वाते मन्यागते तथा । वमनं मर्दनं नस्यं कुशलेन प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

वश्व अदि तथा मन्यागत वात की चिकित्सा—वश्व, विक स्थान और स्कन्ध में तथा मन्या में कुपित वात में वमन-मर्दन और नस्य कर्म आदि कुशल वैद्य प्रयोग करे ॥ १ ॥

अथाशीतिवातजरोगाणां संदेषेण चिकित्सा

पक्षाधातस्य—

माषारमगुसकैषद्वाद्यालकश्चतं जलम् । हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाधातनिशारणम् ॥ १ ॥

अस्ती प्रकार के बात रोगों की संक्षेप चिकित्सा—पक्षाधात की चिकित्सा—उरद, केवांच के बीज, रेड़ के जड़ की छाल, बला (बरिआरा) इनको समान लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर उसमें हींग शुद्ध तथा सेन्धा नमक का प्रक्षेप देकर पान करने से पक्षाधात रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

बृन्दान्माषदिसप्तकम्—माषवलाशुकशिर्षीकत्तुणशासनाश्वगन्धस्वृकाणाम् ।

काथो नस्यनिपीतो रामठलवणान्वितः कोषणः ॥ १ ॥

अपनयति पक्षाधातं मन्यास्तभं सर्कणनादरुजम् ।

दुर्जयमदितवातं सप्ताहाज्ञर्यति चावश्यम् ॥ २ ॥

बृन्द से माषादि सप्तक—उरद, बरिआरा, केवांच, गन्धतुण, रासन, असगन्ध और रेड़ के जड़ की छाल इन द्रव्यों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर उसमें शुद्ध हींग और सेन्धा नमक का प्रक्षेप देकर नासिका द्वारा कोषण (किंश्चित् उष्ण) पान करने से पक्षाधात, मन्यास्तभ, कर्णशूल, कठिन अदित वात, एक सप्ताह में अवश्य हींग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

माषतैलं सारसंग्रहात्—

ग्रन्थिकाश्चिकणारास्नाकुष्ठनागरसैन्धवम् । माषकाथेन तत्तैलं पक्षाधातविनाशनम् ॥ ३ ॥

माष तैल—पिपरामूल, चिक्रमूल, पीपरि, रासना, कूठ, सौंठि और सेन्धा नमक सब द्रव्य एक छटांक लेकर कल्प करे और मूर्च्छित तिल का तैल २८ छटांक तथा उरद का सिढ़ काथ ५७ सात सेर लेकर एकत्र कर तैल पाक विधि से तैल सिद्ध कर तैल मात्र शेष रहने पर उतार कर इस तैल के अम्बज्ज से पक्षाधात अवश्य नष्ट होता है ॥ १ ॥

अदितस्य चिकित्सा—

नवनीतेन संयुक्ता खादेन्माषेण्डर्नी नरः । दुर्बारमदितं हन्ति सप्तरात्राज्ञ संशयः ॥ ३ ॥

अदित वात की चिकित्सा—माषेण्डरो (उरद के पिट्ठी के बने बरे (वटक) आदि) को मक्खन के साथ सात दिन तक सेवन करने से कठिन भी अदित रोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ १ ॥

लशुनविधिः—

पक्षमर्धपलं वाऽपि रसोनस्य सुकुटितम् । हिङ्गुजीरकसिन्धूथसौवर्चलकुट्रिकैः ॥ १ ॥

चूर्णितमधिकोन्मानैवचूर्णयविलोदितम् । यथाधि भक्षितं प्रातारुदुकायानुपानतः ॥ २ ॥

दिने दिने प्रयोक्तव्य मासमेकं निरन्तरम् । वातामयं निहन्त्यवसदितं चापतन्वकम् ॥ ३ ॥

एकाङ्गरोगिणां रोगं तथा सर्वाङ्गरोगिणाम् । ऊरुसंभं गृध्रसीं च शूलं द्वन्द्वकमीनपि ॥ ४ ॥

कटिपृष्ठामयं हन्यजारुरं च स्त्रीरणम् ॥ ५ ॥

लहसुन की विधि—लहसुन का छिलका निकाल कर भलीमैति कूटकर आधा पल अथवा एक पल लेकर उसमें शुद्ध हींग, जीरा, सेन्धा नमक, सौंठि, पीपरि, मरिच, इन द्रव्यों को एक माष लेकर चूर्णकर मिला लेवे । इसमें से अद्वितल के अनुसार मात्रा से प्रातःकाल भक्षण करने से और ऊपर से परण्ड मूल का काथ पीने से, प्रति दिन इस प्रकार एक मास तक निरन्तर सेवन करने से वातरोग को अवश्य नष्ट करता है और अदित, अपतन्त्रक,

एकाङ्गवात, सर्वाङ्गवात, करस्तम्भ, गृध्रसी, शूल, द्वन्द्ववात, गुमिरोग, कटि तथा पृष्ठ के रोग और उदर की वायु इन सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

अवबाहुके—

माषतैलरसोनाभ्यां बाह्योश्च परिवर्त्तनात् । दशाङ्गचिमाषकाथेन जयेद्वैष्टोऽवबाहुकम् ॥ १ ॥

अवबाहुक की चिकित्सा—वश्यमाण माष तैल का मर्दन, लहसुन का प्रयोग, बाहु का परिवर्तन (इधर-उधर करना वा संचालन करना), दशमूल तथा माष इनके काथ आदि को यथाविधि सेवन कराकर वैष अवबाहुक रोग को जीते अर्थात् इनके प्रयोग से अवबाहुक नष्ट होता है ॥ १ ॥

माषाद्य तैलम्—माषातसीयत्र कुरुपटककण्टकारीघोकण्टटुकजटाकपिकच्छुतोयैः ।

कार्पासकासिथशणवीजकुलरथकोलकाथेन बस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥ १ ॥

शुण्ठया च मागधिकथा शतपुष्पया च सैरण्डमूलसुन्नर्थया सरेष्वा ।

रासनाथलामृतलताकटुकैविंपकं माषाल्यमेतदवयाद्वैष्टकहारि तैलम् ॥ २ ॥

अर्धाङ्गशोषमपतानकमाष्वात्मालेपकं समुजकम्पशिरःप्रकम्पम् ।

नस्येन वस्तिविधिना पिविषेन हन्यातक्टीजघनजानुशिरःसमीरान् ॥ ३ ॥

माषादि तैल—उरद, तीसी, जौ, कटसरैया (पिवावाँस), छोटी कटेरी, गोखरू, अरंड, की जड़, और केवांच इनको समान लेकर काथ कर रख ले । कपास के बीज, सन के बीज, कुलथी, बैर इनको समान लेकर काथ कर रख ले । और बकरे के मांस का काथ कर रख ले । इन काथों में प्रत्येक का प्रस्तुत काथ चार०८ सेर होना चाहिये । मूर्च्छित तिल का तैल एक सेर और सौंठि, पीपरि, सौंफ, परण्डमूल की त्वचा, पुनर्नवा, रेणुका, रासना, बरिआरा, गुरुचि और कुटकी प्रत्येक को दो २ तोले लेकर जल के साथ पीस कर कल्प कर सब कल्प, तिलका तैल और एक २ करके उपर्युक्त तीनों काथों को तैल के साथ पाक कर तैल सिद्ध होने पर (तैल मात्र शेष रहने पर) उत्तर-छान ले, इस माषादि तैल के सेवन से अवबाहुक रोग नष्ट होता है, और अर्धांग वात, शोष (अङ्गशोष), अपतानक, आघ्नेयवात, आक्षेपक, बाहुकम्प, शिरःकम्प, इन रोगों को नष्ट करता है । इस तैल के नस्य लेने, वस्ति कर्म और परिषेक करने से कटिवात, जंघा और जानु की वात और सिर की वात को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

प्रत्यष्ठीलाघीलिकयोर्गुरुशेषद्यन्तरविद्वैष्टैः । क्रिया हिङ्गवादिचूर्णं च शस्यतेऽत्र विशेषतः ॥

प्रत्यष्ठीला और अष्ठीला की चिकित्सा—प्रत्यष्ठीला और अष्ठीला रोग में गुरुम तथा अन्तविद्रिधि की क्रिया के समान क्रिया करनी चाहिये । और विशेष करके यहाँ हिङ्गवादिचूर्ण जो आगे कहा जावेगा प्रशस्त है ॥ १ ॥

हिङ्गवादिचूर्णम्—

हिङ्गवादिचित्रपृष्ठकटुकजटाकल्पदीप्यालका

पाठाजायजगन्धमूलहुपुषाद्विचारसाराभयम् ।

हिङ्गमाधमानविवन्धवर्धकसनधासामिसादाकचि-

प्लीहाशीसिलशूलगुलमगलहृदोगाशमपाप्तुप्रशुत् ॥ १ ॥

हिङ्गवादिचूर्ण—शुद्ध हींग, अम्लवेत, सेन्धा नमक, सौचरनमक, विद्वनमक, सहिजन की छाल, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चिक्रमूल सौंठि, मरिच, कचूर, वृक्षाम्ब (कोकम), जवाइन,

भिन्नियां, पुरुषनपादी, जीरा, अजमोद मूल, हालवेर, सज्जीखार, यवाखार, अनारदाना और हर्रा इन सब ओषधियों को समान (एक २ भाग) लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर सेवन करने से हिक्का, आध्मान, मलबद्धता, बर्धम, कास, श्वास, मन्दायि, अरुचि, प्लीहा, अर्ष, सब प्रकार के शूल, गुलम, गलरोग, हृद्रोग, अझमरी और पाहुरोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

योगशतालिङ्गवादिचूर्णम्—हिङ्गाग्रगन्धाविडशुण्डजाजीहरीतकीचित्रकमूलकुषम् ॥ १ ॥

भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुह्मोदराष्ट्रिलिंगसूचिकाषु ॥ १ ॥
हिङ्गवादिचूर्ण—भागोत्तर वृद्धिक्रम से हींग १ भाग, वच २ भाग, विडलवण ३ भाग, सौंठि ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्रा ६ भाग, चित्रक ७ भाग और कूठ ८ भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर सेवन करने से गुलम, उदर, अष्टीला और विसूचिका रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

नादेय्यादि—नादेयीकुटजा कर्षिग्रुहृतीरनुगिर्वहभम्भातक-

व्याघ्रीकिञ्चकपात्रिभद्रकरजोडपामार्गीपापिकान् ।

वासामुस्तकपाठलान् सलवणान् दद्वा रसं पाचितं

हिङ्गवादि प्रतिवापमेतदुचितं गुह्मोदराष्ट्रिलिंगु ॥ १ ॥

नादेय्यादि योग—नादेयी (नागरमोथा), कोरया की छाल, उदर, सहिजन, बड़ी कटेरी, शूल, बैल, शुद्ध भट्टातक, छोटी कटेरी, ढाक, नीम की छाल इनका चूर्ण और अपामार्ग, कदम्ब, चित्रकमूलत्वक, अरुसा, नागरमोथा, पाढ़र और सेन्धानमक, इनको समान लेकर पुटपाक की विधि से पाक कर रस निकाल कर इस रस में उपर्युक्त हिङ्गवादिकों के चूर्ण को मिलाकर गुलम, उदर रोग और अष्टीलारोग में देने से इन रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

गदनिग्रहादिङ्गासवः—

विडङ्गं पिपलीमूलं पाठा धायेलबालुकम् । कुटजारथफलं रासना भाङ्गीं पञ्चपलोनिमतान् ॥
अष्टद्वोणेऽग्नमसः पक्वका द्वोणशोषं तु कारयेत् । पूते जीते चिपेत्तरिमन्माच्चिकस्य चातक्रयम् ॥
धातकथा चिशतिपलं चूर्णं कृत्वा तु दापयेत् । व्योषस्य तु पलान्यष्टौ त्रिजातं द्वृपलं तथा ॥
फलिनीहेमतोयानां सरोधाणां पलं पलम् । धृतभाण्डे समाधाय मासमेकं विधारयेत् ॥ ४ ॥

एष योगो हरस्येव प्रत्यष्टीलाभग्रान्दरान् ।

अरुस्तग्नामरीमेहकण्ठमाला सर्विद्विषम् । आङ्ग्यवातं हनुस्तम्भं विडङ्गारुयो महासवः ॥ ५ ॥
विडङ्गासव—वाभीरंग, पिपरामूल, पुरुषनपादी, आँवला, एलबालुक (मुसब्बर), कोरया की छाल, इन्द्रजव, रासना, ब्रह्मदण्डी, इसमें से प्रत्येक पदार्थ ५-५ पल लेवे और इनमें जल आठ द्रोण (१२८ प्रस्थ) डालकर काथ करे जब १ द्रोण (१६ प्रस्थ) शेष रहे तब उतार छान कर शीतल होने पर मधु ३०० पल मिलावे, धाय का फूल २० पल (चूर्णकर) मिलावे, सौंठि-पीपरि-मरिच का समान मिलित चूर्ण आठ पल, दालबीनी, इलायची और तेजपात का मिलित चूर्ण दो पल मिलावे तथा प्रियङ्गु, कचनार और लोध इनके चूर्ण को एक २ पल मिलाकर धृत से चिकने किये हुए पात्र में समष्टि को रख कर आसव की विधि से एक मास तक भूमि में गाढ़ देवे पश्चात आसव सिद्ध हो जाने पर सेवन करने से यह विडङ्ग-नाम का महासव प्रत्यष्टीला, भगवन्दर, ऊरुस्तम्भ, अझमरी, प्रमेह, गण्डमाला, विद्रुचि, आङ्ग्यवात, हनुस्तम्भ, इन रोगों को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

विश्वाच्याम्—

दशमूलीबलामाषकाथं तैलाऽथमित्रितम् । सायं भुक्तवा चरेष्वस्य विश्वाच्यामं चावसाहुके ॥ १ ॥

विश्वाच्यामी चिकित्सा—दशमूल, बरिथारा और उदर इन १२ द्रव्यों के काथ को तेल तथा

धृत में मिला कर सायंकाल का भोजन करके नस्य लेने से अर्थात् इन ओषधियों का नस्य कर्म भोजन के पश्चात् रात्रि में करने से विश्वाच्यामी और अवबाहुक रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दशमूलादिकाशः मिन्मिने—

दशमूलस्य निर्यहो हिङ्गुपुष्करचूर्णितः । शम्येतपरिषीतस्तु वातं मिन्मिनसंक्षितम् ॥ १ ॥

मिन्मिन की चिकित्सा—दशमूल के काथ में शुद्ध हींग और पुष्करमूल का चूर्ण मिलाकर पान करने से मिन्मिन नामक वात शमन होता है ॥ १ ॥

कुब्जे—

हृदयं यदि वा पृष्ठमुखं क्रमशः सहक । कुब्जो वायुयदा कुर्यातदा तं कुब्जमादिशेत् ॥ १ ॥

वातमर्द्दशमूलया च नवं कुब्जमुपाचरेत् । रनेहैर्मासिरमैश्चापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत् ॥ २ ॥

कुब्ज की चिकित्सा—हृदय अथवा पीठ में कुपित हुई वायु जब पीड़ा सहित कम से (शनैः शनैः) पीठ उच्च कर देती है तब उसको 'कुब्ज' कहते हैं । इस कुब्जरोग को यदि नया हो तो वातमर्द्द ओषधियों तथा दशमूल के काथ से, स्त्रिय द्रव्यों से और अनुकूल मांसरस आदिकों से शमन करना चाहिये परन्तु यदि बहुत बढ़ गया हो (चिरकाल का हो गया हो) तो त्याग देना चाहिये क्योंकि बढ़ा हुआ पुराना असाध्य हो जाता है ॥ १-२ ॥

तूनीप्रतितून्यो—

पिपलयादिरुस्तूनीप्रतितून्योः सुखाम्बुना । पिवेद्वा स्नेहलचणं सघृतं ज्ञारहिङ्गु वा ॥ १ ॥

तूनी-प्रतितूनी की चिकित्सा—पिपलयादि गण की ओषधियों का चूर्ण उणोदक से पान करने अथवा स्नेह पदार्थ में सेन्धानमक मिलाकर पान करने अथवा जवाखार और हींग शुद्ध, धृत में मिलाकर पान करने से तूनी और प्रतितूनी वात नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

आध्माने—

आध्माने लेपनं पाणितापश्च फलवर्तयेत् । दारहैभवतीकुष्ठशताह्वा हिङ्गुसैन्धवैः ॥ १ ॥

आग्नेयपिष्ठैः सुखोण्णैश्च प्रदिङ्गादुद्दिरे भिषक् । द्वैपनं पाचनं चैवाध्मानवस्तिविशोधनम् ॥ २ ॥

आध्मान-चिकित्सा—आध्मान रोग में लेपकर्म (उदर पर लेप लगाना), करतल से सेक करना और फलवर्ति के द्वारा भल निस्सारण करना, और देवदारु, वच, कूठ, सौफ, शुद्धहींग, सेन्धानमक इन दारुषट्क की ओषधियों को कांडी में पीसकर गरम कर उदरपर लेप आदि करना चाहिये । इससे दीपन और पाचन होता है, आध्मान नष्ट होता है तथा वस्ति का शोधन होता है । (यह योग उत्तम है) ॥ १-२ ॥

प्रत्याध्मानोरुस्तम्भयोः कल्कादि—

प्रत्याध्माने तु वमनं लक्ष्मनं द्वैपनौषधम् । उरुस्तम्भं जयेद्वृद्धस्वेदमर्दनकौशिकैः ॥ १ ॥

प्रत्याध्मान तथा ऊरुस्तम्भ में कल्कादि—प्रत्याध्मान रोग में वमनकर्म, लंबनकर्म और द्वैपन औषध देना चाहिये, और ऊरुस्तम्भरोग की रुक्षरवेद, मर्दन और गुग्गुल की क्रिया (उपयोग) करके शमन करे ॥ १ ॥

पिपलयादिकल्कः—

पिपली पिपलीमूलं भज्ञातकफलानि च । एतक्षणकश्च सदौद्र ऊरुस्तम्भनिवारणः ॥ २ ॥

पिपलयादि कल्क—पीपरि, पिपरामूल, शुद्ध मिलावा, इनका विधिपूर्वक कल्क करके मधु मिलाकर सेवन करने से ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ २ ॥

पञ्चमूलीकषाय—

पञ्चमूलीकषायं तु सुखोण्णं त्रिवृतायुतम् । गृष्मसीं गुलमशूलं च सद्यः पीतं निवर्च्छति ॥ ३ ॥

पञ्चमूली कथाय—लघुपञ्चमूल का काथ थोड़ा गरम २ में निशेष के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से गृष्मसी बात और गुलशूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

वाजिगन्धावं तैलम्—

वाजिगन्धावलाबिस्वदशमूलयन्त्रितम् । गृष्मस्यां तैलमेरण्डं वस्तौ पाने च आस्यते ॥ १ ॥
वाजिगन्धादि तैल—अशगन्धा, वरिआरा, बेल और दशमूल की ओषधियाँ, इनका काथ और परण्ड तैल काथ से चतुर्थीश मिलाकर बस्ति कर्भ में प्रयोग करने तथा पान करने से गृष्मसी रोग के लिये उत्तम है अर्थात् इससे गृष्मसीरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

सैन्धवादं तैलम्—

द्वे पले सैन्धवारपञ्चं शुण्ड्या ग्रन्थिकाञ्चित्रकाद् ।

द्वे पले भृशकास्थीनि विशतिद्वृं तथाऽऽदके ॥ १ ॥

आशनाले पचेत् प्रस्थं तैलस्यैतैरपस्यदम् । गृष्मस्यूग्रहाशोऽर्तिवातपित्तविकारनुत् ॥ २ ॥

सैन्धवादि तैल—सैन्धवानमक दो पल, सौंठि पांच पल, पिपरामूल और चित्रकमूल दो २ पल, शुद्ध भिलावा संख्या में २०, कांजी दो आडक (८ प्रस्थ) और मूर्च्छित तिल का तैल एक प्रस्थ लेकर तैलपाक की विधि से पाक कर तैल मात्र शैष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से यह सन्तान देने वाला है, तथा गृष्मसी, ऊरग्रह, अर्शरोग और सब प्रकार के वातरोग को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

विधेचिक्खां मेदवस्तेरधस्ताचच्चतुरकुले । यदि ज्ञोपशामं गच्छेद्वेत् पादकनिष्ठिकाम् ॥ ३ ॥

सिरावेष और पाददाह विधि (गृष्मसी में)—गृष्मसी रोग में मृत्रेन्द्रिय और मृत्राशय के नीचे चार अंगुल जगह छोड़कर सिरा वेष कर रक्त निकाले, यदि इससे रोग शान्त नहीं हो तो पैर की कनिष्ठिका अङ्गुली में दाह करे (दागे) तो गृष्मसी नष्ट होती है ॥ ३ ॥

महानिर्म्ब कल्प—महानिर्म्ब (वकायन) की जड़ की छाल का कल्प सेवन करने से गृष्मसी नष्ट होता है ॥ ४ ॥

जिहास्तम्भे—निहृतस्तम्भे क्रिया श्रेष्ठा सामान्योरका तु वाऽर्दिते ।
जिहास्तम्भ रोग की चिकित्सा—जिहास्तम्भ रोग में वही क्रिया करनी चाहिये जो अदित्यात में सामान्यरूप से कही गयी है ॥ १ ॥

कल्याणकावलेहः—

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिपली विश्वभेषजम् । अजाज्जी चाजमोदा च यशीमधुयुतं धृतम् ॥ १ ॥

एकविश्वतिरात्रेण भवेद्वृतिधरो न नः ।

मेघहुन्दुभिनिर्वेषो भृशकलिनिश्वनः । जडगद्वमूकरवं लेहः कल्याणको जयेत् ॥ २ ॥

कल्याणकावलेह—हरदी, वच, कूठ, पीपरि, सौंठि, जीरा, अजमोदा, जेठीमधु इन ओषधियों को समान लेकर सम्यक् चूर्ण कर गाय के धृत में लेह बनाकर स्विग्रह पात्र में रख लेवे । इस योग के २१ दिन के प्रयोग करने से मनुष्य श्रुतिथर (सुनकर ही सब वातों को स्मरण कर लेने वाला) हो जाता है । और बादल तथा दुन्दुभी के समान गर्जन करने वाला, तथा मत्त कोकिल के समान स्वर वाला हो जाता है । और जड़ता, गदगद और मूकरव रोग को यह 'कल्याणक लेह' नष्ट करता है ॥ २-२ ॥

गृष्मसीकलायसज्जपञ्चु—

विशोष्यैरण्डवीजानि पिष्टा द्वीरे विपाच्येत् । पायसं तत्कटीशूले गृष्मस्यां चौषधं परम् ॥ १ ॥

गृष्मसी, कलायखज्ज और पञ्चुरोग में परण्ड के बीजों के छिलके उतार कर शुद्ध कर पीस लेवे, पश्चात् चौगुने धूध में भिलाकर पाककर खीर-सा बनावे, यह खीर कटिशूल और गृष्मसी की अत्युत्तम ओषध है अर्थात् इसके सेवन से कटिशूल तथा गृष्मसी नष्ट होती है ॥ १ ॥

रासनायो गुण्डुः—

रासनायास्तु पलं चैकं कर्षान् पञ्च च गुण्डुः ।

सर्पिषा वटकान् कृत्वा खादेद् गृध्रसिनाशनम् ॥ १ ॥

रासनादि गुण्डु—रासना १ पल, शुद्ध गुण्डु ५ कर्ष दोनों को विधिपूर्वक कूटकर धृत के सहारे बटी बनाकर सेवन करने से गृष्मसी रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

तैलमेरण्डजं वाऽपि गोमूलेण पिबेत्तरः ।

मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः । यजेत्कलायखञ्जं तु देश्यागरसोनतः ॥ १ ॥

अथवा परण्ड का तैल गोमूल में भिलाकर एक मास तक पान करने से गृष्मसी और लक्षण्ड नष्ट होते हैं । और कलायखज्ज रोग को उसके होने के कारण को त्याग करने और लहसुन के सेवन करने से जीते । अर्थात् लहसुन-सेवन और निदान-परिवर्जन से कलायखज्ज रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कटिशूले—

दशमूलीकथायेण पिबेत्ता नागराम्भसा । कटिशूलेषु सर्वेषु तैलमेरण्डसम्भवम् ॥ १ ॥

कटिशूल में दशमूल काथ में परण्ड तैल भिलाकर पान करने से सब प्रकार के कटिशूल नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

हृशादं खालसं खाद्यं खर्जूरं मेयिका तिलाः । मिशिद्वृं च भृशास्थि वातादं वद्वुलं तथा ॥

सारं चैकपलं ग्राह्यं गुद्दोऽधिकुद्वस्तथा । धृतं द्विकुद्वं चैव लद्धुकान्कारयेत्त्रिक् ॥ ३ ॥

द्विकुद्वं भृशेत्प्रातः कटिवाततिवानशनः । धातुस्तम्भं धातुशूद्धिं कुरुते नान् संशयः ॥ ४ ॥

हलाव (अक्षात् अर्थ), खसखस का इलुवा खाने से अथवा खजूर, मेरी, तिल, सौंफ, सोआ, शुद्ध भिलावा, बादाम, बबूल की गोद, प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लेकर, उसमें शुद्ध ४ कुडव (२ मानिका), धृत दो कुडव (१ मानिका) लेकर सभी पक्त कर विधिपूर्वक लद्धु (मोटक) बनाकर दो कर्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रातः सेवन करने से कटिवात नष्ट होता है, धातुस्तम्भ होता है और धातु की वृद्धि होती है, इसमें संशय नहीं है ॥ २-४ ॥

तैलं धृतं चाऽस्त्रद्रकमातुलुक्यो रसं सचुकं संगुदं पिबेत्ता ।

कटयूरूष्ट्रिकगुलमशुलगृध्रस्यूवाचतेहत्तुग्रहेषु ॥ ५ ॥

तैल, धृत, अद्रक का रस, जमीरी नीबू का रस, चुक, शुद्ध इनके साथ आवश्यकतानुसार उपर्युक्त मोटक का सेवन करने से कटि, कर, पीठ, त्रिकरथान, गुडम, शूल, गृष्मसी, उदावर्त, और इनुस्तम्भ रोग में लाभ होता है ॥ ५ ॥

क्रोष्टुशीर्षे—

गुद्दुचीत्रिकलाकारैर्गुण्डुः पिण्डितो वरः । क्रोष्टुशीर्षं निहन्त्युरुचैः सेवितो मासमात्रतः ॥ २ ॥

क्रोष्टुशीर्ष रोग में (गुद्दुचीत्रिकलाकारैर्गुण्डुः)—गुद्दुची, त्रिकला इनके काथ में शुद्ध गुण्डु भिला कर एक मास तक सेवन करने से क्रोष्टुशीर्ष रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथावशिष्टानां प्रतीकारः

हनुग्रहे हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भमेऽदिते पिबेत् । दशमूलयम्भसा कृष्णा अस्त्रथस्वरसेन वा ॥ ३ ॥

अवशिष्ट (इनुग्रहादिक) रोगों की चिकित्सा—हनुग्रह, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ और अदित

बात में दशमूल के काथ में अथवा अश्वथ (पीपल) वृक्ष की छाल के स्वरस में पीपरि के चूंच का प्रस्त्रेप देकर पान करने से उक्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

बाह्यायामान्तरायामपाश्वशूलकटिग्रहान् । स्नेहस्वेदपुरैर्जयेत् ॥ १ ॥

बाह्यायाम, अन्तरायाम, पार्श्वशूल, कटिग्रह, सख्ती और दण्डापतानक रोग को स्नेहस्वेद, स्वेदकर्म और गुणगुल सेवन कराकर जीते अर्थात् इन कियाओं से ये रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

बामनरवाङ्गझोचभक्त्वेदग्रहणथाः । मर्देन्दैर्यस्तिभिः काथैः स्वेदनैश्च भिषजयेत् ॥ ३ ॥

बामनन्त्र (अङ्ग-वृद्धि नहीं होना), अङ्गों का सङ्कोच होना, अङ्गभङ्ग होना (बात से), अङ्गों में ढूटने के समान पीड़ा होना, शरीर में स्तम्भन और अङ्गों में पीड़ा होना इन रोगों को मर्दन कर्म, वस्ति कर्म, काथ और स्वेद विधि से बैद्य जीते अर्थात् इन रोगों में इन विधियों के करने से ये नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

अपतानवण्यायामौ स्नेहैर्वैष्णविकितिस्तैः । अङ्गरौचयस्तद्भक्त्वपकाश्वर्य कपिशतोदने ॥ ४ ॥

दौर्बल्ये स्फुरणे अंशे स्नेहैर्मर्दनमिष्यते ।

अपतानक रोग, वण्यायाम रोग, इनको स्नेहत कर्म तथा व्रण की चिकित्सा से नष्ट करना चाहिये । और अङ्ग की रुक्षता, शरीर का स्तम्भ रोग, कम्पवात, कृत्ता (बात के कारण से), बात के कारण से शरीर का वर्ण कपिश (धूसर) होना और बात से अङ्गों में सूई चुभाने के समान पीड़ा होना, दुर्बलता (शक्तिहास), अङ्गों का फरकना और अङ्गअंश होना इन रोगों में स्नेह—जो अधियों के द्वारा प्रस्तुत किये गये हों (माषतेलादि) उनका मर्दन करना चाहिये ॥

शुक्रकाश्वर्य शुक्रनाशो शुक्रस्यातिप्रवर्तने ॥ ५ ॥

विद्युत्त्रे बद्धविट्के च स्नेहपानं हितं मतम् ।

शुक्र की दुर्बलता (हीनता), शुक्र का नाश और शुक्र का अधिक निकलना, मल्यवरोध, मल्यवर्द्धना (कड़ा मल होना) इन रोगों में स्नेहपान करना लाभदायक है ॥ ५-५३ ॥

प्रलापे भीरुताये च प्रसुस्ती चित्तवैकृते ॥ ६ ॥

स्वेदनाशो बलचौपये कौशिकः सधृतो हितः ।

शब्दाङ्गतामये चापि लेहः कद्याणको हितः ॥ ७ ॥

प्रलाप, भयज ताप, प्रसुति (शृन्यता), चित्त के विकार, स्वेद का नाश होना और बल की क्षीणता इनमें शुद्ध गुणगुल वृत्त मिलाकर सेवन करने से लाभदायक है, शब्द की अक्षता (अस्पष्ट उच्चारण) वा जिहास्तम्भ रोग में कल्याणक अवलेह हितकर है ॥ ६-७ ॥

शीततां रोमाहृष्टं च सिरापूरणमेव च । कटुतिक्खंयेद् वैद्यैः स्नेहस्वेदनमर्दनैः ॥ ८ ॥

अङ्ग की शीतलता, रोमाहृष्ट, सिरापूरण (रक्ताधिक्य) इन रोगों को कठु तथा तिक्ख द्रव्यों के सेवन और स्नेहन कर्म, स्वेदन और मर्दन कर्म कराकर जीते अर्थात् इस चिकित्सा से इनको नष्ट करना चाहिये ॥ ८ ॥

बाताप्रवृत्तिमुद्गारमन्त्रकूजनमेव च । निरुहस्तिनाऽथाङ्गाठिन्यं स्नेहग्रहनात् ॥ ९ ॥

अधोवायु की अप्रवृत्ति (अवरोध), अधिक उद्गार और अन्वकूजन में निरुहस्ति� करना चाहिये । अङ्ग-काठिन्य रोग में रिनग्धादि (सिद्ध तैलादि) में बैठकर (दृब्कर) स्नान करने से लाभ होता है ॥ ९ ॥

शिरोग्रहे तु कर्तव्या शिरोगतमस्तिक्षया ।

इक्षावसेचनं कुर्यादभीषणं बातकण्टके । पिवेद्रेण्डतैलं वा दहेत् सूचीभिरेव च ॥ १० ॥

शिरोग्रह रोग में शिरोगत बातनाशक विधि करनी चाहिये । बातकण्टक रोग में कई बार

रक्तमोक्षण कराना चाहिये । अथवा एरण्डतैल पान करना चाहिये । अथवा सूहयों को तपा-तपाकर दाह करना (दागना) चाहिये ॥ १० ॥

अथ सर्वबातरोगाणां सामान्यप्रतीकारानाह

काथाः—सहचरामरदाह सनागरं कथितमरभसि तैलविमिश्रितम् ।

पवनवीष्टिदेहगतिः पिवन् द्रुतविलम्बितगो भवतीष्टुया ॥ १ ॥

सहचरादि काथ—कटसरैया (पियावासा), देवदार, सौंठि, इनको समान लेकर काथ कर उसमें एरण्ड तैल का प्रस्त्रेप देकर पान करने से बात से पीड़ित मनुष्य (जो चलने-फिरने में असमर्थ हो) अपनी इच्छा के अनुकूल दृढ़ताति से अथवा मन्द गति से जैसा चाहे चल सकता है ॥

योगसारान्महारासनादिः—

रासनैरण्डामृतोग्रामहचरचिकारामसेनाऽदशभाङ्गीं ।

दीप्यानन्तरायवानीत्रुक्तिसुरकृमिजिश्छिशुण्णीबलाभिः ।

मूर्वातिक्षासमङ्गाद्विविशादिवरापिष्पलीयावशूकैः ।

रक्तश्रीशुण्णकारव्यधकटुकफलैर्बद्धसवृष्टीवयुक्तैः ॥ १ ॥

सर्वेरत्द्वाषाणिग्रिघ्रयुतस्पर्मलवैः साधितोऽष्टावशेषः—

काथो रासनादिरादौ महदुपपदवान् कौशिकात्तो निहन्ति ।

सर्वाङ्गकाङ्गवातान् च्छसनकसनहस्त्रवैश्यत्यादितन्द्रा-

शूलं तृनीप्रतुनीगलगदनिखिलमहासूतिकारोगसुसि-

जिह्वास्तम्भापतानं स्फुटनविमयनक्लीष्टात्तोपकौड़जम् ।

शोफाटोपापनन्त्रादितत्त्वुद्धुरुद्धुरुद्धुरुद्धुरुद्धुरु-

द्वायुश्येषमोत्थरोगानिपि गिरितनयावस्थमेनोपदिष्टः ॥ ३ ॥

महारासनादि काथ—रासना, एरण्डमूलत्वक, गुरुचि, वच, कटसरैया (पियावासा), चब्य, चिरैता, नागरमोथा, बमनेटी, चित्कमूल, अनन्तमूल, जवाइन, पुरेनपाढ़ी, देवदार, बामीरंग, काकड़ासिंगी, सौंठि, वरिआरा, सूर्वा, कुटकी, मजीठ, दोनों अतीस (श्वेत, कृष्ण), कचूर, जैवरा, हर्वा, वहेरा, पीपरि, यवाखार, रक्तचन्दन, अमलतास, इन्द्रजौ, कुटजत्वक, शेतपुननेवा, और दशमूल की सब अधियिदां इन सब को समान लेकर विधिपूर्वक अष्टावशेष काथ कर डतार-ठान कर इसमें शुद्ध गुणगुल मिला कर पान करने से सर्वाङ्गवात, एकाङ्गवात, श्वास, कास, हृदयरोग, स्वेद, शीतलता, तन्द्रा, शूल, तृनी, प्रतितृनी, गलरोग, सम्पूर्ण शरीर की पीड़ा, कम्पवात, सख्ती, विश्वाची, श्लीपद, आमवात, महारोग, सूतिकारोग, प्रसुति (शृन्यता), जिह्वास्तम्भ, अपतानक, अंगोंमें स्फोट होना, अङ्गों का अधिक दूटना, नंगुसकता, व्याक्षेप, कुञ्जता, शोथ, आटोप, अपतन्त्रक, अर्दितवात, बातरत्ता, हनुस्तम्भ, गृहणी, पादश्वल और अन्यवात तथा कफ के रोगों को पार्वती के प्रिय शिव द्वारा कहा हुआ यह ‘महारासनादि काथ’ नष्ट करता है ॥

शार्ङ्गधरान्महारासनादिः—

रासना द्विगुणभागां स्यादेकभागास्तथाऽपरः धन्वयासवलैरण्डदेवदारुशीवचाः ॥ १ ॥

दासको नागरं पद्या च्छव्या सुस्ता पुनर्नवा । गुह्यची वृद्धकारुश्च शतपुष्पा च गोदुरः ॥ २ ॥

अथगन्धा ग्रन्तिविश्वा कृतमालः शताधरी । कृष्णा सहचरश्वश्व शान्यकं वृहतीत्यग्रम ॥ ३ ॥

पूमिः कृतं पिवेत्काथं शुण्ठीचूर्णेन संयुतम् । कृष्णाचूर्णेन वा योगराजगुणगुलनाऽथवा ॥ ४ ॥

अजमोदादिना वातपि तेषुमेरण्डजेन वा । सर्वाङ्गकर्मे कृष्णात्वे पक्षाधातेऽवधारुके ॥ ५ ॥

गृह्णस्यामवाते च श्लीपदे चापतानके । अन्प्रवृद्धौ तथाऽऽभ्याने जङ्घाजानुगदेवदिते ॥६॥
शुक्रमये मेद्रोगे बन्ध्यायोन्याम्येषु-च । महारास्नादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भधारणे ॥७॥

महारास्नादि काथ द्वितीय—रास्ना दो भाग और धमासा, वरिआरा, रेड के जड़ की छाल, देवदारु, कचूर, वच, अरुसा, सौंठि, हरी, चव्य, मोथा, गदहुनी, गुरुचि, विधारा, सौफ, गोखरु, असगन्ध, अतीस, अमलतास, शतावरि, पीपरि, कटसरेया, धनिया, छोटी कटेरी, बड़ीकटेरी, इन ओषधियों को एक २ भाग लेकर विधिपूर्वक सोलहुना जल में काथ कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार-छानकर इसमें सौंठि के चूर्ण अथवा पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर अथवा योगराज गुग्गुल के साथ इसको पीवे, अथवा अजमोदादि चूर्ण (अभी आगे कहा जावेगा) के साथ अथवा एरण्डतैल के साथ पान करने से सर्वाङ्गकम्प, कुञ्जत्व, पक्षावात, अवबाहुक, गृष्टसी, आमवात, श्लीपद, अपतानक, अन्वृद्धि, आध्मान, जङ्घा और जानु के रोग (जानु रोग से विशेष कर कोण्डशीर्षक समझना चाहिये), अदितवात, शुक्र के रोग, शिश्न के रोग, बन्ध्यारोग, योनिरोग आदि में और गर्भधारण करने में उत्तम कहा गया है अर्थात् इन रोगों को नष्ट करता है और गर्भधारण कराता है । इसको ब्रह्माजी ने कहा था ॥ १-७ ॥

महाबलादिकाथः—

महाबलामूलमहौषधाम्यां काथं पिवेनिमित्तिपिण्ठीकम् ।

शीतं सकम्पं परिदाइयुक्तं विनाशयेद् द्वित्रिदिनप्रयुक्ता ॥ १ ॥

महाबलादि काथ—महाबला (सहदेवी) की जड़ तथा सौंठि को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर उसमें पीपरि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कम्प तथा दाढ़ युक्त शीतवात को दो अथवा तीन दिन के प्रयोग से ही नष्ट करता है ॥ १ ॥

योगरत्नाकलितः पञ्चमूलादिः—

पञ्चमूलीकृतः काशो दशमूलीकृतोऽध्यवा । रुक्षः स्वेदस्तथा नस्य मन्यास्तम्भे प्रशस्यते ॥१॥

पञ्चमूलादि काथ—लघु पञ्चमूल अथवा दशमूल का ही काथ बनाकर पान करने और रुक्ष स्वेद (बाल, इंट आदि का स्वेद) देने तथा नस्य कर्म करने से मन्यास्तम्भ में लाभ होता है ॥ १ ॥

एरण्डादिः—एरण्डशिखवं वृहतीद्वयं च सौवर्चलं व्योषसुरामठञ्च ।

समातुलुक्षीलवणोत्तमं च काथो धनुर्वातहरः प्रशस्तः ॥ १ ॥

एरण्डादि काथ—एरण्डमूलत्वक्, बेल की छाल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सौवर्चल लवण, सौंठि, पीपरि, मरिच, शुद्धीरंग, जम्बूरी नीबू की जड़ और सेन्ध्यानमक इनको समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर पान करने से धनुर्वात को नष्ट करने के लिये उत्तम है ॥ १ ॥

वाजिगन्धादिः—

वाजिगन्धा बलास्तिस्तो दशमूली महौषधम् । गृह्णनस्यै च रात्मा च याणो मालृतनाशनः ॥

वाजिगन्धादियोग—असगन्ध, बला, नागवला, अतिवला, दशमूल की दशो ओषधियाँ, सौंठि, दोनों प्रकार की (भेत तथा रत्तपुष्पवाली) गृह्णनस्तो (बंग-केलेकड़ा) और रास्ना ये सभी ओषध वातनाशक गण कहे जाते हैं ॥ १ ॥

समीरदावानलः—भ्राताकानी शक्कानि कृत्वा चिकोलमानं परिगृह्णा वैथः ।

चतुर्थलं तोयसमन्वितोऽयं काथश्लुर्याशक एव सम्यक् ॥ १ ॥

सिता चृतं गोमयभित्तेन कोलं पलाधं पलमेकयुक्तम् ।

क्रमेण पीतः लक्ष्मु हन्ति वातान् समीरदावानलतामधेयः ॥ २ ॥

समीरदावानल योग—शुद्ध भिलावे को खण्ड २ करके ३ कोल लेकर (१२२ कर्ष), इसमें जल ४ पल भिलाकर काथ कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार-छानकर शर्करा, गोदृश और गोदृश भिलाकर कम से पहले एक कोल के प्रमाण की मात्रा पक्षात् आधापल और तब एक पल के प्रमाण की मात्रा पान करने से यह 'समीरदावानल' नाम का योग सम्पूर्ण वातरोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

अथ चूर्णानि

रास्नाकुष्ठनतदुष्टक्टुशाटीपाठावचासारिवा-

भूनिव्याप्तिकलाबलादशजटानिर्गुण्डिकैरण्डकम् ।

हिङ्कर्वग्नाद्र्वक्वस्तगन्धकवरी चारौ पटुनां अथं

चूर्णं पुष्करतैलयुक्तमलिङ्कान् वातानशीर्ति जयेत् ॥ ३ ॥

रास्नादि चूर्ण—रास्ना, कूट, नतदु (कशियाडी लता), षट्कड़ (पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सौंठि, मरिच), कचूर, पुरेनपाढी, वच, शारिवा, चिरैता, अंवरा, हरी, बड़ेरा, वरिआरा, दशमूल की दसों ओषधियाँ, सम्माल, एरण्डमूल, शुद्ध हरीग, अम्लवेत, अद्रक, बस्तगन्धक (वन जवाइन), शतावरि, यवाखार, सज्जीखार, सेवानमक, सौचरनमक, विडलवण इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर पुष्करमूल के तेल के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण अस्सी प्रकार के जो वात होते हैं वे सब नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

आभादिचूर्णं वृद्धात्—

आभा रास्ना गुह्यचौ च शतावर्यो महौषधम् । शतपुष्पाऽस्तगन्धा च हपुषा वृद्धदारकः ॥ १ ॥

यवानी चाजमोदा च समभागानि कारयेत् । सूचमचूर्णमिदं कृत्वा विडालपदकं पिवेत् ॥ २ ॥

मस्तीमसरसैर्यूषेस्तक्रृष्णोद्धेन वा । सर्विना आडपि लेण्टु तु दधिमण्डेन वा पुनः ॥ ३ ॥

अस्थिसन्धिरातं वाथं स्नायुमस्त्राश्रितं च यम् । कटिग्रहं गृष्टसीं च मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ॥

ये च कोष्ठगता दोगास्तम्भं सर्वान् प्रणाशयेत् । आभाद्य नाम चूर्णंनु सर्वव्याधिनिवर्हणम् ॥

आभादि चूर्ण—बवूल की छाल, रास्ना, गुरुचि, शतावरि, सौंठि, सौफ, असगन्ध, हाउवर, विधारा, जवाइन, अजमोदा, इन ओषधियों को समान (एक २ भाग) लेकर विधिपूर्वक उत्तम चूर्ण बनाकर १ कर्ष के प्रमाण की मात्रा से मध, मांसरस, यूथ, तक अथवा उण्डोदक के अनुपान से सेवन करे अथवा धूत के साथ लेह बनाकर सेवन करे अथवा ढाई या मांद से सेवन करे तो यह आभादि नाम का चूर्ण अस्थि-सन्धिगत वात, स्नायु-मज्जाश्रित वात, कटिग्रह, गृष्टसी, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, इन सब रोगों को तथा जो कोष्ठगत रोग हैं उन सर्वों को एवं सब प्रकार की व्याधियों को बष्ट करता है ॥ १-५ ॥

अथ गुण्डुलः:

ब्रोदशाक्गुण्डुः—

आभाऽस्तगन्धा इपुषा गुह्यचौ शतावरी गोकुरक च रास्ना ।

श्यामा शटी घोषवती यवानी सनागरा वेति समं विच्छूर्ण्य ॥ १ ॥

सर्वैः समं गुण्डुमध्य दत्वा कुर्यात्तोऽधः प्रणिधाय सर्विः ।

अष्टाव्याधान्धा गुटिकास्ततोऽस्त्र कार्याः पुरस्याय दिवाननेऽस्तात् ॥ २ ॥

एकां सर्वपिंशुना यथा न स्पृहो भवेद्वन्तस्त्वसे कथञ्जित् ।

ततः कबोर्णी सकिलं सुरा वा वायं पयो वाऽप्यथ मुदगयूषम् ॥ ३ ॥

कि वा रसैर्मासमवैनिपीय लवक्षमेकं बदने निदध्यात् ।
कटिग्रहे गृध्रिसिवाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुपदग्रहे च ॥ ४ ॥
सन्धिस्थिते चास्थिगते समीरे मज्जाश्रिते स्नायुगतेऽतिहुषे ।
शूलद्वये पार्श्वशिरोहजायां मन्याग्रहे कण्ठद्वयोर्घ्रहे च ॥ ५ ॥
त्रयोदशाङ्कोऽयमतिप्रशस्तो लघेद् गदान् वातकफ्रभूतान् ॥ ६ ॥

त्रयोदशाङ्कुगुगुल—बूल की छाल, असगन्ध, हाऊवेर, गुरुचि, शतावरि, गोखरु, रासना, इयामालता, कच्चूर, सोआ, जवाहन, सौठि, इन ओषधियों को समान लेकर चूर्णकर जितना चूर्ण हो सबके बराबर शुद्ध गुगुल और गुगुल के आधा भाग गोघृत मिलाकर मर्दनकर (कूटकर) आये कर्ष के प्रमाण की बटी बनाकर रख लेवे । इसमें से एक बटी प्रातः काल मधु तथा धृत के अनुपान से इस प्रकार सेवन करे कि दाँतों में स्पर्श नहीं हो अर्थात् निगल जावे और ऊपर से किन्चिद्बुध जल सुरा अथवा गौ का दूध अथवा मूंग का यू॒ष अथवा मांसरस इनमें से कोई एक पान करे और सुंद में एक लंबग रख लेवे (चूर्ण) तो इससे कटिग्रह, गुग्रसी, बाहुपृष्ठ (पंखा), हनुग्रह, जानुग्रह, पद्मग्रह, सन्धिस्थित वात, अस्थिगत वात, मज्जागत वात, स्नायुगत अतिहुष वात, शूल और परिणामशूल, पार्श्वशूल, शिरशूल, मन्यायह, कण्ठग्रह और हृदयग्रह आदि रोगों में उत्तम है । और वात तथा कफ से होने वाले सभी रोगों को यह 'त्रयोदशाङ्कुगुगुल' नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

बीरसिंहावलोकतो द्वार्तिशको गुगुलः—

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चिढङ्गं चन्धयचित्रिकौ । बचैला पिण्ठलीमूलं हुपुषा सुरदाहु च ॥ १ ॥
तुबरं पौष्करं कुष्ठं विषा च रजनीहृष्म । बाधिका जीरकं शुष्ठीं स्पष्टा च हुरालभा ॥ २ ॥
सौवर्चलं चिढङ्गं च द्वारौ द्विरदपिण्ठली । सैन्धवं च समानानि तुसं दत्त्वा च गुगुलम् ॥ ३ ॥
साधित्यवा विषानेन कोलमात्रां वर्तीं चरेत् । धृतेन मधुना वाऽपि भक्षयेत्तामहसुखे ॥ ४ ॥
आमं हन्याहुद्वावर्तमन्त्रवृद्धि गुदकिमीन । महाउवरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ ५ ॥
शोफं प्लीहानमत्युग्रं कामलामपचर्चं तथा । नाम्ना द्वार्तिशको गुगुलः कथितो महान् ॥ ६ ॥

धन्वन्तरिकृतो योगः सर्वरोगनिकृतनः ॥ ७ ॥

द्वार्तिशक गुगुल—सौठि, मरिच, पीपरि, अंवरा, हर्दा, बहेरा, नागरमोथा, बामीरंग, चाव, चित्रकमूल, वच, छोटी इलायची की बीज, पिपरामूल, हाऊवेर, देवदार, तुम्बरु फल (तेजबल का फल), पुहकरमूल, कूठ, अतीस, हरदी, दारुहरदी, कृष्णजीरा, जीरा, सौठि, तेजपात, जवासा, सौवर्चलनमक, बामीरंग, सज्जीखार, यवाखार, गजपीपरि और सेन्धानमक इन सब द्रव्यों को समान (एक २ भाग) लेकर चूर्णकर जितना चूर्ण हो उसके बराबर उसमें शुद्धगुगुल मिलाकर विधिपूर्वक मर्दन कर एक कोल वा बेर के प्रमाण की बटी बनाकर इसको धृत अथवा मधु के साथ प्रातः सेवन करके से आम को नष्ट करता है । और उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदा की कुमि, महाउवर, भूतोन्माद, आनाह, उन्माद, कुष्ठ, पार्श्वशूल, हृदय, गुग्रसी, हनुस्तम्भ, पक्षाधात, अपतातक, शूद्ध, अत्युग्र प्लीहा, कागला और अपची इन सब रोगों को द्वार्तिशक नाम का धन्वन्तरि का कहा हुआ यह गुगुल नष्ट करता है और अन्य भी सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ ७-७ ॥

सारसंग्रहायोगराजगुगुलः—

विश्रक पिण्ठलीमूलं यवानी कारकी तथा । चिढङ्गान्यजमोदा च जीरकं सुरदाहु च ॥ १ ॥

चर्यैला सैन्धवं कुष्ठं रासना गोदुरधान्यकम् । त्रिफला मुस्तकं द्योषं स्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥
तालीसपत्रं गोदुरं लवक्षं सर्जिका शटी । दन्ती गुद्धची हुपुषा वाजियान्धा शतावरी ॥ ३ ॥
प्रथेकं कर्वमात्रं स्यापचतुर्कर्षमयो मृतम् । एतानि सुभिषष्टपट्टे सूचमचूर्णानि कारयेत् ॥ ४ ॥
यावस्थेतानि चूर्णानि ताक्षन्मात्रां हि गुगुलः । संभर्य सर्पिषा गांड स्त्रिवधभाष्टे निधाय च ॥
ततो मात्रां प्रथेत्तीत यथेष्टाहरवानपि । योगराज हति यवातो योगोऽयमस्तुपमः ॥ ५ ॥
आमवातादिवातादीन् कूमीन् हुष्टव्रणानपि । प्लीहागुलमोदरानाहुत्तमानि विमाशयेत् ॥ ६ ॥
अविन च कुरुते दीसं रेतोष्टुद्धि बलं तथा । वातरोगाभ्यव्याप्त्यात् सन्धिमज्जगतानपि ॥ ७ ॥

पाद्यग्रहं क्षोष्टुशीर्षं मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ।

कण्ठग्रहं कर्णशूलं शिरःशूलं मधरकृतम् । रासनाकायेन हस्तयेष केवलो या प्रशास्यते ॥ ९ ॥

योगराजगुगुल—विकमूल, पिपरामूल, जवायन, कृष्णजीरक, बामीरंग, अजमोदा, जीरा, देवदार, चव्य, छोटी इलायची, सेन्धानमक, कूठ, रासना, गोखरु, घनियाँ, अंवरा, हर्दा, बहेरा, नागरमोथा, सौठि, पीपरि, मरिच, दालचीनी, खस, यवाखार, तालीसपत्र, गोखरु, लंबग, सज्जी, कच्चूर, दन्ती, गुरुचि, हाऊवेर, असगन्ध और शतावरि इन सब ओषधियों को एक २ कर्ष लेवे और लौहभस्म ४ कर्ष लेकर प्रथम सब काष्ठौषधियों को उत्तमरूप से चूर्ण बनाकर लौहभस्म मिला लेवे, पश्चात् ये सम्भूर्ण मिलितचूर्ण जितने हों उसके बराबर शुद्ध गुगुल मिला कर धृत के साथ मर्दन कर (कूटकर) विधिपूर्वक स्त्रिवध पाव में रख लेवे । अवस्थानुसार (रोगवलानुसार) इसको सेवन करने से और अनुकूल आहार करने से यह योगराज नामक योग असृत के समान गुणकारी कहा गया है । और आमवात आदि रोग तथा वातादिरोग, कृमिरोग, दुष्टव्रण, प्लीहा, गुरुम, उदर, आनाह और अर्श इन सब रोगों को नष्ट करता है । तथा अविन को दीस करता है, वीर्य और बल को बढ़ाता है, वातरोगों को और सन्धि तथा मज्जागत वात को नष्ट करता है । पाद्यग्रह, क्षोष्टुशीर्ष, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, कर्णशूल, शिरःशूल अधिक वात के कारण होने वाले जो रोग हैं वे सब रासना के क्वाथ से सेवन करने अथवा केवल इसी योगराज गुगुल को ही सेवन करने से नष्ट होते हैं ॥ १-९ ॥

षड्दतिगुगुलः—

सैन्धयासदि वादाहृष्या ग्रीयुक्त्यिकावृष्टम् । कृष्णाढदोग्राधनाभीक्षाट्यालं मिशिवेश्वरी ॥ १ ॥
पत्त्या शुण्ठी द्विष्ट्रहुषाशत्यारवधारोहरूरम् । विशाला मोदकी तिक्षा प्रनिधर्मार्झी विशारिका ॥

अलंकुषा हिस्तिकणीं व्रस्तगन्धा विषाणिका ।

शिवाचं सुसली कौन्ती काकोली दीप्ययुगमकम् ॥

श्रिवृद्धन्ती शिखी श्रुती कोकिलाही हुशालभा । यज्ञमूलं महद्वीरतः कुष्ठं च जोङ्कम् ॥ ४ ॥
जातीपत्रीफलैङ्गं सकेशारं त्वक्षिरातकम् ।

कुष्ठमें देवकुमुसं विशाला निशिसेन्धवम् ॥ ५ ॥

मन्दारमूलं कुमिजिद्वेमदुधधा रविप्रिया । गजदिप्पस्यपामार्गो वानरी नक्षमालकः ॥ ६ ॥
एतै रासना सभा चासा ग्रीयुणा तैः पुरः समः । सूतं गन्धं हिङ्कुलं च टङ्कणं लोहमञ्चकम् ॥

शूद्धं वद्वं स्त्रभस्म नारां ताप्यमयोरजः । मिलितं पुरपादं च सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ८ ॥

पवेष्टुरुणो काथे पुरं षट्कटुजे पुरा । तुष्टीशशेषिते काथे पूते चात्र विनिचितेत् ॥ ९ ॥

चूर्णानि पुरसुख्यानि पाचयेन्मद्वृद्धिनाना । यावद्वन्तरं तावद् एुटिकः कारयेत् ॥ १० ॥

स्वर्णप्रमाणाः सेव्यास्ता मधुसूपिः समन्विता । सप्तस्त्रातुगतान्वातानिसरासनायवस्थसंविगान् ॥

सामाजिकामान्संस्थान्तरेमजान्मन्वित केवलान् । यस्माणमर्जिमान्धा च उवरं भ्रातुरगतं तथा ॥
गुलफजानूरुक्त्यूरुदरहस्तकुचिकचगान् । अंसमन्याहनुओश्रभूलाटाक्षिशङ्कगान् ॥ १२ ॥

प्रमेहं मूत्रकृच्छ्रं च शूलमाध्मानमश्मरीम् । किं पुनर्मेषकान्वातान्प्रथमस्थाज्यत्यलम्॥१३॥

षडशोति गुग्गुल—कटसरेया, जवासा, अतीस, देवदारु, छोटी कटेरी, बड़ीकटेरी, चव्य, अरुस, पीपरि, नागरमोया, बच, धनियाँ, शतावरि, बिरभारा, सोआ, कृष्णविधारा, हर्दा, सौंठि, गुरुचि, कचूर, अमलतास, गोखरू, पुनर्नवा, सूर्वा, कुटकी, पिपरामूल, ब्रह्मदण्डी, विदारीकन्द, गोरखमुण्डी, पलास, अजमोदा, काकडासिंगी, रुदाक्ष, मूसली, रेणुका, काकोली, जवाइन, अजमोदा, त्रिवृता, दन्ती, चित्रकमूल, काकडासिंगी, तालमखाना, जवासा, बृहत् पञ्चमूल की पांचो ओषधियाँ, वीरतरु (विल्वान्तर), कूट, अगर, जावत्री, जायफर, इलायची, नागकेसर, दालचीनी, विरैता, कैसर, लंबंग, इन्द्रायण, हरदी, सेन्धानमक, मदार, की जड़, बाभीरंग, सत्यानासी, सूर्यसुखी, गजपीपरि, अपामार्ग, केवांच और करंज इन ओषधियों को एक २ भाग लेकर चूर्ण करो । फिर जितना चूर्ण हो उसके बावर रासना का चूर्ण और रासना से दूना बबूल की छाल का चूर्ण तथा सब के समान शुद्ध गुग्गुल और शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, शुद्ध-हिंगुल, शुद्धकृष्ण, लौहभस्म, अग्रकमस्म, तांब्रभस्म, वंगभस्म, पारदभस्म, वा रससिन्दूर, नागभस्म, स्वर्णमास्तिक भस्म और लौहभस्म इनको समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजलीकर फिर अन्य रसों को मिलाकर मर्दन कर सब मिलित-गुग्गुल के चतुर्थीश मात्रा में लेकर उपर्युक्त गुग्गुल में मिला कर गुग्गुल से चींगुना घट-कटुक के काथ (पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल, सौंठि और मरिच इनको समान ले सोइलगुने जल के साथ काथ कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार कर छान कर इस गुग्गुल में उपर्युक्त सभी चूर्णों को मिलाकर मन्दामि पर पाक करे, जब चौथाई शेष रहे तब छानकर इस गुग्गुल में उपर्युक्त सभी चूर्णों को मिलाकर मन्दामि पर पाक करे जब वह गाढ़ा हो जावे तब उतारकर विधिपूर्वक बटी बनाकर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से धृत और मषु के अनुपान से सेवन करने से सातों धातुओं में उत्पन्न वातरोग और सिरा-स्नायु-अस्थि तथा सन्धि में उत्पन्न वातरोग, सामाजात, निराम वात, द्रव्यज, कफज और केवल वातरोग इन सर्वों को नष्ट करता है । तथा वक्षमा, मन्दामि, धातुगतज्वर, गुल्फ, जातु ऊह, कटि, पृष्ठ, उदर, हृदय, कुक्षि और कक्षगत रोग तथा अंस, मन्या, हनु, कर्ण, भ्रू, ललाट, नेत्र, शङ्खदेश, इनके रोग और प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, शूल, आधमान, अश्मरी और मैदरित वात तथा अङ्ग-प्रत्यक्ष में भी स्थित वात इन सर्वों को अवश्य नष्ट करता है ॥ १-१४ ॥

गुग्गुलः षडशोतिवै नाड्ना भोजने कीर्तिः । चीयमाणेन शिखेण प्राथितेन पुनः पुनः ॥१५॥

इस षडशोति नामक गुग्गुल को भोजने अपने क्षीण होते हुए शिख के बार २ प्रार्थना करने पर काहा था ॥ १५ ॥

स एष राजयोगोऽयं न देयो यस्य कथयचित् । वस्त्ररेणास्य योगेन चण्डोऽपि प्रमदाप्रियः ॥

यह योगों का राजा है इसे जिस किसी को नहीं देना चाहिये । और इस योग का सेवन एक वर्ष तक करने से नपुंसक भी खियों का प्रिय हो जाता है अर्थात् पुरुषत्व धारण कर लेता है ॥ १६ ॥

आजीकरणमन्यच परं नास्माद्विशेषतः ।

गुणोऽस्य सेवनाच्चित्य यः स्यात्स स्याद् ब्रवीमि किम् ॥ १७ ॥

पृष्ठ मो परिहार्यस्तु पानभोजनमैथुनैः ।

इससे बढ़कर कोई अन्य आजीकरण योग नहीं है । इसके नित्य सेवन के जो गुण हैं वह कहने योग्य नहीं हैं । और इसके सेवन के समय पान-भोजन तथा मैथुन आदि का परिहार नहीं है ॥ १७-१८ ॥

रासनाथो गुग्गुलः—रासनाभृतैरण्डसुराहृविश्वं तुवयेन गाढं च पुरेण मर्द्यत् ।

लादेत्स्वभीर्नी सशिरोगदी च नाडीवर्णी चापि भगवन्दरी च ॥ १ ॥

रासनादि गुग्गुल—रासना, गुरुचि, एरण्डमूल, देवदारु, सौंठि, सबको समान भाग लेकर चूर्णकर समष्टि के बराबर शुद्ध गुग्गुल मिलाकर मर्दन कर सेवन करने से वातरोग, शिरोरोग, नाडीव्रण और भगवन्दर ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ तैलानि

लघुविषगर्भतैलम्—

तैलाहकं समतुष्ण्युद्याहारिवेमनिर्गुणिद्धभास्त्रकरिष्याशृतया तु सिद्धम् ।

धत्तरुकृष्णलिनीविषहेमधुवृष्णारासनाह्यारिकटभीमिरिचोपचिन्नाः ॥ १ ॥

मांसीवचाइहनसर्षपदेवदाहृदावैनिशारुक्तुजतुविकलासमझः ।

पिण्डु चिपेष्पलभिता विषगर्भमेतत्तेलं समस्तपद्धनामयनाशनं स्थात् ॥ २ ॥

लघु विषगर्भतैल—मूर्चित्तित तिल का तेल ४ प्रस्थ, कांजी (वान्यों की) ४ प्रस्थ, कनेर, धूरा, मेडी, मदार की जड़, इनका प्रस्तुत काथ ४ प्रस्थ (अर्थात् चारों को एक २ कुड़व लेकर जौ-कुटकर चार आड़क जल के साथ काथ कर १ आड़क शेष रहने पर उतार-छान कर), लेकर इसमें धूरा, कूट, कलिहारी, मीठा विष, सत्यानासी, रासना, कनेर, मालकांगुनी, मरिच, बड़ी दन्ती, जामांसी, बच, चित्रकमूल, खेत ससी, देवदारु, दारुहरदी, हरदी, एरण्डमूल, लाख, धंबरा, हर्दा, बड़ेरा, मजोठ इन ओषधियों को एक २ पल लेकर पीसकर विधिवत् कलक बनाकर उपर्युक्त ओषधियों (कायादिको) में मिलाकर तैलान को विधि से तेल सिद्ध कर लेवे । यह विषगर्भ तैल है । इसके सेवन से समस्त वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्वितीयं लघुविषगर्भतैलम्—

धत्तरस्य रसस्य पञ्चकुडवं तैलं तथा काल्जिके

प्रस्थानां च चतुष्टयं गदवचा निश्चित्परं शाणकाः ।

इद्वात्रीमिरिचारपृथक् नव विषारथ् स्वर्णबीजात्पदोः ।

स्युः सप्ताचातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिग्रहम् । पृष्ठविक्षिप्तिरकर्म सर्वाङ्गप्रहणं तथा ॥ २ ॥

द्वितीय लघु विषगर्भ तैल—धत्तर का स्वरस पांच कुडव (२२ मानिका), मूर्चित्तित तिल का तेल ४ प्रस्थ, कांजी ४ प्रस्थ, कूट, बच, दीनों ३०-३० शाण, हृद्वात्री (चोक) और मरिच दीनों १-९, शाण, मीठा विष ६ शाण, धूरा का बीज और सेन्धानमक २७-२७ शाण लेकर इस सब ओषधियों का विधिवत् कलक बनाकर एकत्र कर विधिपूर्वक तैल पाक करके सेवन करने से यह तीव्र वातरोग, पक्षाचात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, पीठ तथा त्रिक के वात, शिरकन्द और सर्वाङ्ग ग्रह इन सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

महाविषगर्भतैलम्—

कनकस्य च निर्गुणी तु त्रिव्यनी च पुनर्नवा । वातारिष्याश्वगन्धा च प्रपुष्टां सवित्रकम् ॥ ३ ॥

सौभाजनं काकमाचो कलिकारी च निष्वक्रम । महानिष्वेष्वरी चैव दशमूलं शताब्दी ॥२॥

कारवेही सारिका च श्रावणी च विदारिका । वज्रकौमे सेवनक्षी च करवीरुद्यं वचा ॥ ३ ॥

काकमाला । वपामार्गो वला चातिवलाहृदयम् । द्यात्री महावला वासा सोमधृषी प्रसारिणी ॥

पलोन्मितानि चैतानि द्वोगेऽस्मसि विनिष्पेत् ।

पचेत्पादावशेषेऽस्मिन्दकस्य कुरुवं चिपेत् ॥ ४ ॥

निकटु विषतिन्दुश्च रासना कुष्ठं विषं धनम् । देवदार्ढवैतसनाभो द्वौ चारौ लबणानि च ॥६॥
तृथकं कटकलं पाठा माङ्गी च नवमावरम् । त्रायन्ती धन्वयासं च जीरकं चेन्द्रवाहणी ॥७॥
तैलप्रस्थं समादाय पाचयैऽमृदुवह्निना । विषयाभंमिदं नासना सर्वान्वातान्वयोहृति ॥८॥

महाविषगम्भैल—धूतूर, सभ्मालू, कुडुम्बी, गदहपुरना, एरण्डमूल, असगन्ध, प्रपुञ्चाट (चकवड), चित्रकम्ल, सहिजन, मकोय, कलिहारी (करियाई), नीम की छाल, बकायन की छाल, बांझककोडा, दशमूल की पृथक् २ दंसो ओषधियां, शतावरि, करैली, सारिवा, मुण्डी, शालिपर्णी, थूहर, मदार, मेडासिंगी, कनेर लाल, कनेर खेत, वच, काकज़वा, अपामार्ग, बरिआरा, अतिबला, छोटी कटेरी, महाबला, अख्सा, सोमलता, गन्धप्रसारणी, इन प्रत्येक ओषधियों को एक २ पल लेकर कूटकर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल में देकर विषिवत् काथकर चतुर्थीशं शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । पथ्यात् आगे लिखे सोठि, पीपरि, मरिच, कुचिला, रासना, कूठ, मीठा विष, नागरमोथा, देवदार, वत्सनाम विष, ज्वालावार, सज्जीखार, पांचो नमक पृथक् २, तूतिया, कायफर, पुरुषनपाडी, बभनेठी, नवसादर, त्रायमाणा, ज्वासा, जीरा, हन्द्रायण, इन द्रव्यों का समान मिलित कल्पक एक कुडव (एक अजली) मिलावे और मूर्च्छित तिल का तैल एक प्रस्थ लेकर सबको एकत्र कर (उपर्युक्त काथ-कल्प और तैल) तैलपाक की विधि से मन्द २ अंशि पर पाक कर सिढ होने पर उतार-छान कर रख लेवे । यह विषगम्भ नाम का तैल सब प्रकार के बात रोगों को नष्ट करता है ॥९-१०॥

वच्छोरुकिञ्जवाना॒ सन्धनं श्रेष्ठमेव च । गुग्रसी॑ च महावातान्वसर्वाङ्ग्यहणन्तथा ॥९॥
दण्डापतानकं चैव कण्ठादं च शून्यताम् । चन्मध्ये यथा॑ सिंहारपलायने॒ महाघ्राः ॥१०॥
तथा॒ अग्निभासानां॒ नराणां॒ चतुर्थदाम् । नाशयेषाम् सन्देहो॑ विषयाभंस्थं लेपनात् ॥११॥

और वक्ष, ऊरु, कटि, ज़हा इनका सम्बन्धन करने में उत्तम है, गुग्रसी, महावात, सर्वाङ्गद, दण्डापतानक, कण्ठानाद और शून्यता (प्रसुभि) इनको नष्ट करता है । जिस प्रकार बन में सिंह के भय से महाघ्र (गजादि) आदि जीव भाग जाते हैं उसी प्रकार इस विषगम्भ तैल के लेप (मर्दन) से महावात रोग तथा धोड़े, हाथी और मनुष्यों तथा अन्य चतुर्थद जीवों के भी भय आदि (हड्डी दूटना आदि) रोग निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥१२-१३॥

प्रसारणी तैलम्—

समूलपत्रासुखपात्रं जातसारां प्रसारिणीम् । कुट्टिविषा पलशसं कटाहे समधिश्वयेत् ॥१॥
द्वृष्टिरुतश्चाऽङ्गकं दशाद् द्विगुणं चाम्लकाभिकम् । भेषजानि तु पेत्याणि तत्रेसानि समाचपेत् ॥२॥
शुण्ठीपलानि पञ्चव रासनायाश्च पलद्रव्यम् । प्रसारणी पले द्वे च पले द्वे मधुकरश्च च ॥३॥
पृतस्वर्वं समालोड्य शनैर्द्विभिन्ना पचेत् । एतप्रभसने श्रेष्ठं नस्यकर्मणि शास्यते ॥४॥
एकाङ्गग्रहणं चापि सर्वाङ्गग्रहणं तथा । अपस्मारं तथोन्मादं विद्विधि मन्दवह्निताम् ॥५॥

तथगताश्चार्थं ये चाताः॑ सिरालन्धिगतात्थं ये ।

आस्थ्यसर्विषगता॑ ये च ये च शुक्रान्तरे॒ स्थिताः ॥६॥
सर्वान्वातामथान्वनं॒ नाशयेत्येव सर्वथा । हयं नरं गंजं धार्डपि वातजर्जरितं भृशम् ॥७॥
सद्यः प्रशस्येत्यैलसंतकाम् विचारणा । इन्द्रियस्य प्रजननं धन्यानां॒ च प्रजाकरम् ॥८॥
वृद्धाना॒ बालकानां॒ च द्वीपां॒ राज्ञां॒ हिंतं परम् । पङ्कुर्वा॒ पीठसर्पी॒ चा॒ पीठैतस्मप्रधावति ॥९॥
प्रसारिणी तैल—इरी प्रसारणी लता (गन्पसार) को मूल-पत्र सहित (पचांग) सौ पल लेकर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल के साथ काथ की विधि से काथ कर चतुर्थीशं शेष रहने पर उतार-छानकर उस में मूर्च्छित तिल का तैल तथा द्वही एक-एक आढ़क, अम्ल हुई काँची दो

आढ़क मिलाकर नीचे लिखे सोठि ५ पल (२० तो ०), रासना, गन्धप्रसारणी, मुलहठी प्रत्येक दो घल इन ओषधियों का कल्प बनाकर उपर्युक्त तैलादिकों में मिलाकर मन्द २ अंशि पर पाक करे जब तैल मात्र शेष रहे तब उतार-छानकर इसका सेवन वातरोग तथा नस्य कर्म में उत्तम है । तथा एकाङ्ग, सर्वाङ्ग बात, अपस्मार, उन्माद, विद्विधि, मन्दाद्यि, त्वगगतवात, त्रिश्य-सन्धिगतवात, अस्थि-सन्धिगत बात, शुक्रगत बात और सब प्रकार के बातरोगों को सर्वथा नष्ट करता है । धोड़ा, मनुष्य, हाथी आदि कोई भी बात से पीड़ित हों तो इस तैल के सेवन (मर्दन-लेपादि) से शीघ्र उनका बात शसन हो जाता है, इसमें संशय नहीं । इस तैल से इन्द्रिय में जननशक्ति (पुरुषत्व) होती है, बन्ध्या खीं को सन्तान होती है । वृद्ध, बालक, खीं तथा राजा आदि सब के लिये अत्यन्त हितकार है । तथा पृष्ठ अथवा पीठ के बल से चलने वाला भी बात का रोगी यदि इस तैल का पान करे तो दीड़ने लगता है, अर्थात् पहुँच आदिक रोग सब नष्ट हो जाते हैं ॥१-९॥

नारायणतैलम्—

विहवाग्निमाथरयोनाकृपाटलापारिमद्रकाः । प्रसारिण्यस्वगन्धा॒ च बृहती॒ कण्ठकारिका ॥१॥
बला॒ चतिबला॒ चैव शदंश्वा॒ सपुन्नर्वन्वा॒ । एषां॒ दशपलान्मार्गाश्वद्वृग्राम्याम्ला॒ पचेत् ॥२॥
पाकशेषं परिक्षार्थं तैलपात्रं प्रदापयेत् । शतपुष्पा॒ देवशाह॒ मापी॒ शैक्षेयकं वन्वा॒ ॥३॥
चन्दनं नगरं कुष्मेलापर्णी॒ चतुर्थप्रयत्र । रासना॒ तुरुगन्धा॒ च सेन्धवं॒ सपुन्नर्वम् ॥४॥
एषां॒ द्विपलिकान्मार्गान्मेष्यविषावा॒ विनिदितेत् । शतावरीर॒ नन्दनं॒ तैलतुर्यं॒ प्रदापयेत् ॥५॥

आजं वा यदि वा गैयं चीरं दक्षा॒ चतुर्गुणम् ।

पाने वस्तौ॒ तथाऽभ्यङ्गे॒ भोज्ये॒ नस्ये॒ प्रयोजयेत् ॥६॥

अश्वो वा चातवस्त्रो वा गजो वा यदि वा नरः । पृष्ठुर्वा॒ भग्नपदोऽथवा॒ नरः ॥७॥
अधोभागे॒ च ये वाताः॒ सिरामध्यगताश्च ये । दन्तशूले॒ हनुस्तम्भे॒ मन्यास्तम्भेऽपतन्त्रके॒ ॥८॥
एकाङ्गग्रहणे॒ चापि॒ सर्वाङ्गग्रहणे॒ तथा॒ । चीणिद्वया॒ नष्टशुक्रा॒ उवश्वीणाश्च ये नराः ॥९॥
लालजिह्वाश्च विषरा॒ विस्वरा॒ मन्दमेष्वप्तः । मन्दपश्चा॒ च या॒ नारी॒ या॒ च गम्भे॒ न विन्दति॒ ॥१०॥
बाताती॒ वृष्णी॒ येषामन्वृद्धिश्च दाहणा॒ । एतत्तैलं वरं तेषां॒ नारना॒ नारायणं॒ स्वृतम् ॥११॥

नारायण तैल—बैल की छाल, गनियार की छाल, सोनापाठा की छाल, पाढ़क की छाल, नीम की छाल, गन्पसार, असगन्ध, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, बरिआरा, अतिबला (ककही), गोरुखुल और गदहपुरना, इन ओषधियों को दस-२ पल लेकर कुछ कूट कर चार द्रोण जल के साथ पाक करे और चतुर्थीशं शेष रहने पर उतार कर एक आढ़क मूर्च्छित तिल के तैल में मिला देवे । और सौफ, देवदार, जटामासी, शैक्षेयक (शिलारस), वच, लालचन्दन, तगर, कूठ, इलायची, शालिपर्णी, पुष्पपर्णी, माषपर्णी, मुद्रगपर्णी, रासना, असगन्ध, सेन्धनमग्न, गदहपुरना, इन सब ओषधियों को दो २ पल लेकर कल्पक कर उसमें छोड़ देवे । तथा शतावरि का रस ४ प्रस्थ मिलावे और बकरी का दूध अथवा गाय का दूध तैल के चोगुना १६ प्रस्थ मिलाकर मन्दाद्यि पर पाककर तैल मात्र शेष रहने पर उतार कर छान लेवे । इस तैल का पान, वस्तिकर्म, अभ्यङ्ग (मर्दन) भोजन और नस्य में प्रयोग करना चाहिये । धोड़े अथवा हाथी वा मनुष्य कोई भी यदि बात के कारण भग्नादि से पीड़ित हों, पङ्कु हो गये हों, हाथ अथवा बैर के भय हों अथवा जो वायु अधोभाग में या सिराओं के मध्यभाग में कुपित हुआ हो, तथा बात से दन्तशूल, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, अपतन्त्रक, एकाङ्गवात, सर्वाङ्गवात, इन्द्रियों की क्षीणता, वीर्य का नष्ट होना, वर्वर से क्षीण होना आदि रोग से पीड़ित मनुष्य और जिनको लालासाव, विषरता हो,

जिस खी की प्रशा शक्ति भन्द हो गयी हो तथा जो खी गर्भ नहीं धारण करती हो और वात से पीड़ित जिनका वृषण हो तथा जिनको कठिन अन्वयद्विधि रोग हो उन सबों के लिये यह 'नारायण' नामका तेल श्रेष्ठ कहा गया है ॥ २-११ ॥

लघुनारायणं तैलम्—

एलावलानतकुचन्दनदाहसौग्रामैखेयकुछुटिलाबहूणाश्रुतेन ।

तैलं सदुधमिति सिद्धमभीकन्दतोयेन तेन तुलितेन समीरणधन्म ॥ १ ॥

लघु नारायण तैल—इलायची, वरिआरा, तगर, पीतचन्दन, दारुहरदी, मालकाँगुनी, छैल-छरीला, कूठ, कुटिला (सृक्का), वरुणा की छाल इन सब ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ १६ गुने जल के साथ कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार छानकर जितना क्वाथ हो उसके चतुर्थीश मूर्च्छित तिल का तेल और उसी तेल के समान गाय का दूध और शतावरि का रस मिला कर यथाविधि तैलपाक कर सेवन करने से यह 'लघुनारायण' तैल बातनाशक है ॥ १ ॥

शतावरीनारायणतैलम्—

शतावरी चांशुमती पृश्मिपर्णी छाटी बला । एरण्डस्य च मूलानि वृक्षस्यौ पृतिकस्य च ॥ १ ॥
गर्वेधुकस्य मूलानि तथा स्वध्वरस्य च । पुर्वां दक्षपालामागाञ्जलद्वोणे पवेद् दुधः ॥ २ ॥
पादावधेष्व पूते च गर्भे चैतान्वसमावेषु । पुनर्नवा वचा दाक शताङ्गा चन्दनोऽगुरुः ॥ ३ ॥
शैलेयं तगरं कुण्ठं त्रुटी मांसी स्थिरा बला । अशाङ्गा सैन्धवं रासना मञ्जिष्ठा वनचोरकम् ॥ ४ ॥
कौन्ती प्रियज्ञु स्थौर्णेयं पलाधां कहपयेत्पृथक् । गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्रौ वा तत्र प्रयोजयेत् ॥
शतावरीसप्रस्थं भिषकपवेत् । लब्धङ्गनस्तक्षोलवेश्वकं जातिकोशकम् ॥ ५ ॥
त्रवच्छुद्धकं च कृपूरं तुरुकं श्रीनिवासकम् । स्पृश्कुछुमकस्तूरीदंशादुवाचताविते ॥ ६ ॥
अस्य तैलस्य शणु वीर्यमतः परम् । अश्वानो वातस्त्रणानां कुञ्जराणी तथा नृणाम् ॥
तैलमेतत्रयोक्त्यं सर्ववातविकारनुत् । आयुधमांश्च नरः पीत्या निश्चयेन हडीभवेत् ॥ ७ ॥
गर्भमस्तरी विन्यासिं पुनर्मूलुषी तथा । हृष्टलूङं पाशवैशुलं च तथैवाधीर्वभेदकम् ॥ ८ ॥
अपर्ची गण्डमालां च वातरकं हनुग्रहम् । कामलामधर्माणां पाण्डुसुन्मादं चिन्यच्छुति ॥ ९ ॥
नाशयेन गदितं तैलमेतत्कृपालुना । नारायणमिति रुद्यातं नाभ्ना तस्माद्विदं शुचि ॥ १० ॥

शतावरी नारायण तैल—शतावरि, शालिपर्णी, पुष्टपर्णी, कच्चूर, वरिआरा एरण्डमूलत्वक्, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, करडी, नागवला की जड़, कटसरैया की जड़, इन ओषधियों को पृथक् २ दस २ पल लेकर कृटकर १६ प्रस्थ जल में देकर पाक करे और चतुर्थीश शेष रहने पर उतार छान कर उसमें नीचे लिखे गदहपुरना, वच, दारुहरदी, सौफ, लालचन्दन, अगर, शैलेय (छैल-छरीला), तगर, कूठ, इलायची छोटी, जटामांसी, शालिपर्णी, वरिआरा, असगन्ध, सेन्धानमक, रासना, मजीठ, नागरमोथा, चोरक (चौरा), रेणुका, फूलप्रियज्ञु और गठिवन, इन प्रत्येक ओषधियों को आधा २ पल लेकर कल्प कर मिलावे और गौ तथा वकरी का दूध दो २ प्रस्थ मिलावे । शतावरि का रस तथा तिल का मूर्च्छित तेल एक-एक प्रस्थ लेकर सब एकत्र कर तैल मन्दामिं परं पाक करे । तैलमांव शेष रहने पर उतार-छानकर इसमें लवंग, नखी द्रव्य, कङ्काल, मरिच, बांझरंग, जानित्री, दालचीनी, कटुक (सुगन्धतृण या चम्पा), कपूर, तुरुक (शिलारस), श्रीनिवास (राल या तारपीन), सृक्का (असवरग), केसर, कस्तूरी आदि का चूर्ण सुगन्धार्थी तैलपाक विधि के प्रमाण से मिलाकर ढक कर रख देवे । (सुगन्धित द्रव्य तेल जब कुछ गरम रहे तभी मिला देना चाहिये) । इस तेल को कुछ दिन रख कर तब प्रयोग में लाना चाहिये । इसका गुण इस प्रकार है—वातरोग से पीड़ित अश्व, हाथी तथा मनुष्य सभी को इस तेल के

प्रयोग से सब प्रकार के वात विकार नष्ट होते हैं । इस तेल के पान करने से मनुष्य आयुष्मान् तथा इद शरीर वाला हो जाता है, यह निश्चित है । इस तेल के पान से बन्ध्या लचरी भी गर्भ धारण कर लेती है जिसी की क्या वात, वे तो अवश्य ही गर्भवती हो जाती है । तथा इससे हृदयशुल, अर्धदिमेदकरोग, अपची, गण्डमाला, वातरक्त, हनुग्रह, कामला, अश्मरी, पाण्डुरोग, उन्माद ये सब रोग नष्ट होते हैं । कृपालु नारायण ने इस तेल को कहा था इसलिये इसका नाम 'नारायण' लोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ १-१२ ॥

शतावरी तैलम्—हरवारुद्विद्विष्यद्वृत्तगरं त्वक्पत्रकौन्तीनस्यै-

मांसीसर्जरसाभ्वन्दनवचाशैलेयलामउजकैः ।

मञ्जिष्ठासरलागुरुद्विपवलारासनाव्यगन्धावरी-

वर्षाभूमिसिंभुभिक्ष सकलैरेभिः पचेकलिकैः ॥ १ ॥

तुलयं गोपयसा वर्षीरसमं तैलं चिपकं सृष्टु

स्याद्वात्प्रभिदं नृणामिति बरीतलं भिषकपूजितम् ॥ २ ॥

शतावरी हैल—कूट, दारुहरदी, इलायची, फूलप्रियज्ञु, तगर, दालचीनी, तेजपात, रेणुका, नखी, जटामांसी, राल, नागरमोथा, चन्दन, वच, शैलेय (छैल-छरीला), लालचन्दन, मजीठ, सरलधूप, अगर, नागवला, रासना, असगन्ध, शतावरि, गदहपुरना, सोआ और सेन्धानमक इन सब द्रव्यों को समान (एक २ भाग) लेकर कल्प करनाकर जितना कल्प हो उसका चैयुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल के समान सूग गाय का दूध, और शतावरि का रस लेकर सब एकत्र कर मन्दामिं पर आपकर प्रयोग करने से यह 'शतावरी तैल' वात-विकारनाशक है तथा वे यों ने इसकी प्रशंसा की है ॥ १-२ ॥

दशमूलादि तैलम्—शशमूलकाशयविपक्षमधो पथसा च समेन वलावदनलैः ।

श्रुटिचन्दनदारुलतानलैरुण्णाजतुकुष्ठवचाकुटिलैः ॥ १ ॥

इति पक्षमिदं तिलजं जयति प्रस्थं पवनामयमाशु नृणाम् ॥ २ ॥

बलशूकविभार्चिवहिकरं नृपशूकशिशुप्रमदासु हितम् ॥ ३ ॥

दशमूलादि तैल—दशमूल के दसों द्रव्यों को समान भाग लेकर अठगुने जल में चतुर्थीशविशेष काथ बनाकर जितना काथ हो उसके चतुर्थीश मूर्च्छित तिल का तेल और तेल के समान गाय का दूध और इसमें वरिआरा, नागरमोथा, नरकट, छोटी इलायची, लालचन्दन, दारुहरदी, लता (लता फटकीरी), खस, मजीठ, लाख, कूठ, वच, तगर, इन सब द्रव्यों को समान लेकर जो तेल के चतुर्थीश हो कल्प कर तेल आदि में मिलाकर तैल पाककर प्रयोग करने से मनुष्यों के वात रोग इस दशमूलादि तैल से नष्ट होते हैं और यह बल, वीर्य, कानित, रुचि और अंशि की वृद्धि करता है तथा राजा, वृद्ध, शिशु और जिसी के सेवन करने से उन्हें लाभ करता है ॥ १-२ ॥

सुगन्धितैलम्—तगराशुरुकुमुकुरुमधिः सलवङ्गवराङ्गकुरङ्गमदैः ।

सरलामरदारुदलद्विद्विनखेसरसरुलिनिलैदैः ॥ १ ॥

सतुरुक्षहेणुबलाव्यवन्निरिति तैलमिदं पथसा विपचेत् ।

नृपतिप्रमदाशिशुभिः स्थविरैरूपयोदयमिदं पवनामयजित् ॥ २ ॥

सुगन्धितैल—तगर, आग, वेसर, तुन्दुर (विरोजा), लवंग, दालचीनी, करतरी, सरलधूप, देवदारु, तेजपात, इलायची, नखी, नागरमेसर, कूठ, कुमुदिनी, खस, छैल-छरीला, रेणुका और वरिआरा इन प्रत्येक द्रव्यों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर इसमें मूर्च्छित तिल का

तेल और गाय का दूध मिलाकर सैलपाक विधि से पाककर राजा, खी, बालक, वृद्ध इन सभों को इस तेल का प्रयोग कराना चाहिये । यह तेल बातरोगनाशक है ॥ १-२ ॥

एलादि तैलम्—

एलासुरासरलशैलजदारौन्तीचण्डाशीनलद्वचपकहेमपुण्यम् ।

इधौषेयगन्धरसपृतिदलासृणालश्रीवासकुन्तुरुनसाम्बुलबहुष्ठम् ॥ १ ॥

कालीयकं ललचकर्त्तचन्दनशीर्जात्याः फलं सविक्षसं सह कुकुमेन ।

स्पृष्टातुरुष्कलघु लभ्यतया विनीय तैर्भास्त्रवथनदुर्घदविप्रपक्षम् ॥ २ ॥

मन्दानलेन हितमेतदुहारन्ति वाताभयेषु बलवर्णं हुताशकारि ॥ ३ ॥

एलादि तैल—छोटी इलायची, मुरामासी, सरलधूप, छैलछोला, देवदार, रेणुका, चण्डा (चौरा), कचूर, खस, चम्पा के फूल, नागकेसर फूल, स्तुही, लता कस्तूरी, पूतिकरंज, तेजपात, कमलनाल, गुण्डुल, विरोजा, नखी द्रव्य, सुगन्धवाला, लंबंग, कूठ, पीतचन्दन, जलवेत, काकड़ा-सिंगी, चन्दन, श्रीः (नवनीत खोटी), जायफर, मांसरोहिणी, केसर, स्पृष्टा (असवरग), शिलारस, काली अगर इन सभ-द्रव्यों को समान लेकर कलक कर उसके चतुर्गुण तिल का मूर्णिष्ठ तेल और उसी तेल के समान वरिआरे का सिद्ध काथ, गाय का दूध और दही (ये सभ तेल के समान भाग) लेकर तैल पाक कर, सेवन करने से बातरोग नष्ट होता है, एवं बल, वर्ण तथा अश्वीकी वृद्धि होती है ॥ १-३ ॥

महालक्ष्मीनारायणतैलम् सुश्रुतात्—

दशशताङ्गिर्षवेतरमस्त्रिकादहननागबलास्त्रुवापिकाः ।

कितवलाङ्गलकीषमनमस्त्रिकाकुटजहेहृकीखरश्वरक्षिकाः ॥ १ ॥

मधुकबीजकचपकमालतीस्त्रुहित्वलाङ्गिमहाप्रपुनाटकाः ।

शतदलप्रवर्षराहकवासनीरुत्प्रक्षम्बनपितपिलिरकिकाः ॥ २ ॥

अतिवलाङ्गिविषाशुकदाहिमीसिसरिशास्त्रिलिसिन्धुकतुण्डिकाः ।

सुषिरपञ्चलकाशसमकीर्तवरककुम्भनिकुरभजयन्तिकाः ॥ ३ ॥

कुसरिपिच्छुलिकाकरमर्दिकाकशनमर्दनकेवणिरुपिकाः ।

अतिसिंधसकगृधमहीरहो चिदुलकुञ्जरिकाद्वितयोच्चाः ॥ ४ ॥

दधिकलक्ष्मवृक्षमृगाहनीमधुरसामग्रधाजलप्रत्रकाः ।

हृदतिका पृथगेभ्यजटाः सुधीः समनुगृह्य तथैष (१)दशाङ्गिकम् ॥ ५ ॥

मध्यलक्ष्मी नारायण तैल—शतावरि मूल, शिवेतर (बबूल की छाल), मोगरा का फूल, चित्रकमूल, नागबला (महाबला), एरण्डमूलत्वक्, कृष्णजीरक, धनुर, करिआरी मूल, कुटजत्वक्, हन्दजी, हेरु (महाशतावरी), पाठा (पुरहनपाढी) मूल, काकड़ा-सिंगी, मुलहठी, विजयसार, चम्पा, मालती, थूहर, बरिआरा, वाभीरंग, पनवाड़, सौफ, असगन्ध, बराहीकन्द, बासनी (बासन वेल), एरण्डमूल, धन्वन (धामनी वृक्ष), पीपरि, गुजाफल, अतिवला (ककही), काली अतीस, शेत अतीस, शिरीष की छाल, अपामार्ग, सेमर, निर्गुणी, तुण्डिका (विम्बाफल की बेल), नरकट की जड़, पकुल (एरण्डमूल), कास (राढ़ा) की जड़, केवांच की जड़, त्रिवृद्धण्डी, निशोथ, दन्तीमूल, जयन्ती के पत्ते, कुसरि (महाराष्ट्र देश में प्रसिद्ध वृक्ष), पिच्छुलिका (अलसी), करौदा, कसौदी, केवणी (केवार, नामक कोकणदेश-प्रसिद्ध वृक्ष), शेत मन्दार, तीसी, कुटजत्वक्, गृध्रमहीरह (गीधासाव महाराष्ट्र प्रसिद्ध), बेत, कुञ्जरिका द्वितय (शलकी

(१) (दशांगिकम्-दशमूलम्) ।

शालभेद तथा बड़ा साल), गुंजा, कैथ, सुवा वृक्ष (विकक्षत कण्टार्व वज), माहरि, मूर्वमूल, पीपरि, कमलिनी, रुदन्ती और दशमूल की दशो ओषधियाँ इन सभ ओषधियों का मूल समान भाग अर्थात् एक २ भाग लेवे (टीका में कई द्रव्यों की छाल लिखा गया है वह—‘अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राहास्त्वचो वृष्टैः’ इस आधार पर है) ॥ १-५ ॥

तत्त्व—

विश्वाग्निभूत्यस्योनाकाशमरीपाटलायुतैः । शालिपर्णीपृष्ठिपर्णीवृहतीद्रयगोक्त्वैः ॥ ६ ॥

दशमूल की ओषधियों के नाम—बेल की छाल, गनियार की छाल, सोनापाठा की छाल, गमार की छाल, पाढ़ार की छाल, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू ये दशमूल कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

मुनितहमलयजतपनायामार्यबीजनकमालशृङ्गादी ।

प्रपुषाटोऽथ हेमदुध्या फलेसहाणं च बीजानि ॥

धात्रीशिग्रकरञ्जवृलमधुष्टीलेङ्गुडीनेपती—नीपारवधरकसारवदरीविश्वर्जनः काञ्चनः ।

चित्रोदरवरतापसदुमयुग्माङ्गोलहृष्यं स्वक्षीया—गायत्रीकलिवृक्षभण्डकवराधथाभयापादपाः ॥

और अगस्त्य वृक्ष, शेत-चन्दन, भिलावा, अपामार्ग बीज, करंज, सिंधाडा, पनवाड़, स्वर्ण-क्षीरी (नृत्यानाशी), पाढ़ार के बीज, अवरा, सहिजन, करञ्ज, बबूल, मदुआ, हिंगोट, नेपती (महाराष्ट्र खातवृक्ष), कदम्ब, अमलतास, रक्तचन्दन, वैर, कुचिला, कचनार, इमली, गुलर, दोनों प्रकार के (शेत-रक्त) अगस्त्यवृक्ष, दोनों अङ्गोल, शलकी (सालवृक्ष भेद), खैर, वहरा, मजीठ, शेत-खदिर, अश्वत वृक्ष, हर्दी इन वृक्षों की छाल तथा पत्र आदि लेना चाहिये ॥ ७-८ ॥

भृषीकिञ्चुकमेष्वशृङ्गिकिणिहीभूताङ्गुडाः दायकः

कोशान्नार्जुनपारिभद्रकमहावृद्धाः कुमार्यसनः ।

कुम्भीं रक्तधनञ्जयो नियमनो वातामिमोखाङ्गौ

पृतेषां परिगृह्य वस्त्रकलमयो रम्भा विदारी वरी ॥

आलूकुचिरकन्दवजिसुवहा कर्कोटिका गृष्णिका

स्वर्जीरी लग्नसूरणगृह्णितिकान् कन्दांशं साधूनपि ॥ ९ ॥

भिलावा, पलास, मेडासिंगी, किणही (शेता-अपराजिता), भूतांशु (काली निर्गुणी या गौजवान), मैनफल वृक्ष, जैतून, अर्जुन, नीम, थूहर, धीकुआर, असना, गूमा, लाल अर्जुन, नीम, शरण्ड, मोखा इन वृक्षों का वस्त्रकल ग्रहण करना चाहिये । और केला, विदारीकन्द, शतावरि, एलुआ, क्षीरविदारी, असगन्ध, रास्ना, बांझ ककोड़ा, गेठी या वाराहीकन्द, मूसली, अमरकन्द, सूरनकन्द, इन सभ का कन्द ग्रहण करे ॥ ९ ॥

छिङ्गाटस्त्रकशिप्रियमाषपर्णी-इयोतिष्मतीयुग्मपर्षटमेष्ववृक्षी ।

भूपर्णिकासजटिकावृगङ्गराजमसुण्डीयुक्तरीकुलकयुग्मकलार्कमका ॥ १० ॥

भूनित्वद्विद्विमनीरिग्रिकर्णिकायुक्त चिङ्गारकाखदिरकविजयाकुमार्यः ।

गङ्गावती युग्मलवैष्णविका सुगन्धा लड्डा सुपूर्णलतिका सहदेविका च ॥ ११ ॥

गोपीयुग्म मृगखुरी सरणी च कङ्गमोर्यश्च नाशदमनी मधुपुष्पिका च ।

एतानि गृह्य निखिलानि तथाऽद्वयुम् चूतास्त्वितो तरुहो वटसम्प्ररोहान् ॥ १२ ॥

भूदार्करासदकराकुसुमं च पीलुचर्णी(हि)शिखां कनककेतकिसउप्रोहान् ।

द्व्याग्राटिकाखिकरकं तिमिरोरथसारं कण्डूकपित्थभवलोहजटो गृहीत्वा ॥ १३ ॥

मुष्टिप्रमाणं विधिनोद्धृतानि द्वोणीजलानां तिष्ठभिर्विवाच्य ।

पादावशेषं परिगृह्ण एतं प्रस्थन्नयं तत्र तिलोत्थतैलम् ॥ १४ ॥
 हिंसा रक्ता वरिष्ठा सुररजनियुगं सैहलं गम्भसारं
 शङ्कारं नागपुष्पं पलितकटुफलं रक्तकाष्टं नतं च ।
 षड्ग्रन्थाजोङ्काशालुचकररुद्धं रोचना रक्तसारं
 कोरक्षीपालकाष्टं कुमिरितुमधुकं सिन्धुजं दिनवदारु ॥ १५ ॥
 कालीसं जातिसस्यं मलयजमभृतं पश्चकं जातिपश्ची
 सेव्यं पश्च यवानी कतकतुरथतीकेसरं पश्चकस्य ।
 पाटीनो राजपुष्ट्री जलधरचविका सोमवलको मधुकं
 पाक्ष्यः स्वर्ज्जं शाताह्ना वनजमगधजा मस्तवित्ता शाटी च ॥ १६ ॥
 कारुच्छीपुत्रजीवाह्नपनकलकं बीजभृकासरेवी
 वृक्षाम्लं देवधूपो जरणरससाक्षकराकुटिमं च ।
 मृद्धीकासाकुरुद्धं नियमनधनिका धन्वयासं च ब्राह्मी
 विश्वं केरातकेषुरुक्तकरिकणामोदकं बहस्तमोदा ॥ १७ ॥

और गुरुचि, अरुसा, बेल, माषपर्णी (भषवन), दोनों प्रकार की मालकांगनी (छोटी बड़ी), पित्तपापड़ा, मेदासिंगी, भूपणिका (सुवर्णमुखी), गुज्जा, मांगरा, मुण्डी, दोनों प्रकार की निर्गुण्डी या वासनवेल (नीले और येत फूलवाली), दोनों प्रकार के परोरा, (कमुर-कटु), फला (जिंशिरीटा), सूर्यमुखी, चिरैता, चित्रकम्ल, दबना, दोनों प्रकार की अपराजिता (येत तथा बृष्णु पुष्पवाली), चिछ (चन्दनवृक्ष), अरक (पित्तपापड़ा), खैर, भांग, घृतकुमारी, गंगावती, दोनों वैष्णविका (छोटी-बड़ी शतावरी), सुगन्धा, रासना, कटुम्बी, अतिबला, सहदेवी, सारिवा, कृष्ण-सारिवा, सुग्खुरो (हिरण्यखुरी गन्धप्रसारणी), मालकांगनी वा कंगुनी, मूर्च्चा, नागदवन, मधुपुष्पिका, चोरपुष्पी, इन ओषधियों का पञ्चांग ग्रहण करना चाहिये, मोथा और नागरमोथा, आमकी गुठली, बंदा (बांसी) और बटाकुर, भूशकंरा (महराष्ट्रव्यात कुमारकरकन्द), धाय के फूल, पील वृक्ष मोरशिखा, स्वर्णकेतकी के अड्डर, छोटी कटेरी, अंतिकरक, इरदी, अनार, केवांच, कैथ की जड़, काली अगर की जड़, इन ओषधियों (१ से १३ शोक तक में कही) को एक २ पल के प्रमाण से लेकर कूटकर एकत्र कर तीन द्रोण (४८ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्थशावशेष काथ कर उसमें मूर्छित तिल का तेल ३ प्रस्थ मिलावे तथा उसमें जटामांसी, मजीठ, खस, देवदारु, हरदी, दारु हरदी, दालचीनी, शेतचन्दन, लवंग, नागकेशर, गुण्डुल, कंकोल, रक्तकाष्ट, (पच्छ की लकड़ी), तगर, बच, कासी अगर, असगन्ध, रुचक लवण, नखीद्रव्य, गोरोचन, लालचन्दन, गोपीचन्दन या सौराष्ट्रमृतिका, कूठ, विड़ज, मुलहडी, सेन्धानमक, स्निग्धदारु (तैल वाला देवदारु), तालीस-पत्र, जायफर, मलयागिरि चन्दन, वर्तसनाम विष, पुदुमकाठ, जाविद्री, सुगन्धवाला, कमल, जवाइन, निर्मलीबीज, असगन्ध, पद्मकेसर, चित्रक, रेणुका बीज, नागरमोथा, चव्य, शेतखदिर, मदुआ, बख्खार, सज्जीखार, सौफ, वसज (तुम्बर), पीपरि, कुटी, कच्चू, कारुच्छी (बांगली) पुत्रजीवक के फल, विभूषीफल, भत्तर का बीज, मृगराज, त्रिवृता, वृक्षाम्ल (कोकम), गुण्डुल, जीरा, राल, रासना, अकरकरा, अनार की छाल, सुनका, संकुरण्डवृक्ष (गुजरात प्रसिद्ध), निम्ब, धनिया, जवासा, ब्राह्मी, सौंठि, चिरैता, ईख, तालमखाना, गजपीपरि, अजवाइन और अजमोदा ॥ १०-१७ ॥

शकाह्ना तिश्वलाह्योद्भुरपुरसुषव्यी मेथिका शृङ्गिका च
 प्रथयेकं च गृहीत्वा पिञ्चदलतुकिता मुख संकृतप्रविष्टा ।

ताज्जिहिष्प्याऽऽशु पात्रे शुचिजनविहृतं निर्मलं वैश्ववर्यो
 गव्यं वा दुधमाजं युगपरिगणितं पूर्वमुक्ता च तैलात् ॥ १८ ॥
 नारायण्याः स्वरसकम्भो रज्जमाता रसं च, तैलोन्मानं विपच इदिजे भोजयेत्प्रथयं वा ।
 तरिमन्पाकं गतविति यथाविषयम् प्रचिपेष्य, सौवन्ध्याप्यथं शिशिरकिरणं कुङ्गुमं वेधमुख्यम् ॥
 गोभूमारुण्यं सुसुरभियुतं गन्धकचूर्णं च, जातीपुष्पं शतदलसमं भस्त्रिकं चश्पकं च ।
 लोबानेन त्वचिसुरभिते काचभाष्टे निधाय, तैलं चैतन्युपतिसखे धारयेद्वैद्यवर्यः ॥ २० ॥
 पाने वस्त्रौ चिह्नितमशाने नावनेऽभ्यज्ञने च, मातझे वा मनुजहस्योवातरोगाभिभूते ।
 वाताष्टीलागलहनुभिरोगुधसीपादशूलं, पक्षाधातश्ववणव्यव्यव्युत्तुलादे तु शुलम् ॥ २१ ॥
 ऊरस्तम्भादित्वधिरतैकाङ्गशोगापतान्, मन्यास्तम्भं त्रिकद्दृश्यस्त्रूमूकताज्ञेपखावृजम् ।

जिह्वास्तम्भं गतिविकलता कुङ्गजता दन्तशूलं,
 तून्यौ गुलम् गुदकिट्चरणश्रांगुलकौ च सुसिम् ।

विश्वाचीं वा पृष्ठपणवनं धातुवातापतान्, मूर्कं कम्पं जयति सकलान्वातरोगाननुक्तान् ।
 रेतोवृद्धि जनयति नवं यौवनं पुंसवृद्धिं
 बुद्धिं प्राणं वितरति तथा पुष्टिमायुर्यकारि ।
 वन्ध्यायाः पुष्ट्रदं रयाज्जवरविहृतनौ शोकद्वीभाष्यहन्तु
 तैलं भूपोपयोगं चिनिगदितमिदं नाम नारायणं च ॥ २२ ॥

इन्द्रायण, लोध, केवाच की जड़, गुम्बुल, करैली, मैथी, काकडासिंगी, इन प्रत्येक ओष्ठ-धियों को एक २ कर्ष लेकर कल्क कर उपर्युक्त तेल में मिलावे और पवित्रता से दुहा हुआ गाय का दूध अथवा बकरी का दूध, शतावरि का स्वरस, लाक्षारस और मदार का रस प्रत्येक तेल के समान, (३ प्रस्थ) लेकर पृथक् २ चिथिवत् पूर्विष्ट करता हुआ पाक करे अर्थात् एक २ को तैल पाक चिथि से एक २ दिन पाक करता हुआ मन्द २ अग्नि पर पाक करे । तेल सिंड हो जाने पर उत्तर कर उसमें आगे लिखे कर्पूर, केसर, कस्तूरी, गौधूमारुण्य (घडला नामक सुगन्धिद्रव्य) मौलेसरी के फूल, कच्चू, चमेली के फूल, गुलाब के फूल, जूही, चम्पा, लोहवान हन सब गन्ध द्रव्यों को इलक्षण चूंगकर काँच के पात्र में रखे हुए तेल में मिला कर, इस तेल को बुद्धिमान वैद्य राजा के धर में प्रयोग करावे अर्थात् यह बहुमूल्य तेल है सर्वसाधारण की शक्ति नहीं है कि इसका व्यवहार करे । इस तेल को पान, वस्तिकर्म, नस्य तथा मर्दन करने में प्रयोग करे । इसको हाथी, मनुष्य, धोड़े के बातश्रित होने में, वाताष्टीला, गलरोग, हतुरोग, शिरोरोग, गुधसी, पादशूल, पक्षाधात, कर्णशूल, नेत्रशूल, भ्राशूल, ललाट के शूल, ऊरस्तम्भ, अर्दित, वाखिर्यं, एकाक्षरोग, अपतानक, मन्यास्तम्भ, त्रिकशूल, हच्छूल, मूकत्वरोग, आक्षेप, खजरोग जिह्वास्तम्भ, गति (गमन) में विकार होना, कुङ्गजता, दन्तशूल, तूनीवात, प्रतितूनी वात, गुम्बरोग, गुदब्रंश, कटिब्रंश, गुलक्कंदा और प्रसुसिरोग (शूत्यता), विश्वाची, वृष्णवात, धातु (रस-२क्षादि ७ धातु) गत वात, गूंगापन और कम्पवात आदि सम्पूर्ण वातरोगों में प्रयोग करने से इन रोगों को नष्ट करता है । वीर्य की वृद्धि करता है, नवयौवन होता है तथा आयु की वृद्धि करता है, वन्ध्या रुदी को इसके प्रयोग से पुत्र होता है, उवर के कारण से उत्पन्न शोष (रस-२क्षादि धूम्बूलों के शोष) तथा दुर्माण्य को नष्ट करता है । यह 'महालक्ष्मीनारायण' नाम का तेल राजाओं के योग्य कहा गया है । इस तेल में कई ओषधियों का नाम दो २ बार अथवा ३—३ बार आया है उसे दिग्गुण वा त्रिगुण ही लेना चाहिये ॥ १८-२३ ॥

माषतैलम्—

माषकाथे बलाकाथे रासनाया दशमूलजे । यवकोलकुलत्थानां क्षुगमांसरसे पृथक् ॥ १ ॥
प्रस्थं तैलस्य च प्रस्थं खीरं दद्याक्षतुर्गुणम् । रासनामगुस्मिन्शृथशताहृष्टमुस्तकैः ॥ २ ॥
जीवनीयबलाड्योऽयैः पचेदचमितैः पृथक् । हस्तकम्पे शिरकम्पे बाहुकम्पेऽवाहुके ॥ ३ ॥
बस्त्वयञ्जनपानेषु नावने च प्रयोगयेत् । माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्धजनुगदायहम् ॥ ४ ॥

माषतैल—उरद आधा प्रस्थ का चार प्रस्थ जल के साथ चतुर्भुशावशेष काथ कर छान लेवे, यह माष काथ १ प्रस्थ, इसी विकिका वरिआरा, रासना, दसमूल मिलित, जव, वैर और कुल्थी का पृथक् २ सिंद्र क्वाथ, वकरे के मांस का सिंद्र काथ, मूर्चित तिल का तेल प्रत्येक एक-एक प्रस्थ, गाय का दूध ४ प्रस्थ मिला कर उसमें रासना, केवाच, सेन्धानमक, सौफ, एरण्डमूल, नागरमीथा, जीवनीय गण की ओषधियाँ (जीवन्ती, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, सुदगपणी, माषपणी, जावक, भृषमक, ऋद्धि, वृद्धि और मुलहठी), वरिआरा, सौंठि, धीपरि, मरिच, इन सब ओषधियों को एक २ कर्षं लेकर कलं कर उपर्युक्त तेल में देकर सब क्वाथारिकों को पर्युषित करता हुआ अर्थात् एक २ दिन एक २ क्वाथ का पाक करता हुआ तेल पाक कर हस्तकम्प, शिरःकम्प, बाहुकम्प, अवबाहुक, वस्तिकम्प, अभ्यज्ञ, पान, नस्य कर्म आदि विवि से प्रयोग करने से उक सब रोग नष्ट होते हैं । और यह माषतैल ऊर्ध्वजनु जैव रोगों को नष्ट करने में श्रेष्ठ कहा गया है ॥ १-४ ॥

महावलातैलम्—

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च । यवकोलकुलत्थानां काथस्य पयसस्तथा ॥ १ ॥
अष्टावट्टी शुभान्भायांस्तैलाद्यै तदेकतः । पचेदाचाप्य मतुरं गणं सेन्धश्वसंयन्तम् ॥ २ ॥
तथाऽगुरुं सर्वरसं सरलं देवदारु च । मतिष्ठा चन्द्रनं कुष्ठमेला कोलाजनं वदा ॥ ३ ॥
मांसे शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवा त्वचा । शतावरी चाचान्धा शनुपुण्डा पुनर्नवा ॥ ४ ॥
तत्संसिद्धं च सौवर्णं राजते मृग्यमयेऽथ च । प्रक्षिप्य सकलं सम्प्रसुतुर्पतं स्थापयेद् द्विधः ॥ ५ ॥
बलातैलमिदं रुपातं सर्वातविकारनुत् । यथावलं भिवक्षात्रां सूतिकायै प्रशापयेत् ॥ ६ ॥
या च गर्मार्थिनी नारी क्षीणगृहकश्च यः पुमान् । लाणो वातेमंसहते मधिते पीडिते तथा ॥ ७ ॥
भाने च क्षिक्षभिन्ने च सर्वथैषं प्रयोजयेत् । सर्वानांजेऽकांदीर्ढं वातव्याधीन्दयोहति ॥ ८ ॥
प्रथग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयैवनः । राजा त्वेतदिक् कर्त्तव्यं राजमान्यैस्तथा नृपैः ॥ ९ ॥

महावला तैल—बला का मूल, दसमूल मिलित, यव, वैर और कुल्थी मिलित का पृथक् पृथक् सिंद्र क्वाथ और गाय का दूध प्रत्येक ८ प्रस्थ, मूर्चित तिल का तेल एक प्रस्थ लेकर इसमें मधुर गण की ओषधियाँ (जीवक, भृषमक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, माषपणी, सुदगपणी, गुरुचि, काङडासिंसी, वंशलोचन, पटुमकाठ, पुण्डरिया, जीवन्ती, मुलहठी, द्राक्षा) और सेन्धानमक, अगर, राल, सरलवृप, देवदारु, मजीठ, चन्दन, कूठ, इलायची, वैर, रसवत, अवरा, हर्दा, वहेरा, जटामांसी, शिलारस, तेजपात, तगर, सारिवा, दालचीनी, शतावरि, असगन्ध, सौफ, पुनर्नवा, इन सब द्रव्यों को समान भाग में तेल के चतुर्भुश लेकर कलं कर उपर्युक्त तेल में मिलाकर तेलापक निधि से द्रव्यों को पर्युषित करते हुए तेल सिंद्र होने पर उतार-छानकर स्वर्ण, रजत या मृतपात्र में मुख बन्दकर रख देना चाहिये । यह 'बलातैल' सब प्रकार के वात विकारों को नष्ट करता है । इन तेल को वैष्ण सूतिका रोग में रोगी के बल के अनुसार मात्रा से पान करवे तो इससे लाग होता है । जो खीर गर्भ की इच्छा रखती हो तथा जो मुरुष क्षीणवीर्य हो वे इन तेल को पान, मदनं और वस्ति कर्म में प्रयोग करें तो लाभ होता

है । जो मनुष्य वात के कारण क्षीण हुए हों, जिनके मर्मस्थान वात वा अंघात से हत हों, जो वात से मधित (मदित) तथा पीडित हों तथा वात के कारण जिसे भग, छिन्नमिन आदि रोग हो गये हों उन सब अवस्थाओं में इस तेल के प्रयोग से ये सब रोग नष्ट होते हैं । यह तेल आक्षेप आदि तथा सभी वात विकारों को नष्ट करता है । इसके प्रयोग से मनुष्य सम्पूर्ण धातुओं से परिपूर्ण और विश्वर यौवन बाला हो जाता है । इस तेल को राजाओं के लिये अथवा राजाओं के मान्य पुरुषों के लिये वानाना चाहिये यह तेल धनियों के लिये है ॥ १-९ ॥

विजयभैरवतैलम्—

रसं गन्धं शिला तालं सर्वं कुशांत्समांशकम् । चूर्णित्वा ततः श्लेषणमारनालेन पेषयेत् ॥ १ ॥
तेन कश्चकेन संलेप्य छौमं दद्य ततः परम् । वृत्तास्तां काश्येद्वर्त्तिमूर्ध्वभागे प्रदीपयेत् ॥ २ ॥
सत्याधः स्थापिते पात्रे तैलं पतति शोभनम् । लेपयेत्तेन गात्राणि भज्येदातुरः सदा ॥ ३ ॥
नाशय दम्भुतसैलं तद्वातरोगानशीघ्रतः । बाहुकर्षं शिरःकर्षं जड्वाकर्षं ततः परम् ॥ ४ ॥
एकाङ्गं च तथा वातं हन्ति लेपाङ्गं संशयः । रोगशान्त्ये सदा भव्यं तैलं विजयभैरवम् ॥ ५ ॥

विजयभैरव तैल—शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, शुद्धमैनसिल, शुद्धहरताल, इन सबको समान भाग लेकर पारद-गन्धक की कजली बना उसमें सबको एकत्र मदनं करके कांजी के साथ पीस कर कलं बना ले तथा उस कलं को रेशमी बख पर पोत देवे और सुखाकर उसकी बच्ची लपेट कर बनावे और घृत में भिगो कर उसके अद्यभाग को आग से जलाकर उसके नीचे एक पात्र जिसमें तेल आदि सुखने वाला न हो अर्थात् कांच आदि का हो रख देवे इसमें बत्ती के जलने से बूंद २ कर जो स्नेह गिरे उसको रख लेवे । इसका शरीर में लेप और पान करने से यह बाहुकर्ष, शिरःकर्ष, जड्वाकर्ष, एकाङ्गवात तथा अन्य वात रोगों को समूल नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

रासनापूतिकतैलम्—

दशमूलबलादारु अश्वगन्धा शतावरी । बहुणैरप्त्वैर्निर्गुणीतर्कारीशिग्रमोरदम् ॥ १ ॥
सहाचरं चित्रमूलं करक्षाक्षोलमूलकम् । पुनर्नवां च भूषीलु अर्कपुण्डी दुरालभा ॥ २ ॥
जीवन्ती विषतिःदुश्च वातारिहस्तशिग्रकम् । अलक्ष्यवकलं च कुलित्यानां काथायकम् ॥ ३ ॥
पृतेषां च समां रामां पृतिकं च तथोः समम् । अष्टमागावशेषं तु कथायमवतारयेत् ॥ ४ ॥
तत्पादं त्विलतैलं च त्वचाचीरं च तसमम् । गुणगुलं तगरं मांसो त्रिकटुशिफलानि च ॥ ५ ॥
चातुर्जातं कचोरं च विड्वामरदारु च । हिङ्गशस्नावचातिकापाठायशिक्षिग्रकम् ॥ ६ ॥
प्रियं चुपिष्ठलीमूलं च वृन्दनं च व्यवदीप्यकम् । वरालं च धृपं कुष्ठं मतिष्ठामिहिसर्पदम् ॥ ७ ॥
जातीफलं चुम्नं च पात्रोशीरं समांशकम् । एतत्तैलस्य षष्ठीशं कवकद्रव्याणि दापयेत् ॥ ८ ॥
सुमुहूतं सुनक्षत्रे नववस्त्रोणी पीढियेत् । पानलेपननस्याद्यशिरोवस्तिषु पृजितम् ॥ ९ ॥
धनुर्क्षीतान्तरायां गृग्रसीमवबाहुकम् । आच्चेषके अणायामे विश्वाच्यामपतन्मके ॥ १० ॥
आद्य वाते हस्तस्त्वे शिरोवातापतानके । अशुद्धकणासाविजिङ्गास्तम्भेऽवबाहुके ॥ ११ ॥
कलायस्त्रज्ञात्वा अपञ्जन्त्वा धृपाङ्गाङ्गाङ्गामाशते । अदिते पादहर्षं च पद्मधाते प्रशस्यते ॥ १२ ॥
अहस्तम्भ सुस्वातं नाशयेष्वाम संशयः । रासनापूतिकनामैतत्तैलमात्रेयनिर्मितम् ॥ १३ ॥

रासनापूतिक तैल—दशमूल की दसो ओषधियाँ पृथक् २, वरिआरा, देवदारु, असगन्ध, शतावरि, वस्त्रा (वस्त्र वृक्ष), एरण्डमूल, निर्णुणी, गनियार की छाल, सहिजन की छाल, अङ्गोल के फूल, सद्धर (पियावासा), चित्रकमूल, करज की जड़ तथा अङ्गोल की जड़, पुनर्नवा, भूषील (अखरोट), अर्कपुण्डी (सूर्यमुखी), जवासा, जीवन्ती, कुचला, एरण्ड, जटामांसी, सहिजन, मदार, जव, वैर, कुल्थी इन सबको समान भाग लेवे । ये सब मिलकर जितने हो सके

समान मात्रा में रासना और इन सबके समान पूत्रिक (करज) एकत्र कर विधिपूर्वक सोलह गुणे जल में अष्टमांशविशेष काथ बना कर छान लेवे। इस काथ में चतुर्थीश गूच्छित तिल का तेल और वाथ के समान बकरी का दूध मिलावे और इसमें शुद्ध गुग्गुल, तगर, जटामांसी, पीपरि, मरिच, बैंवरा, हर्रा, बहेरा, तेजपात्र, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, कचूर, बाभीरंग, देवदारु, हींग, रासना, वच, कुटकी, पुरुदनपांडी, जेठीमु, चित्रकमूल, फूलपियडु, पिपरामूल, चन्दन, चाव, अजवाइन, लंबंग, चम्पा, कूठ, मजीठ, सोआ, ससों (थेत), जायफर, गन्धतुण (गुलाब कंडा), पुरुदनपांडी, खस, इन सब द्रव्यों को समान भाग में मिलाकर तेल के बृहंश तुल्य लेकर कल्क कर तेल में मिलावे और तेल पाककर अच्छे मुहूर्त और अच्छे नक्षत्र में नये वस्त्र से छानकर रख लेवे। यह तेल पान, लेपन (मर्दन), नस्य, वस्तिकर्म, शिरोवस्त्रित आदि में और धनुर्वात, अन्तरायाम, गृष्मसी, अववाहुक, आक्षेपक, व्रणायाम, विशाची, अपतन्त्रक, आद्यवात, हनुस्तम्भ, शिरोवात, अपतानक भौंह, शशदेश, कर्ण, नासा और नेत्र के स्तम्भ, जिहाम्तम्भ और अववाहुक, कलायखा, पङ्क, सर्वज्ञवात, एकाङ्गवात, अर्दित, पादहर्ष और पक्षायात आदि रोग में उत्तम है। यह तेल ऊस्तम्भ और सुप्रवात (शून्यता) को निश्चित ही नष्ट करता है। यह 'रासनापूत्रिक' नाम का तैल आत्रेय विधि का निर्माण किया हुआ है। १-१३ ॥

प्रत्यतिक्त्वृत्तम्—

निम्बामूनावृष्टपटोलनिदिविधिकानां भागान्वृथगदशपलानिवपचेद्वटेऽपाम् ।
अष्टावसोवितरसेन पुनश्च तेन प्रस्थं घृतस्य विपचेपित्तुभागकलकैः ॥ १ ॥
रासनाविडङ्गसुरद्वारुहग्जोपकुल्याद्विज्ञानागरनिशामिशिवृथ्यकुष्ठैः ।
तेजोवत्सीमिरिच्चवस्कद्वृथ्यकपिरोहिष्यपुष्करव वाकणमूलयुक्तैः ॥ २ ॥
मञ्चिष्ठापाऽतिविषया त्रिवृता यदायां संशुद्धुगुग्गुलगैरपि पञ्चसंख्यैः ।
तरसेवितं घृतमतिप्रबलं समीरं सन्धित्यमज्जगतमप्यपहनित कुष्ठम् ॥ ३ ॥
जाडीघणार्चुंडभगन्दरगण्डमालाजत्रवृथ्वातगच्छुधमगुदोत्थमेहान् ।
यथमार्जुं असनपीनसकासोफहृष्पापद्वुरोगामय विद्विवातरकम् ॥ ४ ॥

प्रत्यतिक्त्वृत्त—नीम की छाल, गुरुचि, अरुसा, पटोलपत्र और छोटी कटेरी प्रत्येक दस २ पल लेकर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल के साथ अष्टमांशविशेष (काथ) बना छानकर इसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ मिलावे और इसमें रासना, बाभीरंग, देवदारु, गजपीपरि, यवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हलदी, सोआ, चव्य, कूठ, तेजबल, मरिच, कुटज, जवाइन, मांसरोहिणी, पुहकरमूल, वच, पीपरामूल, मजीठ, अतीस, त्रिवृता और जवाइन, प्रत्येक दो २ पल ले कल्क बनाकर मिलावे तथा शुद्ध गुग्गुल पांच पल मिलाकर घृत पाक कर सिद्ध होने पर छानकर सेवन करने से यह घृत प्रबल वातरोग तथा सन्धि-अस्थि-मंज्जगतवात, कुष्ठरोग, नाडीव्रण, अर्द्ध, भगन्दर, गण्डमाला, अर्धजवृगतवात, गुलम, गुदा के रोग (गुरुभ्रंश, अशीर्दि), प्रमैह, राजयक्षमा, आस, पीनस, कास, शोथ, हठरोग, पाण्डुरोग, विधि और वातरक इन रोगों को नष्ट करता है। १-४ ॥

अजमोदादिवटी—

अजमोदा कणा वेणुं शतपुष्पाऽग्निनागरम् । मरिचं सैन्धवं दाह भागैकं च पृथक्पृथक् ॥ १ ॥
पञ्चमागा हरीतकयः शुण्ठी च दशभागिका । कृद्वदरोदशाद्वाः स्युः षट्विंशद्गुडभागकाः ॥
गुडपाकैवटीः कृत्वा मात्रा कर्षप्रमाणिका ।

सन्धिवाते प्रदेवं तत्त्वामवाते सुदाहणे सर्ववातं नियच्छति ॥ ३ ॥

अजमोदादिवटी—अजमोदा, पीपर, बामीरंग, सौफ, चित्रकमूल, सोंठ, मरिच, सेन्धानमक, देवदारु, प्रत्येक एक २ भाग, हर्रा ५ भाग, सोंठ और विधारामूल दस-दस भाग और सर्वों का उत्तम चूर्ण बनाकर पुराना गुड २६ भाग लेकर उसको गुडपाक की विधि से पाक कर उसमें चूर्ण मिलाकर एक कर्ष के प्रमाण की बटी बनाकर सेवन करने से सन्धिवात तथा कठिन आमवात में लाभ होता है। तथा इसको वर्णोदक के अनुपान से देने से सब प्रकार के वातरोगों को नष्ट करता है। १-३ ॥

वाते कथिका—

निर्गुण्डी हीध्यकं बहिद्विद्विष्मेषज्ञम् । तक्र काजिङ्कुपकं तद् वातद्वं बहिद्वर्धनम् ॥ १ ॥

वातरोग में (कढी)—निर्गुण्डी, अजवाइन, चित्रकमूल, हरदी और सोंठ इनको समान भाग लेकर नूर्णकर छाल (मट्ठे) और कांजी में मिला-पकाकर सेवन करने से यह कढी वात को नष्ट करती है तथा अभि को बढ़ाती है। १ ॥

स्वेदलेपनविधिः—

एषण्डाकंक्कमोरटवलातकारित्तोमस्तुही

निर्गुण्डीततलपोटियवस्त्रास्फोताश्चाद्यादिजैः ।

पत्रैः काजिङ्कमूत्रचुक्तसहितैः स्विष्ट्वर्धटस्थैः कृतः ।

स्वेदः क्रुद्धस्मीरणात्वपुर्णां सथः सुखोपादकः ॥ १ ॥

वातरोग में स्वेद-लेप विधि—एरण्ड, मद्दार, करज, अकोल, बरिआरा, गनियार, सोमलता, थूहर, निर्गुण्डी, तल (ताढ़), पोट (चूका), सहिजन, बरुना, आस्फोता (अप राजिता असगन्ध इनके पत्तों को कांजी, गोमूत्र, सिरका आदि में मिलाकर घड़े में रखकर उस घड़े के दीवे अभि जलावे और घड़े का सुख ढककर रखें जब वे द्रव्य पक जायें तब इसके भाप को वातरोगी के शरीर पर लगाने देवे और सम्पूर्ण शरीर कपड़े से ढाक देवे। इस भाप के कारण रोगी के शरीर का स्वेद निकल कर कुद्रवात से पीड़ित शरीर वाला रोगी भी शीघ्र सुख का अनुभव करता है। अर्थात् इस स्वेद से वातरोग नष्ट होता है। १ ॥

निर्गुण्ड्या चोपनाहं च सकर्जैः सपित्तजैः । भेजैः सेकलेपादि रथभिषेकादिकं चरेत् ॥ २ ॥

निर्गुण्डी और करज के पत्तों तथा पित्तकारक ओषधियों को गरम कर पुलिस बंधने से, लेप करने से (पीसकर), इनको औटाकर सिचन तथा स्नानादि करने से वातरोग नष्ट होता है। २ ॥

शतपुष्पसुरद्विनेशपथो गदरामठसिन्धुभवं हरति ।

अपि लेपनसोऽस्थिगतं भर्तु कटिसन्धिभवं विद्विनास्तततम् ॥ ३ ॥

सौफ, देवदारु, मदार का दूध, कूठ, हींग और सेन्धानमक इनका कल्क बनाकर अन्तर लेप करने से अस्थिगत, कटि-सन्धिगत वात ३ दिन में नष्ट होते हैं। ३ ॥

महाशालवण्योगः शाङ्खरात्—

कुलध्यमाघोधमेरतसीतिलसर्वैः । शतपुष्पादेवद्राक्षोकालीस्थूलजीरकैः ॥ १ ॥

एषण्डविष्मूलैश्च रासनामूलं शिग्रमिः । मिशिकृण्डाकुटेरेश लवणैरस्त्वंयुतैः ॥ २ ॥

प्रसारण्यस्थान्धार्यां वलाभिर्दशमूलैः । गुह्यस्या वानरीबीजैर्यथालाभं समाहृतैः ॥ ३ ॥

दुष्णैः रिवक्षेष्वद्वेष्ण धृतैः संस्वेदयेत्तरम् । महाशालवण्यसंज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्तिजित् ॥

महाशालवण्योग—कुलधी, उद्धर, गेहूं, तीसी, तिल, ससों, सौफ, देवदारु, नीले कूल

वाली सम्भाल, करजीरी, परण्डमूल, बिल्मूल, रासनामूल, सहिजन की जड़, सौफ, पीपरि, काली बन तुलसी, पांचो नमक और अम्ल अर्थात् कांजी आदि में मिलाकर और गवधप्रसारिणी, असगन्ध, बरिआरा, दशमूल के दसों दब्बे, गुरुचि, केवाच के बीज, ये सब जहाँ तक प्राप्त हो सकें लेकर कूट पीस कर (कांजी आदि में मिलाकर) कलककर गरमकर पोटली बनाकर गरम २ रुद्रे देवे तो यह 'महाशाल्वण' नामक योग सब प्रकार के बात रोगों को नष्ट करता है। (जिस ३ स्थान पर बात की पीड़ा हो वहाँ २ इस पोटली को गरम करके छुमावे) ॥ १-४ ॥

गुजाफललेपः—

तत्त्वयित्वा शुरेणाङ्गं केवलानिलपीडनम् । तत्र प्रदेहं दद्याच्च पिष्ठा गुञ्जाफलैः कृतम् ॥ १ ॥
तेनावाहुजा पीडा विश्वाची गृहसी तथा । अन्याऽपि वातजा पीडा प्रशमं व्यति वेगतः ॥ २ ॥
गुञ्जाफल लेप—केवल बात से पीड़ित अङ्ग को छुरे से पाल कर उसमें गुञ्जा के फलों की पीस कर लेप करने से अवबाहुक रोग की पीड़ा, विश्वाची, गृहसी तथा अन्य भी वातजनित पीड़ा शीघ्र शान्त हो जाती है ॥ १-२ ॥

वातदा पोटली योगसारात्—

पुज्ञागैरण्डनिग्दैवैकुलधनदृष्ट्वान्नारिकेलैः करस्ते:
कार्पातैः शिशुडोलाफलसुनिषणकैः सर्वपाङ्कुलवीजैः ।
रासनाकुष्ठैः कुलथेस्तिललृगुनवच्छाहिङ्कुसिद्धार्थविष्वैः
सर्वैः स्त्रैहैः कृतं तत्सकलपट्टुयुतं पोटलं वातभक्षिः ॥ १ ॥

वातदा पोटली (पुन्नामादि पोटली)—पुज्ञाग युध (कमल), परण्ड, नीम, मौलेसरी, पारुल वृक्ष, नारियल, करज, कपास, सहिजन, डोलाफल, चाझीरी (अम्लोनी), ससां, अङ्गोल के बीज, रासना, कूठ, कुलधी, तिल, लहसुन, वच, हींग, श्वेतससां, सोंठि, इनको पीसकर नमक मिलाकर स्नेह (छृत, तेल-मज्जादि) में मिलाकर विधिवद् पोटली बनाकर इस पोटली को बात से पीड़ित अङ्गों पर फेरने से वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शार्ङ्गवराहाशुनकल्कः—

पक्षकन्दरसोनस्य गुलिका निश्तुषोकृताः । पातयित्वा च मध्यस्थं दूरीकृत्यत्वद्वृक्तम् ॥ १ ॥
तदुग्रगन्धनाशाय राश्रौ तक्रे विनिविषेत् । अपनीय च तन्मध्याचिछुलायां वेष्ये ततः ॥ २ ॥
तन्मध्ये पञ्चमांशेन चूर्णमेयो विनिविषेत् । सौवर्चलं यवानी च भर्जितं हिङ्कु सैन्धवम् ॥ ३ ॥
कटुत्रिकं जीरकं च समभागानि चूर्णयेत् । एकीकृत्य ततः सर्वं कक्षकं कर्षप्रमाणतः ॥ ४ ॥
खादेदश्चिलायेही अतुदोषाद्यपेत्याय । अनुपानं ततः कुर्यादेणवश्वतमन्वहम् ॥ ५ ॥
सर्वाङ्गिकाङ्गं वातमवितं चापतन्त्रकम् । अपसमाहं तथोन्मादमूहस्तभं च गृहसीम् ॥ ६ ॥

वरः पृष्ठकटीपार्शवकुद्धिपीडाकृमीज्येत् ।

लशुनकल्क—उत्तम परिपक्व लहसुन के कन्द को लेकर उसका छिलका उतार कर उसके मध्य के अङ्गों को निकाल कर अलग कर देवे और उसकी पुतियों को स्वच्छ कर उसकी तीव्र गन्ध को नष्ट करने के लिये रातमर तक में छोड़ देवे और प्रातः निकाल कर जल से भलीभाँति खोकर स्वच्छ कर शिला पर पीस देवे, पश्चात् उसमें जितना लहसुन हो उसके पंचमाश (यदि लहसुन ५ तो १० हो तो १२ तो १५) आगे कहे जाने वाले मिलित सौवर्चल नमक, अजवाइन, धी में भुजी हुई हींग, सेन्धानमक, सोंठि, पीपरि, मरिच, जीरा, इनके समान माग से मिलित चूर्ण उपर्युक्त लहसुन में, मिलाकर विधिवद् कलक बना लेवे। इसको एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से सेवन कर परण्डमूल के क्वाथ का नित्य अनुपान करे तो इस कलक को सेवन करने से

सर्वाङ्गवात, एकाङ्ग वात, अर्दित, अपतन्त्रक, अपस्मार, उन्माद, उत्स्तम्भ, गृहसी, उर्पीडा, पृष्ठ-कटि-पार्श्व और कुशिं की पीड़ा, तथा कृमि को नष्ट करता है ॥ ३-६३ ॥

अजीर्णमातपं रोष तस्मीरं पथो शुद्धम् ॥ ७ ॥

रसो नमश्नन्पुरुषस्य जेदेतश्चिन्तरम् ।

लहसुन सेवन में पथ्यापथ्य—लहसुन सेवन करने वाला मनुष्य यत्न ऐसा करे कि इसे अजीर्ण नहीं होने पावे, तथा धूप, कोष, गर्म जल, दूध और शुद्ध इन सब को निरन्तर त्याग देवे अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ७-७३ ॥

मध्य भासं तथाग्नं च इस सेवेत नित्यशः ॥ ८ ॥

और मध्य, मांस, अम्लरस वाले पदार्थ इनको लहसुन सेवन करने वाला नित्य सेवन करे अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ ८ ॥

अन्यच—

यद्यः कष्ठको रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः । वातरोगाक्षयेत्तीवान् विषमज्वरनाशानः ॥ १ ॥

लहसुन कल्क की दूसरी विधि—उपर्युक्त शोधन विधि से शुद्ध लहसुन के विधिवद् कल्क को तिल के तेल से मिश्रित कर सेवन करने से तीव्र वातरोगों को और विषमज्वर को नष्ट करता है ॥ ४-४३ ॥

एरण्डपाकः—

वातारिवीजप्रस्थं तु सुपक्वं निस्तुषीकृतम् । शोरद्रोणार्धसंयुक्तं भिषण्डमन्दाग्निना पचेत् ॥ १ ॥

घृतप्रस्थार्धसुक्वपक्वं स्त्रण्डप्रस्थदूयं लिपेत् । व्युष्णं स्त्रत्तुषार्तिं ग्रन्थिकं वह्निच्छयकम् ॥ २ ॥

छत्रा मिश्रिः शटी विश्वद्वीप्यो जीरे निशांशिगम । अम्बगन्धा बला पाठा हुपुषा वेष्युपुष्करम् ॥ ३ ॥

शद्धारास्त्रवादारुवेष्युभ्यामाऽल्लुकावरी । एतानि पितॄमात्राणि चूर्णितानि विनिषिपेत् ॥ ४ ॥

वातार्द्यार्धिं शुलं च शोफं वृद्धिं तथोदरम् ।

आनाह अस्तित्वशुलमामधातं कटिग्रहम् । कल्पयन् हुन्तुष्टभं नाशयेदपि योगतः ॥ ५ ॥

एरण्डपाक—एरण्ड से सुपक्व बीज छिलका निकाल कर १ प्रस्थ, दूध आधा द्रोण (८ प्रस्थ) में मिला कर मन्द २ अंगि पर पाक करे जब दूध का खोआ हो जावे तब उसमें आधा प्रस्थ छृत मिला कर उसे भली भाँति भून ले । और उसमें दो प्रस्थ खांड (शकरा) पिलावे और उसमें सोंठि, पीपरि, मरिच, इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, पिरामूल, चित्रकमूल, चब्य, सोधा, सौफ, कच्चर, बेल की छाल, अजवाइन, जीरा, कृष्णजीरा, हरदी, दारदरदी, असगन्ध, बरिआरा, पुरेनपाढी, हाऊवेर, बामीरंग, उक्करमूल, गोखरू, कूठ, अवरा, हरी, बहेरा, देवदारु, बेलरी (काला विधारा), बामा (बवूर की छाल), आलुका (पलुवा), शतावरि इन सब ओषधियों को दो २ तो ० लेकर उत्तम चूर्णकर उपर्युक्त पाक में मिला कर रख लेवे । इस एरण्ड पाक के सेवन से वातव्याधि, शूल, शोथ, वृद्धि, उदररोग, आनाद, बस्तिशूल, आमवात, कटिग्रह, और हनुमतम आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

अथ रसाः

शार्ङ्गवरात्स्वच्छन्दमैरवरसः—

यद्यसूतं सृतं लोहं ताप्यं गन्धं च तालकम् । पद्याग्निमन्थनिर्गुण्डीव्युष्णं टङ्कं विषमः ॥ १ ॥

तुष्ण्यांशं मद्ययेष्वस्वे दिनं निर्गुण्डिकाद्वैः । सुण्डीद्रावैर्दिनैकं तु द्विगुञ्जं वटकीकृतम् ॥ २ ॥

भक्षयेष्वात्रोगान्तो नाभ्ना स्वच्छन्दमैरवरसः ।

रासनामृतादेवदारुष्ट्वान्नावातरिजं श्रतम् । सहुगुलुः पिवेत्कोणमनुपानं सुखावहम् ॥ ३ ॥

स्वच्छन्दमैरवरस—शुद्ध पारद, लौहमस्म, स्वर्णमालिक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, हरी की छाल, गनियार की छाल, सोंठि, पीपरि, मरिच, शुद्ध घृण, शुद्ध

मीठा विष इन सब ओषधियों के चूर्ण को समान (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अन्यान्य ओषधियों को भी एकत्र मिला मर्दन कर एक दिन निरुण्डी के स्वरस के साथ फिर दूसरे दिन मुण्डी के स्वरस के साथ मर्दन करे पश्चात् दो रक्ती के प्रमाण की बटी बनाकर वात के रोगों को सेवन करावे। इसका नाम 'स्वच्छान्दमैरव' है। इसके साथ रासा, गुरुचि, देवदाह, सौठि और परण्डमूल का काथ बनाकर उसमें शुद्ध गुणगुण का प्रक्षेप देकर शृतोण पान करने को देना चाहिये। इससे सम्पूर्ण वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

समीरपत्रगः—

अभ्रगन्धविषद्योपरसवृक्षान्समांशकान् । आवयेत्समधा वृक्षरसेन्व स्यारसमीरहा ॥ १ ॥
आद्रद्वेषग वलो वा खण्डद्वयोषेण योजितः । महावाताज्ययथाशु नासाध्मातः सुखञ्जकृत् ॥

समीरपत्रग रस—अभ्रकभस्म, शुद्धगन्धक, शुद्ध मीठा विष, सौठि, मरिच, पीपरि, शुद्धपारद, शुद्ध टक्का, इन सब ओषधियों के चूर्ण को समान लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर पश्चात् अन्य द्रव्यों को भी एकत्र मर्दन कर भृक्तराज (भांगरे) के रस से सात बार भावित करे। सेवन से यह रस, वात को नष्ट करने वाला है। और एक वल (डेढ़ या दो रक्ती) के प्रमाण की मात्रा से यदि अद्रक के रस, खांड और व्योष (विकटु) के समान चिलिंग चूर्ण के साथ इस रस का सेवन कराया जावे तो महावात रोगों को शीघ्र नष्ट करता है तथा इस रसको अचैतन्य अवस्था में नासिका में धमन किया जाव (नस्य दिया जावे) तो चेतनाकारक है ॥ १-२ ॥

वातविध्वंसनो रसः—

रसं गन्धकं च लोहं तथा ताङ्गं व्योम निश्चन्द्रकं च ।
कजा टक्कणं व्युषणं नागरं वै पृथग्भागमेकं विमलैकथामस् ॥ १ ॥
ततो वत्सनाभं चतुःसार्धभागं दृढं मद्येज्जावना व्योषजाद्विः ।
वराचिक्रकीमीर्क्वैः कुष्ठजाञ्जिञ्चिभिर्भवयेष्विरुद्धीभानुदृधैः ॥ २ ॥
महीषाग्रिकाचन्द्रकानिरुद्धीरैः समं भावयेद्वातविध्वंसनोऽथम् ।
समीरे च शूले महश्लेष्मरोगे ग्रहणयो तथा सञ्चिपातेऽस्तिलेपि ।
ज्ञिथाः सूतिकावातरोगेषु इथाञ्जिष्यवेत् गुज्जाङ्गचं सूतमेनम् ॥ ६ ॥

वातविध्वंसन रस—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, शीदाभस्म, वंगभस्म, लोहभस्म, ताप्रभस्म, निश्चन्द्र अभ्रकभस्म, पीपरि का चूर्ण, शुद्धटक्का, मीठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण, सौठि का चूर्ण, प्रत्येक एक २ भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर फिर अन्य द्रव्यों को भी एकत्र कर एक पहर तक मर्दन करे। पश्चात् इसमें शुद्ध वत्सनाम विष साढ़े चार भाग मिलाकर भलीभाँति मर्दनकर व्योष (विकटु) के काथ, विफला के काथ, चित्रकमूल के काथ, भागरे के स्वरस, दूठ के काथ, निरुण्डी के काथ, गदार के दूध, युंद औंवले के स्वरस, बड़ी इलायची के काथ, नीबू के रस से कमशः पुथक् २ तीन-तीन बार भावित कर दो गुज्जा के प्रमाण की बटी बनाकर इस 'वातविध्वंसनरस' को वातरोग, शूल, महाकफरोग, ग्रहणी, सभी प्रकार के सञ्चिपातरोग, जिथों के सूतिका रोग तथा समस्त वातरोगों में देना चाहिये ॥ १-३ ॥

वातराक्षसरसः—

सूतं सूतं तथा गन्धं कान्तं चाग्रकमेव च । ताप्रभस्मकृतं सम्यद्मर्दयित्वा समांशकम् ॥ १ ॥
उननवंगुह्यमिसुरसाव्युषणं तथा । एतेषां स्वरसेनैव भावयेत्विदिनं पुथक् ॥ २ ॥
दधा लघुपुटं सम्यक्स्वाक्षीरीं समुद्धरेत् । वातराक्षसनामाऽयं वातरोगे प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥
सत्तद्वोगानुपानेन द्विगुज्जामात्रसेवनात् । उद्धस्तम्भे वातरके गाम्रभङ्गे तथैव च ॥ ४ ॥

आमवातं धनुर्वातं वेदनावातमेव च । पद्मावातं कठपवातं सर्वसन्दिग्धतं तथा ॥ ५ ॥
सुसिद्धातं च शूलं च उन्मादं च विजाशयेत् । तत्तद्वोगानुपानेन वाताज्ञीतिविनाशकः ॥ ६ ॥

वातराक्षसरस—पारदभस्म अथवा रससिन्दूर, शुद्धगन्धक, क्षम्बलौहमस्म, अभ्रकभस्म, ताप्रभस्म, प्रत्येक समान भाग लेकर एकत्र मर्दनकर पुनर्नवा के स्वरस, गुरुचि के स्वरस, चित्रक, भूल के स्वरस वा काथ, तुलसीके पत्ते के स्वरस और विकटु के भिन्नतत्त्व काथ से पुथक् २ तीन २ दिन तक भावित कर पुटपाक की विधि से सम्पुट में रख कर लघुपुट देवे और स्वांगशीत होने पर निकाल मर्दन कर रख लेवे। यह 'वातराक्षस' नामक रस वातरोग में प्रयोग करे। इसको जैसे वातरोग हीं उनके अनुपान से दो गुज्जा के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से अग्रस्तम्, वातरक, गाम्रभङ्ग, आमवात, धनुर्वात, वेदनावात, पक्षावात, कम्पवात, सर्वसन्दिग्धत वात, सुसिद्धात (शून्यता), शूल और उन्मादरोग को एवं अस्ती प्रकार के वात रोगों को अनुपान गेद से नष्ट करता है ॥ २-६ ॥

धनुर्वातं सूतिकाभरणरसः—

सुवर्णं रजतं ताङ्गं प्रवालं पारदं समस्म । गन्धकं चाग्रकं तालं जिला विकटु रोहिणी ॥ ३ ॥
तानि समभागानि रविष्वीरेण मर्दयेत् । चित्रमूलकण्ठायेण उन्नर्वाद्वरसेन च ॥ ४ ॥
यिनं गजपुटे पाष्यं मूषार्या धारयेत् पृथक् । अनुपानविषेषेण देवं गुज्जाधर्षं च तत् ॥ ५ ॥

सूतिकारोगमतुलं धनुर्वातं विजेषतः ।

विदोषोरथान्दहे द्वायाधीनिष्कापथं प्रक्षापयेत् । सूतिकाभरणं नाम सर्वरोगहरं परम् ॥ ६ ॥

धनुर्वातं में सूतिकाभरणरस—स्वर्णभस्म, रजतभस्म, ताप्रभस्म, प्रवालभस्म, शुद्धपारद, शुद्धटक्का, अभ्रकभस्म, शुद्धहरताल, शुद्धमैनसिल, सौठि, पीपरि, मरिच, कुटकी इनका चूर्णी समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर फिर अन्य द्रव्यों को मिला मर्दन कर गलारे के दूध, चित्रकमूल की कषाय, पुनर्नवा के रस के साथ पुथक् २ एक २ दिन भावना दे पुटपाक की विधि से गजपुट में रखे एक पुट देवे अर्थात् फूंक देवे, स्वांगशीत होने पर निकाल कर शीशी में रख लेवे। इस रस को अनुपान विजेष से आधी रक्ती के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से भयंकर सूतिकारोग और विशेषकर धनुर्वात तथा विदोषज रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन में रोगी की अच्छा के अनुकूल पथ्य देना चाहिये। यह 'सूतिकाभरण' नाम का रस सब रोगों को नाश करने में उत्तम है अर्थात् सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

वातरोगे प्रतापाग्निकुमारे रसः—

पारदं शुद्धवजं भस्म विषं मिचिनागरम् । विशारं पञ्चलवणमेभिर्मर्द्याद्रक्षद्वैः ॥ १ ॥
काच्चवृक्ष्यन्तरे विषवा मृद्वा संलेपयेद्विषः । शनैर्मृद्वज्जिना पार्व्यं बालुकायन्त्रके दिनम् ॥ २ ॥
स्वाक्षर्षीतलमुद्धृत्य दशांशं च विषं चिपेत् । सूचमूर्च्छं कृतं ख्वये गुज्जामात्रं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥
सञ्चिपातात्रिहन्त्याशु आर्द्रकद्रवसंयुतः । प्रतापाग्निकुमारोऽर्थं सर्ववातहरः पदः ॥ ४ ॥

प्रतापाग्निकुमाररस—पारदभस्म या रससिन्दूर, ताप्रभस्म, शुद्धमौठा विष, मरिच का चूर्ण, सौठि का चूर्ण, सजीखार, यवाखार, शुद्धटक्का, पांचों नमक पुथक् २ प्रत्येक एक २ भाग लेकर अद्रक के रस के साथ मर्दन कर, आतसी शीशी में रख कर बाहर से विधिवत् कपरमिट्टी कर बालुकायन्त्र में रख कर धीरे २ मन्द अद्वि से दिन भर पाक करे और स्वांगशीत होने पर निकाल मर्दन कर उसमें शुद्ध विष का सूक्ष्मचूर्ण जितना रस हो उसके दशांश मिला कर मर्दन कर एक गुज्जा के प्रमाण की मात्रा में सेवन करना चाहिये। अद्रक के रस के साथ सेवन करने से सञ्चिपात को शीघ्र नष्ट करता है। यह 'प्रतापाग्निकुमाररस' सब प्रकार के वातरोगों को नष्ट करने में उत्तम है ॥ १-४ ॥

प्रसूतवाते लक्ष्मीनारायणरसः—

शुद्धगन्धकमेतच्च टक्कणं विषहिकुलम् । रोहिण्यतिविषाकृष्णावस्तकाभक्षसेन्द्रव्यम् ॥ १ ॥
प्रतानि समभागानि स्वाद्यमध्ये विनिष्पेत् । कृष्णीद्रावैः फलाद्रावैर्मर्दयेष्व द्विनव्रयम् ॥ २ ॥
वज्ञाद्यां वर्दी कृत्वा आद्रकस्य जलैर्देत् । दोषवरे सज्जिषाते विसूच्यां विमषज्वरे ॥ ३ ॥
अतिसारे प्राह्ण्यां च रक्तामे मेहशूलजित् । सूर्तिकावातदोषद्वनो लक्ष्मेशमिक्ष राघवः ॥ ४ ॥
इष्टां भोजयेत्पथ्यमध्यक्षं स्नानमाचरेत् । कर्पूरमित्राभ्वूलं प्रसूनं हरिष्वन्दनम् ॥ ५ ॥
नारिकेलोदकं पीत्वा नारीणां सङ्गमेष्व च । लक्ष्मीनारायणो नाम रसानामुक्तमो रसः ॥ ६ ॥

प्रसूतवात में लक्ष्मीनारायणरस—शुद्धगन्धक, शुद्धटक्कण, शुद्धमीठा विष, शुद्धहिकुल, कुट्टी का चूर्ण, अतीस, पीपरि, कुट्टजत्वक् अथवा इन्द्रव्यव, अब्रकभस्म, सेन्द्रानमक प्रयेक समान भाग लेकर खरल में मर्दन कर दन्तीमूल के स्वरस और त्रिफला के काथ में पृथक् तीन दिन मर्दन कर दो बछ (३ रत्ती) के प्रयाण की बटी बना अद्रक के रस के अनुपान से सेवन करने से एक-दोषज उत्तर, सत्रिपातजज्वर, विसूचिका, अतीसार, ग्रहणी, रक्त-आमातिसार, प्रमेह तथा शूल की नष्ट करता है । सूर्तिका रोग तथा वातरोग को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार लड्डेश (रावण) को रामवन्द्र । इसके सेवन करने के समय पथ्य में विच्छित पदार्थ भोजन करना चाहिये, तैल-मर्दन तथा स्नान करना चाहिये, कपूर यित्रित पान खाना, सुगन्धित फूल तथा पीला चन्दन आदि धारण करना और नारियल का जल पीना, स्त्रीप्रसंग करना चाहिये इसके सेवन के समय कुछ वज्र्य नहीं है । यह 'लक्ष्मीनारायण' नाम का रस सब रसों में उत्तम रस है ॥ १-६ ॥

पथ्यापथ्यम्—

कुलथसाषणोध्मा रक्ताभासः शालयो हिताः । पटोलं शिशु वार्ताकं द्वाढिसं च पृथक्षम् ॥ १ ॥
मर्त्यपिण्डका चृतं पूर्वं किलाटं दधिकूचिका । बद्रं लघुनं द्राचा ताम्बूलं लवणं तथा ॥ २ ॥
चटकः कुकुटो वर्दी तितिरश्चेति जाङ्गलाः । शिलीन्द्रः पर्वतो नक्तो गर्गरः खुदिशो द्वाषः ॥
यथाश्रयं यथावस्थं यथाचरणमेव च । वातव्याद्यो समुत्पत्ते पथ्यमेतन्नुणां भवेत् ॥ ३ ॥

पथ्य—कुलथी, उरद, गेहूं, लाल शालि चावल, परवा, सहिजन, वैगन, अनार, फालसा, मिश्री, धी, दूध, सोआ, दूध, फाड़ कर बनाया छेना, वैर, लहसुन, द्राक्षा, पान, नमक, चटक (गवरैया), सुर्गा, मोर, तीतर, जांगल जीवों का मांस, सिंधी मछली, पर्वत (मर्त्य विशेष), नाक, गर्गर (गरई), खुदिश नाम की मछली तथा ज्वाष मर्त्य इन सब को स्थान, रोगी की अवस्था, दोष-गतिविधि आदि का विचार कर पथ्य में प्रयोग करे । ये सब वात के कारण उत्पत्त व्याधि में मनुष्यों के लिये पथ्य हैं ॥ १-४ ॥

विन्ताप्रजागरणवेगविधारणानि द्विः श्रमोदनशनता चणकाः कलायाः ।
श्यामाकचूर्णकृशविन्दनविनारककुमुदास्तदागतटिनीसलिलं करीरम् ॥ ५ ॥
जौद्रं कचायकटुतिरक्तसा द्यवायो हृष्टव्ययानमपि चक्रमणं च खट्वा ।
आध्मानिनोर्दितवतोऽपि तुनविषेवात्सनानं प्रदुषसलिलेद्विजवर्षणं च ॥ ६ ॥

निःशेषतन्त्रपरिकीर्तिः पृथ वर्दी नूरां समीरणगदेषु मुदं न इच्छे ॥ ७ ॥

अपथ्य—चिन्ता करना, जागना, मल-मूत्रादिक के वेग को धारण करना (अवरोध करना), वमन, अधिक परिश्रम, उपवास, चना, केराव, सांवा का चूर्ण (आटा), कुसमाष (बुधुरी), नीवार-धान्य, कड्डी, मूंगा, तालाव तथा नदी का जल, करीर का फल, मधु, कषाय-कटु तथा तिक्तरस वाले पदार्थ को सेवन करना, मैथुन, दाथी-घोड़े आदि की सवारी, अमण, खाट पर सोना और

विशेष कर आध्मान तथा अदित वात के रोगी का दूषित जल में स्नान, दतुअन करना, ये सभी आयुर्वेद शास्त्र में लिखित उपर्युक्त वर्ग मनुष्यों को वातरोग में नहीं देना चाहिये । अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ७ ॥

वातरोगस्त्वसाध्योऽयं दैवयोगात्सुसिध्यति । अनुमानेन कृचनित वैद्यकं न प्रतिज्ञया ॥ ८ ॥

वातरोग की दैवात् साध्यता—यह वातव्याधि प्रायः वसाध्य ही होती है, दैव-संयोग से कभी २ साध्य हो जाता है । इसकी चिकित्सा वैद्य अनुमान से ही करते हैं प्रतिज्ञा करके नहीं ॥

अथ वातरक्तनिदानम्

कृतं तावरसमासेन वातव्याधिनिरूपणम् । वातव्याधिप्रसङ्गेन वातरक्तं निरूप्यते ॥ १ ॥

वातरक्त निदान—यन्व्यकार का कहना है कि संक्षेप में वातव्याधि का वर्णन कर दिया । इसी वातव्याधि के प्रसंग में ही वातरक्तरोग का वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

लवणाग्नालकटुष्ठारसिनश्चेणाजीर्णभोजनैः । कृजसूष्टकाम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ २ ॥
कुलरथमाषनिरूपावशाकादिपललेभुभिः । इध्यारानालसौवीरयुक्तक्षसुरासवैः ॥ ३ ॥

विश्वदायशनकोषधिवास्वप्नप्रशारायैः ।

प्रायगः सुकुमाराणां विष्याहारविहारिणाम् । स्थूलानां सुखिनां चापि प्रकृत्येष्वात्तशोणितम् ॥

लवण, अम्ल, कदु, क्षार, रिन्धन, उष्ण आदि पदार्थों के अतिसेवन, जीर्णी में भोजन करने आदि से तथा गले अथवा सूखे हुए, जल में उत्पन्न होनेवाले वा आनूप देश के जीवों के मांस, तिल की खली आदि तथा अधिक मूली खाने से, कुलशी-उरद-सेम, पर्ते वाले शाक, सुख्क मास, ईख, दही, कांजी सौवीर, सिरका, तक, मध वा आसव अधिक सेवन एवं विरुद्ध भोजन, अध्यशन, क्रोध, दिवानिद्रा, रात्रिजागरण आदि के अधिक करने से प्रायः करके विष्या आहार-विहार (प्रतिकूल आचरण) करने वाले तथा अतिसुक्ष्मार, अतिस्थूल और जो निरन्तर सुखपूर्वक बैठे ही रहने वाले हैं उन लोगों का वातरक्त कुपित होता है ॥ २-४ ॥

तस्य सम्प्राप्तिमाद—

हस्तयोद्गैर्गद्वृतोऽप्येष्वायुः कोपं प्राप्तः कारणैः सेवितैः स्वैः ।

तीच्छोणाण्णाल्लैः श्वारशाकादिमोज्यैः सन्तापाद्यैर्गूर्यसा सेवितैः ॥ १ ॥

प्रोप्त्रं रक्तं दुष्टिमायाति तस्य वायोसर्वां संरुणदद्याश्च जाताः ।

कद्वृतोऽप्यर्थं मत्तांशोधास वायुरुत्पुरिकं दूषयेद्वक्तमाशु ॥ २ ॥

वातरक्त की सम्प्राप्ति—हाथी, बोडा तथा ऊंट आदि की अतिसवारी करने से अथवा अन्य प्रकार (रथादि) की सवारी पर अति चढ़ने से, अपने प्रकोपक कारणों से कोप को प्राप्त हुआ (दूषित) वायु, तथा तीक्ष्ण-उष्ण-अम्ल-क्षार तथा शाकादिके भोजन करने से तथा अधिक ताप के सेवन से रक्त शीत्र दूषित होता है और वह शीत्रता के साथ वायु के मार्ग को रोकता है । जिससे अपने कारणों से कुपित हुई वायु गति के अवरोध होने से अत्यन्त कुद्र होकर कुपित रक्त को शीत्र दूषित करती है ॥ १-२ ॥

कृत्यनं रक्तं निर्देहयाशु दुष्टं द्यस्तं शीत्रं पादयोश्चीयते तु ।

तस्यस्थूक्तं वायुना दूषितेन तप्तप्रावृत्यादुष्यते वातरक्तम् ।

तद्विपत्तं दूषितेनाध्याऽक्तं श्वेषमा दुष्टो दूषितेनाध्याऽक्तः ॥ ३ ॥

इस प्रकार वायु से दूषित हुआ वह रक्त सम्पूर्ण श्वेर के दूषित रक्त को जला देता है तब स्थान से च्युत हुआ वह रक्त पैरों में एकत्रित होता है । वह रक्त (दूषित रक्त) जब दूषित वायु

के साथ होने से अधिक दूषित होकर प्रवलता को धारण करता है तब उसे वातरक्त कहते हैं। इसी प्रकार उस दूषित रक्त से मिलाकर पित्त और त्वेष्मा भी दूषित हो जाता है ॥ ३ ॥

कुद्धो शूद्धगतिर्भवप्रकुपितेनाद्योग सन्दूष्यते
प्राप्तपादौ तदनु प्रधावति अतुः कण्डवातिसुप्त्यादयः ।
जायन्ते करपादसन्धिषु सुहृवीताञ्चमेतत्कके
क्रद्धे दोषवदादिक्षेत्यु विषवरकृतस्तन अतुर्धावति ॥ ४ ॥

कुपित हुआ तथा अवरुद्ध मार्ग वाला होता हुआ वायु कुपित रक्त से मिलकर प्रथम पैरों को दूषित करता है फिर शरीर की ओर दौड़ता है, जिससे कण्डू, पीड़ा तथा प्रसुति (शूद्धता) आदि हाथ-पैर की सन्धियों में उत्पन्न हो जाते हैं। यही वातरक्त कुपित कक के साथ मिल कर दूषित विष की भाँति सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है ॥ ४ ॥

रपश्चौद्विष्टा तोदभेदप्रवाषप्रवाषपोपेतौ वातरक्तने पाइ ।

पित्तासुप्त्यासुग्रदाहौ भवेतामस्यर्थोणौ रक्तशोधौ मृदू च ॥ ५ ॥

वातरक्त के कारण पैरों को स्पर्श करने में उद्दिष्टता (विकलता), तोद, भेद, प्रशोष और शूद्धता आदि होती है। यदि पित्त तथा रक्त से युक्त वात हो अर्थात् वातरक्त रोग में पित्त की प्रधानता हो तो पैरों में अत्यन्त दाह होता है, उसमें उष्णता अधिक होती है, थोड़ा रक्त वर्ण का तथा कोमल शोथ होता है ॥ ५ ॥

कण्डूमन्तौ श्वेतशीतौ सशोकौ पीचस्तकधौ श्लेष्ममुद्धृते च रक्त ।

सर्वेदुर्द्वे शोणिते चापि दोषाः स्वं स्वं रूपं पादयोदर्शं यन्ति ॥ ६ ॥

यदि कक से युक्त होकर रक्त दूषित हुआ हो अर्थात् वातरक्त में यदि कक की प्रधानता हो तो पैरों में कण्डू, तथा शोथ खेत वर्ण का, शीतल, भोटा और स्तन्ध दोष होता है। और यदि सब दोष (तीनों दोष) रक्त के साथ कुपित हुए हों तो पैर में अपने सभी रूप (लक्षण) को दिखाते हैं अर्थात् सबके मिलित लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

तस्य पूर्वरूपमाह—

स्वेदोऽस्यर्थं न च कार्यं स्पर्शाङ्गत्वं चतेऽतरुक् । सन्धिशैयिश्यमाकस्यं सदनं पिटिकोद्रुमः ॥
जानुज्ञोदक्तव्यसहस्तपादाङ्गसन्धिष्ठु । निश्चोदः स्फुरणं भेदो गुह्यत्वं सुप्तिरेव च ॥ ७ ॥

काढः सन्धिष्ठु लवदाहो भूख्वा नश्यति चासकृत् । वैष्णव्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्षूर्वलच्छन्म ॥

वातरक्त का पूर्वरूप—वातरक्त जब होने को होता है तब उसके पहले स्वेद अत्यन्त होता है अथवा स्वेद एकदम नहीं होता है, कृष्ण वर्ण के चकते होते हैं, स्पृश्य का ज्ञान नहीं होता है (प्रसुति होती है), ब्रण होता है और उसमें पीड़ा अधिक होती है, सन्धियां शिथिल हो जाती हैं, आलस्य होता है, अङ्ग शिथिल हो जाते हैं और पिटिकायें उत्पन्न हो जाती हैं, तथा जानु, जङ्घा, ऊर, कटि, स्कन्ध, हाथ, पैर और अङ्गों की सन्धियों में सूई जुभाने के समान पीड़ा होती है, फड़कन होता है, शरीर टूटने के समान पीड़ा होती है, शरीर भारी रहता है और प्रसुति होती है, कण्डू, सन्धियों में पीड़ा, दाह आदि का होना और फिर स्वयं नष्ट हो जाना, विवर्णता, शरीर पर मण्डल (चक्रों) का होना आदि ये सब लक्षण होते हैं। अर्थात् ये सब लक्षण वातरक्त के पूर्वरूप हैं ॥ ७-३ ॥

दोषान्तरसंसर्वेण कारणमाह, तत्र वाताधिकलक्षणम्—

वाताधिकेऽधिकं तत्र शुलस्फुरणतोदनम् । शोथस्य रौथयकृष्णत्वश्यावतावृद्धिहानयः ॥ १ ॥
धमन्यज्ञुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपश्यौ स्तम्भवेषपथुसुस्पयः ॥ २ ॥

वाताधिक वातरक्त के लक्षण—जिस वातरक्त में बात दोष की अधिकता होती है उसमें शूल, स्फुरण, तोद, शोथ और शोथ का रुक्ष, कृष्ण तथा धूसर वर्ण का होना तथा शोथ का घटते-बढ़ते रहता यह सब होता है और नाड़ियों और अङ्गुलियों की सन्धियों में संकोच होना, अङ्गों का जकड़ जाना, अधिक पीड़ा और शीत से द्वेष होना तथा शीत से रोग का बढ़ना, स्तम्भ, कम्पन और प्रसुति (शूद्धता) होना आदि लक्षण होते हैं ॥ १-२ ॥

रक्ताधिकलक्षणमाह—

एके शोथोऽतिरुक्तोदस्ताग्रभिमिच्चायते । इत्यश्वरुहैः शामं नैति कण्डूलेदसमन्वितः ॥ १ ॥

रक्ताधिक वातरक्त के लक्षण—जिस वातरक्त में रक्त दोष की अधिकता होती है उसमें शोथ, अति पीड़ा और तोद होता है, वर्ण उसका तांत्र के सदृश होता है, चिमचिमाइट होती है, स्नेह शुक्त तथा रुक्ष उपचार से शान्ति नहीं होती है और कण्डू तथा आद्रता होती है ॥ १ ॥

पित्ताधिकमाह—

पित्ते विदाहः स्वमोहः श्वेदो भूर्ज्ञा मदस्तुषा ।

स्पर्शासहरत्वं लवदाहः शोथपाको शूद्धोष्ट्यता ॥ १ ॥

पित्ताधिक वातरक्त के लक्षण—जिस वातरक्त में पित्त दोष की अधिकता होती है उसमें विदाह, मोह, स्वेद, सूच्छा, मद तथा रुक्ष होती है, एवं रोगी को स्पृशने नहीं सहा जाता है, पीड़ा, दाह, शोथ का पाक तथा अत्यन्त उष्णता होती है ॥ १ ॥

कफाधिकमाह—

कफे रसेभित्यगुरुतासुलिपिग्वरवशीतताः ।

कफाधिक वातरक्त के लक्षण—जिस वातरक्त में कफ दोष की अधिकता होती है उसमें अंगों में आद्रता, गुरुता (भारीपन), प्रसुति (शूद्धता), चिमचिमा और शीतलता होती है।

द्रवद्विदेवलक्षणम्—

कण्डूमन्द्या च लवद्वन्द्व सर्वलिङ्गं च सङ्करे ॥ १ ॥

द्रवद्वन्द्व तथा चिदेवज वातरक्त के लक्षण—जिस वातरक्त में दो दोषों की अधिकता होती है उसमें मन्द २ कण्डू होती है तथा दो दोषों वाले लक्षण रहते हैं । तथा जिसमें तीनों दोषों की अधिकता होती है उसमें तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

वाद्ययोर्मूलमास्थाय कदाचिद्वस्त्रयोरिषि । आलोचिष्यमिव कुद्धं तददेहमनुसर्ति ॥ २ ॥

हाथ-पैर में उत्पन्न होने पर इसकी उपेक्षा करने से अन्य स्थानों में भी बढ़ता है, इस पर वचन—वातरक्त रोग कभी २ पैर के मूल भाग में अथवा हाथ की अङ्गुलियों में उत्पन्न होकर उपेक्षा करने से कुछ चूहे के विष की भाँति सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है ॥ २ ॥

एतस्यैवासाध्याय्यत्वमाह—

आजानु स्फुरितं यज्ञं प्रभिलं प्रसुतं च यत् ।

उपद्रवैश्च यज्ञुं प्राणमोसन्धायादिभिः । वातरक्तमसाध्यं स्याद्यायं संवत्सरोयितम् ॥ ३ ॥

वातरक्त की असाध्यता तथा याध्यता—जो वातरक्त पैरों से केकर जानुपर्यन्त फूट गया हो, तथा फूटे हुए में से रक्त-पूर्य आदि वह रहा हो और बल-मांस आदि के क्षयसम्बन्धी उपद्रवों से युक्त हो वह वातरक्त असाध्य है। तथा जो वातरक्त संवत्सर (एक वर्ष) के अन्दर का हो और जिसमें रक्तोदादि नहीं हुआ हो वह याध्य है ॥ ३ ॥

तस्योपद्रवानाह—

अस्वप्नाराश्चक्षासमांसकोथशिरोग्रहाः । सम्पूर्ज्ञामदरुषतृष्णाऽवरमोहप्रलेपकाः ॥ ३ ॥

कोकिलादिः—

कोकिलाज्ञासूताकाथं पिबेत्कोषणं यथावलम् । पथ्यमोजी त्रिसप्तसहान्मुच्यते वातशोणितात् ॥
कोकिलादि क्वाथ—तालमखाना तथा गुरुचि को समान लेकर क्वाथ का किञ्चित् उष्ण ही वल के अनुसार पान करने से पथ्य मोजन करने से तीन सप्ताह में वातरक्त रोग से मुक्ति होती है ॥ १ ॥

लघुमजिष्ठादिः—

मञ्जिष्ठात्रिफला तिर्का वचा दासनिशाऽमृता ।
निर्मदश्वैर्वां कृतः क्षाथो वातरक्तविनाशनः । पामाकाषालिकाकुष्टरक्तमण्डलजिभमतः ॥ ३ ॥

लघुमजिष्ठादि काथ—मजीठ, अवरा, हर्रा, बहेरा, कुटकी, बच, दालहरदी, गुरुचि और नीम की छाल, इनको समान लेकर क्वाथ कर सेवन करने से वातरक्त रोग नष्ट होता है । और यह पामा, कपालिका, कुष्ट, रक्तमण्डल इन रोगों को भी नष्ट करता है ॥ ३ ॥

द्वृहन्मजिष्ठादिः—

मञ्जिष्ठामुस्तकुटज्ञगुह्यचीकुष्टनाथरैः । मार्क्खिजुद्रावचानिर्मदनिशाद्यफलश्रिकैः ॥ ३ ॥
पटोलकटुकामूर्वाबिडङ्गासनचित्रकैः । शतावरीत्रायमाणाकृष्णन्द्रवद्वासकैः ॥ २ ॥
न्तुर्ग्राजमहादार्पणाठासद्विद्यन्दनेः । त्रिवृद्धरुणकैरतावाकुचीकृतमालकैः ॥ ३ ॥
शाखोटकमहानिर्मदकरज्ञातिविषाज्ञालैः । इन्द्रद्वाहिणिकानन्तासारिष्वापर्पंतैः समः ॥ ४ ॥
एभिः कृतं पिबेत्काथं कणागुणगुलसंयुतम् । अष्टादशसु कुष्टेषु वातरक्तादिते तथा ॥ ५ ॥
उपदंशे श्लीपदे च प्रसुसी पष्वधातके । मेषेदोषे नेत्ररोगे मञ्जिष्ठादिः प्रशस्यते ॥ ६ ॥

द्वृहत् मञ्जिष्ठादि काथ—मजीठ, नागरमोथा, कुटजत्वक, गुरुचि, कूठ, सौंठि, बमनेठी, छोटी कटेठी, बच, नीम की छाल, हरदी, दालहरदी, अवरा, हर्रा, बहेरा, पटोलपत्र, कुटकी, मूर्वा, बामीरंग, असम, चित्रकमूल, शतावरी, त्रायमाणा, पीपरि, इन्द्रजी, अहसा, अंगरा, देवदार, पुरइनपाढ़ी, खैर, रक्तचन्दन, चित्रता, वरणा, चित्रता, बकुची, अमलतास, सिहोरा, बकाइन, करज्ज, अतीस, सुगन्धबाला, माहरि, अनन्तमूल, सरिवा, पित्तपापडा, प्रत्येक समान, आग लेकर विधिवत् क्वाथ बना कर उसमें पीपरि के चूर्ण तथा शुद्ध गुणगुल का प्रक्षेप देकर पान करने से अठारहो प्रकार के कुष्ट, वातरक्त, अर्दित, उपदंश, श्लीपद, प्रसुसी (शून्य वात), पक्षाधात, मेद दोष और नेत्र रोग इन रोगों को मञ्जिष्ठादि काथ नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

अथ गुणगुलः

तत्र प्रथमतः कैशोरगुणगुलः—

त्रिफलायाद्यः प्रस्थाः प्रस्थकमसृता भवेत् । संबुद्ध लोहपात्रे तु सार्धद्वोणागुणुना पचेत् ॥ १ ॥
जलमध्ये शृतं ज्ञात्वा गुह्योत्तायाद्यग्नालितम् । ततः काथे विषेच्छुद्वं गुणगुलं प्रस्थसंमितम् ॥ २ ॥
युनः पचेदयस्पात्रे दद्व्या संबृद्धेन्मुहुः । सान्दीभूतं च तं ज्ञात्वा गुणपाकसमाकृतिम् ॥ ३ ॥
चूर्णीकृत्य ततस्तत्र दद्व्यापीमानि निशिपेत् । त्रिफला द्विपला शेया गुह्यची पलिका मता ॥
चढ़स्वं शूषणं प्रोक्तं विडङ्गं च पलार्धकम् । दन्ती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्तृता ॥ ५ ॥
ततः पिण्डीकृतं सर्वं चृतभापात्रे विनिविपेत् । गुटिका: शाणिका: कृत्वा युक्त्यादेषाद्यपेच्यात् ॥
कैशोरगुणगुलः—अवरा, हर्रा, बहेरा, गुरुचि प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेकर सर्वों को कुट कर डेढ़ द्रोण (२४ प्रस्थ) जल के साथ लोहे के पात्र में पाक करे जब जल आधा जल जाय, तब उतार कर छान लेवे । इस क्वाथ में शुद्ध गुणगुल १ प्रस्थ मिला कर लोहे के पात्र में रख कर पाक करे

और बार २ करचुल से चलाता रहे जब गुडपाक के समान घना हो जाय तब उसमें वक्ष्यमाप त्रिफला दो पल, गुरुचि एक पल, त्रिकुटा कर्ष, बामीरंग आधा पल, दन्ती एक कर्ष, त्रिवृता एक कर्ष, इन सब द्रव्यों के उत्तम इलृक्षण चूर्ण परिपक्व गुणगुल में मिला कर पिण्ड के समान कर के धूत से चिकने पात्र में रख देवे । इसकी एक शाण के प्रमाण की वटी बना कर दोष-बल आदि के अनुसार विचार कर सेवन करना चाहिये ॥ १-६ ॥

अनुपानं भिषजद्व्याकृष्णं नीरं पथोऽथवा । मञ्जिष्ठादिशृतं बांधि युक्तियुक्तमतः परम् ॥ ७ ॥

इसके साथ अनुपान कोण जल अथवा धूत वा मञ्जिष्ठादि क्वाथ अथवा अन्य कोई युक्तियुक्त (आवश्यकतानुसार) क्वाथ देना चाहिये ॥ ७ ॥

ज्येष्ठसर्वाणि कुष्टानि वातरक्तं त्रिवृतेजम् । सर्ववाणां गुणमांश्च प्रमेहपिटकात्तथा ॥ ८ ॥

प्रमेहोदरमन्दाप्तिकासश्वयथुपाणुताः । हन्ति सर्वाण्याभित्यमुपयुक्तो रसायनः ॥ ९ ॥

इसके नित्य सेवन से सभी प्रकार के कुष्ट, त्रिवृतेज वातरक्त, सभी प्रकार के व्रण, सभी प्रकार के गुलम, प्रमेहपिटका, प्रमेह, उदर रोग, मन्दायि, कास, शोथ, पाण्डु रोग तथा सभी रोग नष्ट होते हैं और यह रसायन है ॥ ८-९ ॥

कैशोरकाभिधानोदयं गुणगुलः कानितकारकः । बासादिना नेत्रगदान्गुरुसमादीन्वयणादिना ॥

क्राथेन स्विदिशस्यापि व्रणान्कुष्टान्विनवनाशयेद् ।

अलं तीच्छमजीर्णं च व्यवायं श्रममापत्तम् । मध्यं रोधं स्यजेस्यम्भुणार्थं पुरसेवकः ॥ ११ ॥

यह कैशोर नाम का गुणगुल कानितकारक है और बासादि क्वाथ के अनुपान से नेत्ररोगों को, वरणादि क्वाथ से गुलम आदि रोगों को और खैर के क्वाथ से व्रण तथा कुष्ट रोगों को नष्ट करता है । गुणगुल सेवन करने वाले के लिये वर्ज्य वर्ज्य पदार्थ—अम्ल द्रव्य, तीक्ष्ण द्रव्य, अजीर्ण, मैयुन, परिश्रम, आतप, मद, क्रोध यह सब भलीभाँति गुणगुल का गुण चाहने वाला गुणगुल सेवी त्याग देवे ॥ १०-११ ॥

अमृतागुणगुलवृत्तात्—

प्रस्थमेकं गुह्यच्याश्च सार्धप्रस्थं तु गुणगुलोः । प्रस्थेकं त्रिफलायाश्च तथ्यमाणं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥
सर्वमेकत्र संचित्य काथयेषांस्येऽभसि । पाद्येष्व परिकाथ्य क्वायं प्राहयेऽस्त्रिष्ठक् ॥ २ ॥

अमृतागुणगुल—गुरुचि एक प्रस्थ, गुणगुल उत्तम डेढ़ प्रस्थ, त्रिफला सम मिलित डेढ़ प्रस्थ इन सबको कूट कर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्थशावशेष क्वाथ कर उतार-चान लेवे ॥ १-२ ॥

पुनः पचेत्क्वायं तु आवरसान्द्रव्यमान्जन्यात् । दन्तीव्योविडङ्गानि गुह्यचीत्रिफलात्क्वचः ॥ ३ ॥

ततश्चार्धपूर्णं पूर्णं गुह्यीयाद्वा प्रति प्रति । कर्षं तु त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ४ ॥

तस्मिन्सुसिद्धं विज्ञाय कीर्णं पात्रे विनिच्छिपेत् । ततश्चानिवलं हृष्टा तस्य माणां प्रयोजयेत् ॥
वातरक्तं तथा कुष्टं गुदज्ञानविनादन्यम् । दुष्टव्यां प्रमेहं च आमवातभगवन्दरान् ॥ ६ ॥

खाज्ञायाक्यशातान्द्रव्ययथुन्सर्वान्वादान्व्यपोहिति ।

अशिवभ्यां निर्मितं पूर्वमसृतायाश्च गुणगुलः ॥ ७ ॥

फिर इसी क्वाथ को एकाते २ जब गुडपाक की भाँति गढ़ा हो जाय तब इसमें दन्तीत्रुल, सौंठि, पीपरि, मरिच, बामीरंग, गुरुचि, अवरा, हर्रा, बहेरा, दालचीनी इन द्रव्यों का उत्तम चूर्ण वृत्तक् २ आधा २ दल और त्रिवृता का चूर्ण एक कर्ष लेकर जब तक गुणगुल कुछ गरम रहे तभी तक में मिला देवे और पात्र में रख देवे । पश्चात् रोगी को अधिवलानुसार उपस्थिति भगवन्दर, में प्रयोग कराने से यह वातरक्त, कुष्ट, अर्द्ध, मन्दायि, दुष्ट व्याप, प्रमेह, आमवात, भगवन्दर,

योगरत्नाकरः

खाज्यवात्, अध्यवात्, शोथ तथा सभी प्रकार के वातरोगों को नष्ट करता है। इस 'अमृत-गुणुल' को अधिनीकुमारों ने पहले पहल निर्मित किया था ॥ ३-७ ॥

अथ तैलानि

लघुमरिचाद्य तैलम्—मरिचालशिलार्कपयःफलिनीविषसुष्टिविषामरनिउबधनैः।

कुटजं स चतुर्गुणगोदम्बुद्धृतं किल तैलमसूक्ष्मवनपहरम् ॥ १ ॥

लघुमरिचाद्य तैल—मरिच, हरताल, मैनसिल, मदार का दूध, करिआरी की जड़, कुचिला, मीठविष, देवदारु, नीम, नागर मोथा, कुटजत्वक प्रत्येक एक २ भाग लेकर कल्प कर कल्प से चौगुना, मूर्च्छित सरसों का तेल और तेल के चौगुना गाय का भूत्र मिला कर तेल सिद्ध कर उतार-छान कर सेवन करने से यह वातरक्त को नष्ट करता है ॥ १ ॥

बृहन्मरिचाद्य तैलम्—

मरिचं त्रिवृता दन्तो चीरमाकं शकृदसः। देवदारु हरिद्रेद्वे मांसी कुष्ठं सच्चन्दनम् ॥ १ ॥
विशाला करवारं च हरितालं मनःशिला। चित्रकं लाङ्गूली चापि विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ २ ॥
शिरीशं कुटबो निभः सपुष्णाऽमृता रुही। शम्पाको नक्षमालश्च खदिरः पिपली वचा ॥
उयोतिष्मती च पलिका विषस्य हिपलं मतम्। आढ़कं कुटुंतेलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥

मृतपात्रे लोहपात्रे वा शनेर्घृद्विनना पचेत् ।

एतत्तेलं विशेषण नाशयेत्कुष्ठज्ञान्मनान्। वातरक्तभवान्द्याधीन्पामाविस्कोटचर्चिकाः ॥ ४ ॥

बृहन्मरिचाद्य तैल—मरिच, त्रिवृता, दन्तो, मदार का दूध, गोबर का रस, देवदारु, हरिदी, दारहरदी, जटामांसी, कूठ, लालचन्दन, गाहरी की जड़, दरताल, मैनसिल, चित्रकमूल, करिआरी मूळ, बामीरंग, चक्रवड, शिरिप की छाल, कोरया की छाल, नीम की छाल, छितवन की छाल, गुरुचि, शूहर, अमलतास की छाल, छोटी अमलतास की छाल, खेर की छाल, पीपरि, वच और मालकांगनी प्रत्येक एक २ पल और मीठा विष दो पल लेकर कल्प कर, मूर्च्छित सरसों का तेल एक आढ़क और गोमूत्र चार आढ़क लेकर सबको एकत्र कर मिही के पात्र में अथवा लोहे के पात्र में मन्द २ अभि पर पाप कर उतार-छान कर रख ले। यह तेल विशेष करके कुष्ठ ब्रण को नष्ट करता है। तथा वातरक्त से उत्पन्न रोग, पामारोग, विस्कोटक तथा विचिंचिका इन रोगों को भी नष्ट करता है ॥ ४-५ ॥

पिण्डतैलं शार्क्षधरात्—

मसिद्धासारिवासर्जयद्युसिक्षयैः पलोन्मितैः। पिण्डाल्यं साधयेत्तैलमस्यङ्गाद्वातरक्तनुर् ॥ १ ॥

पिण्डतैल, मजीठ, सारिवा, राल, जेठीमधु, मोम प्रत्येक एक २ पल ले कल्प कर ले, पश्चात् मूर्च्छित कुटतैल २० पल और पाकार्थ जल ८० पल मिला कर मन्द २ अभि पर तेल सिद्ध कर सेवन करने से (अम्बज से) वातरक्त नष्ट होता है। इस तेल में तेल के स्थान पर कई आचार्य एवं डैव तेल का प्रयोग करते हैं और दूध भी देते हैं। तथा कई का मत जल देने का नहीं है। और तेल के पाप होने पर कल्प का रूप मोम के कारण पिण्ड जैसा हो जाता है। इसी से इसे 'पिण्डतैल' कहते हैं ॥ १ ॥

बृन्दासारिवादितैलम्—

सारिवासर्जयद्युसिक्षयैः पलोन्मितैः। सिद्धमेरण्डजं तैलमस्यङ्गाद्वातरक्तनुर् ॥ १ ॥

सारिवादि तैल—अनन्तमूल, राल, जेठी मधु, मोम इनको एक २ पल लेकर कल्प कर मूर्च्छित एरण्ड तैल कल्प से चतुर्गुण लेकर तेल सिद्ध कर अम्बज करने से वातरक्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

वातरक्तचिकित्सा

पद्मकादितैलम्—

पद्मकोद्धीरथष्ट्याहरजनीकायसाधितम्। स्वातिष्ठैः सर्जमसिद्धावीदाकाकोक्षिचन्दनैः ॥

पद्मकादि तैल—पद्मकाठ, खस, जेठीमधु, हरदी समान लेकर काथ कर, क्रांति का चतुर्थीश मूर्च्छित कुट तैल और तैल के चतुर्थीश राल, मजीठ, शतावरि, काकोली, लालचन्दन इन द्रव्यों का समान मिलित कल्प किलाकर सबको एकत्र कर विधिवद तैल सिद्ध कर सेवन करने से यह पद्मकादि तैल वातरक्त तथा दाह को नष्ट करता है ॥ १ ॥

बुद्धच्यादितैलम्—

बुद्धच्याकाथकलकाभ्यां तैलं लालारसेन वा। सिद्धं मधुककाशमर्यरसे वा वातरक्तनुर् ॥ १ ॥

बुद्धच्यादि तैल—१ गुरुचि के काथ तथा गुरुचि के ही कल्प के साथ अथवा—२ लाल के रस के साथ गुरुचि का कल्प अथवा—३ मुलहठी और गम्भार के रस के साथ गुरुचि का कल्प और कुटतैल विधिवैक सिद्ध कर इन तीनों में से किसी के भी सेवन से वातरक्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

बृन्दाच्छताहादितैलम्—

शताह्या च कुष्ठेन मधुकेन नवेन वा। एकैकं साधितं तैलं वातरक्तरुजापहम् ॥ १ ॥

शताह्यादि तैल—१ सौफ के काथ तथा कल्प के साथ,—२ कूट के काथ तथा कल्प के साथ,—३ मुलहठी के काथ तथा कल्प के साथ अथवा—४ रक्त पुनर्नवा के काथ तथा कल्प के साथ कुटतैल विधिपूर्वक सिद्ध कर सेवन करने से वातरक्त की पीड़ा नष्ट होती है। (इन तेलों में केवल काथ तथा केवल कल्प के से अलग २ भी तेल सिद्ध किये जाते हैं) ॥ १ ॥

अथ धृतानि

शार्क्षरादमृताद्य धृतम्—

अमृताकाथकलकाभ्यां सक्षीरं विपचेद धृतम्। वातरक्तं जयस्याशु कुष्ठं जयति दुश्तरम् ॥ १ ॥

अमृतादि धृत—गुरुचि के काथ तथा कल्प से दूध सहित धृत को विधिवद पाप कर सेवन करने से वातरक्त तथा कठिन कुर्झरोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

सारसंयदान्महातिक्तं धृतम्—

भूनिड्बाम्बुद्धमध्यवस्तककणाशायन्त्रन्तामृता-

तिक्काभौरुक्षलत्रिक्रपतिविशामूर्च्छिविशालाजलैः।

पादापर्पटसारिवाद्यनिवायुर्यष्टिकापदकैः—सोक्षीरः सपटोलचन्दनवचाशाम्पाकससच्छुदः ॥

हृथेभिर्गदीर्जलाशुगुणितैः प्रस्थं पचेत्सपिषो

गव्यस्याऽस्मलकीरसद्विगुणितं नाभ्ना हि तिक्तं धृतम् ।

हृस्त्येतद्वलशग्नमण्डलरुजं कण्डूं सपाण्डवामयां

शोफश्लीपदवातरक्तविकृतीः कुष्ठानि चाषाददश ॥ २ ॥

महातिक्त धृत—चिरता, नीम की छाल, कुटजत्वक्, पीपरि, आचार्या, अनन्तमूल, गुरुचि, कुटकी, शतावरि, अवरा, हर्दी, वहेरा, अतीस, मूर्च्छमूल, माहरि, सुगन्ध-बाला, पुराइनपाढ़ी, पित्तपाढ़ा, सारिवा, कृष्णसारिवा, हरदी, दारहरदी, जेठीमधु, पदुमकाठ, खस, परवर के पचे, लालचन्दन, वच, अमलतास तथा छितवन की छाल प्रत्येक सम भाग (एक २ भाग) लेकर अथगुने जल के साथ चतुर्थीशावशेष काथ कर उतार लेवे जो कि प्रस्तुत होने पर चार प्रस्थ रहे, इसमें मूर्च्छित गोधृत एक प्रस्थ और अँखें का स्वरस दो प्रस्थ लेकर

प्रथम काथ के साथ धृत पाक करे धृत मात्र शेष रहे तब आँवले का स्वरस देकर पुनः धृत पूर्ववत् सिद्ध कर उत्तर-छान कर रख लेवे । इसका नाम 'तित्तधृत' है । इसके हृवन से गलगण्ड, मण्डल कुष्ठ की पीड़ा, कण्ड, पाण्डु रोग, शोथ, श्लीपद, वातरक्त के विकार और अठारहो प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शिलाजतुयोगः—

शिलोद्धवाकवायेण सेव्यं शुद्धं शिलाजतु । पञ्चार्थविशुद्धेन वातरक्तप्रशान्तये ॥ १ ॥
शिलाजतु योग—गुरुचि के काथ के साथ शुद्ध गुणगुल का सेवन पञ्च कर्म (वमन-विरेचन-नस्य-निरुद्ध और अनुपान कर्म)—विशुद्ध हुए मनुष्य को कराना चाहिये । इससे वातरक्त की शान्ति होती है ॥ २ ॥

अमृताध्वलेहिका—

अमृताकटुकाशुण्डीयष्टीकलं समाधिकम् । गोमूत्रपीतं जयति सकां वातशोणितम् ॥ १ ॥
अमृतादि अवलेहिका—गुरुचि, कुटकी, सौंठि, मुलहठी इनको समान (एक २ भाग) लेकर कल्क कर मधु मिला कर सेवन कर ऊपर से गोमूत्र का पान करने से यह कफसहित वातरक्त को नष्ट करता है ॥ १ ॥

गुहूचीयोगः—

गुहूचया: स्वरसं कलं चूर्णं वा क्षाथमेव च । प्रभूतकालमासेव्यं मुच्यते वातशोणितात् ॥ १ ॥
गुहूची योग—गुरुचि का स्वरस, गुरुचि का कल्क, गुरुचि का चूर्ण अथवा गुरुचि का काथ बहुत काल तक सेवन करते रहने से वातरक्त से मुक्ति हो जाती है ॥ १ ॥

लेपनं ग्रन्थान्तरात्—

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठादार्थीमधुकचन्दनैः । सितोपलैलासकुमिर्मसुरोशीरपश्चकैः ॥ १ ॥
लेपो रुद्धाहृवीसपरोगशोफनिवारणः । लेप्याः पिण्डास्तिलास्त्वद्वृद्ध वृष्टाः पश्चसि निर्वृताः ॥ २ ॥
लेपन विधि—पुण्डरिया, मजीठ, दारुहरदी, मुलहठी, लालचन्दन, मिश्री, इलायची, जौ के सत्तू, मसूर, खस, पटुमकाठ, इनको जल के साथ भली भाँति पीस कर लेप बना कर लगाने से पीड़ा (वातरक्त की पीड़ा), दाह, विसर्प, राग (ललाई आदि) और शोथ सभी नष्ट होते हैं । और इसी प्रकार तिल को भूज कर दूध के साथ पीत कर लेप बना कर लगाने से उपर्युक्त सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शीरपिण्डमुमालेपमेण्डस्य फलानि च । कुर्याद्भूलनिवृत्यर्थं शताङ्ग्रां वाऽधिकेऽनिले ॥ ३ ॥

दूध के साथ तीसी तथा एण्ड के फलों के निस्तुष्ट बीज को पीस कर लेप बना कर लगाने से वातरक्त का शुल नष्ट होता है । अथवा सौंफ को दूध के साथ पीस कर लेप करने से वाताधिक वातरक्त में लाभ होता है ॥ ३ ॥

मूत्रशीरसुरासिद्धं धृतमध्यज्ञने हितम् । सिद्धं समधुशुक्तं तु सेकाभ्यङ्गे कफोत्तरे ॥ ४ ॥

गोमूत्र, गोदूध और सुरा (मध्य) इनके विधिपूर्वक सिद्ध किये धृत का अभ्यङ्ग करने से वातरक्त में लाभदायक है । और मधु तथा शुक्त (शिरका) के साथ विधिपूर्वक गोमूत्र सिद्ध कर अभ्यङ्ग करने से कफाधिक वातरक्त में लाभ करता है ॥ ४ ॥

गृहधूमवधाकुष्ठशताङ्ग्रामध्यम् । प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते वातकफोत्तरे ॥ ५ ॥

गृहधूम (ज्ञोला), वच, कूठ, सौंफ, हरदी, दारुहरदी, इनको समान लेकर पीस कर लेप लगाने से वातकफ वातरक्त का शुल नष्ट होता है ॥ ५ ॥

उभे शताङ्गे मधुकं विशालां बलां प्रियालां च कसेद्युग्मकम् ।

धृतं विदारीं च सितोपलां च छुर्याद्प्रदेहं पवने सरके ॥ ६ ॥

सौंफ, सोया, जेठी मधु, माहरि, वरियारा, प्रियाला (विरौजी) दोनों प्रकार के कसेल धृत, विदारीकन्द और मिश्री इनको पीस कर वातरक्त रोग में लेप करना चाहिये । इससे वातरक्त नष्ट होता है ॥ ६ ॥

सहस्रशतधौतेन धृतेन लक्षितोत्तरे । लेपनं चोणशीतेन धृतसज्जरसेन वा ॥ ७ ॥

हजार बार अथवा सौ बार का धोया बुधा धृत रक्ताधिक वातरक्त में लेप करने से लाभ होता है । अथवा राल पीस कर धृत में मिला कर उष्ण कर अथवा शीतल हो, लेप करने से लाभ होता है ॥ ७ ॥

आरनालाटके तैलं पादसज्जरसं श्रुतम् । प्रस्थरथे निजिते तोये उवरवाहारित्तुरपरम् ॥ ८ ॥

काँजी एक आडक (चार प्रस्थ), मूर्च्छित कटु तैल-१ प्रस्थ और तैल के चतुर्थांश राल कल्कार्थ देकर विधिवत् तैल सिद्ध कर सेवन करने से उचर तथा दाह से युक्त वातरक्त रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

समधुचिष्ठसमजिष्ठा ससज्जरससारिवा । पिण्डतैलं तथाऽभ्यङ्गाङ्गातरक्तहजापहम् ॥ ९ ॥

मधु का मोम, मजीठ, राल और सारिवा के कल्क के साथ मूर्च्छित कटु तैल सिद्ध कर अभ्यङ्ग (मर्दन) करने से वातरक्त की पीड़ा शमन होती है । यह पिण्ड तैल कहलाता है ॥ ९ ॥

अथ पञ्चामृतरसः:

रसरखप्रदीपात्—

पारदं च कियाधुद्धं तत्त्वयं शुद्धगन्धकम् । अध्रकं तु द्वयोस्तुवयं प्रिमिस्तुवयस्तु गुग्गुः ॥ १ ॥
सर्वांशमसृतासरवं भावयेद्वैष्टः पृथक् । निर्मुण्डीयोङ्गुरचिष्ठाकोकिलाङ्गाङ्गिघर्जे इसैः ॥ २ ॥
ससवारं ततो युज्याङ्गातरक्ते त्रिवल्कम् । कोकिलाङ्गस्य मूलानां पानीयमनुपाययेत् ॥ ३ ॥

पञ्चामृत रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक एक २ भाग, अध्रक भरम २ भाग और शुद्ध गुग्गु चार भाग तथा गुरुचि का सत्तू आठ भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर फिर अन्य ओषधियों को एकत्र मर्दन कर पृथक् २ निर्मुण्डी, गोखर, गुरुचि, मखाने की जड़ इनके स्वरस या काथ के साथ सात २ बार भावित कर ३ वल के प्रमाण (४५ से ९ रत्नी तक) की मात्रा से मखाने की जड़ के स्वरस के अनुपान से सेवन कराना चाहिये । इससे वातरक्त नष्ट होता है ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

यवधिकमीवारकलमालाणकां सुद्रास्तुवर्योऽपि मकुष्ठकाः ॥ १ ॥

अड्यजामहिषीणो च गधामपि पथ्यांसि च । उपेदिका काकमाची वेद्रांश्च सुनिष्पणकम् ॥ २ ॥

घास्तूक कारवेलं च तण्डुलीय पटोलकम् । आश्रीफलं शूलवेरं सूरां शेतकर्करा ॥ ३ ॥

मृद्धीका वृद्धकूरमाण्डं नवनीतं नवं धृतम् । लावतित्तिरवर्तीकत्ताङ्गचूहविकिञ्चिरा ॥ ४ ॥

प्रतुदाः शुक्कदात्यूहकपोतचटकाद्यः । शशाङ्गगुरुदेवाङ्गसरलरनेहमर्दनम् ॥ ५ ॥

तिक्तं च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्तगदे नृणाम् ।

पथ्यापथ्य—जौ, साठी, निवारी, कल्म सामक धान का चावल, लालशाली धान का चावल, गेहूं, चना, मूंग, अरहर, मोठ, भेड़, बकरी, मैस और गाय के दूध, पोई, मकोय, बेत के अद्यमार, चणपत्री, वशुआ, करैली, चौराई, पटोलपत्र, आँवला, अद्रक, सूरनकन्द, मिश्री वा चीनी, मुनक्का, पुराना शेत बूधमाण्ड (भुतुआ), मक्खन, नवीनधृत, लवा (बटेर), तीतर, बतक, कुनकुट (मुग्गी), विषिकर (कपोतादि), प्रतुद (गृदादि) जातीय पक्षी, शुक (तोता), दात्यूह (बड़े

जाति का तोता), कहूतर, गवरैया आदि का मांस, कपूर, अगर, देवदारु, सरलकाठ, स्नेह (ओषधियों द्वारा प्रस्तुत घृत-तैलादि) का मर्दन और कटुरस युक्त पदार्थों का सेवन ये सब वातरक्त वाले मनुष्यों के लिये पश्च कहे गये हैं ॥ १-५३ ॥

दिवास्वप्नाभिसन्तापव्यायामातपमैथुनम् ॥ ६ ॥

माचाः कुलथा निषावाः कलायाः वारसेवनम् । अण्डजानूपमांसनि विरुद्धानि दधीनि च ॥
इषुको मूलक मध्यं ताम्बूलं काञ्जिकं तिलान् ।

कटूषणं गुर्वभिश्यन्दि छवणानि च सक्षवः । एतानि वातरक्तेषु नैव युच्याज्ञिषध्वरः ॥ ८ ॥
दिन में सोना, अधि का ताप, व्यायाम, धूप, मैथुन, उरद, कुलथा, सेम, केराव, क्षार (यवाखार आदि) का सेवन, अण्डज जीवों (मत्स्य, पक्षी आदि) का मांस, आनूप जीवों का मांस, विरुद्ध पदार्थों का भोजन, दही, ईख, मूली, मदिरा, पान, कांजी, तिल, कटु-उषण-गुरु-अभिश्यन्दी तथा लवण रसयुक्त पदार्थों का सेवन और सत्तु, इन सब पदार्थों को वातरक्त में वैद्य नहीं प्रयोग करावे क्योंकि वे अपश्य हैं ॥ ८-८ ॥

अथोरुस्तम्भनिदानमाह—

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुर्दिनधैर्निषेवितैः । जीणांजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षीभस्वप्नजाग्रैः ॥ १ ॥
सक्षेपमेदः पवनः सामग्र्यथर्थसंश्लिष्टम् । अभिभ्येतरं दोषमूरु विद्यप्रतिपद्धते ॥ २ ॥

ऊरुस्तम्भ निदान—कुछ जीर्ण तथा कुछ अजीर्ण अवस्था में, अतिशीतल-उषण-द्रव-शुष्क गुरु और स्नेह युक्त पदार्थों को सेवन करने से, अधिक परिश्रम करने से, मन में क्षोभ होने से, अधिक सोने तथा अधिक जागने आदि इन कारणों से कफ तथा मेद के सहित वायु अत्यन्त सञ्चित और आम युक्त कफ को दूषित करके जंघों में प्राप्त हो जाती है ॥ १-२ ॥

सक्षयस्थीनिं प्रपूर्यान्तिः श्लेष्यमाणं रित्तमिलेन च ।

तदा स्तम्भाति तेनोरु स्तव्यौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥

ऊरुस्तम्भ लक्षण—तब सक्षिकी अस्थियों के अन्दर लिपटे हुये कफ को पूरित कर जंघों को स्तब्ध कर देता है, जिससे स्तब्ध होने पर जंघों शीतल और अचेतन हो जाती हैं अर्थात् अकर्मण हो जाती है ॥ ३ ॥

परकीयाविद्य गुरु स्यातामतिभृत्याद्यौ । व्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छृद्धरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥
संयुतौ पाइसदनकृच्छ्रोदरणसुस्थिभिः । तमूरुस्तम्भमित्याहुराक्षवात्मथापरे ॥ ५ ॥

और वह स्तब्ध होने के कारण दूसरे के पैर के समान ज्ञात होता है और गुरु मालूम होता है तथा पीड़ा अत्यन्त मालूम होती है, रोगी को ध्यान हो जाता है (जिधर देखता है उधर देखता ही रह जाता है), अङ्गमर्द होता है, अङ्ग आद्रे के समान रहता है, रोगी तन्द्रा, वमन, अरुचि और उवर से युक्त हो जाता है, तथा पैरों में अवस्थ्रता होती है, उनका कठिनता से सञ्चालन होता है, शून्यता होती है, इने 'ऊरुस्तम्भ' कहते हैं अथवा कई अन्य आचार्य 'आळ्ववात' भी कहते हैं ॥

प्राप्तं तस्य निदाऽतिथ्यानं स्तिमितता उवरः । रोमहर्षोऽस्तिर्षद्विजङ्गोर्चोः सदनं तथा ॥

ऊरुस्तम्भ का पूर्वरूप—जब ऊरुस्तम्भ होने को होता है तथा उसके पहले अत्यन्त निदा, ध्यान (एकाग्रता), शरीर का आर्द्र वस्त्र से वेष्टित की भाँति रहना, उवर, रोमाङ्ग, अरुचि, वमन, जंघों तथा ऊरुओं में अवस्थ्रता आदि होते हैं ॥ ६ ॥

वातशृङ्खिभिरज्ञानात्तस्य स्याद्स्नेहनात्पुनः । पादयोः सदनं सुषिः कृच्छ्राहुदरणं तथा ॥ ७ ॥
जङ्घोश्लेषानिरत्यर्थं शाश्वत्वादाहवेदुनाः । पदं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पृश्न न वेत्ति च ॥ ८ ॥
संस्थाने पीड़ने गर्थां चलने चाप्यनीक्षाः । अन्यस्येव हि सम्भग्नावृहु पादो च मन्यते ॥ ९ ॥

ऊरुस्तम्भ रोग में वात रोग की शक्ति को अज्ञानवश यदि स्नेहन किया की जाती है तो उससे पैरों में अवस्थ्रता, शून्यता, कष से संचालन, ज्ञात तथा उह में अति गलानि (शिशिलता), निरन्तर दाह, भूमि पर पैर रखने में पीड़ा तथा शीतल पदार्थ का स्पर्श नहीं ज्ञात होना आदि होता है और खड़े होने, दबाने, चलने और हिलाने में असमर्थता होती है तथा अपने पैरों और कुरु को रोगी भन (ढुटा ढुका) तथा दूसरे का हो ऐसा मानता है ॥ ७-९ ॥

ऊरुस्तम्भ च पाद्यां तन्द्रा स्तंभित्यमङ्गलक् । पादस्थोदरणं कृच्छ्रात्ममूरुस्तम्भवादिवेत् ॥

और करुओं में अति पीड़ा, रक्षता, तन्द्रा, अङ्गों में आद्रंता तथा पीड़ा, पैरों के संचालन में कठिनता मालूम होती है । जिस रोग में ये सब लक्षण हों उसे 'ऊरुस्तम्भ' कहते हैं ॥ १० ॥

यदा द्वाहार्तितोद्वार्ते वेपनः पुरुषो भवेत् । ऊरुस्तम्भस्तदा हन्द्यासाध्यवेदन्यथा नवम् ॥ ११ ॥

ऊरुस्तम्भ के साध्यासाध्य लक्षण—जिस ऊरुस्तम्भ रोग में दाह, पीड़ा, सूर्य त्रुभाने के समान कष, कम्पन आदि हो वह ऊरुस्तम्भ रोगी को मार देता है अर्थात् ऊरुस्तम्भ के ये असाध्य लक्षण हैं । और इन लक्षणों से विपरीत अर्थात् इन उपद्रवों से रहित या नवीन ऊरुस्तम्भ रोग हो तो उसकी चिकित्सा करे अर्थात् वह साध्य है ॥ ११ ॥

अथ ऊरुस्तम्भचिकित्सा

स्नेहात्मकावधमनवस्तिकर्मं च रेचनम् । वर्जयेदाळ्यवातेषु तेत्र तस्य विरोधतः ॥ १ ॥

स्नेहकर्म, रक्तमोक्षण, वमन, वरितकर्म और विरेचन कर्म आळ्यवात (ऊरुस्तम्भ) में स्थान देना चाहिये । ये सब कर्म इस रोग के विरुद्ध होते हैं ॥ १ ॥

सस्मादन्त्र सदा कार्यं स्वेदलक्षणरूपम् । आममेव काञ्जिक्यामाहतं परिवर्षता ॥ २ ॥

इसलिये इस रोग में सदा स्वेदकर्म, लहून, रक्ष किया (पथ्यादि) आदि करनी चाहिये तथा कफ की अविकाता से आम और वात की रक्षा करते रहना चाहिये ॥ २ ॥

यस्यात्कफप्रशमनं न च मास्तकोपनम् । तस्यस्वं स्वंद्वा कार्यं सूक्ष्मस्तम्भवद्य भेषणम् ॥ ३ ॥

और जिससे कफ शमन हो और नायु कुपित नहीं हो वह सब सदा ऊरुस्तम्भ का औषध जान कर देना चाहिये ॥ ३ ॥

सर्वोषधक्रमः कार्यं सत्त्राद्वाद्वक्फनाशनः । पश्चाद्वात्सिद्धाशाय कृश्वर्णा कार्यां किया यथा ॥ ४ ॥

इस रोग में पहले कफनाशक औषध-पथ्यादि देना चाहिये । पथ्याद् वातनाशक संपूर्ण किया (औषध-पथ्यादि) करनी चाहिये ॥ ४ ॥

कृच्छ्रात्मकोपयेष्ठिद्वानाशातिसूचकः । इनेहस्वेदकमस्तम्भ कार्यो वातामयापहः ॥ ५ ॥

यदि रुक्ष किया (कफनाशक किया) से पहले वात कुपित होती हो जिससे निद्रानाश आदि की पीड़ा का बोध होता हो तो इस अवस्था में स्नेह तथा स्वेद कर्म आदि करने से वातरोगनाशक कार्य करना चाहिये ॥ ५ ॥

प्रतारयेत्प्रतिज्ञोतो नदीं शीतजलाशयाम् । सरस्वत्याक्षलं शीतं स्थिरतोर्युग्मः पुनः ॥ ६ ॥

शीतल जल वाली नदी में जिधर से उसकी धार आती हो उसी ओर अर्थात् प्रतिकूल रोगी को प्रतारण (तैराना) करना चाहिये अथवा निर्मल शीतल और स्थिर जल वाले सर (तालाव) में वार २ रोगी को तैराना चाहिये ॥ ६ ॥

तथा विशुष्केऽस्य कफे शान्तिमूरुग्नयो अज्जेत् । शरीरं बलमग्नि च कार्येण रक्षता क्रिया ॥ ७ ॥

इस किया से रोगी के कफ सूख जाने पर कुलग्रह (ऊरुस्तम्भ) रोग भी शमन हो जाता है । ये सब क्रियायें रोगी के शरीर वल, अग्नि की रक्षा करते हुए करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अथ काथचूर्णकल्कादि

पुनर्नवादिकवाचः—पुनर्नवानागदाहपृथ्या भक्षातक्षिक्षरहाकवाचः ।

दशाभिमिथः परिवेय ऊरुस्तम्भेऽथवा भूत्पुरुप्रयोगः ॥ १ ॥

पुनर्नवादि काथ—पुनर्नवा, सौठि, दाहरदी, हर्रा, शुद्ध मिलावा, गुरुचि, दशमूल की पृथक् २ दसों ओषधियों इनको समान लेकर काथ कर पान करने से ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होता है । अथवा गोमूत्र के साथ शुद्ध गुणगुण मिलाकर पान करने से ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ १ ॥

अन्थिकादि:—

अन्थिकारुक्कृष्णानां काथं औदान्वितं पिवेत् । व्याध्याभयाभिद्वारुणां करकं वा मधुसंयुतम् ॥

अन्थिकादि काथ—पिपरामूल, शुद्ध मिलावा, पीपरि, इनको समान लेकर विधिवत् काथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अथवा चब्य, हर्रा, चित्रकमूल, दाहरदी इनको समान लेकर विधिवत् कल्क बना कर मधु मिला कर सेवन करने से ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

पिपल्यादि:—

पिपलीं वधमानो वा मधिकेग पुडेन वा । ऊरुस्तम्भे प्रशंसनित गण्डीरारिष्टमेव च ॥ ३ ॥

पिपल्यादियोग—वर्धमान पिपल्योग (३ या ५ आदि पीपल को बढ़ा कर सेवन करने का जो विधान हो तदनुसार) को मधु अथवा युड़ के साथ सेवन करने से अथवा गण्डीरारिष्ट के सेवन से ऊरुस्तम्भ में लाभ होता है ॥ ३ ॥

त्रिफलादिन्चूर्णम्—

त्रिफलाचव्यकटुकाग्रन्थिकं मधुना लिहेत् । ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिवेत् ॥ ३ ॥

त्रिफलादि चूर्ण—अङ्गूरा, हर्रा, बड़ेरा, चब्य, कुट्को, पिपरामूल, प्रयेक समभाग लेकर चूर्ण कर मधु के अनुपान से सेवन करने से ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है, अथवा ऊरुस्तम्भ नष्ट होने के लिये गोमूत्र के साथ शुद्ध गुणगुण सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

शिलाजत्वादियोग:—

शिलाजत्वु गुणगुणं वा पिपलीमध नागरम् । ऊरुस्तम्भे पिवेद्भूत्रैदशमूलीरसेव वा ॥ ३ ॥

शिलाजत्वादियोग—शिलाजीत शुद्ध अथवा शुद्ध गुणगुण अथवा पीपरि का चूर्ण अथवा सौठि का चूर्ण इनमें से किसी एक को गोमूत्र वा दशमूल के काथ के साथ खाने से ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पिपल्यादिकल्क:—

पिपली पिपलीमूलं भक्षातकफलानि च । करकं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भाप्रमुच्यते ॥ ३ ॥

पिपल्यादि कल्क—पीपरि, पिपरामूल, शुद्ध मिलावा इनको समान लेकर कल्क बना मधु मिलाकर पान करने से ऊरुस्तम्भ से मुक्ति होती है ॥ ३ ॥

त्रिफलादियोग:—

त्रिफलाद्वा त्रिफलाचूर्णं औदेण कटुकायुतम् । सुखाभ्युना पिवेद्भूपि चूर्णं चद्वरणं नरः ॥ ४ ॥

त्रिफलादियोग—त्रिफला का चूर्ण पृथक् २ और कुट्को का चूर्ण चारों सम भाग लेकर मधु के साथ सेवन करे अथवा 'चूर्ण चरण' नामक योग को सुखोण जल से सेवन करे तो ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कुषादितैलम्—कुषुं भीदेष्वकोदीच्छं सरलं दाह केशरम् ।

अजगन्धाद्वगन्धा च तैलं तैः सार्वं पचेत् । सौद्रं मात्रया तद्मादूरुस्तम्भादितः पिवेत् ॥

कुषादि तैल—कूठ, श्रीनेष्टक (तारिंग), सुगन्धबाला, सरल काष्ठ, देवदारु, नायकेसर, अजगन्धा (बनजवाइन), असगन्ध इन ओषधियों को सम भाग लेकर उसके चौगुना मूँछित सर्सों का तैल और तैल से चौगुना जल मिलाकर तैल सिढ़ कर उतार-छान कर रख लेवे । इस तैल में मधु का प्रक्षेप देकर रोगी के बलाविन के अनुसार की मात्रा से पान करने से ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अष्टकट्वरतैलम् वृन्दावत्—

पलाभ्यां पिपलीमूलनागरादृष्टकट्वरः । तैलप्रस्थः समो दधना गृध्रस्यूहग्रहापहः ॥ ५ ॥

अष्टकट्वरतैल—पिपरामूल, सौठि, इनका सम भाग मिलित कल्क आधा शराव (एक पाव) और मट्टा २ प्रस्थ, मूँछित सर्सों का तैल एक प्रस्थ और दहां एक प्रस्थ मिलाकर विधिपूर्वक तैल पाक कर उतार-छानकर प्रयोग करने से गृग्रीषी और ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

अष्टकट्वरतैले च तैलं सार्वप्रस्थ्यते । पिपलीमूलनागरयोः प्रत्येकं द्विपलं स्मृतम् ॥ २ ॥

यहाँ पर अष्टकट्वर तैल में तैल सर्सों का कहा गया है और पिपरामूल तथा सौठि दो २ पल लेना कहा है ॥ २ ॥

अथ स्वेदतेपनसेचनानि

सदारमूषस्वेदांश्च रुद्धानस्तेहनानि च । कुर्यादिहेऽच मूत्राण्यैः करञ्जस्तम्भर्ष्यैः ॥ ६ ॥

स्वेद-लेप-सेचन आदि—ऊरुस्तम्भरोग में क्षार मिलाकर गोमूत्र से तथा रुक्ष पदार्थों से त्वेद कर्म करना चाहिये, तथा अस्तेहन (स्तेह रहित) कर्म (क्रिया) करना चाहिये, और करज के फल तथा सर्सों इनको समान लेकर गोमूत्र आदि से पीस कर लेप बना कर लगाना चाहिये ॥ ६ ॥

मूलैर्वार्द्यस्थगन्धाया मूलैरक्षय वा भिषक । पिञ्चमन्दस्य वा मूलैरथवा देवदाहणः ॥ २ ॥

औद्रसर्वप्रबलमीकमृतिकांसंयुतेभिषक । गाढमुखादनं कुर्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम् ॥ ३ ॥

असगन्ध, मदार, नीम, देवदारु, इनमें से किसी एक की जड़ लेकर पीस कर मधु, सर्सों तथा विमवट की गिर्दी इनको मिलाकर गाढ़ा २ उत्सादन तथा लेप ऊरुस्तम्भ रोग में करना चाहिये, इससे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ २-३ ॥

दन्तीद्रवन्ती सुरसामर्षपैश्चातिकुद्धिमान् ।

तर्कारीसुरसामिश्रविश्ववस्तकनिःस्वजैः । प्रयमूलफलैस्तोऽयैः श्रुतमुण्णाम्बुसेचनम् ॥ ४ ॥

दन्ती, छोटी दन्ती, तुलसी और सर्सों इनके पत्ते, मूल और फल को लेकर जल के साथ पाक कर सुखोण रहते उस जल से सिंचन करने से अथवा गनियार, तुलसी, सहिजन, बेल, कुट्ज और नीम के पत्ते, मूल और फल को जल के साथ पाक कर सुखोण रहते उससे सिंचन करने से ऊरुस्तम्भ रोग में लाभ होता है ॥ ४ ॥

गुजागर्भो रसः रसरलसमुच्चयात्—

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगन्धकम् । गुजाबीजं विषं निष्कम्भीजं जया तथा ॥ १ ॥

प्रत्येकं निष्कम्भीजं तु मावं जेपालबीजकम् । जातीजग्बीरघत्तरकामाचीद्वैदिनम् ॥ ३ ॥

मर्द्य सर्वं वर्तीं कुर्याद् घृतैर्गुजादृशं लिहेत् ।

गुजागर्भो रसो नाम हिङ्गसैन्धवसंयुतः । समण्डं दापयेत्प्रथमूरुस्तम्भप्रशान्तये ॥ ३ ॥

गुजागर्भस—शुद्धपारद ३ शाण (१२ मासा), शुद्ध गन्धक १२ शाण, गुजा का बीज, शुद्ध मीठा विष, नीम का बीज, शुद्धभांग प्रत्येक १-२ शाण और जमालगोटे का शुद्धबीज १ मासा लेकर प्रथम पारद—गन्धक की कम्बली बनाकर सब ओषधियों के चूर्णों को पकव कर मदैन कर, चमेली,

जमीरी नीबू, धनुर, मकोय इनके स्वरस के साथ पृथक् २ एक २ दिन मदन कर दो रक्ती के प्रभाग की बटी बनाकर धूत के अनुपान से सेवन करें। इस रस का नाम 'गुजागम्भे रस' है। और शुद्धीकृत तथा सेन्ध्यानग्रह मिला हुआ मंड (मांड) पथ्य में उत्सर्तम्भ के शमन होने के लिए देवे ॥ १-३ ॥

अथ पश्यापश्यम्

रुचः स्वर्विष्ठिः रथेदः कोद्रवा रक्षालयः । यथाः कुलरथाः श्यामाका उहाकाश्च पुरातनाः ॥
सौभाजनं कारवेष्टं पटोलं वासुकं तथा । सुनिषणं काकमाची वेत्रां तप्तवारि च ॥ २ ॥
ज्ञान्वलैरधृतैर्मैसैः शाकश्चालवर्णैहितैः । प्रत्यपथ्यं समुद्धमूर्खतम्भविकारिणाम् ॥ ३ ॥

पश्यापथ्य—उत्सर्तम्भ रोग में सब प्रकार की रुक्ष किया करनी चाहिये, रथेद कराये, कोद्रे, लाल धान के चावल, जौ, कुलथी, सौवाँ, पुराने जड़ली कोदो, सहिजन, करेली, परवर, बथुआ, सुनिषण (चणपती), मकोय, वेत के अध्यभाग का साक, उष्णोदक, धूतरहित जांगल जीवों का मांस और लवणरहित शाकादि हितकर हैं। ये सब उत्सर्तम्भ के विकारों में पथ्य कहे गये हैं ॥ १-३ ॥

गुरुक्षीतद्वद्वस्तिनवधविरुद्धासारथभोजनम् ।

विरेचनं च बमनं स्नेहनं रक्तमोक्षणम् । ब्रह्मितं च न हितं प्राहुरुहस्तम्भविकारिणाम् ॥ ४ ॥

और गुरु, झीतल, द्रव, स्नेहयुक्त पदार्थ, विश्व और असारम्य भोजन, विरेचन, वमन, स्नेहन, रक्तमोक्षण और बस्तिकर्म ये सब उत्सर्तम्भ-विकारों में हितकर नहीं हैं अर्थात् अपथ्य हैं ॥

अथामवातनिदानप्रारम्भः

तस्य निदानपूर्वकसंप्राप्तिमाह—

चिरुद्धाहारचेष्टयं मन्दान्नेर्निश्चलरथं च । इन्द्रधं भुक्षवतो द्वाचं व्यायामं चापि कुर्वतः ॥ १ ॥

बायुना प्रेरितो श्यामः श्लेषमस्थानं प्रधावति । तेनात्यर्थं विद्युधोऽसौ धमनीः प्रतिपथते ॥

बातपितकफैर्भूगो दूषितः सोऽश्वजो रसः । खोतांस्यभिस्यन्दर्शति नानावर्णोऽतिपिण्डिकः ॥

आमवात की निदानपूर्वक सम्प्राप्ति—चिरुद्ध भोजन (प्रकृतिविश्वद, समयविश्वद और संयोगविश्वद) तथा चिरुद्ध चेष्टा (शक्ति से अधिक व्यायाम, मैथुन तथा अन्य कर्म) करने वाले, मन्दाश्विवाले, केवल बैठे रहने वाले (परिश्रमरहित), अधिक स्नेहयुक्त अन्न भोजन करने वाले और व्यायाम करने वाले मनुष्यों का वायु से प्रेरित हुआ आमरस (भोजन का अपरिपक्व रस) कफ के स्थानों (आमाशय, वक्षःस्थल, कण्ठ, मस्तक, सन्धि आदि) में प्राप्त होता है जिससे (कफ से) अत्यन्त विद्युत होकर वह आमरस नाड़ियों में प्राप्त हो जाता है। फिर वहाँ भी वह अन्न का आमरस बात-पित्त और कफ से दूषित होकर अनेक वर्णों वाला तथा पिण्डिल होकर नाड़ियों को अभिस्यन्दित (अवरुद्ध) कर देता है ॥ १-२ ॥

जनयस्यग्निर्दोषस्य द्वृष्टयस्य च गौरवम् । व्याधीनामाश्रयो द्वेष आमसंज्ञोऽतिक्षाहणः ॥ ४ ॥

तब इससे अग्नि की दुर्बलता और हृदय में गौरव होता है। यह आमनामक अतिक्षिन तथा सम्पूर्ण रोगों को आश्रय देने वाला रोग है ॥ ४ ॥

अजीणिश्वरजो जातः क्रमशः सञ्ज्ञितश्च यः । आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्रक्षाकरः ॥ ५ ॥

नहीं पने हुए अन्न से उत्पन्न हुआ रस कम से जब आमाशय में संचित हो जाता है तब वह आम कहा जाता है उससे सिर और शरीर में पीड़ा होती है ॥ ५ ॥

तस्य रूपमाह—

शुगप्तकुपितावेतौ विकसन्धिग्रवेशकौ । स्तंभं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥ १ ॥

आमवातनिदानम्

५६५

आमवात के रूप—आम और वातादि एक साथ कुपित होकर विकसन्धि में प्रवेश करते हैं और शरीर को स्तंभ कर देते हैं उस रोग को 'आमवात' कहते हैं ॥ १ ॥

तस्य लक्षणमाह—

अङ्गमधोऽहविश्वणा द्वालत्यं गौरवं उवाः । अपाकः शूनताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥ १ ॥

आमवात के लक्षण—जिस रोग में अङ्गमधेर, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, गौरव, ऊर, अपाक (अन्न का परिपाक न होना) और अङ्गों में शोथ ये सब हों तो 'आमवात' का लक्षण जानना चाहिये ॥ १ ॥

मन्यापृष्ठकटीजानुत्रिकसन्धीनिवक्षयन् । सशब्दः स्तंभगात्रस्य आमवातः स उच्यते ॥ २ ॥

और जिस रोग में मन्या, पीठ, कटि, जानु तथा विकसन्धि इनको संकुचित करता हुआ, शब्दसहित तथा अंगों को ढीला कर देने वाला लक्षण होता है वह 'आमवात' कहा जाता है ॥ २ ॥
जठरानलदौर्बल्यादविपक्षस्तु यो रसः । स आमसंज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपेनः ॥ ३ ॥

और जठराद्धि की दुर्बलता से जो अपरिपक्व रस रह जाता है वह आमसंज्ञक है अर्थात् 'आम' कहा जाता है। यह आम शरीर में सब दोषों को कुपित करने वाला होता है ॥ ३ ॥

तस्यैवोपद्रवानाह—

स कषः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् । हस्तपादिश्विहोगुरुक्षिकजनूरुतन्धिषु ॥ १ ॥

करोति सरजं शोफं यथा दोषः प्रपथते । स देशो हजतेऽत्यर्थं द्व्याविद्व इव वृक्षिकः ॥ २ ॥

आम के उपद्रव—यह आमवात जब कुपित होता है तब सब रोगों में कष्टदायक (कठिन वा कृच्छ्रसाध्य) होता है। हाथ, पैर, सिर, गुरुक्षि, विक्षि, जानु, ऊर और सञ्चियों में जहाँ यह दोष पहुंच जाता है वहाँ पीड़ासहित, शोथ उत्पन्न कर देता है। वह स्थान (जहाँ प्रवेश कर यह दोष शोथ उत्पन्न किये रहता है) विच्छी के ढंक मारने के समान अत्यन्त पीड़ा करता है ॥

जनयेत्सोऽविनदौर्बल्यं प्रसेकाहस्तिगौरवम् । उत्साहद्वान्ति वैरस्यं द्वाहं च वहुमूत्रताम् ॥ ३ ॥

करोति ग्रहणीदोषं विशेषाशामसन्धूकम् । अपकं चूजते खांसं केवलं चाममेव च ॥ ४ ॥

और इससे अग्नि की दुर्बलता, लालाज्वाव, अरुचि, गुरुता, उत्साह की हीनता, मुखकी विरसता, दाह और बहुमूत्रता होती है तथा विशेषकरके यह आम अद्यांी दोष को उत्पन्न करता है। और अपरिपक्व अन्न के बल आम को ही उत्पन्न करता है ॥ ३-४ ॥

कुहौ कठिनता शूलं तथा निद्राविषयम् ।

सृष्टुद्विभ्यमूर्च्छीय हृदयं विडविवन्धनम् । जाघ्यान्त्रकूजमानाहं कष्टाद्वान्यानुपद्रवान् ॥

और कोख का कठिन होना, शूल, निद्राविषय (कभी नींद लगना कभी नहीं लगना), चूपा, वमन, भ्रम, मूर्छा, हृदयह, मलावरोध, शरीर में जड़ता, अन्त्रकूजन (आंतों में गुड़गुड़ शब्द होना) और आनाह तथा और २ अनेक कष्टदायक उपद्रवों को करता है। अर्थात् ये सब लक्षण आमवात के उपद्रव कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

पित्तादियुक्तस्य विशेषलक्षणमाह—

पित्तादियुक्तस्य विशेषलक्षणमाह । स्तैभित्यं गुरुकण्ठकं कफजुषं तमादिदोष ॥ १ ॥

पित्तादिक से युक्त आमवात के विशेष लक्षण—यदि आमवात में पित्त की अधिकता होती है तो जिस स्थान में आमवात स्थित रहता है उस स्थान में दाह तथा राग (किञ्चित् लाल वर्ण) होता है। यदि आमवात में वायु की अधिकता होती है तो जिस स्थान में आमवात रहता है उस स्थान में शूल होता है। कफ की अधिकता होती है तो उस स्थान में आद्रता (गीके वज्ज-

से लिप्त की भौति), गुरुता और कण्ठ होती है। इस प्रकार (इन लक्षणों) से पित्तज, वातज और कफज जानना चाहिये ॥ १ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

एकदोषात्मा: साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते । सर्वदेहचरः शोथः स कृष्णः साक्षिपातिकः ॥

साध्यासाध्य लक्षण—एक दोष की अधिकता वाला आमवात साध्य होता है, दो दोषों की अधिकता वाला (दन्तज) आमवात याप्य होता है तथा तीनों (साक्षिपातिक) की अधिकता जिस आमवात में हो गयी हो और सम्पूर्ण शरीर में चलने वाला हो, साथ ही शोथ भी हो तो वह आमवात कृष्ण (कष) साध्य होता है ॥ १ ॥

अथामवातचिकित्सा

लहूनं स्वेदनं तिक्कदीपनानि कदूनि च । विरेचनं स्नेहपानं चर्स्तयश्चाममाहते ॥ १ ॥

आमवात की चिकित्सा—आमवात रोग में लहून कर्म, स्वेदन कर्म, तिक्क-दीपन तथा कदु पदार्थों का सेवन, विरेचन कर्म, स्नेहपान और बस्तिकर्म आदि करना लाभदायक है ॥ १ ॥

रुचः स्वेषो विधातयो वालुकापोटलैस्तथा ।

उपनाहाश्च कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ २ ॥

और बाल आदि रुक्ष पदार्थों को पोटली के द्वारा स्वेद कर्म करना चाहिये तथा स्नेहरहित पदार्थों के द्वारा ही उपनाह कर्म करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ काथाः

वृन्दाद्रास्नापञ्चकम्—

रास्नाशुद्धिकैरण्डं देवदारु महीषधम् । पित्तसर्वाङ्गो वाते सामे संध्यस्थिमज्जगे ॥ १ ॥

रास्नादिपञ्चक काथ—रास्ना, गुरुचि, एरण्डमूल, देवदारु तथा सौंठ इनको सम भाग लेकर काथ कर पान करने से सर्वाङ्गवात, आमवात और सन्धि-अस्थि तथा मज्जायत वातरोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

रास्नासपकम्—रास्नाशुतारथवदेवदारुश्चिकण्टकैरण्डपुनर्वानाम् ।

काथं पित्तेषायरचूर्णमिश्रं जड्होपुष्टुष्ट्रिकपार्श्वशूली ॥ १ ॥

रास्नासपक काथ—रास्ना, गुरुचि, अमलतास, देवदारु, गोखरु, एरण्डमूल और पुनर्वान इनको समभाग लेकर काथ कर सौंठ के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से जड्हा, ऊर, पीठ, त्रिक और पार्श्वस्वन्धूशूल सहित आमवात को नष्ट करता है ॥ १ ॥

रास्नादादशकम्—

रास्ना शतावरी वासा गुद्ध्यतिविषाडभया । शुण्ठीदुश्शालमैरण्डदेवदारुवचावनैः ॥ १ ॥

काथः पीतो जयस्थाशु आमवातं सुदारणम् । कर्तव्यस्त्रिकजड्हाऽस्त्रिगुद्धकज्ञानुसमाश्रितम् ॥

रास्नादादशक काथ—रास्ना, शतावरि, अरुसा, गुरुचि, अतीस, हर्द, सौंठ, जवासा, एरण्डमूल, देवदारु, वच, नागरमोथा इन द्रव्यों को सम भाग लेकर काथकर पान करने से कठिन आमवात को शीघ्र नष्ट करता है। और कटि, ऊर, त्रिक, जड्हा, पैर, गुल्फ और जानु इनके आश्रय के बात (इन स्थानों में कुपित वात) भी शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शुण्ठादिः वृन्दात्—

शुण्ठीगोचुरककाथः प्रातः प्रातचित्तेवित्तः । आमवाते कटीशूले पाचनो रुक्षप्रणाशनः ॥ १ ॥

आमवातचिकित्सा

शुण्ठादिकाथ—सौंठ और गोखरु इनको समान लेकर काथ कर प्रातः नित्य सेवन करने से आमवात, कटिशूल को नष्ट करता है, पाचन है और पीड़ा को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

शुण्ठादिः—

शाश्वी शुण्ठ्यभया चोग्रा देवदारुतिविषाडमृता ।

कथाय आमवातस्य पाचनं रुक्षमोजिनाम् ॥ १ ॥

शुण्ठादिकाथ—कचूर, सौंठ, हर्द, वच, देवदारु, अतीस, गुरुचि, इनको समभाग लेकर विधिपूर्वक काथ कर सेवन करने से और रुक्ष पदार्थ भोजन करने से यह काथ आमवात का पाचन करता है ॥ १ ॥

पिपल्यादिः—

पिपली पिपलीमूलं च्छ्यचित्रकनागरम् । क्रथितं वारयतेदामवातं सुदारणम् ॥ १ ॥

पिपल्यादिकाथ—पीपरि, पिपलमूल, च्छ्य, चित्रमूल, सौंठ इनको समभाग लेकर काथ कर पान करने से कठिन आमवात रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

दशमूलादियोगः वैदजीवनात्—

दशमूलकवायमित्रितं वा ललने ! विश्वकवायमित्रितं वा ।

प्रपिकेकटिकुचिवस्तिशूले भ्रूमेरण्डलमेकमेव तैलम् ॥ १ ॥

दशमूलादियोग—ग्रन्थकार का कहना है कि हे ललने ! (प्रिये) दशमूल के घोषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक काथ कर उसमें एरण्ड तैल का प्रक्षेप देकर पान करने से अथवा केवल सौंठ के क्वाथ में एरण्डतैल का प्रक्षेप देकर पान करने से बरित, कटि तथा कुक्षिका आमवात जनित शूल अवश्य नष्ट होता है ॥ १ ॥

रास्नादिपञ्चदशकम् वैदजीवनात्—

रास्नामृतानाभारदेवदारुपञ्चाक्त्रियुग्मेन्द्रयैः कथायः ।

परण्डहैलेन समन्वितोऽथ भेत्ता भवेदामसमीरणश्य ॥ १ ॥

रास्नादिपञ्चदशक काथ—रास्ना, गुरुचि, सौंठ, देवदारु, दोनों पञ्चमूल (दसमूल) की दसों औषधियों और इन्द्रजौ इनको समान लेकर कवाथकर एरण्ड तैल का प्रक्षेप देकर पान करने से आमवात को नष्ट करता है ॥ १ ॥

महीषधामृताभवः कथायकश्च सेवितः । हिनस्ति चामादतं चिराय सन्धिसंशितम् ॥ १ ॥

महीषधादिकाथ—सौंठ और गुरुचि इनको समान ले काथकर सेवन करने से पुराना सन्धियों में रुका हुआ आमवात नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि

मङ्गातकादि—

भद्राततिलपथ्यानां चूर्णं गुडसमन्वितम् । आमवातं कटीशूलं हृष्णाद्वा गुडनागरम् ॥ १ ॥

भद्रातकादि चूर्ण—शुद्धमिलावा, तिल और हर्द, इनको समान लेकर चूर्णकर पुराने गुड के साथ सेवन करने से अथवा सौंठ के चूर्ण गुड के साथ सेवन करने से आमवात और कटिशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

अजमोदादं चूर्णम् शार्ङ्गधरात्—

अजमोदा विद्वानि सैन्धवं देवदारु च । चित्रकः पिपलीमूलं शारुप्ता च पिपली ॥ १ ॥

मरिचं चेति कर्णीशं प्रयेद् गुधः । कर्णीस्तु पञ्च पद्धाया दश स्युवृद्धयारकात् ॥२४॥
नागराक इष्टैव स्थुः सर्वाभ्येकत्र चूर्णेत् । पिवेत्कोणज्ञलेनैतत्तचूर्णं व्यथुताशनम् ॥३॥

अजमोदायन्त्रूर्ण—अजमोदा, वाभीरंग, सेन्वानमक, देवदारु, चित्रकमूल, पिपरामूल, सौंफ, पीपरि और मरिच प्रत्येक एक २ कर्ण, हर्दा ५ कर्ण विधारा, और सौंठि १०-१० कर्ण लेकर सब को चूर्णित कर एकत्र कर रख ले । सुखोण जल के अनुपान से इस चूर्ण को यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से शोथ को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

आमवानहजं हन्ति सन्धिपीडां च गुभसीम् । कटिपृष्ठगुदस्थां च जङ्घयोक्त्र रुजं जयेत् ॥४॥
तूलीप्रतूलीविशाचीकफदासामयाभ्ययेत् । समेन वा गुडेनास्य वटकान्कारयेद् गुधः ॥५॥

और आमवात की पीड़ा, सन्धियों की पीड़ा, गुभसी रोग, कटि, पृष्ठ, गुदा और जङ्घाओं की पीड़ा की भी नष्ट करता है । तथा हृती, प्रतूली, विशाची, कफ तथा वात के रोग को दूर करता है । इस चूर्ण में चूर्ण के समान पुराना गुड़ मिलाकर विधिपूर्वक इसकी बटी भी बनाकर उपयुक्त सेंगों में सेवन करने से सब को यह वटी नष्ट करती है ॥ ४-५ ॥

शार्ङ्गधरात्पञ्चसमचूर्णम्—

छुण्ठी हरीतकी छुण्णा श्रिवृत्सौवर्चलं तथा । समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
शैवं पञ्चसमं चूर्णमेतत्तद्वृह्णहरं परम । आधमानजठरार्णान्मामवातहरं स्मृतम् ॥ २ ॥

पञ्चसमचूर्ण—सौंठि, हर्दा, पीपरि, त्रिवृता, सोचरनमक, इन पाचों ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक सूक्ष्म चूर्णकर लेवे । इसको 'पञ्चसमचूर्ण' जानना चाहिये । यह शूल नष्ट करने में अत्युत्तम है । और आधमान, उदररोग, वर्षा और आमवात को नष्ट करने वाला है ॥ १-२ ॥

फलत्रिकादि—त्रिफला नागरं चैव सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।

मस्याराकृतकेण पयोमांसरसेन वा । आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंरित्यतम् ॥ ३ ॥

फलत्रिकादिचूर्ण—अवरा, हर्दा, वर्डा, सौंठि, इन द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर एकत्र कर यथायोग्य मात्रा से मस्तु, कांजी, मट्ठा, दूध अथवा गांसरस के अनुपान से सेवन करने से आमवात को शीघ्र नष्ट करता है और सन्धियों में स्थित शोथ को शीघ्र नष्ट करता है ॥ ३ ॥

हिङ्गवादि—

हिङ्ग चत्वयं विद्धं छुण्ठी छुण्णाऽज्ञाजी सुखकरम् । भागोत्तरवृद्धि—क्रम से हींग १ भाग, चत्वय २ भाग, विहलवण ३ भाग, सौंठि ४ भाग, पीपरि ५ भाग, जीरा ६ भाग और मुहुकरमूल ७ भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से आमवात को नष्ट करता है ॥ २ ॥

नागरादि—

कर्ष नागरचूर्णस्थ कालिकेव पिवेत्पदा । आमवातप्रशमनं कफवातविमाशनम् ॥ १ ॥

नागरादिचूर्ण—सौंठिका चूर्ण एक कर्ष के प्रमाण से लेकर कांजी के अनुपान से सदा पीने से आमवात को शमन करता है और कफवात को नष्ट करता है ॥ १ ॥

पञ्चकोलचूर्णम्—

पञ्चकोलस्थ चूर्णं च पिवेत्पून वाहिणा । मन्दाविनशूलगुहमामकफारोचकवाशनम् ॥ १ ॥

पञ्चकोलचूर्ण—पञ्चकोल (पीपरि, पिपरामूल, चत्वय, चित्रकमूल, और सौंठि) को समान भाग लेकर चूर्णकर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से मन्दाविन, शूल, गुह्म, आम-कफ के रोग और अरुचि को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वैशानरचूर्णम् वृन्दात्—

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ पञ्चवारश्च तत्समः । चयोऽज्ञमोदाभागात्वा नागराम्भागपञ्चकम् ॥ १ ॥

दक्ष हौ च हरीतकया सूक्ष्मचूर्णं द्वयं द्वयम् । मस्यारामाक्षूत्रैव सुरयोग्नोदकेन वा ॥ २ ॥

पीतं चयेषामाभवात् गुह्मद्वृस्तिज्ञानं गदान् ।

च्छीद्वानमय शूलादीनामाहं चार्णसां हितम् । वातानुलोभनमिव चूर्णं वैशानरं स्मृतम् ॥ ३ ॥

वैशानरचूर्ण—सेन्वानमक और यवालार दो-दो भाग, जवाहन ३ भाग, सौंठि ५ भाग, हर्दा १२ भाग, लेकर उत्तम चूर्ण बनाकर यथायोग्य प्रमाण की मात्रा से दही के पानी, कांजी, गोमूल, शुरा अथवा उष्णोदक इनमें से किसी एक के अनुपान से पान करने से आमवात को नष्ट करता है और गुह्म, हृदयरोग, वस्ति के रोग, प्लोहा, शूल आदि आनाह तथा अशै में हितकर है । और यह वैशानर चूर्ण वायु का अनुलोभन भी करता है ॥ १-३ ॥

चित्रकादि चूर्णं वृन्दात्—

चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गतिविषाडमृताः ।

देवदारु वचा मुस्ता नागरातिविषाभयाः । पिवेत्पृष्ठाणाश्वुना निर्यं चूर्णमाममहरप्रणुत् ॥ १ ॥

चित्रकादि चूर्ण—चित्रकमूल, कुट्टी, पुरहन पाढ़ी, इन्द्रजी, अतीत, गुरुचि, देवदारु, चत्व, नागरमोथा, सौंठि, अतीत, हर्दा, इन द्रव्यों को समभाग चूर्णकर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से आमवात को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अलम्बुषादि चूर्णं वृन्दात्—

अलम्बुषागेहुरकी त्रिफला नागराऽमृताः । यथोत्तरं भागशूलया श्वामाचूर्णं च तत्समम् ॥ १ ॥

पिवेत्पृष्ठामस्तुतकक्षिकोणोदकेन वा । आमवातं यथायाशु सज्जोक्त्वातशोणितम् ॥ २ ॥

अलम्बुषादिचूर्ण—योत्तर भाग वृद्धि क्रम से लजाल १ भाग, गोदल २ भाग, अवरा ३ भाग, हर्दा ४ भाग, बहरा ५ भाग, सौंठि ६ भाग, गुरुचि ७ भाग लेकर चूर्ण कर सर्वसम त्रिवृता का चूर्ण गिलाकर रख लेवे । यथायोग्य मात्रा से इसको मदिरा, दही के पानी, मट्ठा, कांजी अथवा उष्णोदक इनमें से किसी एक के साथ सेवन करने से आमवात को शीघ्र नष्ट करता है और शोथ सहित वातरक्त को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

सिंहानदगुग्गुलः—

एकश्चं कवायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् । सौगन्धिकं पलं चैकं कौशिकस्य पलं तथा ॥ १ ॥

कुट्टीं चोस्मूकस्य तैलमादाय अस्तमः । पाचयेत्पाकिवृद्धैः पात्रे लोहमये हृदे ॥ २ ॥

हन्ति वातं तथा पित्तं रक्तेभ्यां खलप्रकृताम् । शासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥

सिंहानदगुग्गुल—त्रिफला का विधिपूर्वक प्रस्तुत किया काथ ३ पल, शुद्ध आमलासार गन्धक वा चूर्ण २ पल, गुग्गुल १ पल, परण्डतैल ८ पल लेकर इनको एकत्र कर लोहे के पात्र में योग्य दैव विधिपूर्वक (गुग्गुल की विधि से) पाक कर सेवन करावे तो यह गुग्गुल वात-पित्त और कफ को नष्ट करता है, और सज्जावात, पङ्कवात, शास जो अत्यन्त कठिन हो गया हो तथा पांचों प्रकार के कासरोग को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

कुट्टानि वातरक्तं च गुह्मशूलोदराणि च । आमवातं जयेदेतदपि वैशविवर्जितम् ॥ ४ ॥

और कुषरोग, वातरक्त, गुह्म शूल और उदररोग तथा वैद्वी से असाध्य कहकर त्यागा हुआ भी आमवात रोग को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

पृतदम्बासयोगेन ज्वरापलित्यर्जितम् । सर्पिस्तेलरसोयेत्प्रश्नीयाच्छालिच्छिकम् ॥ ५ ॥

इसके नित्य सेवन करने से मनुष्य जरा तथा पलित रोग से मुक्त हो जाता है । इसके

सेवन करते समय धृत, तेल तथा मांसरस के साथ शालिघान तथा साठीधान के चावल खाने चाहिये ॥ ५ ॥

सिंहनाद इति व्यातो रोगवारणद्यपंहा । बहेवृद्धिकरः पुंसां भावितो दण्डपाणिना ॥ ६ ॥

यह सिंहनाद नाम का गुणगुलु रोगरूपी हाथियों के दर्प को नष्ट करने वाला है और अधिवर्धक है । इसको दण्डपाणि ने कहा था ॥ ६ ॥

अन्यथा वेपदेवकृतशतकाद—

प्रस्थेकं प्रस्थमेकं पुरत्रिकलमपां पाचयेस्त्वार्धशाश्वी

तुथांशो तत्र पूते पुनरमरवराऽयोषमुस्ताप्निवेष्टुः ।

छिकोग्रामामानकाशोरिपुशवरिप्रिवृत्सूतगन्धैः पक्षाधैः

साहचैर्दन्तिवीजैः कुटज्जवसुपलैः सिंहनादोडनिलामे ॥ १ ॥

अन्य सिंहनादगुणगुल—गुणगुल, अवरा, हर्दा बहेरा पृथक् २ प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेकर कूटकर २३ द्रोण (२४ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्शाशावशेष काथ पाक कर उतार कर छान लेवे फिर पाक द्वारा कुछ गाढ़ा कर पश्चात् इसमें देवदारु, अवरा, हर्दा, बहेरा, सोंठि, पीपरि, मरिच, नागरमोथा, चित्रकमूल, वामीरंग, गुरुचि, जावाइन, मानकन्द, मिलावा, शवरि (चित्रकमूल), निशोथ, शुद्धपारद, शुद्धगन्धक इन सब ओषधियों को आधा २ पल लेवे, शुद्ध दृन्ती के बीज १००० एक इजार संख्या में लेवे और इन्द्रजौ ८ पल लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर पश्चात् इन द्रव्यों के चूर्ण को एकत्र कर उपर्युक्त गुणगुल में मिलाकर रस लेवे । इस सिंहनाद गुणगुल के सेवन करने से आमवात रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

योगरत्नावल्या महारसोनपिण्डः—

तुला त्रुणरसोनस्य तदधं लुक्षितास्तिलाः । पाप्रे तु ग्रन्थतक्षस्य पिष्टद्रव्यैः समं चिपेद ॥ १ ॥
त्रूप्यं धान्यकं चत्यं चित्रकं गजपिप्पली । अजमोदा त्वगेला च ग्रन्थिकं च पलोशकम् ॥ २ ॥
शर्करायाः पलांश्चौ पञ्चाशायाः पलानि च । कृष्णाजाऊदाक्ष चत्वारि राजिकायास्तथैव च ॥
पलग्रमाणं दातव्यं हिङ्गोर्लवणपञ्चकम् । आद्रकस्य च चत्वारि सर्पिषोडांशौ पलानि च ॥ ४ ॥
तिलतैलस्य तावन्ति शुक्लस्यापि च विशतिः । सिद्धार्थकस्य चत्वारि द्विगुणं मधुकस्य च ॥
एकोक्तुष्टु छेदे धान्यराशी निषापयेत् । द्वादशाहात्समुद्दृश्य प्रातः खादेष्यथावलभ् ॥
सुरां सौवीरकं चाथ मधु बाडपि पिवेष्वरः । जीर्णं यथेष्पिसं भोजयं द्विपिष्टकविञ्जितम् ॥ ७ ॥
कमासोपयोगेन सर्वव्याधिहरो भवेत् । अशीतिवार्ताजा रोगाश्वारिषाच्च पितजाः ॥ ८ ॥

विशतिः इलेप्तम्जास्तद्वृश्यन्ते तस्य सेवनात् ।

योनिशूलं प्रमेहोद्धृत्युद्धृत्यभग्नदरान् । अर्कोगुहमस्यांश्चापि जयेद्विचलप्रदः ॥ ९ ॥

महारसोनपिण्ड—कूटा हुआ लहसुन १ तुला (१०० पल), कूटा हुआ तिल आधा तुला (५० पल) और गाय का तक ४ प्रस्थ लेकर उसमें सोंठि, पीपरि, मरिच, धनियाँ, चन्द्र, चित्रकमूल, गजपीपरि, अजमोदा, दालचीनी, इलायची, पिपरामूल, इनमें से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ पल, शर्करा ८ पल, जीरा ५ पल, कृष्णजीरक ४ पल, राई ४ पल, शुद्ध हींग १ पल, पांचों नमक और अद्रक प्रत्येक चार २ पल, धृत ८ पल, तिल का तेल ८ पल, सिरका २० पल, शेष सर्दी ४ पल, मुलहठी ८ पल, इन सर्वों के चूर्ण को लेकर सबको एकत्र कर एक दण्डपाणि में रखकर उसका मुख बन्दकर धान्यराशी में रस देवे । १२ दिन रखा रहने के पश्चात् निकाल कर बल के अनुसार सेवन करे । इस योग को मंदिरा, कांजी अथवा मधु के अनुपान से रोगानुसार सेवन करे तथा इस औषध के पच जाने पर इच्छानुकूल भोजन करे । परन्तु दही और पिष्ट

पदार्थ नहीं खावे । एक मास तक इसको सेवन करने से सब प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है और असी प्रकार के वातज रोग, चालिस प्रकार के पितज रोग और २० प्रकार के ककज रोग एवं योगिशूल, प्रमेह, कुष्ठ, उदर रोग, भग्नदर, धर्श, गुल्म और क्षयरोग इन सबको नष्ट करता है तथा रुचि और बल को बढ़ाने वाला है ॥ १-९ ॥

अथ धृतकल्कावलेपनादि—

एरण्डबीजयोगः—

विशोष्यैरण्डबीजानि पिङ्गा तत्पायसं पिवेत् ।

आमवाते कटीशूले गृह्णस्यां चौचधं पश्य ॥ १ ॥

एरण्ड बीज योग—एरण्ड के बीजों के छिलका आदि उतार कर शोषित कर पीसकर दूध के साथ विधिवत् पायस (खीर) बनाकर पान करने से आमवात, कटिशूल, और गृह्णसी में देने से आम होता है । इन रोगों की यह उत्तम औषधि है ॥ १ ॥

एरण्डबीजमज्जायुक्तः समविष्टशक्तशसहितः ।

गुटिकाहृतः प्रभाते शुक्तः सामानिलं जयति ॥ २ ॥

एरण्ड के बीजों की मज्जा (गुही) और उसके समान ही सोंठि के चूर्ण और शर्करा मिलाकर विधिपूर्वक वटी बनाकर प्रातः काल सेवन करने से आमवात नष्ट होता है ॥ २ ॥

आमवातगंजेन्द्रस्य शारीरवभारिणः । एक एवाग्राहीहृत्या एरण्डस्नेहकेसरी ॥ ३ ॥

आमवात रूपी महान हाथी जो शरीर रूपी बन में विवरण करता है उसको मारने वालों में अग्रणी एक एरण्ड स्नेह (एरण्ड तेल) रूपी सिंह ही पर्याप्त है ॥ ३ ॥

कटीसतनुक्त्येषु सञ्चारव्यात्कुरुतः । एरण्डतैलसिंहस्य गन्धमाध्याय गच्छति ॥ ४ ॥

कटि भाग रूपी बनों में विवरण करने वाला वातरूपी हाथी—एरण्ड तेल रूप सिंह के गन्ध को सूखते ही चला जाता है । अथोत् एरण्डतेल से कटि का वात नष्ट होता है ॥ ४ ॥

शार्झधराच्छुण्ठीकल्कः—शुण्ठीकल्कविष्टिपृथिव्य इसैरेरण्डमूलजैः ।

विष्टेषुपृष्ठाकेन तद्वसः शौक्रसंयुतः ।

आमवातसमुद्धृतां पीडां जयति दुस्तराम् ॥ ५ ॥

शुण्ठीकल्क—सोंठि को एरण्डमूल के स्वरस के साथ पीसकर विधिपूर्वक कल्क कर पुट्याक की विधि से पाक कर रस निकाल कर उस रस में मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से आमवात से उत्पत्ति कठिन पीड़ा को भी नष्ट करता है ॥ ५ ॥

शुण्ठीधृतम्—

पुष्टव्यर्थं पश्यता साथ्यं दृश्या विष्टमूलस्त्रंग्रहे । शैवप्राणार्थं महिमता मस्तुना च प्रकीर्तिस्तम् ॥ ६ ॥

शुण्ठीधृत—यदि युष्मि के लिये शुण्ठीधृत बनाना हो तो (पाकार्थ) दूध के साथ धृत सिंह करना चाहिये, यदि मल-मूत्र के संबंध के लिये बनाना हो तो दही के साथ और यदि अस्त्री दीप्ति करने के लिये धृत सिंह करना हो तो दही के पानी के साथ धृत सिंह करना चाहिये । (दूध, दही तथा मरुतु पाकार्थ चतुर्गुण लेना चाहिये) ॥ ६ ॥

स्पिनांगरक्षवेन सौधीरं च चतुर्गुणम् । सिंहमश्चिकरं श्रेष्ठमाभ्यात्सहरं पश्यः ॥ ७ ॥

विष्टि—सोंठि का कल्क आधा शराव (SI) मूल्चित गोधृत एक प्रस्थ, सौधीर (कांजी) पाकार्थ चतुर्गुण लेकर (यहां कांजी का योग है इसी प्रकार उपर्युक्त श्लोक में रोगानुसार, कांजी के स्थान में दूध, दही तथा मरुतु को चतुर्गुण देना चाहिये) धृत सिंह कर उत्तर-



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi
{creator of
hinduism
server}

छान कर सेवन करने से अस्ति की वृद्धि करने वाला तथा आमवात को नष्ट करने में उत्तम है ॥ २ ॥

खण्डशुण्ठवलेह—नागरस्य तुलामेहां बृतस्य पलविशतिः ।

बीरप्रोणार्थके पक्षत्वा स्पष्टस्याद्यं शतं चिपेत् ॥ १ ॥

क्ष्योर्थं त्रिजातकं खेव केशरं पिण्डीजाटा । जोङ्कं जटिपत्रीकं जातीफलकचोरकम् ॥ २ ॥

अरमभेदस्तान्नभस्म वहमस्म तथेत च । स्वर्णमादिकमञ्चं च तथा लोहमर्यं चिपेत् ॥ ३ ॥

दत्तान्पृथक्षपलान्नायान्प्रयेकं चूर्जितं चिपेत् ।

मन्दानलविष्कं तु लेहस्ताद्यु साध्येत् ॥ ४ ॥

खण्डशुण्ठवलेह—सौंठि १ तुला (१०० पल), घृत २० पल लेकर दोनों को अथे द्रोण (८ प्रस्थ) दूध में देकर पाक करे । और पाक सिद्ध होने पर उसमें शक्ति ५० पल मिलावे और सौंठि, पीपरि, मरिच, दालचीनी, लेजपात, इलायची, नागकेसर, पिपरामूल, अगर, जावित्री, जायफर, कचूर, पाषाणमेद (पत्थरचूर), तात्रभस्म, वंगभस्म, स्वर्णमादिक भस्म, अन्नक भस्म, कान्तलौह भस्म और तीक्ष्णलौह भस्म, तथा मण्डूर भस्म इनमें से प्रयोक्त ओषधियों के न्यून को पृथक् २ एक २ पल लेकर उपर्युक्त पाक में मिलाकर रख लेवे । इस पाक को मन्द २ अस्ति पर लेह की भाँति उत्तम रीति से सिद्ध करना चाहिये ॥ १-४ ॥

बृथयं वर्णय लग्नाऽद्युर्यं बलीपलितनाशनम् ।

आमवातप्रशमनं सौभावयकरसुत्तमम् ॥ ५ ॥

इसके सेवन से बल बढ़ता है और यह वर्णकारक, आयुर्वर्धक, बली-पलितनाशक, आमवात नाशक तथा उत्तम सौभावय करने वाला है ॥ ५ ॥

लेपौ, शतपुष्पादिः—

शतपुष्पा वचा विशा शद्वावहणाद्य च । पुनर्नवासदेवाहासटिमुण्डिनिकाः समाः ॥ २ ॥

प्रसारिणी च तकारी फलं च महारस्य च ।

शुक्रकालिकपिण्डास्तु सुखोल्पा लेपने हिताः ॥ ३ ॥

आमवात में शतपुष्पादि लेप—सौंफ, वच, सौंठि, गोखरू, वरणा की छाल, गदहपुर्नी, देवदारु, कचूर, मुण्डी, गनपतार, गनियार और मैनफल इनको समान भाग लेकर सिरका तथा कांजी के साथ धीसकर गरम कर दुष्क गरम २ ही लेप करने से आमवात में हितकर है ॥ १-२ ॥

अहिंसादिः—

अहिंसा लेन्द्रुकान्मूलं शिश्रवस्मीकमृच्छयैः ।

मूत्रविद्युत्य कर्तव्यं उपनाहोऽनिलामजित् ॥ १ ॥

अहिंसादि लेप—अहिंसा (कण्टकपालो वृश, वंग ०—कांटा गुड काटली), कुचिला के शूष्क की जड़, सहिजन की जड़, विमोट की भिट्ठी, इन द्रव्यों को समान लेकर गोमूत्र के साथ पोसकर (गरम २) उपनाह करने से आमवात रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पानीयम्—

आमवाताभिभृताय पीडिताय पिपासया । पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमूर्यते ॥ ३ ॥

पानी की विधि—आमवात से पीडित रोगी को रुचा लगने पर पञ्चकोल (पीपरि, पिपरामूल, वच्य, चित्रकमूल और सौंठि) से पकाया हुआ पानी हितकर कहा गया है ॥ १ ॥

आमवातविष्वसनरसः—

प्रधिष्ठय गम्भै रसपादभागं कलाप्रमाणं च विषं समस्तान् ।

कृशानुतोयेन च भाष्यविष्वसन बहलं ददीतास्य महाप्रशास्यै ॥ १ ॥

आमवातविष्वसन रस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध गन्धक चौथाई भाग और शुद्ध मीठा विष दोनों के घोडशाश लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर विष मिला मर्दन कर चित्रकमूल के स्वरस के साथ भावित कर रख लेवे । इस रस को एक बछ (डेढ़ रत्ती) के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से वातरोग शान्त होते हैं ॥ २ ॥

अपस्मारे तथोन्मादे सर्वाङ्गव्यथनेऽपि च ।

एकाङ्गवाते सामे वा दंष्ट्रावन्धे हिमे तथा । देयोऽप्य वहमात्रं तु सर्ववातनिकृत्ये ॥ २ ॥

और अपस्मार, उन्माद, सर्वांग की पीढ़ी, एकाङ्गवात, आमवात, दंष्ट्रावन्ध (दाँतों का वैठ जाना) तथा शीताङ्ग में सब प्रकार के वातरोग की निवृत्ति के लिये १ बछ (१॥२०) के प्रमाण की मात्रा से देनी चाहिये ॥ २ ॥

पद्धत्यपथ्यम्—

वचा: कुलस्था: श्यामाकाः कोद्रवा रक्षशालयः ।

वास्तुकं शिश्रव वर्षभिः कारवेषं पटोलकम् ॥ १ ॥

आद्रेंकं तस्मीरं च लक्ष्मनं तक्षसंकृतम् । जाङ्गलानां तथा मांसं सामवातगवे हितम् ॥ २ ॥

पथ्य—जब, कुलधी, सौंवां, कोदो, लाल शालिधान के चावल, वथुआ, सहिजन, पुनर्नवा, करौली, परवर, अद्रक, बण्जल, मट्ठे के साथ शोधित लहसुन, जाङ्गल जीवों के मांस ये सब आमवात रोग में हितकर (पथ्य) हैं ॥ १-२ ॥

दधिमरस्यगुद्धीरोपोदिकामाषपिष्टकम् । हुटनीरं पूर्ववातं विस्त्रान्यशमानि च ॥ ३ ॥

असारिं वेगरोधं च जागरं विषमाशनम् ।

वर्जयेदामवातार्तो गुर्विष्ठ्यग्न्धकानि च ॥ ४ ॥

इति योगरत्नाकरे पूर्वादें आमवातचिकित्सा समाप्ता ।

दही, मछली, गुड, दूध, पीर की साग, उरद की पिट्ठी, दूषित जल, पुरवार्ह वायु और विशुद्ध भोजन, असात्म्य (प्रतिकूल) पदार्थ, वेगवरोध, रात्रिजागरण, विषमभोजन, गुरुपदार्थ और अभिष्ठ्यन्दी पदार्थ आमवात का रोगी त्वाग देवे । क्योंकि ये अपथ्य हैं ॥ ३-४ ॥

इत्यामवातचिकित्सा ।